भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-ग्रन्थागार

"ज्ञानं चक्षुरनुत्तरं"

कृपया—

(१) मैले हाथोंसे पुस्तकको स्पर्श न कीजिये। जिल्दपर कागज चढ़ा लीजिये।

(२) पन्ने सावधानीसे पलटिये। थूकका प्रयोग न कीजिये।

(३) निशानीके लिये पन्ने न मोड़िये, न कोई मोटी चीज रखिये। लापरवाही बुरी आदत है।

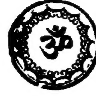
(४) हाशियोंपर निशान न बनाइये, न कुछ लिखिये।

(५) खुली पुस्तक उलटकर न रखिये, न दोहरी करके पढ़िये।

(६) पुस्तककी आवश्यकता न रहनेपर लौटा दीजिये।

"पुस्तकें ज्ञानमन्दिर हैं, इनकी विनय कीजिये"


चर्चासागर



श्रीवीतरागाय नमः ।

स्वर्गीय पंडित चंपालालजी विरचित

चर्चासागर



भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था, कलकत्ताके

जैन-सिद्धांत प्रकाशक (पवित्र) प्रेसमें पं० श्रीलालजी काव्यतीर्थके

प्रबन्धसे मुद्रित ।

वीरनिर्वाण संवत् २४५६

सितम्बर १९३०

आश्विन सुदी ३
विक्रम-संवत् १९८७

वक्तव्य

चर्चासागर ग्रंथका श्रीमान् सेठ हंसराजजी महादूरामजी लुहाड्या मु० मांडवड (नांदगांव) नासिकवालोंने ललितपुरमें श्री १०८ आचार्य शांतिसागर महाराजके दर्शनके स्मरणार्थ भक्तिपूर्वक ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयके लिये उद्धार किया है।

इस ग्रंथके प्रकाशनमें श्रीमान् सेठ गंभीरमलजी पांड्या (फर्म—चैनसुखजी गंभीरमलजी) कलकत्तावालोंने ५००) पांच सो रुपया तथा और भी अनेक प्रकारकी सहायता दी है।

चर्चासागर ग्रंथकी विषय सूची

चर्चा संख्या	चर्चा	पृष्ठ संख्या

विषयसूची समाप्त

चर्चासागर ग्रंथमें प्रमाणारूपसे दिये हुए ग्रंथोंके नाम जिनके श्लोक लिखे हैं।

चर्चासंख्या	ग्रन्थोंके नाम
१	आदिपुराण, लब्ध्यादिपुराण, त्रिलोकसार
२	पद्मपुराण (रविषेणाचार्य विरचित)
३	षट्पाहुडकी टीका
४	चारित्रसार। इन्द्रनंदि कृत नीतिसार
५	स्फुट गाथा तथा श्लोक।
६	लघु पद्मपुराण।
७	चारित्रसार, नीतिसार।
८	इन्द्रनन्दिविरचित प्रायश्चित्त ग्रन्थ।
९	पद्मपुराण, लघुपद्मपुराण
१०	पद्मपुराण लघुपद्मपुराण
११	पद्मनन्दिपंचविंशतिका
१२	पद्मनंदिपंचविंशतिका
१३	फुटकर गाथा
१४	सुदर्शन चरित्र
१५	सुदर्शन चरित्र
१६	सुदर्शन चरित्र
१७	सुदर्शन चरित्र
१८	पद्मपुराण
१९	पद्मनंदिपंचविंशतिका नीतिसार
२०	पद्मनंदि पंचविंशतिका
२१	फुटकर श्लोक, मोक्षशास्त्र, धर्मरसिक
२२	धर्मरसिक, फुटकर, क्रियाकोश, फुटकर
२३	धर्मरसिक
२४	फुटकर (जिनसेनाचार्यके वचन)
२५	धर्मरसिक, हरिवंशपुराण, आदिपुराण
२६	धर्मरसिक फुटकर
२७	धर्मरसिक
२८	मोक्षशास्त्र मूलाचार प्रदीपक।
२९	मोक्षशास्त्र मूलाचार प्रदीपक।
३०	मूलाचार प्रदीपक। मोक्षशास्त्र।
३१	मूलाचार प्रदीपक।
३२	+
३३	रत्नकरण्ड श्रावकाचार।
३४	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा। उसकी टीका
३५	प्रश्नोत्तरोपासकाचार
३६	पूजाके मंत्र।
३७	यशस्तिलक चंपू
३८	पंचमंगल।
३९	मोक्षशास्त्र।
४०	मोक्षशास्त्र।
४१	प्रश्नोत्तरश्रावकाचर। धर्मरसिक। धर्मामृत-श्रावकाचार। स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा तथा उसकी टीका।
४२	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीका। धर्म-रसिक, यशस्तिलक।

चर्चासंख्या	ग्रन्थोंके नाम
४३	वसुनंदि श्रावकाचार
४४	त्रिलोकसार । फुटकर श्लोक ।
४५	मोक्षशास्त्र फुटकर गाथा
४६	सिद्धांतसार दीपक । त्रिलोकप्रज्ञप्ति
४७	त्रिलोकसार सिंद्धांतसारदीपक, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, वृहद्धरिवंशपुराण आदि ।
४८	फुटकर श्लोक
४९	।
५०	धर्मरसिक । धर्मरसिक
५१	फुटकरगाथा
५२	फुटकर गाथा
५३	मोक्षशास्त्र । श्रुतसागरी टीका ।
५४	महापुराण । सिद्धांतसार दीपक ।
५५	महापुराण
५६	महापुराण
५७	महापुराण
५८	त्रिवर्णाचार
५९	सिद्धांतसार
६०	सिद्धांतसार
६१	सिद्धांतसार

चर्चासंख्या	ग्रन्थोंके नाम
६२	सिद्धांतसार त्रिलोकसार
६३	सिद्धांतसार दीपक, त्रिलोकसार
६४	जंबूचरित्र
६५	फुटकर श्लोक ।
६६	+
६७	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा
६८	मूलाचार । मूलाचार प्रदीपक
६९	सिद्धांतसार
७०	गोमट्टसार
७१	वृहद्धरिवंशपुराण
७२	फुटकर श्लोक
७३	फुटकर श्लोक भावप्रकाश
७४	भावप्रकाश
७५	लघुपद्मपुराण (सोमसेन कृत)
७६	पद्मपुराण, मूलाचार, मूलाचारकी टीका, मूलाचार प्रदीपक
७७	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा
७८	मोक्षशास्त्र
७९	मोक्षशास्त्र
८०	जैनरत्नाकर

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
८१	मोक्षशास्त्र पंचमंगल
८२	रत्नाकर
८३	वसुनंदिश्रावकाचार
८४	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
८५	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
८६	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, वृहद्हरिवंशपुराण
८७	रत्नाकर स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा
८८	रत्नाकर
८९	मोक्षशास्त्र
९०	धर्मोपदेश पीयूषरत्नाकर अन्य श्रावकाचार
९१	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा । त्रिलोकसार मूलाचार
९२	स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा । गोमट्टसार
९३	फुटकर श्लोक, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ।
९४	त्रिलोकसार मूलाचार सिद्धांतसार-प्रदीपक ।
९५	सिद्धांतसार दीपक । लघुपद्मपुराण
९६	उत्तरपुराण
९७	रयणसार
९८	षट्पाहुड ।

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
९९	मोक्षपाहुड
१००	मोक्षपाहुड
१०१	मोक्षपाहुड।
१०२	लघुआदिपुराण (सकलकीर्ति कृत) पार्श्वपुराण।
१०३	सिद्धांतसार, गोमट्टसार
१०४	आदिपुराण, लब्ध्यादिपुराण, पार्श्वपुराण
१०५	प्रतिष्ठाशास्त्र, नरेन्द्रसेनकृत प्रतिष्ठापाठ
१०६	पद्मनंदिपंचविंशतिका।
१०७	आदिपुराण, सिद्धांतसार
१०८	प्रश्नोत्तरोपासकाचार
१०९	दीक्षाकल्प।
११०	गोमट्टसार।
१११	सिद्धांतसार दीपक
११२	मूलाचार प्रदीपक। मूलाचार।
११३	गोमट्टसारकी टीका। वेद, भारत, मार्कंडेयपुराण, आरण्यक, प्रभासखंड, शिवपुराण, वाल्मीकि रामायण, अद्भुत रामायण, गीता, वेद, पुराण, वेदांत
११४	पुराण

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
११५	गोमट्टसार
११६	गोमट्टसार
११७	गोमट्टसार
११८	गोमट्टसार
११९	गोमट्टसार
१२०	गोमट्टसार
१२१	मोक्षशास्त्र, गोमट्टसार
१२२	गोमट्टसार
१२३	गोमट्टसार
१२४	गोमट्टसार
१२५	गोमट्टसार
१२६	गोमट्टसार
१२७	गोमट्टसार
१२८	गोमट्टसार
१२९	गोमट्टसार
१३०	गोमट्टसार
१३१	गोमट्टसार
१३२	अनंतव्रतकी उद्यापन विधि (पद्मनंदि कृत) वसुनंदि श्रावकाचार। तथा उसकी टीका। मोक्षशास्त्र।

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
१३३	वसुनंदि श्रावकाचार व्रतकथा कोश
१३४	वसुनंदिश्रावकाचार, लघु आदिपुराण
१३५	वसुनंदिश्रावकाचार
१३६	उमास्वामिश्रावकाचार
१३७	उमास्वामिश्रावकाचार
१३८	उमास्वामिश्रावकाचार, भावसंग्रह, यशस्तिलक चंपू। पूजाग्रन्थ, पूजासार, जिनसहिता प्रतिष्ठापाठ त्रिवर्णाचार। सूक्तिमुक्तावली।
१३९	उमास्वामिश्रावकाचार
१४०	उमास्वामिश्रावकाचार
१४१	फुटकर श्लोक
१४२	उमास्वामि श्रावकाचार। धर्मरसिक
१४३	उमास्वामि श्रावकाचार
१४४	उमास्वामि श्रावकाचार
१४५	उमास्वामि श्रावकाचार फुटकर श्लोक
१४६	उमास्वामि श्रावकाचार
१४७	उमास्वामि श्रावकाचार
१४८	+
१४९	पूजाके मंत्र ईर्यापथशुद्धिपाठ दर्शनपाठ

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
	मंत्र एक संधिकृत जिनसंहिता, पूजासार धर्मरसिक पूजाविधि जिनयज्ञकल्प प्रतिष्ठापाठ महाभिषेक शान्तिचक्रपूजा
१५०	फुटकर श्लोक प्रतिष्ठापाठके हैं
१५१	पूजासार
१५२	शांतिचक्रपूजा लघुस्नपन
१५३	+
१५४	पूजासार
१५५	पूजासार, वृहत्स्नपन.
१५६	+
१५७	सिद्धपूजा
१५८	+
१५९	श्लोक फुटकर
१६०	+
१६१	फुटकर श्लोक
१६२	पूजासार
१६३	(ये सब पंच एक संधि कृत जिनसंहिता पूजासार जिनयज्ञ
१६४	कल्पविद्यानुवाद णमोकार कल्प वसुनंदि प्रतिष्ठापाठ
१६५	त्रिवर्णाचार शांतिचक्र रत्नाकर आदि शास्त्रोंसे लिखे हैं
१६६	विश्वैकाक्षरीवर्णकोश एकाक्षरीकोश, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीका । कातंत्र आदि व्याकरणके सूत्रश्लोक, परमतके श्लोक, पद्मावती कल्प, त्रिवर्णाचार, ज्ञानार्णव, जिनसंहिता पूजासार जिनयज्ञकल्प जिन प्रतिष्ठापाठ शांतिचक्र महाभिषक । मायाबीज कल्प,
१६७	अमरकोश, बालबोधपंचांग व्याकरणके सूत्र दर्शनपाठ ।
१६८	त्रिवर्णाचार प्रतिष्ठापाठ, आदिपुराण जिनयज्ञकल्पकी वृत्ति । अजितपुराण, फुटकर श्लोक, जिनयज्ञकल्प । पूजासार आराधनाकथाकोष श्रीपालचरित्र उत्तरपुराण यशस्तिलक चंपू । धर्मरसिक । देवपूजा व्रतकथाकोष निर्वाणकांड प्राकृत । पूजाके पाठ । नित्यपूजा, सिद्धपूजा, भक्तामरस्तोत्र । फुटकर श्लोक । शुभचंद्र विरचित सहस्रगुणी पूजा, सकल कीर्ति विरचित शांतिपुराण । प्रतिष्ठासार, वसुनंदिकृत प्रतिष्ठापाठ । भावसंग्रह पद्मनंदिपंचविंशतिका । धर्मकीर्तिकृत नंदीश्वरपूजा । मुक्तावली पूजा अभयनंदिकृत श्रेयोविधान प्रभाकरसेन प्रतिष्ठापाठ । आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प त्रिकाल चतुर्विंशतिका पूजा । योगींद्रदेवकृत प्राकृत श्रावकाचार आदिपुराण । पूजासार एक संधिकृत जिनसंहिता शांतिचक्रविधान । अकृत्रिम चैत्यालयकी भाषापूजा सुपार्श्वनाथकी पूजा, चंद्रप्रभकी पूजा शीतलनाथकी पूजा श्रेयांसनाथकी पूजा, वासुपूज्यकी पूजा । विमलनाथकी पूजा अनंतनाथकी पूजा शांतिनाथकी पूजा अरनाथकी पूजा अरिष्ट नेमिनाथकी पूजा महावीरकी पूजा । शांतिचक्र ऋषिमंडल पंचकल्याण कर्मदहन षोडशकारण दशलक्षण रत्नत्रय सार्द्धद्वतयद्वीप, इन्द्रध्वज पंचमेरु नदीश्वर आदि सबकी पूजाओं में है । वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती कृत

चर्चासंख्या ग्रंथोंके नाम

जिनसंहिता व्रतकथाकोष वसुनंदि श्रावकाचार सिद्धांतसार दीपक षट्कर्मोपदेश रत्नमाला । वसुपालकीकथा मदनावलीकी कथा उमास्वामीश्रावकाचार सारसंग्रह षट्पाहुड । योगीन्द्रदेव श्रावकाचार महापुराण तत्त्वार्थसार चैत्यभक्तिपाठ श्रीपालकी कथा विद्याधरकी कथा ब्राह्मणी शेठ की पुत्री कुम्हारकी कथा। पुरंदर विधानव्रतकी कथा सुभाषित ग्रंथ। फुटकर श्लोक कथायें।

१६९ वसुनंदि श्रावकाचार धर्मरसिक।

१७० जिन प्रतिष्ठापाठ, इन्द्रध्वज, सार्द्धद्वितय द्वीपक्षेत्रपूजा, शांतिचक्र लघुस्नपन मध्यस्नपन बृहत्स्नपन, पंचकल्याण, चतुर्विंशतिपूजा, जिनयज्ञकल्प, जिनसंहिता पूजासार त्रिवर्णाचार हवनपाठ आदिपुराण पार्श्वपुराण (प्रभाचंद्र कृत) हरिवंशपुराण पद्मपुराण लघुपद्मपुराण यशस्तिलक चंपू उत्तरपुराण श्रीपालचरित्र पांडवपुराण (भद्रबाहुकृत) नवग्रह स्तोत्र। त्रिलोकसार। गोमट्टसार।

चर्चासंख्या ग्रंथोंके नाम

१७१ फुटकर श्लोक

१७२ पूजासार जिनसहिता

१७३ पूजासार जिन सहिता

१७४ पूजासार जिनसहिता

१७५ जिन सहिता

१७६ जिन सहिता

१७७ पूजासार

१७८ जिनसहिता

१७९ जिनसहिता

१८० जिनसहिता

१८१ जिनसहिता

१८२ जिनसहिता लघनपथ्यनिर्णय शास्त्र

१८३ फुटकर

१८४ त्रिवर्णाचार ९ वां अध्याय यशस्तिलक चंपू चर्चासमाधान आदिपुराण पद्मनंदिपंचविंशतिका पद्मपुराण अकलंक प्रायश्चित्त

१८५ प्रायश्चित्त चूलिका प्राकृत

१८६ प्रायश्चित्त चूलिका प्राकृत

१८७ प्रायश्चित्त चूलिका प्राकृत

चर्चासंख्या ग्रंथोंके नाम

१८८ मूलाचारकी टीका

१८९ मूलाचारकी टीका

१९० त्रिवर्णाचार भावप्रकाश

१९१ त्रिवर्णाचार

१९२ त्रिवर्णाचार

१९३ त्रिलोकसार

१९४ मूलाचार

१९५ मूलाचार त्रिलोकसार

१९६ मूलाचार भाषा चौपाई

१९७ मूलाचार

१९८ मूलाचार स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा

१९९ मूलाचार शारीरिक शास्त्र

२०० वसुनंदि श्रावकाचार अन्यमतके शास्त्र शार्ङ्गधर संहिता भावप्रकाश वैद्यरत्नभाषा

२०१ आदिपुराण सिद्धांतसार दीपक

२०२ सिद्धांतसार दीपक

२०३ अमरकोष धन्वंतरी निघंटु

२०४ कलापव्याकरण, ज्ञानसमुद्र ज्ञानार्णव एकाक्षरी वर्णमात्राकोष विष्णुपंजर मार्कंडेय पुराण मातृका निघंटु । एकाक्षरी-

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
	कोष, मूलाचार, सामायिक पाठ। महाभारत विष्णुपुराण नीतिसार
२०५	फुटकर श्लोक
२०६	त्रिलोकप्रज्ञप्ति
२०७	फुटकर श्लोक, भारत, मनुस्मृति, मारकण्डेयपुराण, शिवधर्म, श्राद्धकल्प परमतके धर्मशास्त्र भागवत । शार्ङ्गधर संहिता। शार्ङ्गधर कथित सुभाषित संहिता। वसुनंदिश्रावकाचार भावप्रकाश
२०८	×
२०९	×
२१०	धर्मप्रश्नोत्तर नीतिसार
२११	एकचर्चाकी पुस्तक
२१२	भगवती आराधना रत्नमाला
२१३	सिद्धांतसारदीपक
२१४	सिद्धांतसारदीपक
२१५	सिद्धांतसारदीपक
२१६	सिद्धांतसारदीपक त्रिलोकसार
२१७	सिद्धांतसारदीपक
२१८	सिद्धांतसारदीपक

चर्चासंख्या	ग्रन्थोंके नाम
२१९	सिद्धांतसारदीपक
२२०	सिद्धांतसारदीपक
२२१	सिद्धांतसारदीपक
२२२	सिद्धांतसारदीपक
२२३	मोक्षशास्त्र, सिद्धांतसारदीपक
२२४	सिद्धांतसारदीपक
२२५	सिद्धांतसारदीपक
२२६	फुटकर श्लोक
२२७	सिद्धांतसारदीपक
२२८	सिद्धांतसारदीपक । माघनंदि मुनिकृत जयमाला, सिद्धांतसार संग्रह, कथाकोश आराधना । बनारसीविलास
२२९	वसुनंदिश्रावकाचार भद्रबाहुचरित्र प्रश्नोत्तरोपासकाचार फुटकर गाथायें उत्तरपुराण पद्मपुराण आराधना कथाकोश पार्श्वनाथ पुराण षट्पाहुड भद्रबाहुचरित्र नीतिशतक हरिवंशपुराण लघु हरिवंशपुराण
२३०	त्रिलोकसार । मोक्षशास्त्र
२३१	फुटकर श्लोक
२३२	आदिपुराण लघुआदिपुराण सिद्धांतसार-

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
	दीपक, पार्श्वपुराण हरिवंशपुराण शांतिपाठ
२३३	नीतिसार
२३४	नीतिसार धर्मरसिक
२३५	धर्मरसिक नीतिशतक सप्तव्यसनचरित्र फुटकर श्लोक
२३६	नीतिसार षट्पाहुड
२३७	नीतिशतक
२३८	त्रिलोकसार
२३९	त्रिलोकसार
२४०	षट्पाहुड
२४१	मोक्षशास्त्र
२४२	मोक्षशास्त्र
२४३	श्रुतसागरी टीका पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
२४४	आत्मानुशासन
२४५	आत्मानुशासन
२४६	सारचतुर्विंशतिका ज्ञानार्णव हरिवंशपुराण
२४७	ज्ञानार्णवकी टीका
२४८	सार चतुर्विंशतिका
२४९	वसुनंदिश्रावकाचार अन्य श्रावकाचार

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
	धर्मामृत श्रावकाचार धर्मोपदेश पीयूषवर्षा-कर श्रावकचार नीतिसार कुन्दकुन्द०
२५०	पद्मनंदि पंचविंशतिका ज्ञानार्णव आत्मानुशासन ज्ञानतरंगिणि स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीका तत्त्वज्ञानतरंगिणी
२५१	बोध पाहुड योगसार चाणिक्य जैनगीता

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
	श्वेतांबरोंका गाथा भाषाछंद श्वेताम्बर सूत्र महान् सीतसूत्र, भत्तपत्तसूत्र, ज्ञातृधर्मकथासूत्र, प्रश्न व्याकरणसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, सुदर्शन चारित्र, महावीर चरित्र उपासकाध्ययनसूत्र, णमोत्थुणं ज्ञातृस्वरूप आवश्यक सूत्र, रायपसेणीसूत्र समवायसूत्र

चर्चासंख्या	ग्रंथोंके नाम
	सामायिककी पाटी जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, लघु, चाणिक्य ।
२५२	शिवपुराण प्रभासपुराण भर्तृहरि काव्य दक्षिणमूर्ति सहस्रनाम महिम्नस्तोत्र (दुर्वासा कृत) भागवत नगरखंड
२५३	महापुराण
२५४	कालज्ञान, नीतिशास्त्र ।

॥ समाप्त ॥

शास्त्रजी बाँचनेसे पहिले बोलनेका मंगलाचरण।

ओं नमः सिद्धेभ्यः ३।

ओंकारं बिंदुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः। कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥ १॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका। मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितं॥ २॥
अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३॥

परमगुरवे नमः, परंपराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसः परिवर्द्धकं धर्मसंबंधकं भव्यजीवप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्रीचर्चासागरनामधेयं।

अस्य मूलग्रंथकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तत्प्रत्युत्तरग्रंथकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसारतामासाद्य श्रीपंडितचंपालालेन विरचितं। श्रोतारः सावधानतया शृण्वंतु।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी। मंगलं कुंदकुंदाद्या जैनधर्मोऽस्तु मंगलं॥





नमः सिद्धेभ्यः

स्वर्गीय पंडित चंपालालजी विरचित

चर्चासागर



मंगलाचरण

चौपाई।

श्रीजिनवासुपूज्य शिवदाय। चंपा[1] पंचकल्यान लहाय।
विघ्नविदारन मंगलदाय। सो बंदो शरणाय सहाय॥ १॥
बंदूं श्रीवृषभेश जिनेश। वर्द्धमान लगूं[2] पाय हमेश॥
श्रीसीमंधरादि जिन बीस। विनऊं क्षिति धर कर पुनि शीस॥ २॥
तीस चौबीसी पद शिरनाय। नमूं केवली शिवसुखदाय॥
सिद्धालयबासी श्रीसिद्ध। नमूं नमूं मुझ द्यो निज ऋद्ध॥ ३॥

---

१ ग्रंथकर्ताने अपना नाम 'चंपा' अर्थात् चंपालाल दिया है। तथा दूसरा अर्थ—चंपापुरमें श्रीवासुपूज्य स्वामीके पांचो कल्याणक हुए हैं। २ तक।

आचारज युत पंचाचार । पाठक सकल साधु गुणकार ॥
ताके पदपंकज शिरनाय । नमूं शारदा शिव सुखदाय ॥ ४ ॥
शिवसुखदायक है जिनधर्म । रत्नत्रयमय नठ अठकर्म ॥
हैं त्रिलोकमें श्रीजिनरूप । जिनमंदिर पुनि विविध स्वरूप ॥ ५ ॥
कृत्रिम और अकृत्रिम सार । नमूं नमूं भुवि कर शिर धार ॥
चर्चासागर नाम सुग्रंथ । संशयनाशक सुर शिवपंथ ॥ ६ ॥
विरचूं देखि सिद्धांत अनेक । अवर पुराणादिक सविवेक ॥
पंचमकालविषैं जिनपंथ । संशयरूप लखे विन मंथे ॥ ७ ॥
समझे विनसमझे बहु लरैं । है एकांत पक्षकूं धरैं ॥
झगडतही सब जन्म गमाय । जिनश्रुतमर्म न रंच लहाय ॥ ८ ॥
यातैं केतेइक जो भर्म । दूर करनकूं रचूं सुमर्म ॥
पंडित अवर इतरजन सैंहूं । हंसियो मति यह लखि श्रुत कहूं ॥ ९ ॥
व्याकरणादिक कोष सु छंद । अलंकार आदिक श्रुतवृंद ॥
सो मैं पढ्यो न, मानों बात । यातैं भूलि देखि क्षमि भ्रात ॥ १० ॥
रागी द्वेषी परमें सुनी । उद्धत परमादी अर गुनी ॥
इमपर क्षमियो सब मम मिंत । ईर्षभाव हरि रहो निर्चिंत ॥ ११ ॥

१ देखकर । २ विचार । ३ ज्ञानी तथा अज्ञानी । ४ सब ।

हम परसंशय मेटनकाज। करैं वचनिकारूप समाज।
पंडित मूरख सबही पढैं। यातैं जैनपंथ नित बढैं ॥ १२ ॥

दोहा।

यह विचार इस ग्रंथकूं, रचूं स्वपर हित काज।
शारदको पुनि बंदिकें, लहूं श्रुतार्णव पाज[1] ॥ १३ ॥
सज्जन जनतैं वीनती करूं सुनहु मम भ्रात।
अल्पबुद्धि परमादतैं, लिखूं चूकि अकुलात ॥ १४ ॥
तो श्रुतधारी वीर तुम, दयाभाव उर लाय।
पढहु शुद्धकरि ग्रंथकूं यह मम वच्न सुखदाय ॥ १५ ॥

इसप्रकार अपने इष्ट देवको अच्छी तरह नमस्कार करकैं वा मंगलाचरण करकें चर्चासागर नामक ग्रंथ लिखता हूं। इस ग्रंथके लिखनेका खास कारण यह है कि इस समय इस कलिकालमें मिथ्यात्व और तीव्र कषायके उदयसे तथा किन्हीं किन्हीं सत्पुरुषोंकी भी बुद्धि भ्रष्ट हो जानेसे और पक्षपात बढ जानेसे जीवोंके हृदयमें इस पवित्र जैनधर्ममें भी अनेक प्रकारके संशय उत्पन्न होगये हैं। जिससे वे पदार्थोंके स्वरूपका श्रद्धान और ही प्रकार करने लग गये हैं। तथा जो अज्ञानी जन हैं, वे अपनी प्रवृत्ति अन्यथा रूप (वा शास्त्राज्ञाके विपरीत) करने लग गये हैं और ऐसे लोग अपना हठ किसी प्रकार नहीं छोड रहे हैं उन लोगोंको समझानेके लिये अनेक जैन शास्त्रोंको देखकर यह निसंदेह चर्चा लिखता हूं। इस चर्चा ग्रंथके लिखनेमें मेरा और कोई खास कारण (प्रयोजन) नहीं है।

जिस प्रकार पहले चर्चाशतक, चर्चासमाधान और चर्चा कोश आदि ग्रंथ बने हैं उसी प्रकार यह चर्चासागर लिखा है। इसलिये हे सज्जन पुरुषो! तुम इसे पढो सुनो। यह शास्त्र अपने और दूसरोंको समझनेके लिये सबका हित करनेवाला समझकर लिखा है।

---

१ पाज—किनारा या पार।

इस शास्त्रको समुद्रकी उपमा दी है सो जिस प्रकार समुद्र अगाध है उसीप्रकार इस शास्त्रमें जिनवाणीका रहस्य अगाध है। जिस प्रकार समुद्रके दो तट वा किनारे हैं, उसी प्रकार इस शास्त्रके भी आदि अंत दो तट हैं। जिस प्रकार समुद्र मर्यादासहित है उसी प्रकार यह ग्रंथ भी आचार्योंके बचनोंकी आम्नायरूपी मर्यादाकर सहित है। जिस प्रकार समुद्रमें अनेक पर्वत अर द्वीप हैं उसीप्रकार इस शास्त्ररूपी समुद्रमें भी अनेक प्रश्न रूपी ऊंचे ऊंचे पर्वत हैं तथा उनके उत्तररूपी अनेक द्वीप हैं। जिसप्रकार समुद्रके द्वीपादिकोंमें अनेक रत्न आदि पदार्थ भरे हुए हैं उसीप्रकार इस ग्रन्थमें भी भगवान जिनेंद्रके गुणोंको प्रकाशित करने वाले अनेक रत्न हैं। जिसप्रकार समुद्रमें अनेक तरंगें उठती हैं उसीप्रकार ग्रंथमें भी अनेक शंका समाधानरूपी तरंग हैं। समुद्रमें जिसप्रकार अनेक नदियोंका समागम होता है उसीप्रकार इस ग्रंथमें भी अनेक शास्त्रोंके प्रमाणरूप गाथा श्लोक आदि नदियोंका समागम हुआ है। जिसप्रकार समुद्रमें बडवानल है उसीप्रकार इस शास्त्रमें भी ज्ञानरूपी बडवानल है। जिसप्रकार समुद्रमें अनेक मगर मच्छ आदि दुष्ट जीव संचार करते हैं उसीप्रकार इस शास्त्रमें भी अनेक प्रकारके पक्षपाती, एकांत विपरीत आदि मिथ्यात्वको धारण करने वाले, दूसरोंकी निंदा करनेवाले, रागी, द्वेषी आदि जीवोंके हृदय (विचार) रूपी मगर मच्छोंका संचार हुआ है जिसप्रकार समुद्रमें अनेक जहाज गमन करते हैं उसी प्रकार इस ग्रन्थमें भी गुरुके बचनरूपी जहाज गमन करते हैं। जिसप्रकार समुद्रका जल बहुत खारा है उसीप्रकार इस ग्रन्थका शास्त्रोक्त बचनरूपी शास्त्रोंकी वातोंको न माननेवाले हठग्राही लोगोंको बहुत खराब लगता है। तथा जिसप्रकार समुद्रमें भ्रमर पडते हैं उसीप्रकार इस शास्त्ररूपी समुद्रमें शास्त्रोंके मर्मको न जाननेवाले जीवोंके प्रवेश करते ही अनेक प्रकारके भ्रमरूपी भ्रमर उत्पन्न होते हैं। इसप्रकार समुद्रमें अनेक गुणोंसे सुशोभित यह चर्चासागर शास्त्र है।

यहांपर किसीने पूछा कि शास्त्र शब्दका क्या अर्थ है इसके उत्तरमें ग्रंथकार कहते हैं कि शास्त्र शब्द शास् धातुसे बना है। शास् धातुका अर्थ अनुशासन करना अथवा शिक्षा देना है। जिसकी आज्ञाको सब लोग मानें अथवा जिससे अपने आत्मकल्याणकी शिक्षा प्राप्त हो, उसको शास्त्र कहते हैं, इससे भी आत्मकल्याणकी शिक्षा मिलती है। अथवा भगवान अरहंत देवकी आज्ञानुसार कथन करनेसे इसकी आज्ञा भी समस्त भव्य जीव मानते हैं इसलिये इसको शास्त्र कहते हैं। आगे अनुक्रमसे चर्चाओंका आरंभ करते हैं।

१। चर्चा पहली।

श्रीअरहंत भगवानके समवसरणकी गंधकुटीके प्रथम द्वारपर जिनराजके सामने तथा शाश्वत अकृत्रिम जिनालयोंकी गंधकुटीमें जिनप्रतिमाके आगे अष्ट मंगलद्रव्य रक्खे रहते हैं सो वे कौन कौन हैं।

समाधान—भगवानके सामने रक्खे हुए ये अष्टमंगल द्रव्य बडी शोभासे सुशोभित हैं उनके नाम ये हैं—झारी, कलश, ठोना, (स्थापना) सुप्रतिष्ठ, तालव्यजन (पंखा), दर्पण, चमर, छत्र, ध्वजा। ये आठ मंगलद्रव्य हैं इनमें कहीं कहीं स्वस्तिक भी आता है परंतु वहांपर स्वस्तिकका अर्थ ठोना ही करना चाहिये। देखो श्री जिनसेनाचार्यविरचित आदिपुराण पर्व वाईसवां श्लोक २९१

"सतालमंगलच्छत्रचामरध्वजदर्पणः।
सुप्रतिष्ठकं च भृंगारः कलशः प्रतिगोपुरम्॥"

इसीप्रकार लब्ध्यादिपुराणमें भी लिखा है।

"छत्रचामरभृंगारकलशध्वजदर्पणः।
सुप्रतिष्ठकतालाश्च शोभंते गोपुरं प्रति॥ १३६॥"

इसीप्रकार श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित त्रिलोकसारमें लिखा है—

"भिंगारकलशदप्पणवीयणधयचामरादवत्तमहा।
सुवइट्ठ मंगलाणि य अट्ठहियसयाणि पत्तेयं"॥ ९८९॥

इसप्रकार अष्टमंगल द्रव्य कहे हैं। कोई कोई लोग इनमें कांस्यताल और सिंहासन वतलाते हैं सो मिथ्या है। शास्त्रोंमें तो ऊपर लिखे ही वतलाये हैं। तथा मंगलद्रव्य आठ ही हैं इनके सिवाय जो लोग कहते हैं वे शास्त्रोंसे अनभिज्ञ हैं।

२। चर्चा दूसरी।

"श्रीमहावीर स्वामीने जन्मकल्याणके समय अभिषेकके लिये पांडुकशिला पर विराजमान होते हुए इंद्रका संदेह दूर करनेके लिये अपने पैरका अंगूठा दवाकर सुदर्शनमेरुको कंपायमान किया" ऐसा श्वेतांबरी कहते हैं सो जैनमतमें इसका समाधान किस प्रकार है?

समाधान—दिगंबरमतमें भी काष्ठासंघ संप्रदायमें भी इसीप्रकार कहा है, देखो श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण पर्व दूसरा।

पादांगुष्ठेन यो मेरुमनायासेन कंपयत्।
लेभे नाम महावीर इति नाकालयाधिपात् ॥ ७६ ॥

इस प्रकार कहा है तथा इन्द्रके द्वारा महावीर नाम भी इसीकारण पाया है। इसके सिवाय भगवानके दश अतिशय जन्मसे ही होते हैं उनमें एक अतुलबल नामका अतिशय है इसलिये इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अतएव मेरुपर्वतको कंपित किया मानना सत्य है। रावणने भी बालिमुनिसे वैर विचार कर कैलाश पर्वतको उठाया था। उस समय श्रीबालिमुनिने वहांके जिनबिंब तथा जिनमंदिरोंकी रक्षाकेलिये अनेक जीवोंकी रक्षाके लिये अपने पैरका अंगूठा दबाकर कैलाशको स्थिर रखना चाहा था उससमय रावण कैलाशके नीचे दब गया था इत्यादि वर्णन पद्मपुराणमें लिखा है। फिर भला श्रीमहावीर स्वामीके द्वारा मेरु पर्वतके कंपित होनेमें क्या संदेह है। हां; यह कथन मूलसंघमें नहीं है।

३। चर्चा तीसरी।

भगवानके माता पिताके नीहार है या नहीं?

समाधान—छद्मस्थ* तीर्थंकर प्रभुके, तीर्थंकरके माता पिताके, बलभद्र, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण और समस्त भोगभूमियां जीवोंके आहार तो है परंतु मलमूत्ररूप नीहार नहीं है। ऐसा नियम है। सोही षट्पाहुड टीकामें लिखा है।

"तित्थयरा तप्पियरा हलहरचक्कीइवासुदेवा हि।
पडिवासु भोगभूमिय आहारो णत्थि णीहारो" ॥

४। चर्चा चौथी।

प्रश्न—मुनिराज जो केशलोंच करते हैं सो कहां कहांके केश उखाडते हैं और कहां कहांके नहीं उखाडते हैं।

समाधान—मुनिराज शिरके और दाढी मूछके केश उखाडते हैं कांख और नीचेके लिंग वृषणके केश नहीं उखाडते। कांख और लिंग वृषणके केशोंकी रक्षा करते हैं, ऐसी आम्नाय है। मुनियोंको लोच करना इसीप्रकार कहा है। चारित्रसारमें लिखा है—

---

१ जिसने अपने पैरके अंगूठेको दबाकर विना किसी परिश्रमके मेरुपर्वतको कंपायमान कर दिया और इसीकेलिये इन्द्रसे महावीर नाम पाया।

"शिरःमुखस्मश्रुलोचोऽधःकेशरक्षणमिति"। इसीप्रकार इन्द्रनंदि सिद्धांतचक्रवर्तीने नीतिसारमें लिखा है-"अचेलत्वं शीर्षकूर्चलोचोऽधःकेशधारणमिति। इसप्रकार जानना।

चर्चा पांचवीं।

प्रश्न—मुनिराजके लोचकी विधि तो जानी परंतु तीर्थंकर भगवान दीक्षासमय जो पांचमुष्टी लोंच करते हैं सो किसप्रकार करते हैं?

समाधान—तीर्थंकर भगवान मुनियोंके समान लोच नहीं करते क्योंकि उनके दाढी मूछ होते ही नहीं हैं। तीर्थंकर भगवान तो सदा सोलह वर्षकी अवस्थावाले पुरुषके समान (विना दाढी मूछके) अपने रूपसे सुशोभित रहते हैं। इसलिये भगवान जो पंचमुष्टि लोच करते हैं सो केवल शिरका ही पंच मूठियोंसे लोच करते हैं। यदि ऐसा नहीं माना जायगा तो मुनिराजके समान तीर्थंकरोंका केशलोच बन नहीं सकेगा क्योंकि उनके दाढी मूछके केश लोच करने योग्य होते ही नहीं हैं फिर भला उनके लोचकी संभावना हो ही कैसें सकती है। लिखा भी है—

"देवावि णारया वि य भोगभुवा चक्किजिणवरिंदाणं। सव्वे केसव रामा कामा विणिकुंचिया हुंति"॥

अर्थात् चतुर्णिकायके देव, नारकी जीव, भोगभूमिया, चक्रवर्ती, तीर्थंकर, नारायण, बलभद्र और कामदेवोंके मुख पर दाढी मूछोंके बाल नहीं होते हैं। भावार्थ-इन सबके हमेशा नवयौवन अवस्था बनी रहती है। नारकी जीवोंको छोडकर बाकीके ऊपर लिखे सब जीवोंके केवल शिरके बाल होते हैं सो भी सोलह वर्षकी अवस्थावाले पुण्यपुरुषके समान सुशोभित रहते हैं। अन्य साधारण पुरुषोंके समान न तो विशेष उत्पन्न होते हैं और न विशेष बढते हैं। केवल शोभारूप उत्पन्न होते हैं और शोभारूप ही बढते हैं। इसीलिये ऊपर लिखे जीवोंके क्षौर-कर्म (बाल बलवाना) नहीं होता है। अर्थात् तीर्थंकरादिक कभी बाल नहीं बनवाते। क्योंकि वे इतने बढतेही नहीं हैं। इसके सिवाय एक और बात यह भी है कि यदि तीर्थंकरोंके मुखपर दाढी मूछके बाल माने जांय तो उनकी प्रतिमामें भी दाढी मूछके बाल मानने पडेंगे, परंतु ऐसा है नहीं। इसलिये तीर्थंकरोंके दाढी मूछका अभाव ही है। जिनप्रतिमामें दाढी मूछोंके बालोंके सिवाय भौंहके बालोंका भी निषेध है। लिखा भी है—

"कक्षादिरोमहीनांगं श्मश्रुरेखाविवर्जितम्। स्थितं प्रलंबितहस्तं श्रीवत्साढ्यं दिगम्बरम्"॥[1]

1 प्रतिमा ऐसी होनी चाहिये जिसपर भौंह दाढी मछके बाल न हों, खड्गासन हो, हाथ लटकते हों, श्रीवत्सका चिन्ह हो और दिगम्बर हो।

६। चर्चा छठी।

प्रश्न—कोटिशिलासे एक करोड मुनिराज मोक्ष पधारे हैं। उस कोटिशिलाको नारायण उठाते हैं सो वह कोटिशिला किस जगह है?

समाधान—वह कोटिशिला नाभिगिरि पर्वतके मस्तकपर है। वह एक योजन ऊंची और आठ योजन चौडी है। तथा अनेक मुनिराजोंका वह सिद्धस्थान है। ऐसी कोटिशिलाको हमारा नमस्कार हो। यही बात सोमसेनकृत पद्मपुराणमें बाईसवें अधिकारमें लिखी है—

"रावणेन पुरा पृष्टोऽनंतवीर्यो मुनीश्वरः। आत्मनो मरणं कस्य हस्ते देव! भविष्यति॥ १८॥
तेनोक्तं सिद्धशिलां यः उद्धरेत्स्वपराक्रमात्। स एव हन्यते त्वां हि चक्रेण चामुना दृढम्॥ १९॥
एतच्छ्रुत्वाह लक्ष्मीश उद्धरिष्यति नान्यथा। ततस्तेऽथ विमानस्थास्तां शिलां प्रति निर्गताः॥ २०॥
जांबूनदश्च सुग्रीवो नलनीलौ विराधितः। इत्यादि बहवो वीरा रात्रौ प्राप्ताश्च गह्वरम्॥ २१॥
नाभिगिरिशिरोदेशे शिला योजनमुत्थिता। अष्टयोजनविस्तीर्णा सिद्धस्थानं मुनीशिनाम्॥ २२॥
तत्रावतीर्य तै सर्वैः सा शिला पूजिता परम्। गंधाक्षतादिभिः पुष्पैः सुरासुरैश्च सेविता *"॥ २३॥

इत्यादि और भी वर्णन है। जांबूनद आदि विद्याधर उसी रातको लक्ष्मणको विमानमें बिठाकर कोटिशिलाके समीप ले गये थे। इससे सिद्ध होता है कि—कोटिशिला नाभिगिरि नामक पर्वतके मस्तक पर ही है। कितने ही लोग कोटिशिलाको तारंगा आदि अन्य क्षेत्रस्थानोंमें मानते हैं सो भ्रम है।

* । इन श्लोकोंका अभिप्राय यह है कि रावणने स्वामी अनंतवीर्यसे पूछा था कि मेरी मृत्यु किसके हाथसे होगी तब भगवानने कहा था कि जो कोटिशिलाको उठावेगा वही तुझे इसी चक्रसे मारेगा। यही बात जांबूनद आदि विद्याधरोंने लक्ष्मणसे कही थी तथा वे विद्याधर लक्ष्मणको विमानमें बिठाकर नाभिगिरि पर्वत पर कोटिशिला उठवानेको लेगये थे। वह शिला आठ योजन चौडी एक योजन ऊंची थी। उन विद्याधरोंने तथा लक्ष्मणने उस शिलाकी पूजा की थी।

७। चर्चा सातवीं।

प्रश्न—मुनिराज विना पीछीके चलें या नहीं।

समाधान—यदि मुनिराज किसी जगह परवश होकर विना मयूरपीछीके गमन करें तो फिर वे उसका प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि करते हैं। विना पीछीके गमन करनेपर विना प्रायश्चित्त लिये मुनिराज कभी नहीं रहते। विना पीछीके गमन करनेका प्रायश्चित्त इस-प्रकार है—यदि मुनिराज विना पीछीके सात पेंड गमन करें तो एक कायोत्सर्ग धारण कर शुद्ध होवें। यदि एक कोस चलें तो एक उपवास कर शुद्ध होवें। यही बात चारित्रसारमें लिखी है—

"सप्तपादेषु निःपिच्छः कायोत्सर्गाद्विशुद्ध्यति। गव्यूतिगमने शुद्धिमुपवासं समश्नुते* ॥"

कितने ही लोग मुनीश्वरोंका स्वरूप पीछी कमंडलुसे रहित मानते हैं परन्तु उनका यह मानना मिथ्या है। जो मुनीश्वरोंका स्वरूप पीछी रहित मानते हैं वे जिनमतसे वाह्य हैं। ऐसे ही लोग जिनमार्गमें भेद उत्पन्न करनेवाले हैं। यही बात नीतिसारमें लिखी है—

"कियत्यपि ततोऽतीते काले श्वेताम्बरोऽभवत्। द्राविड़ो यापनीयश्च केकीसंघश्च मानतः ॥
केकीपिच्छः श्वेतवासो द्राविडो यापनीयकः। निःपिच्छश्चेति पंचैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ॥"

इससे सिद्ध होता है कि जो मुनियोंको पीछी रहित मानते हैं वे जैनाभास हैं, साक्षात् जैनी नहीं हैं इसलिये पीछी कमंडलुके विना मुनिका स्वरूप बन ही नहीं सकता।

८। चर्चा आठवीं।

प्रश्न—श्रीमुनिराज कारण मिलनेपर जलमें प्रवेश करें या नहीं। तथा नाव आदि पानीकी सवारीमें बैठें या नहीं।

---

*। अभिप्राय यह है अत्यंत आवश्यकता पडने पर मुनिराज विना पीछेके चल सकते हैं परन्तु उन्हें उसका प्रायश्चित्त अवश्य लेना पड़ता है। देखो 'प्रायश्चित्तसमुच्चय चूलिका' पृष्ठ १६८ ॥

१ कितना ही काल बीत जानेपर श्वेतांबर हुए फिर द्राविड यापनीय और केकीसंघ हुआ परंतु केकीसंघ, श्वेतांबर, द्राविड, यापनीय और पीछी रहित (निःपिच्छ) ये सब जैनाभास हैं।

समाधान—जो महाव्रती मुनि अपने वा परकेलिये जलमें प्रवेश करें अथवा नावमें बैठकर पार उतरें तो वे उसका प्रायश्चित्त लेते हैं। वह प्रायश्चित्त इस प्रकार है–यदि मुनि चार अंगुल जलमें प्रवेश करें तो एक कायोत्सर्ग धारण करें। यदि घुटनेतक जलमें प्रवेश करें तो एक उपवास धारण करें यदि घुटनेसे चार चार अंगुल अधिक जलमें प्रवेश करें तो दूना दूना उपवास करें। यदि सोलह धनुष पर्यंत जलमें प्रवेश करें तो कायोत्सर्ग उपवास आदि उससे भी अधिक अधिक करें। यदि अपने वा दूसरेके लिये नावमें बैठकर पार उतरें तो ज्ञानी और अनेक कलाओंके जानकार वा समयके जानकार आचार्य यथायोग्य थोडा वा बहुत प्रायश्चित्त देवें यही बात श्रीइन्द्रनंदि विरचित प्रायश्चित्त ग्रंथमें लिखी है–

"जोनुदघ्ने तनूत्सर्गः क्षमणं चतुरंगुले। द्विगुणाः द्विगुणास्तस्मादुपवासाः स्युरम्भसि ॥ ३९ ॥
दंडैः षोडशभिर्मेये भवन्त्येते जलेऽजसा। कायोत्सर्गोपवासाः स्युर्जंतुकीर्णे ततोऽधिकाः ॥ ४० ॥
स्वपरार्थे प्रयुक्तैश्च नावाद्यैः सरणे सति। स्वल्पं वा बहु वा दद्यात् ज्ञातकालादिको गणी" ॥ ४१ ॥

९। चर्चा नोवीं।

प्रश्न—बहुतसे लोग रावणके बहनेऊ विद्याधरोंके राजा खरदूषण विद्याधरको चौदह हजार विद्याओंका स्वामी बतलाते हैं सो ठीक है या नहीं?

समाधान—यह कहना मिथ्या है। क्योंकि रावणके अठारह हजार विद्याओंकी सिद्धि थी। यदि खरदूषणके चौदह हजार विद्याएं मानली जांय तो फिर इससे रावणमें क्या अधिकता हुई। खरदूषण भी रावणके समान हो गया इसलिये ऐसा कहना अज्ञान

१ इसका अर्थ संस्कृत टीकाके अनुसार यह होता है—घुटनेपर्यंत पानीमें होकर जावे तो एक कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त है। घुटनेसे चार अंगुल ऊपर पानीमें होकर जानेका एक उपवास प्रायश्चित्त है। इससे चार चार अंगुल ऊपर पानीमें होकर जानेका दूने दूने उपवास प्रायश्चित्त है ॥३९॥ ये जो अर्थ कायोत्सर्ग और उपवास कहे गये हैं वे सोलह धनुष (चौसठ हाथ) पर्यंत लंबे फैले हुए जल-जन्तुओंसे रहित जलमें होकर जानेके हैं। न्यूनके नहीं। तथा जलजन्तुसे भरे हुए पानीमें होकर जानेका प्रायश्चित्त पहले कहे हुये कायोत्सर्ग और उपवाससे अधिक कायोत्सर्ग और उपवास हैं ॥४०॥ अपने निमित्त या परके निमित्त प्रयुक्त नाव आदिके द्वारा नदी आदि पार करने पर काल आदिको जाननेवाला आचार्य थोडा या बहुत (कालको जानकर) प्रायश्चित्त दे ॥४१॥ (देखो–भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था, कलकत्ताका छपा प्रायश्चित्तसमुच्चय चूलिका पृष्ठ १६६-६७)

है। खरदूषणके चौदह हजार विद्याओंकी सिद्धि नहीं थी। हां; उसके चौदह हजार विद्याधर सेवक थे। चौदह हजार विद्याधरोंका वह स्वामी था, और उसे हजार विद्याएं सिद्ध थीं, चौदह हजार नहीं। यही बात श्रीरविषेणाचार्यविरचित पद्मपुराणके नौवें पर्वमें लिखी है। जब कि चंद्रनखा हरी गई थी उसी समय मंदोदरीने रावणसे कहा है—

"खेचराणां सहस्राणि संति तस्य चतुर्दश। ये वीर्यकृतसन्नाहाः समरादनिवार्त्तिनः ॥ ३२ ॥
वहून्यस्य सहस्राणि विद्यानां दर्पशालिनः। सिद्धानीति न किं लोकात् भवता श्रवणे कृतम्" ॥३३॥

यही बात श्री सोमसेन विरचित लघु पद्मपुराणमें छठे अधिकारमें खरदूषणकी विद्याएं बतलाते समय लिखी है—

"चतुर्दशसहस्राणां विद्याभृतां प्रभुस्त्वयम्। निष्पन्नो बहुविद्याभिर्भोगी रूपी सुखी बली ॥ १७ ॥
तव तस्यात्र वै युद्धे संशयोपि भविष्यति। कन्याहरणदोषेण नान्यः कोपि वरिष्यति" ॥ १८ ॥

जिस समय चन्द्रनखा हरी गई थी उस समय मंदोदरीने रावणसे खरदूषणके लिये यह बात कही थी इसलिये खरदूषण चौदह हजार वियाओंका स्वामी नहीं था।

१०। चर्चा दशवीं।

प्रश्न—लंका नामकी नगरी कौनसे समुद्रमें है लवणोदधिमें है या उपसमुद्रमें है ?

समाधान—लंका लवणोदधि समुद्रमें है। वहांपर सातसौ योजन लंबा चौडा एक राक्षसनामका द्वीप है। उस द्वीपमें मेरु पर्वतके समान विचित्रीकूट नामका पर्वत है वह नौ योजन ऊंचा है, पचास योजन लंबा है। उसपर शत्रु प्रवेश नहीं कर सकते परन्तु जो वहां पहुंच जाय उसे वहांपर अच्छी शरण मिल जाती है। वह पर्वत अनेक वनोंकी शोभासे सुशोभित है। उस पर्वतपर तीस योजनके प्रमाणमें लंका नामकी नगरी है जो कि बहुत ही सुन्दर है। यही बात श्रीअजितनाथके समवशरणमें भीम महाभीम नामके यक्षोंने मेघनाद नामके विद्याधरोंके राजासे कही थी। "हम तुम्हें ऐसी लंकापुरी देते हैं वहां तुम सुखसे रहना" ऐसा पद्मपुराणमें लिखा है। देखो श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण पर्व पांचवेंमें—

खेचरार्भक धन्योसि यस्त्वं शरणमागतः। सर्वज्ञमजितं नाथं तुष्टावावामतस्तव ॥४६॥ (मुद्रितमें १५० वां)
शृणु संप्रति ते स्वास्थ्यं यथा भवति सर्वतः। तं प्रकारं प्रवक्ष्यावः पालनीयस्त्वमावयोः ॥ ४७ ॥

सन्त्यत्र लवणाम्भोधावत्युग्रग्राहसंकटे। अत्यंतदुर्गमारम्या महाद्वीपाः सहस्रशः ॥ ४८ ॥
क्वचित्क्रीडंति गंधर्वाः किन्नराणां क्वचिद्गणाः। क्वचिच्च यक्षसंघाताः क्वचित्किंपुरुषामराः ॥ ४९ ॥
तत्र मध्येऽस्ति सद्द्वीपो रक्षसां क्रीडनक्षमः। योजनानां शतान्येष सर्वतः सप्त कीर्तितः ॥ ५० ॥
तन्मध्ये मेरुवद्भाति त्रिकूटाख्यो महागिरिः। अत्यंतदुःप्रवेशोऽयं शरण्यः सद्गुहागृहैः ॥ ५१ ॥
शिखरं तस्य शैलेंद्रचूडाकारं मनोहरम्। योजनानि नवोत्तुंगं पंचाशद्विपुलत्वतः ॥ ५२ ॥
नानारत्नप्रभाजालछन्नहेममहातटम्। चित्रवल्लीपरिष्वक्तकल्पद्रुमसमाकुलम् ॥ ५३ ॥
त्रिंशद्योजनमानाधः सर्वतस्तस्य राक्षसी। लंकेति नगरी भाति रत्नजांबूनदालया ॥ ५४ ॥
मनोहारिभिरुद्यानैः सरोभिश्च सवारिजैः। महद्भिश्चैत्यगेहैश्च सा महेंद्रपुरीसमा* ॥ ५५ ॥

यही बात श्री सोमसेनविरचित द्वितीय पद्मपुराणमें तीसरे अधिकारमें लिखी है।

तत्र भीमसुभीमाख्यौ स्थितौ तौ राक्षसाधिपौ। संतुष्टौ मेघवाहाख्यं वदतौ धर्मवत्सलौ ॥ ६९ ॥
द्वीपोस्ति लवणाम्भोधौ राक्षसं नामतो वरं। योजनानां शतसप्त विस्तीर्णः स मनोहरः ॥ ७० ॥
तन्मध्ये त्रिकुटाभिख्यः पर्वतोस्ति निधानभृत्। योजनानां नवोत्तुंगः पंचाशद्विस्तमो मतः ॥ ७१ ॥
तत्र लंकापुरी भाति त्रिंशद्योजनविस्तरात्। त्वां दास्यामः पुरीं तां त्वं स्थित्वा तत्र सुखी भव ॥ ७२ ॥

इसप्रकार कथन किया है। इससे लंका लवणोदधिमें ही जाननी चाहिये। उपसमुद्रमें नहीं है।

११ चर्चा ग्यारहवीं।

प्रश्न—जो गृहस्थ न तो अरहन्त देवकी पूजा करता है और न पात्रदान देता है वह किस योग्य है ?

---

* इन श्लोकोंका अभिप्राय यही है कि लवणसमुद्रमें राक्षस द्वीप है उसमें त्रिकूटाचल पर्वत हैं उनपर मनोहर लंका बसी है।

१ इन श्लोकोंका अर्थ वही है जो ऊपर लिखा है।

समाधान—जो गृहस्थ न तो भगवान अरहन्तदेवके चरणकमलोंकी पूजा करता है और न मुनिराजोंकेलिये भक्तिपूर्वक दान देता है उस गृहस्थपदकेलिये किसी गहरे जलमें प्रवेश कर बहुत शीघ्र जलांजलि दे देना चाहिये। वह गृहस्थ इसी योग्य है। यही बात श्रीपद्मनंदि स्वामीने पद्मनंदिपंचविंशतिकामें दूसरे अधिकारमें कही है।

पूजा न चेज्जिनपतेः पदपंकजेषु, दानं न संयतजनाय च भक्तिपूर्वम्।
नो दीयते किमु ततः सदनस्थिताय, शीघ्रं जलांजलिरगाधजलं प्रविश्य ॥ २४ ॥

१२। चर्चा बारहवीं।

प्रश्न—श्रावकोंको सदा प्रातःकाल उठकर सबसे पहले क्या करना चाहिये?

समाधान—श्रावकोंको प्रातःकाल उठकर शौच आदि क्रियाओंसे निवृत्त होकर प्रथम ही अरहंत देव और निर्ग्रंथ गुरुका दर्शन करना चाहिये। फिर भक्तिपूर्वक बंदना वा उपासना कर धर्मशास्त्रोंका स्वाध्याय करना चाहिये। पीछे गृहस्थसंबंधी अन्य कार्य करना चाहिये। भावार्थ—जिनदर्शनादि कार्य कर फिर अन्य कार्य करना यह नियमपरंपरासे इसीप्रकार चला आया है। यही बात श्री पद्मनंदिपंचविंशतिकाके छठे अधिकारमें लिखी है।

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं देवतागुरुदर्शनम्। भक्त्या तद्वंदना कार्या धर्मश्रुतिरुपासकैः ॥ १६ ॥
पश्चादन्यानि कार्याणि कर्तव्यानि यतो बुधैः। धर्मार्थकाममोक्षाणामादौ धर्मः प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥

धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंमें सबसे पहले धर्म ही कहा है इसलिये सबसे पहले देव गुरुका दर्शन कर पीछे अन्य कार्य करना चाहिये।

---

१ इसका अर्थ भी ऊपर लिखे अनुसार है।

२ धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंमेंसे गृहस्थकेलिये मुख्यता कर पहले तीन पुरुषार्थ कहे हैं। मोक्ष पुरुषार्थका साधन गृहस्थकेलिये परंपरासे है और मुनिकेलिये साक्षात् है। गृहस्थकेलिये धर्म अर्थ काम पुरुषार्थमें भी धर्म पुरुषार्थ मुख्य है क्योंकि धर्मसे अर्थकी सिद्धि होती है इसीलिये गृहस्थकेलिये सबसे पहले देवपूजा करनेका विधान बताया है। तथा इसका भी कारण यह है कि गृहस्थधर्ममें देवपूजा ही सबसे मुख्य है। परिणामोंकी शुद्धि और मन लगनेकेलिये देवपूजा मुख्य कारण है।

१३। चर्चा तेरहवीं।

प्रश्न—ऊपर यह बताया जा चुका है कि प्रतिदिन सबसे पहले देवदर्शन करना चाहिये। देवदर्शन करनेके पहले अन्य कार्य नहीं करना चाहिये। परन्तु देवदर्शन किये विना ही जो भोजनादि कर लेते हैं उनकेलिये शास्त्रोंमें क्या कहा है तथा उन्हें कैसा समझना चाहिये।

समाधान—जिस गांव वा शहरमें भगवान अरहंतदेवका जिनालय हो और वहांपर रहनेवाला श्रावक श्रावक होकर भी यदि विना भगवानके दर्शन किये भोजन करे तो उसको जैनशास्त्रोंमें मिथ्यादृष्टी बतलाया है। उसको जैनधर्मका श्रद्धान करनेवाला कभी नहीं कहना चाहिये। जैनशास्त्रोंमें उसको धर्मभ्रष्ट बतलाया है। लिखा भी है—

चेयाले जिहठाणे सावय अदिट्ठ भोयणं कुणई। सो सुठु मिथ्याइट्ठो भट्ठो जिनसासणे समये ॥ १३ ॥

१४। चर्चा चौदहवीं।

प्रश्न—केवली भगवानके नौ परम केवललब्धियां होती हैं उनमें दर्शनावरण कर्मके क्षयसे अनंतदर्शन प्राप्त होता है, ज्ञानावरणके क्षयसे अनंत ज्ञान प्रगट होता है, दानांतरायके क्षयसे क्षायिक दान होता है, लाभांतरायके क्षयसे क्षायिक लाभ, भोगांतरायके क्षयसे क्षायिक भोग, उपभोगांतरायके क्षयसे क्षायिक उपभोग, वीर्यांतरायके क्षयसे क्षायिक वीर्य प्रगट होता है, दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयसे क्षायिकसम्यक्त्व, चारित्र मोहनीयकर्मके क्षयसे क्षायिक चारित्र प्राप्त होता है। इसप्रकार केवली भगवानके नव क्षायिक परम केवललब्धियां प्रगट होती हैं। अब इनमें प्रश्न यह है कि केवली भगवान दान क्या करैं और भोगोपभोगके सेवनमें किसका सेवन करैं क्योंकि भोगोपभोगका त्याग तो इनके पहलेसे ही हो जाता है तथा केवली भगवानके कवलाहार आदिकी संभावना ही नहीं है अतएव उनके लब्धियोंका कार्य क्या होता है?

---

१ धर्मकी नीम शास्त्रोंके आधारपर है। जब शास्त्रोंमें सबसे पहले देवदर्शन करना बतलाया है और फिर भी जो देवदर्शन नहीं करता वा उसकी आवश्यकता नहीं समझता तो समझना चाहिये कि वह जैनशास्त्रोंको मानता ही नहीं। यदि वह जैनशास्त्रोंको मानता और उनका श्रद्धान करता तो वह देवदर्शन अवश्य करता। परंतु वह देवदर्शन नहीं करता और न उसकी आवश्यकता समझता है तो यह निश्चित है कि उसके उन शास्त्रोंका श्रद्धान नहीं है तथा श्रद्धान न होनेसे ही वह मिथ्यादृष्टी और धर्मभृष्ट बतलाया गया है।

समाधान—केवलीभगवान जो धर्मोपदेश देते हैं वह उनका क्षायिकदान है। शरीरकी स्थितिके लिये जो परम शुभ कार्माण वर्गणायें प्रतिसमय आती रहती हैं वह उनका क्षायिक लाभ है। देवगण जो सदा पुष्पवृष्टि करते रहते हैं वह उनका भोग है तथा समवशरणकी बारह सभा छत्र सिंहासन आदि क्षायिक उपभोग है ऐसा सुदर्शनचरित्रके आठवें परिच्छेदमें लिखा है—

प्रादुरासीज्जगत्पूज्यं लोकालोकप्रदीपकम्। परमं केवलज्ञानं मुक्तिश्रीमुखदर्पणम् ॥ ४३ ॥
प्रादुरासंस्तथास्येमा नवकेवललब्धयः। विश्वभव्यहिताः सर्वाः साधारणबुधार्चिताः ॥ ४४ ॥
अनंतदर्शनं ज्ञानं दानं धर्मोपदेशकृत्। लाभः पुण्याणुलाभोऽथ भोगः पुष्पादिवृष्टिजः ॥ ४५ ॥
उपभोगः सभास्थानसिंहासनादिको महान्। अन्तातीतमहद्वीर्यं सम्यक्त्वं क्षायिकं परम् ॥ ४६ ॥
यथाख्याताह्वयं सारं चारित्रं शशिनिर्मलम्। नवेमाः परमास्तस्य जाताः केवललब्धयः ॥ ४७ ॥[1]

१५। चर्चा पंद्रहवीं।

प्रश्न—सामान्यकेवलीकेलिये नमस्कार किसप्रकार करना चाहिये ?

समाधान—सामान्यकेवलीकेलिये इन्द्र पंचांग नमस्कार करते हैं। यही बात सुदर्शनश्रेष्ठिचारित्रके आठवें परिच्छेदमें लिखी है—

त्रिः[2]परीत्य तदा स्थानं प्रविश्य देवनायकाः। भूमौ संस्थाप्य पञ्चांगान् प्रणेमुः शिरसा जिनम् ॥ ५८ ॥

१६। चर्चा सोलवीं।

प्रश्न—सामान्यकेवलीके गंधकुटीमें गणधर होते हैं या नहीं ?

समाधान—सामान्यकेवलीके भी गणधर होते हैं। यह बात सुदर्शनचरित्रके आठवें परिच्छेदमें लिखी है—

दि[3]व्येन ध्वनिना देवस्तदा सन्मार्गवृत्तये। धर्मतत्त्वादिविश्वार्थानुवाचेति गणान्प्रति ॥ ७७ ॥

---

१ इनका अर्थ इनके ऊपर लिखे हुए समाधानके अनुसार है। २ सेठ सुदर्शनको जब केवलज्ञान हुआ और गंधकुटी रची गई तब इन्द्रोंने उस स्थानकी तीन प्रदक्षिणा देकर अपने शरीरके पांचों अंग भूमिसे लगाकर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। ३ भगवान सुदर्शन केवलीने मोक्ष-मार्गकी प्रवृत्ति बढ़ानेकेलिये गणधरोंके प्रति दिव्यध्वनिके द्वारा धर्मका तथा समस्त तत्वोंका स्वरूप बतलाया।

बिना गणधरोंके दिव्यध्वनि नहीं खिरती है, इसलिये जिस प्रकार श्रीमहावीर स्वामीके गौतम गणधर थे उसीप्रकार सामान्य केवलीके भी गणधर होते हैं।

१७। चर्चा सत्रहवीं।

प्रश्न—सामान्यकेवली भगवानकी गंधकुटीमें मानस्तंभ होता है या नहीं? तीर्थंकर केवली भगवानके समवसरणमें तो होता ही है।

समाधान—सामान्यकेवली भगवानकी गंधकुटीमें भी मानस्तंभ होता है। यह बात सुदर्शनचरित्रमें लिखी है—

आदौ शक्रोपदेशेन हेमरत्नादिराशिभिः। रंदे गंधकुटीरूपं कैवल्यास्थानमंडनम् ॥ ५२ ॥
ध्वजसिंहासनच्छत्रचामरादिविभूषितम्। शास्त्रोक्तवर्णनोपेतं मानस्तंभाद्यलंकृतम् ॥ ५३ ॥
जगज्जन्तूपकाराय केवलज्ञानभागिनः। परं निर्मापयामास यक्षराट् धर्मसिद्धये ॥ ५४ ॥

१८। चर्चा अठारहवीं।

प्रश्न—तीर्थंकर केवली भगवानके केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद गणधरोंकी, केवलियोंकी, अवधिज्ञानियोंकी, विक्रिया ऋद्धिको धारण करनेवालोंकी गणना जो शास्त्रोंमें बतलाई है वह समवशरणमें रहनेवालोंकी है अथवा उनके समयकी है अर्थात् अनंतर होनेवाले तीर्थंकरके उत्पन्न होनेतककी है।

समाधान—यह गणना समवसरणमें रहनेवालोंकी है। श्री ऋषभदेवके समवसरणमें जितने मुनि आदि वर्तमान थे उन्हींकी संख्या बतलाई है। वे मुनिराज आदि सब विहार समयमें भी साथ ही रहते हैं। सोही श्रीरविषेणाचार्यविरचित पद्मपुराणमें चौथे पर्वमें लिखी है—

---

१ श्री ऋषभदेवकी दिव्यध्वनि सबसे पहले बिना गणधरोंके खिरी है परंतु यह हुंडावसर्पिणीका दोष समझना चाहिये।

२ सेठ सुदर्शनको केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर कुबेरने इन्द्रकी आज्ञासे सुवर्ण रत्न आदिके द्वारा गंधकुटीरूप केवलीभगवानका सभास्थान बनाया जिसमें ध्वजा सिंहासन छत्र चमर आदि सब शास्त्रोक्त रचना थी तथा वह मानस्तंभसे सुशोभित था, इसप्रकार कुबेरने संसारके प्राणियोंका उपकार करनेकेलिये केवली भगवानका सभास्थान बनाया।

तस्यासीद्गणपालानामशीतिश्चतुरुत्तरा। सहस्राणि च तावन्ति साधूनां सुतपोभृताम् ॥ ५८ ॥
अत्यन्तशुद्धचित्तास्ते रविचन्द्रसमप्रभाः। एभिः परिवृताः सर्वैर्जिना विहरते महीम् ॥ ५९ ॥

इससे सिद्ध होता है कि गणधर आदि सब मुनियोंकी गणना समवसरणमें रहनेवालोंकी ही समझना चाहिये। समवसरणकी स्थितिसे आगे पीछेके मुनि इस संख्यासे बाहर हैं, वे इस संख्यामें शामिल नहीं हैं। जिसप्रकार श्रीऋषभदेवके समवसरणमें रहनेवालोंकी संख्या बतलाई उसीप्रकार श्रीअजितनाथसे लेकर श्रीमहावीर पर्यंत समस्त तीर्थंकरोंकी समझ लेना चाहिये।

१९। चर्चा उन्नीसवीं।

प्रश्न—इस पंचमकालके इस वर्तमान समयमें होनेवाले मुनिराज किस क्षेत्रमें ठहरें? बन, उपबन, पर्वत, गुफा, नदीके किनारे, स्मशान आदिमें ही निवास करें अथवा किसी और जगह भी अपनी स्थिति रक्खें।

समाधान—इस पंचमकालमें वर्तमान समयमें होनेवाले मुनियोंकी स्थिति श्रीमंदिरजीमें बतलाई है। यह बात श्रीपद्मनंदी पंचविंशतिकाके छठे अधिकारमें लिखी है।

संप्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहे मुनिस्थितिः[1]। धर्मस्य दानमित्येषां श्रावका मूलकारणम् ॥ ६० ॥

धर्मका दान देनेके लिये एक श्रावक ही मूल कारण है।

भावार्थ—इस वर्तमान समयमें श्रावक ही धर्म सुननेके पात्र हैं इसलिये मुनिराजोंकी स्थिति जिनालयमें होनेसे ही श्रावकको लाभ पहुंच सकता है। श्रीइन्द्रनंदिने नीतिसारमें भी लिखा है।

काले[2] कलौ वने वासो वर्जनीयो मुनीश्वरैः। स्थीयेत च जिनागारग्रामादिषु विशेषतः ॥ १९ ॥

२०। चर्चा वीसवीं।

प्रश्न—मुनिराज आहारके समय दोनो हाथोंकी अंगुलियोंमें आंट देकर दोनों हाथ मिला लेते हैं तब अन्न जल आदिका

१ कलिकालमें मुनियोंकी स्थिति जिनालयमें ही हैं। २—कलिकालमें मुनियोंको वनमें निवास नहीं करना चाहिये किन्तु जिनालयमें वा गांवमें रहना चाहिये। आजकल बहुतसे लोग मुनियोंके जिनालयमें निवास करनेपर नुकता चीनी करते हैं परंतु यह उनकी भूल है जब शास्त्रोंमें स्पष्ट आज्ञा है तब इसमें शंका करना व्यर्थ है।

ग्रहण करते हैं। यदि वह दोनों मिलेहुए हाथ छूट जांय तो वे अन्तराय मानकर आहारका त्याग कर देते हैं सो इसका क्या कारण है?

समाधान-मुनिराज सदा यम नियम पालन करते रहते हैं अतएव आहारके समय जो अन्न जल ग्रहण करते हैं वह भी नियम पूर्वक ही ग्रहण करते हैं।

भावार्थ-उस समय भी उनके यह नियम रहता है कि जबतक दोनों हाथोंका संयोग है तबतक आहार ग्रहण करेंगे हाथोंके छूट जानेपर आहारका त्याग कर देंगे। पद्मनंदिपंचविंशतिकाके पहले अधिकारमें लिखा भी है।

यावन्मे स्थितिभोजनेस्ति दृढ़ता पाण्योश्च संयोजने, भुंजे तावदहं रहाम्यथ विधावेषा प्रतिज्ञा यतेः।
कायेप्यस्पृहचेतसोऽन्त्यविधिषु प्रोल्लासिनः सन्मते-र्न ह्येतेन दिवि स्थितिर्न नरके सम्पद्यते तद्विना ॥४३॥

इससे सिद्ध होता है कि मुनिराज जो आहार ग्रहण करते हैं वह भी प्रतिज्ञा पूर्वक ही ग्रहण करते हैं। जैसे कोई गृहस्थ अपने हाथकी उंगलीमें किसी धातुकी अंगूठी पहिनकर यह नियम कर ले कि यह अंगूठी जबतक इस उंगलीमें है तबतक मेरे अन्न जल-का त्याग है। यदि उसे भोजन करनेकी आवश्यकता होती है तब उसे वह उस उंगलीमेंसे निकाल कर दूसरी उंगलीमें पहन लेता है या उतार कर रख देता है और फिर भोजन कर लेता है। उसीप्रकार मुनियोंके भी अहार करते समय दोनों हाथोंके संयोग होनेका नियम समझ लेना चाहिये।

२१। चर्चा इकईसवीं।

प्रश्न—जैनमतमें जप करनेकी मालाके मणियोंकी गिनती एक सौ आठ है सो इसमें क्या कारण है?

समाधान-संसारी जीव हमेशा प्रमाद और कषायके आधीन रहते हैं तथा त्रस स्थावरोंके भेदसे बारह प्रकारके जीवोंकी मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाके द्वारा एक सौ आठ भेदरूप पांचों पापोंका आस्रव और बंध करते रहते हैं उन सबकी निवृत्तिकेलिये एक सौ आठ मणियोंकी माला बनाई गई है। आस्रव बंधके वे एक सौ आठ भेद इसप्रकार समझना चाहिये।

१ जबतक मुझमें खडे होनेकी शक्ति है तथा दोनों हाथ मिलानेकी शक्ति है तबतक ही मैं भोजन करूंगा अन्यथा सर्वथा त्याग कर दूंगा इस-प्रकार शरीरसे निस्पृह रहनेवाले मुनियोंके प्रतिज्ञा होती है।

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद, दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय असैनी पचेंद्रिय, सैनी पंचेंद्रिय इसप्रकार जीवोंके बारह भेद होते हैं। इन बारह प्रकारके जीवोंके मनसे, वचनसे, तथा कायसे हिंसादिक पाप होते हैं जो छत्तीस प्रकारके हो जाते हैं। तथा ये छतीसों प्रकारके पाप स्वयं करने, दूसरोंसे कराने और करते हुओंको भला माननेके भेदोंसे एक सौ आठप्रकारके हो जाते हैं। १२×३×३ = १०८। ये एक सौ आठ पाप सदा लगते रहते हैं उनका नाश करनेकेलिये एक सौ आठ मणियोंकी माला है। एक एक मणिपर एक एक णमोकार मंत्रका जाप कर एक एक पापका नाश करना चाहिये और इसप्रकार सब पापोंका नाश कर डालना चाहिये यही इसका अभिप्राय है। सो ही लिखा है।

पृथ्वीपानीयतेजःपवनसुतरवः स्थावराः पंचकायाः,
नित्यानित्यौ निगोदौ युगलशिखिचतुःसञ्ज्ञसंज्ञित्रसाः स्युः।
एते प्रोक्ता जिनैर्द्वादश परिगुणिता वाङ्मनःकायभेदैः-
यैश्चान्यैः कारिताद्यैस्त्रिभिरपि गुणिताश्चाष्टशून्यैकसंख्या॥

इसप्रकार मालामें एक सौ आठ मणियोंके होनेका कारण है। इसके सिवाय इसका एक कारण और भी है और वह इसप्रकार है—कोई भी पापरूप कार्य किया जाता है उसमें संरंभ समारंभ और आरंभ ऐसे तीन भेद पड़ते हैं। किसी भी हिंसा आदि पापकार्यके संकल्प करनेको उसके प्रयत्नके आवेश करनेको संरंभ कहते हैं। उसी पापकार्यके कारणोंका संग्रह करना, साधनकी सब सामग्री इकट्ठी करना समारंभ है और उस कार्यको प्रारंभ कर देना आरंभ है। इनका उदाहरण इसप्रकार है। किसीने एक मकान बनानेका विचार किया, उसमें संकल्प किया कि इस तरहका मकान बनवाऊंगा उसमें इसप्रकारके घर कमरे आदि बनवाऊंगा इसप्रकारके संकल्पको संरंभ कहते हैं। संरंभमें किसी कामका बाह्य आरंभ नहीं होता केवल विचार या उस कामको करनेका

१ इन भेदोंको यों समझ लेना चाहिये। क्रोधकृतकायसंरंभ, मानकृतकायसंरंभ, मायाकृतकायसंरंभ, लोभकृतकायसंरंभ, क्रोधकारितकायसंरंभ, मानकारितकायसंरंभ, मायाकारितकायसंरंभ, लोभकारितकायसंरंभ, क्रोधानुमतकायसंरंभ, मानानुमतकायसंरंभ, मायानुमतकायसंरंभ, लोभानुमतकायसंरंभ। इसप्रकार बारह प्रकारका काय संरंभ, बारह प्रकारका वचनसंरंभ, और बारह प्रकारका मनसंरंभ, होता है तथा इसप्रकार छत्तीस प्रकारका संरंभ, छत्तीस प्रकारका समारंभ, और छत्तीस प्रकारका आरंभ होता है। ऐसे १०८ भेद हो जाते हैं।

अथवा मालाके मेरुदंडको उल्लघन कर जप करता है अथवा जो उंगलीके नखके अग्रभागसे जप करता है वह जप सब निष्फल होता है। लिखा भी है—

व्यग्रचित्तेन यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलंघने। नखाग्रेण च यज्जप्तं तज्जप्तं निष्फलं भवेत् ॥

इस प्रकरणमें मालाके भेद इसप्रकार समझने चाहिये। क्रियाकोशमें लिखा है।

प्रथम फटिकमणि मोतीमाल। सोना रूपा सुरंग प्रवाल ॥
जीवा पोता रेशम जान। कमलबीज फुनि सूत बखान ॥
यह नव भांति जापके भेद। भजिये जिनवर तजि मनखेद* ॥

दूसरी जगह लिखा है।

सूत्रस्य जाप्यमालायाः सदा जापः सुखावहः। दग्धमृदस्थिकाष्ठानामक्षमालाऽफलप्रदा ॥ १ ॥
सुवर्णरौप्यविद्रुममौक्तिका जपमालिकाः। उपवासमहस्राणां फलं यच्छन्ति जापतः ॥ २ ॥

अर्थात् सूतकी माला सदा सुख देनेवाली है। अग्निके द्वारा पकीहुई मिट्टी, हड्डी, लकड़ी और रुद्राक्ष आदिकी मालाएं कुछ देनेवाली नहीं हैं, ये मालाएं अयोग्य हैं, ग्रहण करने योग्य नहीं हैं अर्थात् इनसे जप कभी नहीं करना चाहिये तथा सोना, चांदी, मूंगा, और मोतीकी माला हजारों उपवासोंका फल देनेवाली हैं। इनकी मालाओंके द्वारा जप करनेसे हजारों उपवासोंका फल मिलता है। इसप्रकार मालाओंका फल बतलाया।

२३। चर्चा तेईसवीं।

प्रश्न—जप करते समय णमोकार मंत्रका उच्चारण किसप्रकार करना चाहिये?

समाधान—एक णमोकार मंत्रका उच्चारण तीन श्वासोच्छ्वासमें करना चाहिये। उसकी विधि इसप्रकार है—श्वासको खींचते समय 'णमो अरहंताणं' यह पद पढ़ना चाहिये। फिर श्वासको छोड़ते समय 'णमो सिद्धाणं' यह पद पढ़ना चाहिये। फिर श्वासको

* स्फटिक, मोती, सोना, चांदी, अच्छे रंगका मूगा, पोत, रेशम, कमल वीज, सूत,

खींचते समय 'णमो आइरिआणं' पढ़ना चाहिये। फिर श्वास छोड़ते समय 'णमो उवज्झायाणं' पढ़ना चाहिय। श्वासको खींचते समय 'णमो लोए' पढ़ना चाहिये। फिर छोड़ते समय 'सव्व साहूणं' पढ़ना चाहिये। इसप्रकार तीन श्वासोच्छ्वासमें एक वार णमोकार मंत्रका जाप हुआ। जप करते समय इसीप्रकार शुद्ध उच्चारण करना चाहिये। धर्मरसिकमें लिखा भी है।

नमस्कारपदान् पंच जपेद्यथावकाशकम् । अष्टोत्तरशतं चार्द्धमष्टाविंशतिकं तथा ॥ २१ ॥
दिद्व्येकपदविश्रामा उश्वासा सप्तविंशतिः । सर्वं पापं क्षयं याति जप्ते पंचनमस्कृते ॥ २२ ॥

(अथात् समय मिलने पर णमोकार मंत्रको एकसौ आठ वार जपै अथवा चौअन वार जप करै अथवा अट्ठाईस वार जप करै एक एक श्वासमें श्वास और उच्छास दोनों में दो दो पद विश्राम देकर जपै। इसप्रकार सत्ताईस श्वासोच्छ्वासद्वारा नौ वार नमस्कार मंत्रका जाप करै। इसप्रकार जप करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं) यहां पर जो सत्ताईस श्वास बतलाये हैं सो एक कायोत्सर्गमें नौ वार नमस्कार मंत्र जपनेकी अपेक्षासे बतलाये हैं। इसप्रकार नमस्कार मंत्रको वाचिक, उपांशु और मानस इन तीन प्रकारसे अपनी शक्तिके अनुसार पढ़ना चाहिये जपना चाहिये।

२४। चर्चा चौबीसवीं।

प्रश्न—नमस्कार मंत्र पढ़नेके जो वाचिक उपांशु और मानस ये तीन भेद बतलाये सो इनका स्वरूप क्या है?

समाधान—स्वरके तीन भेद हैं उदात्त अनुदात्त और स्वरित। जिसमें इन तीनों प्रकारके स्वरोंका उच्चारण स्पष्ट हो ऐसे मंत्रोंके अक्षर पद और शब्दोंको स्पष्ट और शुद्ध रीतिसे उच्चारण करना और इसप्रकार उच्चारण करना जिसको सब सुन लें उसको वाचिक कहते हैं तथा जिसमें उदात्त अनुदात्त स्वरितके भेदसे अक्षर, पद, शब्दोंका उच्चारण शुद्ध तथा स्पष्ट हो परंतु उस उच्चारणको कोई दूसरा सुन न सकै उसको उपांशु कहते हैं। वाचिक और उपांशुमें सुनने न सुननेका ही अंतर है। वाचिक जपको सब सुन सकते हैं और उपांशु जपको पास बैठनेवाला भी नहीं सुन सकता तथा अपने मनको एकाग्र कर अपने ही मनके द्वारा चिंतवन करना और वह चिंतवन इसप्रकार करना जिसमें मंत्रोंकी जो अक्षरमाला है मंत्रोंमें जो अक्षरोंका समुदाय है उसके अक्षर पद और शब्द सब शुद्ध तथा स्पष्ट चिंतवन करनेमें आ जायें ऐसे जपको मानसिक जप कहते हैं।

इनका फल इसप्रकार हैं। मानसिक जप समस्त कार्योंकी सिद्धिकेलिये किया जाता है, उपांशु जप पुत्रप्राप्तिकेलिये किया

जाता है और वाचिक धनलाभकेलिये किया जाता है तथा वाचिकका फल एक गुना है, उपांशुका फल सौ गुना है, और मानसिक जपका फल हजार गुना है। ऐसा श्रीजिनासेनाचार्यने कहा है।

वाचिकाख्य उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः। त्रयाणां जपमालानां स्याच्छ्रेष्ठो ह्युत्तरोत्तरः ॥ २३ ॥
यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः। मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा जपो रोयः स वाचिकः ॥ २४ ॥
शनैरुच्चारयेन्मंत्रं मन्दमोष्ठौ प्रचालयेत्। अपरैरश्रुतः किंचित्स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥ २५ ॥
विधाय चाक्षरश्रेण्यावर्णासर्ग पदात्पदम्। शब्दार्थचिंतनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ॥ २६ ॥
मानसः सिद्धिकाम्यानां पुत्रकाम उपांशुकः। वाचिको धनलाभाय प्रशस्तो जप ईरितः ॥ २७ ॥
वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशु शत उच्यते। सहस्रं मानसं प्रोक्तं जिनसेनादिसूरिभिः ॥ २८ ॥

आचार्योंने णमोकार मंत्र आदि मंत्रोंके जपनेकी विधि इसप्रकार बतलाई है।

२५। चर्चा पच्चीसवीं।

प्रश्न—ऊपरके जो जपके भेद बतलाये हैं वे किस आसनपर बैठकर करना चाहिये।

समाधान—सफेद वस्त्रके आसनपर, तथा हल्दीके रंगे हुये वस्त्रके आसनपर व सबसे उत्तम लाल वस्त्रके आसनपर वा डाभके आसनपर बैठकर जप करना चाहिये। णमोकार मंत्रका वा अन्य मंत्रोंका जप करनेकेलिये अथवा भगवान अरहन्तदेवकी पूजा करनेकेलिये ऊपर लिखे चार प्रकारके आसनोंमेंसे किसी एक आसनपर बैठकर जप वा पूज करनेका विधान आचार्योंने बतलाया है।

इनके सिवाय और भी अनेक प्रकारके आसन हैं परंतु उनपर बैठकर कभी भी जप वा पूजा नहीं करनी चाहिये जो मनुष्य इन ऊपर लिखे चार आसनोंके सिवाय अन्य आसनोंपर बैठ कर पूजा वा जप करता है उसका फल उसकेलिये बहुत बुरा होता है जैसे—

१ उपांशु मंत्रमें धीरे धीरे ओठ चलते हैं पर सुनाई नहीं पड़ता।

२ मानसिक जपमें मंत्रके जो अक्षर हैं वे एक अक्षरके बाद दूसरा अक्षर। एक पदके बाद दूसरा पद और एक शब्दके बाद दूसरा शब्द मय अर्थके चिंतवन किया जाता है।

जो बांसके आसनपर बैठकर पूजा वा जप करता है उसके दरिद्रता बनी रहती है। जो पाषाणकी शिला आदिपर बैठकर पूजा वा जप करता है उसके रोगकी पीडा बनी रहती है। जो पृथ्वीपर बैठकर पूजा वा जप करता है उसके सदा दुर्भाग्य (भाग्यहीनता वा बदनसीवी) बना रहता है। उसका सौभाग्य कभी नहीं रहता। जो तृण वा घासके आसनपर बैठकर पूजा वा जप करता है उसके यशकी हानि होती है अर्थात् उसकी सदा अपकीर्ति बनी रहती है। जो पत्तोंके बने हुए आसनपर बैठकर जप करते हैं उनका चित्त सदा विभ्रमरूप अथवा डवांडोल रहता है। अर्थात् उनका चित्त इधर उधर फिरता ही रहता है स्थिर नहीं रहता। जो अजिन अर्थात् हिरणके चमडे मृगछाला बाघके चमडे आदि आसनोंपर बैठकर जप करते हैं उनके ज्ञानका नाश हो जाता है। जो कंबल बनात, चकमा आदि ऊनके बने हुए आसनोंपर बैठकर जप वा पूजा करता है उसका पाप सदा बढता ही रहता है। जो नीले रंगके वस्त्रके आसन पर बैठकर पूजा वा जप करता है वह अधिक दुःख भोगता है, हरे वस्त्रके आसनपर बैठकर पूजा वा जप करता है उसका सदा मानभंग होता रहता है। इसप्रकार दोषवाले आसन बतलाये। इन दोषवाले आसनोंको छोड़कर पहले लिखे हुए चार आसन ही ग्रहण करना चाहिये। इन चार आसनोंपर बैठकर पूजा वा जप करनेसे शुभ फल होता है, और वह इसप्रकार होता है। सफेद वस्त्रके आसनपर बैठकर पूजा वा जप करनेसे यशकी वृद्धि होती है। हल्दीके रंगे वस्त्रके आसनपर बैठकर पूजा वा जप करनेसे हर्षकी वृद्धि होती है। लाल वस्त्रका आसन सबसे श्रेष्ठ है तथा डाभका आसन सब कार्योंकी सिद्धि करनेवाला और सबसे उत्तम है। कहनेका अभिप्राय यह है कि सब आसनोंमें डाभका आसन सबसे श्रेष्ठ है सो ही धर्मरसिक नामक ग्रंथमें लिखा है—

वंशासने दरिद्रः स्यात्पाषाणे व्याधिपीडितः। धरण्यां दुःखसंभूतिर्दौर्भाग्यं दारुकासने ॥ १५ ॥
तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः। अजिने ज्ञाननाशः स्यात्कंबले पापवर्द्धनम् ॥ १६ ॥
नीले वस्त्रे परं दुःखं हरिते मानभंगता। श्वेतवस्त्रे यशोवृद्धिः हरिद्रे हर्षवर्द्धनम् ॥ १७ ॥
रक्तवस्त्रं परं श्रेष्ठं प्राणायामविधौ ततः। सर्वेषां धर्मसिद्धयर्थं दर्भासनं तु चोत्तमम् ॥ १८ ॥

इसके सिवाय हरिवंशपुराणमें लिखा है कि श्रीकृष्णने समुद्रके किनारे तेला स्थापन कर डाभके आसनपर बैठकर अपने कार्य-

१ आजकल चटाई पाटा आदिपर जो जप करते हैं वे भूलते हैं, आगे लिखे श्लोक देखने चाहिये।

की सिद्धि की। तथा आदिपुराणमें जो गर्भान्वय आदि क्रियाएं लिखी हैं उनमें भी डाभके आसनका ही विशेष वर्णन लिखा है। इससे सिद्ध होता है किडाभका आसन ही सबसे उत्तम है।

२६। चर्चा छब्बीसवीं।

ऊपर लिखे मंत्रोंका जप किस जगह करना चाहिये?

समाधान—अपने घरमें जप करनेका फल एक गुना है, बनमें जप करनेका फल सौगुना है। यदि पवित्र बागमें वा किसी बनमें जप करे तो उसका फल हजार गुना है। यदि जिनमंदिरमें जप करे तो उसका फल करोडगुना है। यदि भगवान जिनेन्द्र-देवके समीप जप करे तो अनंतगुना फल है। यही बात धर्मरसिक नामके ग्रंथमें लिखी है।

गृहे जपफलं प्रोक्तं वने शतगुणं भवेत्। पुण्यारामे तथारण्ये सहस्रगुणितं मतम्॥ ३१॥
पर्वते[1] दशसहस्रं नद्यां लक्षमुदाहृतम्। कोटि देवालये प्राहुरनन्तं जिनसन्निधौ॥ ३२॥

इससे सिद्ध होता है कि घर वन बाग आदि जगहोंसे भगवान जिनराजके निकट जप करनेसे अनंतगुना फल प्राप्त होता है।

जप करनेका विधान इसप्रकार है—मोक्षकी प्राप्तिकेलिये अंगूठेसे जपना चाहिये औपचारिक कार्योंमें तर्जनी उंगुलीसे (अंगूठेकी पासवाली उंगुलीसे) जपना चाहिये। धन और सुखकी प्राप्तिकेलिये मध्यमा वा बीचकी उंगलीसे जप करना चाहिये। शान्तिक कार्योंमें (शान्ति कर्ममें किसी ग्रह वा उपद्रवको शांत करनेके लिये) अनामिका उंगलीसे (बीचकी उंगलीके पासवाली उंगलीसे) जपना चाहिये। तथा आह्वानन करनेकेलिये कनिष्ठा उंगलीसे (सबसे छोटी उंगलीसे) जपना चाहिये। शत्रुको नाश करनेके लिये तर्जनी उंगलीसे, धनसंपदाके लिये मध्यमासे, शांतिके लिये अनामिकासे और सर्वकार्योंकी सिद्धिकेलिये कनिष्ठासे जपना चाहिये। इसप्रकार अलग अलग उंगलियोंसे जप करनेका फल बतलाया है। लिखा भी है—

अंगुष्ठजापो मोक्षाय उपचारे तु तर्जनी। मध्यमा धनसौख्याय शान्त्यर्थं तु अनामिका।
*..कनिष्ठा सर्वसिद्धिदा।

---

१ पर्वतपर जपना दसहजारगुना फल देता है और नदीके किनारे जपना लाखगुना फल देता है।

* 'तर्जनी शत्रुनाशाय' ऐसा पाठ होना चाहिये।

इसप्रकार यह जप करनेकी विधि बतलाई है सो समयानुसार इस विधिके अनुसार जप करना चाहिये।

२७। चर्चा सत्ताइसवीं।

यदि जप करते समय किसी कारणसे विघ्न आजाय तो उसका प्रायश्चित्त किस प्रकार करना चाहिये।

समाधान—स्नान कर धोती डुपट्टा दो वस्त्र पहनकर सदाचारपूर्वक जप करनेके लिये बैठना चाहिये और उस समय इतनी वातोंका त्याग कर देना चाहिये। जो अपने व्रतोंसे भ्रष्ट होगया है उसका तथा शूद्रका देखना, इन दोनोंके साथ वात चीत करना इन दोनोंके वचन सुनना, छींक लेना। यदि जप करते समय ये ऊपर लिखी वातें हो जांय तो उसी समय जप छोड देना चाहिये और फिर आचमन और षडंग-छह अंगोंसे सुशोभित प्राणायाम कर वाकी वचे हुए जपको अच्छी तरह करना चाहिये। यदि आचमन और प्राणायाम न होसके तो भगवान जिनेन्द्र देवके दर्शन कर पीछे जप करना चाहिये। भावार्थ—जपके ऐसे विघ्नोंकी शुद्धि आचमन वा प्राणायामसे होती है। यदि आचमन व प्राणायाम न बन सके तो भगवानके दर्शन कर शुद्धि कर लेनी चाहिये। विघ्न आजाने पर विना शुद्धि किये जप नहीं करना चाहिये। सो ही धर्मरसिक ग्रंथमें लिखा है।

व्रतच्युतान्त्यजातीनां दर्शने भाषणे श्रुते। क्षुतेऽधोवातगमने जृंभने जपमुत्सृजेत् ॥ ३३ ॥
प्राप्तावाचम्यते तेषां प्राणायामं षडंगकम्। कृत्वा सम्यक् जपेच्छेषं यद्वा जिनादिदर्शनम् ॥ ३४॥

इससे सिद्ध होता है कि छींक अधोवात आदि विघ्न आजाने पर प्राणायाम आचमन वा जिनदर्शन कर फिर वाकीका जप पूर्ण करना चाहिये।

जो श्रावक जप करते समय प्रमादी होकर ऊंघते हैं नींदका झोका लेते हैं अथवा वारवार उवासी लेते हैं अथवा और किसी प्रकारका प्रमाद करते हैं उनका जप करना न करनेके समान है।

२८। चर्चा अठाईसवीं।

कर्मोंके आस्रवको रोकनेके लिये और कर्मोंकी निर्जरा करनेकेलिये मुनिराज वाईस परिषहोंको जीतते हैं उन परिषहोंके नाम ये हैं-क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, आसन, शय्या, आक्रोश, वध, याञ्चा, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन। ये वाईस परिषह बतलाई हैं सो इन परिषहोंमेंसे कौन कौन परिषह किस किस कर्मके उदयसे होती है।

समाधान—प्रज्ञा और अज्ञान ये दो परिषह ज्ञानावरण कर्मके उदयसे होती हैं, अदर्शन परिषह दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे होती है। अलाभ परिषह अंतराय कर्मके उदयसे होती है। नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याञ्चा, सत्कार पुरस्कार ये सात परिषह चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे होती हैं। तथा बाकीकी क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग तृणस्पर्श मल ये ग्यारह परिषह वेदनीय कर्मके उदयसे होती हैं। सो ही मोक्षशास्त्र वा तत्त्वार्थसूत्रमें लिखा है—

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने। दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ। चारित्रमोहे नाग्न्यारति स्त्रीनिषद्याक्रोश-याञ्चासत्कारपुरस्काराः। वेदनीये शेषाः॥ अध्याय ९ सूत्र संख्या १६।

यही बात मूलाचारप्रदीपककी बारहवीं संधिमें लिखी है।

ज्ञानावरणपाकेन प्रज्ञाज्ञानपरीषहौ। दर्शनाभिधमोहोदयेनादर्शनसंज्ञकः॥ १६२॥
लाभान्तरायपाकेन स्यादलाभपरीषहः। नाग्न्यभिधानिषद्या चाक्रोशो याञ्चापरीषहः॥ १६३॥
स्यात्सत्कारपुरस्कारो मानाह्वयकषायतः। अरत्यारतिनामा वेदोदयात्स्त्रीपरीषहः॥ १६४॥
वेदनीयोदयेनात्र क्षुत्पिपासापरीषहाः। शीतोष्णाख्यौ तथा दंशमशको हि परीषहः॥ १६५॥
शय्या चर्या बधो रोगः तृणस्पर्शो मलाह्वयः। एकादश इमे पुंसां प्रजायंते परीषहाः॥ १६६॥

इस प्रकार और भी अनेक शास्त्रोंमें लिखा है।

२९। चर्चा उन्तीसवीं।

ऊपर जो बाईस परिषह बतलाई हैं वे मुनिराजके एक समयमें सब उदयमें आती हैं या कुछ कम भी उदयमें आती हैं।

समाधान—मुनिराजके एक समयमें इन बाईस परिषहोंमेंसे उनईस परिषह उदयमें आसकती हैं। तीन परिषह उदयमें न आनेका कारण यह है कि शीत उष्ण इन परिषहोंमेंसे किसी एकका ही उदय रहता है। दोनोंका उदय एक साथ नहीं हो सकता।

१ नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश, यांचा सत्कार पुरस्कार ये मान कषायके उदयसे होती हैं। अरति परिषह अरति कषायके उदयसे होती है और स्त्री परिषह वेद कर्मके उदयसे होती है। इस प्रकार सात परिषह चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे होती हैं।

जहां उष्णता है वहां शीत परिषह नहीं होती है और जहां शीत है वहां उष्ण परिषहका अभाव रहता है। इस प्रकार इन दोनो परिषहोंमेंसे कोई एक परिषह होती है। तथा चर्या आसन शय्या इन तीनोंमेंसे कोई सी एक परिषह हो सकती है। जब मुनिराज चलते हैं तब आसन और शय्याका अभाव है। जब आसन परिषह है अर्थात् वे विराजमान हैं तब शय्या और चर्याका अभाव है, और जब शय्या है अर्थात् वे सो रहे हैं तब चर्या और आसनका अभाव है इस प्रकार एक मुनिराजके एक समयमें इन तीनों परीषहोंमेंसे कोई एक परिषह हो सकती है। इसप्रकार एक समयमें एक मुनिराजके उनईस परिषह ही हो सकती हैं सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है–

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः।

यही बात मूलाचार प्रदीपकमें लिखी है—

एकस्मिन् समये ह्येकजीवस्य युगपद्भुवि। परीषहाः प्रजायन्तेंऽगिनां चैकोनविंशतिः॥ १६७॥
मध्ये शीतोष्णयोर्नूनमेक एव परीषहः। शय्याचर्यानिषद्यानां तथैकः स्यान्नचान्यथा॥ १६८॥

इस प्रकार एक समयमें एक मुनिराजके अधिकसे अधिक उनईस परिषह ही उदयमें आती हैं।

३०। चर्चा तीसवीं।

ये ऊपर लिखी परिषहें कौन कौनसे गुणस्थानमें होती हैं?

समाधान—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, असंयत, देशव्रत, प्रमत्त, अप्रमत्त इन सातों गुणस्थानोंमें पहले कही हुई बाईसों परिषहोंका उदय होता है। अपूर्वकरण नामके आठवें गुणस्थानमें अदर्शन परिषहको छोडकर बाकी इकईस परिषहोंका उदय है। नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें अदर्शन और अरति परिषहको छोडकर बाकी बीस परिषहोंका उदय है। उसी अनिवृत्तिकरण नौवें गुणस्थानमें जब शुक्लध्यानके द्वारा वेद कर्मका नाश होजाता है तब स्त्रीपरिषह भी नष्ट हो जाती है उस समय स्त्री परिषहके विना बाकी उनईस परिषहोंका उदय रहता है। तदनंतर उसी अनिवृत्तिकरण नामके नौवें गुणस्थानमें जब मान कषायका नाश होजाता है वा उपशम होजाता है तब नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश, याञ्चा सत्कारपुरस्कार इन पांच परिषहोंका अभाव हो जाता है इसलिये उससमयसे लेकर बाकीके नौवें गुणस्थानमें तथा दशवें ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानमें वीतराग छद्मस्थके ऊपर लिखी

नाग्न्य, निषद्या आक्रोश याञ्चा और सत्कारपुरस्कार इन पांच परिषहोंको छोडकर बाकीकी चौदह परिषह हो सकती हैं। इन चारों गुणस्थानोंमें जो ये चौदह परिषह होती हैं वे बहुत ही थोड़ी असाता उत्पन्न कर सकती हैं। तथा घातिया कर्मोंके नाश होनेपर तेरहवें गुणस्थानवर्ती सर्वज्ञ वीतरागके इन चौदह परिषहोंमेंसे प्रज्ञा अज्ञान और अलाभ परिषहको छोडकर बाकीकी ग्यारह परिषहोंका उदय रहता है। ये ग्यारह परिषह वेदनीय कर्मके उदय होनेसे नाममात्रके लिये कही गई हैं परंतु हैं उपचारमात्र क्योंकि घातिया कर्मोंके नाश होनेसे वे अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकतीं अतएव वे किंचित्मात्र भी पीडा नहीं दे सकतीं। वे अत्यंत निर्बल केवल कहने मात्रकी हैं। इसप्रकार अलग अलग गुणस्थानोंमें परिषहोंका उदय बतलाया। सो ही मूलाचार प्रदीपकमें लिखा है।

मिथ्यात्वाद्यप्रमत्तांतगुणस्थानेषु सप्तमु। सर्वे परीषहाः संति ह्यपूर्वकरणे सताम् ॥ १६९ ॥
अदर्शनं विना ह्येकविंशतिः स्युः परिषहाः। विंशतिश्चानिवृत्तौ हि विनारतिपरीषहान् ॥ ७० ॥
शुक्लध्यानेन तत्रैव प्रनष्टे वेदकर्मणि। स्त्र्याख्ये परीषहे नष्टे तस्य रेकोनविंशतिः ॥ १७१ ॥
ततो मानकषायस्य क्षयात्तत्रैव वा शमात्। नाग्न्यनाम निषद्याख्याक्रोशयांचापरिषहाः ॥ १७२ ॥
सत्कारादिपुरस्कारश्चामीभिः पंचभिर्विना। अनिवृत्त्यादिषु क्षीणकषायांतेषु निश्चितम् ॥ १७३ ॥
गुणस्थानचतुष्केषु चतुर्दश परिषहाः। छद्मस्थवीतरागाणां भवन्त्यल्पासुखप्रदाः ॥ १७४ ॥

---

१ वेदनीय कर्म मोहनीय कर्मके उदय होने पर ही अपना काम करता है। मोहनीय कर्मके नाश हो जाने पर वेदनीय कर्म कुछ काम नहीं कर सकता इसीलिये तेरहवें गुणस्थानमें सब परिषहोंका अभाव है। तत्वार्थसूत्रमें जो 'एकादश जिने' सूत्र लिखा है उसका भी यही अर्थ है कि भगवान जिनेन्द्रदेवके बाकीकी ग्यारह परिषह भी नहीं हैं। यह अर्थ इसप्रकार निकलता है 'न दश अदश'। अर्थात् दशके अभावको अदश कहते हैं। 'एकेन सह न दश एकादश' अर्थात् एकके साथ दशका अभाव अर्थात् ग्यारहके अभावको एकादश कहते हैं। जिनेंद्र भगवानके ग्यारह परिषहोंका अभाव है। भगवान जिनेन्द्रदेवके घातिया कर्मोंके नाश होनेसे ग्यारह परिषह तो अपने आप नष्ट हो जाती हैं। वेदनीय कर्मके उदयसे होने वाली ग्यारह परिषहोंका निषेध इस सूत्रने कर दिया। इसप्रकार भगवान अरहंतदेवके समस्त परिषहोंका अभाव सिद्ध हो जाता है।

नष्टे घातिविघौ क्षीणकषाये च परिषहाः । प्रज्ञाज्ञानाह्वयालाभा नश्यंति घातिघातिनः ॥ १७५ ॥
केवलज्ञानिनां वेदनीयाख्यविद्यमानतः । उपचारेण कथ्यंतेऽत्रैकादशपरिषहाः ॥ १७६ ॥
घातिकर्ममलापायात्स्वकार्यकरणेऽक्षमाः । दातुं दुःखमशक्ताश्च विगतांतसुखाश्रयात् ॥

मोक्षशास्त्रमें भी यही बात लिखी है—

सूक्ष्म ाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश । एकादश जिने । वादसांपराये सर्वे । अध्याय ९ सूत्र सं० १०-११-१२

३१ । चर्चा इकत्तीसवीं ।

चारों गातियोंमें रहने वाले जीवोंके किस किस परिषहका उदय है अर्थात् चारों गतियोंमेंसे प्रत्येक गतिमें किस किस परिषहका उदय है ।

समाधान—चारों गतियोंमेंसे नरकमें रहनेवाले नारकी जीवोंके तथा तिर्यंच गतिमें रहने वाले तिर्यंचोंकें समस्त परिषहोंका उदय है और वह भी अत्यन्त तीव्र, अत्यन्त घोर और सबसे अधिक है। तथा देव गतिके सब देवोंके प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन, अलाभ, अरति, नाग्न्य, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याञ्चा, सत्कारपुरस्कार, क्षुधा, तृषा, बध इन चौदह परिषहोंका उदय है, सो भी बहुत थोड़ा है । मनुष्य गतिके जीवोंके लिये गुणस्थानोंके अनुसार पहले लिख ही चुके हैं उसीके अनुसार समझ लेना चाहिये । इसप्रकार चारों गतियोंमें रहनेवाले जीवोंके पृथक् पृथक् परिषहोंका उदय बतलाया है । सो ही मूलाचारप्रदीपकमें लिखा है—

सर्वे तीव्रतराः संति सर्वोत्कृष्टाः परिषहाः । नारकाणां गतौ घोरास्तथा तिर्यग्गतावपि ॥ १७८ ॥
प्रज्ञाज्ञानाभिधादर्शनालाभनाग्न्यसंज्ञकाः । अरतिस्त्रीनिषद्याख्याक्रोशयांचापरीषहाः ॥ १७९ ॥
सत्कारादिपुरस्कारः क्षुत्पिपासाबधोप्यमी । संति देवगतौ स्वल्पाश्चतुर्दशपरिषहाः ॥ १८० ॥

---

१ बारहवें गुणस्थानमें भी मोहनीय कर्मका अभाव होजाता है इसलिये वहां भी उपचार मात्रसे ही परिषहोंका उदय है।

२ स्वर्गोंमें शीत उष्ण दंशमशककी बाधा होती ही नहीं वैक्रियिक शरीर होनेसे रोग तृणस्पर्श मल और शय्याकी बाधा नहीं है तथा विमान बनानेकी शक्ति होनेसे अथवा वैक्रियिक शरीर होनेसे ही चर्याकी भी परिषह नहीं है।

३२ । चर्चा बत्तीसवीं ।

मोक्षमार्ग अनादिकालसे है। संसारराशिके जीव अनादिकालसे संसारका नाश कर मोक्ष प्राप्त करते आ रहे हैं। वर्तमानमें भी विदेहक्षेत्रसे जाते हैं तथा आगे भी अनंतकाल तक जाते रहेंगे परंतु फिर भी सिद्धराशि बढती नहीं और निगोदराशि घटती नहीं। सिद्धराशि और निगोदराशि वैसीकी वैसी ही अनंतानंतरूप बनी रहती है सो यह कहना किसप्रकार सिद्ध हो सकता है। क्योंकि जो पदार्थ जहांसे निकलता है वहां घटना चाहिये और जहां जाता है वहां बढ़ना चाहिये। इस हिसाबसे सिद्धराशि बढनी चाहिये और निगोदराशि घटनी चाहिये ?

समाधान—इस संसारमें निगोदराशि असंख्यात लोक प्रमाण है और एक एक निगोदराशिमें अनंतानंत निगोदिया जीव निवास करते है। उन अनंतानंत जीवोंमेंसे यदि किसी जीवके स्थावर नाम कर्मका उपशमादिक हो जाय तो वह जीव वहांसे निकलकर दो इंद्रिय आदि त्रस पर्यायमें आकर उत्पन्न होता है। उस निगोदराशिमेंसे जितने जीव निकलकर त्रस पर्याय धारण कर संसारकी व्यवहार राशिमें आते हैं उतने ही जीव व्यवहार राशिसे निकलकर समस्त कर्मोका नाशकर मोक्ष चले जाते हैं। इसप्रकार व्यवहार राशि उतनीकी उतनी ही बनी रहती है। इसप्रकार जैनशास्त्रोंमें भगवान जिनेन्द्र देवने कहा है सो सर्वथा निःसंदेह है। इसको उदाहरण

१ इस लोकाकाशमें स्कंधोंकी सख्या असंख्यात लोकप्रमाण है, प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवोंके शरीरोंको स्कंध कहते हैं। लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उनको असंख्यातसे गुणा कर देने पर जो लब्धि आवे उतनी संख्या उन स्कंधोंकी है। तथा एक एक स्कंधमें असंख्यात लोकप्रमाण अंडर हैं। एक एक अंडरमें असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं। एक एक आवासमें असंख्यात लोक प्रमाण पुलवि हैं तथा एक एक पुलविमें असंख्यात लोकप्रमाण निगोदशरीर हैं और एक एक निगोद शरीरमें अनंतानंत जीव हैं।

२—इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि नित्यनिगोद राशिमेंसे जो जीव निकलते हैं वे कम अवश्य हो जाते हैं परंतु वे अक्षय अनंतानंत हैं कम होनेपर भी उनकी अक्षय अनंतानंत संख्या कभी कम नहीं होती। जैसे आकाश अनंत है और वह चारों ओर अनंत है यदि हम किसी एक ओर किसी तेज सवारीसे चलें तो उस ओरका जो आकाश है वह जितना हम चलते हैं उतना कम तो अवश्य होता जाता है परंतु वह बाकी भी हमेशा अनंत ही रहता है। इस प्रकार यदि हम अनंत कालतक चलते रहें तो उतना अनंत आकाश कम हो जायगा परंतु फिर भी बाकी आकाश अनंत ही रहेगा। अनंतमेंसे अनंत निकाल लेनेपर भी अनंत ही बाकी रहते हैं जैसे करोड संख्यात हैं और दस भी संख्यात हैं करोडमेंसे दस निकल जाने पर अथवा सौ वा हजार निकल जाने पर भी संख्यात ही बाकी रहते हैं इसी प्रकार अनंतमेंसे अनंत निकल जानेपर भी अनंत ही बाकी

देकर समझाते हैं। जैसे पद्मद्रह आदि छहों द्रहोंमेंसे गंगा सिंधु आदि चौदह नदियां निकलती हैं तथा अनादिकालसे उन द्रहोंमेंसे पानी निकलता रहता है और समुद्रमें पड़ता रहता है तो भी द्रहोंका पानी घटता नहीं। दश बीस चालीस योजन गहरा बना ही रहता है, भूत भविष्यत् वर्तमान किसी भी कालमें उन द्रहोंका पानी नहीं घटता तथा समुद्रका जल कभी बढता नहीं समुद्रकी मर्यादा भी अनादि कालसे अनंतकाल तक जैसेकी तैसे ही बनी रहती है। अथवा आकाशसे जलकी वर्षा होती है और वह सब समुद्रमें जाती है तो भी आकाशमें जल घटता नहीं और समुद्रमें बढता नहीं इसप्रकार और भी उदाहरण हैं।

३३। चर्चा तेतीसवीं।

यम नियमका अर्थ क्या है ?

समाधान—अपने जीवन पर्यंत पापोंका त्याग करना यम है और एक मुहूर्त एक दिन महीना दो महीना वर्ष दो वर्ष आदि कालकी मर्यादा लेकर पापोंका त्याग करना सो नियम है। सो ही रत्नकरंडश्रावकाचारमें लिखा है।

रहते हैं। जब आकाश अनंत है और उसमेंसे अनंतकाल तक चलते चलते अनंत आकाश घट जाता है परंतु फिर भी बाकी आकाश अनंत ही रहता है। यदि बाकी आकाश अनंत न माना जाय तो फिर आकाशका अंत आ जाना चाहिये, सो है नहीं क्योंकि आकाश सर्वत्र व्यापक है। यदि आकाशका अंत मान लिया जायगा तो फिर उसके व्यापकपनेका अभाव मानना पडेगा परंतु आकाशको व्यापक सबने माना है इसलिये जिस प्रकार आकाश अनंत होकर भी तथा उसमेंसे अनंत आकाश घट जानेपर भी सर्वत्र व्यापक होनेसे बाकी आकाश अनंत ही रहता है उसी प्रकार अक्षयानंतानंत निगोदराशिमेंसे निकलनेवालोंकी संख्या घट जानेपर भी वह निगोदराशि सदा अक्षय अनंतानंत ही बनी रहती है। इसमें कोई किसी प्रकारका संदेह नहीं है।

इसी प्रकार सिद्धराशि अनंतानंत है उसमें अनादिकालसे जीव बढते आरहे हैं तथा बढते जांयगे फिर भी वह सदा अनंतानंत ही रहेगी। जैसे आकाश अनंत है यदि हम पूर्वको चलें तो पूर्वकी ओरका आकाश तो घटता जाता है और पश्चिमकी ओरका आकाश बढता जाता है। यदि हम इस प्रकार अनंत कालतक चलते रहें और इस प्रकार पश्चिमकी ओरका आकाश अनंतरूपसे ही बढता रहे तो भी अनंत ही रहता है। न तो पूर्वका आकाश अनंतसे घटता है और न पश्चिमका आकाश अनंत रूपसे बढता है। इसी प्रकार निगोद राशिमेंसे जीवोंके निकलते रहने पर भी निगोद राशिका अक्षय अनंतानंतपन कभी नहीं घटता तथा सिद्धराशिमें अनादिकालसे जीव बढते जा रहे हैं और अनंत कालतक बढते जांयगे तब भी उनकी संख्या अनंतानंतसे कभी नहीं बढेगी। इस प्रकार न तो संसारकी जीवराशि कभी घटती है और न सिद्धराशि कभी बढती है।

"नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते"

इसका भी अभिप्राय यह है कि महा मुनियोंके यम रूप त्यागकी मुख्यता है नियमरूप त्यागकी गौणता है तथा श्रावकोंके नियमरूप त्यागकी मुख्यता है और यमरूप गौणता है।

३४। चर्चा चौंतीसवीं।

उपवासका लक्षण क्या है?

समाधान—उपवास धारण करनेवाले भव्यजीव उपवास धारण करनेके समयसे लेकर आठ पहर तक, बारह पहर तक अथवा सोलह पहर तक क्रोध मान माया लोभ इन चारों कषायोंका सर्वथा त्याग कर देते हैं, स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु श्रोत्र इन पांचों इंद्रियोंके स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द इन विषयोंका सर्वथा त्याग कर देते हैं और खाद्य[1] स्वाद्य अवलेह पान इन चारों प्रकारके आहारोंका सर्वथा त्याग कर देते हैं। इन सबके त्याग करनेको उपवास कहते हैं। जो लोग क्रोधादिक कषायोंका त्याग किये विना ही केवल भोजन पान आदिका त्याग कर देते हैं और उसको उपवास कहते हैं सो मिथ्या है। जैनधर्मके अनुसार यह उपवास नहीं किंतु लंघन कहलाता है। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

[2]उववासं कुव्वंतो आरंभं जो करेदि मोहादो। सो णियदेहं सोसदि ण झाणए कम्मसेसंपि ॥ ३७७ ॥

इसकी टीकामें भी लिखा है—

[3]कषायविषयाहारत्यागो यत्र विधीयते। उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः ॥

इससे सिद्ध होता है कि कषाय इंद्रियोंके विषय सब तरहके आरंभ और चारों प्रकारके आहारोंका त्याग करना ही उपवास है।

---

१ दाल रोटी भात आदि भोजनके पदार्थोंको खाद्य कहते हैं। पेडा वरफी आदि स्वाद लेने योग्य पदार्थोंको स्वाद्य कहते हैं। चाटने योग्य रवड़ी चटनी आदिको अवलेह कहते हैं और दूध पानी आदि पीने योग्य पदार्थोंको पान कहते हैं।

२ जो उपवास करता हुआ भी मोहके वश होकर आरंभ करता है वह केवल अपना शरीर सोखता है। उससे उसके कर्म कुछ भी नष्ट नहीं होते। ३ जिसमें कषाय विषय और आहारका त्याग किया जाता है उसीको उपवास कहते हैं बाकी सब लंघन हैं।

३५। चर्चा पैंतीसवीं।

यदि किसीके ऊपर लिखे अनुसार उपवास करनेकी शक्ति न हो और वह वीचमें जल पी लेवे तो उसको कैसा फल लगता है।

समाधान–पहली बात तो यह है कि उपवास ऊपर लिखे अनुसार ही करना चाहिये। यदि कोई हीनशक्तिवाला उपवासके दिन जल पीले तो उसके आठवां भाग फल नष्ट होजाता है। यह बात प्रश्नोत्तरोपासकाचार नामके ग्रंथमें प्रोषधोपवासके कथन करते समय लिखी है—

नीरादानेन हीयेत भागश्चवाष्टमो नृणाम्। उष्णनैवोपवासस्य तस्मान्नीरं त्यजेत्सुधीः॥

३६। चर्चा छत्तीसवीं।

पंचोपचारी पूजाका स्वरूप क्या है?

समाधान–आह्वानन, स्थापन, सन्निधिकरण, पूजा और विसर्जन ये पांच पूजाके उपचार वा अंग कहलाते हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है–जो अरहंत देव आदिकी पूजाके समय मंत्र पढकर उनका आह्वानन करना। उसकेलिये पुष्प अक्षत आदि स्थापन करना सो पहला आह्वानन नामका उपचार है। आह्वाननके वाद मंत्र पढकर तथा पुष्प अक्षत आदि स्थापन कर उन पूज्य अरहंत आदिका स्थापन करना सो स्थापना नामका दूसरा उपचार है। स्थापना करनेके बाद पुष्प अक्षत आदिके द्वारा उन पूज्य अरहंतादिकोंको अपने समीप करना सो सन्निधिकरण नामका तीसरा उपचार है। तदनंतर जल चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल अर्घादिसे मंत्र पूर्वक उन पूज्य अरहंत आदिकी पूजा करना सो चौथा पूजा नामका उपचार है तथा पूजा करनेके वाद स्तुति जप वंदना आदि करके मंत्र पढकर और पुष्प अक्षत आदि क्षेपण कर उनका विसर्जन करना सो विसर्जन नामका पांचवां उपचार है। इस प्रकार पंचोपचारी पूजाका स्वरूप जानना। सो ही लिखा है–

ओं ह्रीं अर्हन् श्रीपरमब्रह्मन् अत्रावतरावतर संवौषट्। इति आह्वाननम्।

ओं ह्रीं अर्हन् श्रीपरमब्रह्मन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

---

१ इन पांचों उपचारोंमें जो संवौषट्, ठः ठः, वषट् आदि शब्द हैं वे वीजाक्षर हैं। आह्वाननमें संवौषट्, स्थापनमें ठः ठः, सन्निधिकरणमें वषट् और विसर्जनमें जःजः आता है।

४० । चर्चा चालीसवीं ।

मुनिराज एकाग्रचित्त होकर ध्यान करते हैं सो उस ध्यानकी स्थिति कितनी है ।

समाधान—शरीरादिक वाह्य पर पदार्थोंके चिंतवनका निरोध कर अपनी आत्माके स्वरूपमें एकाग्रताका चिंतवन शुद्धध्यान है। वह धर्मध्यान शुक्लध्यानके भेदसे दो प्रकार है वह बज्रवृषभनाराच, बज्रनाराच और नाराच इन तीनों उत्तम संहननोंको धारण करनेवाले जीवोंके होता है। इनमें भी बज्रवृषभनाराच नामके प्रथम संहननको धारण करनेवाले जीवोंके वह ध्यान अंतर्मुहूर्त तक रहता है इससे अधिक नहीं ठहर सक्ता। सो ही तत्त्वार्थसूत्रमें लिखा है।

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥ अध्याय ९ सूत्र सं० २७।

४१ । चर्चा इकतालीसवीं ।

जैनधर्ममें चार आश्रम स्थापन किये हैं सो वे कौन २ हैं और उनका स्वरूप क्या है ?

समाधान—उपासकाध्ययन नामके सातवें अंगमें आश्रम चार प्रकारके बतलाये हैं । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और मिक्षुक। आश्रमोंके ये भेद क्रियाओंके भेदसे होते हैं सो ही प्रश्नोत्तर श्रावकाचारमें लिखा है—

ब्रह्मचारी गृही बानप्रस्थो भिक्षुकसत्तमः। चत्वारो ये क्रियाभेदादुक्ता वर्णवदाश्रमाः ॥

इन चार प्रकारके वर्णाश्रमोंमेंसे पहले ब्रह्मचारीके पांच भेद हैं–उपनय ब्रह्मचारी, अवलंब ब्रह्मचारी, अदीक्षित ब्रह्मचारी, गूढ़ब्रह्मचारी और नैष्ठिक ब्रह्मचारी। इनके अंतमें ब्रह्मचारी शब्द सबके साथ लगा हुआ है। इनका विशेष स्वरूप इसप्रकार है–जो श्रावकाचार सूत्रका विचार करे, विद्याभ्यास करनेमें सदा तत्पर रहे और गृहस्थधर्ममें (गृहस्थोंके द्वारा करने योग्य धार्मिक क्रियाओंमें) निपुण हो उसको उपनय ब्रह्मचारी कहते हैं। जो जबतक विवाह न करे तबतक क्षुल्लक अवस्था धारण करे सदा जैनशास्त्रोंका अध्ययन करता रहे। अध्ययन समाप्त कर पीछे पाणिग्रहण करे उसको अवलंब ब्रह्मचारी कहते हैं। जो विना दीक्षा लिये ही व्रताचरण करनेमें लीन हो, जैनशास्त्रोंके अभ्यास करनेमें तत्पर हो और समस्त शास्त्रोंको पढ़कर फिर पाणिग्रहण करे। अर्थात् "शास्त्रोंका अभ्यास पूर्ण हुए विना विवाह नहीं करूंगा" ऐसा नियम लेकर विना दीक्षा लिये ही जो व्रतोंके आचरण करनेमें प्रवृत्ति करे उसको अदीक्षित ब्रह्मचारी कहते हैं। बालक अवस्थासे ही जैनशास्त्रोंके अभ्यास करनेमें जिसका प्रेम हो और

जो शास्त्रोंको पढ चुकनेके बाद माता पिताके हठसे विवाह करे । भावार्थ–जो स्वयं विवाह न करे किन्तु दूसरेके हठसे जिसको विवाह करना पडे उसको गूढ ब्रह्मचारी कहते हैं। तथा जो जीवनपर्यंत समस्त स्त्रीमात्रका त्याग कर देवे और एक वस्त्रमात्र परिग्रहके विना बाकी सबका त्याग कर देवे सो नैष्ठिक ब्रह्मचारी है। इस प्रकार इनका स्वरूप है। यह ब्रह्मचर्य अवस्था सातवीं प्रतिमासे लेकर ग्यारहवीं प्रतिमातक समझना चाहिये। आगे गृहस्थका दूसरा वर्णाश्रम लिखते हैं।

जो त्रिकाल वंदना तथा पूजा[1] आदि छह कर्मोंके करनेमें तत्पर हो जो विषय कषाय और हिंसादिक पापोंका त्यागी हो, जो स्वात्मरसका (अपने शुद्ध आत्माके आनंदरसका) भोगी हो, जो दयालु हो उसको गृहस्थ कहते हैं, अभिप्राय यह है कि अणुव्रत गुणव्रत शिक्षाव्रत इन बारह व्रतोंको पालन करनेवाला हो उसको गृहस्थ कहते हैं। जो ग्यारह प्रतिमाओंको पालन करता हो, जो ध्यान और अध्ययन करनेमें सदा तत्पर हो, अनंतानुबंधी[2] क्रोध मान माया लोभ इन चारों कषायोंसे रहित हो उनको वानप्रस्थ कहते हैं। तथा जो हिंसा आदि समस्त पापोंका जीवन पर्यंतके लिये त्यागी हो, पंच महाव्रत आदि अठाईस मूलगुणोंको धारण करनेवाला हो, धर्मध्यानमें लीन हो, ध्यानी हो, मौन धारण करनेवाला हो और तपस्वी हो उसको भिक्षुक कहते हैं।

भावार्थ–महा मुनियोंको भिक्षुक कहते हैं। इस प्रकार चारों वर्णाश्रमोंका स्वरूप जानना। सो ही धर्मरसिक नामके शास्त्रमें लिखा है।

उपनयावलंबौ चादीक्षितो गूढनैष्ठिकाः । श्रावकाध्ययने प्रोक्ताः पंचधा ब्रह्मचारिणः ॥ २२ ॥
श्रावकाचारसूत्राणां विचाराभ्यासतत्परः । गृहस्थधर्मशक्तश्चोपनयब्रह्मचारिकः ॥ २३ ॥
स्थित्वा क्षुल्लकरूपेण कृत्वाभ्यासं सदागमे । कुर्याद्विवाहकं सोत्रावलंबब्रह्मचारिकः ॥ २४ ॥
विना दीक्षां व्रताशक्तः शास्त्राध्ययनतत्परः । पठित्वोद्वाहं यः कुर्यात्सोऽदीक्षाब्रह्मचारिकः ॥ २५ ॥
आबाल्याच्छास्त्रसम्प्राप्तिः पित्रादीनां हठात्पुनः । पठित्वोद्वाहं यः कुर्यात्स गूढब्रह्मचारिकः ॥ २६ ॥

---

१ देवपूजा, गुरुकी उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये गृहस्थोंके छह कर्म हैं।
२ वानप्रस्थ अवस्थामें अप्रत्याख्यानावरण संबंधी चारों कषायोंका भी अभाव रहता है।

संध्याध्ययनपूजादिकर्मसु तत्परो महान् । त्यागी भोगी दयालुश्च स गृहस्थः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥
प्रतिमैकादशधारी ध्यानाध्ययनतत्परः । प्राक्कषायविदूरस्थो वानप्रस्थः प्रशस्यते ॥ २९ ॥
सर्वसंगपरित्यक्तो धर्मध्यानपरायणः । ध्यानी मौनी तपोनिष्ठः संज्ञानी भिक्षुरुच्यते ॥ ३० ॥

इसके सिवाय इन चारों आश्रमोंका इसी प्रकारका कथन धर्मामृतश्रावकाचारमें, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें श्रीशुभचंद्राचार्य कृत उसकी संस्कृत टीकामें तथा और भी अनेक शास्त्रोंमें लिखा है उनमेंसे इनका विशेष स्वरूप समझ लेना चाहिये ।

४२ । चर्चा बियालीसवीं ।

पहले कहे हुए नैष्ठिक तथा वानप्रस्थ आश्रमवाले ब्रह्मचारी जो लंगोट आदि वस्त्र पहिनते हैं वह किस रंगका पहिनते हैं

समाधान—ऊपर लिखे हुये दोनों प्रकारके ब्रह्मचारी सफेद अथवा कषायले लाल वस्त्रकी लंगोटी आदि रखते हैं । सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकामें लिखा है ।

नैष्ठिकब्रह्मचारिणः समधिगतशिखालक्षितशिरोलिंगः, गणधरसूत्रोपलक्षितोरोलिंगाः, शुक्लरक्तवसनखंडकोपीनलक्षितकटिलिंगः स्नातकाः भिक्षावृत्तयो भवंति । देवार्चनपरा भवंति ।

कदाचित् यहांपर कोई यह प्रश्न करे कि इनके लिये शुक्ल वस्त्र तो ठीक है परंतु रक्त वस्त्रोंका (गेरुआ वस्त्रोंका) धारण करना तो भेषियोंका रूप समझा जाता है । परंतु इसका समाधान यह है कि पहले कही हुई लाल रंगकी लंगोटी पहिनना भी नग्नताके लिये हैं । शास्त्रोंमें दश प्रकारके नग्न बतलाये हैं । जैसे–जो अपवित्र वस्त्र पहिने सो भी नग्न है, जो खंडवस्त्र पहिने सो भी नग्न है, जो मैले वस्त्र पहिने सो भी नग्न है, जो कोपीन पहने वह भी नग्न है, जो कषायले रंगके रंगे वस्त्र पहिने सो भी नग्न है जो दूसरोंके उतरे हुए वस्त्र पहिने वह भी नग्न है । जो भीतर काछ लगावे बाहरसे न लगावे वह भी नग्न है, जो बाहर काछ लगावे भीतरी काछ न

१ इसमें नैष्ठिक ब्रह्मचारीका स्वरूप कहने वाला २७ वां श्लोक छूट गया है ।

१ साक्षात् नग्नके सिवाय नौ प्रकारके नग्न भावीनैगमकी अपेक्षासे कहे हैं । साक्षात् नग्नताकी लालसा करते हुए ही रंगे वस्त्र वा कोपीन आदि धारण की जाती है ।

हो वह भी नग्न है, जिसकी काछ छूटी रहे वह भी नग्न है, तथा जो साक्षात नग्न है वह नग्न है ही। इस प्रकार दश प्रकारके जो नग्न बतलाये हैं उनमें रंगे वस्त्रोंका पहिनना भी नग्नताके लिये कहा है। इसीलिये गेरुआ वस्त्रकी भी कोपीन आदि बतलाई है। यह बात श्रीसिद्धसेन दिवाकर विरचित दशाध्याय सूत्रकी बाईस हजार परिमित टीकामें लिखी है तथा धर्मरसिक ग्रंथमें भी लिखी है।

अपवित्रपटो नग्नो नग्नश्चार्द्धपटः स्मृतः। नग्नश्च मलिनोद्गासी नग्नः कोपीनवानपि ॥ २१ ॥
कषायवाससा नग्नो नग्नश्चोत्तीर्यवानपि। अन्तःकच्छो वहिःकच्छो मुक्तकच्छस्तथैव च ॥ २२ ॥

यह प्रकरण और जगह भी लिखा है—

सुखानुभवने नग्नो नग्नो जन्मसमागमे। वाल्ये नग्नः शिवो नग्नः नग्नः छिन्नशिखो यतिः ॥
नग्नत्वं सहजं लोके विकारो वस्त्रवेष्टनम्। नग्ना चेयं कथं वंद्या सौरभेयी दिने दिने। यशस्तिलकचंपू ॥

इस प्रकार वर्णन समझना चाहिये।

४३। चर्चा तेतालीसवीं।

सात समुद्घातोंमेंसे केवलीसमुद्घात केवली भगवानके होता है सो वह किस गुणस्थानमें होता है।

समाधान—जिसकी आयु छह महीने बाकी हो और बाकीके वेदनीय नाम गोत्र इन तीनों कर्मोंकी स्थिति छह महीनेसे अधिक हो, ऐसे मनुष्यको केवलज्ञान उत्पन्न हो तो वह केवलिसमुद्घात करता है। ऐसे केवलियोंके सिवाय और केवली केवलिसमुद्घात करें भी तथा न भी करें। भावार्थ—जिनकी आयु छह महीनेकी बाकी रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे केवली तो नियमसे समुद्घात करते ही हैं। ऐसे केवलियोंके सिवाय अन्य केवलियोंका समुद्घात करनेका नियम नहीं है।

जब तेरहवें सयोगिकेवली नामके गुणस्थानकी स्थिति अंतर्मुहूर्त बाकी रह जाती है तब दंडे, कवाट, प्रतर, पूर्ण, प्रतर, कवाट,

---

१ इनमें नग्नताकी प्रशंसा करते हुए नग्नता कहां कहां होती है सो दिखलाया है। जैसे संयोगमें, वालकपनमें, जन्ममें, यति अवस्थामें नग्नता है। नग्नता स्वाभाविक है वस्त्र पहिनना विकार है। नग्न रहनेवाली गाय तुम्हारे यहां प्रतिदिन वंदनीय क्यों समझी जाती है।

२ केवली भगवान चाहे पूर्व दिशाकी ओर मुंह कर विराजमान हों चाहे उत्तर दिशाकी ओर मुंहकर विराजमान हों। चाहे वे वैठे हों चाहे खडे हों सबके आत्माके प्रदेश दंडाकार होते हैं ऊपर नीचे दोनों ओर वातवलयके आरंभ तक लग जाते हैं दूसरे समयमें कवाट रूप होकर अर्थात् अगल

दंड, निज देह मात्र ऐसे आठ समयमें समुद्घात कर तेरहवें गुणस्थानके अंतिम समयमें अघातिया कर्मोंकी स्थितिको योग निरोध कर आयुके बराबर करते हैं फिर कर्मोंका नाश करते हुए चौदहवें गुणस्थानके अंतमें मोक्ष प्राप्त करते हैं। सो ही वसुनंदि श्रावकाचारमें लिखा है—

छम्मासाउगसेसे उप्पण्णं जस्स केवलं णाणं। सो कुणइ समुग्घायं इदरो पुण होय वा भणिज्जो ॥ ५३१ ॥
अंतोमुहुत्तसेसा उगम्मि दंडं कवाड पयरं च। जइय पूरणमथ कवाड दंडं णियतसुयमाणं च ॥ ५३२ ॥
एवं पयेसपसरणं संवरणं कुणइ अट्ठ समयेहिं। होहिंति जोइ चरिमे अघाइ कम्माणि सरिसाणि ॥

इसप्रकार और भी वर्णन है इससे कहना पडता है कि जो जीव चौदहवेंगुणस्थानमें समुद्घात मानते हैं और आठवें समयमें मुक्ति जाना बतलाते हैं वे मूर्ख हैं वे शास्त्री नहीं हैं।

४४। चर्चा चवालीसवीं।

श्रीजिनबिंबोंमें चौबीसी प्रतिमाओंमें अगल बगल दोनों ओर श्रीदेवी अर्थात् लक्ष्मी और सरस्वतीकी मूर्ति रहती है तथा जिनमूर्तिके पास यक्ष यक्षिणीकी मूर्ति रहती है सो यह क्या बात है। जिन अरहंतदेवकी प्रतिमाओंके पास यक्षादिककी व सरस्वती आदिकी मूर्ति हो उनको नमस्कार करना चाहिये या नहीं, उनकी पूजा करनी चाहिये या नहीं। तथा जिनेंद्रदेवकी प्रतिमाके अगल बगल यक्षादिकोंकी मूर्ति होना शास्त्रोक्त है या किसीने मनसे कल्पना कर बनवा दी है ?

समाधान—भगवान अरहंतदेवकी प्रतिमाके साथ साथ यक्षादिककी मूर्तियां अनादिकालसे चली आ रही हैं और अनंतकाल तक रहेंगी। यह कोई मनकी कल्पना नहीं है किंतु शास्त्रोक्त हैं। शास्वत वा अनादिकालसे अनंत कालतक रहनेवाली अकृत्रिम जिन प्रतिमाओंमें भी इन चिन्होंके रहनेका वर्णन है। तथा अकृत्रिम प्रतिमाओंकी आम्नायके अनुसार ही कृत्रिम प्रतिमाएं बनाई जाती हैं। इसलिये कृत्रिम प्रतिमाओंमें भी ये चिन्ह अवश्य होने चाहिये। किसी किसी जिन मंदिरमें अब भी यक्षादिकोंकी मूर्ति सहित लगभग दो दो हजार वर्ष पहलेकी जिन प्रतिमाएं विराजमान हैं वे भला अपूज्य कैसे हो सकती हैं।

बगलकी ओर फैल कर वातवलय तक लग जाते हैं तीसरे समयमें आगे पीछेकी ओर फैल कर वातवलय तक लग जाते हैं चौथे समयमें वातवलयोंमें जाकर लोकपूर्ण हो जाते हैं पाचवें समयमें प्रतररूप, छठे समयमें कवाट रूप, सातवें समयमें दंड रूप और आठवें समयमें शरीरके बराबर हो जाते हैं।

अकृत्रिम जिन प्रतिमाओंके साथ साथ यक्षादिक वा लक्ष्मी सरस्वतीकी प्रतिमाओंका निर्णय श्रीनेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती विरचित त्रिलोकसारमें है। तथा जिनविंबका कथन करते समय लिखा है। यथा—

दसतालमाणलक्खण भरिया पेक्खंत इव वदंता वा। पुरु जिण तुंगापढिमा रमणमया अट्ठ अहियसया ॥९८६॥
चमर करणाग जक्खग वत्तीसं मिहूणगेहि पुहजुत्ता। सरिसीए पंत्तीए गब्भगिहे सुट्ठु सोहंति ॥ ७८७ ॥
सिरिदेवी सुददेवी सव्वाण्हसणकुमार जक्खाणं। रुवाणियजिणपासे मंगल मट्ठविहमवि होदी ॥ ९७८ ॥

इसप्रकार लिखा है। इसका भावार्थ यह है कि उस गर्भगृहमें (श्रीमंडपमें) एक सौ आठ प्रतिमाएं विराजमान हैं। वे प्रतिमाएं दस ताल (धनुष) ऊंची हैं एक एक प्रतिमाके दोनों ओर वत्तीस बत्तीस यक्ष चमर लिये खडे हैं। तथा उन जिन प्रतिमाओंके दोनों ओर श्रीदेवी और सरस्वती देवी ये दोनों देवियां स्त्रीका रूप धारण कर खडी हैं सर्वाल्हाद और सनत्कुमार नामके यक्षदेव अपने स्वरूपके अनुसार खडे हैं। उन प्रतिमाओंके आगे आठगुने अष्टमंगल द्रव्य रक्खे हैं। ये अष्ट मंगलद्रव्य प्रत्येक प्रतिमाके सामने अलग अलग हैं। इन सब विभूतियोंसे शोभायमान उन प्रतिमाओंको इन्द्रादिक सम्यग्दृष्टी जीव पूजा करते हैं और वंदना करते हैं। ऐसा त्रिलोकसारमें लिखा है।

इसके सिवाय और भी जैन शास्त्रोंमें कृत्रिम प्रतिमाके वर्णन करते समय लिखा है। यथा—

सुमूहूर्ते सुनक्षत्रे वाद्यवैभवसंयुतः। प्रसिद्धपुण्यदेशेषु नदीनगवनेषु च ॥ १ ॥
सुस्निग्धां कठिनां शीतां सुस्पर्शां सुस्वरां शिलाम्। समानीय जिनेन्द्रस्य विंबं कार्यं सुशिल्पिभिः ॥
कषादिरोमहीनांगं स्मश्रुरेखाविवर्जितम्। स्थितं प्रलंबितं हस्तं श्रीवत्साढ्यं दिगम्बरम् ॥
पल्यंकासनं वा कुर्याच्छिल्पिशास्त्रानुसारतः। निरायुधं राजतं वा पैत्तलं कांश्यजं तथा ॥ ४ ॥
प्रवालं मौक्तिकं चैव वैडूर्यादिसुरत्नजम्। चित्रजं तथा लेप्यं क्वचिच्चंदनजं मतम् ॥ ५ ॥
प्रातिहार्याष्टकोपेतं संपूर्णावयवं शुभम्। भावरूपानुविद्धांगं कारयेद् बिंवमर्हतः ॥ ६ ॥
प्रातिहार्यैर्विना शुद्धं सिद्धविम्बमपीदृशम्। सूरीणां पाठकानां च साधूनां यथागमम् ॥ ७ ॥

वामे च यक्षीं बिभ्राणं दक्षिणे यक्षमुत्तमम् । नवग्रहानधोभागे मध्ये च क्षेत्रपालकम् ॥ ८ ॥
यक्षाणां देवतानां सर्वालंकारभूषितम् । स्ववाहनावलोपेतं कुर्यात्सर्वांगसुंदरम् ॥ ९ ॥

इस प्रकार लिखा है । यह रीति अकृत्रिम प्रतिमाओंकी अपेक्षा अनादिनिधन है तथा परंपरा करके भी योग्य है ।

जो लोग धरणेन्द्र पद्मावतीसहित (फणा सहित) श्री पार्श्वनाथकी प्रतिमासे अरुचि करते हैं वे अधोगतिके पात्र हैं । जो रीति शास्त्रोक्त है और परंपरासे चली आ रही है उसमें संदेह नहीं करना चाहिये । जो रीति केवल मनकी कल्पनासे चलाई गई हो उसमें अरुचि करना ठीक है ।

४५ । चर्चा पेंतालीसवीं ।

मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पांच ज्ञान हैं । इनमें प्रत्यक्षज्ञान कौन कौन हैं और परोक्ष-ज्ञान कौन कौन है ?

समाधान—इन पांचों ज्ञानोंमेंसे पहलेके मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान परोक्ष हैं और बाकीके तीन ज्ञान उत्तरोत्तर गुणोंसे बढ़ते हुए प्रत्यक्ष हैं । सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

आद्ये परोक्षम् । प्रत्यक्षमन्यत् । अध्याय १ सूत्र संख्या ११-१२ ।

अन्यत्र भी लिखा है ।

मंइ सुइ परोक्खणाणं ओही मणहोइ वियलपचक्खं । केवलणाणं च तहा अणोवमं होइ सयलपचक्खं ॥

४६ । चर्चा छयालीसवीं ।

सिद्धपरमेष्ठीकी अवगाहना अंतिम शरीरसे कुछ कम बतलाई है सो कितनी कम होती है ?

१—अच्छे मुहूर्तमें सुंदर चिकना पत्थर लाकर जिन प्रतिमा करनी चाहिये । जो आठों प्रातिहार्योंसे सुशोभित हो । प्रातिहार्योंके विना वही प्रतिमा सिद्धोंकी कहलाती है । प्रतिमाके बाईं ओर यक्षी दांईं ओर यक्ष नीचे नवग्रह मध्यमें क्षेत्रपाल हो । यक्षादिकोंकी मूर्ति सब अलंकारोंसे सुशोभित वाहन और वधू सहित होनी चाहिये । २ मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष हैं अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है ।

समाधान—जिस शरीरसे केवली भगवान मुक्त होते हैं उसका तीसरा भाग कम हो जाता है। दो भाग प्रमाण सिद्धोंकी अवगाहना रहती है। जैसे तीन धनुषके शरीर वाले मनुष्यकी अवगाहना सिद्ध अवस्थामें जाकर दो धनुषकी अवगाहनाके समान रह जाती है। * सो ही सिद्धांतसारप्रदीपकमें लिखा है।

गतसिक्थायमूषायां आकाशाकारधारिणः। प्राक्कायायामविस्तारत्रिभागोनप्रदेशकाः ॥ ८ ॥
लोकोत्तमशरण्याश्च विश्वमंगलकारकाः। अनंतकालमात्मानो तिष्ठन्त्यंतातिगाः सदा ॥ ९ ॥
इमे सिद्धा मया ध्येया वंद्या विश्वमुनीश्वरैः। स्तुताश्च मम कर्वन्तु स्वगतिं स्वगुणैः समम् ॥ १० ॥

त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें भी लिखा है—

देहे भावा हल्ल चरमभवे जस्स जारि संठाणं। तत्तो तिभागहीणं नुग्गहणा सव्वसिद्धाणं ॥

इस प्रकार जिनागममें लिखा गया है।

जो जीव केवल नखकेशरहित सिद्धोंकी अवगाहना मानते हैं सो भ्रम है। इसलिये ऊपर लिखे अनुसार श्रद्धान करना योग्य है।

४७। चर्चा सैंतालीसवीं।

इन तीनों लोकोंमें पेंतालीस लाख योजनके पांच स्थान बतलाये हैं सो कौन कौन हैं?

समाधान—सिद्धक्षेत्र, सिद्धशिला, पहले स्वर्गका ऋजुविमान, ढाई द्वीप, प्रथम नरकका पहला पाथरा ये पांच क्षेत्र अलग अलग पेंतालीस पेतालीस लाख योजनके हैं। यह कथन त्रिलोकसार, सिद्धांतसार दीपक, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, वृहद्हरिवंशपुराण आदि अनेक जैन शास्त्रोंमें हैं।

४८। चर्चा अडतालीसवीं।

एक एक लाख योजनके तीन स्थान बतलाये हैं वे इस लोकमें कहां कहां है?

* यह दो भागका रह जाना धन फलकी अपेक्षासे है अंतिम शरीरका जो घनफल है उससे सिद्ध अवस्थाका घनफल एक भाग कम है क्योंकि पेट आदी शरीरके भीतरका पोला भाग भी उस घनफलमेंसे निकल जाना है।

समाधान—जंबूद्वीप, सातवें नरकका पहला इन्द्रक नरक और सर्वार्थसिद्धि नामका विमान। ये अलग अलग एक एक लाख योजनके हैं। लिखा भी है—

सर्वार्थसिद्धिर्ज्ञातव्या जंबूद्वीपस्तथैव च। माधवी अप्रतिष्ठानं त्रिस्थानं लक्षयोजनम् ॥ ४८ ॥

४९। चर्चा उनचासवीं

सिद्धशिला और सिद्धक्षेत्र दोनों ही अलग अलग पेंतालीस लाख योजनके बतलाये हैं। वहांपर अनादिकालसे कर्मोको नाश-कर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होनेवाले अनंत जीव विराजमान हैं जो वर्तमानकालमें सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होते हैं वे भी वहीं जाकर विराजमान होते हैं और आगामी अनंतकाल तक जो सिद्ध होते जायंगे वे सब वहीं जाकर विराजमान होंगे। वहांपर परिमित (नपे हुए पेंतालीस लाख योजन) क्षेत्रमें सब ही एक ज्योतिस्वरूप अवगाहनामें विराजमान हैं सो वहांपर संकीर्णता क्यों नहीं होती क्योंकि उस थोडेसे क्षेत्रमें अनंतानंत सिद्ध विराजमान हैं।

समाधान—उस क्षेत्रमें ऐसी अवगाहना शक्ति है कि उस अवगाहना शक्तिसे वहांपर किसी कालमें भी संकीर्णता नहीं होती। इसी बातको उदाहरण देकर स्पष्ट रीतिसे दिखलाते हैं। जैसे—जंबूद्वीप एक लाख योजनका है तथा तीर्थंकरोंकी जन्मस्थानकी अयोध्या आदि नगरी बारह योजन लंबी और नौ योजन चौडी है। उसमें तीर्थंकरोंके पंच कल्याणकोंमें इंद्रादिक समस्त देव एक लाख योजन प्रमाण हाथीको साथ लेकर आते हैं सो वहां भी संकीर्णता नहीं होती सब समा जाते हैं। तथा एक वर्तनमें ऊपरतक जल भर देवें फिर उसमें जलके बराबर ही शकर वा बूरा भर देवें तो वह जल शकर वा बूराके मिलानेसे उस वर्तनके बाहर नहीं निकलता। उतना ही बूरा मिल जानेपर भी उस जलमें संकीर्णता नहीं होती। तीसरा उदाहरण—अक्षीण महानस ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि जहां आहार लेलेते हैं उस क्षेत्रमें तथा उसी रसोईमें चक्रवर्तीकी सब सेना भोजन कर सकती है तथा उसी थोडेसे क्षेत्रमें चक्रवर्तीकी सब सेना बैठ सकती है, न तो वह रसोई ही घटती है और न उस क्षेत्रमें ही संकीर्णता आती है। ईसीप्रकार और भी युक्तियोंके उदाहरण समझकर उस थोडेसे सिद्धक्षेत्रमें अनंत सिद्धोंकी अवगाहना सिद्ध कर लेना चाहिये।

१ वास्तवमें देखा जाय तो सिद्धोंका शुद्ध आत्मा अमूर्त है तथा अमूर्त पदार्थ जगह नहीं रोक सकता यही कारण है कि एक एक सिद्धकी अवगाहनामें अनंतसिद्धोंकी अवगाहना विराजमान है। जब अमूर्त आत्मा जगह रोकता ही नहीं है तब एक ही सिद्धकी सबसे बडी अवगाहनामें

५० । चर्चा पचासवीं ।

मुनिराज आहारके लिये गांव वा नगरमें जाते हैं सो कौनसी मुद्रा धारण कर जाते हैं ?

समाधान—महा तपोधन मुनिराज दो पहरके समय सामायिक करनेके बाद आहारके लिये निकलते हैं उससमय सबसे पहले पूर्व दिशाकी ओर मुंहकर श्री जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करते हैं फिर ईर्या समितिको धारण करते हुए धीरे धीरे आहारके लिये गमन करते हैं । उससमय वे मुनिराज अपने बायें हाथमें कमंडलु और पीछी इन दोनों उपकरणोंको रखते हैं और अपने दायें हाथको दायें कंधेपर रखते हैं । फिर अच्छी दृष्टिसे (ईर्यासमिति) श्रावकोंके घर जाते हैं । सो ही धर्मरसिक नामके ग्रंथमें लिखा है—

मध्याह्नसमये योगी कृत्वा सामायिकं मुदा । पूर्वस्यां तु जिनं नत्वा ह्याहारार्थं व्रजेच्छनैः ॥ ६९ ॥
पिच्छं कमंडलुं वामहस्ते स्कंधे तु दक्षिणम् । हस्तं निधाय संदृष्ट्या स व्रजेच्छ्रावकालयम् ॥ ७० ॥

समस्त भूतकालके और भविष्यतकालके सिद्ध समा सकते हैं फिर भला वह क्षेत्र तो पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है उसमें संकीर्णता किसप्रकार आसकती है ।

जगह रोकना स्थूल पुद्गलका काम है । स्थूल पुद्गलके सिवाय और कोई पदार्थ जगह नहीं रोकता । आकाश धर्म अधर्म काल और शुद्ध आत्मा कभी जगह नहीं रोकता । केवल स्थूल पुद्गल और स्थूल पुद्गलमय शरीरको धरण करनेवाला संसारी आत्मा जगह रोकता है ।

पुद्गल उनको कहते हैं जिनमें रूप रस गंध स्पर्श ये चार गुण हों । पुद्गलोंमें भी जो स्थूल सूक्ष्म हैं वे जगह नहीं रोकते जैसे धूप प्रकाश अंधकार आदि स्थूल सूक्ष्म पुद्गल भी जगह नहीं रोकते । फिर भला सूक्ष्म और सूक्ष्मसूक्ष्म तो रोक ही नहीं सकते । कोई कोई स्थूल पदार्थ भी दूसरे को जगह देदेते हैं जैसे जल उतने ही बूरेको उतनी ही राखको और उतनी ही लोहेकी कीलोंको उतने ही पात्रमें जगह देदेता है ।

सिद्धभगवान कर्म और शरीर रहित हैं इसलिये उनका शुद्ध आत्मा जगहको रोक नहीं सकता ।

१ मुनिराज सामायिकके बाद भी आहारको जाते हैं और दोपहरके सामायिकके पहले भी जाते हैं । अक्सर गृहस्थोंके भोजनका समय दोपहरके सामायिकके पहले है इसलिये मुनिराज भी दोपहरकी सामायिकके पहले ही आहारको जाते हैं । कोई विशेष कारण उपस्थित होनेपर दोपहरकी सामायिकके बाद भी जाते हैं ।

२ पांचों उंगलियोंको मिलाकर उन मिली हुई उंगलियोंको कंधेपर रख लेते हैं । यह उनकी आहारमुद्रा कहलाती है ।

यहां कोई प्रश्न करे कि मुनिराज श्रावकके घर जाते हैं सो वहांपर विना पडगाहे कितनी देर तक ठहर सकते हैं ?

समाधान—मुनिराज श्रावकके घर जाकर कायोत्सर्ग धारण कर (नौवार नमस्कार मंत्रका जप करते हुए) खडे होते हैं यदि इतनी ही देरमें श्रावक उनका पडगाहन कर लेवे तो वे सब दोषोंको टालकर निरंतराय भोजनपानको ग्रहण करते हैं यदि एक कायोत्सर्ग धारण करते समय तक कोई श्रावक उनका पडगाहन न करे तो फिर वे वहांसे चले जाते हैं जितनी देरमें एक कायोत्सर्ग धारण किया जाता है उतनी देर तक खडे रहते हैं। कायोत्सर्ग पूरा होनेपर फिर बिना पडगाहे खडे नहीं रह सकते। सो ही धर्मरसिक ग्रंथमें लिखा है।

गत्वा गृहांगणे तस्य तिष्ठेच्च मुनिरुत्तमः। नमस्कारान् पदान् पंच नववारं जपेच्छुचिः ॥ ७१ ॥
तं दृष्ट्वा शीघ्रतो भक्त्या प्रतिग्राहेत भक्तिकैः।

इसप्रकार और भी बहुतसा वर्णन है।

५१। चर्चा इक्यावनवीं।

भगवान तीर्थंकर जब गर्भमें आते हैं तब उस दिनसे छह महीने पहलेसे ही जन्म होनेतक अर्थात् पंद्रह महीने तक कुवेर इन्द्रकी आज्ञासे रत्नोंकी वर्षा करता है। सो प्रतिदिन कितनी बार करता है और कौन कौनसे समय करता है ?

समाधान—वह रत्नोंकी वर्षा भगवानके माता पिताके घर चार बार होती है सवेरे, दोपहरको, सायंकालको, और आधीरातके समय। तथा एक एकवारमें साडे तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा होती है। इसप्रकार पंद्रह महीने तक बराबर होती रहती है। सो ही लिखा है—

पुव्वण्हे मज्झण्हे अवरण्हे मज्झिमायरयणीये। आहुट्ठयकोडीओ रयणाणं वरिसेऊ ॥

इसप्रकार प्रतिदिन चारों समयमें चौदह करोड रत्न बरसते हैं।

५२। चर्चा बावनवीं।

केवली भगवानकी दिव्यध्वनि नियमसे तीनवार खिरती है ऐसा सुनते हैं सो क्या ये बात ठीक है ?

समाधान—केवली भगवानकी दिव्यध्वनि प्रतिदिन चार बार खिरती है। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल और अर्द्धरात्रि इन

चारों समयमें छह छह घड़ी तक दिव्यध्वनि खिरती है। इन चार समयके सिवा पदवीधर और महापुण्यवान पुरुषोंके प्रश्न करनेपर दूसरे समय भी खिरती है। इससे सिद्ध होता है कि चार समय तो नियमसे खिरती है तथा इनके सिवाय भी यथेष्ट कारण मिलने पर खिरती है सोही लिखा है—

पुव्वण्हे मज्झण्हे अवरण्हे मज्झमाय रयणीये। छ च्छ घडीये णिग्गइ दिव्वधुणी जिणवरिंदाणं ॥

५३। चर्चा त्रेपनवीं।

स्वयंभूरमण समुद्रमें रहनेवाला सालिसित्थ नामका मत्स्य अपने शरीरसे तो कुछ हिंसा आदि पाप करता ही नहीं है। केवल हिंसा करनेके पापको मनसे चिंतवन करता रहता है और उसी मानसिक पापसे (हिंसा किये विना ही) वह सातवें नरक जाता है सो उसको बाह्य हिंसा करनेके विना ही पाप किस प्रकार लग जाता है?

समाधान—तुम्हारा कहना तब सत्य हो सकता है जब कि पाप केवल शरीरसे ही लगते हों परंतु पाप तो मन वचन काय तीनों योगोंसे बराबर लगते हैं मोक्षशास्त्रमें लिखा है। "प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा" अर्थात् कषायोंके उत्पन्न होनेपर प्राणोंका व्यपरोपण व घात होना हिंसा है। इसी वचनके अनुसार उसे सातवें नरकमें जाना पडा। इसी सूत्रकी श्रुतसागरी टीकामें एक श्लोक भी लिखा है।

स्वमेवात्मनात्मानं हिनस्त्यात्मा कषायवान्। पर्वं प्राण्यन्तराणां तु पश्चात्स्याद्वा नवा वधः ॥

अर्थात्—कषाय करनेवाला आत्मा अपने कषायसे पहले तो अपने आत्माकी हिंसा करता है क्रोधादिक कषायके द्वारा अपने आत्माके गुणोंका घात करता है। उस अपनी हिंसाके बाद जिसकी हिंसा बंद करना चाहता है उसकी हिंसा हो भी जाय अथवा

---

१ सबसे बडा तंदुल मत्स्य होता है उसके मुह तथा नाकमें सांसके साथ हजारों मछलियां पेटमें चली जाती है और वे सांसके निकालते समय उल्टी वापिस आजाती हैं उसी तंदुल मत्स्यकी आंखके पलक पर एक छोटासा शालिसित्थ नामका मत्स्य रहता है। वह उन मछलियोंके बाहर निकलते समय सोचता है कि यह मत्स्य कैसा मूर्ख है जो पेटमें पहुंची हुई मछलियोंको भी बाहर आ जाने देता है यदि मैं होता तो एक भी मछलीको बाहर नहीं आने देता। यद्यपि वह उन मछलियोंको जरा सी चोट भी नहीं पहुंचा सकता तथापि केवल इसी मानसिक पापके कारण वह सातवें नरकमें जाता है तथा बडा तंदुल मत्स्य पहले ही नरक जाता है।

कहनेवाला श्लोक है उसमें स्थाली शब्द है सो स्थाली शब्दका अर्थ बटलोई अथवा हंडी होता है। इसका अर्थ यह है कि भात पकानेके वर्तन एक करोड थे। सो ही आदिपुराण पर्व ३७ में लिखा है।

स्थालीनां कोटिरेकोक्ता रंधने या नियोजिताः। चक्रोस्थालोविलीयानां तंडुलानां महानसे ॥ ६७ ॥

इससे सिद्ध होता है कि एक करोड़ थालियां नहीं थीं किंतु एक करोड़ भात पकानेके हंडे थे।

५८। चर्चा अट्ठावनवीं।

स्नानके कौन कौन भेद हैं।

समाधान—स्नानके पांच भेद हैं पादस्नान (पैर धोना) जानुस्नान (घुटनेसे नीचेका भाग धोना) कटिस्नान (कमरसे नीचेका भाग धोना) ग्रीवास्नान (गलेसे नीचेका भाग धोना) शिरस्नान (मस्तकसे स्नान करना) इन पांच स्नानोंमेंसे जैसा दोष हो वैसा ही स्नान करना चाहिये। सो ही त्रिवर्णाचारमें लिखा है।

पादजानुकटिग्रीवाशिरःपर्यंत संश्रयम्। स्नानं पंचविधं ज्ञेयं यथा दोषं शरीरिणाम् ॥

इस प्रकार पांच प्रकारका स्नान जानना।

५९। चर्चा उनसठवीं।

इस अवसर्पिणी कालमें मनुष्योंकी आयु घटती जाती है सो किस प्रकार घटती है ?

समाधान—श्रीमहावीरस्वामीके मुक्त होते समय मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु एक सौ वीस वर्षकी थी। इसमेंसे एक एक हजार वर्ष पीछे पांच पांच वर्षकी घटती होती जाती है सो ही सिद्धांतसारमें लिखा है—

वत्सराणां सहस्रेषु गतेषु न्यूनतां व्रजेत्। पंचवर्षाणि शतं चार्द्धं वेदितव्यं जिनागमे ॥

इससे सिद्ध होता है कि एक एक हजार वर्षमें पांच पांच वर्ष कम होते जाते हैं। यह पंचम काल इकईस हजार वर्षका है इसलिये छठे कालके प्रारंभमें मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु पंद्रह वर्षकी रहेगी। शेष एकसौ पांच वर्ष घट जायंगी। इसका भी खुलासा यह है कि एक हजार वर्षमें पांच बर्ष घटते हैं इसलिये दो सौ वर्षमें एक वर्ष घटता है। सौ वर्षमें छह महीनेकी आयु घटती है। छह महीनेके एक सौ अस्सी दिन हुए और १०८०० घड़िया हुईं। इनमें सौका भाग देनेसे एक वर्षमें १०८ घड़ियां अथवा एक दिन

४८ घड़ियां घटीं। एक महीनेमें ९ घड़ियां घटीं। ६० पलकी एक घड़ी होती है सो ९ घड़ियोंकी ५४० पल हुए। इनमें तीसका भाग देनेसे एक दिनमें १८ पलकी घटती होती है। इस प्रकार आयुके घटनेका खुलासा समझ लेना चाहिये।

६०। चर्चा साठवीं।

इस पंचम कालमें उत्पन्न हुए जीव मरकर विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर मोक्ष जा सकते हैं या नहीं अर्थात् ऐसे एक भवावतारी जीव हैं या नहीं ?

समाधान—इकईस हजार वर्षका यह पंचमकाल है। इसमें एक सौ तेईस भद्रपरिणामी भव्यजीव यहांकी आयु पूर्णकर विदेह क्षेत्रमें जन्म लेंगे तथा नौ वर्षकी आयुमें जिनदीक्षा लेकर केवलज्ञान उत्पन्न कर नौ वर्ष कम एक करोड पूर्व काल पर्यंत विहार कर मुक्त जायंगे ऐसा सिद्धांतसारमें वर्णन किया है। यथा—

जीवा सय तेईसा पंचमकाले य भद्दपरिणामा। उप्पाइपुव्वविदेहे नवमइवरसे दु केवली होदि॥

इसका भी अलग अलग खुलासा इस प्रकार है। पंचमकालके इकईस हजार वर्ष हैं। उनके सात भाग करना सो एक एक भाग तीन तीन हजार वर्षका हुआ। प्रथमके तीन हजार वर्षके पहले भागमें यहांके ६४ जीव आयु पूर्णकर विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर केवली होंगे। दूसरे भागमें बत्तीस जीव, तीसरे भागमें बारह जीव, चौथे भागमें आठ जीव, पांचवें भागमें चार जीव, छठे भागमें दो जीव और सातवें भागमें एक जीव अपनी आयु पूर्णकर विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होकर केवली होंगे। इन सब जीवोंकी संख्या एक सौ तेईस होती है अर्थात् एक सौ तेईस जीव इस पंचमकालमें उत्पन्न हुए एक भवावतारी समझना चाहिये।

६१। चर्चा इकसठवीं।

इस ढाई द्वीपमें तीर्थंकरोंकी अधिकसे अधिक संख्या एक सौ सत्तर होती है। तथा जघन्य वीस होती है ऐसा सुनते हैं परंतु चक्रवर्तियोंकी उत्कृष्ट जघन्य संख्या कितनी है ?

समाधान—चक्रवर्तियोंके होनेका सब जगहका कोई खास नियम नहीं है। सो ही सिद्धांतसारमें लिखा है।

---

१ भद्रपरिणामी एक सौ तेईस जीव पूर्व विदेहमें उत्पन्न होकर नौवें वर्षमें केवली होंगे।

जंघन्येन जिनाधीशा भवंति विंशतिप्रमाः। चक्राधिपाश्च सर्वत्र नृदेवखचरार्चिताः ॥ ६१ ॥

६२। चर्चा बासठवीं।

स्वर्गलोकमें सम्यग्दृष्टी जीव तथा मिथ्यादृष्टी जीव उत्पन्न होते हैं सो वहांपर दोनोंकी आयु समान है अथवा हीनाधिक है?

समाधान—जिस जीवके स्वर्गमें ही मिथ्यात्वरूपी शत्रुके नाश होनेसे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होती है उसको सम्यग्दृष्टी देव कहते हैं। उसके आयु कर्मकी जितनी स्थिति है उसमें सम्यग्दर्शनके प्रभावसे घातायुष्ककी अपेक्षा आधासागर आयुकी स्थिति बढ़ जाती है। यह वृद्धि भी सहस्रार स्वर्गतक (बारहवें स्वर्गतक) होती है। इसी प्रकार जिस जीवके सम्यग्दर्शनका घात हो जाय और मिथ्यात्वका उदय हो जाय तो उस देवकी आयु कर्मकी स्थितिमेंसे आधे सागरकी आयु घट जाती है। यही बात सिद्धांतसारमें पन्द्रहवी संधिमें लिखी है।

सम्यक्त्वस्य देवस्य सागरार्द्धं हि वर्द्धते। आयुः यावत्सहस्रारं मिथ्यात्वारिविघातनात् ॥ ३२ ॥
मिथ्यात्वागतदेवस्य सम्यक्त्वरत्ननाशनात्। हीयते सागरार्द्धायुरिति स्थितिश्च नाकिनाम् ॥ ३३ ॥

त्रिलोकसारमें भी लिखा है।

सम्मे घादेऊणं सायरदलमहियमा सहस्सारा। जलहिदलमूडुवराऊ पडलं पडि जाणि हाणिचयं ॥ ५३३ ॥

यहांपर फिर कोई यह प्रश्न करे कि बारहवें स्वर्गसे ऊपरके देवोंके क्यों नहीं घटती बढ़ती?

---

१ तीर्थंकरोंकी जघन्य संख्या २० है इनके सिवाय देव मनुष्य विधाधरोंसे पूज्य चक्रवर्ती भी होते हैं। भावार्थ—विदेह क्षेत्रमें चक्रवर्तियोंकी संख्याका कोई नियम नहीं है वे प्रायः सर्वत्र होते ही रहते हैं।

२ मिथ्यात्वके नाश होनेसे सम्यक्त्वी देवकी आयु सहस्रार स्वर्ग तक आधासागर बढ जाती है। इसीप्रकार सम्यग्दर्शनके नाश होनेसे मिथ्यात्वी देवकी आयु आधासागर घट जाती है।

३ सम्यक्त्वका घात होनेपर सहस्रार स्वर्गतक आधेसागर आयु घट जाती है और मिथ्यात्वका घात होनेपर आधासागर बढ जाती है। यह कथन घातायुष्ककी अपेक्षा है।

समाधान–बारहवें स्वर्गसे ऊपरके स्वर्गोंमें जिनलिंगके सिवाय अन्य लिंगको धारण करनेवाले मिथ्यादृष्टियोंका गमन नहीं होता अर्थात् अन्यलिंगी मरकर बारहवें स्वर्गसे ऊपर उत्पन्न नहीं होते। बारहवें स्वर्गसे ऊपर जिनलिंगको धारण करनेवाले ही उत्पन्न होते हैं। तथा बारहवें स्वर्गसे ऊपर न तो सम्यक्त्वका नाश होता है और न मिथ्यात्वकी उत्पत्ति होती है। इसीलिये बारहवें स्वर्गसे ऊपर आयुके घटने बढनेका नियम नहीं है।

फिर प्रश्न–आयुके दो भेद हैं निधित और निःकांचित। सो इनमेंसे किस आयुवालेकी स्थिति घटती बढती है?

समाधान—निधित्तं आयुवालेकी स्थिति ही घटती बढती है। जैसे खदिरशाल नामके भीलकी आयु बढ गई थी और राजा श्रेणिककी घट गई थी।

६३। चर्चा त्रेसठवीं।

स्वर्गके देवोंकी हीनाधिक आयुका स्वरूप तो ऊपर लिखे अनुसार समझा परंतु भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क देवोंकी आयुके घटने बढनेकी विधि किस प्रकार है।

समाधान—भवनवासी व्यंतर और ज्योतिष्क इन तीनों प्रकारके देवोंमें जो जीव उत्पन्न होते हैं वे सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके बिना थोडासा व्रत तप करनेके पुण्यसे उत्पन्न होते हैं। इनमेंसे भवनवासी देवोंके तो सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनेसे आधेसागरकी आयु बढ़ जाती है तथा मिथ्यात्वके उदय होनेसे आधेसागर आयु घट जाती है। इसी प्रकार ज्योतिषी और व्यंतर देवोंके सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेसे आधे पल्यकी आयु बढ जाती है और मिथ्यात्वका उदय होनेसे आधे पल्यकी आयु घट जाती है। तथा सब जगह सब देवोंके मिथ्यात्वरूपी विषके वमन करनेसे तथा सम्यग्दर्शन रूपी अमृतके पीनेके अतिशयसे आयु बढ़ती है सो ही सिद्धांतसार दीपककी पंद्रहवीं संधिमें लिखा है।

ज्योतिर्भवनभौमेषु सम्यक्त्वप्राप्तितोंगिनाम्। किंचिद्व्रततपःपुण्यादुत्पद्यंते भवाध्वगाः॥ ३४॥
सम्यक्त्वप्राप्तिधर्माणां स्वायुर्भवनवासिनाम्। सागरार्द्धं च वर्द्धेत मिथ्यात्वशत्रुघातनात्॥ ३५॥

---

१ जो कर्म उदयावलीमें भी प्राप्त न हो सकें और संक्रमण अवस्थाको भी प्राप्त न हो सकें उसे निधत्तिकरण कहते हैं तथा जिस कर्मकी उदीरणा संक्रमण उत्कर्षण और अपकर्षण ये चारों ही अवस्थायें न होसकें उसे निःकाचितकरण कहते हैं।

ज्योतिष्कव्यंतराणां चायुः पल्यार्द्धं प्रवर्द्धते । मिथ्यात्वारिविनाशेन सम्यक्त्वमणिलाभतः ॥ ३६ ॥
सर्वत्र विश्वदेवानां मिथ्यात्वदुर्विषोज्झनात् । सम्यक्त्वामृतपानेन स्वायुः संवर्द्धतेतराम् ॥ ३७ ॥

त्रिलोकसारमें भी लिखा है।

उवहिदलं पलद्ध भवणे विंतरदुगे कमेणहियं । सम्मे मिच्छे घादे पल्लासंखं तु सव्वत्थं ॥ ५४१ ॥

इस प्रकार चतुर्णिकायके देवोंकी आयुकी वृद्धि हानिका स्वरूप सम्यग्दर्शन तथा मिथ्यात्वके महात्म्यसे समझ लेना चाहिये, अर्थात् सम्यग्दर्शनके माहात्म्यसे आयु बढ जाती है और मिथ्यात्वके प्रभावसे घट जाती है।

६४। चर्चा चौसठवीं।

चतुर्णिकाय देवोंकी आयु जब छह महीनेकी बाकी रह जाती है तब उनका तेज घट जाता है तथा उनके कंठकी माला मुरझा जाती है जिससे वे अपनी निकट आनेवाली मृत्युको समझ लेते हैं ऐसा कहते हैं सो सम्यग्दृष्टीकी माला मुर्झाती है या नहीं ?

समाधान—माला आदिके मुर्झानेका चिह्न मिथ्यादृष्टियोंके ही होता है। सम्यग्दृष्टियोंके नहीं होता। मिथ्यादृष्टि देव अपनी मृत्युके चिह्नोंको देखकर रोते हैं तथा अत्यंत दुखी होते हैं सम्यग्दृष्टीके यह दुःख नहीं होता है सो ही जंबूचरित्रकी तीसरी संधिमें लिखा है।

विद्युन्माली सुरस्यादौ कथ्यते कथिताधुना । प्रत्यक्षं पश्य भार्याभिश्चतुर्भिः सहितं हितम् ॥ २३ ॥
सम्यक्त्वसहितास्यास्य तेजस्तुच्छं न जायते । माला न झग्यते कंठे स्थिरचित्तस्य कर्हिचित् ॥ २४ ॥
सप्तमे दिवसेऽथासौ श्रुत्वा भूत्वा च मानुषः । चरमांगी तपो घोरं ग्रहीष्यति जिनोदितम् ॥ २५ ॥

---

१ देवोंकी आयु बढ़नेका अभिप्राय यह है कि दूसरे सागरमे उत्कृष्ट आयु दो सागरसे कुछ अधिक है। इसका अभिप्राय यह है कि साधारण जीवोंकी उत्कृष्ट आयु दो सागर है परंतु जिस घातायुष्क जीवका मिथ्यात्व छूट जाता है उसकी उत्कृष्ट आयु दो सागरके बजाय ढाई सागरकी हो जाती है क्योंकि दूसरे स्वर्गमें कुछ अधिकका अभिप्राय आधा सागर है। जिसने पहले भवमें अधिक आयुका वंध किया हो और फिर कारणवश आयु घट गई हो उसको घातायुष्क कहते हैं।

६५। चर्चा पैंसठवीं।

जो लोग पैरोंमें जूता पहनेहुए भगवानके मंदिरमें प्रवेश करते हैं अथवा लकड़ीकी खडाऊं पहिनकर जिनमंदिरमें जाते हैं उनको कैसा पाप लगता है?

समाधान--जो लोग पैरोंमें जूता पहिनकर भगवानके मंदिरमें प्रवेश करते हैं वे सात जन्म तक कोढी होते हैं तथा चमारके घर जन्म लेते हैं और जो लोग खडाऊं पहिनकर जिनमंदिरमें जाते हैं वे बढईके घर जन्म लेकर सात जन्म तक कोढ रोगसे पीडित होते हैं। सो ही लिखा है—

पादचर्मस्य रूढा ये चढंति श्रीजिनालये। सप्त जन्म भवेत्कुष्ठी चर्मारीगर्भसम्भवः॥
पादुकाभ्यां समागत्य ये चढंति जिनालये। सप्त जन्म भवेत्कुष्ठी बाढीकागर्भसम्भवः॥

ऐसा जानकर ऊपर लिखे कार्य कभी नहीं करने चाहिये।

६६। चर्चा छ्यासठवीं।

पूजाके समय जो नित्य पूजा की जाती है उसमें देव शास्त्र गुरुकी पूजा समुच्चय वा एक साथ की जाती है सो ही लिखा है—

देवेंद्रनागेंद्रनरेंद्रवंद्यान् शुंभत्पदान् शोभितसारवर्णान्।
दुग्धाब्धिसंस्पर्द्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम्॥

इत्यादि अर्घ पर्यंत ऐसाही समुच्चय पाठ है। सो इसमें देव पूजा तो मध्यमें करनी चाहिये तथा सरस्वती और गुरुपादुकाकी पूजा किस किस दिशामें करनी चाहिये?

समाधान—भगवान् अरहंत देवकी पूजा तो मध्यमें करनी ही चाहिये तथा सरस्वतीकी पूजा जिनप्रतिमाके दाहिनी ओर और गुरुकी पूजा बांई ओर करनी चाहिये। ऐसी आम्नाय है क्योंकि जिनप्रतिमाके दांई ओर सरस्वतीकी मूर्ति है और बांई ओर गुरुपादुका विराजमान हैं इसलिये पूजा भी इसीप्रकार करनी चाहिये।

६७। चर्चा सडसठवीं।

सातिशय अप्रमत्त नामके सातवें गुणस्थानके अंतिम भागसे महामुनिराज उपशम श्रेणी तथा क्षपक श्रेणी मांडते हैं। इनमेंसे

उपशम श्रेणीवाला वहांसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थानतक जाता है तथा फिर ग्यारहवें गुणस्थानसे नीचे गिरता है। सो इसमें प्रश्न यह है कि वे मुनिराज इसप्रकार अधिकसे अधिक कितनी बार उपशमश्रेणी चढते हैं कितने जन्म तक संयम धारण करते हैं और कितने समयमें मोक्ष प्राप्त करते हैं अथवा उन्हें मोक्ष प्राप्त होती ही नहीं ?

समाधान—अधिकसे अधिक चार बार उपशम श्रेणी चढते हैं। जो मुनिराज क्षपकश्रेणी चढते हैं वे केवलज्ञानपर्यंत चढते ही चले जाते हैं, क्षपकश्रेणीवाले मुनि कभी नीचले गुणस्थानमें नहीं गिरते तथा उपशमश्रेणीवाले जीव अधिकसे अधिक बत्तीसबार संयमको पालकर पीछे नियमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं। सो ही स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकामें लिखा है।

चत्तारिवारमुवसमसेणी समारुहदि रपविदकम्मं। सो वत्तीसं वाराई संजममुवलहिय णिव्वाणादि ॥

यहांपर बत्तीस ही जन्म समझना चाहिये इनमें भी देवगतिमें तो संयम है ही नहीं इसलिये मनुष्यपर्यायमें ही संयम समझ लेना चाहिये।

६८। चर्चा अडसठवीं।

मुनिराजके आहारके समयका प्रमाण क्या है ?

समाधान—तीन मुहूर्त दिन चढ जानेके बादसे लेकर जबतक तीन मुहूर्त दिन बाकी रहे तब तकके मध्यके समयमें मुनिराज अपने नित्य कार्योंसे निवृत्त होकर अंतराय और दोषोंको टालकर एक बार योग्य आहार लेते हैं। भावार्थ—प्रातःकाल तीन मुहूर्त तक आहार नहीं लेते। शामको तीन मुहूर्त दिन बाकी रहने तक लेते हैं आगे नहीं लेते। मध्यके समयमें सामायिकके समयको टालकर आहार लेते हैं। सो ही श्रीवट्टकेरस्वामी विरचित मूलाचारके प्रथम अधिकारमें लिखा है—

उदयत्थमणे काले णालीतियवज्जियम्हि मज्झम्हि। एकम्हि दुअ तिए वा मुहुत्तकालेयभत्तं तु ॥ ३५ ॥

सं०छाया—उदयास्तमनयोः कालयोः नालीत्रिकवर्जिते मध्ये। एकस्मिन् द्वयोः त्रिषु वा मुहूर्तकाले एकभक्तं तु ॥

मूलाचारप्रदीपकमें लिखा है—

---

१ गाथामें नाली शब्द है नाली शब्दका अर्थ मुहूर्त नहीं होता किंतु घडी होता है। मूलाचारप्रदीपके श्लोकमें भी घडी शब्द ही लिखा है। इसलिये सवेरे शामका तीन घडी समय छोडकर आहार लेते हैं यह अर्थ हुआ। —संपादक

विज्ञयाशनकालोत्र संत्यज्य घटिकात्रयम् । मध्ये च योगिनां भानूदयास्तमनकालयोः ॥

यह जो तीन मुहूर्त काल सुबह शाम छोडनेका बतलाया है वह भी उत्कृष्टकाल है मध्यमकाल दो मुहूर्त और जघन्यकाल एक मुहूर्त सुबह शाम छोड़नेका समझना चाहिये । सो ही मूलाचारप्रदीपकमें लिखा है—

तस्यैवाशनकालस्य मध्ये प्रोत्कृष्टतो जिनः । भिक्षाकाले मतो योग्यो मुहूर्तैकप्रमाणकः ॥ ३७ ॥
योगिनां द्विमुहूर्तप्रमाणो मध्यमो वचः । जघन्यस्त्रिमुहूर्तप्रमो भिक्षाकाल उदाहृतः ॥

६९ । चर्चा उनहत्तरवीं ।

पुलाक आदि मुनिराजके पांच भेद हैं उनके कौन कौनसा गुणस्थान है ?

समाधान—पुलाक और वकुश इन दो मुनियोंके छठा और सातवां गुणस्थान होता है । कुशील नामके मुनिके आठवें अपूर्वकरण नामके गुणस्थानसे लेकर उपशांतमोह नामके गुणस्थानतक चार गुणस्थान होते हैं । निर्ग्रंथ नामके मुनिके बारहवां क्षीणमोह नामका गुणस्थान होता है तथा स्नातकके तेरहवां सयोगिकेवली और चौदहवां अयोगिकेवली गुणस्थान होता है । इसप्रकार पुलाक वकुश कुशील निर्ग्रंथ और स्नातक इन पांचों प्रकारके मुनियोंके गुणस्थान छठेसे लेकर चौदहवें तक हैं । इन सब मुनियोंकी संख्या ढाई द्वीपभरमें अधिकसे अधिक तीन कम नौ करोड अर्थात् ८९९९९९९७ रहती है । उन सबको हमारा नमस्कार हो । सो ही आचार्य सकलकीर्तिविरचित सिद्धांतसारमें लिखा है ।

षष्ठसप्तमयोर्यौस्ते गुणस्थानद्वयोर्मुनी । विज्ञेयौ शास्त्ररीत्या च पुलाकवकुशाविह ॥
अपूर्वाद्युपशान्तेषु गुणस्थानेषु ये स्थिताः । प्रोक्तास्ते मुनिभिर्नित्यं कुशीलाह्वयधारिणः ॥
क्षीणमोहगुणस्थाने यस्तिष्ठेन्मुनिसत्तमः । ज्ञातोयभवभिः सर्वैर्निर्ग्रंथो हि प्रशांतधीः ॥
योगायोगगुणस्थाने वसन्ति यतयः खलु । ये मताः स्नातकास्ते च लोकालोकप्रकाशकाः ॥
सर्वेषां यतिनां संख्यास्त्रिऊना नवकोटयः । कथिताः श्रीजिनैः सर्वैस्तेषां नित्यं नमोस्तु ते ॥

१ इसमें सुबह शाम छोड़नेका जघन्य मध्यम उत्कृष्टकाल एक दो तीन मुहूर्त लिखा है ।

७० । चर्चा सत्तरवीं ।

एक दिन रातमें तथा एक महीनेमें वा एक वर्षमें पुरुषके कितने श्वासोच्छ्वास आते जाते हैं ?

समाधान—एक मुहूर्तके तीन हजार सात सौ तिहत्तर श्वासोच्छ्वास होते हैं तथा एक दिन रातके तीस मुहूर्त होते हैं। इस हिसाबसे एक दिन रातके एक लाख तेरह हजार एकसौ नव्वे श्वासोच्छ्वास हुए। सो ही लिखा है।

एकं च सयसहस्सं उस्सासमाणं तु तेरमसहस्साणं । ऊण दमएण अहिया दिवसणिसोहंति विण्णेया ॥

इसी हिसाबसे एक महीनेके तेतीस लाख पिचानवे हजार सात सौ श्वासोच्छ्वास होते हैं। सो ही लिखा है।

मासे वि य उस्सासा लक्खा तेतीस सय सहस्साणं । सत्त सयाइ जाणिउ कहिया हं पुव्वसास्साहिं ॥

इनको बारहसे गुणा कर देनेसे एक वर्षके श्वासोच्छ्वासोंकी संख्या चार करोड़ सात लाख अडतालीस हजार चार सौ होती है सो ही लिखा है।

चत्तारी कोडीओ लक्खा सत्तेव होंति णायव्वा । अडतालीससहस्सा चारिसया होंति वरिसेण ॥

इनको सौ से गुणा कर देनेसे सौ वर्षके चार अरब सात करोड अडतालीस लाख श्वासोच्छ्वास होते हैं। सो ही लिखा है।

चत्तारिय कोडिसया कोडिय सत लक्ख अडियाला । चत्तारीस सहस्सा सासा सत होंति वरिसेण ॥

इस प्रकार श्वासोच्छ्वासका प्रमाण गोमट्टसार आदि जैनसिद्धांतमें लिखा है।

७१ । चर्चा इकहत्तरवीं ।

ढाई द्वीपमें एक सौ सत्तर विजयार्द्ध पर्वत हैं उनमें रहनेवाले विद्याधरोंकी आयु काय सबकी समान होती है वा हीनाधिक होती है।

समाधान—विदेह क्षेत्रोंमें जो एक सौ साठ क्षेत्र हैं तथा तत्संबंधी जो एक सौ साठ विजयार्द्ध पर्वत हैं उनके जीवोंकी आयु काय तो सबकी समान है। वहांपर उत्कृष्ट आयु तो एक करोड पूर्व है तथा शरीरका प्रमाण पांच सौ धनुष है। वहांपर सदा चौथे

१ एक मेरु संबंधी बत्तीस विदेह होते हैं तथा पांचों मेरु संबंधी एक सौ साठ विदेह होते हैं इनमें प्रत्येकमें एक एक विजयार्द्ध पर्वत है सो एकसौ साठ विजयार्द्ध तो ये हुए। तथा पांच भरत और पांच ऐरावत क्षेत्रोंमें दस विजयार्द्ध होते हैं इसप्रकार एकसौ सत्तर विजयार्द्ध होते हैं।

कालके प्रारंभकीसी रीति बनी रहती है। तथा पांच भरत और पांच ऐरावत क्षेत्र संबंधी दस विजयार्द्धों पर रहनेवाले जीवोंकी आयु काय घटती बढती रहती है उत्सर्पिणी कालमें बढती रहती है और अवसर्पिणीकालमें घटती रहती है। उत्कृष्ट आयु एक करोड पूर्वकी होती है और शरीर पांच सौ धनुष ऊंचा होता है। यह अवस्था श्री ऋषभदेवके समयमें होती है। तथा उत्सर्पिणी कालके अंतिम तीर्थंकर श्री शांतके समयमें भी यही अवस्था रहती है। तथा श्रीमहावीरस्वामीके समयमें दो धनुषका शरीर और एक सौ वीस वर्षकी उत्कृष्ट आयु होती है। तथा मध्यवर्ती समयमें आयु काय भी हीनाधिक समझ लेना चाहिये। ऐसा श्री वृहत् हरिवंश-पुराणकी पांचवीं संधिमें श्लोक नं० ५१-५२-५३-५४-५५ में लिखा है। वहांसे विचार लेना चाहिये।

७३। चर्चा तिहत्तरवीं।

गर्भज जीवोंमें मनुष्यकी उत्पत्ति किसप्रकार होती है ?

समाधान—पुरुष स्त्रीके संयोग होनेपर स्त्रीके गर्भ रहता है सो पिताके वीर्य और माताके रुधिरके मिलनेसे माताके गर्भाशय-में जीव आकर उत्पन्न होता है। वह अनुक्रमसे बढता है और फिर जन्म लेता है। इसका भी विशेष वर्णन इसप्रकार है—योनिके भीतर गर्भाशयमें माता पिताके रजोवीर्यके इकट्ठे होनेपर जीव आकर उत्पन्न होता है। तदनंतर एक रात्रिमें उसका कल्वल बनता है। फिर पांच रातमें वह कल्वल बुद्बुदाके आकारमें परिणत हो जाता है। फिर पंद्रह दिनमें वह बुद्बुदा अंडेके रूपमें बन जाता है, एक महीने बाद उस अंडेमें मस्तक बननेका अंकूरा उत्पन्न हो जाता है। दो महीने बाद हृदय बनता है। तीसरे महीनेमें पेट बनता है, चौथे महीनेमें हाथ पैर बनते हैं. पांचवें महीनेमें हाथ पैरकी उगलियां और नख निकलते हैं छठे महीनेमें बाल और नेत्रों-की दृष्टि प्रगट होती है। सातवें महीनेमें शरीरका सब आकार तैयार हो जाता है। आठवें महीनेमें ज्योंका त्यों बना रहकर बढता है। नौवें वा दशवें महीनेमें उस माताके गर्भाशयसे वायुके द्वारा बाहर निकलता है, इसीको जन्म कहते हैं सो ही लिखा है—

कललं चैकरात्रेण पंचरात्रेण बुद्बुदाः। पक्षकेणांडकं चैव मासेन च शिरांकुरः॥
उरो मासद्वयं यावत् त्रिभिश्चैव तथोदरम्। शाखाश्चतुर्भिर्मासैश्च नखांगुलिश्च पंचमे॥
रोमदृष्टी च षष्ठे च सर्वेऽवयवाः सप्तमे। नवमे दशमे वापि वायुनाऽसौ वहिर्भवेत्॥

इसप्रकार मनुष्यकी उत्पत्ति समझना चाहिये।

७३। चर्चा तिहत्तरवीं।

ऊपर मनुष्योंकी उत्पत्ति कही है परंतु मनुष्योंमें तीन भेद होते हैं पुरुष, स्त्री और नपुंसक। सो एक ही गर्भमें तीन अवस्थाएं कैसे हो जाती हैं।

समाधान—जिस समय पिताका वीर्य अधिक होता है और माताका रज उस वीर्यसे कम होता है तथा उस जीवके पुरुषवेद नामकर्मका उदय होता है उस समय पुरुष उत्पन्न होता है। तथा जिस समय माताका रज अधिक हो पिताका वीर्य उस रजसे कम हो और उस जीवके स्त्रीवेद नामकर्मका उदय हो उस समय स्त्री वा कन्या उत्पन्न होती है। तथा माता पिताका रजो वीर्य समान हो और उस जीवके नपुंसक नामकर्मका उदय हो तो नपुंसक उत्पन्न होता है। सो ही लिखा है।

शुक्रस्याधिकतो बालः कन्या शोणितगौरवात्। शुक्रशोणितयोः साम्ये षंडत्वं तस्य जायते ॥
पितुः शुक्राच्च मातुश्च शोणिताद्गर्भसम्भवः। स्वकर्मपरिणामेन जीवोत्पत्तिरिष्यते ॥

इसप्रकार पुरुष स्त्री और नपुंसककी उत्पत्ति होती है।

यहां कोई प्रश्न करे कि एक स्त्रीके दो बालक किस प्रकार होते हैं ? तो इसका उत्तर यह है कि यदि चतुर्थ स्नानकी रात्रिमें वह स्त्री पुरुषसे दो बार संभोग करे तो उसके दो बालक उत्पन्न होते हैं। सो ही भावप्रकाश नामके आयुर्वेद शास्त्रमें लिखा है।

"युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु"।

तथा अन्य शास्त्रोंमें अन्य प्रकार भी इसका वर्णन किया है। वह इसप्रकार है—जो रात्रिमें संभोग समय परस्परकी हवाके घातसे रजोवीर्यका पिंड अलग अलग दो जगह हो जाय और उसमें दो जीव आ जायं तथा वे दोनों ही वृद्धिको प्राप्त होते रहें तो दो बालक उत्पन्न होते हैं। सो ही चिकित्सिकमें लिखा है।

परस्परानिलाघातात् प्रभिन्ने कलिले द्विधा। तनुप्रवृद्धे तद्युग्मे युग्मं तस्मात्प्रजायते ॥

ऐसा वैद्यकशास्त्रमें लिखा है।

७४। चर्चा चौहत्तरवीं।

मनुष्यकी उत्पत्ति तो समझमें आगई परंतु इस मनुष्यके शरीरमें क्या क्या पदार्थ है ?

समाधान—मनुष्यके शरीरमें जो जो पदार्थ हैं उन्हें संक्षेपसे लिखते हैं। माता पिताके संयोग होनेके बाद वह रजोवीर्यका पिंड दश दिनमें तो कलिल रूप होता है। उसके बाद दश दिनमें कलुषीरूप आकार होता है फिर दश दिनमें वह कलुषीरूप आकार स्थिर होता है। यहां तक एक महीना हुआ। इसके बाद दश दिनमें बुद्बुदा होता है। फिर दश दिनमें घनाकार होता है। फिर दश दिन बाद मांसकी पेशी बनने लगती है। इस क्रमसे दूसरे महीनेमें पुद्गल पूर्ण करता है। तदनंतर चर्म नख रोम अंग उपांग आदि अनुक्रमसे आठ महीने तक पहले कहे अनुसार उत्पन्न होते रहते हैं और फिर नौवें दशवें महीनेमें वह जन्म लेता है।

इस शरीरमें शिर, मुख, दाढी, सब शरीरके केश, बीस नख, बत्तीस दांत, धमनी, नाडी आदि सिरा नसें शुक्र ये सब पिताके गुणोंसे उत्पन्न होते हैं सो ही लिखा है—

केशाः स्मश्रु च लोमानि नखा दंता शिरस्तथा। धमन्यः स्नावयः शुक्रमेतानि पितृजानि हि ॥

तथा मांस, रुधिर, मज्जा, मेदा, कलेजा प्लीहा अंतडी नाभि हृदय गुदा ये सब माताके गुणोंसे उत्पन्न होते हैं सो लिखा है।

मांसासृक्मज्जमेदांसि यकृत्प्लीहांत्रनाभयः। हृदयं च गुदं चापि भवंत्येतानि मातृतः ॥

ऐसा चिकित्सिक भावप्रकाशमें शारीरिक सम्बन्धमें लिखा है।

अब आगे शरीरका विशेष स्वरूप कहते हैं पहले कहे हुए इस औदारिक शरीरमें ३०० हड्डियां हैं, ३०० संधियां हैं, ९०० स्नायु हैं जो कि तंतुके आकार हैं। ७०० सिरा हैं, ५०० मांसकी पेशियां हैं, ४ शिराजाल हैं, १६ कडरा हैं, ६ कंडमूल हैं, ७ त्वचा हैं, ७ कलेजा हैं, अस्सी लाख करोड रोमोंकी संख्या है, आमाशयमें रहनेवाली आंतोंकी पंक्ती १६, कुथिताश्रय ७, स्थूल ३ मर्मस्थान १०७ हैं जहांपर चोट लगनेसे यह जीव जीवित नहीं रह सकता। तथा ९ व्रणमुख हैं जो नित्य कुथित वस्तुओंसे बहते रहते हैं।

इस शरीरमें मस्तक तो अपनी अंजुलि प्रमाण है, मेदा नामकी धातु दंडांजलि प्रमाण है, मज्जा नामकी धातु अपनी स्वांजलि प्रमाण है, वीर्य स्वांजलि प्रमाण है, वसा धातु तीन निजांजलि मात्र है, पित्त भी तीन स्वांजलि प्रमाण है, श्लेष्मा भी तीन स्वांजलि प्रमाण है, आठ सेर रुधिर है, मूत्र नामका उपधातु सोलह सेर है, मिष्टा चौवीस हैं, नख बीस हैं, दांत बत्तीस हैं, इनके सिवाय कृमि कीट, निगोद आदि जीवोंसे यह शरीर भरा हुआ है, सात धातुओंके नाम ये हैं—रस रुधिर मांस मेदा हाड मज्जा शुक्र इन धातुओंसे भरा हुआ यह शरीर है। ऐसा समझकर इस शरीरसे ममत्व छोड़ देना चाहिये और अपने चैतन्य स्वरूपका विचारकर

इस संसार शरीरसे विरक्त हो जाना चाहिये। यह सब कथन श्री शिवकोटि मुनि कृत भगवती आराधनामें लिखा है सो वहांसे विचार लेना।

यहां कोई प्रश्न करे कि मनुष्यके शरीरकी उत्पत्ति जो पहले कही थी उससे यह कथन मिला नहीं सो यह विपरीतता क्यों है?

समाधान—विपरीतता नहीं है किंतु सामान्य और विशेष कथन हैं।

७५। चर्चा पिचहत्तरवीं।

तीर्थंकर गृहस्थाश्रममें अपने अवधिज्ञानको विचारें या नहीं?

समाधान—एकवार बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ गृहस्थावस्थामें ही अपने पुत्रके साथ सभामें विराजमान थे। वहांपर पट्ट-हस्तीका (मुख्य हाथीका) प्रसंग आगया था। उस समय भगवानने अपने अवधिज्ञानके द्वारा सब सभासदोंको उस पट्टहस्तीका वृत्तान्त कहा था। सो ही श्रीसोमसेन कृत लघु पद्मपुराणमें बारहवीं सन्धिमें लिखा है।

पट्टहस्ती तदा मुक्तः भुक्तिं करोति दुःखदाम्। तद्दृष्ट्वावधिनेत्रेण जिनः प्राह जनान् प्रति ॥ ११ ॥

इससे सिद्ध होता है कि तीर्थंकर गृहस्थ अवस्थामें अवधिज्ञानको जोडते हैं। अवधिज्ञानके विचारनेका (जोडनेका) कुछ निषेध नहीं है।

७६। चर्चा छिहत्तरवीं।

देवोंकी जातिमें दुर्गति जातिके देव सुने जाते हैं सो क्या देवोंमें भी दुर्गति है?

समाधान—जो अन्य लिंगी मिथ्या तपश्चरण कर देवगतिमें मिथ्यादृष्टि देव होते हैं। वे देव बड़ी बड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले सम्यग्दृष्टि देवोंके यहां काम करनेवाले आभियोग्य जातिके देव होते हैं अर्थात् वे दासके समान काम करते हैं, गीत गाते हैं, नृत्य करते हैं, बाजे बजाते हैं और बाहनका (सवारीका) रूप धारण करते हैं। इनके सिवाय कितने ही कुदेव किल्विष जातिके भी हैं। ये सब जीव दुर्गतिके ही कहलाते हैं तथा आयु पुरीकर स्वर्गसे चयकर तिर्यंच गतिमें पृथ्वी जल अग्नि वायुकायिक वनस्पति तथा त्रसकायिक पशु पक्षी होते हैं। सो ही रविषेणाचार्यविरचित पद्मपुराणके चौथे पर्वमें लिखा है—

यथाप्यूर्द्ध्वं तपः शक्त्या व्रजेयुः परलिंगिनः। तथापि किंकरा भूत्वा ते देवान् समुपासते ॥ ४२ ॥

देवदुर्गतिदुःखानि प्राप्य कर्मवशात्ततः। स्वर्गाच्च्युत्वा पुनस्तिर्यग्योनिमायान्ति दुःखिनः॥ ४३॥

इसप्रकार भगवान ऋषभदेवने अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा बतलाया है। इससे सिद्ध होता है कि ऐसे देव स्वर्गमें भी दुख देखकर मरनेके बाद तिर्यंचगतिमें जन्म धारण करते हैं। यही कथन श्रीवट्टकेर स्वामीने चारों गतियोंका वर्णन करते समय मूलाचारमें लिखा है—

कंदप्पमाभिजोग्गं किब्बिसं संमोहमासुरत्तं च। ता देव दुग्गईओ मरणम्मि विराहिए होंति॥ २८॥

टीका—कंदर्पं आभियोग्यं किल्विषं स्वमोहत्वं आसुरत्वं च। ताः देवदुर्गतयः मरणे विराधिते भवंति॥

इसप्रकार लिखा है सो यह सब मिथ्यात्वका फल है। इसका भी विशेष वर्णन इस प्रकार है—कंदर्प, आभियोग्य, किल्विष, असुर ये देवोंमें उत्पन्न होते हैं। जो जीव अंत समयमें समाधिमरणके विना केवल दुर्बुद्धि सहित मरण करते हैं वे ही ऊपर लिखे नीच देवोंमें उत्पन्न होते हैं। इसका भी अलग अलग खुलासा इस प्रकार है—जो योगी होकर भी असत्यवचन बोलते हैं, हंसी ठट्ठा करते हैं, राग बढानेवाले वचन कहते हैं, कामदेवके वशीभूत होकर कामसेवनमें लीन रहते हैं और कामदेवको उत्तेजित करनेवाली क्रियाएं करते रहते हैं ऐसे खोटे योगी मरकर कंदर्प जातिके देव होते हैं। सो वहां भी वे काम-क्रियाको बढानेवाले कार्य ही किया करते हैं तथा जो यंत्र तंत्र मंत्र आदि कार्योंको अधिकताके साथ करते हैं जो ज्योतिष वैद्यक आदि अशुभ कार्योंको करते हैं जो संघ वा चैत्यालयकी हँसी करते हैं, अनेक प्रकारकी चेष्टाएं करते हैं, जो धर्मात्माओंकी अविनय करते हैं, जो मायाचारी हैं और किल्विष अर्थात् पापकर्ममें सदा लीन रहते हैं ऐसे पुरुष मरकर देवगतिमें नीच योनिमें अर्थात् किल्विष जातिके देवोंमें उत्पन्न होते हैं। जो जीव कुमार्ग वा शास्त्रविरुद्ध मार्गका उपदेश देते रहते हैं, जो जिनमार्गका नाश करनेमें लगे रहते हैं, जो सम्यग्दर्शनसे सदा विपरीत चलते हैं, जो स्वयं सम्यग्दर्शन रहित होते हैं, महा मिथ्यात्वी रहते हैं, जो मिथ्यात्व, मायाचारी और मोहसे सदा मोहित रहते हैं तथा मोहसे सदा पीड़ित रहते हैं ऐसे जीव मरकर भंडाभरण जातिमें उत्पन्न होते हैं। जो यति होकर भी क्षुद्र, क्रोधी, दुष्ट, हिंसक, मायाचारी, दुर्जन हैं तथा जो तप और चारित्रमें परंपरासे वैर बांधते चले आ रहे हैं जिनके परिणाम सदा संक्लेशरूप रहते हैं और जो सदा निदान करते रहते हैं ऐसे जीव मरकर रौद्र परिणामोंको धारण करनेवाले असुरकुमार जातिके देवोंमें असुर होते हैं सो ही मूलाचार प्रदीपकमें समाधिमरणके प्रकरणमें मरणके सत्रह भेदोंमें कहा है।

कांदर्पमाभियोग्यं च कैल्विष्यं किल्विषापरम्। स्वमोहत्वं तथैवासुरत्वमत्वैः कुलक्षणैः ॥ ५९ ॥
सम्पन्ना दुर्द्धियो मृत्वा गच्छंति देवदुर्गतीः। कंदर्पाद्या इति प्रोक्ता नीचयोनिभवा दिवि ॥ ६० ॥
असत्यं यो ब्रुवन् हास्यसरागवचनादिकान्। कंदर्पोद्दीपका लोके कंदर्परतिरञ्जितः ॥ ६१ ॥
कंदर्य संति देवा ये नाम्नाचार्याः सुरालये। कंदर्पकर्मभिस्तेषु ह्युत्पद्यंते शतशमः ॥ ६२ ॥
मंत्रतंत्रादिकर्माणि यो विधत्ते वहूनि च। ज्योतिष्कभेषजादीनि परकार्याशुभानि च ॥ ६३ ॥
हास्यकुतूहलादीनि संघचैत्यालयस्य च। आगमस्याविनितोय अत्यनीकः सुधर्मिणाम् ॥ ६४ ॥
मायाविकिल्विषाक्रांतः किल्विषादिकुकर्मभिः। स किल्विषसुरो नीचो भवेत्किल्विषजातिषु ॥ ६५ ॥
उन्मार्गदेशको योत्र जिनमार्गविनाशकः। सन्मार्गाद्विपरीतः स दृष्टिहीनः कुमार्गगः ॥ ६६ ॥
मिथ्यामायादिमोहानां मोहयन् मोहपीडितः। जायते स स्वमोहेषु भंडाभरणजातिषु ॥ ६७ ॥
क्रोधी क्षुद्रः खलो मारी मायावी दुर्जनो यतिः। युक्तोनुबद्धवैरेण तपश्चारित्रकर्मसु ॥ ६८ ॥
संक्लिष्टः सनिदानो य उत्पद्यन्ते स कर्मणाम्। रौद्रासुरकुमारेषु।

इत्यादि लिखा है।

७७। चर्चा सतहत्तरवीं।

सिद्धांतमें आत्माके तीन भेद बतलाये हैं उनका स्वरूप क्या है ?

समाधान—इस लोकमें जीव नामक द्रव्यके तीन भेद बतलाये हैं—बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

जीवा हवंति तिविहा वहिरप्पा तहेव अंतरप्पा य परमप्पा। इत्यादि—

इनका स्वरूप इस प्रकार है। जिनकी आत्मामें मिथ्यात्व कर्मका तीव्र परिणमन होरहा है। जिनके अनंतानुबंधी क्रोध मान

माया लोभ इन चारों कषायोंका तीव्र उदय है तथा अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलन इन कषायोंका भी तीव्र उदय है तथा जो चैतन्य और शरीरको एक ही पदार्थ मानता है ऐसा जीव इस संसारमें बहिरात्मा गिना जाता है। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

मिच्छत्त परिणदप्पा तिव्वकसाएण सुट्ठ आविट्ठो। जीवं देहं एगं मण्णंतो होदि बहिरप्पा ॥ १९४ ॥

यह बहिरात्माका स्वरूप है।

जो जीव जिनवचनमें कुशल होता है, जो श्रीजिनेन्द्रदेवकी कुशल आज्ञाका पालन करनेवाला होता है अथवा जीव और शरीर का भेदविज्ञानी होता है अर्थात् जीव और शरीरको भिन्न भिन्न जाने, जो वक्ता हो, सम्यग्दर्शनको घात करनेवाले दुष्ट आठों मदोंको जीतने वाला हो उसे अंतरात्मा कहते हैं। वह अंतरात्मा तीन प्रकार है। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

जो जिणवयणे कुसला भेयं जांणति जीवदेहाणं। णिज्जय दुट्ठमयट्ठा अंतरअप्पा य ते तिविहा ॥ १९५ ॥

अंतरात्माके वे तीन भेद इस प्रकार हैं—जो पांचों महाव्रतोंको पालन करनेवाले हों, जो धर्मध्यान वा शुक्लध्यानमें निरंतर लीन हों, ध्यानमें जिनका शरीर निश्चल रहे और जो समस्त अपाय अर्थात् कर्मोंको जीतनेवाले हों ऐसे मुनियोंको उत्कृष्ट अंतरात्मा कहते हैं, सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

पंचमहव्वयजुत्ता धम्मे सुक्के विसंठिया णिच्चं। णिज्जयसयलमपाया उक्किट्ठा अंतरा होंति ॥ १९६ ॥

जो दर्शन व्रत आदि श्रावकोंके ग्यारह प्रतिमारूप गुणोंको धारण करनेवाले हों, जो श्रावकोंकी तिरेपन क्रियाओंका पालन करते हों ऐसे पांचवें गुणस्थानवर्ती श्रावक मध्यम अंतरात्मा है तथा जो जिन-वचनोंमें सदा अनुरक्त रहते हैं, जिनके दर्शन मोहनीयकी मिथ्यात्व आदि तीनों प्रकृतियां तथा चारित्रमोहनीयकी क्रोधमानमायालोभ ये चारों प्रकृतियां इसप्रकार सातों ही प्रकृतियां उपशमभावको प्राप्त होगई हों और क्षुधा तृषा आदि परिषहोंको सहन करनेमें खूब समर्थ हों ऐसे मुनियोंको भी मध्यम अंतरात्मा कहते हैं। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है।

सावयगुणे हि जुत्ता पमत्तविरदाय मज्झिमा होंति। जिणवयणे अणुरत्ता उवसमसीला महासत्ता ॥१९७॥

इसप्रकार मध्यम अंतरात्माका स्वरूप बतलाया। जो उपशमसम्यक्त्व क्षायिकसम्यक्त्व अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्वसे

सुशोभित हो, जो श्रीजिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंका भक्त हो, अपने किये हुए पापोंकी निंदा करनेवाला हो, महाव्रतादि गुणोंको धारण करनेकी जिसकी तीव्र लालसा हो ऐसे चतुर्थ गुणस्थानवर्ती श्रावकको जघन्य अंतरात्मा कहते हैं। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है।

अविरयसम्माइट्ठी होंति जहण्णा जिणप्पयभत्ता। अप्पाणं णिदंता गुणगहणे सुट्ठु अणुरत्ता ॥ १९८ ॥

इस प्रकार तीनों प्रकारके अंतरात्माओंका स्वरूप बतलाया।

जो परमौदरिक शरीरसे सुशोभित हैं और केवलज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोंके ज्ञाता दृष्टा हैं ऐसे श्री अरहंत भगवान सकल परमात्मा हैं तथा जिनके ज्ञान ही शरीर है, जो परमौदिक शरीरसे भी रहित हैं ऐसे सिद्धपरमेष्ठी निकल परमात्मा हैं। ये निकल परमात्मा सर्वोत्कृष्ट सुखसे सुखी हैं। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है।

ससरीरा अरहंता केवलणाणेण मुणिय सयलत्था। णाणसरीरा सिद्धा सव्वुत्तमसुक्खसंपत्ता ॥ १९९ ॥

इसप्रकार बहिरात्मा अंतरात्मा और परमात्माका स्वरूप जानना। इससे भी विशेष स्वरूप जानना हो तो श्री सकलकीर्तिकृत 'सार चतुर्विंशतिका' तथा श्रीयोगीन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाशसे जान लेना चाहिये। इनके सिवाय अन्य जैनसिद्धांतोंसे भी जान लेना चाहिये। उनमें विशेष लिखा है। हमने यहां संक्षेपमें लिखा है।

७८। चर्चा अठहत्तरवीं।

जीवोंके भाव कौन कौन हैं और उनका स्वरूप क्या है।

समाधान–जीव नामक तत्त्वके मूलभाव पांच हैं औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक। ये पांच भाव समस्त जीवोंके समुच्चयरूपसे हैं। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च। अध्याय २रा सूत्र १।

इनका अर्थ इनके शब्दोंसे ही निकलता है अर्थात् जो कर्मोंके उपशमसे हों उन्हें औपशमिकभाव कहते हैं, जो कर्मोंके क्षयसे

१ कल शब्दका अर्थ शरीर है जो शरीरसहित परमात्मा हों वे सकल परमात्मा हैं तथा जो शरीर रहित परमात्मा हों वे निकल परमात्मा हैं।

हों उन्हें क्षायिक भाव कहते हैं जो कर्मोंके क्षय और उपशम दोनोंसे हों उनको क्षायोपशमिक वा मिश्रभाव कहते हैं, जो कर्मोंके उदयसे हों उनको औदयिक और जो अपने आत्म तत्त्वसे उत्पन्न हों उनको पारिणामिकभाव कहते हैं। यह इनका सामान्य अर्थ है। इनके उत्तरभेद ५३ होते हैं, सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्। अध्याय २ सूत्र सं० २।

औपशमिक भावोंके दो भेद हैं–औपशमिक सम्यग्दर्शन और औपशमिक चारित्र। क्षायिकके नौ भेद हैं–केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतदान, अनंतलाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग, अनंत वीर्य। क्षायिक सम्यग्दर्शन और क्षायिकसम्यक्चारित्र। मिश्रभावके अठारह भेद हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, विभंगावधिज्ञान, चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशामिक चारित्र, और संयमासंयम। औदायिकके इकईस भेद हैं। नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, क्रोध, मान माया, लोभ, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसक वेद, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयत, असिद्धत्व, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, पीतलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या। तथा पारिणामिकके तीन भेद हैं–जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्व। ये सब मिलकर तिरेपन भाव होते हैं। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

सम्यक्त्वचारित्रे। ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च। ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च। गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः। जीवभव्याभव्यत्वानि च। अध्याय २ सूत्र सं० ३।४।५।६।७।

इसप्रकार इनका स्वरूप जानना। इनका विशेष वर्णन श्रीदेवसेनमुनि विरचित भावसंग्रहसे जान लेना चाहिये।

७९। चर्चा उन्यासीवीं।

मनुष्यके तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय पशु पक्षी आदि जीवोंके तीन वेद (लिंग–स्त्रीलिंग पुल्लिंग नपुंसक लिंग) होते हैं परंतु नरक गतिके जीवोंके और एकेंद्रियादि संमूर्च्छन असैनी जीवोंके कौनसा लिंग होता है।

समाधान–नरकके नारकियोंके तथा समस्त सम्मूर्च्छन जीवोंके केवल नपुंसक लिंगका उदय होता है। इसलिये उनके स्त्रीवेद और नपुंसक वेद नहीं होते ऐसा नियम है। तथा देवोंके नपुंसक वेद नहीं होता उनके स्त्रीवेद और पुंवेद दोही लिंग होते हैं और

मनुष्य तथा गर्भज पशु पक्षियोंके तीनों ही वेद होते हैं। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि। न देवाः। शेषास्त्रिवेदाः। अध्याय २ सूत्र सं० ५०।५१।

८०। चर्चा अस्सीवीं।

राजा शिशुपालने कृष्ण नामके नारायणको रुक्मिणीका हरण करते समय एक सौ गालियां दीं। तदनंतर नारायणने उसको मारा। इसप्रकार हरिवंशपुराण वा अन्य जैनपुराणोंमें सुना है। परंतु वहांपर सौ गालियोंके नाम कहीं नहीं लिखे केवल दो चार नाम लिखे हैं सो वे सौ गालियां कौन कौन सी हैं।

समाधान—रुक्मिणीके हरण करते समय युद्धमें शिशुपाल कृष्ण नामके वासुदेवसे कहता है—रे क्रोधी १ रे कीश २ रे कराल ३ रे कुनय ४ रे कुलहर ५ रे कद्वद ६ रे क्रूरकर्मा ७ रे काल ८ रे कामी ९ रे कलंकी १० रे कुबल ११ रे कलिकर १२ रे कातर १३ रे कंटकी १४ रे क्रूर १५ रे नपुंसक १६ रे कुविघ्न १७ रे कुमद १८ रे कपटी १९ रे नौकर्म २० रे कामांध २१ रे कीर २२ रे क्रोड़ा २३ रे कोष्ठ २४ रे कुलिंगी २५ रे कुचरण २६ रे कलुषि २७ रे क्रव्यभुज २८ रे कंपिन २९ रे कुप्रीत ३० रे कुमद ३१ रे कुरूप ३२ रे कुरणी ३३ रे काक ३४ रे कुवेष ३५ रे कुधृत ३६ रे कुष्ठी ३७ रे कीट ३८ रे कुलक्षणी ३९ रे कलभ ४० रे कारुण्यहीन ४१ रे कुधी ४२ रे कूर्म ४३ रे कुश्रवण ४४ रे कुरंग ४५ रे कुगुरु ४६ रे कौलेयक ४७ रे किंकर ४८ रे काम ४९ रे कापुरुष ५० रे कुलाल ५१ रे कुरव ५२ रे काकोदर ५३ रे कर्कश ५४ रे कुनेत्र ५५ रे कुवक्र ५६ रे कुनास ५७ रे कुकर्ण ५८ रे कुकंठ ५९ रे कुचेता ६० रे कुबाहु ६१ रे कुनाभि ६२ रे कुदंत ६३ रे कुजिह्व ६४ रे कुजंघ ६५ रे कुपाद ६६ रे कुभाग्य ६७ रे कुकर्मा ६८ रे कुतात ६९ रे कुपुत्र ७० रे कुराम ७१ रे कुसेव ७२ रे कुवर्ण ७३ रे कुवास ७४ रे कुलघ्न ७५ रे कुदेव ७६ रे कुचेल ७७ रे कुराग ७८ रे कुकीर्ति ७९ रे कुनाम ८० रे कुशील ८१ रे कुनीति ८२ रे कुवीर ८३ रे कुचार ८४ रे कुमान ८५ रे कुसंग ८६ रे कुबंधु ८७ रे कुमित्र ८८ रे कुमार ८९ रे कुवाल ९० रे कुजाति ९१ रे कुलारी ९२ रे कलाहीन ९३ रे कर्क ९४ रे कुभोजी ९५ रे कुबंघी ९६ रे कुराज्य ९७ रे कुभार ९८ रे कुजन्मा ९९ रे कुधर्म १००। इसप्रकार सौ गालियां शिशुपालने श्रीकृष्णको दीं और फिर और भी कुवचन कहे तब कृष्णने उसका वध किया सो ही 'जैनरत्नाकर'में लिखा है।

क्रोधी कीशः करालः कुनयकुलहरो कद्वदः क्रूरकर्मा,

कालः कामी कलंकी कुवलकलिकरो कातरः कंटकी च।
क्रूरः क्लीवः कुविद्यः कुमदकपटिनौकर्मकामांधकीराः,
क्रोडा क्रोष्टा कुलिंगी कुचरणकलुषी क्रव्यभुक् कंपिनश्च॥
कुप्रीतिः कुमदः कुरूपकुरणौ काकः कुवेषः कुधूत्,
कुष्ठी कीटकुलक्षणौ च कलभः कारुण्यहीनः कुधीः॥
कूर्मः कुश्रवणः कुरंगकुगुरू कौलेयकः किंकरः,
कामः कापुरुषः कुलालकुरवौ काकोदरः कर्कशः॥
कुनेत्रः कुवक्रः कुनासः कुकर्णः कुकंठः कुचेताः कुवाहुः कुनाभिः।
कुदन्तः कुजिह्वः कुजंघः कुपादः कुभाग्यः कुकर्मा कुतातः कुपुत्रः॥
कुरामः कुसेवः कुवर्णः कुवासः कुलग्नः कुदेवः कुचेलः कुरागः।
कुकीर्तिः कुनामा कुशीलः कुनीतिः कुवीरः कुचारः कुमानः कुसंगः॥
कुबंधुः कुमित्रं कुमारः कुवालः कुजाति कुलारिः कलाहीनकर्कौ कुभोजी।
कुबंधी कुराज्यः कुभारः कुजन्मा कुधर्मा हरेः गालयः स्युः शतानि॥

८१। चर्चा इक्यासीवीं।

ढाई द्वीपमें रहनेवाले समस्त विद्याधर तथा चारणऋद्धिको धारण करनेवाले महामुनिराज इस चित्रा पृथ्वीसे निन्यानवे हजार योजन ऊंचे चढकर मेरु पर्वतपर जा पहुंचते हैं ऐसी उनकी शक्ति है परंतु वे ही विद्याधर और महामुनि सत्रहसौ इकईस योजन ऊंचे मानुषोत्तर पर्वतको उलंघर कर ढाई द्वीपके बाहर जिनमंदिरोंकी बंदना करनेके लिये क्यों नहीं जा सकते?

समाधान–ढाई द्वीपके बाहर मनुष्यक्षेत्र नहीं है। मनुष्यक्षेत्र मानुषोत्तर पर्वत तक ही है इसीलिये इसका "मानुषोत्तर" (मनुष्य क्षेत्रसे आगे रहनेवाला) यह सार्थक नाम है। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः। अध्याय ३ सूत्र सं० ३५।

यही कारण है कि वे विद्याधर वा मुनिराज उसके आगे नहीं जासकते, मनुष्योत्तरके इधर ही रहते हैं। यदि कोई विमान-विद्यासे अथवा ऋद्धिसे मानुषोत्तरके आगे जाना चाहे तो भी उसकी सामर्थ्य चलती नहीं उसे उलटा पीछे ही आना पडता है। ऐसा नियम श्रीसर्वज्ञदेवके शासनमें कहा है।

यहां कोई प्रश्न करे कि यह कहना असंभव है क्योंकि यह कहना ऐसा ही है जैसा कोई यह कहे कि "एक हाथी एक कमंडलुमें घुस गया और वह उसके नालमें होकर निकल गया परंतु उसकी पूंछका एक बाल अटक गया तब लाचार होकर यह कहना पड़ा कि भाई एक तिहाई हाथी अटक गया" इसीप्रकार वे विद्याधर और मुनिराज निन्यायवे हजार योजन ऊंचे तो चले जायं परंतु उनसे सत्रहसौ इकईस योजन ऊंचा मानुषोत्तर पर्वत उल्लंघन न किया जाय अतएव यह कहना असंभव है।

उत्तर—जिसप्रकार इस जीवका स्वभाव ऊर्ध्वगमन करना है परंतु कर्मरहित मुक्त जीव भी लोकके शिखरपर्यंत ही जाते हैं। आगे अलोकाकाशमें नहीं जाते। वे भी अपने लोकके क्षेत्रपर्यंत ही गमन करते हैं। आगे गमन करनेमें वे भी असमर्थ हैं। इसीप्रकार मानुषोत्तर पर्वतके आगे भी कोई नहीं जा सकता।

प्रश्न–मुक्त जीव जो लोकशिखरसे आगे नहीं जाते उसका कारण तो लोकके आगे धर्मद्रव्यका अभाव है। धर्मद्रव्यके अभावसे ही आगे नहीं जासकते सो ही लिखा है।

धर्मास्तिकायाभावात् ॥

परंतु यहां किस द्रव्यका अभाव है जिसके कारण वे मानुषोत्तर पर्वतका उल्लंघन नहीं कर सकते। उत्तर—मानुषोत्तर पर्वतको उल्लंघन करनेकी सामर्थ्य न तो विमानोंमें है और न ऋद्धियोंमें है। इसीलिये वे उसका उल्लंघन नहीं कर सकते। आगे और भी उदाहरण लिखते हैं जिसप्रकार लवणोदधि आदि समुद्रोंके जलका पूर आता है उससमय वह जल ऊपरको ही बढता है अपने किनारेकी मर्यादा नहीं छोड़ता अर्थात् ऊंचा बंधा हुआ किनारा न होनेपर भी वह समुद्र अपना किनारा छोड़कर आगे नहीं बढता। अथवा लोहा नामकी धातुमें एक कांति नामका लोहा होता है उसकी कढाई भी बनती है उस कढाईमें यदि ऊपर तक

दूध भर दें और उसके नीचे अग्नि जलावें तो उस अग्निकी गर्मीसे उस दूधमें उफान तो आवेगा परंतु उस उफानसे वह दूध ऊपरको ही चढेगा उस कढाईके किनारेसे बाहर निकलकर वह पृथ्वीपर नहीं पडेगा। सो ही भावप्रकाश नामके आयुर्वेदशास्त्रमें लिखा है।

यत्पात्रे न प्रसरति जले तैलबिंदुः प्रलिप्ते हिंगुर्गन्धं त्यजति च निजं तिक्ततां निम्बकल्कः।
तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नेति भूमि कृष्णांगं स्यात्सजल चकणे कान्तलोहं तदुक्तम् ॥

अथवा मछली जलमें गमन करती है तथा जलकी महाधाराके सामने वा उसके ऊपर चली जाती है ऐसी उसकी शक्ति है तो भी वह जलके बाहर एक पैर भी नहीं चल सकती। अथवा सर्वार्थसिद्धि नामके विमानके अहमिंद्रोंका अवधिज्ञान और विक्रिया सातवें नरक तक कही है और वे अहमिंद्र सातवें नरक तक अपने अवधिज्ञानको जोड भी लेते हैं परंतु अपनी विक्रियाके द्वारा भी वे अपने विमानसे बाहर कभी नहीं जाते। इसप्रकारके अनेक दृष्टांत हैं। इसीप्रकार मानुषोत्तर पर्वतसे बाहर मनुष्यका गमन नहीं हो सकता। जो लोग मानुषोत्तर पर्वतके बाहर भी मनुष्यका गमन मानते हैं उन्हें जैनी नहीं समझना चाहिये।

तथा जो लोग मानुषोत्तरके बाहर तीर्थंकरोंके केशोंका गमन नहीं मानते वे भी मिथ्यादृष्टी हैं क्योंकि भगवान तीर्थंकर परमदेव दीक्षा लेते समय जब केशलोंच करते हैं तब उन केशोंको इन्द्र मणिमय पात्रमें रखकर क्षीरसागरमें क्षेपण करता है। ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। यदि वे केश मानुषोत्तरके बाहर नहीं जासकते थे तो फिर ऐसा लिखा ही क्यों है। पंचमंगल भाषामें लिखा है—

"क्षीरसमुद जल क्षिपिकरि गये अमरावती"

कोई कोई लोग इन केशोंको मायमायी मानते हैं सो भी मिथ्या है क्योंकि शास्त्रोंमें मायामयी केश नहीं लिखे हैं साक्षात् केश लिखे हैं। ऐसा जानकर जैसा शास्त्रोंमें लिखा है वैसा ही श्रद्धान करना ठीक है। शास्त्राज्ञाके विपरीत श्रद्धान कभी नहीं करना चाहिये।

८२। चर्चा बियासीवीं।

आस्रव तत्त्वके पुण्यपाप दो भेद हैं सो उनका विशेष स्वरूप क्या है जिनसे पुण्यपापका विशेष स्वरूप जाना जाय ?

समाधान—औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक ये तीन प्रकारके सम्यग्दर्शन, देव शास्त्र गुरुकी पूजा करना, अनशन आदि

बारह प्रकारका तपश्चरण पालना, उत्तम मध्यम जघन्य तीनोंप्रकारके सत्पात्रोंको दान देना, सब जीवोंपर दयाभाव धारण करना, इंद्रिय संयम (इंद्रियोंको दमन करना) और प्राणिसंयम (समस्त प्राणियोंकी रक्षा करना) ये दोनों प्रकारके संयम पालन करना, तेरहप्रकारके चारित्रको पालन करनेके लिये खूब अच्छी तरह उद्यम करना, पांचोंप्रकारके ज्ञानोंको धारण करना, कषायोंके जीतनेकी वृद्धि करना, जीवादिक छह द्रव्य तथा नौ पदार्थोंका यथार्थ श्रद्धान करना आदि शुभोपयोगके जितने कारण हैं और भगवान जिनेन्द्रदेवने कहे हैं वे सब पुण्यके अंश हैं अर्थात् पुण्यास्रवके कारण हैं। सो ही रत्नाकरमें लिखा है—

सम्यक्त्वं जिनपूजनं च सुतपो दानं दया संयमः चारित्राचरणे त्रयोदशविधौ सम्यक्प्रकारोद्यमः।
पंचज्ञानमतिः कषायविजयः षड्द्रव्यमर्थान्नव एते हि जिनभाषिताः शुभकरा पुण्यांशवो चास्रवाः ॥

ये तो सब पुण्यास्रवके कारण हैं तथा आहार भय मैथुन और परिग्रह ये चार संज्ञाएं, माया मिथ्या निदान ये तीन शल्य, क्रोधादिक पच्चीस कषाय, मन वचन कायकी क्रियारूप तीन दंड, राजकथा चोरकथा भोजनकथा स्त्रीकथा ये चार विकथाएं, कृष्ण नील कापोत ये तीन लेश्याएं, रसगारव, ऋद्धिगारव, तपगारव ये तीन गारव[1], एकांत, विपरीत, विनय, संशय, और अज्ञान ये पांच मिथ्यात्व, पांच प्रकारका काम[2], हलका, भारी, नरम, कठोर, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, खट्टा, मीठा, कडवा, चरचरा, कषायला, सुगंध, दुर्गंध, सचेतन, अचेतन, मिश्र, ये तेईस पांचों इन्द्रियोंके विषय, हिंसा, झूठ, चोरी कुशील परिग्रह ये पांच पाप, मोह, स्नेह, विषादकारण, कुमतिज्ञान, अहंकार, पंद्रह प्रमाद अथवा साडेसैंतीस हजार ३७५०० प्रमाद, इंधन और अग्निके द्वारा व्यापार करना, कलह आर्त्तध्यान रौद्रध्यान आदि सब पापके अंश अथवा पापास्रवके कारण हैं। सो ही रत्नाकरमें लिखा है।

संज्ञाशल्यकषायदंडविकथा लेश्या त्रयो गारवा मिथ्यापञ्चकपंचकामविषयाः पञ्चैव हिंसादयः।
मोहस्नेहविषादहेतुकुमतिः गर्वं प्रमादाखिलाः इन्धग्निव्यवसायहेतुकलहाः पापांशवोचास्रवाः ॥

ऐसा समझकर ऊपर लिखे हुए पापके आस्रवोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये तथा असद्भूत व्यवहारनयकी अपेक्षासे पुण्यास्रवोंके कारणोंको ग्रहण करना चाहिये। तथा शुद्धनयसे पुण्य पाप दोनों ही त्याज्य हैं।

१ गारव अभिमानको कहते हैं, ऋद्धियोंका अभिमान, तपका अभिमान, और शरीरका अभिमान।

२ शोषण, संतापन, उच्चाटन, वशीकरण, मोहन।

८३। चर्चा तिरासीवीं।

श्रावकके बारह व्रतोंमें दिग्व्रत और देशव्रत दो व्रत अलग अलग गुणव्रत हैं। दिग्व्रतमें योजनादिकके द्वारा दिशा विदिशाओं-का प्रमाण किया जाता है तथा मर्यादाके बाहर आने जानेका त्याग किया जाता है और देशव्रतको पालन करनेवाला देशोंका प्रमाण करता है। परंतु मर्यादा तो दिग्व्रतमें ही हो जाती है उसी क्षेत्रमें वह गमनागमन करता है फिर देशोंके प्रमाण करनेका क्या कारण है? देश भी तो दिशामें ही आगये। इसप्रकार ये दोनों ही व्रत एक रूप ही होते हैं इनमें कुछ विशेषता नहीं होती।

समाधान—दिग्व्रतमें तो समस्त दिशाओंका प्रमाण होजाता है फिर भी देशव्रतमें जो देशोंकी मर्यादा की जाती है उसका अभिप्राय यह है कि पहले जो दिशाओंकी मर्यादा की थी उसमें यदि कोई म्लेच्छ देश हो अथवा अनार्य देश हो जहांपर कि अपने व्रत और सदाचरणोंका भंग होता हो तो ऐसे अधार्मिक देशमें लोभादिकके कारण भी कभी नहीं जाना चाहिये। देशव्रत धारण करनेका यही अभिप्राय है सो ही वसुनंदिश्रावकाचारमें लिखा है।

वयभंगकारणं होई जम्मिदेसम्मि तत्थ णियमेण। कीरइ गमणणिवित्ती तं जाण गुणव्वयं विदियं ॥२१५॥

देशव्रतका यही अभिप्राय है और कुछ अभिप्राय नहीं है।

८४। चर्चा चौरासीवीं।

हिंसाका त्याग और उसका ज्ञान किस प्रकार है? क्योंकि विना समझे हिंसाका त्याग किसप्रकार किया जाय?

१। दिग्व्रतकी मर्यादा जन्म भरके लिये की जाती है और देशव्रतकी मर्यादा कुछ कालके लिये उसके भीतर की जाती है। यह दिग्व्रत और देशव्रत में अतर हैं। इसके सिवाय श्रीवसुनंदि श्रावकाचारमें देशव्रतका लक्षण लिखा है सो भी ठीक है क्योंकि जहांपर सम्यक्त्व नष्ट हो जाय अथवा व्रतोंमें दोष लग जाय ऐसे देशोंमें जानेका निषेध अन्य शास्त्रोंमें भी है। इसीकारण वर्तमान समयमें समुद्रयात्राका निषेध किया जाता है क्योंकि वर्तमानमें समुद्रयात्राके जो जो साधन हैं वे सब सम्यक्त्वका घात करनेवाले हैं क्योंकि वहांपर देवदर्शन पात्रदान आदिका कुछ साधन नहीं है इसीप्रकार व्रतोंके घातक हैं क्योंकि खाने पीनेके साधन होटल ही है और वहांपर मांसादिकका स्पर्श बच नहीं सकता। रसोई बनानेवाले मुसलमान और भंगियोंका स्पर्श बच नहीं सकता। यदि कोई स्वयं बनाना चाहे तो भी इनका स्पर्श बच नहीं सकता। इसलिये ऐसे देशोंमें जानेका त्याग करना भी देशव्रत है।

समाधान—इसका विशेष वर्णन इस प्रकार है। अहिंसा व्रत लेनेवालेको सबसे पहले नीचे लिखी चार बातें समझनी चाहिये और फिर उनका त्याग करना चाहिये। सबसे पहले हिंस्य हिंसक हिंसा और हिंसाफल इन चारोंका स्वरूप जान लेना चाहिये। संसारमें जो पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, नित्य-निगोद, इतरनिगोद, दो इंद्रिय, ते इन्द्रिय, चौ इंद्रिय, असंज्ञीपंचेंद्रिय, संज्ञीपंचेंद्रिय आदि अनेक प्रकारके जीव हैं वे हिंस्य (हिंसा करने योग्य) हैं इनके विशेष भेद और स्वरूपका वर्णन चौदह मार्गणा तथा वीस प्ररूपणाके द्वारा अनेक भेदरूप श्रीगोम्मटसार आदि अनेक जैनशास्त्रोंमें कहा है वहांसे समझ लेना चाहिये। यह हिंस्यका स्वरूप कहा। तथा ऊपर कहे हुए जीवोंकी हिंसा करनेवाला हिंसक है। ऊपर लिखे जीवोंका मरण होना हिंसा है। यह हिंसा शब्द हिंसार्थक हिसि धातुसे कृदन्तीय प्रत्यय होकर तथा स्त्रीलिंगमें आ प्रत्यय होकर बना है। हिंसा संबंधी जानने योग्य चारों भेदोंमें यह तीसरा भेद है। तथा उस हिंसाके पापसे उस हिंसा करनेवाले जीवको नरक तीर्यंच आदि अनेक प्रकारकी कुयोनियोंमें थोडा वा बहुत दुःख भोगना पडता है वह हिंसाका थोडा वा बहुत फल है। इस प्रकार हिंस्य हिंसक हिंसा और हिंसाका फल इन चारोंका स्वरूप जानकर फिर अपनी शक्तिके अनुसार हिंसाका त्याग करना चाहिये। सो ही अमृतचंद्रसूरिने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखा है—

अवबुध्य हिंस्यहिंसकहिंसाहिंसाफलानि तत्त्वेन। नित्यमवगूहमानैर्निजशक्त्या त्यज्यतां हिंसा ॥

अतएव अपनी शक्तिको देखकर अणुव्रत वा महाव्रत धारण कर हिंसादिकका त्याग करना चाहिये।

८५। चर्चा पिचासीवीं।

ऊपर जो हिंस्य हिंसक आदि भेद बतलाये उसमें हिंसाका फल थोड़ा और बहुत बतलाया। परंतु हिंसामें थोडा बहुत यह दो प्रकारका फल कैसा? क्योंकि समान हिंसामें समान फल होना चाहिये। फलमें न्यूनाधिकता क्यों होती है?

समाधान-ऊपर हिंसा बतलाई है उसके द्रव्यहिंसा भावहिंसा आदि कितने ही भेद होते हैं। जैसे किसीने बाह्य हिंसा तो की नहीं परंतु अपने योगोंके द्वारा प्रमादरूप प्रवृत्तिकी अर्थात् मनमें हिंसाका विचार किया और वचनसे भी हिंसाका प्रयोग किया तो उसके भी हिंसाका ही फल लगेगा। १। अथवा किसीने योगोंके द्वारा कोई प्रमाद नहीं किया अर्थात् मन वचनमें जीवोंकी रक्षाके परिणाम रखते हुए बडे यत्नाचारसे प्रवृत्ति की। ऐसी अवस्थामें उसके द्वारा बाह्य हिंसा हो नहीं सकती। तथापि यदि उससे हिंसा हो जाय तो भी उसके भाव दयारूप ही समझे जांयगे इसके हिंसाका पाप नहीं लगेगा। २। अथवा कोई हिंसा तो बहुत

थोडी करे परंतु उसके क्रोधादिक हिंसादिक परिणाम बहुत तीव्र हों तों उसके हिंसाका फल बहुत ही लगेगा। ३। अथवा किसीके भाव तो हिंसासे निवृत्ति रूप हों हिंसाके त्याग रूप हों परंतु उससे हिंसा बहुत हो जाय तो भी उसको उसका फल थोडा ही लगेगा। ४। अथवा एक ही प्रकारकी हिंसा किन्हीं दो जीवोंने की परंतु एकने तो बडे तीव्र कषायोंसे की इसलिये उसको फल भी बहुत ही लगेगा तथा दूसरेने बड़े मंद परिणामोंसे की इसलिये उसको उसका फल बहुत थोडा मिलेगा। ५। किसीने हिंसा करने का विचार किया परंतु वह शीघ्र हिंसा न कर सका तो उसको हिंसा करनेके पहले ही केवल विचार करनेमात्रसे हिंसाका फल मिल जाता है पीछे कालांतरमें वह उस हिंसाको करता है। ६। किसी जीवको हिंसा करके ही उसी समय उसका फल मिल जाता है॥ ७॥ किसीको हिंसा करने पर हिंसाका फल मिलता है॥ ८॥ किसीको विना हिंसा किये ही केवल विचार करने मात्रसे हिंसाका फल मिल जाता है। ९। हिंसा एक करता है परंतु उसके फल भोगनेवाले अनेक होते हैं जैसे किसी चोरको एक मनुष्य मारता है परंतु उसकी अनुमोदना बहुतसे मनुष्य करते हैं वे सब उस हिंसाके फल भोगनेवाले होते हैं। १०। हिंसा अनेक करते हैं परंतु फल एकको ही लगता है। जैसे युद्धमें हजारों लाखों मरते मारते हैं परंतु फल राजाको ही लगता है। ११। किसीसे शत्रुता रखकर उसको मारनेके लिये पहले उसको विश्वास दिलाना, दया करना उसका पालन करना सो भी सब हिंसाके फलको ही फलता है। १२। किसी रोगी जीवको दुखी देखकर अथवा अन्य किसी जीवको दुखी देखकर अथवा किसी जीवको मरता हुआ देखकर उसके बचानेका प्रयत्न करे चाहे वह प्रयत्न शस्त्रके द्वारा चीड फार करने रूप हो, चाहे अग्नि वा गर्म लोहेके द्वारा दागने रूप हो और चाहे लंघन आदि किसी अन्य दुख रूप हो। इन सब आसुरी प्रयत्नोंके द्वारा भी उसके प्राणोंकी रक्षा करे और इस प्रकार रक्षा करते हुए भी वह प्राणी मर जाय अथवा जीवित हो जाय परंतु उस चीड फाड़ या दाग वा लंघन आदि पीडा रूप प्रयत्नका फल दयारूप ही होता है क्योंकि उसके परिणाम उसकी रक्षा करनेके थे॥ १३॥ इस प्रकार हिंसाके फलमें भी थोडा बहुतपन आता ही है। अतएव यत्नाचारपूर्वक रहकर दया पालन करना चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार ऊपर लिखी सब प्रकारकी हिंसाका त्याग कर देना चाहिये। यही जैनसिद्धांतका सार है। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखा है—

अविधायापि हि हिंसां हिंसाफलभाजनं भवत्येकः। कृत्वाप्यपरो हिंसां हिंसाफलभाजनं न स्यात्॥५१॥
एकस्याल्पा हिंसा ददाति काले फलमनल्पम्। अन्यस्य महाहिंसा स्वल्पफला भवति परिपाके॥५२॥

एकस्य सैव तीव्रं दिशति फलं सैव मन्दमन्यस्य। व्रजति सहकारिणोरपि हिंसा वैचित्र्यमत्र फलकाले॥५३॥
प्रागेव फलति हिंसाऽक्रियमाणा फलति फलति च कृतापि। आरभ्य कर्तुमकृतापि फलति हिंसानुभावेन॥५४॥
एकः करोति हिंसां भवन्ति फलभागिनो बहवः। बहवो विदधति हिंसां हिंसाफलभुग्भवत्येकः॥ ५५॥
कस्यापि दिशति हिंसा हिंसाफलमेकमेव फलकाले। अन्यस्य सैव हिंसा दिशत्यहिंसाफलं विपुलम्॥ ५६॥
हिंसाफलमपरस्य तु ददात्यहिंसा तु परिणामे। इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्यहिंसाफलं नान्यत्॥ ५७॥
इति विविधभंगगहने सुदुस्तरे मार्गमूढदृष्टीनाम्। गुरवो भवन्ति शरणंप्रबुद्धनयचक्रसंचाराः॥ ५८॥

इस प्रकार श्रीअमृतचन्द्रसूरिने लिखा है।

८६। चर्चा छियासीवीं।

असत्यभाषणका त्याग करनेवाला असत्यको छोडकर और कौन कौनसे बचन न कहे तथा कौन कौनसे कहे।

समाधान—सत्य भाषण करनेवालेको सबसे पहले तो उसके अतिचार छोड देना चाहिये। वे अतिचार अनेक ग्रंथोंमें लिखे हैं। यथा—

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः॥

प्रथम तो इन पांचों अतिचारोंका त्याग कर देना चाहिये। इनके सिवाय नीचे लिखी बातोंका त्याग कर देना चाहिये। जो विद्यमान है उसको नहीं कहना, जैसे देवदत्त घरमें हैं फिर भी नहीं कह देना, यह पहला असत्य है। नहीं होनेपर विद्यमान है ऐसा कह देना, जैसे देवदत्त नहीं हैं तो भी है ऐसा कह देना, यह दूसरा असत्य है। जो पदार्थ है उसको बदल कर कहना जैसे

---

१ इस प्रकार हिंसाके अनेक भेद हैं इन सब भेदोंको न जाननेवालोंके लिये अनेक नयोंके जानकार गुरु ही कारण होते हैं अर्थात् परम ऋषि ही इनके भेद प्रभेद बता सकते हैं।

२ झूठा उपदेश देना, एकांतमें की हुई या कही हुई क्रियाको प्रगट कर देना, झूठे लेख लिखना, किसीकी धरोहर मार लेना तथा किसी तरह किसीके अभिप्रायको जानकर उसको प्रगट कर देना ये पांच सत्याणुव्रतके अतिचार हैं।

घरमें गाय है परंतु कहना घोडा है, यह तीसरा असत्य है। चौथे असत्यके गर्हित अवद्य अप्रिय ऐसे तीन भेद हैं। चुगली खाना वा निंदाके वचन कहना, हंसी ठठ्ठा करना, कठोर बचन कहना, अयोग्य बचन कहना, बकवाद करना, मिथ्यात्वको बढानेवाले, अप्रामाणिक और आगमविरुद्ध वचन कहना सो सब गर्हित वचन कहलाते हैं। जिन बचनोंसे प्राणियोंकी हिंसा हो ऐसे दूसरोंके अंग उपांगोंको छेदन भेदन करनेवाले, मारनेवाले बचन, अन्नादिकके व्यापार संबंधी वचन अथवा चोरी आदिके बचन सो सब अवद्य अथवा सावद्य बचन कहलाते हैं। अवद्य शब्दका अर्थ पाप है। पापरूप बचनोंको सावद्य वचन कहते हैं। जो दूसरेको बुरे लगें, भय उत्पन्न करें, खेद उत्पन्न करें, वैर, कलह शोक उत्पन्न करें अथवा और किसी प्रकारका संताप वा दुख उत्पन्न करें वे सब बचन अप्रिय कहलाते हैं। ये ऊपर सब असत्यके भेद हैं इसलिये सत्याणुव्रतीको कभी नहीं बोलने चाहिये। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखा है–

यदिदं प्रमादयोगादसदभिधानं विधीयते किमपि। तदनृतमपि विज्ञेयं तद्भेदाः सन्ति चत्वारः ॥९१॥
स्वक्षेत्रकालभावैः सदपि हि यस्मिन्निषिध्यते वस्तु। तत्प्रथममसत्यं स्यान्नास्ति यथा देवदत्तोऽत्र ॥९२॥
असदपि हि वस्तुरूपं यत्र परक्षेत्रकालभावैस्तैः। उद्भाव्यते द्वितीयं तदनृतमस्मिन् यथास्ति घटः ॥९३॥
वस्तु सदपि स्वरूपात्पररूपेणाभिधीयते यस्मिन्। अनृतमिदं च तृतीयं विज्ञेयं गौरिति यथाश्वः ॥९४॥
गर्हितमवद्यसंयुतमप्रियमपि भवति वचनरूपं यत्। सामान्येन त्रेधा मतमिदमनृतं तुरीयं तु ॥९५॥
पैशून्यहासगर्भं कर्कशमसमंजसं प्रलपितं च। अन्यदपि यदुत्सूत्रं तत्सर्वं गर्हितं गदितम् ॥९६॥
छेदनभेदनमारणकर्षणवाणिज्यचौर्यवचनादि। तत्सावद्यं यस्मात्प्राणिवधाद्याः प्रवर्त्तंते ॥९७॥
अरतिकरं भीतिकरं खेदकरं वैरशोककलहकरम्। यदपरमपि तापकरं परस्य तत्सर्वमप्रियं ज्ञेयम् ॥९८॥

इसके सिवाय बारह प्रकारके बचन और हैं आगे उन्हींको बतलाते हैं। अभ्याख्यान, बाक्बल, पैशून्य, अबद्धप्रलाप, रागोत्पाद, अरति उत्पाद, बंचना प्रमाण, निःकृति बचन, अप्रणति बाक्, मोघ वचन, सम्यग्दर्शन बचन और मिथ्यादर्शन बचन। ये बारह प्रकारके भाषण हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार हैं–

दूसरेसे कहना कि हमारे यहां तो हिंसा किये विना बनता ही नहीं परंपरासे अबतक यही रीति चली आ रही है देवताओंको बलिदान देना, यज्ञादिक कार्योंमें बकरे भैंसे आदिकी हिंसा करना, शिकार खेलना आदि सनातनोंका कुल धर्म है इत्यादि हिंसारूपी वचन कहना अभ्याख्यान बचन हैं। १। कलहरूप बचन कहना वाक्बल है। २। दुष्ट बुद्धिके द्वारा दूसरेकी निंदा करनेवाले बचन कहना सो पैशून्यता है। ३। जिसका अंत न आवे ऐसे अप्रमाण बचन कहना अवद्ध प्रलाप है। पागल पुरुषके समान बकवाद करना वा ऐसा ही झूठ बोलना प्रलाप कहलाता है। ४। राग उत्पन्न करनेवाले बचन कहना रागोत्पादन बचन हैं। ५। दूसरोंको द्वेष उत्पन्न करनेवाले बचन कहना अरतिकर वा अरति उत्पादन बचन कहलाते हैं। ६। असत्य वस्तुमें सत्यरूप विश्वास उत्पन्न करनेवाले वचन कहना वह वंचना प्रमाण है। ७। कपटरूप वचन कहना वह निकृति वचन है। ८। उच्च पदको धारण करनेवालेके लिये नमस्कार न करना तथा उसके अभावमें विनयके बचन नहीं कहना सो अप्रणतिवाक् है। ९। जिन बचनोंको सुन कर कोई भी मनुष्य चोरी करने लग जाय ऐसे बचन कहना सो मोघभाषा है। १०। जिन बचनोंसे दूसरोंको सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो ऐसे बचन कहना सो सम्यग्दर्शन भाषा है। ११। जिन बचनोंसे मिथ्यात्व उत्पन्न हो ऐसे बचन कहना मिथ्यादर्शन बचन है। इसप्रकार बचनोंके बारह भेद हैं। इनमेंसे सत्याणुव्रतियोंको सम्यग्दर्शन भाषाके सिवाय बाकीके ग्यारह प्रकारके बचनोंका त्याग कर देना चाहिये।

अब दश प्रकारके सत्य बचनोंको कहते हैं। नाम सत्य, रूपसत्य, स्थापना सत्य, प्रतीतिसत्य, स्मृतिसत्य, योजनासत्य, जिनपदसत्य, उपदेशसत्य और समयसत्य। ये दशप्रकारके सत्य हैं। इनका विशेष स्वरूप लिखते हैं—

जिसका जो नाम है उसको उसी नामसे पुकारना नामसत्य है। जैसे किसी दरिद्रीका रंकका नाम लक्ष्मीधर हो तो उसको लक्ष्मीधर ही कहना नामसत्य है। १। किसीका रूप बनाकर उस नामसे कहना जैसे किसीने नरकुंजरका चित्र बनाया और वह मारा गया तो यद्यपि उसमें साक्षात् जीव नहीं है तथापि उसको 'नरकुंजर मारा गया' ऐसा कहना रूपसत्य है। १। किसी विद्यमान अथवा अविद्यमान वस्तुको तदाकार अथव अतदाकार मूर्ति बनाकर उसमें उसीकी स्थापना करना, उसकी मूर्ति बनाकर मंदिरोंमें स्थापना करना जैसे श्रीषभदेवकी मूर्तिको श्रीऋषभदेव ही कहना सो स्थापना सत्य है।

जीवके औपशमिकादि भावोंके पांच भेद हैं तथा उन पांचों भावोंके तिरेपन भेद हैं। इन सबके विश्वास करनेका आगमके प्रमाणके अनुसार व्याख्यान करना सो प्रतीतिसत्य है। भेरी मृदंग आदि अनेक प्रकारके वाजोंके समुदायमेंसे किसी ऊंचे बाजेके

शब्दकी मुख्यता रखकर उसका ही नाम लेना सो स्मृति सत्य है। युद्धमें जो सेनाकी चक्रव्यूह गरुडव्यूह आदि अनेकप्रकारके व्यूहोंकी रचना की जाती है उनके अनुसार सेनाको चक्रव्यूहरूप गरुडव्यूहरूप कहना सो योजनासत्य है। जिस देशमें जिस वस्तुका जो नाम है उसको उसी नामसे कहना जनपद सत्य है। गांव, नगर, राज वा धर्मकी नीतिमें और आचार्य व साधु आदि-के उपदेशमें जो चतुर पुरुष हैं उनके वचनोंको यथायोग्य स्थान पर तथा यथायोग्य समयपर प्रमाण मानना सो उपदेश सत्य है। द्रव्य और पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान सर्वज्ञ देवको है, अल्पज्ञानी छद्मस्थोंको उनका पूर्ण ज्ञान नहीं है। छद्मस्थोंको उनका एकदेश ज्ञान है इसलिये प्रासुक अप्रासुक आदिका निश्चय केवली भगवानके बचनोंके अनुसार करना सो भाव सत्य है। षद्द्रव्य तथा नौ पदार्थोंके स्वभाव और पर्यायको कहनेवाले जैनशास्त्र हैं इसलिये उनके बचनोंको सत्य मानकर उनका श्रद्धान करना सो समय सत्य वा आगमसत्य है। इसप्रकार दश प्रकारकी सत्य भाषा है। सत्याणुव्रतियोंको इनका ग्रहण करना चाहिये। यह बारह प्रकारका असत्य और दशप्रकारके सत्यका व्याख्यान बृहद् हरिवंशपुराणसे लिखा है अथवा और भी जैनशास्त्रोंमें हैं वहांसे देख लेना चाहिये।

८७। चर्चा सत्तासीवीं।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य व्रतकी नौ बाड हैं तथा अठारह हजार भेद हैं सो कौन कौन हैं?

समाधान–स्त्रीके साथ निवास नहीं करना। स्त्रीके रूप तथा शृंगारको विकार भावोंसे नहीं देखना २ स्त्रियोंसे भाषण नहीं करना तथा उनके मधुर बचनोंको रागभावोंसे नहीं सुनना। ३ पहले भोगी हुई स्त्रियोंका स्मरण नहीं करना ४ कामको उद्दीपन करनेवाले पदार्थ जैसे घी, दूध, मिश्री, लड्डू, मेवा, भांग, विष, उपविष, मादक (नशा उत्पन्न करनेवाले) और पौष्टिक पदार्थ पारा आदि धातु, उपधातु, सोने, चांदी, मोती आदिकी भस्म, रस, रसायन, बलवान और वीर्य बढानेवाली औषधियां तथा अन्य प्रकारके गरिष्ठ भोजन नहीं करना। ५ स्त्रियोंके शृंगारसंबंधी शास्त्रोंको न पढ़ना न सुनना। ६ स्त्रियोंके आसनपर नहीं बैठना तथा उनकी शय्यापर नहीं सोना। ७ कामकथा न कहना न सुनना। ८ भोजन पान आदिके द्वारा पेटको पूरा नहीं भरना। ९ इसप्रकार ब्रह्मचर्यकी नौ बाड हैं सो ये सब ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिये हैं। जिसप्रकार चावल गेहूं आदि अन्नोंके खेतोंमें उनकी रक्षाके लिये चारों ओर कांटोंकी बाड लगा देते हैं उसीप्रकार ब्रह्मचर्यकी रक्षाकेलिये ये ऊपर लिखी नौ बाड हैं। जिसप्रकार विना बाडके खेत नष्ट हो जाते हैं उसीप्रकार इन नौ बाडोंके विना शीलका भंग होजाता है।

अब आगे अठारह हजार शीलोंके भेदोंको लिखते हैं। चैतन्य रूप स्त्रियोंके ३ भेद हैं मनुष्यणी देवांगना और तिर्यंचनी। तथा अचेतन स्त्रीका एक भेद है काठ, पत्थरकी तथा चित्रामकी किसी स्त्रीका रूप बनाना अचेतन स्त्री है। इसप्रकार स्त्रियोंके चार भेद होते हैं। इनका त्याग मन वचन कायसे तथा कृत कारित अनुमोदनासे किया जाता है सो स्त्रियोंके ४ भेदोंको मन वचन कायकी ३ संख्यासे गुणा करनेसे १२ भेद होते हैं और इन बारहको कृत कारित अनुमोदनाकी ३ संख्यासे गुणा करनेसे ३६ भेद होते हैं। ये छत्तीसो प्रकारके भेद पांचों इंद्रियोंसे त्याग किये जाते हैं इसलिये स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, इन इंद्रियोंकी ५ संख्यासे गुणा करनेसे १८० भेद हो जाते हैं। इन १८० भेदोंको दश प्रकारके संस्कारोंसे त्याग किया जाता है इसलिये १८० को १० से गुणा कर देनेसे १८०० भेद हो जाते हैं। उन १० संस्कारोंके नाम ये हैं। स्नान उबटन आदि लगाना, शृंगार करना, राग बढाने वाले कार्य करना, हंसी विनोद आदि रूपसे क्रीडा करना, संगीत वाद्य (गाना बजाना) विषय सेवनका संकल्प करना, दर्पणमें मुख देखना, शरीरकी शोभा बढाना, पहले भोगी हुई स्त्रियोंका स्मरण करना और मनमें चिंता की प्रवृत्ति करना। ये दश संस्कार कहे जाते हैं। तथा इन १८०० भेदोंका त्याग कामके दश प्रकारके वेगोंसे भी किया जाता है इसलिये १८०० को १० से गुणा कर देनेसे १८००० भेद हो जाते हैं। कामके १० वेग ये हैं। स्त्रीके मिलनेकी चिंता होना १ स्त्रीके देखनेकी इच्छा होना २ दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेना (लंबी सांस लेना) ३ उन्मत्त हो जाना ४ अपने प्राणोंमें भी संदेह करना ५ वीर्यपात हो जाना ६ दुःख वा पीड़ा होना ६ कामज्वर वा दाह होना ८ अन्नमें अरुचि होना ९ और मूर्च्छा आना १०। ये दश कामके वेग कहलाते हैं। इनसे गुणा कर देनेसे १८००० भेद हो जाते हैं।

इसके सिवाय इस शीलके और प्रकारसे भी १८००० भेद हो जाते हैं जिनसे शीलांग रथ बान जाता है। उन्हींको आगे लिखते हैं। रत्नाकरमें लिखा है—

जेणो करंति मणसा णिज्जिय आहार सण्णि सो इंदी, पुढवीकायारंभा खंति जुआ ते मुणी वंदे ॥

अर्थात् मन वचन काय, कृत कारित अनुमोदना, चार संज्ञा, पांच इंद्रियां, पृथ्वीकाय आदि दश प्रकारके जीवोंके आरंभ और उत्तम क्षमा आदि दश प्रकारके धर्म, इनसे परस्पर गुणा करनेसे १८००० भेद हो जाते हैं इन १८००० भेदोंसे बने हुए शीलरूपी रथको चलानेवाले महामुनिराज होते हैं इसलिये ऐसे मुनिराजको हम नमस्कार करते हैं।

अब आगे शीलांग रथकी रचना लिखते हैं—

शीलके १८००० भेद जो पहले प्रकारसे बतलाये हैं उनके नष्ट तथा उद्दिष्ट द्वारा प्रत्येक भेदके निकालनेका यंत्र ।

मन त्याग ६०००	वचन त्या० ६०००	काय त्याग ६०००							
कृत त्याग २०००	कारित त्या० २०००	अनुमत त्याग २०००							
आहार त्याग ५००	भय त्या० ५००	मैथुन त्या० ५००	परिग्रहत्याग ५००						
श्रोत्रइन्द्रिय त्याग १००	चक्षुरिन्द्रियत्याग १००	घ्राणेंद्रिय त्याग १००	रसनेंद्रिय त्या १००	स्पर्शनेंद्रिय त्याग १००					
पृथ्वीकायारंभत्या १०	अपकायारंभ त्या १०	तेजस्कायारंभ त्याग १०	वायुकायारंभ त्याग १०	वनस्पतिकायारंभत्याग १०	वेइंद्रियारंभ रंभ त्याग १०	तेइन्द्रियारंभ त्याग १०	चतुरिन्द्रिया त्याग १०	असंज्ञी पंचें द्रियारंभत्याग १०	संज्ञीपंचेंद्रिया रंभ त्याग १०
उत्तम क्षमा १	उत्तम मार्दव १	उत्तम आर्जव १	उत्तम शौच १	उत्तमसत्य १	उत्तयसंयम १	उत्तम तप १	उत्तम त्याग १	उत्तम आकिंचन्य १	उत्तमब्रह्मचर्य १

शीलके १८००० भेदोंमेंसे नष्ट तथा उद्दिष्ट द्वारा प्रत्येक भेदके निकालनेका यंत्र ।

कृत १	कारित २	अनुमोदना ३							
मन ०	वचन ३	काय ६							
आहार ०	भय ९	मैथुन १८	परिग्रह २७						
स्पर्शन ०	रसना ३६	घ्राण ७२	चक्षु १०८	श्रोत्र १४४					
पृथ्वीकाय ०	अप्काय १८०	तेजस्काय ३६०	वायुकाय ५४०	वनस्पति काय ७२०	वेइंद्रिय ९००	तेइन्द्रिय १०८०	चौइन्द्रिय १२६०	असंज्ञी पचेंद्रिय १४४०	संज्ञी पंचेंद्रिय १६२०
क्षमा ०	मार्दव १८००	आर्जव ३६००	शौच ५४००	सत्य ७२००	संयम ९०००	तप १०८००	त्याग १२६००	आकिंचन्य १४४००	ब्रह्मचर्य १६२००

तिर्यंचिनी	मनुष्यणी	देवांगना	अचेतन							चार प्रकारकी स्त्रियां।
१	२	३	४							
मन	वचन	काय								योगोंसे त्याग।
१	४	८								
कृत	कारित	अनुमोदना								कृत कारित अनुमोदनासे।
०	१२	२४								
स्पर्शन	रसना	घ्राण	चक्षु	श्रोत्र						इन्द्रियोंसे।
०	३६	७२	१०८	१४४						
का०	शृं०	राग०	हंसी	संगीत०	विषय	दर्पण०	शो०	स्म०	चिं०	१०सं स्कार
०	१८०	३६०	५४०	७२०	९००	१०८०	१२६०	१४४०	१६२०	
मिलाप	देखना	सांस	उन्मत्त	प्राणसंदेह	वीर्यपात	दुख	दाह	अरुचि	मूर्च्छा	१० वेग।
०	१८००	३६००	५२००	७२००	९०००	१०८००	१२६००	१४४००	१६२००	

इस प्रकार शीलांग रथकी रचनाका यंत्र जानना आगे इसीको स्पष्ट करनेके लिये शीलके १८००० भेद लिखते हैं। किसी स्त्रीका त्याग मन वचन कायसे तथा कृत कारित अनुमोदनासे किया जाता है। सो इनको परस्पर गुणा करनेसे नौ भेद होते हैं। तथा चारों संज्ञाओंसे त्याग किया जाता है सो चारसे गुणा करनेसे ३६ भेद होते हैं। तथा इन छत्तीसोंका पांचों इंद्रियोंसे त्याग किया जाता है सो इनको पांचसौ गुणा करनेसे १८० भेद होते हैं। तथा इन १८० का त्याग पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चौ इंद्रिय, असंज्ञी पर्चेंद्रिय, संज्ञी पंचेंद्रिय इन दश प्रकारके जीवोंके आरंभसे किया जाता है इसलिये १८० को १० सौ गुणा करनेसे १८०० भेद होते हैं। तथा इन सबका त्याग उत्तमक्षमा आदि दश धर्मोंके साथ साथ धारण किया जाता है। इसलिये १८०० को १० से गुणा करनेसे १८००० भेद हो जाते हैं।

इनके सिवाय और प्रकारसे भी १८००० भेद होते हैं। अचेतन स्त्रियां तीनप्रकार हैं काठकी बनी पत्थरकी बनी और रंगकी बनी। इनका त्याग मन वचनसे किया जाता है तथा कृत कारित अनुमोदनासे किया जाता है। सो तीनको मन वचनसे गुणा करनेसे ६ तथा कृत कारित अनुमोदनासे गुणा करनेसे १८ भेद होते हैं। इनका त्याग पांचों इंद्रियोंसे किया जाता है सो ५ से गुणा करनेसे ९० भेद हो जाते हैं। इन ९० का त्याग दोनों द्रव्य भावेंद्रियसे किया जाता है सो २ से गुणा करनेसे १८० भेद होते हैं। इन १८० का त्याग चारों कषायोंसे किया जाता है इसलिये ४ से गुणा करनेसे ७२० भेद हो जाते हैं। ये अचेतन स्त्रियोंके त्यागके भेद हुए। तथा चेतन स्त्रियां ३ प्रकार हैं मनुष्यणी देवी तिर्यंचनी। इनका त्याग मन वचन कायसे तथा कृत कारित अनुमोदनासे इन ९ से किया जाता है इसलिये ९ से गुणा करनेसे २७ भेद होते हैं। इनको पांच द्रव्येंद्रिय और पांच भावेंद्रियसे त्याग किया जाता है इसलिये १० से गुणा करनेसे २७० भेद होते हैं। इनका त्याग चार संज्ञाओंसे किया जाता है सो ४ से गुणा करनेसे १०८० भेद होते हैं। इनका त्याग १६ कषायोंसे किया जाता है इसलिये १६ से गुणा करनेसे १७२८० सत्रह हजार दो सौ अस्सी भेद होते हैं। ये चेतन स्त्रियोंके त्यागके भेद हैं इनमें अचेतन स्त्रियोंके त्यागके ७२० भेद मिलानेसे १८००० भेद हो जाते हैं।

ये सब भेद स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकासे लिखे हैं। तथा एक ही कथनको दो बार लिखा है सो खुलासा करनेकेलिये लिखा है।

८८। चर्चा अठासीवीं।

प्रश्न—शीलकी नौ वाडमें भांग पीनेका भी निषेध लिखा है सो भांग पीनेमें क्या दोष है?

समाधान—इस भांग वा विजयाके पीनेसे अथवा किसी अन्य प्रकार सवन करनेसे मद्य पीनेके समान १८ दोष साक्षात् उत्पन्न होते हैं आगे उन्हीं दोषोंको लिखते हैं। भांग पीनेसे नींद अधिक आती है, १ हंसी अधिक आती है २ बचनकी प्रवृत्ति अधिक होती है ३ चंचलता बढ जाती है ४ मूर्च्छा हो जाती है ५ बहुत बकने लगता है ६ मोह ७ मद ८ प्रमाद ९ कलह १० स्नेह बढ जाता है ११ परिणामोंमें भ्रम हो जाता है १२ घूमनेकी प्रवृत्ति हो जाती है १३ मौन धारण कर लेता है १४ विचार नष्ट होजाता है १५ व्याकुलता बढ जाती है। १६ प्रसंग वा अधिक विषय सेवनकी इच्छा हो जाती है १७ और कामवासना बढ जाती है १८। इसप्रकार भांग पीनेसे १८ दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये ऐसा कौन विचारशील है जो इसका सेवन करे ? भावार्थ—विचारशील तो इसका सेवन नहीं करते, अज्ञानी और मूर्ख ही इसका सेवन करते हैं। सो ही रत्नाकरमें लिखा है—

निद्राहास्यवचोऽगतिश्चपलता मूर्च्छा महाजल्पनं, व्यामोहः प्रमदः प्रमादकलहस्नेहाः विचारे भ्रमः।
घूर्मो मौनविचारहानिविकलप्रासंगकामातुरं, भृंगी चाष्टदशप्रदोषजननी कैः पंडितैः सेव्यते ॥ ५५ ॥

इसलिये मूर्ख लोग ही इसका सेवन करते हैं।

आगे भांग पीनेवालोंकी जो दशा होती है उसे एक उदाहरण देकर दिखलाते हैं। एक भांग पीनेवाला पुरुष किसी भांगके अखाडेमें भांग लेकर गया। वहां एक शिलापर भांग पीसकर छानकर पी और फिर उस शिलाको मस्तकके नीचे रखकर किसी छायामें सोगया। थोडी देर बाद ही वहांपर दूसरा भांग पीनेवाला आया। उसको वहांपर वह पीसनकी शिला दिखाई नहीं दी, तलाश करने पर उस सोनेवालेके मस्तकके नीचे मिली। तब उसने उसके मस्तकके नीचे धीरेसे एक पत्थर रख दिया और वह शिला निकाल ली। तथा अपनी भांग पीस छान पीकर वह कहीं बाहर चला गया। तदनंतर उस सोनेवालेकी आंख खुली तब वह उस भांगके नशेमें ही सोचने लगा कि मैं तो पहले शिलावाला था, पाषाणवाला तो मैं नहीं था। इससे मालूम होता है कि मैं बदल गया जो पहले था सो नहीं रहा। मैं और ही होगया। और पत्थर वाला मैं हूं नहीं। ऐसा विचारकर वह अखाडेके लोगोंसे पूछने लगा कि "हे मित्रो ! मैं जो पहले था वही हूं या बदलकर और होगया हूं। मैं तो पाषाणवाला नहीं था शिलावाला था परंतु अब पत्थरवाला होगया सो मैं बदल ही गया। पहलेवाला नहीं रहा" इसप्रकार वह बार बार बकने लगा। तब लोगोंने उसे समझाया कि तू पहलेका ही है बदला नहीं है परंतु उसने माना ही नहीं। वह बराबर बकता ही रहा तथा लोग भी भांगके नशेमें वैसे ही बनगये और तू पहला ही है पहला ही है इस प्रकार बार बार बकने लगे। तदनंतर कुछ समय बाद उसे विचार उठा कि "ये झूठे

है मैं किसीकी नहीं मानता। मैं तो अब घर जाकर अपनी स्त्रीसे पूछूंगा वह जरूर पहिचान लेगी।" यह सोचकर वह घर चला। घर जाते समय मार्गमें उसी बातको सब लोगोंसे पूछते पूछते थक गया। लोगोंने पहले तो उससे सच बात कही परंतु पीछे उसे पागल समझकर उन्होंने हंसी करनेके लिये बहुत सी झूठी बातें कहीं। उन सबको सुनता हुआ अनेक स्त्री पुरुष और बच्चोंके साथ वह घर पहुंचा अपनी कन्याका नाम लेकर स्त्रीसे पूछा कि "हे फलानेकी मा! तू मुझे पहिचान और सच कह कि मैं वही तेरी पुत्री-का पिता हूं या और हूं। मैं तो शिलावाला था पत्थरवाला कैसे होगया। मैं पहले तो पत्थरवाला नहीं था। तू सच कह" इसप्रकार वह सबको देख देखकर बकने लगा तब वह स्त्री बोली कि तुम मेरी कन्याके पिता हो और मेरे तुम स्वामी हो। तुमको ऐसे बचन नहीं कहने चाहिये, लोग सब हंसते हैं। इसलिये सावधान होकर बैठो। परंतु फिर भी वह बहुत देरतक बकता ही रहा, अपनी स्त्रीके बचन भी उसने नहीं माने। तब स्त्रीने उसके पास बैठकर उसे विश्वास दिलाया और हाथ जोड़कर नमस्कार कर अमृत रूपी बचनोंसे कहा कि "यदि मैं झूठ कहूं तो मेरी कन्याकी सौगंध है। तुम वे ही हो, और नहीं हो।" स्त्रीके ये बचन सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ स्त्रीके गलेसे लग गया और हृदयसे हृदय मिलाकर बोला कि "हे माता! तूने खूब पहिचाना" पतिकी यह बात सुनकर वह स्त्री बडी लज्जित हुई और कहने लगी कि "अलग हटो, मद्य पीनेवाले पुरुषके समान क्या बक रहे हो, दूर रहो।" अपनी स्त्रीकी यह बात सुनकर वह भांग पीनेवाला पुरुष कहने लगा कि "हे माता! अबकी बार तू फिर कुछ कहेगीतो मैं तुझे अपनी दादी कहूंगा" जब वह इसप्रकार बकने लगा तब सब लोग उसके जन्ममें धूल डालते हुए उठ गये। इसप्रकार भांग पीनेवालेकी कथा लोकवार्तामें है और सुनकर लिखी गई है तथा पहले कहे हुए अठारह दोषोंसे भी मिलती है इसलिये लिखी हैं। ऐसा समझकर समझदार लोगोंको इसका त्याग कर देना ही उचित है।

जो अज्ञानी हैं, मूर्ख हैं, दुष्ट हैं, दुर्बुद्धि हैं, कामी हैं, हीनाचारी हैं वा नीच जातिके हैं वे ही भांग पिया करते हैं। इसके सिवाय बरसातके दिनोंमें तथा जाडेके दिनोंमें उसमें अनेक सूक्ष्म त्रस जीव उत्पन्न होजाते हैं। परंतु पीनेवाले प्रमादी पुरुष उसे अग्निमें गर्मकर धोकर पीसकर पीते हैं फिर भला उनके पापोंका क्या ठिकाना है?

इसके सिवाय द्राक्षासव, लोहासव आदि अनेक प्रकारका आसव निकलवाकर लोग पिया करते हैं सो वह भी मद्यके ही समान है क्योंकि अनंत निगोद जीवोंका तथा असंख्यात त्रस जीवोंका घात होनेपर आसव तैयार होता है और उसे लोग पीजाते हैं। वैद्यक शास्त्रोंके अनुसार इसके बनानेमें भी मद्यके समान ही भारी हिंसा होती है। इसका केवल नामही दूसराहै बाकी गुण सब

मद्यके हैं। इसलिये बुद्धिमानोंको इसका दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये। तथा जिन्हें नरक निगोद आदि दुर्गतियोंमें जाना है वे पीते ही हैं।

इसके सिवाय हुका तमाकू बीडी सिगरेट आदिकोंका पीना भी महा हिंसाका कारण है। भ्रष्टाचारका फैलानेवाला, उच्छिष्टपान करानेवाला और निगोदका घर है इसलिये जैनकुलवालोंको तो इसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये क्योंकि इसके पीनेवाले जैनी नहीं रह सकते उन्हें अकुलीन ही समझना चाहिये।

८९। चर्चा नवासीवीं।

लोग कहते हैं कि संसारी जीव आयु पूर्णकर पौने दो घड़ीमें जाकर पुद्गलको ग्रहण करनेरूप आहारको ग्रहण करते हैं सो क्या ठीक है?

समाधान—यह कहना असत्य है शास्त्रोक्त नहीं है। क्योंकि पूर्व शरीरको छोड़कर नवीन गतिके नवीन शरीरको ग्रहण करनेके लिये मार्गमें अधिकसे अधिक तीन समय तक यह जीव अनाहारक रहता है। अधिकसे अधिक चौथे समयमें नवीन पुद्गलोंको अवश्य ग्रहण कर लेता है। वही आहार है सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकः। अध्याय २ सूत्र सं० ३०

आहार ग्रहण करनेके बाद फिर अन्य यथायोग्य पर्याप्तियोंको क्रमसे धारण करता है। आहार पर्याप्तिके बाद शरीर पर्याप्तिको धारण करता है।

तीन हजार सात सौ तिहत्तरि श्वासोच्छ्वासकी दो घड़ियां वा एक मुहूर्त होता है तीन हजार छ सौ पिचासी श्वासोच्छ्वासका एक अंतर्मुहूर्त होता है। तथा पौने दो घड़ीके तीन हजार तीन सौ तथा एक श्वासके सोलह भागोंमेंसे छह भाग ३३००६/१६ श्वासोच्छ्वास होते हैं। यदि एक श्वासके कुछ अधिक करोड़ों भाग करनेसे जो एक भाग आता है उसको आवली कहते हैं और एक आवलीमें असंख्यात समय होते हैं। ऐसे तीन समय तक अधिकसे अधिक विग्रह गतिमें यह जीव अनाहारक रहता है। इसलिये पौने दो घड़ीमें आहार लेता है यह बात सर्वथा मिथ्या है। अतएव ऐसा श्रद्धान कभी नहीं करना चाहिये। जो शास्त्रोंमें लिखा है उसीके अनुसार श्रद्धान करना चाहिये।

९० । चर्चा नब्बेवीं ।

ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावकके दो भेद हैं-क्षुल्लक और ऐलक। इनमेंसे क्षुल्लक तो बैठकर पात्रमें रक्खे हुए भोजनको अपने हाथसे गस्सा उठाकर भोजन करता ही है परंतु ऐलक श्रावक किसप्रकार भोजन करता है वा उसे किस प्रकार भोजन करनेका अधिकार है ?

समाधान—ऐलक श्रावक भी बैठकर पात्रमें रक्खे हुए भोजन पानादिकको ग्रहण करता है। अंतर केवल इतना है कि क्षुल्लक अपने हाथसे ही उठाकर ग्रहण करता है और ऐलक दूसरेके हाथके द्वारा अपने हाथमें रक्खे हुए भोजनको ग्रहण करता है परंतु वह बैठकर ही ग्रहण करता है। मुनिराजके समान खडे होकर भोजन नहीं लेता ऐसा सिद्धांत है। यथा—

कोपीनोऽसौ रात्रिप्रतिमायोगं करोति नियमेन। लोचं पिच्छं धृत्वा भुंक्ते ह्युपविश्य पाणिपुटे॥ २१॥

इसीप्रकार धर्मोपदेश पीयूषवर्षाकर नामके श्रावकाचारमें लिखा है—

यः कोपीन धरोरात्रिप्रतिमायोगमुत्तमम्। करोति नियमेनोच्चैः सदासौ धीरमानसः॥ २२॥
लोचं पिच्छं च संधत्ते भुंक्तेऽसौ चोपविश्य वै। पाणिपात्रेण पूतात्मा ब्रह्मचारी स चोत्तमः॥ २३॥

९१ । चर्चा इक्यानवेवीं ।

इस मध्यलोकमें लवणोदधि आदि असंख्यात समुद्र हैं उनमेंसे लवणोदधि कालोदधि और अंतके स्वयंभूरमण समुद्रमें तो जलचर जीवोंका सद्भाव है ही परंतु बाकीके समुद्रोंमें जलचर जीवोंका निवास है वा नहीं ?

समाधान—ऊपर लिखे हुए तीन समुद्रोंके सिवाय बाकी जो पुष्कर आदि असंख्यात समुद्र हैं उनमें अप्कायिक जीव तो हैं परंतु मगर मच्छ आदि जलचर त्रस जीवोंका सद्भाव उनमें सर्वथा नहीं है। उनमें जलचर जीवोंका सर्वथा अभाव है सो ही स्वामिकार्तिकेयाऽनुप्रेक्षामें लिखा है-

लवणोए कालोए अंतिम जलहिम्मि जलयरा संति। सेस समुद्देसु पुणो ण जलयरा संति णियमेण॥४४॥

यही बात मूलाचारके बारहवें अधिकारमें लिखी है-

लवणे कालसमुद्दे सयंभुरमणे य होंति मच्छादो। अवसेसेसु समुद्देसु णत्थि मच्छत्थमयराया॥ ४०॥

इसीप्रकार त्रिलोकसार आदि अन्य ग्रंथोंमें भी यह कथन इसीप्रकार लिखा है।

९२। चर्चा बानवेवीं।

यह जीव संसारमें एक अंतर्मुहूर्तमें भवके उत्कृष्ट जन्म मरण कितने करता है?

समाधान—यह संसारी आत्मा कमसे कम एक श्वासके अठारहवें भाग आयु पाता है तथा अपर्याप्त नाम कर्मके उदयसे एकेंद्रियादि सत्रह स्थानोंमें एक अंतर्मुहूर्त समयमें छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस ६६३३६ वार जन्म मरण करता है सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

उस्सासट्ठारसमे भागे जो मरदि ण य समाणेदि। एका वि य पज्जत्ति लद्धीय पुणो हवे सो दु॥ ३७॥

सो ही गोम्मट्टसारमें लिखा है।

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठी सहस्सगाणि मरणाणि। अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा॥

इसका विशेष स्वरूप इस प्रकार है—दो इंद्रियके भव ८० ते इंद्रियके ६० चौ इंद्रियके ४० पंचेंद्रियके २४। इन पंचेंद्रियके २४ भवोंमें भी तीन भाग हैं। तहां मनुष्योंमें लब्ध्यपर्याप्तकके भव ८, संज्ञी पंचेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके भव ८ तथा असंज्ञी पंचेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके भव ८ इस प्रकार त्रस जीवोंके सब मिलाकर २०४ जन्म मरण होते हैं तथा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारण वनस्पति कायिक इन पांचोंके स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे दस भेद होते हैं। तथा प्रत्येकवनस्पतिका एक स्थूल ही भेद होता है। इसके दो भेद नहीं होते। ये सब ग्यारह भेद होते हैं इनमें प्रत्येकके छह हजार बारह जन्म मरण होते हैं इसलिये ग्यारह प्रकारके स्थावर जीवोंके जन्म मरणके छयासठ हजार एक सौ बत्तीस ६६१३२ जन्म मरण होते हैं। इनमें पहलेके त्रस जीवोंके छह स्थानोंके २०४ जन्ममरण मिला देनेसे सब मिल कर ६६३३६ भेद होजाते हैं। ये सब संसारी जीवोंके क्षुद्रभव हैं। सो ही गोमट्टसारमें लिखा है—

सीदीसट्ठीतालं वियलं चउवीस होंति पंचक्खे। छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीस मेयक्खे॥
पुढवीगागणिमारुद साहारण थूल सुहमपत्तेया। एदेसु अपुण्णेया इक्केक्के बारकं छक्कं॥

इस प्रकार एक श्वासके अठारहवें भाग आयुके प्रमाणसे एक अंतर्मुहूर्तमें सत्रह स्थानोंमें यह संसारी जीव मिथ्यात्वके उदयसे सर्वोत्कृष्ट क्षुद्रभव ६६३३६ धारण करता है।

९३। चर्चा तिरानवेवीं।

चौवीस तीर्थंकरोंमेंसे ऐसे कौन कौनसे तीर्थंकर हैं जिनका विवाह नहीं हुआ है। भावार्थ—जो बालब्रह्मचारी हैं, विवाह किये विना ही कुमारावस्थामें दीक्षा धारण कर तपोवनमें चले गये ऐसे तीर्थंकर कौन कौन हैं?

समाधान—श्रीवृषभदेवसे लेकर श्रीवर्द्धमान पर्यंत चौवीस तीर्थंकरोंमेंसे वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर ये पांच तीर्थंकर कुमारकालमें ही जिनदीक्षा धारण कर महातपस्वी हुए हैं सो ही लिखा है—

वासुपूज्यस्तथा मल्लिर्नेमिः पार्श्वोऽथ सन्मतिः। कुमाराः पञ्च निष्क्रांताः पृथिवीपतयः परे॥

इनके सिवाय बाकीके उन्नीस तीर्थंकर विवाह कर निर्ग्रंथ हुए हैं। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है—

तिहुयणपहाणसामिं कुमारकालेवि तविय तवयरणं। वसुपुज्जसुयं मल्लिं चरमतियं संथुवे णिच्चं॥

इस प्रकार पांच तीर्थंकर कुमार वा बालब्रह्मचारी समझना चाहिये।

९४। चर्चा चौरानवेवीं।

लवणोदधि, कालोदधि और अंतके स्वयंभूरमण समुद्रके जलका स्वाद तो खारा वा जलके समान मालूम है परंतु बाकीके असंख्यात समुद्रोंके जलका स्वाद कैसा है?

समाधान—ऊपर कहे हुए तीन समुद्रोंके सिवाय बाकीके असंख्यात समुद्रोंके जलका स्वाद ईखके रसके समान मीठा और स्वादिष्ट है।

प्रश्न—ईखके रसके समान मीठा जल तो इक्षुवर समुद्रका है परंतु यहांपर सब समुद्रोंका जल ऐसा मीठा कैसे कहा? तथा क्षीरोदधि समुद्रका जल तथा घृतोदधि समुद्रका जल जुदी जुदी तरहका बतलाया है इसलिये सबका एकसा स्वाद कैसे कहा।

समाधान—क्षीरोदधि तथा घृतोदधि आदि समुद्रोंके जलका स्वाद नहीं बतलाया है किंतु उसका वर्ण बतलाया है। स्वाद तो सबका ही ईखके समान मीठा है। सो ही त्रिलोकसारमें लिखा है—

लवणं वारुणितियमिदिकालदुगंतिसयंभुरमणमिदि। पत्तेय जलसुवादा अवसेसा होंति इच्छुरसा॥ ३१९॥

यही बात मूलाचारके बारहवें अधिकारमें लिखी है–

पत्तेयरसा चत्तारि सायरा तिण्ण होंति उदयरसा। अवसेसा य समुद्दा खोदरसा होंति णायव्वा॥ ३८॥

यहांपर क्षौद्र शब्दका अर्थ इक्षु वा ईखका है। सिद्धांतसार प्रदीपकमें भी लिखा है–

कालोदे पुष्करम्भोधौ स्वयंभूरमणार्णवे। केवलं जलसुस्वादं जलौघं च भवेत्सदा॥
क्षीराब्धौ क्षीरसुस्वादु सद्रसांभो भवेन्महत्। घृतस्वादसमस्निग्धं जलं स्याद् घृतवारिधौ॥
एतेभ्यः सपूर्वाब्धिभ्यः परे संख्यातसागराः। भवंतीक्षुरसस्वादसमाना मधुराः शुभाः॥

९५। चर्चा पिचानवेवीं।

भवनवासी व्यंतर और ज्योतिष्क ये तीन प्रकारके देव भवनत्रिक कहलाते हैं ये तीनों प्रकारके देव अपनी शक्तिके द्वारा ऊपर की ओर कहांतक गमन कर सकते हैं तीर्थंकरोंके जन्माभिषेकके समय पांडुकशिलातक तो ये देव जाते ही हैं परंतु इसके ऊपर जा सकते हैं या नहीं?

समाधान—ऊपर लिखे हुए ये तीनों प्रकारके देव अपनी इच्छासे सौधर्म स्वर्ग तक गमन कर सकते हैं। सौधर्म स्वर्गसे ऊपर वे अपनी इच्छासे गमन नहीं कर सकते यदि स्वर्गोंके रहनेवाले देव इनको आकर ले जांय तो उनके ले जाये गये जा सकते हैं। परंतु इस प्रकार ले जाये जाये गये भी सोलहवें अच्युत स्वर्ग तक जा सकते हैं सो भी अपनी शक्तिसे नहीं। तथा सोलहवें स्वर्गसे आगे दूसरे देवोंके द्वारा ले जाने पर भी नहीं जा सकते। यह नियम है सो ही सिद्धांतसारदीपकमें चौदहवीं संधिमें लिखा है–

क्रियामात्रोवधिस्तेषामधोलोकेऽपि जायते। भावना व्यंतरा ज्योतिष्का गच्छंति स्वयं क्वचित्॥ २०॥
तृतीयक्षितिपर्यंतमधोलोके स्वकार्यतः। सौधर्मैशानकल्पांतमूर्ध्वलोके निजेच्छया॥ २१॥
तेपि सर्वे सुरैर्नीता भावनाद्यास्त्रयोऽमराः। षोडशस्वर्गपर्यंतं प्रीत्या यांति सुखाप्तये॥ २२॥

देव लोग तीर्थंकरोंके जन्म समयमें आते हैं सो मुनिसुव्रतके जन्म समयमें जो चार प्रकारके देव आये थे उनमेंसे भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क आदि सब देव पहले सौधर्म इंद्रके दरवाजे पर आकर इकट्ठे हुए थे फिर वहांसे सब मिलकर भगवानकी जन्म-पुरीमें आये थे ऐसा सोमसेनकृत लघु पद्मपुराणके ग्यारहवें अधिकारमें लिखा है—

सेन्द्राश्च व्यंतराः सर्वे भवनवासिनस्तथा। ज्योतिषाः सपरिवारा नाना यानैश्च संयुताः ॥ २८ ॥
सौधर्मेन्द्रगृहे द्वारं संप्राप्ता विभवान्विताः। तथा षोडशस्वर्गस्थदेवास्तत्र समागताः ॥ २९ ॥

इस प्रकार वर्णन है। इससे भी सिद्ध होता है कि भवनत्रिक पहले स्वर्गतक जा सकते हैं।

९६। चर्चा छ्यानवेवीं।

श्री वासुपूज्य तीर्थंकरकी मोक्ष चंपापुरीसे हुई है या राजनमालिका नदीके पास मंदारगिरि पर्वतसे हुई है?

समाधान—श्री वासुपूज्य स्वामी चंपापुरी नगरीके बाहर मंदराचल पर्वतपर जो मनोहर नामका बन है वहांसे मोक्ष पधारे हैं। जब उनकी आयु एक महीनेकी बाकी रहगई थी तब वे अपना योग निरोध कर पद्मासनसे विराजमान थे तथा अंतमें वहींसे भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीकी संध्याके समय विशाखा नक्षत्रमें चौरानवे मुनियों सहित मोक्ष पधारे ऐसा श्रीगुणभद्राचार्यविरचित उत्तरपुराणमें (श्रीवासुपूज्यपुराणमें) लिखा है।

स्थित्वात्र निष्क्रियो मासे नद्या राजनमालिका—संज्ञायाश्चित्तहारिण्याः पर्यंतावनिवर्तिनि ॥ ५१ ॥
अग्रमंदरशैलस्य सानुस्थानविभूषणे। बने मनोहरोद्याने पल्यंकासनमाश्रितः ॥ ५२ ॥
मासे भाद्रपदे ज्योत्स्ने चतुर्दश्यापराह्णके। विशाखायां ययौ मुक्तिं चतुर्नवतिसंयतैः ॥ ५३ ॥

९७। चर्चा सतानवेवीं।

उत्कृष्ट मध्यम तथा जघन्य पात्रके लिये दिये हुए दानका फल तथा कुपात्रके लिये दिये हुए दानका फल तो प्रसिद्ध है प्रायः सबने सुना है। परंतु लोभी पुरुषके लिये दान देनेवालेकी कैसी शोभा होती है?

समाधान—जो पुरुष लोभी पुरुषके लिये दान देता है उसकी शोभा आचार्य श्रीकुंदकुंद स्वामीने मृतक पुरुषके विमानके समान (विमानके आकारमें बनाई हुई अरथीके समान) बतलाई है। जिस प्रकार मृतक पुरुषके विमानके आगे रुपये पैसे बखेरे जाते हैं

बड़ी शोभा की जाती है, चांडाल आदि उसका यश भी गाते हैं और सब लोग उसकी शोभा बढाते हैं परंतु घरवाले मालिककेलिये तो वह दान (बखेर) और वह शोभा आदि सब छाती कूटने और सिर धुननेके लिये ही होती है तथा रुला रुलाकर महा दुःख उत्पन्न करती है ऐसी ही शोभा लोभी पुरुषको दान देनेकी है। इसलिये सत्पुरुषोंकेलिये दिया हुआ दान तो कल्पवृक्षादिकके सुखोंको उत्पन्न करता है और लोभीके लिये दिया हुआ दान ऊपर लिखे अनुसार फल देता है। सो ही रयणसारमें लिखा है-

सप्पुरुसाणं दाणं कप्पतरूणं फलाण सोहं वा। लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा स जाणेइ ॥ २४ ॥

९८। चर्चा अठानवेवीं।

दर्शन और ज्ञान तो जीवका निज लक्षण है परंतु चारित्र किसका लक्षण है?

समाधान-चारित्र भी जीवका निजधर्म है क्योंकि अपनी आत्माका निजाचरण रूप ही चारित्र है। समस्त जीवोंसे समान भाव होना, रागद्वेष रहित, अनिष्ट बुद्धिकररहित भाव ही निश्चयचारित्र है। सो ही आत्माका निजधर्म है। इसलिये ज्ञानदर्शन और चारित्र ये तीनों ही आत्माके निजस्वरूप हैं सो ही षट्पाहुडके मोक्षप्राभृतमें लिखा है-

चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो। सो रायरोमरहिओ जीवस्स अणण्ण परिणामो ॥१८॥

९९। चर्चा निन्यानवेवीं।

इस समय इस पांचवें कालमें रत्नत्रयको धारण करनेवाले मुनि अपने उत्कृष्ट भावोंसे स्वर्गलोकमें जाते हैं सो कौनसे स्वर्ग तक जा सकते हैं।

समाधान-पांचवेंकालके भावलिंगी और रत्नत्रयको धारण करनेवाले मुनि इन्द्र पदवी पाते हैं तथा पांचवें ब्रह्मलोक स्वर्गमें लौकांतिक देवोंकी पदवीको पाते हैं तथा वहांसे आकर मनुष्य होकर मोक्ष जाते हैं इससे सिद्ध होता है कि पांचवेंकालके मुनि पांचवें स्वर्गतक जाते हैं। सो ही मोक्षप्राभृतमें लिखा है-

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा झाए वि लहइ इंदत्तं। लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ॥ ७७ ॥ १५

इससे यह भी सिद्ध होता है कि पांचवेंकालमें भी जीवोंकी ऐसी शक्ति होती है।

१०० । चर्चा एकसौवीं ।

मिथ्यादृष्टीके बाह्य चिन्ह कौन कौन हैं ?

समाधान—मिथ्यादृष्टियोंके विशेष बाह्य चिन्ह तो अन्य शास्त्रोंमें प्रायः सब जगह लिखे हैं। यहां केवल सामान्य रीतिसे लिखते हैं-जो देव भूख प्यास आदि अठारह दोष सहित हैं वे कुत्सित देव कहलाते हैं। जिस धर्ममें हिंसा आदि अनेक पाप करने पड़ें उसे कुत्सित धर्म वा कुधर्म कहते हैं। जो परिग्रहसहित हों और अनेक पाप रूप आरंभ करते हों ऐसे भेषी पाखंडियोंको कुगुरु कहते हैं। इस प्रकार कुदेव कुधर्म और कुगुरुओंको जो पूजे बंदना करे तथा लज्जा भय गौरव आदिके वश होकर भी इनकी पूजा बंदना करे सो प्रगट मिथ्यादृष्टी जीव हैं। भावार्थ—मिथ्यादृष्टियोंके ये बाह्य चिन्ह हैं। "इन कुदेवादिकोंको सब लोग पूजते हैं। यदि हम न पूजेंगे तो लोग क्या कहेंगे" इस प्रकारकी लज्जासे पूजना अथवा सात प्रकारके भयसे पूजना अथवा हम सबसे ऊंची पदवीको धारण करनेवाले हैं हमको तो सबका आदर सत्कार करना चाहिये इत्यादि समझकर पूजना सो गौरवसे होनेवाली पूजा है। इस प्रकार कुदेवादिककी पूजा करना सो सब मिथ्यादृष्टीके बाह्य लक्षण हैं। सो ही मोक्षप्राभृतमें लिखा है—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च बंदए जो दु। लज्जाभयगारवादो मिच्छादिट्ठी हवे सो दु॥ ९१॥

१०१ । चर्चा एकसौएकवीं ।

सम्यग्दृष्टीके विशेष चिन्ह क्या हैं ?

समाधान—सम्यग्दृष्टीके भी विशेष चिन्ह अन्य शास्त्रोंमें विस्तारसे लिखे हैं, यहां संक्षेपमें लिखते हैं। जो भूख प्यास आदि अठारह दोषोंसे रहित वीतराग सर्वज्ञदेवका ही श्रद्धान करता है, हिंसादिक समस्त पापोंसे रहित श्रेष्ठ धर्मका श्रद्धान करता है, तथा सब तरहके परिग्रह और आरंभोंसे रहित निर्ग्रंथ गुरुका श्रद्धान करता है वही सम्यग्दृष्टी है। सो ही लिखा है—

हिंसारहिये धम्मे अट्ठारहदोसविवज्जिये देवे। णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं॥ ९०॥

१०२ । चर्चा एकसौ दोवीं ।

भगवानके समवशरणमें जो मानस्तंभ आदि होते हैं उनकी उंचाईका प्रमाण किसप्रकार होता है ?

समाधान—समवसरणके मानस्तंभ, ध्वजास्तंभ, चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, स्तूप, तोरण, कोट, गृह, वनवेदिका, बन, पर्वत

आदिकी ऊंचाई भगवान तीर्थंकरकी ऊंचाईसे बारह गुणी होती है। भावार्थ—भगवानके शरीरकी जितनी ऊंचाई होती है उससे बारहगुणी ऊंचाई इन सबकी समझ लेना चाहिये। सो ही सकलकीर्ति विरचित आदिपुराणमें लिखा है।

मानस्तंभा ध्वजास्तंभा चैत्यसिद्धार्थपादपाः। स्तूपाः सतोरणाः गेहाः प्राकारा वनवेदिकाः॥ १४॥
वनादयो बुधैः प्रोक्ता उत्सेधेन द्विषड्गुणाः। जिनांगोत्सेधतश्चैषां दैर्घ्यानुरूपविस्तरः॥ १५॥

पार्श्वपुराणमें भी लिखा है—

मानस्तंभाश्च प्राकाराः सिद्धार्थचैत्यपादपाः। सतोरणाः गृहाः स्तंभाः केतवो वनवेदिकाः॥ १७॥
प्रोक्तास्तीर्थंकरोत्सेधादुत्तुंगेन द्विषड्गुणाः।

इसप्रकार जानना।

१०३। चर्चा एकसौ तीसरी।

चतुर्गति निगोद दोप्रकार है एक नित्यनिगोद और दूसरा इतर निगोद। इन दोनों निगोदोंमें क्या अंतर है?

समाधान—जो अनादिकालसे एकेंद्रिय कर्मके उदयसे सदा स्थावर गतिमें ही जन्म मरण करते रहें तथा जो भूत भविष्यत् वर्तमान किसी भी कालमें कभी भी दो इंद्रिय आदि त्रस पर्याय धारण न करें। जिनकी स्थावर गतिका न आदि है न अंत है, सदा अनंत कायके आश्रित जन्ममरण धारण करते रहें ऐसे जीवोंको नित्य निगोदिया जीव कहते हैं। इसीलिये इस गतिको नित्य-गति अथवा शाश्वत गति ऐसा सार्थक नाम कहा है। तीव्र पाप कर्मके उदयसे अनंतानंत जीव इस नित्यनिगोदमें सदा रहते हैं। सो ही सिद्धांतसारमें लिखा है—

त्रसत्वं न प्रपद्यंते कालेन त्रितयेऽपि ये। ज्ञेया नित्यनिगोदास्ते भूरिपापवशीकृताः॥

श्रीगोम्मटसारमें भी लिखा है—

जत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाणपरिणामो। भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति॥ ९६॥

तथा जिससे निकलकर त्रस गतिको प्राप्त करे अथवा त्रसगति पाकर फिर जिस निगोदमें जाय उसको इतरनिगोद कहते हैं।

इसप्रकार निगोद दो प्रकारके हैं। निगोद शब्दकी निरुक्ति इसप्रकार है। जो अपने शरीरके अंगरूपी क्षेत्रमें रहनेके लिये अनंतानंत जीवोंको जगह देवे उसको निगोद कहते हैं। नि-नियतं गां (गो शब्दका द्वितीयाका एकवचन) भूमिं क्षेत्रं अनंतानंतजीवानां द-ददातीति निगोदम्। निगोदं शरीरं येषां ते निगोदशरीराः। अर्थात्-नि का अर्थ नियत है गो शब्दका अर्थ क्षेत्र वा निवास स्थान है और द शब्दका अर्थ देना है। जो नियमसे अपने शरीरमें अनंतानन्त जीवोंको उत्पन्न होनेके लिये क्षेत्र देवे उसको निगोद कहते हैं। ऐसे शरीरको निगोद शरीर कहते हैं।

१०४। चर्चा एकसौ चारवीं।

कोई ऐसा कहते हैं कि इंद्रादिक देव सुदर्शन नामके मेरु पर्वतकी पांडुक शिलापर जो तीर्थंकर भगवानका जन्माभिषेक करते हैं सो चतुर्णिकायिक देव अभिषेकके गंधोदक जलको अपने नेत्रोंमें ललाटसे लगाते हैं और इसप्रकार लगाते हैं कि वह जल सब उठ जाता है बाकी विलकुल नहीं रहता। कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि थोड़ा थोड़ा सबके हिस्सेमें आजाता है और किसी किसीके हाथ भी नहीं आता। इसलिये थोड़ासा गंधोदक लेकर मस्तकसे लगा लेना चाहिये और फिर हाथ धो डालना चाहिये। क्योंकि यदि गंधोदकके हाथ किसी बुरे पदार्थसे अथवा पांव आदिसे लग जावें तो बड़ी अविनय होगी। इसलिये गंधोदक लगाकर हाथ धो डालना अच्छा है। ऐसा ही उपदेश दूसरोंको दिया करते हैं, सो क्या यह बात ठीक है?

समाधान—यह कहना ठीक नहीं है यह कहना कपोलकल्पित और अज्ञान भरा हुआ है। क्योंकि श्रीऋषभदेवके जन्माभिषेकके गंधोदकका जल इंद्रादिक सब देवोंने अपने मस्तकमें लगाया तथा सब शरीरसे लगाया तथा मेरु पर्वतके ऊपर उस गंधोदकके जलका प्रवाह नदियोंके समान बह निकला। इस बहते हुए जलमें देवोंने स्नान किया वह जल लेकर परस्पर एक दूसरेके ऊपर डाला। भावार्थ-उस जलमें परस्पर जलक्रीड़ा की और उस गंधोदकके जलको लेकर स्वर्गमें भेजा। ऐसा वर्णन शास्त्रोंमें लिखा है। देखो भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीत आदिपुराणके दशवें पर्वमें-

कृतं गंधोदकैरित्थमभिषेकं सुरोत्तमाः। जगतां शांतये शांतिं घोषयामासुरुच्चकैः॥ १७॥
प्रचक्रुरुत्तमांगेषु चक्रुः सर्वांगसंगतम्। स्वर्गस्योपायनं चक्रुस्तद्गंधांबु दिवौकसः॥ १८॥
गंधांबुस्नपनस्यांते जयकोलाहलैः समम्। व्यातुक्षीममराः चक्रुः सचूर्णैर्गंधवारिभिः॥ १९॥

लब्ध्यादिपुराणमें भी यही बात लिखी है—

तद्गंधांबु प्रबंधोच्चैरुत्तमांगेषु भक्तिकाः। निधाय सर्वगात्रेषु स्वर्गस्योपायनं व्यधुः॥ २०२॥
गंधोदकाभिषेकांते विधायेति सुरेश्वराः। गंधोदकं च वंदित्वा पूतं शुध्द्यै जिनेशिनः॥ २०३॥
व्यातुक्षीं निर्मलां चक्रुः जयकोलाहलैः समम्। पूरितैः कलशैः भक्त्या सचूर्णैगंधवारिभिः॥ २०४॥

इसके सिवाय भगवान पार्श्वनाथके जन्म समयमें भी इसीप्रकार कथन है सो ही पार्श्वपुराणमें लिखा है—

इत्थं गंधोदकैः कृत्वाभिषेकं सुरनायकाः। शांतिं ते घोषयामासुरुच्चैर्भवाघशांतये॥ १२॥
चक्रुः शिरसि भाले च नेत्रे सर्वांगपुद्गले। स्वर्गस्योपायनं पूतं तद्गंधांबु सुरास्त्रियः॥ १३॥
गंधांबुस्नपनस्यांते जयनंदादिसत्स्वरैः। व्यातुक्षीममराश्चक्रुः सचूर्णैगंधवारिभिः॥ १४॥

इसलिये ऊपर लिखा हुआ लोगोंका कहना असत्य है।

तथा गर्भान्वय आदि क्रियाओंमें जो बालककी केशवाप (मुंडन वा केश उतरवाना) क्रिया है उसमें पहले देव शास्त्र गुरुकी पूजा होती है फिर बालकका मस्तक गंधोदकसे भिगोया जाता है फिर केश उतारे जाते हैं तदनंतर गंधोदकसे ही बालकका स्नान कराया जाता है। ऐसा श्रीजिनसेनस्वामीने आदिपुराणके अडतीसवें पर्वमें लिखा है—

केशवापस्तु केशानां शुभेह्नि व्यपरोपणम्। क्षौरेण कर्मणा देवगुरुपूजापुरस्सरम्॥ ९६॥
गंधोदकार्द्रितान् कृत्वा केशान् शेषाक्षतोचितान्। मौण्ड्यमस्य विधेयं स्यात्सचूलं दान्योचितम्॥ ९७॥
स्नानोदकधौतांगमनुलिप्तं सभूषणम्। प्रणमय्य मुनीन् पश्चाद् योजयेद्बंधुताशिषा॥

इसके सिवाय जब राजा श्रीपाल कोटीभट कोढ रोगसे पीडित होगये थे और उनके साथके सातसौ योद्धा भी कोढ रोगसे पीडित होगये थे तब श्रीपालकी रानी मैनासुंदरीने भगवानका गंधोदक लेकर उनके समस्त शरीर पर सींचा था और उसके सींचने से उन सबका कोढ रोग दूर होगया था। ऐसा कथन श्रीपालचरित्र आदि शास्त्रोंमें लिखा है इसलिये गंधोदकके हाथ धोना

किस प्रकार संभव हो सकता है। तथा गंधोदककी महिमा जैनशास्त्रोंमें जगह जगह लिखी है इसलिये इसमें संदेह नहीं करना चाहिये। तथा बिना समझे शास्त्रविरुद्ध वचन नहीं बोलना चाहिये। जो इस प्रकार कहते हैं वह उनकी कपोलकल्पना है।

१०५। चर्चा एकसौ पांचवीं।

प्रतिमा कौनसी प्रतिष्ठा योग्य नहीं है अर्थात् कैसी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिये। तथा कैसी प्रतिमा प्रतिष्ठा करने योग्य है?

समाधान—व्यंगित प्रतिमा (जिसके अंग उपांग खंडित हैं) जर्जरीभूत प्रतिमा (बहुत प्राचीन जो खिरती हो जीर्ण शीर्ण हो) जिस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा पहले हो चुकी हो, जो दुबारा बनाई गई हो अर्थात् जिसके अंग भंग होगये हों और फिर गढकर बनाई हो, और जिन प्रतिमाओंमें कोई संदेह हो ऐसी जिनप्रतिमाएं प्रतिष्ठा करने योग्य नहीं हैं। तथा जिस प्रतिमाकी नाक, मुख, नेत्र, हृदय, नाभिमंडल, आदि अंग भंग होगये हों वह भी पूजा करने योग्य नहीं है। सो ही प्रतिष्ठाशास्त्रमें लिखा है।

व्यंगितां जर्जरां नैव पूर्वमेव प्रतिष्ठितम्। पुनर्घटितसंदिग्धां प्रतिमां ना प्रतिष्ठयेत्॥
नासामुखे तथा नेत्रे हृदये नाभिमंडले। स्थानेषु व्यंगितेष्वेषु प्रतिमां नैव पूजयेत्॥

यहांपर फिरसे बनाई गई प्रतिमाकी प्रतिष्ठका जो निषेध किया है उसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रतिमाके उपांग खंडित होगये हों और फिर सुधार कर वह दुबारा बनाई गई हो तो ऐसी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा नहीं करानी चाहिये। तथा जो प्रतिमा शिल्पि शास्त्रोंमें कहे हुए लक्षणोंसे सुशोभित हो और सांगोपांग हो ऐसी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करना योग्य है। सो ही प्रतिष्ठापाठमें लिखा है।

यद्बिम्बं लक्षणैर्युक्तं शिल्पिशास्त्रनिवेदितम्। सांगोपांगं यथायुक्तया पूजनीय प्रतिष्ठितम्॥

प्रश्न—जो प्रतिमा पूर्व प्रतिष्ठित है उसका यदि उपांग (उंगली आदि) खंडित हो जाय अथवा मस्तक हीन होजाय तो उसकी पूजा स्तुतिका विधान किस प्रकार है?

समाधान—जिस प्रतिमाकी उंगलीका अग्रभाग अथवा कुछ कानका भाग वा कुछ नाकका भाग खंडित हो तथा वह प्रतिमा पूर्व

---

१ वास्तविक बात यह है कि गंधोदक वा भगवानके अभिषेकका जल महा पवित्र है। वह किसी प्रकार अपवित्र नहीं हो सकता तथा विनय और अविनय दोनों भावोंसे होती है।

प्रतिष्ठित हो, और अतिशयसहित हो तो वह प्रतिमा पूज्य है ऐसी प्रतिमाकी पूजा स्तुति नमस्कार आदि करनेमें अपने बुरे भाव नहीं करने चाहिये। यदि ऐसी प्रतिमा अतिशयरहित हो तो वह पूज्य नहीं है। तथा जो प्रतिमा मस्तक हीन हो तो उसको जलाशयमें क्षेपण कर देना चाहिये। मस्तकहीन प्रतिमाको चैत्यालयमें नहीं रखना चाहिये इस प्रकार नरेंद्रसेनकृत प्रतिष्ठादीपकमें लिखा है। यथा–

जीर्णं चातिशयोपेतं तद्व्यंगमपि पूजयेत्। शिरोहीनं न पूज्यं स्यान्निक्षेप्यं तन्नदादिषु॥

इसप्रकार जानना। यदि इसका विशेष स्वरूप जानना हो तो जिनसंहिता प्रतिष्ठापाठ सरस्वतीकल्प पूजासार शिल्पशास्त्र आदि ग्रंथोंसे जान लेना चाहिये।

१०६। चर्चा एकसौछट्टी।

इस पंचमकालमें भरतक्षेत्रमें साक्षात् केवलज्ञानी नहीं हैं फिर भला उनको किसप्रकार मानना चाहिये और उनकी पूजा भक्ति किस प्रकार करनी चाहिये। उनकी प्रतिमा तो स्थापना है निक्षेपरूप साक्षात् नहीं है।

समाधान—केवली भगवानकी वाणीका पठन पाठन करनेवाले आचार्य हैं। इसलिये आचार्यको मानना वा उनकी पूजा भक्ति आदि करना साक्षात् केवलीको मानने और उनकी पूजा भक्ति करनेके समान है क्योंकि जिसने केवलीप्रणीत शास्त्रोंको पठनपाठन करनेवाले मान लिये तो उसने साक्षात् केवली भी मान लिये। इस पंचमकालमें श्रीमहावीर स्वामीके पीछे जिन शास्त्रों-

---

१ शास्त्रकारोंने स्थापनाका लक्षण "सोयमित्यभिधानेन स्थापना सा निगद्यते" अर्थात् "ये वेही हैं" ऐसा संकल्प करना ही स्थापना निक्षेप है। मूर्ति वा प्रतिमामें जो स्थापना की जाती है वह भी ये तीर्थंकर ही हैं ऐसी कल्पना की जाती है इसलिये जिनप्रतिमाकी पूजा भक्ति करना भी केवली भगवानकी ही भक्ति पूजा करना है। तथा यह बात केवली भगवानकी कही हुई है या नहीं कही हुई है इसप्रकारका जहां निश्चय करना हो वहांपर आचार्योंके वचनोंसे ही निश्चय करना चाहिये। क्योंकि भगवान महावीर स्वामीने जो उपदेश दिया था वही उपदेश गौतम स्वामी सुधर्माचार्य और जंबूस्वामीने दिया तथा वही श्रुतकेवलियोंने व उनके शिष्योंने दिया। उन्हीं शिष्योंके शिष्य प्रतिशिष्य आचार्य हुए हैं इसलिये जैसा उनके गुरुओंने उपदेश दिया है वैसा ही उन्होंने उपदेश दिया है और वैसा ही शास्त्रोंमें लिखा है इसलिये आचार्योंके बनाये हुए शास्त्रोंमें जो लिखा है वह केवलीप्रणीत ही है ऐसा निश्चय करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते वे वे केवली भगवानका तिरस्कार करते हैं।

को पठनपाठन करनेवाले और रत्नत्रयको धारण करनेवाले अनेक बडे बडे आचार्य हुए हैं उनके वचनोंकी आज्ञाको मानना ही केवली भगवानको मानना है। सो ही श्रीपद्मनंदिविरचित पद्मनंदिपंचविंशतिकामें लिखा है—

संप्रत्यस्ति न केवली किल कलौ त्रैलोक्यचूडामणिस्तद्वाचः परमासतेऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्द्योतिकाः॥
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तासां समालंबनं। तत्पूजा जिनवाचि पूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः॥

इससे सिद्ध होता है कि आचार्योंको माननेमें उनकी पूजा भक्ति करनेमें और उनके वचनोंकी आज्ञा माननेमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये। जो पुरुष आचार्योंकी आज्ञा माननेमें संदेह करते हैं वे केवली भगवानका अविनय करते हैं।

१०७। चर्चा एक सौ सातवीं।

भरत चक्रवर्तीने ब्राह्मणोंकी स्थापना की थी सो उस समय कितने ब्राह्मणोंकी स्थापना की थी अर्थात् उनकी कितनी गिनती थी।

समाधान— भरत चक्रवर्तीने ब्रह्मकर्म विधिके समय पद्मनामकी निधिसे ग्यारह ब्रह्मसूत्र वा यज्ञोपवीत निकाले और उन्हें पहनाकर ग्यारह ब्राह्मण स्थापन किये। भावार्थ उस समय ग्यारह ब्राह्मण बनाये तथा पीछे अनुक्रमसे बढते गये और बहुत होगये सो ही आदिपुराणके अडतीसवें पर्वमें लिखा है।

तेषां कृतानि चिह्नानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः। उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राह्वैरेकाद्येकादशांतकैः॥

इससे सिद्ध होता है कि जो लोग इस बातको नहीं मानते वे भ्रममें पडे हुए हैं। शास्त्रमें तो ग्यारहका ही प्रमाण मिलता है। इसप्रकार चतुर्थकालके प्रारंभमें ब्राह्मण वर्णकी उत्पत्ति हुई है।

प्रश्न—पांचों महा विदेह क्षेत्रोंमें ब्राह्मण हैं या नहीं। तथा वहांपर कितने वर्ण हैं?

समाधान—विदेह क्षेत्रमें ब्राह्मण नहीं है वहांपर क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये तीन ही वर्ण हैं। सो ही सिद्धांतसारप्रदीपमें लिखा है।

प्रजा वर्णत्रयोपेता जिनधर्मरताः शुभाः। व्रतशीलतपोदृष्टिभूषिता न द्विजाः क्वचित्॥ ४७॥

१०८। चर्चा एकसौ आठवीं।

सामायिकके छह भेद सुने हैं सो वे कौन २ से हैं।

समाधान—नाम सामायिक, स्थापना सामायिक, द्रव्य सामायिक, क्षेत्र सामायिक, काल सामायिक और भाव सामायिक। इसप्रकार छह भेदरूप सामायिक होता है। भगवान जिनेन्द्रदेवने सामायिकके ये छहों भेद धर्म और मोक्षको देनेवाले बतलाये हैं। सो ही प्रश्नोत्तरोपासकाचारमें लिखा है—

नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालेषु श्रीजिनैः। उक्तं सामायिकं भावं षड्विधं धर्ममुक्तिदम्॥ २३॥

इनका विशेष स्वरूप इसप्रकार है जो विद्वान् लोग शुभ अशुभ विकल्पोंके नामोंके समूहको सुनकर राग द्वेष मोहका त्याग कर देते हैं उसको नामसामायिक कहते हैं। जो शुभ और अशुभ चेतन वा अचेतनसे उत्पन्न होते हैं उनको देखकर जो राग-द्वेषादिकका त्याग कर देते हैं उनके स्थापना सामायिक होता है। जो लोहा सोना आदि सब पदार्थोंमें समान भाव धारण करते हैं उनके द्रव्य सामायिक होता है। यह द्रव्य सामायिक विना समता भावोंके और किसी प्रकार नहीं हो सकता। जो शुभ अशुभ क्षेत्रमें सुख और दुःखोंके समूहको पाकर भी राग द्वेष मोहका नाश कर देते हैं वह उनका क्षेत्र सामायिक है। जो शीतकालमें वा उष्णकालमें समताभाव धारण करते हैं, सर्दी गर्मीके दुःखोंको समताभावसे सहन करते हैं उसमें दुख नहीं मानते सो काल सामायिक है। तथा जो शत्रु मित्रादिकमें राग द्वेषको सर्वथा छोड देते हैं और समताभाव धारण करते हैं उनके भाव सामायिक होता है। इसप्रकार सकलकीर्ति आचार्यने प्रश्नोत्तरोपासकाचारमें सामायिकके छह भेद लिखे हैं। यथा—

शुभेतरविकल्पं यः श्रुत्वा नामकदंबकम्। रागादिकं त्यजेद्धीमान् नामसामायिकं लभेत्॥ २४॥
दृष्ट्वा शुभाशुभं रूपं चेतनेतरजं हि यः। त्यजेद्रागादिकं स स्थापनासामायिकं भवेत्॥ २५॥
लोष्ठहेमादिद्रव्येषु समचित्तं करोति यः। द्रव्यसामायिकं तस्य भवेन्नान्यस्य सर्वथा॥ २६॥
शुभेतरप्रदेशं यः सुखदुःखादिसंकुलम्। प्राप्य रागादिकं हन्यात् क्षेत्रसामायिकं लभेत्॥ २७॥
शीतोष्णादिषु कालेषु समतां यो वितन्वते। कालसामायिकं तस्य भवत्येव न संशयः॥ २८॥
त्यक्त्वा रागादिकं योरिमित्रादिषु करोति सः। समताधिष्ठितं भावं भावसामायिकं लभेत्॥ २९॥

१०९। चर्चा एक सौ नौवीं।

गृहस्थ लोग जो अपने घर प्रतिमा रखते हैं उसकी मर्यादा ग्यारह अथवा बारह अंगुल प्रमाण है। बारह अंगुलसे ऊंची

प्रतिमा जिनमंदिरमें ही स्थापन करनी चाहिये, यह बात तो प्रसिद्ध है परंतु ग्यारह अंगुलमें भी एक दो तीन चार आदि अंगुलों की प्रतिमाके प्रमाणका फल क्या है ?

समाधान—जो गृहस्थ अपने घर जिनप्रतिमाको रक्खें सो अत्यंत योग्य और ऊंचे स्थानमें रखना चाहिये। आगे प्रतिमाकी ऊंचाईका अलग अलग फल बतलाते हैं। एक अंगुलकी प्रतिमा पूजा करनेवालेके लिये श्रेष्ठ है। दो अंगुलकी प्रतिमा धन नाश करनेवाली है। तीन अंगुल ऊंची प्रतिमा वृद्धिको उत्पन्न करती है। चार अंगुल ऊंची प्रतिमा पीडा उत्पन्न करती है। पांच अंगुल की प्रतिमा सुखकी वृद्धि करती है। छह अंगुलकी प्रतिमा उद्वेग करती है। सात अंगुलकी प्रतिमा गायोंकी वृद्धि करती है। आठ अंगुलकी प्रतिमा हानि करती है। नौ अंगुलकी प्रतिमा पूजा करनेवालेके लिये पुत्रोंकी वृद्धि करती है। दश अंगुल ऊंची प्रतिमा धनका नाश करती है। ग्यारह अंगुलकी प्रतिमा गृहस्थोंके समस्त काम और अर्थकी सिद्धि करनेवाली होती है। इससे अधिक ऊंची प्रतिमा गृहस्थको अपने घर नहीं रखनी चाहिये। हां; जिनमंदिरमें विराजमान करनेमें कोई हानि नहीं है। इसप्रकार एकसे लेकर ग्यारह अंगुल प्रमाण प्रतिमाका शुभाशुभ फल बतलाया। इनमें भी जो शुभ प्रतिमाएं हैं यदि उनकी नाक, मुख, नेत्र, हृदय नाभि आदि स्थान खंडित हो जांय तो घरमें रखकर नहीं पूजना चाहिये। ऐसा दीक्षाकल्पमें लिखा है।

अथातः संप्रवक्ष्यामि गृहबिम्बस्य लक्षणम्। एकांगुलं भवेच्छ्रेष्ठं व्यंगुलं धननाशनम्॥
त्र्यंगुले जायते वृद्धिः पीडा स्याच्चतुरंगुले। पंचांगुले तु वृद्धिः स्यादुद्वेगस्तु षडंगुले॥
सप्तांगुले गवांवृद्धिः हानिरष्टांगुले मता। नवांगुले पुत्रवृद्धिर्धननाशो दशांगुले॥
एकादशांगुलं बिम्बं सर्वकामार्थसाधनम्। एतत्प्रमाणमाख्यातमतरूर्ध्वं न कारयेत्॥
नासामुखे तथा नेत्रे हृदये नाभिमंडले। स्थानेषु व्यंगितागेषु प्रतिमां नैव पूजयेत्॥

११०। चर्चा एकसौ दशवीं।

तीसरे मिश्र नामके गुणस्थानमें मरण नहीं है और न अन्य गतिकी आयुका बंध ही होता है। तब फिर वह तीसरे गुणस्थान वाला जीव गतिबंधके विना अन्यगतिमें किस प्रकार गमन करता है।

समाधान—सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे तीसरे मिश्र नामके गुणस्थानमें रहनेवाले जीवने पहले या तो मिथ्यात्वके साथ

आयुका बंध किया होगा या सम्यक्त्वके साथ आयुका बंध किया होगा। यदि मिथ्यात्वके साथ आयुका बंध किया हो तो वह मिथ्यात्व गुणस्थानमें जाकर मरण करता है यदि उसने सम्यक्त्वके साथ आयुका बंध किया हो तो वह चौथे गुणस्थानमें जाकर मरण करता है। भावार्थ-जो पहले सम्यग्दर्शनके साथ आयुबंध किया है तो चौथे गुणस्थानमें मरणकर शुभ गति प्राप्त करता है। यदि उसने मिथ्यात्व गुणस्थानमें बंध किया हो तो वह मिथ्यात्वमें ही मरण कर अशुभ गतिमें जा उत्पन्न होता है। ऐसा श्रीगोमट्टसारमें प्ररूपणाधिकारके गुणस्थानाधिकारमें लिखा है। यथा-

सो संजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आऊ। सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥२२॥
सम्मत्तमित्थपरिणामेसु जहि आउगं पुराबद्धं। तहि मरणं मरणंतसमुग्घादो विय ण मिस्सम्मि ॥२३॥

१११। चर्चा एकसौ ग्यारहवीं।

क्षपकश्रेणी चढनेवाले योगीश्वरोंके श्रेणी चढते समय कौनसा संहनन होता है ?

समाधान-क्षपक श्रेणीवाले मुनीश्वरोंके छहों संहननोंमेंसे कोई संहनन नहीं होता। क्योंकि क्षपकश्रेणीमें चढनेवाले साधुओंके, अयोगिकेवली जिनराजके, चतुर्णिकाय देवोंके, सातवें नरकमें रहनेवाले नारकी जीवोंके, आहारक शरीरको धारण करनेवाले महर्षियोंके, एकेंद्रिय जीवोंके और कार्मण कायके आश्रित रहनेवाले विग्रह गतिमें प्राप्त हुए जीवोंके, इन सात स्थानोंमें रहनेवाले जीवोंके शरीरमें वज्रवृषभनाराच आदि छहों संहननोंमेंसे एक भी संहनन नहीं होता ऐसा सिद्धांतसार प्रदीपकमें लिखा है। यथा-

सयोगे च गुणस्थाने ह्याद्यं संहननं भवेत्। केवले क्षपकश्रेण्यारोहणे कृतयोगिनाम् ॥ १२८ ॥
अयोगिजिननाथानां देवानां नारकात्मनाम्। आहारकमहर्षीणामेकाक्षाणां वपूंषि च ॥ १२९ ॥
यानि कार्मणकायानि व्रजतां परजन्मनि। तेषां सर्वशरीराणां नास्ति संहननं क्वचित् ॥ १३० ॥

११२। चर्चा एकसौ बारहवीं।

आचार्य उपाध्याय और साधुओंकी वंदना अर्जिका किस प्रकार करती हैं ?

समाधान—अर्जिकाएं अपनी गणिनीको (सब अर्जिकाओंमें मुख्य गुराणीको) आगे करती हैं अर्थात् गणिनीके पीछे पीछे

रहकर आचार्य उपाध्याय साधुओंकी वंदना करती हैं तथा इसी प्रकार उनसे पूछती हैं और इसीप्रकार उनका धर्मोपदेश सुनती हैं। अर्जिकाएं अकेली आचार्य वा उपाध्याय वा साधुओंके सामने नहीं जातीं। सो ही मूलाचारप्रदीपकमें लिखा है —

गणिनीमग्रतः कृत्वा यदि प्रश्न करोति सा"।

अर्जिकाएं आचार्यको पांच हाथ दूरसे वंदना करती हैं, उपाध्यायको छह हाथ दूरसे वंदना करती हैं और साधुओंको सात हाथ दूरसे वंदना करती हैं। तथा वंदना भी पश्वर्द्धशायी आसनसे करती है जिसप्रकार आधे आसनसे गौ बैठकर सोती है उसी प्रकार अपने शरीरको नवाकर वंदना करती हैं। अर्जिकाएं सर्व साधुओंको पचांग अथवा अष्टांग नमस्कार नहीं करतीं। ऐसा मूलाचार प्रदीपकमें समाचार नामके अधिकारमें लिखा है—

पर्यटंति प्रयत्नेन भिक्षायै गृहपंक्तिषु। वा व्रजंति मुनींद्राणां वंदनायै च क्षांतिकाः ॥

पंचषट्सप्तहस्तांतमंतराले महीतले। सूरिपाठकसाधूनां भक्तिपूर्वकमार्यिकाः ॥

श्रीवट्टकेरस्वामीने मूलाचारमें समाचाराधिकारमें भी यही बात लिखी है—

पंच छह सत्त हत्थे सूरी उवज्झायगोय साधूय। परिहर ऊणज्जाओ गवासणेणेव वंदंति ॥ ७४ ॥

११३। चर्चा एकसौ तेरहवीं।

सदाशिव आदि अन्य मतवाले लोग जीवका स्वरूप जुदा जुदा मानते हैं सो वे किस किस प्रकार मानते हैं ?

समाधान—सदाशिव, सांख्य, मस्करी वा सन्यासी, बौद्ध, नैयायिक वैशेषिक और ईश्वरमंडली ये छह मतवाले छह दर्शन कहलाते हैं। ये छहों ही दर्शन जीवका स्वरूप भिन्न भिन्न तरहसे मानते हैं। सदाशिव वाला तो जीवको सदा कर्मरहित ही मानता है। सांख्यमतवाले मुक्तजीवको सुखसे रहित मानते हैं सन्यासमत वाले मुक्त जीवका भी फिर संसारमें आगमन मानते हैं। अर्थात् उनके मतमें मुक्त जीव भी अनेक अवतार धारण करता है। बौद्ध लोग जीवका स्वरूप क्षणिक मानते हैं। योगशास्त्री जीवको निर्गुणी मानते हैं। ईश्वरवादी सृष्टिवादके द्वारा ईश्वरको अकृतकृत्य मानते हैं। मंडली मतवाले आत्माको ऊर्ध्वगमन ही निरूपण करते हैं। इसप्रकार छहों दर्शनवाले आत्माके स्वरूपको परस्पर विरुद्ध निरूपण करते हैं सो ही गोमट्टसारकी टीकामें लिखा है—

सदाशिवः सदाकर्मा सांख्यो मुक्तं सुखोज्झितम्। मस्करी किल मुक्तानां मन्यते पुनरागतिम् ॥

क्षणिकं निर्गुणं चेव बुद्धो योगश्च मन्यते। कृतकृत्यं तमीशानो मंडली चोर्द्ध्वगामिनम् ॥

इस प्रकार उनके मत परस्पर विरुद्ध हैं।

प्रश्न—ये सब वेदको मानने वाले हैं और फिर भी सबके मत परस्पर विरुद्ध है। तब सबको एक वेद मतवाले किस प्रकार कहते हैं?

समाधान—ये सब एक नहीं हैं अलग अलग हैं। इनके शास्त्रोंका कथन एक दूसरेसे मिलता नहीं। सबका जुदा जुदा है और सबका उपदेश परस्पर विरुद्ध है। क्योंकि छहों दर्शनवालोंके कथन सर्वज्ञरहित छद्मस्थोंके (अल्प ज्ञानियोंके) कहे हुए हैं इसलिये उनमें आदिसे अंततक अविरोध नहीं आसकता।

प्रश्न—इनमें विरोध कहां कहां है?

समाधान—इनमें विरोध तो बहुत है और वह सब लिखा नहीं जा सकता। परंतु उसमेंसे थोडासा बतलाते हैं। वेदमें लिखा है—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गं नैव च नैव च। तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा पश्चाद्भवति तापसः ॥

अर्थात्—जिसके पुत्र नहीं है उसकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग भी नहीं मिलता इसलिये पुत्रका मुख देखकर (विवाहकर और भोगोपभोग सेवन कर) फिर तपस्वी होना चाहिये। तब ही सुगति प्राप्त हो सकती है। कुमारोंकी गति कभी नहीं हो सकती। तथा भारतके शांति पर्वमें लिखा है—

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्। स्वर्गं गतानि राजेंद्र! अकृत्वा कुलसंश्रितम् ॥

अर्थात् हजारों कुमार ब्रह्मचारी स्वर्गमें गये इन दोनों कथनोंमें परस्पर विरुद्धता है।

तथा एक सूर्यमें दो बार भोजन करनेमें (दिनमें दो बार भोजन करनेमें) महादोष मानकर रात्रिमें भोजन करनेका उपदेश दिया है। ऋषियोंको कंदमूल खानेका विधान किया है तथा राजाओंको मद्य मांस खानेका अधिकार बतलाया है। परंतु भारतमें इसके विरुद्ध लिखा है। यथा—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्। ये कुर्वंति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १०

वृथा एकादशी प्रोक्ता तथा च जागरणं हरेः । वृथा च पुस्करी यात्रा कृतं चांद्रायणं तपः ॥

यहांपर मद्य मांसका, रात्रिभोजनका, कंदमूल खानेका निषेध लिखा है और इन कामोंको करनेवालोंकी तीर्थयात्रा जप तप एकादशी नारायणका जागना (नारायणके लिये रात्रि जागरण करना) पुष्करकी यात्रा, चान्द्रायण तप आदि सब व्यर्थ बतलाया है । सो यह पहलेके कथनसे विरुद्ध है । मार्कंडेय ऋषिने मार्कंडेय पुराणमें भी लिखा है—

अस्तं गते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते । अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कंडेयमहर्षिणा ॥

अर्थात् मार्कंडेय ऋषिने कहा है कि सूर्य अस्त होनेपर जल रुधिरके समान है और अन्न खाना मांसके समान है । फिर भला वह रात्रिमें भक्षण करने योग्य किस प्रकार हो सकता है । भारतमें भी लिखा है—

चत्वारो नरकद्वारं प्रथमं रात्रिभोजनम् । परस्त्रीगमनं चैव संधानानंतकायते ॥ ॥
ये रात्रौ सर्वदाहारं वर्जयंति सुमेधसः । तेषां पक्षोपवासस्य मासमेकेन जायते ॥
नोदकमपि पातव्यं रात्रावत्र युधिष्ठिर । तपस्विनो विशेषेण गृहिणां च विवेकिनाम् ॥

अर्थात् नरकके चार द्वार हैं उनमें प्रथम रात्रिमें भोजन पान करना, दूसरा परस्त्रीगमन करना, तीसरा अचार मुरब्बा आदि खाना और चौथा कंदमूल आदि अनंतकायका भक्षण करना । तथा जो बुद्धिमान रात्रिमें सब तरहके आहारके त्याग कर देते हैं उनके एक महीनेमें पंद्रह उपवास हो जाते हैं वा उन्हें पंद्रह उपवासका फल प्राप्त हो जाता है । श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठरसे कहते हैं कि हे युधिष्ठर ! विचारशील गृहस्थोंको रात्रिमें जल भी नहीं पीना चाहिये । तथा तपस्वियोंको तो विशेषताके साथ त्याग कर देना चाहिये ।

अरण्यकमें लिखा है—

मृते स्वजनमात्रेपि सूतकं जायते किल । अस्तं गते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथम् ॥
रक्ता भवंति तोयानि अन्नानि पिशितानि च । रात्रिभोजनशक्तस्य ग्रासेन मांसभक्षणम् ॥
नैवाहुतिर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम् । दानं च विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः ॥

उदम्बरं भवेन्मांसं मांसं तोयमवस्त्रकम् । चर्मवारि भवेन्मांसं मांसं च निशिभोजनम् ॥

उलूककाकमार्जारगृद्धशंवरशूकराः । अहिवृश्चिकगोधाद्या जायते निशि भोजनात् ॥

अर्थात्–जिसप्रकार कुटुंबमें किसी कुटंबीके मर जानेपर सूतक होजाता है उसीप्रकार सूर्य अस्त होनेसे भी सूतक लग जाता है फिर भला सूतकमें भोजन किसप्रकार करना चाहिये। रात्रिमें जल तो रुधिरके समान होजाता है, अन्न मांसके समान होजाता है, इसलिये रात्रिमें भी भोजनकी लंपटता रखनेवालोंके लिये एक ग्रासमात्र भोजन करना भी मांस भक्षणके समान है। रात्रिमें आहुति देना, स्नान करना, श्राद्ध करना, देव पूजन करना, दान देना मना है तथा रात्रिमें भोजन करनेका त्याग विशेष रीतिसे बतलाया है। फिर कहा है–उदंवर फल (पीपलफल, बडफल, गूलर, पाकर अंजीर) भी मांस है, विना छना जल भी मांस है, चमडेके वर्तनमें रक्खा हुआ जल घी दूध आदि भी मांस है, और रात्रिमें भोजन करना भी मांस भक्षण है। रात्रिमें भोजन करनेसे ये जीव मरकर परलोकमें उल्लू, कौआ, बिल्ली, गीध, सूअर, सर्प, विच्छू, गोह, गोहरा, बिस्मरा आदि महानीच योनियोंमें उत्पन्न होता है।

इसके सिवाय ये लोग ऋषियोंकेलिये कंदमूलके आहार करनेका बडा माहात्म्य बतलाते हैं परंतु शास्त्रोंमें कंदमूल भक्षणके बडे दोष बतलाये हैं। जैसा कि पहले भी कह चुके हैं–

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम् ।

इसके सिवाय प्रभासखंडमें लिखा है—

पुत्रमांसं वरं भुक्तं न च मूलकभक्षणम् । भक्षणान्नरकं याति वर्जनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥

अज्ञानेन मया देव कृतं मूलकभक्षणम् । तत्पापं प्रलयं यातु गोविंद ! तव कीर्तनात् ॥

रसोनं गृजिनं चैव पलांडुं पिंडमूलकम् । मत्स्यमांसं सुरां चैव मूलकं च विशेषतः ॥

अर्थात्–पुत्रका मांस खा लेना अच्छा परंतु कंदमूल खा लेना अच्छा नहीं क्योंकि कंदमूलका भक्षण करनेसे यह जीव नरकमें जाता है और कंदमूलका त्याग कर देनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ भक्तलोग श्रीकृष्णसे कहते हैं कि हे गोविंद देव ! हमने अपने अज्ञानसे कंदमूल खाये हैं सो आपकी स्तुति करनेसे हमारे वे सब पाप नष्ट हो जांय ॥ २ ॥ रसोन अर्थात् लहसन, गृजिन अर्थात् गाजर, पलांडु अर्थात प्याज, कांदा, पिंडालू मूली मछलीका मांस और मद्य इनका विशेष रीतिसे त्याग कर देना चाहिये।

शिवपुराणमें भी लिखा है ।

यस्मिन् गृहे सदा नित्यं मूलकं पच्यते जनैः। श्मशानतुल्यं तद्वेश्म पितृभिः परिवर्जितम् ॥
मूलकेन समं चान्नं यस्तु भुंक्ते नराधमः। तस्य शुचिर्न विद्येत चांद्रायणशतैरपि ॥
भुक्तं हालाहलं तेन कृतं चाभक्ष्यभक्षणम्। वृंताकभक्षणं चापि नरो याति च रौरवम् ॥

अर्थात्–जिस घरमें लोग मूली पकाते हैं (कंदमूल पकाते हैं) वह घर श्मशानके समान है। उसमें पितर लोग कभी नहीं आते हैं जो लोग कंदमूलके साथ अन्न भोजन करते हैं उनकी शुद्धि सैकड़ों चांद्रायण व्रतोंसे भी नहीं हो सकती। कंदमूल भक्षण करनेमें ऐसा महापाप है। तथा जिसने वैंगन खालिया उसने हालाहल विष खालिया अथवा विष्ठा मांस आदि अभक्ष्य भक्षण कर लिया समझना चाहिये। क्योंकि वैंगनके खानेसे यह अधम मनुष्य रौरव नरकमें ही जाता है। इस प्रकार ये लोग इनका निषेध भी करते जाते हैं और उनको अंगीकार भी करते जाते हैं।

तथा रामचन्द्र और परशुराम दोनोंको अवतार मानते हैं और दोनोंका परस्पर युद्ध होना भी मानते हैं। ब्रह्मा विष्णु महेश तीनोंको एकसा ही मानते हैं परंतु तीनोंके कार्य परस्पर भिन्न भिन्न मानते हैं। तथा परस्परमें युद्ध करना भी मानते हैं। मत्स्यावतारने तो वेद प्रगट किये तथा बुद्धावतारने उसके मार्गका लोप किया। ऋषभावतारने वैराग्यकी प्रवृत्ति की और कृष्णावतारने शृङ्गारमय नाना लीलायें कीं। कृष्णावतारने मर्यादाका भंग किया और रामावतार मर्यादापुरुषोत्तम हुये। वाल्मीकि रामायणमें तथा पद्मपुराणमें रावणका वध रामने किया लिखा है। तथा अद्‌भुत रामायणमें रावणका वध सीताने किया लिखा है। तथा इसी अद्‌भुत रामायणमें सीताको रावणकी पुत्री बतलाया है। गीतामें पहले तो क्रोधादिक पापोंके त्याग करनेका उपदेश दिया है और ज्ञानके बाद–उपदेशके बाद कौरवोंके साथ युद्ध करनेका उपदेश दिया है। वेदोंमें तो यज्ञमें पशुओंको हवन कर जीवोंकी हिंसाका निरूपण किया है और पुराणोंमें जीवघातका निषेध किया है। वेदांतमें धातु पाषाण आदिकी मूर्त्तिके सेवन करनेका निषेध और चिदानंद चिद्‌रूपका चिंतवन करना लिखा है तथा पुराणोंमें उसी मूर्त्तिकी भक्ति पूजा आदिका प्रतिपादन किया है। शाक्तिक मतमें अवतारादिकोंकी न्यूनता और शक्तिकी महानता दिखलाई है। रामके उपासकोंको कृष्णकी उपासना नहीं करनी चाहिये कृष्णके उपासकोंको रामकी उपासना नहीं करनी चाहिये। शिवके उपासकोंको नारायणकी उपासना नहीं करनी चाहिये और विष्णुके उपासकोंको शिवको नहीं मानना चाहिये। इन सबमें परस्पर विरोध रखनेका उपदेश दिया है। इसप्रकार इन छहों

शास्त्रोंमें परस्पर वचनोंकी विरुद्धता, चलनकी विरुद्धता और आचरणकी विरुद्धता दिखलाई है और वह विरुद्धता प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। सो संसारी जीव अपने कल्याणके लिये किस वचनपर, किस चलनपर और किस आचरणपर विश्वास रक्खें। यदि एक वेद, पुराण, वा अवतार पर विश्वास रखते हैं तो दूसरे वेद पुराण अवतार और ऋषि आदिके वचनोंके आचरणादिका खंडन हो जाता है। यदि कोई सबके ऊपर माना जाय तो भी परस्पर विरोध होनेसे दूसरेका अपमान होता है। ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये यह बडे संकटकी बात है। इसलिये विना स्याद्वाद वचनोंके, विना तत्त्वोंके यथार्थ श्रद्धानके कुछ भी कार्यकारी नहीं है ऐसा समझना चाहिये।

११४। चर्चा एकसौ चौदहवीं।

श्रीसम्मेदशिखरकी यात्राका सबसे उत्कृष्ट फल क्या है ?

समाधान—राजा श्रेणिकने विपुलाचल पर्वत पर श्रीमहावीरस्वामीसे पूछा था कि हे भगवन्! श्रीसम्मेदशिखरका माहात्म्य क्या है। तब भगवाननें दिव्यध्वनि द्वारा निरूपण किया कि हे श्रेणिक! श्रीसम्मेदशिखर नामके पर्वतसे अजितनाथसे लेकर वीस तीर्थंकर मोक्ष पधारे हैं। उनके अलग अलग कूट हैं उनके नाम इसप्रकार हैं। श्रीअजितनाथ सिद्धवरकूटसे मोक्ष पधारे हैं। श्रीसंभवनाथ दत्तधवलकूटसे मोक्ष गये हैं। श्रीअभिनंदननाथ आनंदकूटसे मोक्ष पधारे हैं। श्रीसुमतिनाथ अविचलकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीपद्मप्रभ मोहनकूटसे सिद्ध हुये हैं। श्रीसुपार्श्वनाथ प्रभासकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीचंद्रप्रभ भगवान ललितकूटसे मोक्ष पधारे हैं। श्रीपुष्पदंत सुप्रभकूटसे सिद्ध हुये हैं। श्रीशीतलनाथ विद्युत्प्रभकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीश्रेयांसनाथ संवलकूटसे (संकुलसे) निर्वाण पधारे हैं श्रीविमलनाथ सुवीरकुलकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीअनंतनाथने स्वयंप्रभकूटसे मोक्ष पाई है। धर्मनाथने दत्तवरकूटसे निर्वाण प्राप्त किया है। श्रीशांतिनाथने कुंदप्रभ वा प्रभासकूटसे सिद्धपद प्राप्त किया है। कुंथुनाथस्वामी ज्ञानधरकूटसे मोक्ष गये हैं। श्रीअरःनाथस्वामी नाटककूटसे मोक्ष पधारे हैं। श्रीमल्लिनाथ भगवान संबलकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकर निर्जरकूटसे सिद्ध हुये हैं। श्रीनमिनाथदेव मित्रधरकूटसे मुक्त हुये हैं। श्रीपार्श्वनाथ भगवान सुवर्णभद्रसे मोक्ष पधारे हैं। इसप्रकार वीस कूट हैं और उन कूटोंपरसे श्रीअजितनाथ आदि बीस तीर्थंकर मोक्ष पधारे हैं। उन कूटोंमें प्रत्येक कूटसे उन तीर्थंकरोंके मोक्ष जानेसे पहले ही अनंतानंत मुनिराज मोक्ष पधारे हैं इसलिये ये कूट परम पवित्र सिद्धक्षेत्र हैं। यह सम्मेदशिखरक्षेत्र बारह योजन प्रमाण है सो समस्त जीवोंके पापोंका नाश करनेवाला है। इसका दर्शन भव्य जीवोंको ही होता है। अभव्यजीव वहां जा

ही नहीं सकते। अभव्योंके जानेमें अनेक प्रकारके विघ्न आ उपस्थित होते हैं। यदि कोई भव्य जीव महा पापी हो और इस गिरिराजके दर्शन कर ले तो उसके संसारका परिभ्रमण छूट जाता है वह अधिकसे अधिक उनचास भवतक परिभ्रमण कर सकता है। भावार्थ–गिरिराजके दर्शनका ऐसा माहात्म्य है कि इसके दर्शन करनेवाला महापापी भव्य जीव भी उनचास भव तक शुभ गतियोंमें जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। उस बारह योजन प्रमाण सिद्धक्षेत्रमें पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पतिकायिक जीव तथा दो इंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय असंज्ञीपंचेंद्रिय संज्ञीपंचेंद्रिय पशु पक्षी मनुष्य आदि जो जीव उत्पन्न होते हैं वे सब भव्य ही होते हैं। वह भव्य जीवोंका ही जन्मक्षेत्र है, अभव्य जीव वहांपर जन्म धारण नहीं कर सकते। वहांपर भव्य ही जन्म लेते हैं ऐसा नियम है। उस गिरिराजका ऐसा ही माहात्म्य है। तथा उसके दर्शन वंदन स्पर्शन करने आदिसे नरकगति और तिर्यंचगति छूट जाती है। भावार्थ–वह जीव मरणकर फिर तिर्यंच और नरकगतिमें कभी जन्म नहीं लेता। वह या तो स्वर्गमें देव होता है अथवा मध्यम लोकमें उत्तम मनुष्य होता है। ऐसा नियम है।

अब आगे एक एक कूटमें तीर्थकरोंके मोक्ष पधारनेके बाद कितने मुनिराज मोक्ष पधारे हैं सो बतलाते हैं। श्री अजितनाथके साथ एक हजार मुनि मोक्ष पधारे तथा उनके बाद उसी सिद्धवरकूटसे एक अरब चौरासी करोड़ पैंतालीस लाख मुनिराज फिर मोक्ष पधारे। ऐसे उस कूटके दर्शन करनेसे वत्तीस करोड उपवास करनेका फल तथा कर्मोंकी निर्जरा होती है। इस कूटकी यात्रा सबसे पहले सगर नामके चक्रवर्तीने चतुर्विध संघ सहित की थी। दूसरे दत्तधवलकूटसे श्रीशंभवनाथस्वामी एकहजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे पीछे उसी कूटसे नौ कोडाकोडि वहत्तर लाख सात हजार पांचसे वियालीस मुनिराज मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे वियालीस लाख उपवास करनेका फल तथा कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित मघवा चक्रवर्तीने की थी। श्रीअभिनंदनस्वामी आनंदकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे। उसके बाद उसी कूटसे तिहत्तर कोडाकोडि सत्तर करोड सत्तर लाख सातसै हजार पांचसौ वियालीस मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे सोलह लाख उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा संघसहित सनत्कुमार चक्रवर्तीने की थी। श्रीसुमतिनाथ भगवान अविचलकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे तथा उनके बाद उसी कूटसे एक अरब चौरासी करोड़ बारह लाख सातसै इक्यासी मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटसे दर्शन करनेसे वत्तीस करोड उपवास करनेका फल तथा कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा आनंदसेनने की थी। श्रीपद्मप्रभस्वामी मोहनकूटसे एकहजार मुनियों

सहित मोक्ष पधारे उनके बाद उसी कूटसे निन्यानवे करोड़ चौरासी लाख वियालीस हजार सातसै सात मुनि मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे वत्तीस करोड उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी वंदना संघसहित राजा सुप्रभने की थी। श्रीसुपार्श्वनाथ भगवान सुप्रभकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर उसी कूटसे बहत्तर लाख सात हजार सातसौ वियालीस मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे वत्तीस करोड उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इस कूटकी रज शरीर पर लगानेसे कुष्ट रोग मिट जाता है। तथा इसकी यात्राका फल वीसों कूटोंकी यात्राके समान है। इसकी यात्रा चतुर्विधसंघसहित उद्योग नामके राजाने की थी। श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी ललितघट कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे उनके पीछे फिर उसी कूटसे चौरासी अरब बहत्तर करोड चौरासी हजार पांचसौ पचपन मुनिराज मोक्ष पधारे। इस कूटकी वंदना करनेसे सोलह करोड उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित ललितदत्तने की थी। श्रीपुष्पदंत स्वामी सुप्रभकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे। उनके बाद उसी कूटसे निन्यानवे करोड नव्वे लाख सात सै हजार चारसौ अस्सी मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे सोलह करोड उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा संघसहित राजा सोमप्रभने की थी। श्रीशीतलनाथ भगवान् विद्युद्वर कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर इसी कूटसे अठारह कोडाकोडि वियालीस करोड़ वत्तीस लाख वियालीस हजार नौ सै पांच मुनिराज और मुक्ति पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे सोलह करोड उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा अविचलने की थी। श्री श्रेयांसनाथ तीर्थंकर संवलकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर इसी कूटसे छयानवे कोडाकोडि छयानवे करोड छयानवे लाख पैंतालीस हजार पांचसौ वियालीस मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा आनंदसेनने की थी। श्रीविमलनाथ भगवान सुवीर कूटसे एक हजार मुनियोंके साथ मोक्ष पधारे फिर उनके बाद उसी कूटसे सत्तर करोड साठ लाख छह हजार सातसै वियालीस मुनि और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा सुप्रभने की थी। श्रीअनंतनाथ भगवान स्वयंभू नामके कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे। उनके बाद उसी कूटसे छयानवे कोडाकोडि सत्तर करोड़ सत्तर हजार सातसौ मुनिराज और मोक्ष पधारे। इस कूटके दर्शन करनेसे सोलह करोड उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है। इसकी यात्रा चतु-

विध संघ सहित राजा चारुसेनने की थी । श्रीधर्मनाथ स्वामी दत्तवर कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे । फिर उसी कूटसे उन्नीस करोड नौ लाख नौ हजार सातसौ पिच्यानवे मुनिराज और मोक्ष पधारे इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवास-का फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है । इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा विभीत्रसेनने की थी। श्रीशांतिनाथ तीर्थंकर प्रभास कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे । फिर उसी कूटसे नौ कोडाकोडि नौ लाख नौ हजार नौ सौ निन्यानवे मुनियोंने और मोक्ष पाई । इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है । इसकी यात्रा संघ सहित राजा सुदर्शनने की थी । श्रीकुंथुनाथ भगवान ज्ञानधर कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर उसी कूटसे छयानवे कोडाकोडि छयानवे करोड़ बत्तीस लाख छयानवे हजार सातसै वियालीस मुनि और मोक्ष पधारे । इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड उपवास का फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है । इसकी यात्रा चतुर्विध संघ सहित राजा सोमधरने की थी । श्रीअरनाथ स्वामी नाटक कूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे । फिर वाही कूटतैं निन्यानवे करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार मुनिराज और मोक्ष पधारे । इस कूटकी वंदना करनेतैं छयानवे करोड उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है । इसकी यात्रा चतु-र्विध संघसहित राजा सुप्रभने की थी, मल्लिनाथ तीर्थंकर संवल कूटतैं पांच हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर उसी कूटतैं निन्यानवे करोड़ मुनि और मोक्ष पधारे । इस कूटके दर्शन करनेतैं छयानवे करोड उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है इसकी यात्रा चतुर्विधसंघसहित राजा सत्यसेनने की थी । श्रीमुनिसुव्रतनाथस्वामी निर्जरकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर उसी कूटसे निन्यानवे कोडाकोडि सत्यानवे करोड़ नौ लाख नौसौ निन्यानवे मुनि और मोक्ष पधारे । इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवासका फल तथा कर्मोंकी निर्जरा होती है । इसकी यात्रा चतुर्विधसंघसहित आठवें बलभद्र राजा रामचंद्रने की थी । इकईसवें तीर्थंकर श्रीनमिनाथस्वामी मित्रधरकूटसे एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे फिर उसी कूटसे एक अरब एक करोड़ पैंतालीस लाख सात हजार नौसौ वियालीस मुनि और मोक्ष पधारे । इस कूटके दर्शन करनेसे एक करोड़ उपवासका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है । इसकी यात्रा संघ सहित राजा मेघदंतने की थी । श्रीपार्श्वनाथ भगवान सुवर्णभद्र कूटसे मोक्ष पधारे फिर उसी कूटसे एक करोड़ चौरासी लाख पैंतालीस हजार सातसै वियालीस मुनि और मोक्ष पधारे । इस कूटके दर्शन करनेसे सोलह करोड़ उपवास करनेका फल और कर्मोंकी निर्जरा होती है । इसकी यात्रा चतुर्विध संघसहित राजा सुप्रभावसेनने की थी । इसप्रकार वीसों कूटोंकी यात्राका अलग अलग फल बतलाया । जो सब कूटोंकी यात्रा करते हैं वे जीव अवश्य मोक्ष प्राप्त करते हैं।

प्रश्न—अभव्यको यात्रा क्यों नहीं होती तथा यह बात कहां लिखी है ?

समाधान—एक पोहमीपुरका राजा यात्राके लिये गया था परंतु मार्गमें ही रात्रिमें उसे स्वप्न हुआ। स्वप्नमें उसने अपने पुत्रको मरा देखा। तब वह राजा मोहके उदयसे बहुत दुखी हुआ और पीछे घरको लौट गया सो यह राजा अभव्य था इसीलिये वह सम्मेदशिखरकी यात्रा न कर सका। इससे सिद्ध होता है कि अभव्योंको यात्रा नहीं होती ऐसा नियम है।

प्रश्न—जो मनुष्य भव्य हो परंतु उसके नरकायु अथवा तिर्यंचायुका बंध हो गया हो तो उसको यात्रा होती है या नहीं ?

समाधान—राजा श्रेणिकने श्रीमहावीरस्वामीसे पूछा था कि मेरे भाव श्रीसम्मेदशिखरजीकी यात्रा करनेके हैं। तब भगवानने अपनी दिव्यध्वनि द्वारा बतलाया कि तुमको यात्रा हो नहीं सकेगी क्योंकि तुम्हारे पहले नरकायुका बंध हो चुका है। इसलिये तुम्हारे यात्राका संयोग नहीं है। फिर भी राजा श्रेणिक वहां गया परंतु यात्राके समय दश लाख व्यंतरोंके स्वामी प्रभूत नामक यक्षने महा प्रचंड हवा चलाई जिसके कारण राजा श्रेणिकको यात्रा हुई ही नहीं। महारानी चेलनीने भी श्रेणिकसे कहा कि हे स्वामिन् ! केवली भगवानके वचन कभी अप्रमाण नहीं हो सकते। रानीके वचन सुनकर राजा श्रेणिक भी वापिस आ गया उसको यात्रा हुई ही नहीं। अब भी अनेक संघ जाते हैं परंतु जिनको दर्शन होनेका योग नहीं होता उनके अनेक विघ्न हो जाते हैं अनेक अंतराय आ जाते हैं और उनके दर्शन होते ही नहीं। इसलिये जो अभव्य हैं जिनके नरकायु वा तिर्यंचायुका बंध हो चुका है उनकी यात्रा नहीं होती। जो भव्य है परंतु जिनके नरकायु वा तिर्यंचायुका बंध हुआ है उनके भी यात्रा होना कठिन है। जिनके शुभकर्मोंका उदय है ऐसे भव्यजीवोंके ही सम्मेदशिखरकी यात्रा होती है। इसलिये जिसने इसकी यात्रा कर ली उसे आसन्नभव्य वा निकटभव्य ही समझना चाहिये।

जो भव्यजीव सफेद वस्त्र पहनकर इसकी यात्रा करते हैं उनको शीघ्र मोक्ष प्राप्त होती है। जो पीले वस्त्र पहिनकर इसकी यात्रा करते हैं उनके अनेक प्रकारके रोग मिट जाते हैं। जो हरे वस्त्र पहिनकर वंदना करते हैं उनकी मानसिक पीड़ा और अनेक प्रकारके शोक संताप मिट जाते हैं। जो भव्यजीव लाल रंगके वस्त्र पहिनकर दर्शन करते हैं उनको अनेक प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त होती है। इसप्रकार इसका विशेष फल है। इसप्रकार जो भव्यजीव भावसहित एक बार भी सम्मेदशिखरकी यात्रा वंदना करते हैं उन्हें ऊपर लिखे अनुसार फल प्राप्त होता है। इसमें कोई किसी प्रकारका संदेह नहीं। यह सब कथन लोहाचार्य विरचित शिखरविलासमें कहा है। हमने यहां संक्षेपसे लिखा है विशेष वहांसे जान लेना। ऐसा समझकर भव्यजीवोंको सम्मेदशिखरकी यात्रा वंदना

बड़ी भक्तिसे करनी चाहिये। यही कल्याणस्वरूप है।

प्रश्न—जो नरकायुका बंध कर चुके हैं ऐसे रावण आदि भी तो वहां बंदनाके लिये गये हैं?

उत्तर—रावण वहां गया तो सही परंतु यात्रा करनेके लिये नहीं गया। मार्गमें जाते जाते उस वनमें रहा और त्रिलोकमंडन नामके हाथीको पकड़ कर उसकी क्रीड़ा करनेमें ही मग्न हो गया उसको वश कर सवेरे ही वहांसे घरको चल दिया उसको वहांकी यात्रा बंदना आदि नहीं हुई। ऐसा पद्मपुराणमें लिखा है सो विचार कर लेना चाहिये जिन्होंने पहले नरकायु अथवा तिर्यंचायुका बंध कर लिया है उनको सम्मेदशिखरकी यात्रा नहीं होती।

इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार सम्मेदशिखरकी वीस टोंकोंसे वीस तीर्थंकर और अनतमुनि मोक्ष पधारे हैं उनको हमारा बार बार नमस्कार हो। तथा हमारा भी जन्म वहीं हो।

५। चर्चा एकसौ पंद्रहवीं।

पर्याप्त नामकर्मके उदयसे तो पर्याप्तक होते हैं तथा अपर्याप्त नाम कर्मके उदयसे अपर्याप्तक होते हैं परंतु निर्वृत्ति अपर्याप्तक और लब्धि अपर्याप्तक ये दो भेद और सुने जाते हैं वे किस किस कर्मके उदयसे होते हैं और इनका स्वरूप क्या है?

समाधान—निर्वृत्ति अपर्याप्त तो पर्याप्तक नामकर्मके उदयका एक भेद है और लब्धिअपर्याप्तक अपर्याप्तक नामकर्मके उदयका दूसरा भेद है। ये दोनों भेद और किसीके नहीं है।

इनका स्वरूप इसप्रकार है—पर्याप्त नामकर्मके उदयसे एकेंद्रिय जीवोंके चार पर्याप्ति होती हैं, दो इंद्रियके छह, तेइंद्रियके सात, चौइंद्रियके आठ, असेनीपंचेंद्रियके नौ और सनीपंचेंद्रियके दस पर्याप्ति होती हैं। सो इनमेंसे जबतक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक अर्थात् शरीर नामकी पर्याप्ति पूर्ण होने तक जो अंतर्मुहूर्तका समय है उसमेंसे एक समय कम समय तक अपर्याप्त अवस्था रहती है। शरीर पर्याप्तिकी पूर्णताको निर्वृत्ति कहते हैं जिनकी पूर्णता होनेवाली है परंतु अभीतक हुई नहीं है तबतक अर्थात् शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेतक निर्वृत्यपर्याप्तक कहलाता है। इसप्रकार यह भेद पर्याप्तकका ही है। निर्वृत्यपर्याप्तकका समय अंतर्मुहूर्त है। तथा लब्ध्यपर्याप्तक अपर्याप्त नामकर्मके उदयसे होते हैं। एकेंद्रियसे आदि लेकर सेनीपंचेंद्रिय तकके जीव जो अपनी शरीरपर्याप्ति भी पूर्ण न कर सकें एक श्वासके अठारहवें भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्तमें ही जो मर जांय ऐसे जीवोंको लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं। ये सब भेद गोम्मटसारके पर्याप्तिप्ररूपणाधिकारमें लिखे हैं।

पर्याप्तक ११७ पज्जत्तस्स य उदयेणियणियपज्जत्तिणिट्ठिदो होदि। जावसरीरमपुण्णं णिवित्ति अपुण्णगो ताव ॥१२०॥
उदयादु अपुण्णस्सय सगसगपज्जत्तियं ण णिट्ठवदि। अंतोमुहुत्तमरणं लद्धि अपज्जत्तगो सो दु ॥१२१॥

इनका उदाहरण इस प्रकार है। जैसे किसीने घर बनवाया। सो नीम भरकर जबतक वह घर पूरा नहीं होता तबतक अपर्याप्तक कहते हैं तथा पूर्ण होनेपर पर्याप्तक कहलाता है। और नीम भरकर फिर कामका पडा रखना कभी पूरा न होना सो लब्ध्यपर्याप्तक है। भावार्थ—जो एक श्वासमें अठारहवार जन्म मरण करते हैं उनको लब्ध्यपर्याप्तक जानना।

११६। चर्चा एकसौ सोलहवीं।

ऊपर जो लब्ध्यपर्याप्तक और निर्वृत्यपर्याप्तक बतलाये हैं उन जीवोंके कौनसा गुणस्थान होता है और कौनसा नहीं होता?

समाधान—लब्ध्यपर्याप्तक जीवके एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है, मिथ्यात्वके सिवाय और कोई गुणस्थान नहीं होता। तथा निर्वृत्यपर्याप्तक जीवके मिथ्यात्व, सासादन, असंयत और प्रमत्त ये चार गुणस्थान होते हैं। इनमें भी पहले और चौथे गुणस्थानसे मरकर यह जीव चारों गतियोंमें उत्पन्न हो सकता है। तथा सासादन गुणस्थानमें मरण करनेवाला जीव नरकको छोडकर अन्य तीन गतियोंमें उत्पन्न होता है। इन तीनों गुणस्थान वाले जीवोंके जन्मके प्रथम समयसे लेकर औदारिक वा वैक्रियिक शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता न हो तबतक निर्वृत्यपर्याप्तकपना है तथा छठे गुणस्थानवर्ती मुनियोंके जबतक आहारक शरीरकी पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक निर्वृत्यपर्याप्तकपना है। इस प्रकार इनका स्वरूप गोमट्टसारके पर्याप्ति नामके प्ररूपणाधिकारमें लिखा है। यथा—

लद्धिअपुण्णं मिच्छे तत्थवि विदिये चउत्थ छट्ठे य। णिवित्तिअपज्जत्ता तत्थवि सेसेसु पज्जत्ती ॥ १२७ ॥

११७। चर्चा एकसौ सत्रहवीं।

चौदह मार्गणा और चौदह गुणस्थानोंमें सांतराके आठ भेद कौन कौन हैं तथा उनका स्वरूप संख्या और विधान क्या है?

समाधान—श्रीगोमट्टसारके मार्गणा नामके महाधिकारके प्रारंभमें लिखा है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा विवक्षित (जिसका कथन कर रहे हैं) गुणस्थानको तथा मार्गणा स्थानको छोडकर अन्य कोई गुणस्थान वा मार्गणास्थान प्राप्त हो जाय और फिर ११[illegible]

जबतक वही विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणा स्थान प्राप्त न हो जाय तबतक वह उसका अंतर कहा जाता है। उस अंतरकी अंतर-काल संज्ञा है। जैसे इस लोकमें नाना जीवोंकी अपेक्षा उपशम सम्यग्दृष्टी जीवोंका अंतर सात दिन है। अर्थात् तीनों लोकोंमें कोई जीव उपशम सम्यग्दृष्टी न हों तो अधिकसे अधिक सात दिन तक न हों सात दिन बाद तो कोई न कोई अवश्य होता ही है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपराय संयमीका उत्कृष्ट अंतर छह महीना है। छह महीने बाद कोई न कोई सूक्ष्मसांपराय संयमी अवश्य होता ही है। आहारक और आहार मिश्रकाय योग वालेका उत्कृष्ट अंतर वर्ष पृथक्त्व है। तीनसे ऊपर और नौसे नीचे चारसे आठ तककी संख्याको पृथक्त्व कहते हैं। इतने वर्ष बाद कोई न कोई अवश्य होता ही है। वैक्रियिक मिश्रकाय योगवालेका उत्कृष्ट अंतर बारह मुहूर्त है। बारह मुहूर्तवाद कोई न कोई उत्पन्न होता ही है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य सासादनगुणस्थानवर्ती जीव तथा मिश्र गुणस्थानवर्ती जीवोंका उत्कृष्ट अंतर एक पल्यके असंख्यातवें भाग है। पल्यके असंख्यातवें भाग बाद कोई न कोई होता ही है। इस प्रकार आठो सांतर मार्गणाओंकी उत्कृष्ट कालकी मर्यादा है। तथा इन आठों ही उत्कृष्ट सांतरोंका जघन्य काल एक समय है। भावार्थ— इनके अंतरका उत्कृष्ट काल तो पहले कहा है उससे अधिक कालका अंतर नहीं पड सकता। इतने कालके बाद कोई न कोई उत्पन्न होता ही है। तथा जघन्यकालके अंतरसे कम कालमें कोई उत्पन्न नहीं होता।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व वाले पांचवें गुणस्थानका उत्कृष्ट अंतर चौदह दिनका है चौदह दिन बाद कोई न कोई उत्पन्न होता ही है। तथा प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाले छठे गुणस्थानवर्ती जीवोंका उत्कृष्ट अंतर एक पक्षका है। तथा किसी आचार्यके मतमें बीस दिनका भी है। अर्थात् इतने दिन बाद कोई न कोई होता ही है। सो ही गोमट्टसारमें लिखा है—

उवसमसुहमाहारे वगुव्वियमिस्सणरअपज्जत्ते। सासणसम्मे मिस्से सांतरगा मग्गणा अट्ठ ॥१४२॥
सत्तदिणा छम्मासा वासपुधत्तं च बारसमुहुत्ता। पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमया दु ॥१४३॥
पढमुवसमसहिदाए विरदाविरदीय चोदसा दिवसा। विरदीय पण्णरसा विरहदिकालो दुबोधव्वो ॥१४४॥

इस प्रकार लिखा है यदि इससे विशेष जानना हो तो तत्त्वार्थसूत्रकी टीका सर्वार्थसिद्धिसे जान लेना चाहिये।

११८। चर्चा एकसौ अठारहवीं।

चक्रवर्ती नारायण आदि कितने ही पुण्याधिकारी पुरुषोंके हजारों स्त्रियां होती हैं तथा चक्रवर्ती रातमें पटरानीके ही महलमें

रहते हैं परंतु पटरानीके पुत्र नहीं होता वह वंध्या ही होती है तथा अन्य रानियोंके पुत्रादिक होते हैं और चक्रवर्तीके औदारिक शरीरका उदय रहता है। अर्थात् उसके औदारिक शरीर होता है। इसलिये अन्य रानियोंके पुत्रादिक किस प्रकार उत्पन्न होते हैं?

समाधान—चक्रवर्ती आदि कितने ही पुण्य पुरुषोंके औदारिक शरीर तो होता है परंतु वह विक्रियारूप परिणत होजाता है। विक्रियाके दो भेद हैं एक पृथक् विक्रिया और दूसरी अपृथक् विक्रिया। जो विक्रियासे अपने शरीरके अनेक रूप बना लेवे उसको पृथक् विक्रिया कहते हैं। जैसे चक्रवर्ती छयानवे हजार शरीर बना लेता है तथा जो अलग अलग शरीर तो न बना सके किंतु विष्णुकुमारके समान छोटा बड़ा शरीर बना सके उसको अपृथक् विक्रिया कहते हैं। ऊपर लिखे चक्रवर्ती आदि पुण्य पुरुषोंके ये दोनों ही विक्रियाएं होती हैं। इसलिये वे अपनी विक्रियासे अनेक प्रकारकी चेष्टाएं वा अनेक शरीर करते रहते हैं। इस प्रकार गोमट्टसारके महामार्गणाधिकारमें योग मार्गणामें लिखा है—

वादर तेऊ वाऊ पंचेंदिय पुण्णगा विगुव्वंति। ओरालियं सरीरं विगुव्वणप्पं हवे जेसिं॥ २९॥

अर्थात्—वादर तेजस्कायिक और वादर वायु कायिक ये दो वादर स्थावर कायके जीव तथा कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए चक्रवर्ती पुण्याधिकारी पुरुष सेनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक मनुष्य भोगभूमिमें उत्पन्न हुए सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक तिर्यंच तथा मनुष्य ये सब अपने औदारिक शरीरको विक्रियारूप परिणमा लेते हैं। जिनके औदारिक शरीर ही विक्रियारूप होता है उनके किसीके पृथक् विक्रिया और कितने ही के अपृथक् विक्रिया होती है। तथा कितने ही के दोनों प्रकारकी विक्रिया होती है। ऐसा समझ लेना चाहिये।

११९। चर्चा एकसौ उन्नीसवीं।

प्रमत्त नामके छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनियोंके आहारक शरीर होता है। चैत्य वंदना करने, यात्रा करने वा पदार्थोंके निर्णय करने के लिये मस्तकसे एक हाथ प्रमाण श्वेत पुरुषाकार प्रदेश निकलते हैं केवलीके दर्शनकर अथवा यात्रादिक अपना कार्य कर फिर वहीं आकर प्रवेश कर जाते हैं ऐसे इस आहारक शरीरकी उत्कृष्ट जघन्य स्थिति कितनी है?

समाधान—आहारक शरीरकी जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त है। तथा आहारक शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता होने पर आहारक योगवाले छठे गुणस्थानवर्ती साधुकी आहारक काययोगके समयमें यदि आयुका अंत हो जाय तो उनका मरण भी हो जाता है सो ही गोमट्टसारमें मार्गणामहाधिकारके अंतर्गत योग मार्गणाधिकारमें लिखा है—

अन्नावादी अंतोमुहुत्तकालट्ठिदी जहण्णिदरे। पज्जत्तीसंपुण्णे मरणंपि कदाचि संभवइ॥ २३७॥

१२०। चर्चा एकसौ वीसवीं।

ऊपर आहारक शरीरका काल अंतर्मुहूर्त बतलाया उस समय वह साधु अपने औदारिक शरीरसे गमन आगमन आदि क्रिया करे या नहीं और, यदि उसके विक्रिया ऋद्धि भी हो तो उस ऋद्धिके द्वारा शरीरकी विक्रिया रूप चेष्टा कर सकता है या नहीं?

समाधान—प्रमत्त संयमी मुनिराजके एक कालमें एक ही साथ वैक्रियिक काययोगकी क्रियामें आहारक योगकी क्रिया नहीं होती। इससे सिद्ध होता है कि आहारक योगके समय औदारिक वैक्रियिक शरीरसे गमनागमनादिक क्रियाओंका नियमसे अभाव रहता है एक कालमें दो क्रियाएं नहीं होतीं। सो ही गोमट्टसारमें योगमार्गणाधिकारमें लिखा है।

वेगुव्वियआहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदम्हि। जोगोवि एक्ककाले एक्केव य होदि णियमेण॥ २४१॥

१२१। चर्चा एकसौ इकीसवीं।

औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस और कार्मणकी उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति कितनी कितनी है?

समाधान—औदारिक शरीरकी जघन्य स्थिति एक श्वासके अठारवें भाग है। इसका वर्णन पहले लिख चुके हैं। वैक्रियककी जघन्य स्थिति देव नारकियोंकी अपेक्षा दश हजार वर्ष है। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम्। भवनेषु च। व्यंतराणां च। तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ४ सूत्र संख्या ३६-३७-३८।

तथा आहारककी जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है जो ऊपर लिख चुके हैं। तैजसकी जघन्यस्थिति कार्मणकी जघन्य स्थिति अन्य गतिके गमनकी अपेक्षा एक दो तीन समय है। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकः। अध्याय २ सूत्र संख्या ३०।

इसप्रकार इनकी जघन्यस्थिति बतलाई। अब आगे इन पांचों शरीरोंकी उत्कृष्टस्थिति बतलाते हैं। भोगभूमियोंकी अपेक्षा औदारिकोंकी बंधरूप उत्कृष्टस्थिति तीन पल्य है। देव नारकियोंकी अपेक्षा वैक्रियिककी तेतीस सागर है। आहारककी अंतर्मुहूर्त है। तैजस शरीरकी छयासठ सागर है। कार्माण शरीरकी उत्कृष्टस्थिति सामान्यरीतिसे सत्तर कोडाकोडी सागर है तथा विशेष

रीतिसे ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय और अंतरायकी तीस कोडाकोडी सागर है नामगोत्रकी वीस कोडाकोडी सागर हैं। सो ही गोमट्टसारमें लिखा है—

पल्लतियं उवहीणं तेत्तीसंतोमुहुत्त उवहीणं। छावट्ठि कम्मट्ठिदि बंधुकस्सट्ठिदी ताणं ॥ २५१ ॥

१२२। चर्चा एकसौ बाईसवीं।

देवोंकी जो देवांगनायें होती हैं उनकी उत्कृष्ट व जघन्य संख्या कितनी है?

समाधान—देवांगनाओंकी जघन्य संख्या बत्तीस है। अर्थात् किसी भी देवके इससे कम देवांगनाएं नहीं होतीं तथा इंद्रके इससे असंख्यातगुणी देवांगनाएं होती हैं। सो ही गोमट्टसारके वेदमार्गणाधिकारमें लिखा है—

इगपुरिसे वत्तीसं देवी तज्जोगभजिददेवोघे। सगगुणगारेण गुणे पुरिसा महिला य देवेसु ॥ २७७ ॥

१२३। चर्चा एकसौ तेईसवीं।

नरकगतिमें तथा देवगतिमें क्रोधादिक कषायोंके उदयकालकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति कितनी है?

समाधान—नरकके जीवोंके तथा देवोंके कषायकी जघन्य उत्कृष्टस्थिति एक अंतर्मुहूर्त है। भावार्थ—अंतर्मुहूर्तके बहुत भेद हैं इसलिये जघन्य और उत्कृष्टस्थिति दोनों ही अंतर्मुहूर्तमें शामिल हैं। उनकी कषाएं इससे अधिक नहीं ठहर सकतीं।

इसका भी विशेष वर्णन इसप्रकार है। नरकके जीवोंके जो लोभ कषाय है उसका उदयकाल सबसे कम है। उसे लोभके उदयकालसे उनकी मायाका उदयकाल संख्यातगुणा है। मायासे मानका उदयकाल संख्यातगुणा है और मानसे क्रोधका उदयकाल संख्यातगुणा है। तथा देवोंके क्रोधका उदयकाल सबसे कम है। क्रोधसे मानका उदयकाल संख्यातगुणा है। मानसे मायाका उदयकाल संख्यात गुणा है और मायासे लोभका उदयकाल संख्यात गुणा है तथा नरकगतिके लोभका और देवगतिके क्रोधका काल भी अंतर्मुहूर्त है और नरकगतिके क्रोधका तथा देवगतिके लोभका काल भी अंतर्मुहूर्त है। जघन्य और उत्कृष्टपना समयकी हानि वृद्धिसे है परंतु दोनोंका काल है अंतर्मुहूर्त। सो ही गोमट्टसारके कषाय मार्गणाधिकारमें लिखा है—

पुह पुह कसायकालो णिरये अंतोमुहुत्तपरिमाणो। लोहादी संखगुणो देवेसु य कोहपहुदीदो ॥ २९५ ॥

इसके आगे मनुष्य तिर्यंचोंके कषायोंका वर्णन है सो विशेष वहांसे जान लेना।

१२४। चर्चा एकसौ चौवीसवीं।

शास्त्रोंमें सात प्रकारके संयम बतलाये हैं उनमेंसे परिहारविशुद्धि संयमीकी निरुक्ति, उत्पत्ति, स्थिति और इसको धारण करनेवालेकी प्रवृत्तिका स्वरूप क्या है?

समाधान—इसकी निरुक्ति अथवा प्रत्येक शब्दके अर्थसे निकलनेवाला अर्थ इस प्रकार है। जो छठे गुणस्थानमें रहनेवाले साधुके सामायिक छेदोपस्थापनापूर्वक परिहार अर्थात् छहों कायके जीवोंकी हिंसाका त्याग करनेसे विशुद्धि अर्थात् अत्यंत निर्मलता—आत्माकी निर्मलता हो गई है उस निर्मलताके साथ साथ सम् अर्थात् अच्छी तरह यम अर्थात् अपनी आयु पर्यंत समस्त पापोंका त्याग कर देना सो परिहारविशुद्धि संयम है। तथा इसकी उत्पत्ति इस प्रकार होती है। जो मनुष्य जन्मसे लेकर भोजन पान आदिसे सदा सुखी रहा हो, कमसे कम तीस वर्षकी आयुमें दीक्षा लेवे, सामायिक आदि संयमके साथ साथ कमसे कम आठ वर्ष पर्यंत तीर्थंकर भगवानके चरणकमलोंके निकट रहकर आचारांगको आदि लेकर प्रत्याख्यान नामके नौवें पूर्व तक पाठी होजाय ऐसे महामुनिके परिहार विशुद्धि नामका संयम उत्पन्न होता है। इस संयमको धारण करनेवाले साधुकी प्रवृत्ति इस प्रकार है। प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल इन तीनों सामायिकके समयोंको छोडकर बाकीके समयमें कमसे कम दो कोस विहार करता है। रात्रिमें विहार नहीं करता तथा जिसके वर्षाकालमें एक जगह चौमासा करनेका नियम भी नहीं रहता। एक जगह चौमासा करे भी और न भी करे। अब आगे इसकी स्थिति बतलाते हैं। इसकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त है। अंतर्मुहूर्त बाद गुणस्थान बदल सकता है। तथा उत्कृष्ट स्थिति अड़तीस वर्ष कम एक करोड पूर्व है जिस मनुष्यकी एक करोड पूर्वकी आयु है, वह यदि तीस वर्षकी आयुमें दीक्षा ले लेवे और फिर आठ वर्ष तक तीर्थंकरके निकट रहकर पहले अंगसे लेकर ग्यारह अंग नौ पूर्वतक अभ्यास करे और फिर उसके परिहारविशुद्धिसंयम उत्पन्न हो ऐसी अवस्थामें वह सयम अडतीस वर्ष कम एक करोड पूर्व तक रह सकता है।

प्रश्न—वर्षाकालमें सामान्य साधु भी गमन नहीं करते फिर भला परिहारविशुद्धिसंयमको धारण करनेवाला साधु किस प्रकार गमन करता है। यदि वह वर्षाकालमें भी गमन करता है तो फिर उसके परिहारविशुद्धि अर्थात् हिंसाका त्याग पूर्वक आत्माकी विशुद्धि किस प्रकार बन सकती है?

समाधान—जिस प्रकार कमलके पत्ते जलमें रहते हुए भी जलसे अलिप्त रहते हैं उसी प्रकार जिस मुनिराजके परिहारविशुद्धि

संयमकी ऋद्धि प्राप्त होगई है वे यदि छहों कायके जीवोंके समूहमें भी गमन करें तो भी वे पापोंसे लिप्त नहीं होते हैं। भावार्थ— उस ऋद्धिका ऐसा ही माहात्म्य है कि जिसके होते हुये जलमें स्थलमें अग्निमें वृक्षोंपर फलोंपर पत्रोंपर पुष्पोंपर वा तंतुओं पर कहीं पर गमन करें परंतु उनके शरीरसे किसी भी सूक्ष्म वा स्थूल जीवको किसी प्रकारकी बाधा नहीं होती है। लिखा भी है—

परिहारर्द्धिसमेतः जीवः षट्कायसंकुले विहरन्। पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन॥

यही वर्णन श्रीगोमट्टसारके संयम मार्गणा अधिकारमें लिखा है।

तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले। पच्चक्खाणं पढिदो संझूणदुगाउयविहारो॥ ४७२॥

१२५। चर्चा एकसौ पचीसवीं।

इंद्रियोंके विषय कहीं तेईस कहे हैं और कहीं सत्ताईस कहे हैं सो इनमें विशेषता क्या है?

समाधान—पांचों इंद्रियोंके तथा मनके विषय सब मिलाकर अट्ठाईस हैं। तेईस तो सामान्य हैं और सत्ताईस वा अट्ठाईस विशेष हैं। वे भेद इस प्रकार हैं। खट्टा, मीठा, कषायला, कडवा और तीक्ष्ण वा चरपरा ये पांच रस रसना इंद्रियके विषय हैं। इन पांचों विषयोंको यह जीव रसना इंद्रियके द्वारा जानता है। सफेद, पीला, हरा, लाल, काला ये पांच वर्ण नेत्रइंद्रियके विषय हैं। सुगंध और दुर्गंध ये दो गंध नासिका इंद्रियके विषय हैं। हलका, भारी, नरम, कठोर, ठंडा, गरम, रूखा, चिकना, ये आठ स्पर्श स्पर्शन इंद्रियके विषय हैं तथा सचेतन अचेतन मिश्र ये तीन प्रकारके शब्द श्रोत्र वा कर्ण इंद्रियके विषय हैं। तथा इन्हीं शब्दोंके स्वरोंकी अपेक्षा सात भेद होते हैं। निषाद ऋषभ गांधार षडज मध्यम धैवत पंचम। यदि तीन स्वरोंके बदले ये सात मिला दिये जांय तो तेईसके बदले सत्ताईस भेद हो जाते हैं। इनमें अनेक विकल्प करनेरूप मनका विषय मिला देनेसे सैनी पंचेंद्रियके सब अट्ठाईस विषय हो जाते हैं। सो ही गोमट्टसारमें संयम मार्गणाधिकारमें लिखा है—

पंचरसपंचवण्णा दो गंधा अट्ठफाससत्तसरा। मणसहिदट्ठावीसा इंदियविसया मुणेदव्वा॥ ४७८॥

१२६। चर्चा एकसौ छव्वीसवीं।

नारकी जीवोंके शरीरका वर्ण एकसा है अथवा जुदे जुदे रंगका है?

समाधान—नारकी जीवोंका शरीर वैक्रियिक है और उनका सबका वर्ण कृष्ण वर्ण वा काला है। सो ही गोमट्टसारके लेश्याधिकारमें लिखा है—

णिरया किण्हा। इत्यादि।

१२७। चर्चा एकसौ सत्ताईसवीं।

पृथ्वीकायिक आदि समस्त सूक्ष्म जीवोंके शरीरका वर्ण कौनसा है।

समाधान—समस्त सूक्ष्म जीवोंका शरीर कापोत रंगके (कबूतरके रंगके) समान है। सो ही गोमट्टसारके लेश्याधिकारमें लिखा है—

सव्वेसिं सुहमाणं कावोदा। इत्यादि।

१२८। चर्चा एकसौ अट्ठाईसवीं।

विग्रह गतिमें रहनेवाले अनाहारक जीवके कार्मण योगके शरीरका वर्ण कौनसा है?

समाधान—विग्रहगतिके समयमें समस्त जीव शुक्ल शरीर धारण करते हैं। भावार्थ—कार्माण शरीरका वर्ण शुक्ल है। सो ही गोम्मटसारमें लेश्याधिकारमें लिखा है—

"सव्व विग्गहे सुक्का"

१२९। चर्चा एकसौ उनतीसवीं।

मिश्रयोगवाले जीवके शरीरका वर्ण कौनसा है?

समाधान—मिश्रयोगवालेके शरीरका वर्ण कपोत वर्ण है। भावार्थ—अपनी अपनी पर्याप्तिके प्रारंभके प्रथम समयसे लेकर जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तबतक अपर्याप्तक अवस्था कहलाती है। उस अपर्याप्तक अवस्थामें शरीरका वर्ण नियमसे कपोत वर्णका होता है। सो ही गोमट्टसारमें लिखा है—

सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवे णियमा।

१३० । चर्चा एकसौ तीसवीं ।

कृष्ण आदि छहों लेश्यावालोंके लक्षण क्या क्या हैं।

समाधान—जिसके अत्यंत तीव्र वा भयानक क्रोध हो, जो वैरभावको कभी न छोडे, परस्पर लडाई करने वा युद्ध करनेका जिसका स्वभाव हो, जो दयाधर्मसे सर्वथा रहित हो, हिंसाधर्मको माननेवाला हो, दुष्ट हो, जो किसी भी गुरुजन वा महापुरुषोंके वश न हो, अथवा गुरु आदि महापुरुषोंकी आज्ञाके बाह्य हो, गुरुजनोंकी आज्ञाको न मानता हो। भावार्थ—निगुरा हो, स्वच्छन्द हो, दीक्षा शिक्षाका लोप करनेवाला और मनोमति (मनसे धर्मकी अनेक मिथ्या कल्पनाएं करनेवाला) हो, उन्मत्त हो, यथार्थ क्रियाओंके करनेमें अत्यंत मंद हो, हीनाचारी हो, बुद्धिरहित हो, वर्तमान समयके कार्योंको भी जाननेवाला न हो, जो विज्ञान पांडित्य वा चतुरतासे सर्वथा रहित हो, स्पर्शन आदि समस्त इंद्रियोंके समस्त विषयोंके भोगोपभोगोंमें अत्यंत लंपटी हो, जो अभिमानी हो, कपटी हो, कुटिल हो, क्रिया करनेमें कुंठित वा मंद हो, जिसके अभिप्रायको कोई दूसरा न जान सके, जो अत्यंत आलसी हो, इसप्रकार जिसके लक्षण हों, उसे कृष्णलेश्यावाला समझना चाहिये। जिसको नींद अधिक आवे, दूसरोंको ठगनेका जिसका स्वभाव हो तथा धनधान्य आदि पदार्थोंमें जिसकी अत्यंत तीव्र इच्छा वा लालसा हो उसको नीललेश्यावाला समझना चाहिये। जो दूसरों पर सदा क्रोध करता रहे, अनेक प्रकारसे दूसरोंको पीड़ा देता रहे, जो अत्यंत शोक वा भय करनेवाला हो, दूसरेके धनधान्य ऐश्वर्य आदिको न देख सके, जो दूसरेका अपमान करता रहे, सदा अपनी प्रशंसा ही करता रहे, दूसरोंको अपने समान पापी कपटी मानी समझता हुआ किसीका विश्वास न करे, जो दूसरोंकी हानि वृद्धिको कुछ न समझे, जो युद्धमें मरना चाहे, जो अपनी प्रशंसा करनेवालेको बहुतसा धन देवे और जो कार्य अकार्यको कुछ न गिने उसे कापोतलेश्यावाला समझना चाहिये। जो कार्य अकार्यको जाने, सेवन करने योग्य और न सेवन करने योग्यको समझे, सबको समान देखे, जो दयालु पुरुषोंपर प्रेम करे जो मनसे वचनसे कायसे सब तरहसे कोमल हो, उसे पीतलेश्यावाला समझना चाहिये। जो पापोंका त्यागी हो, भद्रपरिणामी हो, उत्तम उत्तम कार्य करनेरूप ही जिसका स्वभाव हो, शुभकार्योंके लिये उद्योग करना ही जिसका कर्तव्य हो, जो अरिष्ट (अशुभ कर्मोंका उदय) अथवा उपद्रवोंके दुःखोंको सहन करनेमें दृढ हो, मुनियोंकी वा गुरुजनोंकी पूजादिक करनेमें प्रेम रखता हो उसे पद्मलेश्यावाला समझना चाहिये। जो एकांतका पक्षपाती न हो, दूसरेकी निंदा करनेवाला न हो, समस्त जीवोंमें समानभाव रखता हो, इष्ट वा अनिष्ट पदार्थोंमें किसी प्रकारका राग वा द्वेष न रखता हो, पुत्र स्त्री आदि कुटुम्बियोंमें भी स्नेह न रखता हो,

उसे शुक्ललेश्यावाला समझना चाहिये। इस प्रकार छहों लेश्या वालोंके लक्षण गोमट्टसारके लेश्या नामकी मार्गणाके अधिकारमें लिखे हैं—

चंडो ण मुचइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ। दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥५०८॥
मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य। माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य ॥५०९॥
णिंदावंचणबहुलो धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य। लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेसस्स ॥५१०॥
रूसइ णिंदइ अण्णे दूसइ बहुसो य सोयभयबहुलो। असुयइ परिभवइ परं पसंसये अप्पयं बहुसो ॥५११॥
ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं यिवि परंपि मण्णंता। थूसइ अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणिवड्ढि वा ॥५१२॥
मरणं पत्थेइ रणे देइ सुबहुगंपि थुव्वमाणो दु। ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥५१३॥
जाणइ कज्जाकज्जं सेयमसेयं च सव्वसमपासी। दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स ॥५१४॥
चागी भद्दो चोक्खो उज्जुवकम्मो य खमदि बहुगंपि। साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥५१५॥
ण कुणइ पक्खवायं णविवा णिदाणं समो य सव्वेसिं। णत्थि य रायद्दोसा णेहोवि य सुक्कलेसस्स ॥५१६॥

१३१। चर्चा एकसौ इकतीसवीं।

चारों ही गतिवाले जीवोंके वर्तमानकी अपनी आयुमें अन्य गतिका आयुबंध किस किस कालमें होता है और किस किस गतिकी आयुका बंध होता है।

समाधान—देवगति और नरकगतिके जीवोंकी आयु जब अधिकसे अधिक छह महीनेकी रह जाती है तब वे मनुष्य अथवा तिर्यंच आयुका बंध करते हैं। भावार्थ—देवोंकी आयु जब छह महीनेकी रह जाती है तब वे सम्यक्त्व वा मिथ्यात्वके उदयसे होनेवाले अपने अपने परिणामोंसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक मनुष्य और पशु इन पांच प्रकारकी गतियोंमेंसे किसी भी एक गतिके लिये आयुबंध कर लेते हैं। इसीप्रकार नारकी जीव मनुष्य अथवा तिर्यंचगतिकी आयुका बंध करते हैं। सातवीं

पृथ्वीके नारकी जीव केवल एक तिर्यंचगतिका ही आयु बंध करते हैं। सातवें नरकके जीव मनुष्य आयुका बंध नहीं करते। मनुष्य तथा तिर्यंच गतिवाले जीव जब अपनी वर्तमान आयुका तीसरा भाग रह जाता है तब वे अपने अपने भावोंके अनुसार चारों ही गतियोंमेंसे किसी एक गतिका आयु बंध कर सकते हैं। भोगभूमियोंके मनुष्य तिर्यंच भी अपनी आयुके छह महीने बाकी रहनेपर देवगतिका ही आयु बंध करते हैं। एकेंद्रिय दोइंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय जीव मनुष्य वा तिर्यंचगतिकी आयुका बंध करते हैं। इनमें भी तेजस्काय और वायुकायके एकेंद्रिय जीव तिर्यंच आयुका ही बंध करते हैं। ये दोनों ही प्रकारके एकेंद्रिय जीव मनुष्यगतिकी आयुका बंध नहीं कर सकते। ऐसा श्रीगोमट्टसारके कर्मकांडाधिकारमें लिखा है।

सुरणिरया णरतिरियं छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स। णरतिरया सव्वाउं तिभागसेसम्मि उक्कस्सं॥ ८६ ॥
भोगभुमा देवाउं छम्मासवसिट्ठगे य बंधंति। इगिविगला णरतिरयं तेउदुगा सत्तगा तिरियं॥ ८७ ॥

१३२। चर्चा एकसौ बत्तीसवीं।

षोडशकारण, दशलाक्षणिक, रत्नत्रय तथा पंचमी आदि अनेक प्रकारके व्रत जैनशास्त्रोंमें बतलाये हैं। तथा उन व्रतोंको विधिपूर्वक पूर्ण कर लेनेपर प्रतिष्ठापूर्वक उद्यापन करनेकी आज्ञा व्रतकथाकोश आदि अनेक शास्त्रोंमें बतलाई है। परंतु यदि किसी

---

१ यहांपर इतना विशेष और समझ लेना चाहिये कि आयुबंध आयुके त्रिभागमें पडता है। और वे त्रिभाग अधिकसे अधिक आठ लिये जाते हैं। जैसे किसी मनुष्यकी आयु ८१ इक्यासी वर्षकी है। वह अपनी आयुका एक त्रिभाग बाकी रहनेपर अर्थात् दो भाग वा ५४ चौअन वर्ष बीत जाने पर आगेके लिये आयुबंध करेगा। यदि कारण वश इस समय आयु बंध न कर सका तो बाकीके जो सत्ताईस वर्ष रहे हैं उनके त्रिभागमें अर्थात् ९ वर्षकी आयु शेष रहनेपर ७२ वर्ष बीत जानेपर आयुका बंध करेगा। यदि यहां भी न कर सका तो उस बाकीके भी त्रिभागमें अर्थात् तीन वर्ष आयु शेष रहनेपर परगतिके लिये आयुबंध करेगा। यदि वहां भी न कर सका तो एक वर्ष आयु शेष रहने पर आयु बंध करेगा। यदि यहां भी न हुआ तो चार महीने वा १२० दिन शेष रहने पर आयुबंध करेगा। यदि यहां भी न हुआ तो ४० दिन शेष रहने पर, यदि वहां भी न हुआ तो इसका एक तिहाई १३-$\frac{1}{3}$ दिन आयु बाकी रहने पर आयुबंध करेगा। यदि यहां भी न हो सका तो इसकी तिहाई ४-$\frac{4}{9}$ दिन बाकी रहने पर आयुबंध करेगा। इस प्रकार आठ त्रिभागोंमें आयुबंध होता है यदि इन त्रिभागोंमें बंध नहीं हुआ तो अंतके अंतर्मुहूर्तमें होता है। देव नारकी और भोगभूमियोंकेलिये अंतके छह महीनेमें इसी प्रकार आठ त्रिभाग कर लेने चाहिये।

पुरुषसे उसके उद्यापनकी विधि प्रतिष्ठापूर्वक न बन सके तो वह उन व्रतोंको किसप्रकार कर सकता है ?

समाधान—यदि उद्यापन करनेमें जिनप्रतिष्ठा न बन सके तो उसके अभावमें शांतिक कार्य करना चाहिये। अर्थात् शांतिचक्रका पाठ कर अभिषेकपूर्वक उस व्रतके उद्यापनकी विधि करनी चाहिये ऐसा मार्ग है। यही बात अनंतव्रतकी उद्यापनविधिमें अनंतव्रतकी कथामें आचार्य पद्मनंदिने लिखी है।

अभावे तु प्रतिष्ठायाः शांतिकं कार्यमंजसा।

तथा जिस पुरुषकी इतनी भी शक्ति न हो अर्थात् वह न तो शांतिक कर्म कर सके और न उद्यापनकी विधि ही कर सके तो उसे अपने व्रत विधिपूर्वक दूने समय तक करना चाहिये। जैसे सोलहकारण सोलह वर्षतक किये जाते हैं सो उसे बत्तीस वर्षतक करना चाहिये। पीछे अपनी शक्तिके अनुसार पूजनादिक विधान कर व्रतोंका विसर्जन करे। सो ही अनंतव्रतकी कथामें लिखा है—

अभावे तु प्रतिष्ठायाः शांतिकं कार्यमंजसा। तस्याऽभावे कर्तव्यं द्विगुणं तद्विधानकम् ॥ ६८ ॥

यही बात श्रीवसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित श्रावकाचारमें कायक्लेशाधिकारमें लिखी है।

उज्जवण विहिणंतरइ काउजइ कोवि अत्थपरिहीणो। तो विगुणं कायव्वा उववासविहाणपयत्तेण ॥३६०॥

इसकी टीकामें लिखा है—

"उद्यापनविधिं न समर्थः कर्तुं यदि कोपि अर्थहीनः। तर्हि द्विगुणं कर्तव्यं उपवासादि विधानकं प्रयत्नेन"

अर्थात् यदि कोई धनहीन हो और व्रतोंके उद्यापनकी विधिको न करे तो उसे उपवास आदि संपूर्ण विधान प्रयत्नपूर्वक दूने करने चाहिये" ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है सो देख लेना। यदि जिनप्रतिष्ठापूर्वक उद्यापन करनेकी शक्ति न हो तो उन व्रतोंसे अरुचि नहीं करनी चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार तपको बढ़ानेकेलिये अपने अनेक व्रतोंको विधिपूर्वक दूने कर लेने चाहिये। इन व्रतोंका अलग अलग फल व्रतकथाकोश आदि अनेक शास्त्रोंमें लिखा है वहांसे जान लेना चाहिये। तपके भेदोंमें अनेक व्रत हैं सो कर्मोंकी निर्जराके लिये हैं इसलिये इनसे अरुचि नहीं करनी चाहिये। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

"तपसा निर्जरा च" अध्याय ९ सूत्र सं० ३।

अर्थात् तपसे संवर भी होता है और कर्मोंकी निर्जरा भी होती है।

१३३। चर्चा एकसौ तेतीसवीं।

ऊपर लिखे हुए व्रतोंमेंसे कोई मनुष्य कुछ व्रत ले लेवे और कुछ दिन तक उनका पालन करे फिर अशुभकर्मके उदयसे किसी कारणको पाकर व्रत गल जाय छूट जाय तो उसका क्या प्रायश्चित्त है और दुबारा उसको पालन करनेकी विधि क्या है ?

समाधान-जो कोई व्रती पुरुष विधिपूर्वक व्रतको ले लेवे और फिर रोग शोक वा अन्य किसी कारणसे व्रतकी मर्यादामें एक दो आदि कुछ उपवास बाकी रह जांय तथा ऐसी हालतमें वह व्रत छूट जाय भ्रष्ट हो जाय तो फिर उस व्रतीको चाहिये कि वह फिर प्रारंभसे उस व्रतको करे अर्थात् उस व्रतके लिये जो पहले व्रत उपवास किये थे वे सब व्रतभंगके पापकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्तमें चले गये अब फिर उसे प्रारंभसे ही व्रत धारण करना चाहिये। ऐसा अनुक्रम है सो ही वसुनंदिश्रावकाचारमें लिखा है—

जइ अंतरम्मिकारणवसेण एको व दोव उववासो। ण क उत्तो मूलाओ पुणो वि सा होइ कायव्वो ॥२६१॥

इसकी टीका इसप्रकार है—

"यद्यन्तरकाले कारणवशेन कोपि वा द्वयोपवासाः न कृताः तर्हि मूलात् पुनरपि सा विधिर्भवति तत्कर्तव्या"

अर्थात् "यदि बीचमें किसी कारणसे एक वा दो उपवासे न किये हों तो प्रारंभसे ही उसकी विधि करनी चाहिये।" यदि वह ऐसा न करे तो उसे महापापी समझना चाहिये।

प्रश्न- व्रत भंग करनेसे महापाप लिखा है सो वह कौनसा महापाप लगता है ?

समाधान—जो कोई जीव अपने गुरुसे यम वा नियमरूप कोई व्रत ले लेवे और फिर चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे उस व्रतको भंग कर देवे वह पुरुष एक हजार जिन मंदिरोंके भंग करनेके समान पापका भागी होता है। इसके समान और कोई पाप नहीं है। इसीलिये उसको महापापी कहते हैं। सो ही श्रीश्रुतसागरभणीत व्रतकथाकोशमें सप्त परमस्थान व्रतकी कथा कहते समय लिखा है —

गुरून् प्रतिभुवः कृत्वा भवत्येकं धृतं व्रतम्। सहस्रकूटजैनेंद्रसद्मभंगाघभागलम् ॥

इसलिये व्रतभंग करनेका प्रायश्चित्त अवश्य लेना चाहिये।

१३४ । चर्चा एकसौ चौंतीसवीं ।

भगवानकी पूजा निक्षेप विधियोंसे किस प्रकार की जाती है ।

समाधान—भव्य जीव अपने अपने समय पर विधिपूर्वक देव शास्त्र गुरु आदिकी पूजा छह निक्षेपोंसे करते हैं आगे उन्हींको दिखलाते हैं । नाम पूजा, स्थापना पूजा, द्रव्य पूजा, क्षेत्र पूजा, काल पूजा, भाव पूजा, इन छह निक्षेपोंसे पूजा करनेका विधान श्रीवसुनंदिश्रावकाचारमें लिखा है—

णामट्ठवणा दव्वे खित्त काले वियाण भावे य । छव्विह पूया भणिया समासदो जिणवरिंदेहिं ॥ ३८२ ॥

आगे इनका स्वरूप विस्तारपूर्वक बतलाते हैं । जो पुरुष अरहंत आदि पूज्य परमेष्ठियोंका नाम लेकर किसी पवित्र क्षेत्रमें पुष्पादि द्रव्योंको चढाता है वह नामपूजा कहलाती है । भावार्थ-जिसका नाम लेकर पुष्प चढाये उसकी नामपूजा की ऐसा समझना चाहिये । सो ही लिखा है-

उच्चार कुणइ णामं अरुहाईणं विसुद्धदेसम्मि । पुप्फाणि जं खिविज्जंति वण्णिया णामपूया सा ॥

इस प्रकार नाम पूजाका स्वरूप है । दूसरी स्थापना पूजा है उसके दो भेद हैं, पहला भेद सद्भाव अथवा तदाकार अथवा साकारके नामसे कहा जाता है और दूसरा भेद असद्भाव अथवा अतदाकार नामसे पुकारा जाता है । इस प्रकार दो भेद हैं । सोना चांदी आदि धातुओंके अथवा पाषाण आदिके बने हुए साकारवाले (उसी आकारके) पदार्थमें उसके गुणोंका आरोपण करना तदाकार स्थापना है । जैसे अरहंत देवकी प्रतिमा बनाकर उसमें शास्त्रोक्त पंच कल्याणक विधिसे प्रतिष्ठा कर विधिपूर्वक अरहंत देवके गुणोंका आरोपण करना और फिर उस प्रतिमाको अरहंत मानकर पूजना सो तदाकार वा साकार अथवा सद्भाव स्थापना पूजा है । सो ही लिखा है—

सब्भावासब्भावा दुविहा ठवणा जिणेहि पण्णत्ता । सायारवंत वत्थुमि जं गुणारोवणं पढमा ॥ ३८४ ॥

अक्षत आदि द्रव्योंमें "ये अरहंत परमेष्ठी हैं अथवा सिद्ध परमेष्ठी हैं" इस प्रकार मंत्रपूर्वक स्थापना करना वा "आह्वान तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं मम सन्निहितो भव भव वषट् इत्यादि मंत्रोंसे अक्षत वा पुष्पोंमें स्थापना करना और उसकी अष्ट द्रव्योंसे पूजा करना सो असद्भाव अथवा अतदाकार स्थापना निक्षेप है । सो ही लिखा है—

१ पूजामें आह्वान स्थापना सन्निधिकरण किया जाता है वह स्थापना निक्षेप नहीं है क्योंकि स्थापना निक्षेप "यह वही है" ऐसा संकल्प किया जाता

अक्खय वराउ ओव्वा अमुगोए सुत्तिणय बुद्धीए । संकप्पउणवयणं एस विणेया असब्भावा ॥ ३८५ ॥

इस प्रकार सद्भाव और असद्भावके भेदसे स्थापना पूजा दो प्रकार है। यहांपर कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि जो तीर्थंकर केवली भगवान साक्षात् समवसरणमें विराजमान हैं उनकी पूजा करना सो तदाकार पूजा है। तथा उनकी प्रतिमाकी पूजा करना अतदाकार पूजा है क्योंकि तीर्थंकरकी प्रतिमामें यथोक्त रीति नहीं होती। भावार्थ–शरीरकी ऊंचाई, शरीरका वर्ण, सर्पके फणा अथवा सर्पके स्कंधका संबंध होता, वर्ण तथा और भी अनेक प्रकारके चिन्ह प्रतिमामें तीर्थंकरके स्वरूपसे विपरीत रूप दिखाई पड़ते हैं। इसलिये प्रतिमा तदाकार नहीं है किंतु अतदाकार है। और इनकी पूजा करना भी अतदाकार पूजा है। ऐसा कहते हैं सो यह सब शास्त्रविरुद्ध है। इस प्रकार दो प्रकारकी स्थापना पूजा बतलाई।

जो अरहंत भगवान केवलज्ञानसे सुशोभित समवशरणमें विराजमान हैं उनकी जलफल आदि आठों द्रव्योंसे पूजा करना सो द्रव्यपूजा है। इसका अभिप्राय यह है कि जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये छह द्रव्य हैं इन सबमें सारभूत द्रव्य परमात्म द्रव्य है उस परमात्माकी अष्टद्रव्यसे पूजा करना द्रव्यपूजा है। सो ही लिखा है—

दव्वेण य दव्वस्स य जा पूया जाण दव्वपूजा सा।
दव्वेण गंधसलिलाइपुव्वभणियेण कायव्वा ॥ ४४९ ॥

यदि इस द्रव्यपूजाका विशेष वर्णन किया जाय तो इसके तीन भेद हैं–सचित्त द्रव्यपूजा, अचित्त द्रव्यपूजा और मिश्रद्रव्यपूजा।

है परंतु आह्वान स्थापना और सन्निधिकरणमें "यह वही है" ऐसा संकल्प नहीं होता किंतु वह तो एक आदर सत्कारकी विशेष रीति है। यदि यह विधि न की जाय तो पूजामें कमी समझी जाती है। इसीलिये आह्वान स्थापन आदिको पूजाके अंगोंमें बतलाया है। पूजाके पांच अंग बतलाये हैं–आह्वान स्थापन सन्निधिकरण पूजा और विसर्जन। पूजा अभिषेक पूर्वक होती है इसलिये अभिषेकको मिलाकर पूजाके छह अंग होजाते हैं। ये सब भेद श्रीयशस्तिलक चंपूमें लिखे हैं।

भरतमें तदाकार प्रतिमाकी पूजा करना तदाकार स्थापना है और शतरंजमें हाथी घोडाकी कल्पना कर गोट बनाना अथवा क्षेत्रपालादिककी अतदाकार मूर्ति बनाना अतदाकार स्थापना है।

१ ऊपर जो स्थापनाके भेद बतलाये हैं उससे भी यह कथन शास्त्रविरुद्ध सिद्ध होता है।

साक्षात् जिनेंद्रदेवकी अथवा साक्षात् आचार्य उपाध्याय वा साधुओंकी जल गंध आदि आठों द्रव्योंसे यथायोग्यरीतिसे पूजा करना सो सचित्त द्रव्यपूजा है। अर्थात् चैतन्यगुणविशिष्ट परमेष्ठीकी पूजा करना सचित्त द्रव्यपूजा है। सो ही लिखा है—

तिविहा दव्वे पूया सच्चित्ताचित्तमिस्सभेयेण। पच्चक्खजिणाईणं सचित्तपूया जहाजोगं ॥ ४५० ॥

तथा उन तीर्थंकरोंके मोक्ष हो जाने बाद वा आचार्य उपाध्याय साधुओंके मोक्ष हुये बाद उनके शरीरकी पूजा करना अथवा उनके वचनोंकी शास्त्रोंकी जल गंधादिकसे पूजा करना सो अचित्त द्रव्यपूजा है। क्योंकि वह शरीर अथवा वचन चेतनारहित हैं। इसीप्रकार शास्त्रसहित गुरुकी पूजा करना सो सचित्त अचित्त मिली हुई मिश्र द्रव्यपूजा है। इसमें शास्त्र तो अचित्त हैं और साक्षात् गुरु सचित्त हैं। इन दोनोंकी समुच्चयपूजा करना मिश्रपूजा है। सो ही लिखा है—

तेसिं च सरीराणां दव्वसुदस्सवि अचित्त सा पूया।
जा पुण दोण्ह इ कीरइ णायव्वा मिस्स पूया सा ॥ ४५१ ॥

इसप्रकार द्रव्यपूजा तीन प्रकार है।

जहांपर तीर्थंकरोंके जन्म तप ज्ञान निर्वाण आदि कल्याणक हुये हैं वहां जाकर उस भूमिकी जल गंधादिकसे पूजा करना सो क्षेत्रपूजा है। भावार्थ—अयोध्या बनारस आदि नगरोंमें जहां जहां श्रीवृषभादि वीर पर्यंत चौवीसों तीर्थंकरोंने जन्म लिया है, जिन जिन तपोवनोंमें दीक्षा धारण की है, जहां जहां केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है तथा कैलाश सम्मेदशिखर गिरनार चंपापुर पावापुर आदि जिन जिन स्थानोंसे मोक्ष प्राप्त किया है उन उन स्थानोंमें वा क्षेत्रोंमें जाकर उनकी जल गंधादिकसे पूजा करना सो क्षेत्रपूजा है। सो ही लिखा है—

जिण जम्मण णिक्खवण णाणुपत्ती य मोक्ख संपत्ति।
णिसि ही सुखेत्तपूया पुव्वविहाणेण कायव्वा ॥ ४५३ ॥

चौवीस तीर्थंकरोंके गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष कल्याणक जिन जिन महीनोंमें जिन जिन पक्षोंमें व जिन जिन दिनोंमें हुये हैं उन्हीं दिनोंमें ऊपर लिखी विधिपूर्वक जल गंध आदिसे पूजा प्रभावना करना तथा उसी कालमें इक्षुरस, घी, दूध, दही और सुगंधित जलके भरे हुए अनेक प्रकारके पवित्र कलशोंसे भगवान अरहंतदेवकी मूर्तिका अभिषेक वा महाभिषेक करना रात्रिमें जागरण

करना, संगीत शास्त्रोंके नियमानुसार नाटक आदि करना, षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सातों स्वरोंसे, छहों रागोंसे छहों रागोंकी तीसों भार्याओंसे तथा उनके आठों पुत्रोंसे अनेक प्रकारकी राग रागिनियोंसे सुशोभित ऐसे श्रीजिनेन्द्रदेवके गुणोंके समूहका वर्णन करना, गाना, स्तुति करना सो सब कालपूजा है तथा नंदीश्वर पर्वके (अष्टाह्निकापर्वके) आठों दिन तक तथा व्रतोंके दिनोंमें भगवान जिनेन्द्रदेवकी महिमाको प्रगट करना सो सब कालपूजा है। भावार्थ–यह कालपूजा उसी कालमें होती है अन्य कालमें नहीं होती। सो ही लिखा है–

गब्भावयारजम्माहिसेयणिक्खवणणाणणिव्वाणं ।
जम्हि दिणे संजायइ जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा ॥ ४५४ ॥
इक्खुरससप्पिदहिखीरं गंधजलपुण्णविविहकलसेहिं ।
णिसि जागरणं च संगीय णाउपाइहि कायव्वं ॥ ४५५ ॥
णंदीसर अट्ठदिवसेसु तहय अण्णेसु उच्चियपव्वेसु ।
जं कीरइ जिणमहिमा विण्णेया कालपूया सा ॥ ४५६ ॥

इसप्रकार कालपूजाका वर्णन किया।

भगवान अरहंतदेवके अनंत ज्ञान आदि अनंत चतुष्टयोंका वर्णन करना भक्तिपूर्वक उनकी त्रिकाल वंदना करना अर्थात् भक्तिपूर्वक सामायिक स्थलका पाठ करना सो भावपूजा है। अथवा पंच णमोकार मंत्रका उच्चारण कर जप करना, अपनी शक्तिके अनुसार भगवान जिनेन्द्रदेवका स्तोत्र करना सो भावपूजा है। अथवा पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीतके भेदसे चार प्रकारका धर्मध्यान धारण करना सो भी भावपूजा है। सो ही लिखा है––

काऊ णाणं त चउट्ठयाइ गुणकीत्तणसुभत्तीए ।
जं वंदणं तियालं कीरइ भावच्चणं तं खु ॥ ४५७ ॥
पंणचमोयारेहिं अहवा जावं कुणिज्ज सत्तीए ।

अहवा जिणंदत्थोत्तं वियाण भावच्चणं तंपि ॥ ४५८ ॥
पिंडत्थं च पयत्थं रूवत्थं रूववज्जियं अहवा ।
जं झाइज्जइ झाणं भावमहंतं विणिदिट्ठं ॥ ४५९ ॥

इसप्रकार भावपूजाका वर्णन समझना चाहिये इसप्रकार श्रीवसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्तीने अपने श्रावकाचारमें इन छहों ही निक्षेप पूजाओंका वर्णन किया है। तथा यही वर्णन श्रीसकलकीर्तिने लघ्वादिपुराण वा श्रीवृषभनाथचरित्रमें किया है। यथा—

इदं नामावलिदृब्धं स्तोत्रं पुण्यं पठेत्सुधीः । नित्यं योर्हद्गुणं प्राप्याचिरात्पोर्हन् भवादृशः ॥ ६१ ॥
त्वदीयाः प्रतिमाः नाथ येऽर्चयंति स्तुवंति च । नमंति च ते पुण्येन लभंते त्रिजगच्छ्रियः ॥ ६२ ॥
साक्षात्त्वां मूर्तिमंतं ये भजंति स्तवनादिभिः । तेषां पुण्यफलादीनां मरूयां वेत्त्यत्र को बुधः ॥ ६३ ॥
दिव्यमौदारिकं देहं जगत्साराणुनिर्मितम् । भवदीयं सुभक्त्या ये स्तुवंति वर्णवर्णनैः ॥ ६४ ॥
नेऽतिधर्मेण देवा हो भुक्त्वा सौख्यं परंदिवि । चरमांगं तपोभारक्षमं श्रयंति नान्यथा ॥ ६५ ॥
निर्वाणक्षेत्रभूत्यादीन् येऽर्चयंति नमंति च । स देवत्वं तु क्रमान्नूनं निर्वाणं प्राप्नुयात्यहो ॥ ६६ ॥
पंचकल्याणकालाद्यैर्यस्त्वा स्तौति गुणैः प्रभो ! कल्याणसुखसाराणि हीहामुत्र लभेत सः ॥ ६७ ॥
केवलज्ञानदृष्ट्यादिगुणैः स्तुवंति ये विभोः । भवंति तेऽचिरात् स्युश्च त्वत्समास्त्वद्गुणैः सह ॥ ६८ ॥
इति षड्विधनिक्षेपैः स्तवनार्हाय ते नमः । नमस्तोर्थात्मने तुभ्यं नमो मोहारिनाशिने ॥ ६९ ॥

इसप्रकार और भी जैनशास्त्रोंमें पूजाधिकारमें लिखा है सो जानना।

१३५ । चर्चा एकसौ पैंतीसवीं ।

ऊपर जो पूजाके छह निक्षेप बतलाये उसमें स्थापनानिक्षेपके दो भेद बतलाये एक तदाकार दूसरा अतदाकार । अक्षतादिकोंको

ऊंचे स्थानपर रखकर तथा उसमें किसी देवका संकल्प कर उसकी जल गंधादिकसे पूजा करना सो दूसरी असद्भावस्थापना बतलाई। सो इस पंचमकालमें इसके करनेकी प्रवृत्ति कैसी है ?

समाधान–यह ऊपर लिखी हुई असद्भावस्थापना इस हुंडावसर्पिणी कालमें इस कालके दोषके कारण नहीं करनी चाहिये। ऐसी आचार्योंकी आज्ञा है। इसका भी कारण यह है कि इस लोकमें अनेक कुलिंगी भी (मिथ्यादृष्टि) ऐसा करते हैं उसमें लोग मोहित होकर भ्रममें पड़ सकते हैं। इसलिये अतदाकार स्थापनाकी पूजा नहीं करना चाहिये। सो ही वसुनंदिसिद्धांतचक्रवर्तीने श्रावकाचारमें लिखा है–

हुंडावसप्पिणीए विइया ठवणा ण होइ कायव्वो। लोए कुलिंगमयमोहिया जदो होइ संदेहो॥ ३८६॥

अन्यमतके लोग बिना मूर्तिके ही मंदिरमें, क्षेत्रमें, घर वा बनमें सुपारी आदिको रखकर उसमें मंत्रोंद्वारा किसी देवका संकल्प कर जल गंधादिकसे उसकी पूजा वा विसर्जन आदि करते हैं सो इसप्रकार पूजा बिसर्जन आदि करनेका यहां निषेध किया है। तथा जिनमंदिरोंमें अरहंत आदिका जो आह्वान स्थापन सन्निधीकरण आदि प्रतिमाके सामने किया जाता है जो कि परंपरासे चला आ रहा है उसका निषेध यहांपर नहीं किया है। अपने घर आदिमें बिना मूर्तिके अतदाकार स्थापना कर पूजा नहीं करनी चाहिये।

१३६। चर्चा एकसौ छत्तीसवीं।

भगवानकी पूजाके समय स्नानादिक किस विधिसे करना चाहिये।

समाधान–भव्य जीवोंको शय्यासे उठते ही सबसे पहले अपने मनमें कायोत्सर्गकी विधिसे नौ बार पंच नमस्कार मंत्रका जप करना चाहिये। पीछे मलमूत्रका त्याग कर हाथ पैर धो कर एक वा दो पवित्र वस्त्र पहिनकर तथा आसन और पीछीको लेकर किसी एकांत पवित्र स्थानमें पूर्वकी ओर अथवा उत्तरकी ओर मुख कर सामायिक करना चाहिये। तदनंतर विधिपूर्वक भगवान अरहंतदेवकी पूजा करनी चाहिये। उसकी कुछ थोडीसी विधि लिखते हैं। भगवानकी पूजा करनेवाले पुरुषको सबसे पहले अपने

ऊपरकी टिप्पणीमें जो आह्वान स्थापना आदिको पूजाका अंग बतलाया है वह इससे भी सिद्ध हो जाता है। वह स्थापनानिक्षेप नहीं है, किंतु पूजाका अंग है।

हाथ पैर धो लेना चाहिये फिर पश्चिमकी ओर मुख कर बैठकर शुद्ध जलसे कुल्ला करता हुआ दतौन करना चाहिये। तदनंतर फिरकर पूर्वकी ओर मुख कर प्रासुकजलसे स्नान करना चाहिये। फिर खडे होकर किसी धुले वस्त्रसे शरीर पोंछकर सफेद और शुद्ध वस्त्र पहन लेने चाहिये। पूजा करनेके लिये धोती दुपट्टा ये दो ही वस्त्र धारण करना चाहिये ऐसी आम्नाय है। सो ही उमास्वामी विरचित श्रावकाचारमें लिखा है—

ऊपर लिखी हुई विधिके अनुसार स्नान करके पूर्वकी ओर मुख करके अथवा उत्तरकी ओरको मुख करके भगवानकी पूजा करनी चाहिये। भावार्थ— जो भगवानकी प्रतिमा उत्तरकी ओर मुखकर विराजमान हो तो पूजा करनेवालेको पूर्वकी ओर मुखकर बैठकर पूजा करनी चाहिये। यदि भगवानका मुख पूर्वदिशाकी ओर हो तो पूजा करनेवालेको उत्तरकी ओर मुखकर बैठकर भगवानकी पूजा करनी चाहिये। ये वाक्य श्री उमास्वामीके हैं। इससे सिद्ध बोता है कि इन दो दिशाओंको छोड़कर बाकीकी दक्षिण, पश्चिम, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य ईशान इन छहों दिशाओंकी ओर मुखकरके भगवानकी पूजा नहीं करनी चाहिये कितने ही लोग भगवानके सामने खडे होकर पूजा करते है परंतु उनके वर्जित दिशा विदिशाओंका दोष आता है। क्योंकि भगवानकी आज्ञा पूर्व उत्तर दो ही दिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करनेकी है। बाकी दिशाओंकी ओर मुह करके पूजा करनेका निषेध है।

१३७। चर्चा एकसौ सैंतीसवीं।

पूर्व उत्तर दिशाको छोडकर बाकी दिशा विदिशाओंकी ओर मुख करके भगवानकी पूजा क्यों नहीं करनी चाहिये। इसमें क्या दोष है?

समाधान—पूर्व उत्तर दिशाओंको छोडकर बाकीकी छह दिशाओंकी ओर मुख करके जो भगवानकी पूजा करते हैं वे उमास्वामीके वचनोंके विरुद्ध चलते हैं क्योंकि उमास्वामीने पूजा करनेके लिये दो ही दिशाकी ओर मुंह करना बतलाया है। बाकी दिशाओंका निषेध किया है। पहला दोष तो यह है दूसरा दोष यह है कि उचित वा शुभ कार्योंके लिये ये दो ही दिशाएं उत्तम मानी गई हैं। क्योंकि तीर्थंकर आदि भी इन दो ही दिशाओंकी ओर मुख करके विराजमान होते हैं इन दो दिशाओंको छोडकर बाकी दिशाओंकी ओर मुख करके भगवानके विराजमान होनेका अथवा शुभ कार्योंके करनेका शास्त्रोंमें कहीं विधान नहीं आया है।

यदि इसमें भी किसीको संदेह हो तो फिर उसके लिये विशेष कथन लिखते हैं। जो मनुष्य पूर्व उत्तर दिशाको छोडकर शेष

अन्य दिशाओंकी ओर मुह करके भगवानकी पूजा करता है उसको अनेक प्रकारके अनर्थ उत्पन्न होते हैं। प्रथम तो शास्त्रोंमें पूर्व उत्तर दो ही दिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करनेका विधान बतलाया है तथा बाकीकी दिशा विदिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करनेका निषेध किया है। इतना जानते हुए भी जो मनोमति (केवल मनसे कल्पना करनेवाले) अपनी बुद्धिके बलसे सामने खडे होकर पूजा करनेकी प्रधानता मानते हैं और इस प्रकार सब ही दिशा विदिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करनेका विधान करते हैं सो उनका यह सब कहना शास्त्रविरुद्ध है। क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है कि जो लोग पश्चिमकी ओर मुख करके भगवानकी पूजा करते हैं अर्थात् यदि भगवान पूर्व दिशाकी ओर मुह करके विराजमान हों और पूजा करनेवाला उनके सामने खडे होकर पूजा करे तो उसका मुख पश्चिमकी ओर होता ही है। इस प्रकार जो पूजा करते हैं उनकी संतानका नाश होता है अर्थात् पुत्र पौत्रादिका मरण होता है। तथा जो दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके भगवानकी पूजा करते हैं अर्थात् यदि भगवान उत्तर दिशाकी ओर मुख करके विराजमान हों और पूजा करनेवाला उनके सामने खडे होकर पूजा करे तो उसका मुख दक्षिण दिशाकी ओर होता है। यदि इस प्रकार कोई पूजा करता है तो उसके संततिका अभाव होता है, उसके पुत्र पौत्रादिक उत्पन्न नहीं होते। पश्चिम दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके पूजा करनेवालोंको इस प्रकार बुरा फल प्राप्त होता है। जो लोग आग्नेय (पूर्व दक्षिणके बीच) कोणकी ओर मुख करके पूजा करते हैं उनके प्रतिदिन धनकी हानि होती जाती है। जो वायव्य (उत्तर पश्चिमके बीच) कोणकी ओर मुख करके पूजा करते हैं उनके संतान नहीं होती। जो नैऋत्य दिशाकी दक्षिण पश्चिमके बीचकी ओर मुख करके भगवानकी पूजा करते हैं उनके कुलका नाश होता है। और जो ईशान दिशाकी ओर (पूर्व उत्तरके बीचकी) मुखकरके भगवानकी पूंजा करते हैं उनका सदा दुर्भाग्य ही रहता है। उनका सौभाग्य सब नष्ट हो जाता है। इसलिये इन दिशाओंकी ओर मुख करके पूजा नहीं करनी चाहिये। यदि किसी कारणसे पूर्व और उत्तर दिशाकी ओर मुख करके पूजा करनेकी विधि न बन सके तो पूंजा ही नहीं करनी चाहिये। पूर्व उत्तर दिशाकी ओर मुख करके ही भगवानकी पूजा करनी चाहिये ऐसा श्रीउमास्वामीने अपने श्रावकाचारमें लिखा है। यथा—

तथार्चकः स्यात्पूर्वस्यामुत्तरस्यां च सन्मुखः। दक्षिणस्यां दिशायां विदिशायां च वर्जयेत् ॥
पश्चिमाभिमुखीभूय पूजां कुर्याज्जिनेशिनाम्। तदास्यात्संततिच्छेदो दक्षिणस्यामसंततिः ॥
आग्नेय्यां चेत्कृता पूजा धनहानिर्दिने दिने। वायव्यां संततिर्नैव नैऋत्यां तु कुलक्षयम् ॥

ईशान्यां नैव कर्तव्या पूजा सौभाग्यहारिणी ।

इस प्रकार वर्णन है। ऐसा समझकर पूर्व और उत्तर दिशाकी ओर मुख करके ही भगवानकी पूजा करनी चाहिये। बाकीकी दिशाओं वा विदिशाओंकी ओर मुख करके पूजा करनेमें अनेक दोष आते हैं ऐसा जानकर उन दिशाओंकी ओर मुह करके कभी पूजा नहीं करनी चाहिये।

केवल अपनेको ही सम्यग्दृष्टी माननेवाले अन्य कितने ही जीव अपनी बुद्धिके बलसे तथा हटसे सामने खडे होकर पूजा करनेका उपदेश देते हैं सो वे अपना तथा दूसरोंका दोनोंका अकल्याण करते हैं। ऐसे लोग शास्त्रोंकी बातोंको भी नहीं मानते केवल अपने हटको दृढ करते रहते हैं ऐसे लोगोंको जिनवचनका विरोधी ही समझना चाहिये।

१३८। चर्चा एकसौ अडतीसवीं।

पूजा करनेवालेको बैठकर भगवानकी पूजा करनी चाहिये ऐसा ऊपर लिखा है परंतु यह कहना उचित नहीं है। क्योंकि खडे होकर पूजा करना ही उचित है। खडे होकर पूजा करना विनयका मूल है इसमें भाव अच्छे लगते हैं, भक्ति खूब बढती है, अनुराग खूब बढता है, और मन एकाग्र होकर लग जाता है। इससे अनेक गुण उत्पन्न होते हैं। बैठकर पूजा करना तो किसी प्रकार ठीक नहीं है। किसी साधारण पुरुषकी सेवा भी बैठकर नहीं की जाती है फिर भला तीनों लोकोंके नाथ भगवानकी पूजा बैठकर किस प्रकार करनी चाहिये। बैठकर पूजा करनेमें प्रमाद बढता है और अनेक अनर्थ उत्पन्न होते हैं ? इसलिये इस बातको तो हम लोग नहीं मानना चाहते हैं।

समाधान—भगवान सर्वज्ञ देवकी आज्ञा तो बैठकर पूजा करनेकी है सो ही उमास्वामी विरचित उपासकाचारमें लिखा है।—

---

१ इनके आगे नीचे लिखे श्लोक हैं।

पूर्वस्यां शांतिपुष्ट्यर्थं मुत्तरे च धनागमः। अर्हतो दक्षिणे भागे चैत्यानां वंदनं तथा॥

ध्यानं च दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम्।

अर्थात्—पूर्व दिशाकी ओर मुह करके पूजा करनेसे शांति पुष्टि होती है और उत्तरकी ओर मुह करके पूजा करनेसे धनकी वृद्धि होती है। अरहंत देव तथा अरहंतकी प्रतिमाकी दाईं ओर खडे होकर वंदना करनी चाहिये, दाईं ओर ही ध्यान करना चाहिये और दाईं ओर ही दीपक रखना चाहिये।

पद्मासनसमासीनो नासाग्रन्यस्तलोचनः। मौनी वस्त्रावृतास्योयं पूजां कुर्याज्जिनेशिनः ॥

अर्थात्—पूजा करनेवालोंको नीचे लिखे अनुसार पूजा करनी चाहिये. पूजा करनेवालेको पद्मासनसे बैठना चाहिये, अपने नेत्रोंकी दृष्टि नासिकाके अग्र भागपर रखनी चाहिये। मौन धारण कर लेना चाहिये, अपना मुख वस्त्रसे ढक लेना चाहिये। इतने सब काम करके भगवानकी पूजा करनी चाहिये। यह ऊपर लिखे श्लोकका अर्थ है। श्रीपद्मनंदि स्वामीने भी अपने पंचविंशतिका महाकाव्यमें लिखा है कि "भव्य जीवोंको मोक्षके सुख प्राप्त करनेलिये पद्मासनसे बैठकर ध्यानादिकी भावना करनी चाहिये। यथा—

चेतोवृत्तिनिरोधनेन करणग्रामं विधायोद्धतं
तत्संहृत्य गतागतं च मरुतो धैर्यं समाश्रित्य च ॥
पर्यंकेण मया शिवाय विधिवच्छून्यैकभूभृद्दरी-
मध्यस्थेन कदाचिदर्पितदृशा स्थातव्यमंतस्सुखम् ॥ पाचवां अधिकार।

इससे भी पद्मासनसे बैठकर ही पूजा करना श्रेष्ठ सिद्ध होता है। फिर भी जो तुम खडे होकर विनय और भक्ति आदि बतलाते हो सो सब व्यर्थ है। पूजा करनेमें खडे होनेका प्रसंग ही नहीं है।

इसके आगे यह जो कहा कि बैठकर पूजा करनेके विधानको हम नहीं मानते सो भगवानके वचनोंमें संदेह करना, पूर्वाचार्योंके वचनोंको न मानना अंधे पुरुषके द्वारा आकाशमें उडते हुये पक्षियोंकी गिनती करनेके समान है। अर्थात् व्यर्थ है। क्योंकि अंधा पुरुष आकाशमें उड़ते हुये पक्षियोंकी गिनती कर ही नहीं सकता। यदि करे तो व्यर्थ है। इसीप्रकार तुम्हारा भी भगवानके वचनोंमें संदेह करना व्यर्थ है। सो ही पद्मनंदि पंचविंशतिकाके प्रथमाधिकारमें लिखा है।

यः कल्पयेत्सर्वविदोपि वाचि संदिह्य तत्त्वमसमंजसमात्मबुद्ध्या।
खे पत्रिणां विचरतां सुदृशोक्षितानां संख्यां प्रति प्रविदधाति स बाढमंधः ॥

जो भगवानके वचनोंमें संदेह करते हैं उनके लिये आचार्योंने इसप्रकार लिखा है। यदि अब भी संदेह हो तो वह और भी अनेक जैनशास्त्रोंमें इसके प्रमाण मिलते हैं उन्हें देख कर अपना संदेह दूर कर लेना चाहिये। देखो देवसेनकृत भावसंग्रहमें भी बैठकर पूजा करनेका विधान है। यथा—

पासुइ जलेण ण्हाइय णिवसिय वत्थायगंपिते ठाणे। इरियाविहं च मोहिय उवविस उपडिम आसणं ॥

अर्थात्—पूजा करनेवालेको सबसे पहले प्रासुक जलसे स्नान करना चाहिये फिर शुद्ध वस्त्र पहिनकर नीचेकी ओर दृष्टि कर मार्गको देखते हुए आना चाहिये तथा पूजाके स्थानपर पद्मासनसे बैठ कर पूजा करना चाहिये। यही बात यशस्तिलकचंपू नामके महाकाव्यमें लिखी है।

उदङ्मुखं स्वयं तिष्ठेत् प्राङ्मुखं स्थापयेज्जिनम्। पूजाक्षणे भवेन्नित्यं यमी वाचंयमीक्रियः ॥

अर्थात् पूर्व दिशाकी ओर मुख करके भगवानको विराजमान करे और पूजा करनेके लिये उत्तर दिशाकी ओर मुह करके बैठे। यहांपर भी तिष्ठेत् क्रिया स्था धातुसे बनी है। जिसका अर्थ गतिरहित होना है। इसप्रकार मौन सहित तिष्ठना वा बैठना अर्थ होता है।

इनके सिवाय पूजाओंमें, पूजासारमें, भगवद् एकसंधिकृत जिनसंहितामें जिनप्रतिष्ठापाठमें तथा त्रिवर्णाचारमें भी पूजा करनेवाले पुरुषको पूजाके समय बैठकर ही भगवानकी पूजा करनेका विधान लिखा है। वहांपर बैठनेका मंत्र लिखा है उसमें भी बैठनेका ही संकल्प है यथा— "ओं ह्रीं अर्हं अर्हं दर्भासने उपविशामि स्वाहा"

इसप्रकार बैठनेका ही विधान है इसप्रकार शास्त्रनें जो विधि बतलाई है उसको मानकर पूजा करना चाहिये खडे होकर पूजा नहीं करनी चाहिये। बैठकर ही करनी चाहिये। इस विषयमें अपने हटसे व्यर्थ वाद नहीं करना चाहिये। व्यवहारमें भी देखा जाता है राजसभासे जिनको बैठनेकी आज्ञा है वे तो वंदना आदि कर समीप जाकर बैठ जाते हैं बैठे ही बैठे अपना सुख दुख निवेदन करते हैं। दुःखोंको दूर करनेके लिये अनेक पदार्थ भेट कर उन दुखोंकी शांति करा लेते हैं और अपने सब कार्य सिद्ध कर लेते हैं परंतु जिनको राजसभामें बैठनेका अधिकार नहीं है वह दूर खड़ा खड़ा ही पुकारता रहता है। यदि वह औरोंको बैठा हुआ देखकर स्वयं भी समीप जाकर बैठता है तो द्वारपाल लोग उसे हाथ पकड़ कर वहांसे उठा कर खड़ा कर देते हैं। इससे साबित होता है कि जो खडे होकर पूजा करनेका विधान करते हैं वे समीप बैठनेका अधिकार नहीं रखते।

प्रश्न—तुम बैठकर पूजन करनेकी इतनी पुष्टि क्यों करते हो? खडे होकर पूजा करनेमें क्या दोष है क्योंकि फल तो भावोंके अनुसार हुआ करता है?

समाधान—क्या यह नियम है कि खडे होकर ही भाव लगते हैं पद्मासनसे बैठकर भाव नहीं लगते। तथा पद्मासनसे बैठकर भाव लगें तो भी अच्छे नहीं। यदि यह बात शास्त्रमें लिखी हो तो हमें प्रमाण है। आपको चाहिये कि शास्त्रोंके ऐसे श्लोक अथवा गाथा आदि बतलावें जिनको हम आप दोनों ही प्रमाण मानकर श्रद्धान करें। यदि शास्त्रोंमें ऐसा प्रमाण कहीं नहीं मिलता तो जो शास्त्रोंमें पद्मासनसे बैठकर पूजा करनेका विधान लिखा है उसे ही मानकर उसपर श्रद्धान करना चाहिये। कोई कोई लोग इतने हठग्राही होते हैं कि वे पूजाके पाठ भी खडे ही खडे बोलते हैं। वे न स्वयं बैठते हैं और न बोलनेवालोंको बैठने देते हैं परंतु यह उनका केवल हठ है इसमें अन्य और कोई कारण नहीं है।

कदाचित् कोई यह कहे कि खडे होकर पूजा करनेमें बडी विनय होती है और विनय ही धर्मका मूलकारण है तो इसका उत्तर यह है कि यदि खडे होनेमें ही विनय है तो शास्त्रसभामें शास्त्रका बांचना, सुनना, स्वयं स्वाध्याय करना, पढ़ना, पढ़ाना आदि कार्य भी खडे होकर करने चाहिये। ऐसा करनेसे बडी विनय होगी और धर्म होगा। क्योंकि जैसा पूजामें धर्म है वैसा यहां भी धर्म है। इसके सिवाय जैसा खड़े होकर पूजा करनेमें धर्म है उसी प्रकार यदि एक पैरसे खड़े होकर पूजा की जाय तो खडे होनेकी अपेक्षा उससे अधिक कायक्लेश तप होगा अधिक विनय होगी अधिक भक्ति होगी सो ऐसा करना भी अच्छा समझा जायगा। इसलिये जैसा शास्त्रोंमें लिखा है उसीप्रकार श्रद्धान कर कार्य करना चाहिये। इसीमें विनय और धर्म सधता है। शास्त्रकी आज्ञाके प्रतिकूल चलनेमें न विनय है और न धर्म है। किंतु उलटा अविनय होता है। सो ही सूक्तिमुक्तावलीमें गुरुसेवाधिकारमें लिखा है—

किं ध्यानेन भवत्वशेषविषयत्यागैस्तपोभिः कृतं पूर्णं भावनयालमिन्द्रियदमैः पर्याप्तमाप्तागमैः ॥
किंत्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनं, सर्वं येन विना विनाथबलवत्स्वार्थाय नालं गुणाः ॥

टीका—भो भव्याः गुरोः आज्ञां विना ध्यानं चेत्? तर्हि तेन ध्यानेन किं अपि तु न किमपि फलम्। पुनः गुरोः आज्ञां विना तपोभिः कृतं षष्ठाष्टमदशमद्वादशमादिपक्षक्षपणमासक्षपणासिंहनिःक्रीडितादिभिस्तपोभिः कृतं संपूर्णं जातं। अर्थात् न किमपि। पुनर्भावनया शुभभावेनापि पूर्णता जाता। पुनः इंद्रियदमैः पंचेंद्रियाणां दमनं कृत्वा अलं पूर्णं मतम्। पुनः आप्तागमैः सूत्रसिद्धांतपठनैरपि पर्याप्त पूर्णं जातं

तर्हि किम् ? किंतु गुरुप्रीत्या गरिष्ठवात्सल्येन अधिकादरेण एके गुरोः शासनं आज्ञां कुरु। गुरोः एव आज्ञां शुद्धां पालय। किं भूतं गुरोः शासनं संसारपरिभ्रमणवारकम्। यतो येन गुरोः शासनेन आज्ञया विना सर्वेपि गुणा निष्फला इत्यर्थः। किंवत् विनाथवलवत्। निर्नायक सैन्यवत्। यथा निर्नायकं सैन्यं जयसाधकं न। तथा गुरोः आज्ञां विना पूर्वोक्त क्रियानुष्ठानादिकं सर्वं निष्फलमेवेति ज्ञात्वा आज्ञापूर्वकं सर्वं कर्तव्यम्।*

कदाचित् कोई यह समझे कि चाहे जिसप्रकार करो फल तो भावोंके अनुसार लगता है, उसके लिये कहते हैं कि गुरुकी आज्ञाके विना ध्यान, विषयका त्याग, तप, शुभ भाव, इन्द्रियोंका विजय और सिद्धांतादि शास्त्रोंका स्वाध्याय आदि सब विना सेनापतिकी सेनाके समान व्यर्थ है। इसलिये गुरुकी आज्ञाके अनुसार जप तप पूजा आदि करना योग्य है। गुरुकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेमें ही सफलता है। अपने मनके अनुसार कार्य करना सर्वथा व्यर्थ है ऐसा सिद्धांत है।

१३९। चर्चा एकसौ उनतालीसवीं।

बैठकर पूजा करनेमें पूजा करनेवालेकी दृष्टि भगवानके ऊपर नहीं रह सकती। क्योंकि भगवान तो बहुत ऊंचे विराजमान रहते हैं और बैठकर पूजा करनेवाला बहुत नीचा रहेगा ऐसी अवस्थामें पूजामें भाव भी नहीं लगते। इसलिये बैठकर पूजा करनेमें संदेह बना ही रहता है।

समाधान—जैनशास्त्रोंमें गृहस्थको अपने घर चैत्यालय बनानेकी विधि इस प्रकार लिखी है कि गृहस्थको अपने मकानके दरवाजेके बांई ओर विना किसी शिल्पके (कारीगरीसे रहित) भगवानको विराजमान करनेका स्थान बनाना चाहिये। उस स्थानसे डेढ हाथ ऊंची वेदी बनानी चाहिये और उसपर भगवानको विराजमान करना चाहिये। भावार्थ—जब वेदी डेढ हाथ ऊंची रहेगी तो बैठकर पूजा करनेवालोंकी दृष्टि भगवानके चरणों पर ही रहेगी ऐसा श्रीउमास्वामीने श्रावचारमें लिखा है यथा—

गृहे प्रवशितावामभागे शिल्पविवर्जिते। देवतासदनं कुर्यात्सार्द्धहस्तोर्ध्वभूमिकम्॥

---

* इस श्लोक और टीकाका अभिप्राय यही है कि गुरुकी आज्ञाके विना जप तप, ध्यान पूजा आदि सब व्यर्थ हैं इसलिये सब काम गुरुकी आज्ञाके अनुसार करने चाहिये।

यदि पूजा करनेवाला खडे होकर पूजा करे तो भगवानका सिंहासन उसके नाभि तक आवेगा और फिर उसके नेत्रोंकी दृष्टि भगवानसे भी डेढ हाथ ऊंची रहेगी। जिससे अनेक अनर्थ उत्पन्न होंगे सो सब विचार लेना चाहिये।

१४० । चर्चा एकसौ चालीसवीं ।

यदि कहीं ऊपर लिखी डेढ़ हाथकी उंचाईसे भी प्रतिमा नीची विराजमान हों तो क्या करना चाहिये ?

समाधान–जो भगवानके विराजमान करनेकी वेदी डेढ़ हाथसे भी नीची रखते हैं उनके नीचसे नीच संतति उत्पन्न होती है सो ही उमास्वामी श्रावकाचारमें लिखा है।

नीचैर्भूमिस्थितिं चक्रे...

प्रश्न–यदि वेदी डेड हाथसे भी ऊंची दो तीन चार हाथ ऊंची बना ली जाय और उसपर भगवान विराजमान किये जांय तो फिर तो कोई दोष नहीं आ सकता। तथा ऐसा करनेसे खडे होकर पूजा करनेमें भी सुभीता होता है।

समाधान–डेड हाथसे ऊंची वेदी बनानेकी आज्ञा नहीं है इसलिये इससे ऊंची वेदी नहीं बनानी चाहिये। यदि कोई इससे ऊंची वेदी बनाता है तो उसे आज्ञा भंग करनेका महादोष लगता है। सो पहले सूक्तिमुक्तावलीका श्लोक देकर समझा ही चुके हैं। इसलिये आगम पर विश्वास करनेवालोंको आगमके लिखे अनुसार ही काम करना चाहिये। केवल अपनी बुद्धिके अनुसार वा मनोनुकूल चलना योग्य नहीं है।

प्रश्न—इतना विवाद करनेकी आवश्यकता ही क्या है क्योंकि शुभ वा अशुभ फल तो अपने भावोंके अनुसार ही लगता है इसलिये अपने भाव शुद्ध रखना चाहिये। शुद्ध भावोंके विना सब क्रियाएं व्यर्थ हैं।

समाधान—यह कहना भी एकांतवाद है क्योंकि राजा कच्छ महाकच्छ मारीचि आदि चार हजार राजाओंने श्रीऋषभदेव भगवानके साथ केवल उनकी भक्ति और शुभ भावोंसे जिनदीक्षा धारण की थी परंतु वह उनकी दीक्षा आगमकी आज्ञाके अनुकूल नहीं थी इसीलिये सबको भ्रष्ट होना पड़ा। भ्रष्ट होकर उन्होंने अनेक प्रकारके मिथ्यात्वका प्रचार कियां। इसीप्रकार कुमारसेनने पहले तो सन्यासका भंग किया फिर विना गुरुके केवल अपने ही भावोंसे फिर दीक्षा ली। इसीलिये उन्हें काष्ठसंघ स्थापन करना पड़ा। इससे सिद्ध होता है कि केवल भावोंसे ऐसा ही फल मिला करता है इससे हठ करना योग्य नहीं। १४३

१४१ । चर्चा एकसौ इकतालीसवीं ।

पूजा करनेवाला पूजनके लिये वस्त्र किस प्रकार धारण करता है ।

समाधान—जो भव्य पुरुष शांतिक और पौष्टिकके लिये भगवानकी पूजा करता है उसे सफेद वस्त्र पहिनकर पूजा करनी चाहिये यदि वह शत्रुको विजय करनेके लिये भगवानकी पूजा करता है तो उसे श्याम वा काले वस्त्र पहिनकर पूजा करनी चाहिये । यदि वह कल्याणके लिये पूजा करता है तो लाल वस्त्र पहिनना चाहिये । यदि वह किसी राजा आदिके भयको दूर करनेके लिये पूजा करता है तो उसे हरे रंगके वस्त्र पहिनकर पूजा करनी चाहिये । यदि वह ध्यान आदि प्राप्तिके लिये पूजा करता है तो उसे पीले वस्त्र पहिनना चाहिये । और यदि वह किसी कार्यकी सिद्धिके लिये पूजा करता है तो उसे पांचों रंगके वस्त्र पहिनने चाहिये । सो ही लिखा है ।

शांतौ श्वेतं जये श्यामं भद्रे रक्तं भये हरित् । पीतं ध्यानादिमंलाभे पंचवर्णं तु सिद्धये ॥

इस प्रकार अलग अलग कामनाकी सिद्धिके लिये अलग अलग पांचों वर्णोंके वस्त्र बतलाये हैं यदि इन पांचों वर्णोंके वस्त्रोंमें भी कोई अयोग्यताके दोष आजांय तो वह वस्त्र छोड देना चाहिये और दूसरा नवीन वस्त्र धारण करना चाहिये ।

१४२ । चर्चा एकसौ बियालीसवीं ।

वस्त्रोंमें ऐसा कौन सा दोष है जिसके कारण उसे छोड देना चाहिये और नवीन लेना चाहिये ।

समाधान-ऊपर लिखे पांचों रंगोंके वस्त्रोंमेंसे कोई वस्त्र फट जाय, बहुत पुराना हो, छिन्न भिन्न हो इन सब दोषोंसे रहित होने पर भी मलिन हो, ऐसे वस्त्र पहिनकर दान, जिनपूजा, णमोकार आदि मंत्रोंके जप, होम और शास्त्रोंके स्वाध्याय आदि नहीं करने चाहिये । यदि कोई इसमें हट करता है और इन दोषोंको नहीं मानता तो उसका किया हुआ दान पूजा आदि सब कार्य व्यर्थ जाता है । सो ही उमास्वामि विरचित श्रावकाचारमें पूजाके प्रकरणमें लिखा है—

खंडितेतिजीर्णे छिन्ने मलिने नैव वाससि । दानं पूजां जपो होमं स्वाध्यायो निष्फलं भवेत् ॥

धर्मरसिकशास्त्रमें भी यही लिखा है ।

काषायं धूम्रवर्णं च केशजं केशभूषितम्। छिन्नाग्रं चोपवस्त्रं च कुत्सितं नाचरेन्नरः॥ ३४॥
दग्धं जीर्णं च मलिनं मूषकोपहतं तथा। खादितं गोमहिष्याद्यैस्तत्त्याज्यं सर्वथा द्विजैः॥ ३५॥

इस प्रकार विशेष वर्णन वहां लिखा है। यहां संक्षेपसे लिखा गया है।

१४३। चर्चा एकसौ तेतालीसवीं।

त्रिकाल पूजाकी विधि क्या है ?

समाधान—चतुर भव्य जीवोंको नियमपूर्वक तीनों समय भगवानकी पूजा करनी चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है कि सबसे पहले पहिले लिखी हुई विधिके अनुसार स्नानादिक कर भगवानकी पूजा करनी चाहिये उसकी विधि इस प्रकार है। प्रथम प्रातःकाल भगवानका जलाभिषेक करना चाहिये फिर चंदन केशरमें कपूर मिलाकर भगवानके चरण कमलोंकी चर्चना करनी चाहिये। यह प्रातःकालकी पूजा है। फिर दो पहरके समय अनेक प्रकारके सुगंधित और मनोग्य पुष्पोंसे भगवानकी पूजा करनी चाहिये यह मध्याह्न पूजा कहलाती है। तदनंतर शामके समय दीप और धूपसे पूजा करनी चाहिये। भावार्थ—प्रातःकाल तो चंदनसे पूजा करनी चाहिये। मध्याह्न समयमें पुष्पोंसे पूजा करनो चाहिये और सायंकालको दीपकसे आरती उतार कर दीपसे पूजा करनी चाहिये और सुगंधित चंदन आदि शुभ द्रव्योंकी बनी हुई धूपको अग्निमें दहनकर धूपसे पूजा करनी चाहिये। यह त्रिकाल पूजाकी रीति है। सो ही श्रीउमास्वामिविरचित श्रावकाचारमें लिखा है—

श्रीचंदनं विना नैव पूजां कुर्यात्कदाचन। प्रभाते घनसारस्य पूजा कार्या विचक्षणैः॥
मध्याह्ने कुसुमैः पूजा संध्यायां दीपधूपयुक्।

इस प्रकार त्रिकाल पूजाकी रीति लिखी है। तथा अष्ट द्रव्यसे जो पूजा की जाती है वह विशेषपूजा है। इस अष्ट द्रव्यकी पूजाको त्रिकालमें करनेका कुछ नियम नहीं है। यह पूजा तो जिस समय की जाय उसी समयमें हो सकती है।

---

१ जो वस्त्र मलिन हों, बालोंका ऊनका बना हो। बालसे सुशोभित हो, जिसके पल्ले फटगये हों, छोटा हो, बुरा हो, जला हो, पुराना हो, कषैला वा धूमके रंगका हो, चूहोंका कतरा हो वा गाय भैंसका खाया हो वह सब त्याग करने योग्य है।

११८ । चर्चा एकसौ चवालीसवीं ।

सायंकालको जो दीप धूपसे पूजा की जाती है उसकी विधि क्या है ?

समाधान—पूजा करनेवाले पुरुषको पूजा करते समय भगवानके बांई ओर धूपदान रखकर उसमें रक्खी हुई अग्निमें मंत्र-पूर्वक धूप चढाकर भगवानकी पूजा करनी चाहिये। तथा दीपक जलाकर भगवानके सामने मंत्रपूर्वक आरती उतार कर पीछे भगवानकी दाहिनी ओर उस दीपकको रख देना चाहिये। यह पूजाका सब जगहका नियम है सो ही उमास्वामी विरचित श्रावकाचारमें लिखा है।

वामांगे धूपदाहस्य दीपपूजा च सन्मुखी । अर्हतो दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम् ॥

पूजाकी ऐसी आम्नाय है सो इसी प्रकार करना चाहिये।

१४५ । चर्चा एकसौ पेंतालीसवीं ।

भगवानकी पूजामें कैसे पुष्प चढाना चाहिये तथा कैसे नहीं चाहिये ?

समाधान—भगवानकी पूजामें जल थल आदिके सार सुगंधित और मनोज्ञ ऐसे कमल गुलाब आदि अनेक प्रकारके जैन शास्त्रोंमें कहे हुए पुष्प चढाना चाहिये तथा जो पुष्प हाथसे गिर गये हों, जमीनपर पड गये हों, जो किसीके भी पैरसे छूगये हों, किसीके मस्तक पर रक्खे गये हों, मलिन और अपवित्र वस्त्रमें रक्खे गये हों, नाभिके नीचे प्रदेशसे छूगया हो, जो यवन (मुसलमान) आदि दुष्ट जनोंके द्वारा स्पर्श किये गये हों और जो कीडोंसे दूषित हों। ऐसे पुष्प कभी नहीं चढाना चाहिये इसके सिवाय पुष्पोंके दो तीन भाग कभी नहीं करने चाहिये। भावार्थ—मोतिया, मोगरा, कुंद, आदिके पुष्पोंमें दो तीन चार पुष्प निकलते हैं सो उनको अलग अलग नहीं करना चाहिये। जैसाका तैसा ही चढाना चाहिये। पूजाके लिये फूलोंकी कलियां कभी नहीं निकालनी चाहिये अर्थात् पूजामें कलियां नहीं चाहिये। पूरा पुष्प ही चढाना चाहिये। जो लोग चंपा और कमलके फूलोंकी कलियां अलग अलग कर निकाल लेते हैं अर्थात् उनको प्रफुल्लित कर लेते हैं अथवा उनकी पंखुड़ियां अलग अलग निकाल लेते हैं उनको जीव हिंसाके समान फल लगा करता है। इसलिये पुष्पोंको अलग अलग छिन्न भिन्न कर वा कलियां निकालकर नहीं चढाना चाहिये। सो ही उमास्वामिविरचित श्रावकाचारमें लिखा है—

हस्तात्प्रस्खलितं क्षितौ निपतितं लग्नकचित्पादयोः, यन्मूर्द्ध्वोर्द्ध्वगतं धृतं कुवसने नाभेरधो यद् धृतम् ॥
स्पृष्टं दुष्टजनैर्घनैरभिहितं यद्दूषितं कीटकैः, त्याज्यं तत्कुसुमं वदंति विबुधाः भक्त्या जिनः पूज्यते ॥
नैव पुष्पं द्विधा कुर्यान्न छिन्नकलिकामपि । चंपकोत्पलभेदेन जीवहिंसासमं फलम् ॥

ऐसा शास्त्रोंका मत है । इसी प्रकार जल फल आदि आठों द्रव्योंमेंसे जो अयोग्य हो सो पूजामें नहीं लेना चाहिये । विवेकी पुरुषोंको योग्य द्रव्यसे ही पूजा करनी चाहिये ।

प्रश्न—ऊपर लिखे हुए पुष्प किस प्रकार चढाना चाहिये ।

समाधान—लौकिक शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है—

पुष्पं चोर्द्ध्वमुखं देयं पत्रंदेयमधोमुखम् । फलं च सन्मुखं देयं यथोत्पन्नं समर्पयेत् ॥

अर्थात्—पूजामें पुष्प तो ऊपरकी ओर मुख कर चढाना चाहिये । उसकी डोंडी नीचेकी ओर रहनी चाहिये, नागवेलके पान आदि पत्रोंको अधोमुखी चढाना चाहिये । उसकी अनी नीचे रहे और डंठल ऊपर ऊपरको हो । तथा फल सामने चढाना चाहिये । पुष्प पत्र और फल जैसे वृक्ष पर लगते हैं उसी प्रकार उनको चढाना चाहिये । यह नियम पुष्पमाला अथवा पुष्पांजलिके लिये नहीं है । पुष्पमाला और पुष्पांजलिमें जिस प्रकार बन सके उसी प्रकार चढाना चाहिये ।

१४६ । चर्चा एकसौ छयालीसवीं ।

प्रातःकालकी पूजाकी विधिमें जल चंदनसे ही पूजा करनेका विधान बतलाया परंतु हम तो अष्टद्रव्यसे पूजा करनेको पूजा समझते हैं । जब केवल जल चंदनसे ही पूजा करनेका विधान है तब फिर अष्टद्रव्यसे पूजा कौन करेगा ?

समाधान—सबसे पहिले भगवानका जलसे अभिषेक करना चाहिये फिर चरणों पर गंधका लेप कर पीछे अक्षत आदिसे भगवानकी पूजा करनी चाहिये ऐसा नियम है । पहले लिख भी चुके हैं—

श्रीचंदनं विना नैव पूजां कुर्यात्कदाचन ।

इससे सिद्ध होता है कि चंदनके लेप पूर्वक ही अक्षतादिकसे पूजा होती है । सो ही उमास्वामीविरचित श्रावकाचारमें पूजा प्रकरणके अधिकारमें लिखा है—

गंधधूपाक्षतैः सद्भिः प्रदीपैश्च विचारिभिः। प्रभातकाले पूजा वै विधेया श्रीजिनेशिनाम् ॥

अर्थात् विवेकी पुरुषोंको प्रातःकाल गंध धूप अक्षत दीप आदिसे भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा करनी चाहिये।

१४७। चर्चा एकसौ सैंतालीसवीं।

भगवानका ध्यान और वंदना किस विधिसे करनी चाहिये ?

समाधान—भव्यजीवोंको भगवानका ध्यान और वंदना अर्थात् नमस्कार भगवानके दाहिनी ओरसे करना चाहिये। सामने खडे होकर ध्यान और वंदना नहीं करना चाहिये। दाहिनी ओरसे ही करनी चाहिये। सो ही उमास्वामी विरचित श्रावकाचारमें लिखा है—

अर्हतां दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम्। ध्यानं च दक्षिणे भागे चैत्यानां वंदनं तथा ॥

इससे सिद्ध होता है कि भगवानके दाहिनी ओरसे ही ध्यान और वंदना करनी चाहिये। किसी दूसरी ओरसे नहीं।

१४८। चर्चा एकसौ अडतालीसवीं।

स्त्रियोंके लिये ध्यान वंदना करनेकी विधि क्या है ?

समाधान—स्त्रियोंको ध्यान और वंदना भगवानके बाईं ओरसे करनी चाहिये। ऐसी शास्त्रकारोंकी आज्ञा है।

१४९। चर्चा एकसौ उनचासवीं।

गृहस्थोंको जो पहिले पूजा करनेकी विधि बतलाई है वह संक्षिप्त विधि है। अब इसकी विशेष विधि बतलानी चाहिये।

समाधान—पूजा करनेकी विशेष विधि इसप्रकार है। शौचसे निवृत्त होने, दतौन करने और स्नान करने आदिकी विधि पहले बता चुके हैं उसके अनुसार स्नान करके भगवानके चैत्यालयमें जाना चाहिये। उसकी भी विधि इसप्रकार है। अपने घरसे आकर पैर धोवे फिर अपने मस्तकसे श्रीजिनेन्द्रमंदिरके किवाड़ खोले। किवाड़ खोलते समय "ओं ह्रीं अर्हं कपाटमुद्घाटयामीति स्वाहा" इस मंत्रको पढे। फिर "ओं ह्रीं द्वारपालाननुज्ञापयामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर द्वारपालसे आज्ञा लेनी चाहिये। द्वारपालकी आज्ञा

१ ओं ह्रीं अर्हं यह वीजाक्षर है, मै किवाड़ खोलता हू। २ मै द्वारपालकी आज्ञा लेता हूं।

लेकर श्रीजिनचैत्यालयमें प्रवेश करना चाहिये तदनंतर "ओं ह्रीं अर्हं निःसही निःसही रत्नत्रयपुरस्सराय विद्यामंडलनिवेशनाय शमयथाय निःसही जिनालयं प्रविशामि स्वाहा।" एसा उच्चारण कर जिनालयमें प्रवेश करना चाहिये फिर ईर्यापथ शुद्धि करना चाहिये। ईर्यापथशुद्धिका पाठ इसप्रकार है—

निःसंगोहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्येति भक्त्या,
स्थित्वा गत्वानिषद्यो चरणपरिणतोऽन्तःशनैर्हस्तयुग्मम्।
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दुरितहरं कीर्तये शक्रवंद्यं
निन्दादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेंद्रम्॥ १॥
श्रीमत्पवित्रमकलंकमनंतकल्पं स्वायंभुवं सकलमंगलमादितीर्थम्।
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये॥ २॥
श्रीमत्परमगंभीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्। जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥ ३॥
श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत्। आलोकनविहीनस्य तत्सुखावाप्तयः कुतः॥ ४॥
अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य देव! त्वदीय चरणांबुजवीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे संसारवारिधिरयं चुलकप्रमाणम्॥ ५॥

---

१ मै मन बचन कायसे शुद्ध हो जिनमंदिरमें जाकर तीन प्रदक्षिणा दे खडे होकर थोड़ा आगे चलकर बैठकर धीरे धीरे कुछ स्तोत्रादिक पढता हुआ हाथ जोड मस्तकपर रख इन्द्रपूजित निर्दोष अक्षयज्ञानरूपी सूर्य और मेरे पापोंको दूर करनेवाले श्रीजिनेंद्रदेवकी स्तुति करता हूं॥ १॥ मैं ऐसे श्रीमंदिरकी शरण लेता हू जो ऐश्वर्य युक्त है, पवित्र है, कलंकरहित है, जिसमें सदा मंगल होते रहते हैं जो रत्नमय और तीनों लोकोंको सुशोभित करनेवाला है॥ २॥ अत्यंत गंभीर स्याद्वाद ही जिसका सार्थक चिह्न है ऐसा त्रैलोक्यनाथका शासन श्रीजैनशासन चिरकालतक जीवित रहो॥ ३॥ आज श्रीजिनेंद्रदेवका मुख देखनेसे मुक्तिलक्ष्मीका मुख देखा, भला जो श्रीजिनेंद्रदेवके मुखका दर्शन नहीं करते उनको यह सुख कहांसे मिल सकता है॥ ४॥ हे देव! आज आपके चरणकमल देखनेसे मेरे दोनों ही नेत्र सफल हुये। हे त्रिलोकतिलक! आज यह संसारूपी समुद्र

नमो नमः सत्त्वहितंकराय वीराय भव्यांबुजभास्कराय ।
अनतलोकाय सुरार्चिताय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥ ६ ॥
नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय विनष्टदोषाय गुणार्णवाय ।
विमुक्तिमार्गप्रतिबोधनाय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥ ७ ॥
देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर सिद्ध महानुभाव ।
त्रैलोक्यनाथ जिनपुंगव वर्द्धमान स्वामिन् गतोस्मि शरणं चरणद्वयं ते ॥ ८ ॥
जितमदहर्षद्वेषा जितमोहपरीषहा जितकषायाः ।
जितजन्ममरणरोगा जितमात्सर्या जयंतु जिनाः ॥ ९ ॥
चित्ते मुखे शिरसि पाणिपयोजयुग्मे भक्तिस्तुतिं विनतिमञ्जलिमञ्जसैव ।
चक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति यश्चर्करीति तव देव स एव धन्यः ॥ १० ॥
ईर्यापथे प्रचलताद्य मया प्रमादादेकेंद्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा ।

मुझे चुल्लूभर पानीके बराबर जान पडता है ॥ ५ ॥ समस्त प्राणियोंका भला करनेवाले, भव्यरूपी कमलोंको सूर्यके समान अनतलोक अलोकको देखनेवाले देवपूजित देवाधिदेव श्रीवर्धमान जिनेंद्रदेवकेलिये नमस्कार हो ॥ ६ ॥ इन्द्रों द्वारा पूजित क्षुधादि १८ दोषोंसे रहित, गुणोंके समुद्र, मोक्षमार्गके उपदेश देनेवाले, देवाधिदेव श्रीजिनेन्द्रदेवके लिये नमस्कार हो । ७ । हे देवाधिदेव हे परमेश्वर ! हे वीतराग ! हे सर्वज्ञ ! हे तीर्थंकर ! हे सिद्ध हे महानुभाव ! हे त्रिलोक्यनाथ हे जिनपुंगव हे स्वामिन् ! मैं आपके चरणोंकी शरणमें आया हूं ।८। मद, हर्ष, द्वेष, मोह, परीषह, कषाय, जन्म, मरण, रोग, और मात्सर्य आदिके जीतनेवाले श्री जिनेन्द्रदेव जयवन्त होओ । ९ । हे जिनेन्द्र ! जो पुरुष हृदयमें आपकी भक्ति, मुखसे आपकी स्तुति, शिरसे नमस्कार और हाथसे बार बार अजलि करता है अर्थात् हाथ जोड़ता है वही पुरुष इस संसारमें धन्य है। १० । हे भगवन् ! मार्गमें चलते हुए मुझसे यदि प्रमादवश बिना देखे किसी एकेंद्रियादिक जीवकी हिंसा हुई हो तो वह आपकी भक्तिसे मिथ्या होवे। ११ । हे भगवन् ! मेरे चलनेमें जो

निवर्तिता यदि भवेदयुगांतरे वा मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥ ११ ॥

पडिकमामि भत्ते ईरिया वहियाये विराहणाये अणागुत्ते अइग्गमणे णिग्गमणे ठाणे गमणे चक्कमणे पाणुग्गमणे वीजुग्गमणे हरिदुग्गमणे उच्चारपस्सवणे खेलसिंघाणयवियडिपयिट्ठवणाये जे जीवा एइंदिया वा वेइंदिया वा तिइंदिया वा चतुरिंदिया वा पंचेंदिया वा णोल्लिदा वा पिल्लिदा वा संघादिदा वा ओद्दाविदा वा परिदाविदा वा किरिंच्छिदा वा लोस्सिदा वा छिंदिदा वा भिंदिदा वा ठाणदो वा ठाण-चक्कमणदो वा तस्स उत्तरगुणं तस्स पायच्छित्तकरणं तस्स विसोहीकरणं जावरहंताणं भयवंताणं णमोकारं करेमि तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ॥ १२ ॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं। णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।

यहांपर णमोकार मंत्रका जप नौ वार करना।

कुछ जीवोंकी हिंसा हुई हो, उसके लिये मैं प्रतिक्रमण (उस किये हुए दोषका निराकरण) करता हूं। यथा—मन बचन कायको वशमें न रखनेसे, बहुत चलनेसे, इधर उधर फिरनेसे, बैठनेसे जाने आनेसे द्वींद्रियादिक प्राणियों पर बीज और हरितकाय पर पैर रखकर चलनेसे, मल, मूत्र, थूक संगाण (नाकका मैल) और मिट्टी वगैरहके डालनेसे एकेंद्रिय दोइंद्रिय ते इंद्रिय चतुरिंद्रिय अथवा पंचेंद्रिय प्राणी अपने स्थान पर जानेसे रोके गये हों दूसरी जगह डाले गये हों संघर्षित किये गये हों, संघर्षित कराये गये हों, एक दूसरेके ऊपर डाले गये हों, तपाये गये हों, काटे गये हों, मूर्छित किये गये हों, छेदे गये हों अपने स्थानसे अथवा जाते हुए भिन्न भिन्न किये गये हों, तो मैं उसका प्रायश्चित्त करता हूं। उन दोषोंकी शुद्धि करनेके लिये भगवान अरहंतको नमस्कार करता हूं तथा ऐसे पापकर्म तथा दुष्ट आचरणोंका त्याग करता हूं। १२। अनेकान्त और शान्त परमात्माके लिये नमस्कार हो हे भगवन्! मैं ईर्यापथकी आलोचना करता हूं पूर्व उत्तर दक्षिण पश्चिम चारों दिशा और ईशानादिक विदिशाओंमें इधर उधर फिरनेमें वा ऊपरकी ओर मुह करके चलनेमें प्रमादवश द्वींद्रियादिक प्राणी वृक्षादिक भूत पंचेंद्रियादिक जीव और एकेंद्रियादिक सत्व जीवोंका घात किया हो, कराया हो, अनुमति दी हो वे सब नाश होवें।

ओं नमः परमात्मने नमोनेकांताय शान्तये ॥ १३ ॥

इच्छामि भंत्ते ईरियवहमालोचेउं पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिम चउदिसासु विदिसासु विहरमाणेण जुगुत्तर दिट्ठिणा दट्ठवा डवडव चरियाये पमाददोसेण पाणभूदजीवसत्ताणं एदेसिं उवघादो कदो वा कारिदो वा किरिंतो वा समणुमणुदो वा तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना, रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते जिनेंद्र भवतः श्रीपादमूलेऽधुना निन्दापूर्वमहं जहामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ।

इस ईर्यापथशुद्धिसे पहले लगेहुए पापोंका निराकरण करना चाहिये । फिर

कनत्कनकघटितं विमलचीनपट्टोज्वलं वहुप्रकटवर्णकं कुशलशिल्पिभिर्वर्णितम् ।
जिनेन्द्रचरणाम्बुजद्वयं समर्चनीयं मया समस्तदुरितापहृत् वदनवस्त्रमुद्धाट्यते ।

यह श्लोक पढकर अपने मुखपरके वस्त्रको हटाना चाहिये ।

श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत् आलोकनं विहीनस्य तत्सुखावाप्तयः कुतः ।

ओं ह्रीं अर्हं नमोर्हत्परमेष्ठिभ्यः श्रीमुखालोकनेन मम सर्वशांतिर्भवतु स्वाहा ।

यह मंत्र पढ़कर भगवानके मुखको देखना चाहिये फिर "ओं ह्रीं अर्हं निःसही यागोर्वी प्रविशामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर पूजाकी भूमिपर्यंत प्रवेश करना चाहिये फिर "ओं ह्रीं श्रीं क्ष्वीं भू स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर भगवानके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करना

हे त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र ! पापी, दुष्ट, मंदबुद्धि कपटी लोभी ऐसे मेरे द्वारा रागद्वेषसे मैले मनसे जो कुछ दुष्कर्म हुआ हो, उनकी शांति करनेके लिये आपके चरण कमलोंके निकट अपनी निंदा करता हुआ उन कार्मोको छोडता हूं ।

जो दैदीप्यमान सुवर्णके समान हैं, सफेद रेशमी वस्त्रके समान निर्मल हैं । जिनकी अनंत महिमा प्रगट है चतुर कारीगर भी जिनका वर्णन करते हैं जो समस्त पापोंको दूर करनेवाले हैं ऐसी श्रीजिनेन्द्रदेवके चरण कमलोंकी पूजा करनी चाहिये इसीलिये मैं अपने मुखवस्त्रको हटाता हूं ।

चाहिये। फिर "ओं ह्रीं वाद्यमुद्घोषयामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर घंटा आदि बाजे बजाने चाहिये। फिर अष्टांग वा पंचांग वा पञ्च-ईशायी नमस्कार करना चाहिये। फिर उठकर भाव और भक्तिसे 'दर्शनं देवदेवस्य' आदि दर्शनपाठ पढ़कर भगवानकी स्तुति

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्। दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम्।

देवाधिदेव श्री अरहंतदेवका ही दर्शन करना चाहिये। यही दर्शन पापका नाश करनेवाला, स्वर्गकी सीढी और मोक्षका कारण है।

दर्शनेन जिनेंद्राणां साधूनां वंदनेन च। न च संतिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम्।

श्रीजिनेंद्र देवके दर्शन करनेसे तथा गुरुओंकी वंदना करनेसे संपूर्ण पाप क्षय हो जाते हैं जैसे सछिद्र हाथोंसे जल नष्ट हो जाता है।

वीतरागमुखं दृष्ट्वा पद्मरागसमप्रभम्। जन्मजन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति।

पद्मराग मणिके समान वीतरागका मुख देखनेसे अर्थात् श्रीवीतरागके दर्शन करनेसे जन्म जन्मके किये हुए पाप सब नष्ट हो जाते हैं।

दर्शनं जिनसूर्यस्य संसारध्वान्तनाशनम्। बोधनं चित्तपद्मस्य समस्तार्थप्रकाशनम्।

श्रीजिनेन्द्ररूपी सूर्यका दर्शन करना संसाररूपी अन्धकारको नाश करनेवाला, मनरूपी कमलको प्रफुल्लित करनेवाला, और संपूर्ण पदार्थोंको प्रकाशित करने वाला है।

दर्शनं जिनचन्द्रस्य सद्धर्मामृतवर्षणम्। जन्मदाहविनाशाय वर्द्धनं सुखवारिधेः॥ ५॥

श्रीजिनेन्द्ररूपी चंद्रमाके दर्शन करना जन्मरूपी दाहके नष्ट करनेके लिये सद्धर्मरूपी अमृतकी वर्षाके समान है तथा सुखरूपी समुद्रको बढानेवाला है।

जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणाश्रयाय। प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय देवाधिदेवाय नमो जिनाय।

जीव अजीव आदि तत्वोंको प्रतिपादन करनेवाले, सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन आदि आठ गुणोंको धारण करनेवाले परमशांत दिगम्बर देवाधिदेव श्रीजिनेन्द्रदेवके लिये मैं नमस्कार करता हूं।

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने। परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः।

अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन और अनंत सुखरूप परमात्मतत्त्वको प्रकाशित करनेवाले श्रीजिनेन्द्र परमात्मा सिद्धपरमेष्ठीके लिये मैं नित्य ही नमस्कार करता हूं।

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम। तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर।

करनी चाहिये, फिर कायोत्सर्ग कर नमस्कार करना चाहिये फिर जल गंधादिक पूजनकी सामग्रीको तथा उपकरणादिकोंको पवित्र कर अर्घ बनाना चाहिये। "ओं ह्रीं अर्हं वास्तुदेवाय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं स्वस्तिकं अक्षतं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा" यह मंत्र पढ़ कर पूजनकी भूमिपर अर्घ चढ़ाना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीं सम्मार्जनं कुरु कुरु स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर डाभके पूलासे पूजाकी भूमिको मार्जन करना चाहिये तथा पूर्वदिशा और ईशान विदिशाके मध्यमें एक अर्घ देना चाहिये। फिर "मेघकुमाराय ह्रं सं वं मं झं ठं वं क्षालनं कुरु कुरु धरां प्रक्षालय प्रक्षालय अहं भूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर जलको डाभसे लेकर पूजाकी पृथ्वीपर छींटे देने चाहिये। फिर ईशान और उत्तर दिशाके मध्यमें मेघकुमारको अर्घ देना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं अर्हं अग्निकुमाराय भूमिं ज्वालय ज्वालय अं हं सं ठं ठं क्षं पः फट् स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर दाभके पूलेको दीपकसे जलाकर पूजाकी पृथ्वीपर रखना चाहिये तथा अग्निकोणमें अग्निकुमारके लिये एक अर्घ देना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं क्रौं वषट् षष्ठिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्यो अमृतांजलिं प्रसिंचयामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़ कर ईशानकोनमें नागकुमारोंको संतुष्ट करनेके लिये जलधारा देनी चाहिये। फिर आं क्रों अत्रस्थ क्षेत्रपाल आगच्छागच्छ संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इदं अर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरुं वलिं स्वस्तिकं अक्षतं यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा इस मंत्रको पढकर वहांके क्षेत्रपालको आह्वान स्थापन सन्निधिकरण करएक अर्घ देना

हे भगवान् मुझे आप ही शरण हैं और कोई शरण नहीं है। इसलिये हे जिनेश्वर! करुणा करके मेरी रक्षा कीजिये।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो माभवं चक्रवर्त्यपि। स्याच्चेटोपि दरिद्रोपि जिनधर्मानुवासितः।

जिनधर्मसे रहित चक्रवर्ती होना अच्छा नहीं और जिनधर्म सहित दरिद्रसेवक होना अच्छा।

जन्मजन्मकृतं पापं जन्मकोट्यामुपार्जितम्। जन्ममृत्युजरातर्कं हन्यते जिनदर्शनात्।

श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शन करनेसे जन्म जन्मके किये हुए पाप तथा कोटि जन्ममें उपर्जन किये जन्म मृत्यु जरा रोग आदि सब नष्ट हो जाते हैं।

नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये। वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति।

इन तीनों लोकोंमें वीतराग देवके सिवाय अन्यदेव न रक्षा करनेवाले हुए न होंगे।

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने। सदामेस्तु सदा मेस्तु सदा मेस्तु भवे भवे।

मेरे प्रतिदिन और प्रत्येक भवमें श्री जिनेन्द्रदेवकी ही भक्ति सदा रहो।

चाहिये फिर शांति तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये। फिर पूजाकी भूमिपर नीचे लिखे मंत्र पढकर अलग अलग अष्ट द्रव्य चढाना चाहिये। ओं ह्रीं नीरजसे नमः जलं, ओं ह्रीं दर्पमथनाय नमः दर्भं, (यहांपर दाभ रखनी चाहिये।) ओं ह्रीं शीलगंधाय नमः गंधं, ओं ह्रीं अक्षताय नमः अक्षतान्, ओं ह्रीं विमलाय नमः पुष्पं, ओं ह्रीं परमसिद्धाय नमः नैवेद्यं, ओं ह्रीं ज्ञानोद्योताय नमः दीपं, ओं ह्रीं श्रुतधूपाय नमः धूपं, ओं ह्रीं अभीष्टफलदाय नमः फलं, इस प्रकार अष्ट द्रव्यसे पूजाकी भूमिकी पूजा करनी चाहिये फिर उस भूमिपर किसी ऊंचे आसन पर शांति चक्रका यंत्र स्थापन करना चाहिये। फिर उस यंत्रके दांई ओर नीचे भूमिपर अपने बैठनेके लिये देख शोधकर दाभका आसन बिछाना चाहिये और उस समय "ओं ह्रीं अर्हं क्ष्मां ठः ठः दर्भासनं निक्षिपामि स्वाहा" यह मंत्र पढना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं अर्हं निःसही हुं फट् दर्भासने उपविशामि स्वाहा" यह मंत्र पढकर उस दाभके आसन पर बैठ जाना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं अर्हं ह्युं मौनस्थिताय अहं मौनजलं गृह्णामि स्वाहा" यह मंत्र पढकर हाथमें थोडा जल लेकर और मौनव्रत धारण करनेकी प्रतिज्ञा कर जल धारा छोड देनी चाहिये। अर्थात् हाथका जल छोड देना चाहिये। यहांसे आगे पूजा करनेवालेको मौन धारण करना चाहिये। फिर 'ओं ह्रीं भूः प्रपद्ये भुवः प्रपद्ये स्वः प्रपद्ये चतुर्विंशतितीर्थकृच्चरणशरणं प्रपद्ये ममांगानि शोधयामि स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर अपने वस्त्रके ठोकसे (पल्लेसे) अपना शरीर शुद्ध करना चाहिये। यह अंगशुद्धिका मंत्र है। फिर 'ओं ह्रीं अर्हं असुजर असुजर भव तथा हस्तौ प्रक्षालयामि स्वाहा' यह मंत्र पढकर अपने दोनों हाथ धोने चाहिये। यह हाथोंके शुद्ध करनेका मंत्र है। फिर 'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रजलेन पात्रशुद्धिं करोमि स्वाहा' यह मंत्र पढकर गंध मिले हुए जलसे पूजाके सब पात्र शुद्ध करना चाहिये और फिर उन पात्रोंमें पूजाके अष्ट द्रव्य स्थापन करना चाहिये। यह पात्र शुद्धि है। फिर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रौं श्रौं वं मं हं सं तं पं ह्वीं क्ष्वीं हं मं अ सि आ उ सा समस्तजलेन शुद्धपात्रे निक्षिप्तानि पुष्पादिपूजाद्रव्याणि शोधयामि स्वाहा' यह मंत्र पढकर दाभसे जल लेकर पूजाके सब द्रव्योंपर छींटा देना चाहिये और इस प्रकार सब द्रव्योंको शुद्ध कर लेना चाहिये। यह द्रव्य शुद्धिका मंत्र है। फिर 'ओं ह्रीं अर्हं आग्नेय्यां दिशि अस्मद्विद्यागुरुभ्यो बलिं ददामि स्वाहा' यह मंत्र पढकर आग्निकोणमें अपने विद्यागुरुके लिये अर्थात् णमोकार मंत्र आदि भगवान अरहंत देवके कहे हुए श्रुतज्ञानको पढानेवालेके लिये एक अर्घ देना चाहिये। यह विद्यागुरुकी पूजाका मंत्र है। फिर 'ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्योऽर्घं समर्पयामि स्वाहा' यह मंत्र पढकर सिद्धपरमेष्ठीको एक अर्घ देना चाहिये। फिर सहस्रनामका पाठ करना चाहिये फिर पूजा करवालेको अपने अंग और मनकी शुद्धि करनेके लिये सकलीकरण करना चाहिये। सकलीकरणकी विधि इस प्रकार है।

सबसे पहले अग्निमंडलका चिंतवन करना चाहिये। एक त्रिकोण आकारका यंत्र बनाना चाहिये उसके तीनों ओर सौ (१००) रेफ वा रकार बनाना चाहिये उन रकारोंके ऊपर आधे रकारका आकार और बनाना चाहिये इसको अर्द्ध रेफकी ज्वाला कहते हैं। ऐसे रेफोंसे व्याप्त अग्नि मंडलके मध्यमें अपने शरीरको स्थापन करना चाहिये तथा ध्यान कर अपने शरीरके मलको दग्ध करना चाहिये जलाना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है। 'ॐ ह्रीं अर्हं भगवते जिनभास्कराय बोधसहस्रकिरणैर्मम किरणेन्धनस्य द्रव्यं शोषयामि घे घे स्वाहा। यह मंत्र पढकर अपने कर्म मलको सोखना चाहिये अर्थात् दाभके छोटे पूलेको दीपकसे सेक लेना चाहिये और फिर उस दाभको अग्निमंडलमें भस्म कर देना चाहिये सो ही लिखा है—

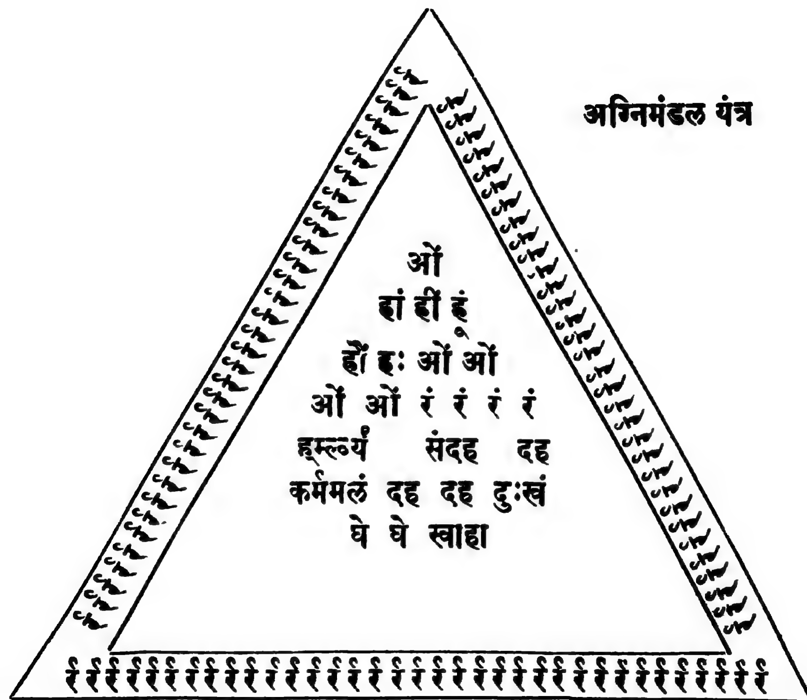
अग्निमंडलमध्यस्थे रेफैर्ज्वालाशताकुलैः। सर्वांगदशजैर्ध्यात्वा ध्यानदग्धं वपुर्मलम् ॥

इसीको यंत्रके द्वारा दिखलाते हैं—

---

१ अर्थात् अग्निमंडलके मध्यमें बैठकर सौ रेफ ज्वालाओंसे व्याप्त होकर तथा सब शरीरसे ध्यान कर उस ध्यानके द्वारा शरीरके मलको जलाना चाहिये।

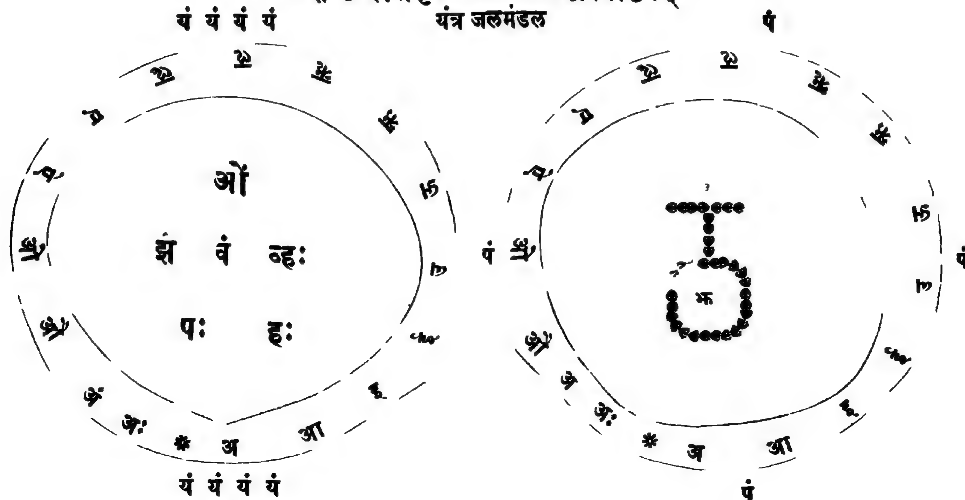
अग्निमंडल यंत्र



पूजा करनेवालेको दर्भासनपर बैठकर ऊपर लिखा मंत्र पढकर अपने पाप संबंधी पापमलको जलानेके लिये दाभको दीपकसे जलाकर अग्निमंडल पर रखना चाहिये फिर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीजिन प्रभुजिनाय कर्मभस्मविधूननं कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्रको पढकर उस जली हुई दाभकी भस्मपर जलधारा देकर उसको बुझा देना चाहिये। फिर पंच परम गुरुमुद्रा धारण करनी चाहिये। फिर अ सि आ उ सा इनका न्यास करना चाहिये। अर्थात् इनको स्थापन करना चाहिये। फिर जल मंडल यंत्र बनाकर उसके ऊपर झं वं व्हः पः हः इन अमृत वीजोंको स्थापन कर अपने मस्तक पर जल छोडना चाहिये। उसकी विधि इसप्रकार है—किसी तांवेके पात्रमें (गोल कटोरा आदिमें) जल भरकर उसमें अनामिका उंगलीसे जल मंडल यंत्र लिखना चाहिये। सो ही लिखा है—

"झ ठं स्वरावृत्तं तोयं मंडलद्वयवेष्टितम्"

यंत्र जलमंडल



फिर उस जलमंडलमें आचमनी (छोटी चमची) रखकर "ओं ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय श्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं झं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा अर्हं नमः स्वाहा" यह मंत्र पढकर आचमनीसे जल ले कर मस्तक पर डालना चाहिये और इसप्रकार तीन बार करना चाहिये यह अमृतस्नान है। फिर अपने दोनों हाथोंकी कनिष्ठा उंगलीसे लेकर अनुक्रमसे अंगूठे पर्यंत मूलकी रेखासे ऊपरकी रेखा तक पंचनमस्कारका न्यास करना चाहिये स्थापन करना चाहिये उसकी विधि इसप्रकार है—"ओं ह्रीं णमो अरहंताणं कनिष्ठकाभ्यां नमः। ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं अनामिकाभ्यां नमः। ओं ह्रीं णमो आइरिआणं मध्यमाभ्यां नमः। ओं ह्रीं णमो उवज्झायाणं तर्जिनीभ्यां नमः। ओं ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं अंगुष्ठाभ्यां नमः। इस प्रकार अलग अलग मंत्र पढ़कर दोनों ही हाथोंकी उंगलियोंकी मूल रेखासे लेकर ऊपरके पर्वतक अंगूठा लगाकर अलग अलग नमस्कार करना चाहिये। इसको करन्यास कहते हैं। फिर 'ओं ह्रीं अर्हं वं मं हं सं तं पं अ सि आ उ सा हस्तसंपुटं करोमि स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर दोनों हाथ मिला कर कमलकी कर्णिकाके समान संपुटरूप करना चाहिये अर्थात् हाथ जोड़ना चाहिये। तथा दोनों हाथोंके अंगूठोंको ऊंचा खड़ा रखना चाहिये। फिर नीचे लिखे मंत्र पढ़कर अंगन्यास करना चाहिये उसकी विधि इसप्रकार है। 'ओं ह्रीं णमो अरहंताणं स्वाहा हृदि' यह मंत्र पढ़कर उन जुड़े हुये हाथोंके खडे अंगूठोंको हृदयसे लगाना चाहिये। ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं ललाटे। ओं ह्रीं णमो आइरीआणं शिरसि। ओं ह्रीं णमो उवज्झायाणं शिरो दक्षिणभागे। ओं ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं शिरोपश्चिमदेशे। इन मंत्रोंको पढ़कर दोनों हाथोंके अंगूठोंको अनुक्रमसे हृदय ललाट मस्तक मस्तकके दांई ओर और बांई ओर नमस्कारपूर्वक स्पर्श करना चाहिये और उस समय हाथ जुडे ही रखने चाहिये। यह अंगन्यास है अर्थात् अपने शरीर और हाथोंमें मंत्रपूर्वक पंचपरमेष्ठीका स्थापन करना है। इसके बाद इसी विधिसे और इन्हीं ऊपर लिखे मंत्रोंसे दूसरा अंगन्यास करना चाहिये। उसके स्थान ये हैं। ओं ह्रीं णमो अरहंताणं स्वाहा शिरोमध्ये, ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं शिरोऽग्रभागे, ओं ह्रीं णमो आइरिआणं शिरो

---

१ पंच परम गुरु मुद्राका स्वरूप इस प्रकार है। अपने दोनों हाथोंको सीधाकर दोनों हाथोंकी आठों उंगलियोंको एक सीधमें मिलाकर खडी करनी चाहिये। फिर दोनों अनामिका (सबसे छोटी) उंगलियोंको मिली हुई खडी करना चाहिये। फिर दोनों हाथोंकी मध्यमा उंगलियोंको तर्जनी उंगलीसे दावना चाहिये और दोनों कनिष्ठा उंगलियोंको अंगूठेसे दावना चाहिये। इस प्रकार करनेसे पाच उंगलिया ऊपरको खडी हुई दिखाई देंगी तथा पांच दवी हुई अदृश्य रहेंगी। इसीको पंच गुरुमुद्रा कहते हैं।

२ इस श्लोकसे जो मंडल बनता है वह दूसरे नम्बर पर लिखा है।

नैऋत्याम्, ओं ह्रीं णमो उवज्झायाणं शिरो वायव्याम्, ओं ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं शिरोईशाने। (शिरके मध्यमें, शिरके आगे शिरकी नैऋत दिशामें, शिरकी वायव्य दिशामें और शिरकी ईशान दिशामें अंगन्यास करे) फिर तीसरा अंग न्यास ऊपर लिखे मंत्र पढ़कर अनुक्रमसे दाहिनी भुजा, बांई भुजा, नाभि, दांई कांख और बांई कांखमें करे। यथा–ओं ह्रीं णमो अरहंताणं स्वाहा दक्षिणभुजायां, ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं वामभुजायां, ओं ह्रीं णमो आइरिआणं नाभौ, ओं ह्रीं णमो उवज्झायाणं दक्षिणकुक्षौ, ओं ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं वामकुक्षौ। तदनंतर बायें हाथकी तर्जिनी उंगलीमें पंचमंत्रको स्थापन कर पूर्व दिशाको आदि लेकर दशों दिशाओंमें नीचे लिखे मंत्र पढ़कर सरसों क्षेपण करनी चाहिये। ओं क्षीं स्वाहा पूर्वस्यां, ओं क्षीं स्वाहा आग्नेये, ओं क्षुं स्वाहा दक्षिणे, ओं क्षें स्वाहा नैऋत्ये, ओं क्षों स्वाहा पश्चिमे, ओं क्षों स्वाहा वायव्यां, ओं क्षौं स्वाहा उत्तरे, ओं क्षं स्वाहा ईशाने, ओं क्षः स्वाहा अधः, ओं क्षः स्वाहा ऊर्ध्वम्। इसप्रकार दशों दिशाओंमें सरसों स्थापन करनी चाहिये। फिर ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रौं ह्रें हं हः स्वाहा इस मंत्रको पढ़कर दशों दिशाओंमें सरसों क्षेपण करनी चाहिये। यह शून्य वीज है। इसप्रकार दशों दिशाओंका बंधन करना चाहिये। फिर मंत्रको जाननेवाले श्रावकको मंत्रपूर्वक कवच और करन्यास करना चाहिये। इसकी विधि इसप्रकार है। ओं ह्रीं दयाय नमः शिरसि, ओं ह्रीं शिखायै वषट्, कवचाय हूं अस्त्राय फट्' यह मंत्र पढ़कर पृथक् पृथक् मंत्रोंसे मस्तकका स्पर्श करना चाहिये। चोटीका स्पर्श कर चोटीमें गांठ बांधनी चाहिये फिर कंधेसे लेकर समस्त शरीरको दोनों हाथोंसे स्पर्श कर फिर दोनों हाथोंसे ताली बजाकर शब्द करना चाहिये। फिर परमात्माका ध्यान करना चाहिये। ध्यानके मंत्र ये हैं। ओं ह्रीं णमो अरहंताणं अर्हद्भ्यो नमः' इसको २१ बार जपना चाहिये। 'ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धेभ्यः नमः स्वाहा' इसको भी २१ बार जपना चाहिये। इन मंत्रोंके द्वारा पद्मासनसे कायोत्सर्गपूर्वक ध्यान करना चाहिये। इसप्रकार सकलीकरण विधानके द्वारा अपना मन शुद्ध करना चाहिये। भावार्थ–शौच दो प्रकार है एक बाह्य और दूसरा आभ्यंतर। सो जल मिट्टी आदिसे तो बाह्य शौच करना चाहिये और मंत्रसे आभ्यंतर शौच करना चाहिये सो ही लिखा है 'स बाह्याभ्यंतरे शुचिः।

तदनंतर अनुक्रमसे देव शास्त्र गुरुकी पंचो पचोपचारी पूजा करनी चाहिये फिर सिद्धचक्रकी पूजा करनी चाहिये आगे उन्हीं पूजाओंको लिखते हैं।

ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मन् अनंतानंतज्ञानशक्ते एहि एहि अत्रावतरावतर संवौषट् स्वाहा इत्याह्वानम्। ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मन् अनंतानंतज्ञानशक्ते अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्वाहा स्थापनम्। ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मन् अनंतानंतज्ञानशक्ते अत्र मम सन्निहितो भव

मक वषट् स्वाहा इति सन्निधिकरणम् । इसप्रकार सबसे पहले आकर्षण करना चाहिये और वह आकर्षण आकर्षणी मुद्रासे तथा दंडासनसे (खडे होकर) पुष्पक्षेपण करना चाहिये । दूसरा उपचार स्थापन है वह पद्मासनसे अथवा सुखासनसे स्थापनी कर्षणी मुद्रापूर्वक पुष्पक्षेपण कर करना चाहिये । तीसरा सन्निधिकरण पद्मासनसे ऊर्द्ध्व मुद्रा रखकर पुष्पक्षेपण करना चाहिये । इन तीनों मुद्राओंका स्वरूप इसप्रकार है । दोनों हाथोंको खोलकर एक साथ मिलाकर फैलावे फिर दोनों अंगूठे अनामिकाके मूलस्थानमें रखनेसे आकर्षणी मुद्रा बन जाती है । स्थापनीमुद्रा–उसी आकर्षणीमुद्रा सहित दोनों हाथोंको उलटा रखनेसे स्थापनीमुद्रा होती है । सन्निधिकरणमुद्रा–दोनों हाथोंकी मुट्ठी बांधकर मिलानेसे और दोनों अंगूठे ऊपरकी ओर रखनेसे सन्निधिमुद्रा होती है । सन्निधिकरण करते समय सन्निधिमुद्रामे हृदय स्पर्श करना चाहिये और नमस्कार करना चाहिये । सो ही मुद्रोद्धार शास्त्रमें लिखा है —

हस्ताभ्यामंजलिं कृत्वानामिका मूलपर्वणि । अंगुष्ठौ ना क्षिपेत्सेयं मुद्रात्वावाहनी मता ॥
अधोमुखी इयं चेत्स्यात्स्थापिनी मुद्रिका मता । उच्छ्रितांगुष्ठयुष्टयोस्कसंयोगात्सन्निधापिनी ॥

इसप्रकार मुद्राका स्वरूप बतलाया ।

तदनंतर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनंतानंतज्ञानशक्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा' । जलम् । यह मंत्र पढ़कर जल चढ़ाना । फिर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये गंधं निर्वपामीति स्वाहा' । गंधं । यह मंत्र पढ़कर भगवानके चरणोंपर गंध लेपन करना चाहिये । फिर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा' । अक्षतान् । यह मंत्र पढ़कर अक्षत चढ़ाना चाहिये । फिर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा' । पुष्पं । यह मंत्र पढ़कर पुष्प चढ़ाना चाहिये । फिर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तशक्तये नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा' । नैवेद्यम् । यह मंत्र पढ़कर नैवेद्य चढ़ाना चाहिये । फिर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये दीपं निर्वपामीति स्वाहा' । दीपं । यह मंत्र पढ़कर दीपक संजोकर भगवानके सामने आरती उतार कर उस दीपकको सामने रखना चाहिये । फिर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये धूपं निर्वपामीति स्वाहा' । धूपम् । यह मंत्र पढ़कर धूपदानमें रक्खी हुई अग्निमें चन्दनादिक सुगंधित पदार्थोंकी बनी हुई धूप प्रज्वलित करना चाहिये । फिर 'ओं ह्रीं अर्हं परमब्रह्मणेऽनन्तानन्तशक्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा' फलं । यह मंत्र पढ़कर भगवानके सामने फलके पुंज चढ़ाना चाहिये । फिर 'ओं ह्रीं अर्हं परमब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञान-

क्षयाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा' अर्घ्यम्। यह मंत्र पढकर जल चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल स्वस्तिक दर्भ दूब सरसों आदिका अर्घ बनाकर सामने आरती उतार कर चढाना चाहिये तदनंतर सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये। उसका मंत्र यह है 'ओं ह्रीं परमब्रह्म मुखकमलोत्पन्न द्वादशांगश्रुतेभ्य जलं निर्वपामीति स्वाहा' इसीप्रकार चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल वस्त्र और अर्घ चढाना चाहिये इसप्रकार अनुक्रमसे श्रुतपूजा करनी चाहिये। तदनन्तर आचार्य परमेष्ठीकी पूजा करनी चाहिये उसका मंत्र यह है। 'ओं ह्रीं शिवपदसाधकेभ्यः आचार्यपरमेष्ठिभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा' इसीप्रकार चंदन अक्षत पुष्प, नैवेद्य, दीप धूप फल अर्घ चढाना चाहिये इसप्रकार अनुक्रमसे गुरुकी पूजा करनी चाहिये। फिर सिद्धपूजा करनी चाहिये उसका मंत्र यह है 'ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिभ्यो जलं गृहाण गृहाण स्वाहा' इसीप्रकार गंध अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल अर्घ चढाना चाहिये। यह सिद्धार्चन कहलाता है।

फिर भगवानके चरण कमलों पर जो चंदनका विलेपन किया था उसमेंसे बचे हुए चंदनका तिलक करना चाहिये। तथा प्रभुके चरणोंसे स्पर्शित किये गये पूजाके पुष्पोंकी माला बनाकर अपने कंठमें धारण करनी चाहिय। सोही लिखा है।

जिनांह्रिस्पर्शनात्माला निर्मले कंठदेशके। ललाटे तिलकं कार्यं तेनैव चंदनेन च।

अब आगे तिलक लगानेकी विधि लिखते हैं।

पहले पूजाके समय भगवानके चरणोंमें जो चंदन लगाया था और उसमेंसे जो बचा था उस चंदनसे पूजा करने वालेको तिलक लगाना चाहिये। पूजा करने वालेको किसी अन्य चंदनसे तिलक लगाना योग्य नहीं है वह तिलक जैनमतमें छह प्रकारका बतलाया है। पहला आतपत्र अर्थात् तीन छत्रके आकारका यथा— दूसरा धर्म चक्रके आकारका गोल यथा o तीसरा अर्द्धचक्रके आकारका, अर्थात् अष्टमीके चंद्रमाके आकारका यथा ‿। चौथा त्रिशूलके आकारका अर्थात् ऊपरकी ओर तीन रेखा यथा पांचवां मानस्तम्भके आकारका यथा। छटा सिहपीठ वा मिहासनके आकारका धर्मचक्रके आकारका छोटा बिंदीके समान गोल यथा o। इनका अभिप्राय यह है। भगवानके ऊपर तीन छत्र शोभायमान हैं उनको हृदयमें विचार कर आतपत्र वा छत्रके आकारका तिलक करना चाहिये। भगवानके यक्षदेव धर्मचक्रको अपने मस्तकपर लिये हुये चलते हैं उस

धर्म चक्रको चिंतवन कर चक्रके आकारका गोल तिलक करना चाहिये। तथा सुदर्शन आदि पांचों मेरु पर्वतों पर पांडुक वनमें भगवानके जन्म कल्याणके समय अभिषेक करनेके लिये अर्ध चंद्राकार स्फटिक आदि अनेक मणियोंकी बनी पांडुक शिला है। उसपर रक्खे हुए सिंहासनों पर इन्द्र भगवानको विराजमान कर बडे उत्सवके साथ क्षीरसागरके जलसे भगवानका अभिषेक करता है। उस पांडुक शिलाको स्मरण कर अर्द्ध चन्द्राकार तिलक करना चाहिये। तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र इन तीनों रत्नत्रयोंका चिंतवन कर त्रिशूलके आकारका अथवा त्रिदंडाकार तिलक करना चाहिये। समवसरणके बाह्य दरवाजेके पास मानस्तंभ है। और उसपर भगवान अरहंत देवकी प्रतिमा विराजमान हैं उस मानस्तंभको चिंतवन कर मानस्तंभके आकारका तिलक करना चाहिये। भगवानके विराजमान होनेके सिंहासनको अपने मस्तकपर रखनेका भाव रखकर सिंहासनके आकारका तिलक करना चाहिये। इसप्रकार छहों तिलकोंके भाव बतलाए हैं।

यदि ललाटपर तीन छत्र तथा अर्द्ध चन्द्राकारका तिलक किया हो तो अपने हृदय पर दोनों भुजाओंमें और कंठमें त्रिदंडाकार तिलक करना चाहिये। यदि ललाट पर मानस्तंभ वा सिंहासनके आकारका तिलक किया हो तो भुजा कंठ आदि स्थानोंमें त्रिदंड तथा चक्राकार तिलक करना चाहिये। इन सब तिलकोंमें पहले गंधका लेप कर उसके ऊपर त्रिशूल आदिका आकार बनाना चाहिये। तीन छत्राकार और अर्द्ध चंद्राकार तो आड़ी रेखा बनाकर बनाना चाहिये, त्रिदंड और मानस्तंभ ऊपरकी ओर रेखा कर बनाना चाहिये। तथा धर्मचक्र और सिंहासन गोल आकारका बनाना चाहिये। मानस्तंभ तो एक अंगुल चौड़ा करना चाहिये तथा दो अंगुल चौड़ा भी लेखा है। तथा इसकी लंबाई चार अंगुल करनी चाहिये। और वह इस प्रकार बनाना चाहिये जो दोनों नेत्रोंकी भौंओंके केशोंको स्पर्श करता रहे। तथा चक्राकार और त्रिदंडाकार भी भौंओंके केशोंको स्पर्श करता हुआ बनाना चाहिये। यह सब तिलकोंके आकारका निरूपण बतलाया।

इन छहों प्रकारके तिलकोंमेंसे क्षत्रियोंको तो अर्द्ध चन्द्र तथा छत्रत्रयका तिलक करनेका अधिकार है। ब्राह्मणोंको मानस्तंभ सिंहपीठ तथा छत्राकार तिलक करनेका अधिकार है। वैश्योंको मानस्तंभ तथा छत्राकारका तिलक करना सुखदायक है और शूद्रोंको चक्राकार तथा अन्य लोगोंको त्रिदंडाकार तिलक करनेकी आम्नाय है।

गृहस्थोंको ललाटपर तिलकके ऊपर जिनपादार्चित अक्षतोंको (जिन अक्षतोंसे भगवानके चरण कमलोंकी पूजा की है उन अक्षतोंको) एक अंगुलमात्र लगाना चाहिये, और आसिकाके अक्षत अपने ललाटपर चढाना चाहिये।

पंच परमेष्ठीको अपने अंगोंमें स्थापन करना ही तिलक करनेका अभिप्राय है। ये तिलक पंच परमेष्ठीके चिन्ह हैं। अरहंतोंको ललाटपर स्थापन करना चाहिये, सिद्धोंको हृदयमें, आचार्योंको कंठमें, उपाध्यायोंको दाहिनी भुजामें और सर्व साधुओंको बाईं भुजामें स्थापन करना चाहिये। यही तिलक करनेका हेतु है। सो ही लिखा है—

अर्हतां वा ललाटे च सिद्धानां हृदये तथा।
आचार्याणां च श्रीकंठे पाठको दक्षिणे भुजे।
साधूनां वामभागे च पंचस्थानं प्रकीर्तितम्।

इनके सिवाय कर्ण उदर आदि अन्य अंग उपांगोंमें भी तिलक करना कहा है। सोही लिखा है—

जिनांह्रिचन्दनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत्।

और भी लिखा है—

भुजयोर्भालदेशे वा कंठे हृदुदरेपि च। सर्वांगरचना कार्या विकारपरिवर्जिता॥

इसप्रकार तिलकके चिन्ह करने चाहिये।

पूजा करते समय धोती दुपट्टा ये दो वस्त्र और यज्ञोपवीत वा जनेऊ धारण करना चाहिये। जनेऊ पहननेका मंत्र यह है 'ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्रेभ्यो नमः अर्ह यज्ञोपवीतं धारयामि स्वाहा' इस मंत्रसे जनेऊ पहनना चाहिये। तदनंतर कर्ण, कुंडल, मुकुट, मुद्रिका और कंकण आदि आभूषण धारण कर फिर अपनेको इन्द्रकी कल्पना कर पंचामृताभिषेकपूर्वक पूजा करनी चाहिये। यदि ऊपर लिखे आभूषण पहननेका योग न मिल सके तो भगवानके चरणस्पर्शित चंदनसे तिलक करना चाहिये और उसी चंदनसे समस्त शरीरपर आभूषणोंका चिन्ह करना चाहिये। सो ही लिखा है।

वस्त्रयुग्मं यज्ञसूत्रं कुंडलं मुकुटं तथा। मुद्रिका कंकणं चेति कुर्याच्चंदनभूषणम्।

पूजासागरमें भी लिखा है—

धृत्वा शेखरपट्टहारपटकग्रैवेयकालम्बकं केयूरांगदमध्यबन्धुरकटी सूत्रं च मुद्रांकितम्।

चंचत्कुंडलकर्णपूरममलं पाणिद्वये कंकणं मंजीरं कटकं पतेर्जिनपतेः श्रीगंधमुद्रांकितम्।

इसप्रकार विधि कर फिर भगवानका अभिषेक करनेके लिये पांडुकशिलाकी कल्पना कर श्रीपीठ स्थापन करना चाहिये। अभिषेककी विधि क्रमसे इस प्रकार है—

ओं ह्रीं स्वस्तये कलशस्थापनं करोमि स्वाहा।

यह मंत्र पढकर कलश स्थापन करना चाहिये। फिर

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा पद्मादि षड्ह्रदा गंगासिंध्वादिचतुर्दशनदीमहासरितः उपनद्यस्तत्र स्थिताः सकलदेवताः तीर्थोदकप्रदानेन प्रसीदन्तु इदं तीर्थजलं भवतु स्वाहा"

यह मंत्र पढकर कलशोंमें जल भरना चाहिये। 'ओं ह्रीं नेत्राय संवौषट्' यह मंत्र पढकर गंध अक्षत पुष्पादिकसे कलशोंकी पूजा करनी चाहिये। तथा दाभ दूर्वा पुष्पमाला और पांच पल्लवोंसे (पांच पानसे या आमके पांच पत्तोंसे) उन कलशोंको सुशोभित करना चाहिये। फिर सूत्रबंधन करना चाहिये अर्थात् उन कलशोंके चारों ओर रंगति सूत (कलावा) लपेटना चाहिये। तदनंतर 'ओं ह्रीं स्वस्तये पीठमारोपयामि स्वाहा' यह मंत्र पढकर सिंहासन उठाना चाहिये। और ओं ह्रीं अर्हं क्ष्मां ठः ठः श्रीपीठस्थापनं करोमि स्वाहा' यह मंत्र पढकर उस सिंहासनको मंत्रसे आगे पूर्वकी ओर मुखकर अथवा उत्तरकी ओर मुखकर स्थापन करना चाहिये। यह सिंहासन अथवा पीठके स्थापन करनेकी विधि है। फिर ओं ह्रीं अर्हं पीठं प्रक्षालयामि स्वाहा' यह मंत्र पढकर उस सिंहासनको जलसे प्रक्षालन करना चाहिये। फिर 'ओं ह्रीं दर्पमथनाय नमः' यह मंत्र पढकर उस सिंहासनमें दाभ रखना चाहिये। फिर 'ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः स्वाहा' यह मंत्र पढकर जल गंध अक्षतादिकसे उस सिंहासनका पूजन करना चाहिये। फिर 'ओं ह्रीं श्रीं श्रीकारं लेखयामि स्वाहा' यह मंत्र पढकर उस सिंहासन पर केशर अथवा चंदनसे श्रीः इस प्रकार श्रीकार लिखना चाहिये। फिर 'ओं ह्रीं श्रीं श्रीयंत्रं पूजयामि स्वाहा' यह मंत्र पढकर जल गंध अक्षत पुष्प आदिसे उस श्री यंत्रकी (लिखे हुए श्रीकी) पूजा करना चाहिये।

तदनंतर स्वयं उठकर भगवानके सन्मुख खडा होकर हाथ जोडना चाहिये 'ओं ह्रीं अर्हं धात्र वषट्' इस मंत्रको पढकर भगवानके दोनों चरण कमलोंको अपने दोनों हाथोंसे स्पर्श करना चाहिये। उन हाथोंको मस्तक ललाट और नेत्रोंसे लगाना चाहिये और फिर वहांसे प्रतिमाजीको उठाकर उस सिंहासन तक ले आना चाहिये फिर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनं करोमि स्वाहा' यह

मंत्र पढकर गीत नृत्य बाजे जय जयकार आदि बडे उत्सवके साथ और बडे हर्ष भावसे उस सिंहासन पर लिखे हुए श्रीवर्णपर श्रीप्रतिमाजीको स्थानपन करना चाहिये। साथ ही एक सिद्धयंत्र स्थापन करना चाहिये। फिर 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणे अर्घं निर्वपामीति स्वाहा' यह मंत्र पढकर भगवानको एक अर्घ चढाना चाहिये फिर 'ओं नमः परमब्रह्मणे श्रीपादप्रक्षालनं करोमि स्वाहा' यह मंत्र पढकर भगवानके दोनों चरणोंका प्रक्षालन करना चाहिये। फिर ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा एहि एहि संवौषट्' यह मंत्र पढकर आह्वानन करना चाहिये। फिर ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः' यह मंत्र पढकर भगवानका स्थापन करना चहिये। फिर ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् यह मंत्र पढकर सन्निधीकरण करना चाहिये। इस प्रकार अनुक्रमसे आह्वान स्थापन सन्निधिकरण कर गुरुमुद्रा धारण करना चाहिये।

गुरुमुद्राका स्वरूप यह है— अपने दोनों हाथोंको सीधाकर दोनों हाथोंकी आठों उंगलियोंको मिलाकर लंबी खडी करनी चाहिये। फिर दोनों अनामिका (सबसे छोटी) उंगलियोंको मिली हुई खडी कर विलोम रूप (तले ऊपर) कर लेना चाहिये। फिर दोनों हाथोंकी मध्यमा (वीचकी) उंगलियोंको तर्जनीसे (अंगूठेकी पासवाली उंगलीसे) दाबकर तथा कनिष्ठा (सबसे छोटीकी पासवाली उंगली) को अंगूठेसे दाबकर खडी रखना चाहिये इस प्रकार करनेसे पांच उंगलियां खड़ी हुई दिखाई देगी और पांच दबी हुई अदृश्य रूप होंगी इसीको पंचगुरुमुद्रा कहते हैं यह मुद्रा पंच परमेष्ठीका स्मरण करनेके लिये की जाती है। इस पंच गुरुमुद्राको धारण करते समय हथेलीमें थोडासा जल और पांचों उंगलियोंको दाबते समय एक एक पुष्प रखलेना चाहिये फिर 'ओं ह्रीं अ सि आ उ सा पंचगुरुमुद्राधारणं करोमि स्वाहा' यह मंत्र पढ लेना चाहिये फिर ओं वृषभादिदिव्यदेहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय अनंतचतुष्टयाय परमसुखप्रतिष्ठिताय निर्मलाय स्वयंभुवे अजरामरपरमपदप्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्ठिने महते त्रिलोकनाथाय त्रैलोक्यप्रस्थानाय अदिष्टदिव्यनागपूजिताय परमपदाय ममात्र सन्निहिताय स्वाहा' यह मंत्र पढकर उस

जिस प्रकार यह गुरुमुद्रा मस्तकपर चढाते हैं उसी प्रकार मस्तक ललाट शिरके दाई ओर वांई ओर और पीछेकी ओर भी चढाते हैं अर्थात् इन पांचों जगह पंच परमेष्ठीकी स्थापना करते हैं पुष्प क्षेपण करते हैं और जल सिंचन करते हैं।

इस प्रकार अपने शरीरके उत्तम भागमें पंच परमेष्ठीकी स्थापना करनेसे आत्मामें पंच परमेष्ठीके गुणोंकी दृढ भावना उत्पन्न होती है, दृढ संस्कार होता है। जिसकी वासना शरीरके संबंध पर्यंत वैसी ही दृढ बनी रहती है।

पञ्चगुरुमुद्राको अपने मस्तक पर चढाना चाहिये। तथा वहीं पर जल पुष्पोंको छोडकर गुरुमुद्रा छोड देनी चाहिये और फिर नमस्कार कर लेना चाहिये। तदनंतर पाद्य दान करना चाहिये अर्थात् एक अर्घ देना चाहिये। फिर "ओं ह्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं वं मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः स्वाहाः" यह मंत्र पढकर आचमनीमें (एक छोटीसी चमचीमें) जल भरकर भगवानके ऊपर तीन वार जल क्षेपण करना चाहिये। यह भगवानका आचमन विधान है। फिर 'ओं ह्रीं क्रौं समस्तनीराजन-द्रव्यैर्नीराजनं करोमि अस्माकं दुरितमपनयतु भगवान् ओं नमोऽर्हते भगवते अ सि आ उ सा स्वाहा' यह मन्त्र पढकर आरती उतारनेके पात्रसे नीराजनावतारण करना चाहिये अर्थात् आरती उतारनी चाहिये। फिर 'ओं ह्रीं आं क्रौं प्रसस्तवर्णसर्वलक्षणसंपूर्ण स्वायुधवाहनयुवतीसचिन्हसहित इन्द्राग्नि यम नैऋत वरुण पवन कुवेरैशान शेषशीतांशु दश दिक्पाल देव अत्र आगच्छ आगच्छ संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्, ओं आं क्रों ह्रीं दश दिक्पालाय इदं अर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरु वलिं स्वस्तिक मक्षतं यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा' यह मंत्र पढकर अलग अलग इन्द्रादिक दश दिक्पालोंका स्थापन करना चाहिये तथा एक अर्घ देकर सबको प्रसन्न करना चाहिये। फिर

यस्यार्थं क्रियते पूजा स प्रीतो नित्यमस्तु ये शांतिमे पौष्टिकं चैव सर्वकार्येषु सिद्धदः।

इस श्लोकको पढकर जलधारा तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।

फिर 'ओं ह्रीं स्वस्तये कलशोद्धरणं करोमि स्वाहा' यह मन्त्र पढकर शुद्ध जलसे भरे हुए कलशको अपने दोनों हाथोंसे उठाकर ऊपर कर लेना चाहिये। फिर ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं व मं ह हं सं मं ' न पं ' झ झ क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते पवित्रतरजलेन अभिषेचयामि स्वाहा' यह मन्त्र पढकर भगवानके मस्तक पर उन कलशोंसे शुद्ध जलकी धारा देनी चाहिये। इसको शुद्धोदक स्नान कहते हैं फिर इसी मन्त्रको पढकर पवित्रतर जलेनकी जगह 'पवित्रतर इक्षुरसेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा' यह पढकर इक्षुरसकी धारा देनी चाहिये। ईख गन्ना वा सांठेका रस अथवा जलमें थोड़ा गुड़ वा शक्कर वा बूरा मिलाकर उस रस वा मीठे जलसे अभिषेक करना चाहिये। यह इक्षुरसस्नान कहलाता है। फिर 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं इत्यादि ऊपरके मंत्रको पढकर तथा 'पवित्रतरजलेन' की जगह 'पवित्रतर घृतेन

१ एक थालीमें दही अक्षत लाजा (खीलें) भस्म गोमट पिण्ड, पुष्प, दूर्वा स्वस्तिक और चार बत्तीके जलते हुए दीपकको लेकर भगवानकी आरती उतारनी चाहिये।

जिनमभिषेचयामि स्वाहा' पढकर घीका अभिषेक करना चाहिये। इसको घृतस्नान कहते हैं। फिर ऊपरका ही मंत्र पढ़कर 'पवित्रतरजलेन' की जगह 'पवित्रतरदुग्धेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा' पढ़कर दूधसे अभिषेक करना चाहिये। यह दुग्धस्नान कहलाता है। फिर 'ओं ह्रूं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं इत्यादि ऊपरका मंत्र पढकर तथा 'पवित्रतरजलेन' की जगह 'पवित्रतर दध्ना जिनमभिषेचयामि स्वाहा' पढकर भगवानके ऊपर दहीकी धारा देनी चाहिये। इसको दधि स्नपन कहते हैं। फिर ओं ह्रूं श्रीं इत्यादि ऊपरका मंत्र पढकर तथा 'पवित्रतरजलेन' की जगह 'पवित्रतर सर्वौषधिना जिनमभिषेचयामि स्वाहा' यह पढकर भगवानका सर्वौषधिसे अभिषेक करना चाहिये। सर्वौषधिमें केसर चंदन कपूर आदि सुगंधित पदार्थ डालने चाहिये यह सर्वौषधि स्नान है। फिर 'ओं नमोऽर्हते भगवते कंकोलैलालवंगादिचूर्णैर्जिनागमुद्वर्तयामि स्वाहा' यह मंत्र पढकर कंकोल इलायची लौंग तथा आदि शब्दसे श्रीखंड कपूर केशर अगर तगर देवदारु कूट जातिफल आदि सुगंधित वस्तुओंका चूर्ण कर उससे भगवानके समस्त शरीरमें उद्वर्तन वा उबटना करना चाहिये। फिर 'ओं ह्रूं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं इत्यादि ऊपर लिखा मंत्र पढकर तथा 'पवित्रतर जलेन' की जगह 'पवित्रतर चतुष्कोण कुंभजलेन पूर्ण कुंभजलेन च जिनमभिषेचयामि स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर चतुष्कोणके कलशोंके जलसे तथा पूर्ण कुंभके जलसे भगवानका अभिषेक करना चाहिये। यह चतुष्कोणकुंभस्नान और पूर्ण कुंभ स्नान कहलाता है। फिर 'ओं ह्रीं निखिललोकपवित्रीकरणगंधोदकेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा' यह मंत्र पढकर चंदन केशर आदिसे मिले हुए जलसे (गंधोदकसे) भगवानका अभिषेक करना चाहिये। इसको गंधोदक स्नपन कहते हैं। तदनंतर इस गंधोदकको अपने समस्त उत्तम अंगोंपर लगाना चाहिये। फिर अभिषेकके पात्रमें और भृंगारमें (टूटनी लगे हुए छोटे लोटेमें) पूर्ण जल भर कर भगवानके ऊपर मंत्र पूर्वक शांतिधारा देनी चाहिये। शांतिधाराका पाठ करना और जल छोडते जाना सो शांतिधारा है। वह मंत्र इस प्रकार है। ओं ह्रीं क्रौं अर्हं मम पापं खंड खंड, दह दह, दुःखं हन हन, श्वीं क्ष्वीं ह्वः पः हः झं वं क्षं क्षीं क्षूं क्षौं क्षः आं क्रौं द्रां ओं ह्रीं ठः ठः ठः श्रीरस्तु सिद्धिरस्तु पुष्टिरस्तु कल्याणमस्तु स्वाहा' इति लघुशांतिधारा। यह लघुशांति धारा पाठ है। बडे बडे कार्योंमें महाशांति धाराका पाठ पढना चाहिये। फिर जिन प्रतिमाके चरणोंपर गंध लेपनकर तथा प्रतिमाको वस्त्रसे पोंछकर यंत्र सहित सिंहासनपर विराजमान कर देना चाहिये। फिर अरहंत भक्तिका पाठ करना चाहिये। अथवा अरहंत भगवानका कोई भी स्तोत्र बोल लेना चाहिये। 'फिर यद्गर्भावतरे गृहे पितुरपि प्रागेव शक्राज्ञया' इत्यादि अरहंत भक्तिका पाठ है सो दश भक्तियोंमेंसे देख लेना चाहिये।

तदनंतर आगे बैठकर शांतिचक्र यंत्रके आगे जलादिक फल पर्यंत समस्त सामग्री चढाकर पूजा करनी चाहिये। वह पूजा इस प्रकार है—

यंत्रके मध्य स्थित अष्ट पत्रोंमें ओ अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनकी पूजा सबसे पहले करनी चाहिये। पूजा करनेका मंत्र यह है 'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा जलं गृहाण गृहाण नमः स्वाहा' इस मंत्रको पढकर जल चढाना चाहिये तथा यही मंत्र पढकर जलकी जगह उस द्रव्यका नाम लेकर अनुक्रमसे गंध अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल अर्घ चढाकर पूजा करनी चाहिये। फिर पूर्णार्घ देकर 'ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनाय नमः' ओं ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय नमः, ओं ह्रीं सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः, ओं ह्रीं सम्यक्तपसे नमः' ये मंत्र अलग अलग पढकर पूजा करनी चाहिये।

फिर उन अष्ट दलोंके बाहर स्थित जयादिक आठों देवियोंका अनुक्रमसे पूजन करना चाहिये। पहले तो उनका आह्वान स्थापन सन्निधिकरण करना चाहिये। उसका मंत्र यह है। 'ओं ह्रीं जये विजये अजिते अपराजिते जंभे मोहे स्तंभे स्तंभिनि इति अष्ट देव्य स्वायुधवाहनसमेताः सचिन्हाः अत्र आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्'। इस मंत्रको पढकर सबका आह्वान स्थापन सन्निधिकरण करना चाहिये। फिर ओं ह्रीं जयायै स्वाहा, ओं ह्रीं विजयायै स्वाहा, ओं ह्रीं अजितायै स्वाहा, ओं ह्री अपराजितायै स्वाहा, ओं ह्रीं जंभायै स्वाहा, ओं ह्रीं मोहायै स्वाहा ओं ह्रीं स्तंभायै स्वाहा ओं ह्रीं स्तंभिन्यै स्वाहा। इदं अर्घ्यं चरु अमृतं स्वस्तिकं च यज्ञभागं गृह्णीत गृह्णीत स्वाहा' इन मंत्रोंसे आठ दलोंपर स्थित आठों जयादिक देवियोंकी पूजा करनी चाहिये।

तदनंतर उन आठ दलोंके बाहर सोलह दलोंपर स्थित रोहिणी आदि सोलह विद्या देवताओंकी अनुक्रमसे पूजन करना चाहिये। यथा—ओं ह्रीं रोहिणि प्रज्ञप्ति वज्रशृंखले वज्रांकुशे अप्रतिचक्रे पुरुषदत्ते कालि महाकालि गांधारि गौरि ज्वालामालिनि वैरोटि अच्युते अपराजिते मानसि महामानसि इति षोडश देव्यः स्वायुधवाहन समेताः सचिन्हाः अत्रागच्छतागच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्, इस मंत्रको पढ़कर तथा पुष्प चढ़ाकर अनुक्रमसे आह्वान स्थापन सन्निधिकरण करना चाहिये। तथा फिर ओं ह्रीं रोहिण्यै स्वाहा। १। ओं ह्री प्रज्ञप्त्यै स्वाहा।२। ओं ह्रीं वज्रशृंखलायै स्वाहा।३। ओं ह्रीं वज्रांकुशायै स्वाहा।४। ओं ह्रीं अप्रतिचक्रायै स्वाहा।५। ओं ह्रीं पुरुषदत्तायै स्वाहा।६। ओं ह्रीं काल्यै स्वाहा। ७। ओं ह्रीं महाकाल्यै स्वाहा।८। ओं ह्रीं गांधार्यै स्वाहा।९। ओं ह्रीं गौर्यै स्वाहा।१०। ओं ह्रीं ज्वालामालिन्यै स्वाहा।११। ओं ह्रीं वैरोट्यै

स्वाहा ।१२। ओं ह्रीं अच्युतायै स्वाहा ।१३। ओं ह्रीं अपराजितायै स्वाहा ।१४। ओं ह्रीं मानसी देव्यै स्वाहा ।१५। ओं ह्रीं महामानसी देव्यै स्वाहा । १६ । इदं अर्घ्यं पाद्यं चरु वलिं यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा । इस प्रकार मंत्रपूर्वक अर्घादिक द्रव्य चढ़ाना चाहिये और "यस्यार्थं क्रियते पूजा" इत्यादि श्लोक पढ़कर जलधारा तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।

तदनंतर उन सोलह पत्रोंके बाहर चौबीस पत्रोंपर स्थित चक्रेश्वरी आदि चौबीस जिनशासन देवियोंका पूजन करना चाहिये। यथा—ओं ह्रीं चक्रेश्वरि रोहिणि प्रज्ञप्ति वज्रशृंखले वज्रपुरुषदत्ते मनोवेगे कालि महाकालि ज्वालामालिनि मानवि गौरि गांधारि वैरोटि अनंतमति मानसि महामानसि जये विजये अपराजिते वहुरूपिणि चामुंडे कुष्मांडिनि पद्मावति सिद्धायिनि सर्वा देव्यः स्वायुधवाहनसमेताः सचिह्ना अत्र आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः । अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्। इस मंत्रको पढ़कर तथा पुष्प चढाकर अनुक्रमसे आह्वान स्थापन सन्निधिकरण करना चाहिये। तथा फिर—ओं ह्रीं चक्रेश्वरीदेव्यै स्वाहा १ ओं ह्रीं रोहिण्यै स्वाहा २ ओं ह्रीं प्रज्ञप्त्यै स्वाहा ३ ओं ह्रीं वज्रशृंखलायै स्वाहा ४ ओं ह्रीं पुरुषदत्तायै स्वाहा ५ ओं ह्रीं मनोवेगायै स्वाहा ६ ओं ह्रीं काल्यै स्वाहा ७ ओं ह्रीं महाकाल्यै स्वाहा ८ ओं ह्रीं ज्वालामालिन्यै स्वाहा ९ ओं ह्रीं मानव्यै स्वाहा १० ओं ह्रीं गौर्यै स्वाहा ११ ओं ह्रीं गांधार्यै स्वाहा १२ ओं ह्रीं वैरोट्यै स्वाहा १३ ओं ह्रीं अनंतमत्यै स्वाहा १४ ओं ह्रीं मानसीदेव्यै स्वाहा १५ ओं ह्रीं महामानसीदेव्यै स्वाहा १६ ओं ह्रीं जयायै स्वाहा १७ ओं ह्रीं विजयायै स्वाहा १८ ओं ह्रीं अपराजितायै स्वाहा १९ ओं ह्रीं वहुरूपिण्यै स्वाहा २० ओं ह्रीं चामुंडायै स्वाहा २१ ओं ह्रीं कुष्मांडिन्यै स्वाहा २२ ओं ह्रीं पद्मावत्यै स्वाहा २३ ओं ह्रीं सिद्धायन्यै स्वाहा इदं अर्घ्यं चरु अमृतं वलिं यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा। इसप्रकार मंत्रपूर्वक अर्घादिक द्रव्य चढाना चाहिये और यस्यार्थं क्रियते पूजा इत्यादि श्लोक पढकर जलधारा तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।

तदनंतर उन चौवीस पत्रोंके बाहर बत्तीस पत्रोंपर स्थित असुरेन्द्रादिक बत्तीस इन्द्रोंकी पूजन करना चाहिये। यथा—ओं ह्रीं असुरेन्द्रनागेन्द्र विद्युदिन्द्र सुपर्णेन्द्र अग्नीन्द्र वातेन्द्र स्तनितेन्द्र उदधीन्द्र द्वीपेन्द्र दिगीन्द्र किन्नरेन्द्र किंपुरुषेन्द्र महोरगेन्द्र गंधर्वेन्द्र यक्षेन्द्र राक्षसेन्द्र भूतेन्द्र पिशाचेन्द्र चन्द्रादित्य सौधर्मेन्द्र ईशानेन्द्र सानत्कुमारेन्द्र माहेन्द्र ब्रह्मेन्द्र लांतवेन्द्र शुक्रेन्द्र शतारेन्द्र आनतेन्द्र प्राणतेन्द्र आरणेन्द्र अच्युतेन्द्र सर्वे इन्द्रा यानायुधवाहनयुवतिजनैः सार्द्धं आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः । अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् । इस मंत्रको पढकर अनुक्रमसे आह्वान स्थापन सन्निधिकरण करना चाहिये। फिर ओं ह्रीं असुरेन्द्राय स्वाहा । ओं ह्रीं नागेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं विद्युदिन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं सुपर्णेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं अग्नीन्द्राय

स्वाहा। ओं ह्रीं वातेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं स्तनितेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं उदधीन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं द्वीपेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं दिगिन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं किन्नरेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं किंपुरुषेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं महोरगेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं गन्धर्वेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं यक्षेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं राक्षसेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं भूतेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं पिशाचेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं चन्द्रेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं आदित्येन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं सौधर्मेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं ईशानेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं सानत्कुमारेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं माहेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं ब्रह्मेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं लांतवेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं शुक्रेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं शतारेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं आनतेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं प्राणतेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं आरणेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं अच्युतेन्द्राय स्वाहा। ओं भू र्भुवः स्व स्वाहा स्वधा इदं अर्घ्यं चरु अमृतं स्वस्तिकं यज्ञभागं गृह्णीत गृह्णीत स्वाहा। इसप्रकार मंत्रपूर्वक अर्घादिक द्रव्य चढ़ाना चाहिये। तथा 'यस्यार्थं क्रियते पूजा' इत्यादि श्लोक पढ़कर जलधारा तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।

तदनंतर उस मंडलके बाहर पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर चारों दिशाओंमेंसे एक एक दिशामें गोमुखादिक छह छह यक्ष हैं सब मिलकर चौवीस यक्ष हैं तथा वे वज्र जो त्रिशूलाकार हैं उनमें स्थित हैं उनकी पूजन करनी चाहिये। उनके मंत्र ये हैं—

ओं ह्रीं गोमुख महायक्ष त्रिमुख यक्षेश्वर तुंबुरु कुसुम वरनंदि विजय अजित ब्रह्मेश्वर कुमार षण्मुख पाताल किन्नर किंपुरुष गरुड़ गंधर्व महेन्द्र कुबेर वरुण विद्युतप्रभ सर्वाण्ह धरणेन्द्र मातंग इति चतुर्विंशति यक्षेन्द्रगणाः आयुधवाहनयुवतिसहिता आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्। इसप्रकार मंत्र पढकर आह्वान स्थापन सन्निधिकरण करना चाहिये। फिर—

ओं ह्रीं गोमुखाय स्वाहा। ओं ह्रीं महायक्षाय स्वाहा। ओं ह्रीं त्रिमुखाय स्वाहा। ओं ह्रीं यक्षेश्वराय स्वाहा। ओं ह्रीं तुंबुरवे स्वाहा। ओं ह्रीं कुसुमाय स्वाहा। ओं ह्रीं वरनन्दिने स्वाहा। ओं ह्रीं विजयाय स्वाहा। ओं ह्रीं अजिताय स्वाहा। ओं ह्रीं ब्रह्मेश्वराय स्वाहा। ओं ह्रीं कुमाराय स्वाहा। ओं ह्रीं षण्मुखाय स्वाहा। ओं ह्रीं पातालाय स्वाहा। ओं ह्रीं किन्नराय स्वाहा। ओं ह्रीं किंपुरुषाय स्वाहा। ओं ह्रीं गरुड़ाय स्वाहा। ओं ह्रीं गंधर्वाय स्वाहा। ओं ह्रीं महेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं कुबेराय स्वाहा। ओं ह्रीं वरुणाय स्वाहा। ओं ह्रीं विद्युत्प्रभाय स्वाहा। ओं ह्रीं सर्वाण्हाय स्वाहा। ओं ह्रीं धरणेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं मातंगाय स्वाहा। इदं अर्घ्यं चरु अमृतं बलिं यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा। इसप्रकार मंत्रपूर्वक अर्घादिक द्रव्य चढ़ाना चाहिये और 'यस्यार्थं क्रियते पूजा' इत्यादि श्लोक पढकर जलधारा तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये इसको यक्षार्चन कहते हैं।

तदनंतर चार दिशाएं चार विदिशाएं और ऊपर नीचे इसप्रकार दशों दिशाओंमें दश दिक्पालोंका पूजन करना चाहिये। यथा—

ओं ह्रीं इन्द्राग्नियमनैऋतवरुणपवनकुवेरईशानधरणेन्द्रसोमाः सर्वेप्यायुधवाहनयुवतिजनसहिताः आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्। इस मंत्रको पढकर तथा पुष्प चढ़ाकर अनुक्रमसे आह्वान स्थापन सन्निधिकरण करना चाहिये। फिर ओं ह्रीं इन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं अग्नये स्वाहा। ओं ह्रीं यमाय स्वाहा। ओं ह्रीं नैऋताय स्वाहा। ओं ह्रीं वरुणाय स्वाहा। ओं ह्रीं पवनाय स्वाहा। ओं ह्रीं कुवेराय स्वाहा। ओं ह्रीं ईशानाय स्वाहा। ओं ह्रीं धरणेन्द्राय स्वाहा। ओं ह्रीं सोमाय स्वाहा। इदं अर्घ्यं चरु अमृतं बलिं यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा। इसप्रकार मंत्रपूर्वक अर्घादिक द्रव्य चढाना चाहिये तथा 'यस्यार्थं क्रियते पूजा' इत्यादि श्लोक पढकर जलधारा तथा पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये। इसमें इतना विशेष है कि 'ओं ह्रीं इन्द्राय स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर पूर्वदिशामें अर्घ चढाना चाहिये। 'ओं ह्रीं अग्नये स्वाहा' इस मंत्रसे आग्नेय दिशामें (पूर्व दक्षिणके बीचमें), ओं ह्रीं यमाय स्वाहा इस मंत्रसे दक्षिण दिशामें, ओं ह्रीं नैऋताय स्वाहा इस मंत्रसे नैऋतकोणमें (दक्षिण पश्चिमके बीचमें) 'ओं ह्रीं वरुणाय स्वाहा' इस मंत्रसे पश्चिममें, ओं ह्रीं पवनाय स्वाहा इस मंत्रसे वायव्यकोणमें (पश्चिम उत्तरके बीचमें) ओं ह्रीं कुवेराय स्वाहा इस मंत्रसे उत्तर दिशामें ओं ह्रीं ईशानाय स्वाहा इस मंत्रसे ईशान दिशामें (उत्तर पूर्वके बीचमें) ओं ह्रीं धरणेन्द्राय स्वाहा इस मंत्रसे भूमिके अधोभागमें और ओं ह्रीं सोमाय स्वाहा इस मंत्रसे ऊपरकी दिशामें। इसप्रकार दशों दिशाओंमें दश दिक्पालोंकी पूजन करनी चाहिये।

फिर मंत्रकी चारों दिशाओंमें चारों विदिशाओंमें तथा दुवारा पूर्व दिशामें इस प्रकार नौ स्थानोंमें आदित्यादिक नव ग्रहोंका पूजन करना चाहिये। यथा—ओं ह्रीं आदित्य सोमांगार बुध बृहस्पति शुक्र शनिश्चर राहुकेतवः सर्वेप्यायुधवाहनवधूचिन्हसपरिवारा अत्र आगच्छत आगच्छत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्। यह मंत्र पढ़कर तथा पुष्प चढ़ाकर अनुक्रमसे आह्वान स्थापन सन्निधिकरण करना चाहिये। फिर अलग अलग मंत्रोंसे पूजन करना चाहिये। अलग अलग मंत्र ये हैं—

ओं ह्रीं आदित्याय स्वाहा पूर्वदिशि, ओं ह्रीं सोमाय स्वाहा आग्नेय दिशि, ओं ह्रीं भौमाय स्वाहा दक्षिणे, ओं ह्रीं बुधाय स्वाहा नैऋत्यां, ओं ह्रीं बृहस्पतये स्वाहा पश्चिमे, ओं ह्रीं शुक्राय स्वाहा वायव्यां, ओं ह्रीं शनैश्चराय स्वाहा उत्तरे, ओं ह्रीं राहवे स्वाहा ईशान्यां, ओं ह्रीं केतवे स्वाहा पूर्वदिशि। इदं अर्घ्यं पाद्यं चरु बलिं अमृतं यज्ञभागं च यजायहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां

स्वाहा। इस प्रकार पूजन करना चाहिये। यह दिकपाल पूजन है। यह दिक्पालोंका पूजन मंत्रके आगे सात धान्योंके नौ कोठे बनाकर अथवा नौ कोठेके मंडल बनाकर ऊपर लिखे मंत्रोंसे अलग पूजा करनी चाहिये।

फिर मंत्रके अग्रभागमें (पूर्वकी ओर) अनावृत यक्षकी पूजा करनी चाहिये। उसका मंत्र यह है 'ओं ह्रीं आं क्रों हे अनावृत अत्रागच्छागच्छ संवौषट् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। इदं अर्घ्यं गृहाण गृहाण स्वाहा। इस प्रकार अर्घ चढाकर "यस्यार्थं क्रियते पूजा" इत्यादि श्लोक पढकर जलधारा पुष्पांजलिक्षेपण करना चाहिये। इसको यक्षार्चन कहते हैं।

इसप्रकार महामंत्रकी आराधना कर मूल विद्याका एकसौ आठ वार जप करना चाहिये। वह मंत्र यह है। "ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अस्माकं सर्वोपद्रवशांतिं कुरु कुरु स्वाहा।" इस मंत्रका जातिपुष्पोंसे (चमेलीके फूलोंसे) अथवा अन्य सुगंधित पुष्पोंसे वा देवपुष्प लवंगसे पहले कहे हुए यंत्रके ऊपर एकसौ आठ वार जप करना चाहिये। फिर—

प्रातिहार्यान् जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरीन् सुमात्रिभिः। पाठकान् विनयैः साधून् योगांगैश्चाष्टभिःस्तुवे ॥

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया। पंचकल्लाणसुक्खावलीपत्तया ॥

जयमाला।

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाण सुक्खावली पत्तया। दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥ १ ॥

जेहि झाणग्गिवाणेहि अइथट्ठयं, जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं। जेहि पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महा दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥ २ ॥

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया, वारसंगाइ सुयजलहिं अवगाहया। मोक्खलच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिन्तु मोक्खं गया संगया ॥ ३ ॥

घोरसंसारभीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे। णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥ ४ ॥

उग्गतवयरणकरणेहिं झीणं गया, धम्मवरझाणक्केकझाणं गया। णिब्भरं तवसिरीए समालिंगया, साहओ ते महामोक्खपहमग्गया ॥ ५ ॥

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए। लहइ सो सिद्ध सुक्खाइ वरमाणणं कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं ॥ ६ ॥

अरिहा सिद्धा इरिया उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी। एयण णमुक्कारो भवे भवे मम सुहं दिंतु।

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इच्छामि भंते पंचगुरुभक्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयम्मि पइट्ठियाणं

दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं।

इत्यादि जयमाला पढकर तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिये। फिर अर्घ महा अर्घ देकर साष्टांग वा पंचांग नमस्कार करना चाहिये। फिर—

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।

इत्यादि शांति पाठ पढना चाहिये। फिर आये हुए देवताओंका विसर्जन करना चाहिये। विसर्जन करनेके श्लोक ये हैं।

सिद्धाणं, अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसगाणं उवज्झायाणं, तिरियणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

२ शांति पाठ।

शान्तिजिनंशशिनिर्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसयमपात्रम्। अष्टशतार्चितलक्षणगात्र नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम्॥ १॥

पंचममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च। शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः षोडश तीर्थकरं प्रणमामि॥ २॥

दिव्यतरुःसुरपुष्पसुवृष्टिर्दुंदुभिरासनयोजनघोषौ। आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः॥ ३॥

तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि। सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं मह्यमरं पठते परमां च॥ ४॥

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुण्डलहाररत्नैः, शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपाः तीर्थकराः सततशान्तिकराः भवन्तु॥ ५॥

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम् देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥ ६॥

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः काले काले च सम्यक् विकरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि॥ ७॥

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः। कुर्वन्तु जगतः शांतिं वृषभाद्याः जिनेश्वराः॥ ८॥

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥
आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम् । विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥
आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमं । ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यांतु यथालयम् ॥
मंत्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं कृतं मया । तत्सर्वं क्षम्यतां सर्वैः रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥

ओं ह्रीं ये देवगणा अत्र पूजनावसरे मया आहूता पूजिता ते प्रसन्नीभूता स्वस्थाने जः जः जः स्वाहा ।

इसप्रकार मंत्र पूर्वक विसर्जन करना चाहिये । तदनंतर नमस्कार कर पूजावशेष द्रव्यसे आशिष अपने मस्तकपर धारण करना चाहिये । फिर पूजा द्रव्य लेकर ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक उस गांव वा नगरके जिनालयमें जाना चाहिये । उसकी विधि इस प्रकार है—

श्रावकोंको जिनमंदिरमें जाते समय सबसे पहले "ओं ह्रीं अर्हं द्वारपालाननुज्ञापयामि स्वाहा" यह मंत्र पढकर द्वारपालकी आज्ञा लेनी चाहिये । फिर ओं ह्रीं अर्हं णिसही णिसही णिसही रत्नत्रय पुरस्सराय विद्यामंडल निवेशनाय समसमयाय निःसही जिनालयं प्रविशामि स्वाहा ।" यह मंत्र पढकर जिनालयमें प्रवेश करना चाहिये । फिर । "ओं ह्रीं पवित्रतर गंधोदकं शिरषि परिषिंचयामि स्वाहा" यह मंत्र पढकर जिनगंधोदकको अपने मस्तक पर लगाना चाहिये । फिर दुपट्टेको कमरसे लेकर एक पल्ला तो बांये कंधे पर रखना चाहिये और दूसरा पल्ला पीछेकी ओरसे लाकर दांये कंधेपर लाते हुए हृदयकी ओर नीचे लटका कर उस पल्लेसे भूमिको देखते हुए सम्मार्जन करना चाहिये । तदनंतर साष्टांग वा पंचांग अथवा पश्वर्द्धशायि नमस्कार करना चाहिये । फिर भक्ति

अथेष्टप्रार्थना ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥
तव पादौ मम हृदये मम हृदयं च तव पदद्वये लीनम् । तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद् यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥ १० ॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं । तं खमउ णाण देव य मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ।
दुक्खक्खओ कम्मक्खओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य । मम होउ जगतबंधव, तव जिणवरचरणसरणेण ॥ ११ ॥

पूर्वक अपने समयके अनुसार खडा होकर अपने दोनों चरण समान रखकर अपनी दृष्टिसे भगवानको देखना चाहिये। अपने दोनों हाथ जोडकर ललाट तथा हृदय पर रखना चाहिये। फिर कुछ नम्र होकर प्रदक्षिणा करनी चाहिये फिर नमस्कार कर उठकर फिर नमस्कार करना चाहिये। इसप्रकार तीन वार कर अपनी बुद्धिके अनुसार भगवानकी स्तुति करनी चाहिये। फिर जहांपर समता धारण हो सके ऐसे समता स्थानमें जाकर सामायिक करना चाहिये। फिर अपने समयके अनुसार देव शास्त्र गुरुकी पूजन करना चाहिये इसकी विधि पहले लिख चुके हैं। फिर भक्ति पूर्वक स्तुति और नमस्कार करना चाहिये। फिर पहले कहे हुए क्षेत्रपाल पद्मावती आदि शासन देवताओंको क्रमसे अर्घादिक देना चाहिये। फिर सभामंडपमें जाकर जिनश्रुत (शास्त्र) और मुनि जनोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार करना चाहिये। श्रीगुरुके शरीरादिकका समाधान पूछना चाहिये। फिर अपनी भक्तिके अनुसार दिग्व्रत देशव्रत अनर्थदंडव्रत आदि व्रतोंमेंसे नित्य व्रत श्रीगुरुकी आज्ञानुसार ग्रहण करने चाहिये। तथा उन्हीं गुरुराजके मुखसे तत्वार्थोंको कहनेवाले शास्त्र आदि जिनश्रुतका व्याख्यान सुनना चाहिये। अथवा दूसरोंको सुनाना चाहिये। अपने मन वचन कायसे जिनधर्मका उद्योग करना चाहिये। फिर अपने घर आकर पात्रदान देना चाहिये फिर भोजन पान कर न्याय पूर्वक पापरहित कार्योंसे यथायोग्य अपनी जीविका करनी चाहिये।

इसप्रकार श्रावक व्रतके धारण करने वाले गृहस्थोंकी यह प्रातःकालकी क्रियाकी विधि है। इसका विस्तार बहुत है परंतु यहां थोडासा लिखा है। जिनको इसका वर्णन देखना हो वे भगवदेक संधिकृत जिनसंहिता शास्त्र तथा पूजासार शास्त्र, तथा धर्म-रसिक शास्त्र और पूजाकी विधि जिनयज्ञकल्प प्रतिष्ठापाठ महाभिषेक तथा शांतिचक्रपूजा प्रकरण तथा और भी अनेक शास्त्रोंमें देख लेना चाहिये। यहांपर ऊपर लिखे शास्त्रोंमेंसे थोडासा लिखा है।

चर्चा एकसौ पचासवीं—

पहले जो अष्टांग पंचांग और पश्चर्द्धशायि नमस्कार करना लिखा है सो इनका स्वरूप क्या है?

समाधान—अपने दोनों हाथ दो पैर एक मस्तक एक छाती और दोनों कपाल इसप्रकार आठों अंगोंको भूमिमें स्पर्शते हुए नमस्कार करना सो अष्टांग नमस्कार है। भावार्थ-पहले पृथ्वी पर दंडके समान नीचेकी ओर मुंह कर सीधा सोजाना जिससे दोनों पैर मस्तक छाती दोनों हाथ भूमिसे लग जांय फिर क्रमसे दांये बांये कपोलोंको लगाना भूमिसे स्पर्श करना। इसप्रकार नमस्कार करनेको अष्टांग नमस्कार कहते हैं। सोही लिखा है—

हस्तौ पादौ शिरश्चोरः कपोलयुगलं तथा। अष्टांगानि नमस्कारे प्रोक्तानि श्रीजिनागमे ॥

दोनो हाथ दोनों पैर और मस्तक इन पांचों अंगोंको भूमिमें स्पर्शते हुए नमस्कार करना पंचांग नमस्कार है। सो ही लिखा है।

मस्तकं जानुयुग्मं च पंचांगानि करौ नतौ।

पश्वर्द्धशायि नमस्कारका स्वरूप इसप्रकार है। पशु गायको कहते हैं। गायके समान आधा सोना जिससे पीछेके आधे अंग तो खडे रहें और आगेका आधा अंग अर्थात् दोनों पैर और मस्तक पृथ्वी पर नम जाय। पैरोंके दोनों घुटनोंसे नमकर गर्दनसे मस्तकको नीचा करना पश्वर्द्धशायि नमस्कार है। भावार्थ—खडे पैरोंसे बैठकर दोनों हाथोंको कोनीसे नवाकर तथा पृथ्वीपर रखकर अपना मस्तक झुकाना सो पश्वर्द्धशायि नमस्कार है। सोही लिखा है—

अत्र प्रोक्तानि पश्वर्द्धशयनं पशुवन्मतम्।

इसप्रकार नमस्कारके तीन भेद हैं सो जैसा अपनेसे बन सके वैसा भावपूर्वक देव शास्त्र गुरुको नमस्कार करना चाहिये।

इनमेंसे स्त्रियोंके लिये अष्टांग और पंचांगका अधिकार नहीं है। उनको केवल पश्वर्द्धशायि नमस्कार करनेका अधिकार है। पुरुषोंको तीनों प्रकारके नमस्कार करनेका अधिकार है। यह बात मूलाचारमें आर्यिकाओंको वंदना करते समय समयाख्याधिकारमें लिखी है—

पंच छह सत्त हत्थे सूरी अज्झावगो य साधू य। परिहरिऊणज्जाओ गवासणेणेव वंदंति ॥ १९५ ॥

इसका अर्थ एकसौ ग्यारहवीं चर्चामें लिखा है। जब आर्जिका भी गवासनसे ही आचार्यादिकको वंदना करती हैं तो फिर अन्य स्त्रियां अष्टांग वा पंचांग नमस्कार किस प्रकार कर सकतीं हैं उनके लिये अष्टांग वा पंचांग नमस्कार करना अयोग्य है इसलिये नहीं करना चाहिये।

१५१। चर्चा एकसौ इक्यावनवीं।

पहले अर्घ्य पाद्यं ऐसा लिखा है सो अर्घ्य और पाद्य किसको कहते हैं ?

समाधान—पय अर्थात् जल, क्षीर अर्थात् दूध, कुश, अर्थात् दाभ, उशीर अर्थात् खसखस, तिल अक्षत जौ ये सब अर्घ्य द्रव्य कहलाते हैं इनमें सफेद और काली सरसों और मिलानी चाहिये। सो ही पूजासारमें लिखा है—

पयःक्षीरकुशोशीरं तिलाक्षतयवान्वितम्। अर्घ्यद्रव्यमिति प्रोक्तं सश्यामासितसर्षपम्॥

इसीप्रकार कमलकी जड़, सरसों, दूव, और अक्षतको पाद्य द्रव्य कहते हैं। यह पाद्यद्रव्य भगवानके अभिषेकमें लिया जाता है सो ही पूजासारमें लिखा है —

समूलपद्मसिद्धार्थं दूर्वामृततृणाक्षतम्। पाद्यद्रव्यमिति प्रोक्तं जिनस्नपनपूजने॥

इसप्रकार अर्घ्य और पाद्यका स्वरूप समझना चाहिये।

१५२। चर्चा एकसौ बावनवीं।

पूजामें मंगल द्रव्य वा मंगलार्घ्य कहा है सो मंगलार्घ्य किसको कहते हैं?

समाधान—दूव, स्वस्तिक अर्थात् नंद्यावर्त अथवा केवलस्साथिया, दर्भ अर्थात् दाभ, कमलफल (कमलगट्टा) नदीके किनारेकी शुद्ध मिट्टी, भूमिमें नहीं पड़ा हुआ गोमय, श्रीखंड अर्थात् बावन चंदनादिक सुगंधित द्रव्य, सुवर्ण, चांदी, पुष्प, दीपक, भृंगार, सरसों, तिल, शालि अक्षत, केसर, जौ, धूप, ये सब मंगल सूचक द्रव्य हैं सो अभिषेक वा पूजाके समय भगवानके आगे किसी पात्रमें रखकर अर्घ्यके समान उतार कर चरणोंके आगे चढाना चाहिये। इसीको मंगलार्घ्यावतरण कहते हैं। सो ही धर्मदेवकृत शांतिचक्र पूजामें लिखा है—

दूर्वास्वस्तिकदर्भपद्मकनदीमृद्रोचनागोमयः, श्रीखंडोत्तमहेमरौप्यकुसुमश्रीदीपभृंगारकान्॥
सिद्धार्थं तिलशालिकुंकुमयवप्रत्यग्रधूपादिकान् सर्वान् मंगलसूचकान् क्रमयुगस्योत्तारयाम्यर्हतः॥

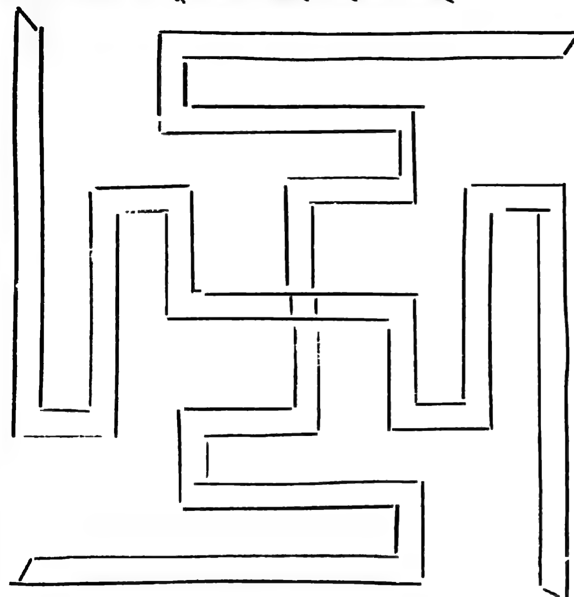
यही बात लघुस्नपनमें भी लिखी है। दध्युज्ज्वलाक्षतमनोहरपुष्पदीपैः इत्यादि।

१५३। चर्चा एकसौ तिरेपनवीं।

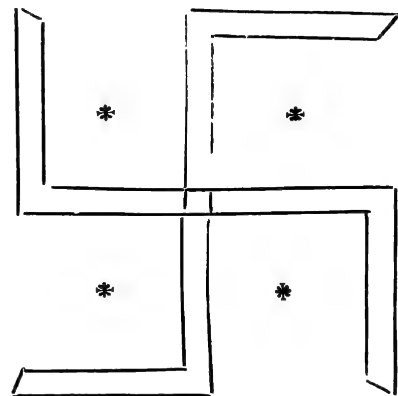
ऊपर नंद्यावर्तक नामका सांथिया लिखा है सो उसका स्वरूप क्या है?

समाधान—पूजामें नंद्यावर्तक सांथिया लिखा है सो उसका आकार नीचे लिखे अनुसार है। वह स्वस्तिक चावलोंसे बनाना

चाहिये अथवा किसी रकाबी थाल आदि पात्रमें चंदन केसर आदि गंध द्रव्यसे लिखना चाहिये। पूजा करने वालेको पहले स्वस्तिक बनाना चाहिये फिर पूजा करनी चाहिये यह आम्नाय है।



नंद्यावर्तक



स्वस्तिक वा सांथिया

१५४। चर्चा एकसौ चौअनवीं।

पहले जिनाचमन बतलाया है। सो आचमनकी विधि कौनसी है ?

समाधान—धातकी (धायके) पुष्प, कपूर जायफल लौंग ये सब द्रव्य जलके घटमें डालकर पहले लिखी हुई रीतिके अनुसार जिनाचमन करना चाहिये। सो ही पूजासारमें लिखा है।

धातकीसुमनश्चन्द्रजातिफललवंगकम्। घटस्याचमनस्येदं द्रव्यमित्युच्यते बुधैः ॥

यह सब आचमन द्रव्य है।

१५५। चर्चा एकसौ पचपनवीं।

ऊपर नीराजन द्रव्यावतरण लिखा है सो उसका स्वरूप क्या है ?

समाधान—नीराजनावतरण आठ प्रकार है और वह क्रमसे इस प्रकार है।

१ ओं ह्रीं क्रौं दुर्वांकुरसितसर्षपयुक्तैर्हरितगोमयपिंडकैर्भगवतोर्हतोवतरणं करोमि अष्ट कर्माण्यस्माकं भस्मी करोतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—दूब सफेद सरसों, और भूमिमें नहीं पडा हुआ गीला गोमयका पिंड इन द्रव्योंसे भगवानकी आरती करता हूं वे भगवान मेरे आठों कर्मोंको नष्ट करें।

ओं ह्रीं क्रौं शुद्धभस्मपिंडेन भगवतोर्हतोवतरणं करोमि अष्ट कर्माण्यस्माकं भस्मी करोतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—शुद्ध भस्मपिंडसे भगवानकी आरती करता हूं वे भगवान् मेरे आठों कर्मोंको भस्म करें।

३ ओं ह्रीं क्रौं बहुविधाक्षतपरिपूर्णपाणिपात्रेण भगवतोर्हतोवतरणं करोमि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राण्यस्माकमक्षतानि ददातु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—दोनों मिले हुए दोनों हाथोंमें अनेक प्रकारके अक्षत भरकर तथा उसमें जल डालकर उससे भगवानकी आरती करता हूं वे भगवान मुझे अक्षत अर्थात् पूर्ण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र देवें।

ओं ह्रीं क्रौं उभयपार्श्वप्रज्वलितदर्भाग्निना भगवतोर्हतोवतरणं करोमि आत्मोज्वलनमस्माकं करोतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—दोनों बगलोंमें जलती हुई डामकी अग्निसे भगवानकी आरती करता हूं वे भगवान मेरी आत्माको उज्वल वा निर्मल करें।

५ ओं ह्रीं क्रौं सुरभिशशिविमलसलिलपरिपूर्णनांजलिना भगवतोर्हतोवतरणं करोमि विमलशीतलध्यानमस्माकमुत्पादयतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—सुगंधित और चंद्रमाके समान निर्मल जलसे भरे दुए दोनों मिले हुए हाथोंसे धेनुमुद्रासहित हाथोंसे भगवानकी आरती करता हूं। वे भगवान शांत और निर्मल ध्यान मुझमें उत्पन्न करें।

६ ओं ह्रीं क्रौं पंचवर्णभक्तपिंडकैर्भगवतोर्हतोवतरणं करोमि क्षेमं सुभिक्षमस्माकं करोतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—पांच प्रकारके सुंदर खाद्य पदार्थोंसे अथवा पांच वर्णके चावलोंसे (भातसे) भगवानकी आरती करता हूं वे भगवान मुझे सब तरहका कल्याण और सुकाल प्रदान करें।

७ ओं ह्रीं क्रौं सितहरितपीतकृष्णलोहितैर्वर्द्धमानकैर्भगवतोर्हतोऽवतरणं करोमि श्रियमस्माकं वर्द्धमानं करोतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—सफेद हरी पीली काली लाल सरसोंसे भगवानकी आरती करता हूं वे भगवान मुझे बढती हुई लक्ष्मी प्रदान करें।

८—ओं ह्रीं क्रौं पवित्रतरुसमुत्पन्नैः क्रमुकनालिकेरमातुलिंगपनसदाडिमजंब्वाम्रफलैर्भगवनतोर्हतोवतरणं करोमि अस्माकमाशाफलमुत्पादयतु भगवान् स्वाहा।

भावार्थ—पवित्र वृक्षोंसे उत्पन्न हुए सुपारी, नारियल, विजोरा, पनस, अनार, जामुन, आम आदि फलोंसे भगवान अरहंत देवकी आरती करता हूं। वे भगवान् मेरी आशाओंको फलीभूत करें।

इस प्रकार आठों दिशाओंमें आठ प्रकारका नीराजन करना चाहिये। नीराजनके पात्रमें ऊपर लिखे हुए द्रव्य रखकर आरती वा अवतरण करना चाहिये। नीराजनाके पात्रका आकार ऐसा समझना चाहिये।

यह सब पूजासार तथा बृहत्स्नपन आदिमें लिखा है।

१५६। चर्चा एकसौ छप्पनवीं।

सर्वौषधिमें कौन कौनसी औषधियां है?

समाधान—इक्षुरस घृत दुग्ध दधि इनके अभिषेकके बाद सर्वौषधिका अभिषेक करना चाहिये। उसमें नीचे लिखी चीजें डालनी चाहिये।-सरसों चंदन वच्छकूट, कंकोल मिरच (काली) इलायची लौंग जावित्री कपूर आदि अनेक सुगंधित द्रव्योंके समूहको जलमें घोलकर सर्वौषधि तैयार करना चाहिये और उससे अभिषेक करना चाहिये। इसके सिवाय सप्तौषधि तथा कषाय लौषधि (कषायले पदार्थोंको घोलकर जल तैयार करना) आदि और भी इसके भेद हैं सो अन्य ग्रंथोंसे जान लेना चाहिये। यहां संक्षेपसे लिखा है इस प्रकार सर्वौषधिका विधान है।

१५७। चर्चा एकसौ सत्तावनवीं।

पहले पूजामें सिद्धचक्रका यंत्र बतलाया है सो इसका स्वरूप क्या है?

समाधान—पूजामें सिद्धपरमेष्ठीका सिद्धचक्र यंत्र बतलाया है, और सिद्धपूजा इस यंत्रपूर्वक ही होती है सो इसके बनानेकी विधि इस प्रकार है। सबसे पहले एक सोनेका वा चांदीका अथवा तांबेका वा पीतलका अथवा कांसेका वा और किसी उत्तम धातुका पत्र बनाना चाहिये। उसपर यंत्र लिखकर किसी चतुर कारीगरसे पवित्रतापूर्वक वे अक्षर खुदवाना चाहिये। यंत्र इसप्रकार है।

ऊर्ध्वाधो रयुतं सविंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं। वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं तत्संधि तत्त्वान्वितम्॥
अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं। देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः॥

अर्थ—जिसके ऊर्ध्व अर्थात् ऊपर और अधो नीचे दोनों जगह रकार है तथा जो विंदु अर्थात् अर्द्ध चन्द्राकार कलासहित ऐसा स से आगेका अक्षर हकार मध्यमें लिखना। भावार्थ—जिस हकारके ऊपर रकार हो नीचे रकार हो और अर्द्धचन्द्र वा अर्द्धविंदु ऊपर हो ऐसा र्हं मध्यमें लिखना चाहिये। उस र्हं के चारों ओर ब्रह्मस्वर अर्थात् सोलह स्वर लिखने चाहिये। इतना सब तो बीचकी कर्णिकामें लिखना चाहिये। फिर उस कर्णिकाके चारों ओर तीन वलय वा घेरा देकर उसके बाहर चारों दिशाओंमें और चारों विदिशाओंमें आठ संधियां बनाकर उन संधियोंके मध्यमें अष्ट दल आकारका कमल बनाना चाहिये। उन अष्ट दलोंमें अनुक्रमसे अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः, क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स ह ळ क्ष, इस क्रमसे लिखना चाहिये। तथा इन्हीं दलोंमें सोलह स्वरोंमेंसे प्रत्येक दलमें दो दो स्वर लिखना चाहिये। तथा इन्हीं अष्ट दलोंके अंतभागमें अनाहत मंत्र अर्थात ओंकर सहित अनाहत मंत्र लिखना चाहिये। तथा उन आठों दलोंके मध्यमें

जो आठ संधियां हैं उनमें तत्त्वसे सुशोभित करना चाहिये। "णमो अरहंताणं" इस मंत्रको तत्त्व कहते हैं अर्थात् आठों संधियोंमें "णमो अरहंताणं" लिखना चाहिये। फिर तीन वलय देकर भूममंडलसे वेष्ठित करना चाहिये। फिर क्षितिवीज और इन्द्रायुध लिखना चाहिये। इस प्रकार यंत्र रचनाकर सिद्धचक्रका ध्यान करना चाहिये। जो जीव इस सिद्धचक्रका ध्यान करता है वह श्रेष्ठ मोक्षपदको प्राप्त करता है। यह सिद्धचक्र देव शत्रुरूपी हाथियोंको जीतनेके लिये सिंहके समान है, यह सिद्धचक्रकी विधि है सो अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। सिद्धचक्र यंत्र पृष्ठ १८३ (क) में देखो)

१५८। चर्चा एकसौ अट्ठावनवीं।

शांतिचक्र यंत्रका स्वरूप क्या है ?

समाधान—इसका समुच्चय स्वरूप तो पूजनके वर्णनमें पहले लिख ही चुके हैं। अब इसका विशेष स्वरूप यंत्रोद्धारके द्वारा लिखते हैं।

पहलेके समान वीचमें एक कर्णिका लिखनी चाहिये। फिर वलय देकर उसके बाहर चार दिशा और चारों विदिशाओंमें अष्ट दलाकार कमल बनाना चाहिये। फिर उसके बाहर वलय देकर षोडश दलका कमल बनाना चाहिये। फिर उसके बाहर वलय देकर चौवीस दलका कमल बनाना चाहिये। फिर उसके बाहर वलय देकर बत्तीस दलका कमल बनाना चाहिये। उसके बाहर वलय देकर पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर इन चारों दिशाओंमें भद्रके आकारके चार द्वार वा दरवाजे बनाना चाहिये। फिर एक एक द्वारके दोनों ओर तीन तीन त्रिशूलाकार वज्र लिखना चाहिये। इस प्रकार चारों ओरके उन आठ त्रिशूलोंके चौवीस क्षोभ करना चाहिये। फिर चारों विदिशाओंके खलके बाहर दो दो अलग क्षितिमंडलके लिये त्रिशूलाकार वज्र बनाना चाहिये और उसके आठ वज्र लिखना चाहिये। इसप्रकार क्षिति मंडल करि सहित शांतिचक्र यंत्रका उद्धार करना चाहिये।

---

१ अनाहत मंत्रका स्वरूप—

उ विन्द्वाकार हरोर्ध्व रेफ विन्द्वानवाक्षरम्। मालाधःस्यन्दिपीयूषविन्दुं विदुरनाहतम्॥

उं अनुस्वार ईकार ऊर्ध्वरकार हकार हकार निम्नरकार अनुस्वार ईकार। इन नौ अक्षरोंसे अनाहत मंत्र बनता है।

ऊर्ध्वाधोरेफसंरुद्धं सपरं विंदुलांछितम्। अनाहतयुतं मंत्रम्॥

सबसे पहले कर्णिकाके मध्यभागमें "ओं ह्रीं अर्हद्भ्यो नमः" यह मंत्र लिखना चाहिये फिर उसी कर्णिकामें उस मंत्रके पूर्वकी ओर "ओं ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः" यह मंत्र लिखना चाहिये फिर उसकी दक्षिण दिशामें 'ओं ह्रीं सूरिभ्यो नमः' लिखना चाहिये। पश्चिमकी ओर "ओं ह्रीं पाठकेभ्यो नमः" लिखना चाहिये। उत्तरकी ओरके दलमें 'ओं ह्रीं सर्वसाधुभ्यो नमः' लिखना चाहिये। तदनंतर उसी कर्णिकामें चार विदिशाओंके चार दलोंमेंसे अग्निकोणके दलमें "ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनाय नमः" नैऋत कोणमें "ओं ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय नमः" वायव्यकोणमें "ओं ह्रीं सम्यक्चारित्राय नमः" और ईशान कोणमें "ओं ह्रीं सम्यक्तपसे नमः" लिखना चाहिये यह कर्णिकामें बने हुए नौ कोठोंका उद्धार है। इस कर्णिकाके बाहर वलयके बाहर जो अष्ट दलाकार कमल हैं उसमेंसे पूर्वके दलमें "ओं ह्रीं जयायै स्वाहा" दक्षिणके दलमें "ओं ह्रीं विजयायै स्वाहा" पश्चिमके दलमें "ओं ह्रीं अजितायै स्वाहा" उत्तरके दलमें "ओं ह्रीं अपराजितायै स्वाहा" लिखना चाहिये। फिर अग्निकोणमें "ओं ह्रीं जभायै स्वाहा" नैऋत कोणमें "ओं ह्रीं मोहायै स्वाहा" वायव्य कोणमें "ओं ह्रीं स्तंभायै स्वाहा" तथा ईशान कोणमें "ओं ह्रीं स्तंभिन्यै स्वाहा" लिखना चाहिये इन सब मंत्रोंको प्रणव मायबीज पूर्वक होमांत लिखना चाहिये। इसप्रकार कर्णिकाके बाहरका अष्टदल कमल भर देना चाहिये।

उसके बाहर वलयके बाद सोलह दलका कमल है सो उसमें पूर्व दिशासे प्रारंभ कर अनुक्रमसे सोलह विद्या देवियोंके नाम लिखना चाहिये। यथा "ओं ह्रीं रोहिण्यै स्वाहा' ओं ह्रीं प्रज्ञप्त्यै स्वाहा इसप्रकार सोलह दलोंमें सोलह विद्यादेवियोंको स्थापन करना चाहिये। इसप्रकार सोलह दल कमलको भर देना चाहिये।

तदनंतर उस सोलह दल कमलके बाहर जो चौवीस दलका कमल है उसमें पूर्वदिशासे प्रारंभ कर अनुक्रमसे चौवीस शासन देवियोंको स्थापन करना चाहिये। यथा—'ओं ह्रीं चक्रेश्वरीदेव्यै स्वाहा' इसप्रकार चक्रेश्वरीसे लेकर सिद्धायनी पर्यंत चौवीसों शासनदेवियोंको स्थापन करना चाहिये। इसप्रकार चौवीस दल कमलको भर देना चाहिये।

---

१ ओं ह्रीं रोहिण्यै स्वाहा १ ओं ह्रीं प्रज्ञप्त्यै स्वाहा २ ओं ह्रीं वज्रशृंखलायै स्वाहा ३ ओं ह्रीं वज्रांकुशायै स्वाहा ४। ओं ह्रीं अप्रतिचक्रायै स्वाहा। ५ ओं ह्रीं पुरुषदत्तायै स्वाहा ६। ओं ह्रीं काल्यै स्वाहा ७। ओं ह्रीं महाकाल्यै स्वाहा ८ ओं ह्रीं गांधार्यै स्वाहा ९ ओं ह्रीं गौर्यै स्वाहा १० ओं ह्रीं ज्वाला-मालिन्यै स्वाहा ११ ओं ह्रीं वैरोटयै स्वाहा १२ ओं ह्रीं अच्युतायै स्वाहा १३ ओं ह्रीं अपराजितायै स्वाहा १४। ओं ह्रीं मानसीदेव्यै स्वाहा। १५ ओं ह्रीं महामानसी देव्यै स्वाहा

२ ओं ह्रीं चक्रेश्वरी देव्यै स्वाहा १ ओं ह्रीं रोहिण्यै स्वाहा २ ओं ह्रीं प्रज्ञप्त्यै स्वाहा। ३ ओं ह्रीं वज्रशृंखलायै स्वाहा ४ ओं ह्रीं पुरुषदत्तायै स्वाहा।

चौवीस दल कमलके बाहर वलयके बाद बत्तीस दल कमल है सो उसमें भी पूर्वदिशासे प्रारंभ कर अनुक्रमसे बत्तीस इन्द्रोंको स्थापन करना चाहिये। इन सब देवियोंको तथा इन्द्रोंको ब्रह्म माया बीजसे प्रारंभ कर होमांत (जिसके आदिमें ओं ह्रीं यह ब्रह्म और मायाबीज हो तथा मध्यमें चतुर्थी विभक्ति सहित देवी वा इन्द्रका नाम हो और अंतमें होमांत अर्थात् होमके अंतमें कहे जाने वाला स्वाहा शब्द हो इसप्रकार सब देव देवियोंको स्थापन करना चाहिये) लिखना चाहिये। यथा–'ओं ह्रीं असुरेंद्राय स्वाहा' इसप्रकार बत्तीसो इन्द्रोंको स्थापन करना चाहिये और इसप्रकार बत्तीस दल कमलको भर देना चाहिये।

तदनंतर चारों दिशाओंके चारों द्वारोंके दोनों ओर लिखे हुए चौवीस वज्रोंमें गोमुख आदि चौवीसों यक्षोंको वेद शक्ति बीज सहित तथा होमांत लिखना चाहिये। यथा–'ओं ह्रीं गोमुखयक्षाय स्वाहा' इसप्रकार पूर्वदिशासे प्रारंभ कर पश्चिमकी ओर होते हुए अनुक्रमसे लिखना चाहिये। इसप्रकार एक एक दिशामें छह छह यक्ष लिखना चाहिये।

---

५ ओं ह्रीं मनोवेगायै स्वाहा। ६ ओं ह्रीं काल्यै स्वाहा ७ ओं ह्रीं महाकाल्यै स्वाहा ८ ओं ह्रीं ज्वालामालिन्यै स्वाहा ९ ओं ह्रीं मानव्यै स्वाहा १० ओं ह्रीं गौर्यै स्वाहा ११ ओं ह्रीं गांधार्यै स्वाहा १२ ओं ह्रीं वैरोट्यै स्वाहा १३ ओं ह्रीं अनन्तमत्यै स्वाहा १४ ओं ह्रीं मानसीदेव्यै स्वाहा १५ ओं ह्रीं महा-मानसी देव्यै स्वाहा १६ ओं ह्रीं जयायै स्वाहा १७ ओं ह्रीं विजयायै स्वाहा १८ ओं ह्रीं अपराजितायै स्वाहा १९ ओं ह्रीं बहुरूपिण्यै स्वाहा २० ओं ह्रीं चामुंडायै स्वाहा २१ ओं ह्रीं कुष्माडिन्यै स्वाहा २२ ओं ह्रीं पद्मावत्यै स्वाहा २३ ओं ह्रीं सिद्धायन्यै स्वाहा २४।

१–ओ ह्रीं असुरेन्द्राय स्वाहा १ ओं ह्रीं नागेन्द्राय स्वाहा २ ओं ह्री विद्युदिंद्राय स्वाहा ३ ओ ह्रीं सुपर्णेन्द्राय स्वाहा ४ ओं ह्रीं अग्नींद्राय स्वाहा ५ ओं ह्रीं वातेन्द्राय स्वाहा ६ ओं ह्रीं स्तनितेन्द्रायस्वाहा ७ ओं ह्रीं उदधीन्द्राय स्वाहा ८ ओं ह्रीं द्वीपेन्द्राय स्वाहा ९ ओं ह्रीं दिगिन्द्राय स्वाहा १० ओं ह्रीं किन्नरेन्द्राय स्वाहा ११ ओं ह्रीं किंपुरुषे- न्द्राय स्वाहा १२ ओं ह्रीं महोरगेन्द्राय स्वाहा १३ ओं ह्रीं गंधर्वेन्द्राय स्वाहा १४ ओं ह्रीं यक्षेन्द्राय स्वाहा १५ ओं ह्रीं राक्षसेन्द्राय स्वाहा १६ ओं ह्रीं भूतेन्द्राय स्वाहा १७ ओं ह्रीं पिशाचेन्द्राय स्वाहा १८ ओ ह्रीं चन्द्रेन्द्राय स्वाहा १९ ओं ह्रीं आदि-त्येन्द्राय स्वाहा २० ओं ह्रीं सौधर्मेन्द्राय स्वाहा २१ ओं ह्रीं ईशानेन्द्राय स्वाहा २२ ओं ह्रीं सानत्कुमारेन्द्राय स्वाहा २३ ओं ह्रीं माहेन्द्राय स्वाहा २४ ओं ह्रीं ब्रह्मेन्द्राय स्वाहा २५ ओं ह्रीं लान्तवेंद्राय स्वाहा २६ ओं ह्रीं शुक्रेन्द्राय स्वाहा २७ ओं ह्रीं शतारेन्द्राय स्वाहा २८ ओं ह्रीं आनतेन्द्राय स्वाहा २९ ओं ह्रीं प्राणतेन्द्राय स्वाहा ३० ओं ह्रीं आरणेन्द्राय स्वाहा ३१ ओं ह्रीं अच्युतेन्द्राय स्वाहा ३२।

२–ओं ह्रीं गोमुखाय स्वाहा १ ओं ह्रीं महायक्षाय स्वाहा २ ओं ह्रीं त्रिमुखाय स्वाहा ३ ओं ह्रीं यक्षेश्वराय स्वाहा ४ ओं ह्रीं तुंबुरवे स्वाहा ५

तदनंतर पूर्वादिक चारों दिशाओंमें तथा चारों विदिशाओंमें तथा पूर्व और पश्चिममें प्रणव माया बीज आदि होमांत युक्त इन्द्रादिक दश दिक्पालोंको स्थापन करना चाहिये। यथा-'ओं ह्रीं इन्द्राय स्वाहा' पूर्वे, 'ओं ह्रीं अग्नीन्द्राय स्वाहा' आग्नेय्याम्, 'ओं ह्रीं यमाय स्वाहा' दक्षिणे इसप्रकार क्रमसे लिखना चाहिये।

तदनंतर पूर्वादिक चारों दिशाओं तथा चारों विदिशाओंमें और दुबारा पूर्व दिशामें इस प्रकार नौ स्थानोंमें प्रणवपूर्वक स्वाहा पर्यंत आदित्यादिक नव ग्रहोंको लिखना चाहिये और उनको पूर्व दिशासे प्रारंभ कर अनुक्रमसे पश्चिमकी ओर घूमते हुए पूर्व दिशा तक लिखना चाहिये।

फिर सबके बाहर 'ओं ह्रीं आं क्रों अनावृताय स्वाहा' यह मंत्र लिखकर अनावृत यक्षको स्थापन करना चाहिये।

तदनंतर भूमंडल देकर अष्ट वज्र सहित क्षिति बीज और अष्ट इन्द्रायुधके बीजकरि सहित लिखना चाहिये।

इस प्रकार यह यंत्रविधि है। इसप्रकार यंत्र बनाकर पहिले लिखी विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये।

(शांतिचक्र पृष्ठ १८६ (क) में देखो)

यह महायंत्र धर्म अर्थ काम मोक्षकी सिद्धि करनेवाला है इसलिये इसकी नित्य पूजन करना चाहिये। यह सामान्य शांतिचक्र है बृहत्शांतिचक्र और है, जो बहुत बडा है सो अन्य शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये। उसमें इससे भी बहुत विशेष रचना है।

ओं ह्रीं कुसुमाय स्वाहा ६ ओ ह्रीं वरनंदिने स्वाहा ७ ओं ह्रीं विजयाय स्वाहा ८ ओं ह्रीं अजिताय स्वाहा ९ ओं ह्रीं ब्रह्मेश्वराय स्वाहा १० ओं ह्रीं कुमाराय स्वाहा ११ ओं ह्रीं षण्मुखाय स्वाहा १२ ओं ह्रीं पातालाय स्वाहा १३ ओं ह्रीं किन्नराय स्वाहा २४ ओं ह्रीं किंपुरुषाय स्वाहा १५ ओं ह्रीं गरुडाय स्वाहा १६ ओं ह्रीं गंधर्वाय स्वाहा १७ ओं ह्रीं महेन्द्राय स्वाहा १८ ओं ह्रीं कुबेराय स्वाहा १९ ओं ह्रीं वरुणेन्द्राय स्वाहा २० ओं ह्रीं विद्युत्प्रभाय स्वाहा २१ ओं ह्रीं सर्वाण्हाय स्वाहा २२ ओं ह्रीं धरणेन्द्राय स्वाहा २३ ओं ह्रीं मातंगाय स्वाहा २४।

१-ओं ह्रीं इन्द्राय स्वाहा १ ओं ह्रीं अग्नये स्वाहा २ ओं ह्रीं यमाय स्वाहा ३ ओं ह्रीं नैऋताय स्वाहा ४ ओं ह्रीं वरुणाय स्वाहा ५ ओं ह्रीं पवनाय स्वाहा ६ ओं ह्रीं कुबेराय स्वाहा ७ ओं ह्रीं ईशानाय स्वाहा ८ ओं ह्रीं धरणेन्द्राय स्वाहा ९ ओ ह्रीं सोमाय स्वाहा १०।

२-ओं ह्रीं आदित्याय स्वाहा १ ओं ह्रीं सोमाय स्वाहा २ ओं ह्रीं भौमाय स्वाहा ३ ओं ह्रीं बुधाय स्वाहा ४ ओं ह्रीं बृहस्पतये स्वाहा ५ ओं ह्रीं शुक्राय स्वाहा ६ ओं ह्रीं शनैश्चराय स्वाहा ७ ओ ह्रीं राहवे स्वाहा ८ ओं ह्रीं केतवे स्वाहा ९।

यह यंत्र अनेक गुणोंसे सुशोभित है यह यंत्र पूजा करनेवालेके अनेक विघ्न समूहोंको, अनेक क्षुद्रोपद्रवोंको, अनेक परकृत उपद्रवोंको, अनेक क्षाम डामरादिक कृत्रिम दोषोंको, अनेक अरि, मारी, रावल चौरादिक कृत घोर उपद्रवोंको, समस्त अरिष्टोंको अपमृत्युको, डाकिनी शाकिनी तथा आदित्यादिक दुष्ट ग्रहोंको, भूत वेताल राक्षस पिशाच आदिकोंको तथा स्थावर जंगम विषादिकोंको और अनेक दुर्व्याधियोंको दूर करता है, अनेक प्रकारके दुःख समूहोंको दूर करता है तथा अनेक मनोवांछित सुखोंको प्राप्त कराता है। यह यंत्र महापुण्यका कारण है, ऐसा जानकर इस यंत्रकी नित्य पूजन करनी चाहिये। यह यंत्र भाग्यहीनोंको अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये बुद्धिमानोंको इस ऊपर लिखे मंत्रके महत्त्वको समझ लेना चाहिये।

१५९। चर्चा एकसौ उनसठवीं।

कलि कुंड दंड स्वामीका यंत्र और उसकी विधि क्या है।

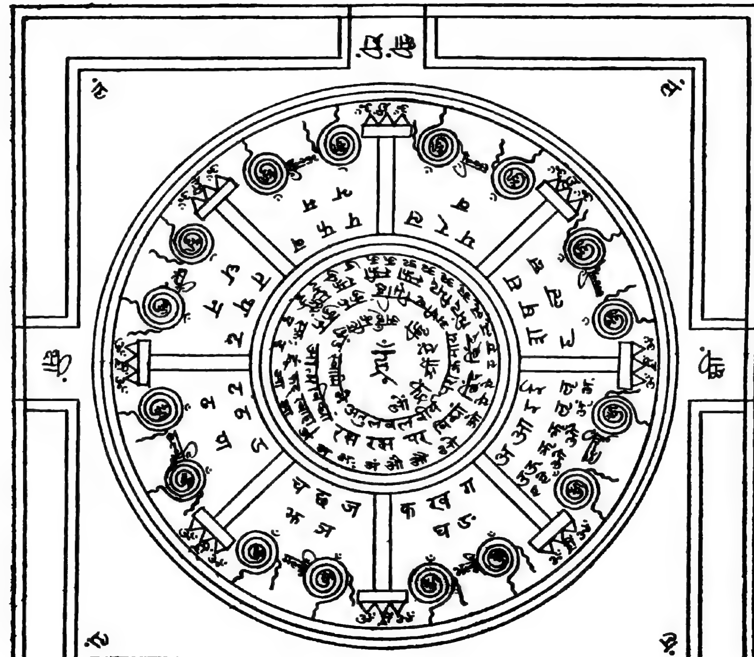
समाधान— सबसे पहले कलि कुंड दंड स्वामीका अर्थ लिखते हैं। कलि शब्दका अर्थ क्लेश है वह अनेक प्रकार है आधि व्याधिसे उत्पन्न होनेवाली अर्थात् मन और शरीरसे होनेवाली पीडासे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके क्लेश क्लेश कहलाते हैं तथा कुंड शब्दका अर्थ समूह है। कलि अर्थात् क्लेशोंके कुंड अर्थात् समूहको कलिकुंड कहते हैं उन क्लेशोंके समूहको दूर करनेके लिये नाश करनेके लिये जो दंडके समान हो उसको कलिकुंडदंड कहते हैं। उस कलिकुंड दंडके स्वामी श्रीपार्श्वनाथको कलिकुंडदंडस्वामी कहते हैं। भावार्थ–अनेक प्रकारके क्लेशोंके समूहको दूर करनेके लिये भगवान पार्श्वनाथ समर्थ हैं। उन्हींसे संबंध रखनेवाला यह कलिकुंडदंडस्वामीका यंत्र है। उसीको आगे लिखते हैं। इसके लिये नीचे लिखा काव्य है—

हूंकारं ब्रह्मरुद्धं स्वरपारकलितं वज्ररेखाष्टभिन्नं, वज्रस्याग्रांतराले प्रणवमनुपमानाहतं मासृगं च।
वर्णान् तोयान् सपिंडान् ह भ म र घ झ सखान् वेष्टयेत्तद्बदंते, वज्राणां यंत्रमेतत् परमसुशुभं दुष्टविद्याविनाशम्।

अर्थ—एतत् अर्थात् यह यंत्र परमोत्कृष्ट है और बहुत ही शुभ करनेवाला है। दुष्ट जनोंके द्वारा उत्पन्न हुई दुष्ट विद्याओंका नाश करनेवाला है। भावार्थ–परशत्रुकृत आकर्षण, स्तम्भन, उच्चाटन, मोहन, वशीकरण, मारण इन छहो प्रकारकी दुष्ट विद्याओंका नाश करनेवाला है। इस यंत्रका आराधन करनेसे दूसरोंकी (शत्रुओंकी) की हुई दुष्ट विद्याओंका खंडन होता है तथा अभीष्ट फलकी सिद्धि होती है। आगे उसी यंत्रको बतलाते हैं—

सबसे पहले मध्यकी कर्णिकामें 'हूं' ऐसा हूंकार लिखना चाहिये। उसके पास चारों ओर 'ओं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं अर्हं कलिकुण्ड-दंडस्वामिने अतुलबलवीरपराक्रमाय अभीष्टसिद्धिं कुरु कुरु आत्मविद्यां रक्ष रक्ष परविद्यां छिंद छिंद भिंद भिंद स्फां स्फीं स्फूं स्फः हूं फट् स्वाहा' यह मूलमंत्र लिखना चाहिये उसको व्रजरुद्ध अर्थात चौदह स्वरोंसे वेष्ठित करना चाहिये। फिर सोलह स्वरोंसे वलयाकार बनाना चाहिये फिर तीन वलय देकर उसके बाहर चारों दिशा और चारों विदिशाओंमें अलग अलग आठ वज्र लिखना चाहिये। उन वज्रोंके वीचमें दो दो प्रणव वीजको अनाहतसे घेरकर उसको ह्रींकारसे वेष्ठित करना चाहिये। अर्थात् एक एक कोठेमें दो दो जगह ओं लिखकर उसके चारों ओर अनाहत बनाकर उस अनाहतको ह्रींकारसे वेष्टित करना चाहिये। तथा उन वज्रोंके बीच बीचमें अनुक्रमसे अकारादिक स्वर, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यकरादिक अंतस्थ और शकारादिक ऊष्म लिखने चाहिये। अर्थात् पहले कोठेमें अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः लिखना चाहिये। दूसरे कोठेमें क ख ग घ ङ तीसरे कोठेमें च छ ज झ ञ चौथेमें ट ठ ड ढ ण पांचवेंमें त थ द ध न छठेमें प फ ब भ म सातवेंमें य र ल व और आठवेंमें श ष स ह ळ क्ष लिखना चाहिये। फिर प्रत्येक कोठेमें जो दो दो अनाहत लिखे हैं उनके वीचमें अर्थात् आठों वज्रोंमेंसे दो दो वज्रोंके मध्य भागमें हकारादिक पिंडाष्टक लिखना चाहिये अर्थात् पहले कोठेमें हकार मकार लकार वकार ऊर्ध्व रकार यकार अधो रकार अर्द्ध चंद्राकार कलायुक्त अनुस्वार नीचे दीर्घ ऊकार इन सब अक्षरोंसे मिला हुआ हकार लिखना चाहिये। उसका स्वरूप "हृम्ल्व्र्यूँ" इसप्रकार है। दूसरे कोठेमें हकारकी जगह भकार लिखना बाकीके अक्षर ज्योंके त्यों मिला देना चाहिये। इन सबके मिलानेसे उसका स्वरूप 'भ्म्ल्व्र्यूँ' ऐसा बन जाता है। तीसरे कोठेमें हकारकी जगह मकार लिखकर उसमें सब अक्षर मिलाकर लिखना चाहिये उसका स्वरूप 'म्म्ल्व्र्यूँ' एसा होता है। चौथे कोठेमें हकारकी जगह रकार लिखकर उसमें अन्य अक्षर ज्योंके त्यों मिला कर लिखना चाहिये उसका स्वरूप 'र्म्ल्व्र्यूँ' एसा होता है। पांचवें कोठेमें हकारकी जगह घकार लिखकर उसमें बाकीके अक्षर मिलाकर लिखना चाहिये उसका स्वरूप 'घ्म्ल्व्र्यूँ' ऐसा होता है। छठे कोठेमें पहला अक्षर झकार लिखकर तथा बाकीके अक्षर उसमें मिलाकर लिखना चाहिये। उसका स्वरूप 'झ्म्ल्व्र्यूँ' ऐसा होता है। सातवें कोठेमें पहला अक्षर सकार लिखना चाहिये तथा बाकीके अक्षर मिलाकर "स्म्ल्व्र्यूँ" ऐसा वीजाक्षर बनाकर लिखना चाहिये। आठवें कोठेमें पहला अक्षर ख लिखकर उसमें सब अक्षर मिलाना चाहिये उसका स्वरूप 'ख्म्ल्व्र्यूँ' ऐसा होता है। इस प्रकार आठों कोठोंमें अनाहतोंके वीचमें ये वीजाक्षर लिखने चाहिये।

कलिकुंडदंड यंत्र



फिर तीन वलय देकर क्षितिमंडलसे वेष्ठित करना चाहिये। उसमें चारों दिशाओंमें चार क्षिति बीज और चारों कोणोंमें चार इन्द्रायुध बीजसे वेष्ठित करना चाहिये। इस प्रकार बनानेसे यह कलि कुंडदंडयंत्र बन जाता है।

इस यंत्रका उद्धार इस प्रकार है। कर्णिकामें स्थित जो ओं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं अर्हं इत्यादि मूल मंत्रसे पंचोपचारी पूजा करनी चाहिये। फिर एकसौ आठ बार सुगंधित पुष्पोंसे अथवा रक्त कंडीरके पुष्पोंसे जाप करना चाहिये।

कलिकुंडदंड यंत्र पृष्ठ १८९ (क) में देखो

इस यंत्रसे समस्त अभीष्ट पदार्थोंकी सिद्धि होती है तथा परकृत समस्त दुष्ट विद्याओंका नाश होता है।

१६० । चर्चा एकसौ साठवीं।

ऋषिमंडलका स्वरूप क्या है तथा उसका आराधन किस प्रकार है?

समाधान—आगे ऋषिमंडल यंत्रका स्वरूप और आराधन कहते हैं। यह यंत्र सोना चांदी कांसा तांबा अथवा भोजपत्र पर लिखना चाहिये। सबसे पहले मध्यमें गोल कर्णिका बनानी चाहिये। उसमें द्विगुण (दो दो लकीरोंके बीचमें) 'ह्रीं' ऐसा ह्रींकार बनाना चाहिये उस ह्रींकारमें नीचे लिखे अनुसार अनुक्रमसे ऋषभ से लेकर वर्द्धमान पर्यंत चौवीसों तीर्थंकरोंके नाम चतुर्थी विभक्तिके साथ तथा नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये। उनका क्रम इस प्रकार है।

'ऋषभाजितशंभवाभिनन्दनसुमतिसुपार्श्वशीतलश्रेयोविमलानन्तधर्मशान्तिकुंथ्वरेभ्यो नमः' इस प्रकार इन चौदह तीर्थंकरोंके नाम तो ह्रींकारके हकारमें लिखना चाहिये तथा "वर्द्धमानेभ्यो नमः' यह ह्रींकारके नीचे लगे हुए रेफमें लिखना चाहिये। फिर 'पद्मप्रभवासुपूज्याभ्यां नमः' यह ह्रींकारके मस्तकपर लिखना चाहिये फिर 'चन्द्रप्रभपुष्पदन्ताभ्यां नमः' यह कलामें लिखना चाहिये तथा 'नेमिमुनिसुव्रताभ्यां नमः' यह विंदुमें लिखना चाहिये। फिर पार्श्वनाथमल्लिभ्यां नमः' यह ईकारमें लिखना चाहिये। फिर 'नमिभ्यो नमः' यह रेफके आगे उससे लगता हुआ लिखना चाहिये। इस प्रकार कर्णिकाको पूराकर फिर उसके आगे वलय देकर उसके बाहर आठ दलका कमल बनाना चाहिये। उस कमलके आठों पत्रोंमें पूर्व दिशासे प्रारंभ कर बांई ओर होते हुए अनुक्रमसे अकरादिक आठों वर्गोंको पिंडाष्टकके साथ लिखना चाहिये अर्थात् पूर्व दिशाके पहले दलमें अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः इन सोलह स्वरोंको लिखकर 'ह्म्ल्व्र्यूँ' यह "ह म ल व ऊर्ध्वरकार यकार अधोरकार अर्धचंद्राकार अनुस्वार

और नीचे 'ऊकार' इन सब अक्षरोंसे मिला हुआ वर्ण लिखना चाहिये। फिर बाईं ओरके दूसरे पत्रमें 'क ख ग घ ङ' इन कवर्गके पांचों अक्षरोंको लिखकर 'भ्म्ल्व्र्यूँ' इस भकारादि पिंडाष्टकको लिखना चाहिये। फिर तीसरे पत्रमें चवर्ग अर्थात् 'च छ ज झ ञ' लिखकर 'म्म्ल्व्र्यूँ' यह मकारादि पिंडाष्टक लिखना चाहिये। फिर चौथे पत्रमें टवर्ग अर्थात् 'ट ठ ड ढ ण' लिखकर र्म्ल्व्र्यूँ' इस रकारादि पिंडाष्टकको लिखना चाहिये। पांचवें पत्रमें तवर्ग अर्थात् 'त थ द ध न' लिखकर 'घ्म्ल्व्र्यूँ' इस घकारादि पिंडाष्टकको लिखना चाहिये। छठे पत्रमें पवर्ग अर्थात् 'प फ ब भ म' लिखकर 'झ्म्ल्व्र्यूँ' यह झकारादि पिंडाष्टक लिखना चाहिये। सातवें पत्रमें यकारादि अर्थात् 'य र ल व' लिखकर 'स्म्ल्व्र्यूँ' इस सकारादि पिंडाष्टकको लिखना चाहिये। फिर आठवें पत्रमें श ष स ह लिख कर 'ख्म्ल्व्र्यूँ' यह खकरादिक पिंडाष्टक लिखना चाहिये। इस प्रकार आठों पत्रोंको भर देना चाहिये।

उसके बाद बलय देकर फिर आठ दलका कमल बनाना चाहिये उन आठों पत्रोंमें वेद मायाबीजपूर्वक चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्दके साथ अलग अलग अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुतत्त्वदृष्टिसम्यग्ज्ञानचारित्रांन लिखना चाहिये। उनका क्रम इस प्रकार है। पूर्व दिशाके पहले दलमें 'ओं ह्रीं अर्हद्भ्यो नमः' बाईं ओर दूसरे दलमें 'ओं ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः' तीसरे पत्रमें 'ओं ह्रीं सूरिभ्यो नमः' चौथे दलमें 'ओं ह्रीं पाठकेभ्यो नमः' पांचवें दलमें 'ओं ह्रीं सर्वसाधुभ्यो नमः' छठे पत्रमें ओं ह्रीं तत्त्वदृष्टिभ्यो नमः' सातवें पत्रमें 'ओं ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय नमः' आठवें पत्रमें 'ओं ह्रीं सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः लिखना चाहिये। इस प्रकार दूसरा आठ दलका कमल भी भर देना चाहिये।

फिर उसके बाद वलय देकर सोलह दलका कमल बनाना चाहिये। उसमें अनुक्रमसे ब्रह्म मायाबीजादि चतुर्थीयुक्त नमः शब्दके साथ भावनेन्द्र आदि सोलह इन्द्र देवोंको लिखना चाहिये। उनका नाम और क्रम इसप्रकार है। पूर्वदिशाके पहिले पत्रमें 'ओं ह्रीं भावनेन्द्राय नमः' लिखना चाहिये फिर बाईं ओरके दूसरे दलमें 'ओं ह्रीं व्यन्तरेन्द्राय नमः', तीसरे पत्रमें 'ओं ह्रीं ज्योतिष्केन्द्राय नमः' लिखना चाहिये। चौथे दलमें 'ओं ह्रीं कल्पेन्द्राय नमः', पांचवें दलमें 'ओं ह्रीं श्रुतावधिभ्यो नमः', छठे पत्रमें 'ओं ह्रीं देशावधिभ्यो नमः', सातवें पत्रमें 'ओं ह्रीं परमावधिभ्यो नमः', आठवें पत्रमें 'ओं ह्रीं सर्वावधिभ्यो नमः', नौवें दलमें ओं ह्रीं बुद्धिऋद्धिप्राप्तेभ्यो नमः', दशवें कोठेमें 'ओं ह्रीं सर्वौषधर्द्धिऋद्धिप्राप्तेभ्यो नमः' लिखना चाहिये, ग्यारहवें दलमें 'ओं ह्रीं अनंतबलर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः', बारहवें पत्रमें 'ओं ह्रीं तपर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः', तेरहवें दलमें 'ओं ह्री रसर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः', चौदहवें पत्रमें

'ओं ह्रीं विक्रियर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः', पन्द्रहवें कोठेमें 'ओं ह्रीं क्षेत्रर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः' और सोलहवें दलमें 'ओं ह्रीं अक्षीणमहानसर्द्धिप्राप्तेभ्यो नमः' लिखना चाहिये। इसप्रकार सोलह दल कमलको पूर्ण कर देना चाहिये।

उससे बाहर वलय देकर चौवीस दलका कमल बनाना चाहिये और उसमें पूर्व दिशासे प्रारंभ कर बांई ओर होते हुए अनुक्रमसे चौवीस देवताओंको प्रणव शक्तिवीज चतुर्थी विभक्तिसहित नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये। उन देवता वा देवियोंके नाम ये हैं। पहले दलमें 'ओं ह्रीं श्रियै नमः' दूसरे दलमें 'ओं ह्रीं ह्रीदेव्यै नमः' तीसरेमें 'ओं ह्रीं धृतये नमः' चौथेमें 'ओं ह्रीं लक्ष्म्यै नमः' पांचवेंमें 'ओं ह्रीं गौर्यै नमः' छठेमें 'ओं ह्रीं चण्डिकायै नमः' सातवेंमें 'ओं ह्रीं सरस्वत्यै नमः' आठवेंमें ओं ह्रीं जयायै नमः' नौवेंमें 'ओं ह्रीं अंबिकायै नमः' दशवेंमें 'ओं ह्रीं विजयायै नमः' ग्यारहवेंमें 'ओं ह्रीं क्लिन्नायै नमः' बारहवेंमें 'ओं ह्रीं अजितायै नमः' तेरहवेंमें 'ओं ह्रीं नित्यायै नमः' चौदहवेंमें 'ओं ह्रीं मदद्रवायै नमः' पंद्रहवेंमें 'ओं ह्रीं कामांगायै नमः' सोलहवेंमें 'ओं ह्रीं कामबाणायै नमः' सत्रहवेंमें 'ओं ह्रीं सानंदायै नमः' अठारवेंमें 'ओं ह्रीं नंदिमालिन्यै नमः' उन्नीसवेंमें ओं ह्रीं मायायै नमः' बीसवेंमें 'ओं ह्रीं मायाविन्यै नमः' इकईसवेंमें 'ओं ह्रीं रौद्रायै नमः' बाईसवेंमें 'ओं ह्रीं कलायै नमः' तेईसवेंमें 'ओं ह्रीं काल्यै नमः' चौबीसवेंमें 'ओं ह्रीं कलिप्रियायै नमः'। इसप्रकार पूर्व दिशासे लेकर बांई ओरकी गतिसे लिखकर पूर्ण करना चाहिये। फिर माया वीजका त्रिकोण अर्थात् तीन वलय देकर तथा भूमंडलसे वेष्ठित कर इसका आराधन करना चाहिये।

इसके आराधन करनेकी विधि यह है। सबसे पहले 'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो ह्रीं नमः' इस मूल मंत्रसे जल चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल और अर्घसे पूजा करनी चाहिये। तथा इसी यंत्रके ऊपर एकसौ आठ बार इसी मूलमंत्रके द्वारा रक्त करवीर अर्थात् लाल कनेर आदि सुगंधित पुष्पोंसे जप करना चाहिये। यदि इसकी सिद्धि करना हो तो इसकी सिद्धिके लिये ब्रह्मचर्यव्रत धारण करना चाहिये प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये और आचाम्ल (केवल मांड भात खाना) तप करना चाहिये। इतना सब करते हुये आठ हजार जप करना चाहिये तथा इस मंत्रके आगे होमांत अर्थात् स्वाहा शब्द और लगाना चाहिये। इसप्रकार करनेसे इसकी सिद्धि होती है जिससे समस्त सिद्धियोंको प्राप्त होता है।

जो पुरुष इस यंत्रकी आठ महीने तक सिद्धि करते हैं तीनों समय पूजा करते हैं जप करते हैं ब्रह्मचर्यसहित आचाम्ल आदि तप करते हैं तथा सबके अन्तमें दशांश होम तर्पण मार्जन करते हैं वे निश्चयसे अपने आत्मामें साक्षात् प्रगट हुए श्रीअरहंतबिंबको देखते हैं। तथा ये पुरुष सात आठ भवमें ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं फिर वे संसारमें परिभ्रमण नहीं करते। ऐसा इसका फल है।

इस यंत्रकी सिद्धिसे अनेक प्रकारके विघ्नजाल तथा संसारकी अनेक प्रकारकी आपत्तियां दूर होती हैं तथा इच्छानुसार फल प्राप्त होते हैं। इस यंत्रके माहात्म्यसे सर्प, सर्पिणी, गोनसा, वृश्चिक, काकिनी, डाकिनी, याकिनी, राकिनी, लाकिनी, शाकिनी, हाकिनी, राक्षस, मेषस व्यंतर, देवत, तस्कर, अग्नि, शृंगी, दंष्ट्री, रेपल, पक्षी, मुद्गल, जृंभक, तोयद सिंह, शूकर, चित्रक, हस्ती, भूमिप, शात्रव, ग्रामिण, दुर्जन, व्याधि इत्यादि समस्त दुःख देनेवाले तुरंत ही नष्ट हो जाते हैं तथा वे सब दुष्ट उपद्रव करनेके लिये असमर्थ हो जाते हैं। तथा इस यंत्रके प्रभावसे दुर्जन भूत वेताल पिशाच मुद्गल अग्नि आदि सर्व उपद्रव शांत हो जाते हैं। तथा इस यंत्रको पास रखनेसे युद्धमें, द्वारमें, अग्निके उपद्रवमें जलमें दुर्ग अर्थात् किलेमें, हाथी सिंह आदिके उपद्रवमें श्मशानमें घोर वनमें और अटवीमें स्मरण करनेमात्रसे ही रक्षा होती है और समस्त उपद्रव दूर हो जाते हैं। इसको पास रखनेसे राज्यसे भ्रष्ट हुए लोग राज्यपदको प्राप्त करते हैं किसी पदपे भ्रष्ट हुए जीव अपने पदको प्राप्त करते हैं लक्ष्मीसे भ्रष्ट हुए लक्ष्मीको पाते हैं। भार्यार्थी भार्याको पाते है, पुत्रार्थी पुत्रको पाते हैं और धर्मार्थी धर्मको पाते हैं। इसके सिवाय इसके गुण और भी बहुत हैं सो सब इसके स्तोत्रसे जान लेना चाहिये। इसप्रकार यह ऋषिमंडल यंत्रका उद्धार है। यंत्र पृष्ठ १९२ (क) में देखो।

१६१। चर्चा एकसौ इकसठवीं।

चिंतामणि चक्रका क्या स्वरूप है ?

समाधान—यह यंत्र अरहंतसंबंधी है। इसकी नित्य पूजा, बंदना, स्तवन, सेवा जप करनेसे अभीष्ट फल प्राप्त होता है। तथा जो पुरुष इसकी पूजा बंदना आदि करते हैं वे मुक्तिरूपी लक्ष्मीके वल्लभ होते हैं और मुक्तिके चित्तको रंजायमान वा प्रसन्न करते रहते हैं। उनके वशमें तीनों लोक हो जाता है ऐसा इसका फल है।

आगे उसके बनानेकी विधि लिखते हैं—

सान्तं विन्दूर्ध्वरेफं वहिरपि विलखेदायताष्टाब्जपत्रं,
दिक् क्ष्वीं श्रीं ह्रीं स्मरेन्या स्वभिवशकरणं झ्रौं तथा ब्लौं पुनर्यूः।
वाह्ये ह्रीं ओं नमोऽर्हं दिशि लिखित चतुर्थीवीजकं होमयुक्तं.
मुक्तिश्रीवल्लभोसौ भुवनमपि वशं जायते पूजयेद् यः॥

(अर्थात्—कर्णिकामें ह्रैं लिखकर तीन वलय देवे उसके बाहर आठ दलका कमल बनावे उनमें क्रमसे ऐं क्रौं श्रीं भौं ह्रीं क्लीं ह्रीं यू लिखना चाहिये फिर तीन वलय देकर चारों दिशाओंमें ओं नमोर्हं स्वाहा लिखना चाहिये। इसप्रकार बनानेसे यह चिंतामणि यंत्र बन जाता है जिसकी पूजा करनेवाला मुक्तिरूपी लक्ष्मीका स्वामी होता है और तीनों लोक उसके वशमें हो जाते हैं। इस प्रकार वह चिंतामणि चक्र है सो पूजा करनेवालोंको चिंतामणि रत्नके समान चिंतित पदार्थोंको देता है। इसलिये इसकी नित्य पूजा जप तप ध्यान करना चाहिये।

यह चिंतामणि चक्र और प्रकारसे भी बनता है सो अन्य शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये यह लघु विधि है।

इति चिंतामणि चक्र विधि। यंत्र पृष्ठ १९३ (क) में देखो।

१६२। चर्चा एकसौ बासठवीं।

गणधर वलय यंत्रका स्वरूप तथा आराधन किस प्रकार है।

समाधान—यह गणधर वलयका यंत्र सोने चांदी तथा तांबे आदिके पत्रमें पहले लिखी हुई विधिके अनुसार लिखना चाहिये।

सबसे पहले एक कर्णिका बनानी चाहिये उसमें उलट पलट रूप दो त्रिकोण बनाना चाहिये जिससे कि षट्कोणसा बन जाय फिर उसके बीचमें ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा स्वाहा' यह मंत्र लिखना चाहिये। फिर इसी मंत्रके ऊपर ओं अर्हं झ्वीं क्ष्वीं ह्रीं श्रीं ये बीजाक्षर लिखना चाहिये। फिर छहों कोनोंमें "अप्रति चक्रे फट्" लिखना चाहिये फिर वहांसे उलटकर दाईं ओर "वि च क्रा य स्वाहा" लिखना चाहिये। फिर वलय देकर छह दलका कमल बनाना चाहिये उनके बीच बीचमें संधि रखना। उन छहो दलोंमें छह कुमारिकाओंके नाम लिखना चाहिये अर्थात् पहले दलमें 'ओं श्री' दूसरेमें 'ह्रां ह्री' तीसरेमें 'ह्रीं धृति' चौथेमें 'ह्रूं कीर्ति' पांचवेमें 'ह्रौं बुद्धि' छठेमें 'ह्रः लक्ष्मी' इस प्रकार छहो कोठोंमें छहो कुमारिका देवियोंके नाम लिखना चाहिये तथा उनके मध्यमें 'श्रीं श्रीं' ऐसे बीचके संधिपत्रोंमें लिखना चाहिये।

फिर उसके बाद वलय देकर आठ दलका कमल लिखना चाहिये फिर उसके बाद वलय देकर सोलह दलका कमल लिखना चाहिये फिर उसके बाद वलय देकर चौबीस दलका कमल लिखना चाहिये। फिर उसके बाद वलय देकर बीजयुक्त क्षितिमंडल लिखना चाहिये।

इस प्रकार जो आठ सोलह और चौबीस दल बने हैं उनमें नमः शब्दके साथ अडतालिस ऋद्धियोंको लिखना चाहिये। यथा पहले दलमें ओं ह्रीं र्हं णमो जिणाणं। दूसरे दलमें ओं ह्रीं र्हं णमो ओहि जिणाणं'। तीसरेमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो परमोहिजिणाणं'। चौथेमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो सव्वोहिजिणाणं'। पांचवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं अणंतोहि जिणाणं'। छठेमें 'ओं ह्रीं णमो कोट्ठबुद्धीणं'। सातवेंमें ओं ह्रीं णमो बीजबुद्धीणं'। आठवेंमें 'ओं ह्री र्हं पादानुसारीणं' लिखना चाहिये। यह सब पूर्व दिशासे प्रारंभ कर वांई ओरको लिखते जाना चाहिये। तदनंतर वलयके बाहर सोलह दलोंमेंसे पूर्वकी ओरके पहले दलमें तथा अनुक्रमसे नौवे दलमें 'ओं ह्री र्हं णमो संभिण्ण सोदराणं'। दशवेंमें ओं ह्रीं र्हं णमो पत्तेयबुद्धीणं'। ग्यारहवेंमें 'ओं ह्री र्हं णमो सयं बुद्धीणं'। बारहवेंमें ओं ह्रीं र्हं णमो वोहियबुद्धीणं'। तेरहवेंमें ओं ह्रीं र्हं णमो उज्जमदीणं'। चौदहवेंमें ओं ह्रीं र्हं णमो विउलमदीणं'। पंद्रहवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो दस पुव्वीणं'। सोलहवेंमें ओं ह्रीं र्हं णमो चौदस पुव्वीणं। सत्रहवेंमें 'ओं ह्री र्हं णमो अट्ठंग महानिमित्तकुसलाणं'। अठारहवेंमें ओं ह्रीं र्हं णमो विउव्वण इट्ठिपत्ताणं'। उनईसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो विज्जाहराणं'। वीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो चारणाणं'। इकईसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो पणस माणाणं'। बाइसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो आयास गामिणं'। तेइसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो दिट्ठिविसाणं'। चौबीसवेंमें ओं ह्रीं र्हं णमो आसीविसाणं लिखना चाहिये इसप्रकार सोलह दलका कमल पूरा कर लेना चाहिये। तदनंतर वलयके बाहर चौवीस दलके कमलमेंसे पहले दलमें तथा अनुक्रमसे पच्चीसवें दलमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो उग्गतवाणं'। छव्वीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो दीत्ततवाणं, सत्ताईसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो तत्ततवाणं'। अट्ठाईसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो महातवाणं'। उनत्तीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो घोरतवाणं'। तीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो घोरगुणाणं'। इकत्तीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो घोरपराकमाणं'। बत्तीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो घोरगुण बंभचारीणं'। तेतीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो आमोसहिपत्ताणं'। चौंतीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो खेल्लोसहिपत्ताणं'। पेतीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं'। छत्तीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं'। सेंतीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं'। अडतीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो मणवलीणं''। उन्तालीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो वच वलीणं'। चालीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो कायवलीणं'। इकतालीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो खीरसवीणं। ब्यालीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो सप्पिसवीणं'। तेतालीसवेंमें ओं ह्रीं र्हं णमो महुरसवीणं'। चवालीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो अमयसवीणं। पेंतालीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं'। छयालीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो लोए सव्व सिद्धापदणाणं'। सेंतालीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो वड्ढमाणाणं'। अडतालीसवेंमें 'ओं ह्रीं र्हं णमो भगवदिवड्ढमाण बुद्धिरिसीणं' लिखना चाहिये। इस प्रकार नीचेके चौवीस दल भरकर पूर्ण करना चाहिये।

तदनंतर वलयके बाहर माया बीज अधः क्रौं बीज लिखकर क्षितिमंडल युक्त करना चाहिये।

इस यंत्रकी 'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय ह्रीं ह्रूं झौं झौं स्वाहा' इस मूल मंत्रसे पूजन तथा जप करना चाहिये। पहले जो अडतालीस ऋद्धियों सहित ऋषियोंके नाम लिखे हैं उनका उच्चारण नमस्कारपूर्वक करके पूजनके अंतमें जपना चाहिये।

जो मनुष्य इस गणधरवलयको तीनों काल आराधन करते हैं उनके गये हुए धनधान्य परिग्रह आदि सब पीछे मिल जाते हैं। इससे अनेक प्रकारका पुण्यास्रव होता है, पापोंका आस्रव रुकता है तथा पापकर्मोंकी निर्जरा होती है। अनेक प्रकारके रोगोंसे होनेवाली व्याधियां तथा भूत प्रेत डाकिनी शाकिनी ग्रह राक्षस पिशाच आदिसे उत्पन्न हुए उपद्रव तथा स्थावर जंगमके भेदसे दोनों प्रकारके विषयोंसे उत्पन्न हुए उपद्रव सब नष्ट हो जाते हैं। इसके सिवाय होनहार शुभ वा अशुभ सब स्वप्नमें दिखाई देता है। तथा अंत समयमें आराधन सहित समाधिमरण होता है। इसप्रकार इसका फल है। सो ही पूजासारमें लिखा है—

मंत्रेणानेन सदा त्रिसमयगतमर्थमायाति।

और भी लिखा है—

नित्यं यो गणभृन्मंत्रं विशुद्ध्या.............

....॥ १ ॥

..................................विषयादिभिः

सदसद्वीक्षणं स्वप्ने समाधिश्च भवेन्मृतौ ॥ २ ॥

इसप्रकार यह गणधरवलय चक्र है। इसको शुद्ध मनसे, शुद्ध परिणामोंसे, शुद्ध चित्तसे पवित्र होकर पवित्र वस्त्र धारण कर ध्यान जप पूजन सेवन आदि करना चाहिये। भव्यजीवोंको अपने दोनों लोकोंके कल्याणके लिये इसका आराधन करना योग्य है। गणधरवलय चक्र पृष्ठ १९५ (क) में देखो।

१६०। चर्चा एकसौ तिरेसठवीं।

षोडशकारण यंत्रकी विधि तथा पूजाकी विधि क्या है?

समाधान—दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण सब तीर्थंकर नामकर्मके कारण हैं। इन सोलहकारणोंके विना तीर्थंकरप्रकृतिका बंध नहीं होता इसीलिये इनको कारण कहते हैं। आगे उनका थोड़ासा स्वरूप लिखते हैं।

पहला कारण दर्शनविशुद्धि है, इसकी घात करनेवाली मिथ्यात्व सम्यङ्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व ये तीन तो दर्शन-मोहनीयकी प्रकृतियां तथा अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ ये चार चारित्रमोहनीयकी प्रकृतियां इसप्रकार सात प्रकृतियां हैं। इन सातों प्रकृतियोंका जिसके केवली भगवान अथवा श्रुतकेवलीके निकट क्षय हो जाय उसके क्षायिक सम्यक्त्व होता है। जिस पुरुषके क्षायिक सम्यक्त्व हो, जो अतिचाररहित सातों व्यसनोंका त्यागी हो, निरतिचार आठों मूलगुणोंका धारण करनेवाला हो तथा पांच अणुव्रत अथवा पांच महाव्रतोंसे सुशोभित हो, शंकादिक पच्चीस दोषोंसे और पांचों अतिचारोंसे रहित हो, निःशंकित आदि आठों अंग और इकईस गुणोंसे परिपूर्ण हो उसके सोलह कारणोंमंसे दर्शनविशुद्धि नामका तीर्थंकरप्रकृतिका पहला कारण होता है। इस दर्शनविशुद्धिके विना तीर्थंकर प्रकृतिका बंध नहीं होता इसलिये यह सब कारणोंमें प्रथम कारण अथवा मुख्य कारण है। भावार्थ—बाकीके पंद्रह कारण भी तीर्थंकर प्रकृतिके कारण हैं परंतु इस दर्शनविशुद्धि नामके पहले कारणका होना अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा निश्चय है। इसप्रकार यह दर्शनविशुद्धि नामका पहला कारण है।

दूसरा कारण विनयसम्पन्नता है। सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञान चारित्र तपको धारण करना मन वचन कायसे उनकी पूजा भक्ति आदि विनय करना तथा इनको धारण करनेवालोंकी पूजा भक्ति आदि विनय करना तथा विनयके लिये सदा सावधान रहना सो विनयसम्पन्नता नामका दूसरा कारण है।

तीसरा कारण शीलव्रतेष्वनतिचार है। शील और व्रतोंमें अतिचार नहीं लगाना तथा नौ बाडसहित और अठारहहजार भेदोंसे परिपूर्ण ब्रह्मचर्यको पालन करना सो तीसरा शीलव्रतेष्वनतीचार नामका तीसरा कारण है।

चौथा कारण अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है। अपने आत्माके उपयोगको सदा ज्ञानमें लगाये रखना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है। भावार्थ—निरंतर द्वादशांगको पढना, पढाना, अपने मनको किसी और कार्यमें अथवा किसी अन्य स्थानमें न लगाना अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग नामका चौथा कारण है।

पांचवां कारण संवेग है। अपने मनके वेगको खूब अच्छी तरह अशुभ प्रवृत्तियोंसे रोकना तथा शुभ भावोंमें स्थिर करना अर्थात् देह, भोग और संसारसे विरक्त होकर वैराग्यका चिंतवन करना सो संवेग नामका पांचवां कारण है।

छठा कारण शक्तितस्त्याग अथवा अपनी शक्तिके अनुसार त्याग करना वा दान देना है । अपनी शक्तिके अनुसार विषयकषायोंका त्याग करना तथा चार प्रकारका दान देना । भावार्थ—अपनी शक्तिसे कम बढ न करना सो शक्तितस्त्याग नामका छठा कारण है ।

सातवां कारण शक्तितस्तप अर्थात् शक्तिके अनुसार तप करना है । अपनी सामर्थ्यके अनुसार अनशन, अवमोदर्य, वृत्तपरिसंख्यान, रसपरित्याग, कायक्लेश, विविक्तशय्यासन ये छह प्रकारके बाह्य तप तथा प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान इन छह प्रकारके अंतरंग तपोंको अच्छी तरह धारण करना अपनी शक्तिको न छिपाकर शक्तिके अनुसार पालना सो शक्तितस्तप नामका सातवां कारण है ।

आठवां कारण साधुसमाधि है । साधुओं पर आये हुये उपसर्गोंको दूर करना तथा उनकी सेवा शुश्रूषा करना साधुसमाधि है ।

नौवां कारण वैयावृत्य है । जो मुनि अपनेसे (किसी मुनिसे) बडे हैं वा अपने समान हैं अथवा छोटे होनेपर भी रोगी हैं वा और किसी व्याधिसे पीडित हैं अथवा बुढापेसे दुखी हैं उन सबकी टहल चाकरी करना पैर दाबना, पथ्यसे रखना, मलमूत्र दूर करना तथा भक्ति वा अनुरागसे अनेक प्रकारकी सेवा सुश्रूषा करना उनको संतोष देना सो नौवां वैयावृत्यकरण नामका कारण है ।

दशवां कारण अर्हद्भक्ति है । भगवान वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी अरहंतदेवकी मन वचन कायसे भक्ति करना उनकी पूजा स्तुति करना आदि अर्हद्भक्ति है ।

ग्यारहवां कारण आचार्यभक्ति है । छत्तीस गुणोंको धारण करनेवाले आचार्य परमेष्ठीकी मन वचन कायसे भक्ति करना पूजा स्तुति करना सो आचार्य भक्ति है ।

बारहवां कारण बहुश्रुत भक्ति अथवा उपाध्याय भक्ति है । ग्यारह अंग चौदह पूर्व स्वरूप द्वादशांग श्रुतज्ञानको जाननेवाले उपाध्याय परमेष्ठीकी मन वचन कायसे भक्ति करना पूजा स्तुति करना सो बहुश्रुत भक्ति है ।

तेरहवां कारण प्रवचन भक्ति है । प्रवचनका अर्थ द्वादशांग सिद्धांत शास्त्र है । उन सिद्धांतशास्त्रोंकी भक्ति करना नमस्कार करना पूजा स्तुति करना सो सब प्रवचनभक्ति है ।

चौदहवां कारण आवश्यकापरिहाणि है । समता वंदना स्तुति प्रतिक्रमण स्वाध्याय व्युत्सर्ग ये छह मुनियोंके आवश्यक हैं । तथा देवपूजा, गुरुकी उपासना करना, स्वाध्याय करना, संयम धारण करना, तप करना, दान देना ये छह गृहस्थोंके आवश्यक

हैं। अपने अपने आवश्यकोंको विना किसी प्रमादके नित्य करना उसमें कभी शिथिलता न करना तथा कभी न चूकना सो आवश्यकापरिहाणि है। परिहाणि शब्दका अर्थ छोडना है और अपरिहाणिका अर्थ नहीं छोडना है, आवश्यकोंको नहीं छोडना सो आवश्यकापरिहाणि है।

पंद्रहवां कारण मार्गप्रभावना है। मार्गशब्दका अर्थ मोक्षमार्ग अथवा जिनमार्ग है। जिनमार्ग वा जैनधर्मकी प्रभावना महिमा प्रगट करना सो मार्ग प्रभावना है। घोर तपश्चरण करके उत्तम विद्या प्राप्त करके, व्रत धारण करके, ध्यान धारण करके, उत्तमोत्तम उपदेश देकर तथा परवादियोंका खंडन करके अपने जैनधर्मका अतिशय चमत्कार दिखलाना अथवा अपनी सामर्थ्यके अनुसार अनेक प्रकारके रथोत्सव आदि उत्सव कर जिन मार्गका उद्योत करना सो मार्गप्रभावना है अथवा मार्ग शब्दका अर्थ मुनिजन भी है। मुनि जनोंकी भक्ति करना, सब तरहसे उनकी प्रभावना करना सो भी मार्गप्रभावना है।

सोलहवां कारण प्रवचन वत्सलत्व है। प्रवचन शब्दका अर्थ धर्मात्मा है अथवा सिद्धांतशास्त्रोंके जानकारोंको भी प्रवचन कहते हैं, उन धर्मात्माओंके साथ गौ बछडेके समान प्रेम करना प्रवचनवत्सलत्व कहलाता है।

इस प्रकार दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाएं हैं जो पुरुष इनकी भावना करता है इनका पालन करता है उसके तीर्थंकर नामकर्मका बंध होता है। इसीलिये इनकी 'सोलहकारण भावना' ऐसी संज्ञा है। यह सोलह कारण भावना साक्षात् मोक्षका कारण है सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है।

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमितितीर्थंकरत्वस्य।

इसलिये भव्य जीवोंको तीर्थंकर पद प्राप्त करनेके लिये जल गंध आदि द्रव्योंसे इनकी पूजा करना चाहिये, इनका जप करना चाहिये, ध्यान करना चाहिये। तथा इनको साक्षात् प्राप्त करनेके लिये एक महीने तक लगातार एकांतर उपवास सहित (एक दिन उपवास एकदिन पारणा इस प्रकार सोलह उपवास सोलह पारणा वा भोजन) व्रत धारण करना चाहिये। इसकी विधि अन्य शास्त्रोंमें कथासहित लिखी है वहांसे जान लेना चाहिये।

आगे इस सोलह कारण भावनाका यंत्र बनानेकी विधि लिखते हैं।

सबसे पहले मध्यमें गोलाकार कमलकी कर्णिका बनानी चाहिये। उसमें सिद्धचक्रका मूल वीज 'हं' ऐसा लिखना चाहिये। फिर उसके नीचे ब्रह्ममाया युक्त आदि कारणका नाम लिखकर अन्य कारणोंको आदि शब्दसे समुच्चयरूप लिखकर चतुर्थी भक्ति और नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये। वह मंत्र यह है 'ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो नमः' यह मंत्र लिखना चाहिये। फिर उसके आगे तीन वलय देकर सोलह दलका कमल लिखना चाहिये। उन दलोंमें प्रत्येकमें ब्रह्ममायाबीजसहित चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्दके साथ अलग अलग प्रत्येक कारण लिखना चाहिये। तथा पूर्व दिशासे आरंभ कर बांई ओरको लिखना चाहिये। पहले दलमें 'ओं ह्रीं दर्शनविशुद्धये नमः' दूसरेमें 'ओं ह्रीं विनयसंम्पन्नतायै नमः' तीसरेमें 'ओं ह्रीं शीलव्रतेष्वनतिचाराय नमः' चौथेमें 'ओं ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः' पांचवेंमें 'ओं ह्रीं संवेगाय नमः' छठेमें ओं ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः' सातवेंमें 'ओं ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः' आठवेंमें 'ओं ह्रीं साधुसमाधये नमः' नौवेमें ओं ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः' दशवेंमें 'ओं ह्रीं अर्हद्भक्तये नमः' ग्यारहवेंमें 'ओं ह्रीं आचार्यभक्तये नमः' बारहवेमें 'ओं ह्रीं बहुश्रुतभक्तये नमः' तेरहवेमें 'ओं ह्रीं प्रवचनभक्तये नमः' चौदहवेंमें 'ओं ह्रीं आवश्यकापरिहाणये नमः' पंद्रहवेमें 'ओं ह्रीं मार्गप्रभावनायै नमः' सोलहवेमें 'ओं ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय नमः' लिखना चाहिये। फिर बाहर तीन वलय देकर भूमंडल करि वेष्ठित करना चाहिये फिर चार क्षितिवीज, चार इंद्रायुध सहित कुलिशाष्टक तथा चार द्वार करि सहित लिखना चाहिये।

तदनंतर उसका आह्वान स्थापन सन्निधिकरण कर पूजन करना चाहिये फिर विसर्जन करना चाहिये। तथा मूलमंत्रसे एकसौ आठवार जातिपुष्प (चमेली) से अथवा लौंगसे उस यंत्रके ऊपर जप करना चाहिये। यह इसके आराधन करनेकी विधि है।

इस यंत्रके आराधन करनेसे भव्यजीवोंको तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है। ऐसा इसका फल है। इसलिये भव्यजीवोंको इसका स्नपन पूजन जप तथा व्रत उपवास आदि सब मन वचन कायसे करना चाहिये। षोडशकारण यंत्र पृष्ठ १९९ (क) में देखो ।

१६४। चर्चा एकसौ चौसठवीं।

दशलाक्षणिक धर्मके यंत्रकी विधि तथा अर्चनादिकका (पूजाका) स्वरूप क्या है?

समाधान—उत्तम क्षमा आदि दश प्रकारसे मुनियोंका धर्म सिद्ध होता है तथा कुछ कुछ श्रावकका धर्म भी सिद्ध होता है। इसलिये धर्मकी प्राप्तिके लिये भव्यजीवोंको इस यंत्रकी पंचामृत स्नानपूर्वक जल गंधादिक आठों द्रव्योंसे पूजा करनी चाहिये

तथा इस यंत्रके ऊपर सुगंधित पुष्पोंसे तथा लवंगसे एकसौ आठवार जप करना चाहिये। तथा व्रत उपवास आदि विधिसे इसका आराधन करना चाहिये। आगे इनका स्वरूप लिखते हैं।

पहला धर्म उत्तम क्षमा है। पृथ्वीकायिक आदि छहों कायिक जीवोंपर क्षमा धारण करना उत्तम क्षमा है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई दुष्ट वा दुर्जन जीव अनेक प्रकारके उपद्रव करें तो भी अपने कर्मोंका स्मरण कर उससे क्रोध न करना क्षमाभाव धारण करना सो उत्तम क्षमा है।

दूसरा धर्म उत्तम मार्दव है। कुल जाति ज्ञान पूजा बल ऋद्धि तप शरीर आदिका अभिमान न कर कोमल भाव धारण करना अर्थात् यदि अपनेमें कुछ ऊंचे और सर्वोत्तम गुण भी हों तो भी उद्धतता धारण न करना सदा कोमल परिणाम रखना उत्तम मार्दव नामका दूसरा धर्म है।

तीसरा धर्म उत्तम आर्जव है। माया वा छल कपटको छोडकर मदा सरलता वा निष्कपटता धारण करना मन वचन कायकी प्रवृत्तिको सदा सरल रखना, मन वचन शरीरमें किसी प्रकारका कपट न रखना सो उत्तम आर्जव है।

चौथा धर्म उत्तम शौच है। वाह्य आभ्यंतरके भेदसे दोनों प्रकारकी पवित्रता धारण करना उत्तम शौच है वाह्य विशुद्धि तो जल मिट्टी आदिसे होती है और अंतरंगकी शुद्धि मंत्रोंके जप करनेसे तथा मनको शुद्ध रखनेसे (लोभका सर्वथा त्याग करदेनेसे) होती है। इस तरह दो प्रकारका शौच है सो गृहस्थ श्रावकको तथा मुनियोंको यथायोग्य धारण करना चाहिये। यह चौथा शौच नामका धर्म है।

पांचवां धर्म सत्य है। झूठ बोलनेका सर्वथा त्याग करदेना और सदा सत्यव्रतका पालन करना उत्तम सत्य नामका धर्म है।

छठे धर्मका नाम संयम है। वह दो प्रकार है—इन्द्रिय-संयम और प्राणि-सयम। पांचों इन्द्रिय और मनकी गतिको रोकना इन छहोंको वश में करना सो इन्द्रियसंयम है तथा छहों कायके प्राणियोंकी रक्षा करना उनकी दया पलन करना सो प्राणिसंयम है। इन दोनों प्रकारके संयमोंका पालन करना सो संयम नामका धर्म है।

सातवां धर्म तप है। उसके दो भेद हैं बाह्य और आभ्यन्तर। अनशनादिक छह प्रकारका बाह्य तप है तथा प्रायश्चित्तादिक छह प्रकारका अंतरंग तप है। इन दोनोंके भेदसे बारह प्रकारका तपश्चरण पालन करना सो सातवां उत्तम तप नामका धर्म है।

आठवां धर्म उत्तम त्याग है। त्याग दानको कहते हैं। वह दान चार प्रकार है—आहार औषध उपकरण और वसतिकाका देना

मुनि आदि पात्रोंको भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये। दीन अनाथोंको करुणादान देना चाहिये। समस्त जीवोंको अभयदान देना चाहिये। रोगियोंको औषधदान देना चाहिये। तथा मुनि वा त्यागियोंको वसतिका मठ आदिका दान देना चाहिये। इसके सिवाय अपने घर आदि समस्त परिग्रहका त्याग कर मुनिव्रत धारण करना भी उत्तम त्याग है।

नौवां धर्म उत्तम आकिंचन्य है। दश प्रकारका वाह्य परिग्रह और चौदह प्रकारके अंतरंग परिग्रह इसप्रकार इन चौवीस प्रकारके परिग्रहका त्यागकर निर्ग्रंथ अवस्थाका धारण करना सो उत्तम आकिंचन्य धर्म है।

दशवां धर्म उत्तम ब्रह्मचर्य है। पांचों अतिचारोंको छोडकर तथा शीलकी नौ वाड और अठारह हजार भेदसहित शीलव्रत-को पालन करना पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करना आत्मामें लीन रहना सो उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है।

इसप्रकार दश धर्म हैं। इन सबके साथ उत्तम शब्द लगा हुआ है (वह सम्यग्दर्शनके लिये है, ये धर्म सम्यग्दर्शनपूर्वक होनेसे हीं उत्तम धर्म कहलाते हैं) मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका इन सबको अच्छीतरह इन धर्मोंको यथायोग्य रीतिसे पालन करना चाहिए।

अब आगे इसके यंत्रकी रचना लिखते हैं—सबसे पहले मध्यमें कर्णिका गोलाकार बनाना चाहिए उसमें सिद्धचक्रका मूल बीज 'ह्रीं' लिखना चाहिए। उसके नीचे ब्रह्म माया बीज सहित प्रथम अंगके नामको आदि लेकर चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये वह मंत्र इसप्रकार है 'ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलाक्षणिकधर्मांगाय नमः' फिर उसके आगे तीन वलय दे कर उसके बाहर दश दलका कमल लिखना चाहिये। उन दलोंमें अनुक्रमसे प्रणव शक्ति बीजादि सहित एक एक अंगको चतुर्थी विभक्तिसहित तथा नमः शब्दसहित लिखना चाहिये। पूर्व दिशासे प्रारंभ कर बांई ओरको लिखते जाना चाहिये। वे मंत्र इस प्रकार हैं। पहले दलमें 'ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय नमः' दूसरेमें 'ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय नमः' तीसरेमें 'ओं ह्रीं उत्तम-आर्जवधर्मांगाय नमः' चौथेमें 'ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय नमः' पांचवेंमें 'ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय नमः' छठेमें 'ओं ह्रीं उत्तमसंय-मधर्मांगाय नमः' सातवेंमें 'ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय नमः' आठवेंमें 'ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय नमः' नौवेमें 'ओं ह्रीं उत्तम-आकिंचन्यधर्मांगाय नमः' और दशवेंमें 'ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय नमः' लिखना चाहिये। फिर तीन वलय देकर भूमंडल आदि पहले लिखे अनुसार लिखना चाहिये और फिर उसका आराधन करना चाहिये। मूलमन्त्रसे समुच्चयरूप आह्वान स्थापन सन्निधीकरण करना चाहिये फिर पूजा जप करना चाहिये। पूजाके मन्त्र सब अलग अलग हैं जैसे कि यंत्रमें लिखे हैं सो समझ लेना चाहिये। दशलाक्षणिक यंत्र पृष्ठ २०१ (क) में देखो।

१६५। चर्चा एकसौ पैंसठवीं।

रत्नत्रययंत्रकी विधि तथा उसके अर्चनादिककी विधि क्या है ?

समाधान—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रको रत्नत्रय कहते हैं। उनमेंसे सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं। उपशम क्षायिक और क्षायोपशमिक। सो इनमेंसे कोई एक सम्यग्दर्शन हो और वह निःशंकित आदि आठों अंगों सहित हो, शंकादिक पच्चीस दोषोंसे रहित हो और पांचों अतिचारोंसे रहित हो। इसप्रकारके सम्यग्दर्शनको प्रथम रत्न कहते हैं। इसीप्रकार कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान और विभंगावधिज्ञानसे रहित तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और साक्षात् केवलज्ञान इन पांचों ज्ञानोंमेंसे किसी एक ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं और हिंसादि समस्त पापोंका त्याग कर देना सम्यक्चारित्र है। इसप्रकार इन तीनोंका सामान्य स्वरूप है। इनका विशेष स्वरूप अन्य शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये।

इनमेंसे सम्यग्दर्शनके आठ अंग हैं, सम्यग्ज्ञानके आठ अंग हैं और सम्यक्चारित्र तेरह प्रकार है। ये तीनों ही रत्न इस संसारमें जीवोंका उद्धार करनेकेलिये चिंतामणि रत्नके समान हैं। इनके विना संसारी जीवोंको मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकती। ये तीनों ही रत्न मिलकर मोक्षके मार्ग होते हैं। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" इसलिये भव्य जीवोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिये इनको स्वीकार करना चाहिये तथा इनकी प्राप्तिकेलिये इनका यंत्र बनाकर उसका अभिषेक पूजन जप आदि करना चाहिये और व्रतोपवास आदिके द्वारा इसकी सेवा आराधना करनी चाहिये।

आगे यंत्र बनानेकी विधि लिखते हैं। सबसे पहले मध्यमें गोलाकार कर्णिका लिखना चाहिये। उसमें सिद्धचक्रका मूलवीज 'ह्रीं' लिखना चाहिये। फिर उसके ऊपर नीचे ब्रह्ममाया बीजसहित रत्नत्रयको चतुर्थी विभक्तिसहित नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये।। वह मंत्र यह है 'ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः' फिर उसके बाद तीन वलय देकर आठ दलका कमल लिखना चाहिये। उनमेंसे सम्यग्दर्शनके आठों अंगोंमेंसे प्रत्येक अंगको अक्षरमणि और शक्तिबीज कर सहित चतुर्थी विभक्ति सहित नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये। यथा—पहले दलमें 'ओं ह्रीं निःशंकितांगाय नमः' दूसरेमें 'ओं ह्रीं निःकांक्षितांगाय नमः' तीसरेमें 'ओं ह्रीं निर्विचिकित्सांगाय नमः' चौथेमें 'ओं ह्रीं अमूढदृष्ट्यांगाय नमः। पांचवेंमें 'ओं ह्रीं उपगूहनांगाय नमः' छठेमें 'ओं ह्रीं स्थितिकरणांगाय नमः' सातवेंमें 'ओं ह्रीं वात्सल्यांगाय नमः' आठवेंमें 'ओं ह्रीं प्रभावनांगाय नमः' लिखना चाहिये। इसप्रकार आठों दल पूर्ण कर देने चाहिये।

फिर वलय देकर आठ दलका कमल बनाना चाहिये। उनमें वेद माया वीजपूर्वक सम्यग्ज्ञानके आठों अंगोंको चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्दके साथ अलग अलग लिखना चाहिये। यथा—पहले दलमें 'ओं ह्रीं व्यंजनव्यंजिताय नमः' दूसरेमें 'ओं ह्रीं अर्थसमग्राय नमः' तीसरेमें 'ओं ह्रीं तदुभयसमग्राय नमः' चौथेमें 'ओं ह्रीं कालाध्ययनः पवित्राय नमः' पांचवेंमें 'ओं ह्रीं उपधानोपहिताय नमः' छठेमें 'ओं ह्रीं विनयलब्धिप्रभावाय नमः' सातवेंमें 'ओं ह्रीं गुर्वाद्यनिन्हवसमृद्धाय नमः' आठवेंमें 'ओं ह्रीं आदाननिद्रिताय नमः' लिखना चाहिये। इस प्रकार दूसरा कमल मी भर देना चाहिये।

तदनंतर वलय देकर तेरह दलका कमल बनाना चाहिये। उसमें तार और मायावीजपूर्वक चारित्रके तेरह अंगोंको अलग चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्दके साथ लिखना चाहिये। यथा—पहले दलमें 'ओं ह्रीं अहिंसामहाव्रताय नमः' दूसरेमें 'ओं ह्रीं सत्यमहाव्रताय नमः' तीसरेमें 'ओं ह्रीं अचौर्यमहाव्रताय नमः' चौथेमें 'ओं ह्रींब्रह्मचर्य महाव्रताय नमः' पांचवेंमें 'ओं ह्रीं परिग्रहत्यागमहाव्रताय नमः' छठेमें 'ओं ह्रीं ईर्यासमितये नमः' सातवेंमें 'ओं ह्रीं भाषासमितये नमः' आठवेंमें 'ओं ह्रीं एषणासमितये नमः' नौवेंमें 'ओं ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितये नमः' दशवेंमें 'ओं ह्रीं प्रतिष्ठापनसमितये नमः' ग्यारहवेंमें 'ओं ह्रीं मनोगुप्तये नमः' बारहवेंमें 'ओं ह्रीं वचोगुप्तये नमः' तेरहवेंमें 'ओं ह्रीं कायगुप्तये नमः' लिखना चाहिये। इस प्रकार लिखकर सब कमल पूर्ण कर देना चाहिये। फिर तीन वलय देकर भूमंडल लिखना चाहिये। इसप्रकार यंत्र बनाकर आराधन पूजा जप आदि करना चाहिये। रत्नत्रयचक्र-यंत्र पृष्ठ २०३ (क) में देखो।

इनके सिवाय और भी अनेक यंत्र हैं सो भगवद्देकसंधिकृत जिनसंहिता, पूजासार, जिनयज्ञकल्प, विद्यानुवाद, णमोकार कल्प, वसुनंदिकृत प्रतिष्ठापाठ, त्रिवर्णाचार, शांतिचक्र और रत्नाकर आदि शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये। यहां हमने थोडीसी आम्नाय बतलानेके लिये ऊपर लिखे शास्त्रोंसे थोडासा लिखा है।

१६८। चर्चा एकसौ छ्यासठवीं

पहलेकी पूजा और यंत्रोंमें ओंकार और ह्रींकार सब जगह मुख्य रीतिसे लिखा है सो इन दोनोंका स्वरूप क्या है। तथा इनमें कौनसे परमेष्ठी हैं और कौनसे देव हैं। जिससे कि इनका उच्चारण सबसे पहले कीया जाता है, तथा अन्य पाठ पीछे पढे जाते हैं। यह यंत्र सबसे मुख्य है। इसका क्या कारण है?

समाधान—सबसे मुख्य मन्त्र ओंकार है। व्याकरणके अनुसार ओं शब्दका अर्थ अंगीकार, स्वीकार अथवा ग्रहण करना है। सो ही लिखा है "ओमित्यंगीकरणे" अर्थात् ओं शब्दका अर्थ अंगीकार वा स्वीकार करना है। इसीलिये समस्त कार्योंके प्रारंभमें

इस धातुका उच्चारण सबसे पहले किया जाता है। भावार्थ—पूजा, ध्यान, जप, आदि समस्त कार्योंके प्रारंभमें ओं शब्द रखना चाहिये ऐसा आचार्योंका मत है। यह ओंकार समस्त अक्षरोंमें मुख्य है तथा अक्षरोंमें मणियोंके समान सर्व श्रेष्ठ है। यह दूसरोंके द्वारा हराया नहीं जा सकता इसीलिये इसकी अनाहत संज्ञा है। तथा यह नमस्कार रूप है इसीलिये इसकी प्रणव संज्ञा है इसी कारण इसको सबसे पहले रखते हैं। इसको भक्त बीज भी कहते हैं अतएव कार्यके प्रारंभमें अपने इष्ट देवकी भक्तिके लिये तथा अपने कार्यकी सिद्धिके लिये इसको सबसे पहले लिखते हैं। इसी ओं की ब्रह्म संज्ञा है। ब्रह्म आत्माको कहते हैं, आत्माके समान यह मुख्य है इसीलिये इसको प्रथम उच्चारण करते हैं। यह ओंकार समस्त कामनाओंसे अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी कामना रूपी जालसे पार कर देता है इसीलिये इसकी तारक संज्ञा है। भावार्थ—इस मन्त्रसे सब कार्योंकी सिद्धि होती है और संसारसे पार होजाता है। इसी ओं को वेद कहते हैं। यह ओं शब्द समस्त अक्षरोंका द्वादशांगका मूल वा प्रथम अक्षर है और सबको जानता है, इसीलिये इसको वेद कहते हैं। यह वेद शब्द ज्ञानार्थक विद् धातुसे बना है। यह सबको जानता है इसीलिये इसको सबसे पहले उच्चारण करते हैं।

अन्यधर्मवाले भी ओं शब्दको मानते हैं अपने इष्ट देवकी स्थापना कर इसकी पूजा करते हैं। इस ओं शब्दमें अन्य धर्मवाले किस किस इष्ट देवकी कल्पना करते हैं वही आगे दिखलाते हैं। विष्णु ब्रह्मा महेश इन तीनों देवताओंके स्वरूपसे ओंकार बनता है ऐसा वे लोग कहते हैं। इसको वे इसप्रकार सिद्ध करते हैं। अ आ उ म इन चार अक्षरोंसे ओंकार बनता है। इनमेंसे अकार अक्षर तो विष्णुमई है। आकार अक्षर ब्रह्ममयी है उकाराक्षर महेशमई है तथा मकार ब्रह्म संज्ञक अर्थात् वेदमयी है। इन चारों अक्षरोंका व्याकरणके नियमानुसार ओं बन जाता है और वह इसप्रकार बनता है। "समानः सवर्णे दीर्घः परश्च लोपम्" "अर्थात् सवर्णो अक्षर परे रहते समान अक्षरको दीर्घ हो जाता है और परका लोप होजाता है। इस सूत्रके अनुसार आके परे रहते अ को दीर्घ आ होजाता है और अगले आ का लोप होजाता है। तदनन्तर उ है। उवर्णे ओ, इससूत्रसे अवर्णको ओ होजाता और पर उ का लोप हो जाता है। इस प्रकार अ आ उ इन तीनों अक्षरोंका ओ बन जाता है। इन अक्षरोंके आगे चौथा अक्षर म् है ही। उसको मिलानेसे 'ओम्' बन जाता है यह मकार ब्रह्म संज्ञक है और 'मोनुस्वारः' इस सूत्रसे मकारको अनुस्वार हो जाता है तथा वह ओ के ऊपर लग जाता है। इसकेलिये 'सूचीसूत्रन्यायेन अनुस्वारस्य सह गमनं भवति' इसपंक्तिसे अनुस्वार ऊपर लग जाता है और ओं शब्द बन जाता है।

कदाचित् यहांपर कोई यह पूछे कि यहांपर अकारके आगे आकार है सो आकारका ग्रहण कैसे सम्भव हो सकता है। उसके लिये कहते हैं कि अवर्णके कहनेसे अकार आकार दोनोंका ग्रहण हो जाता है। इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। इसीलिये अकार आकार दोनोंका ही ग्रहण किया है। सो ही 'विश्वैकाक्षरी वर्णकोष' में लिखा है।

अकाराकारकौ भेदो नास्तीत्यत्र विदूरिकौ।

इसीको अनुभूतिस्वरूपाचार्यने सारस्वतमें लिखा है 'वर्णग्रहणे सवर्णग्रहणं कारग्रहणे केवलग्रहणम्' अर्थात् वर्णके ग्रहणसे सवर्णका ग्रहण होता है और कारके ग्रहणसे केवल उसी अक्षरका ग्रहण होता है। यहांपर कारका ग्रहण नहीं है वर्णका ग्रहण है। इसलिये अकेला अ न लेकर अ आ दोनोंका ग्रहण करना चाहिये।

इसप्रकार अन्य मतवाले भी ओंकारमें अपने इष्टदेवकी कल्पना करते हैं और उसको पूजते हैं। एकाक्षरी कोषमें लिखा है—

अकारो विष्णुनामा स्यादाकारः परमेष्ठिकः। उकारः शंकरः प्रोक्तो मकारो ब्रह्मसंज्ञकः॥ १ ॥

ओंकारस्तु त्रिभिर्देवै र्युक्तो ब्रह्मपदः स्मृतः। स एव वेदसंज्ञः स्या त्कथितोयं मनीषिभिः॥ २ ॥

जैनधर्मके अनुसार ओं में पांचों परमेष्ठी गर्भित हैं। अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये पांच परमेष्ठी हैं। इसलिये इन पांचों परमेष्ठियोंके प्रथम अक्षर अ सि आ उ सा होते हैं। व्याकरणके नियमानुसार इन पांचों अक्षरोंके मिलानेसे 'ओम्' बन जाता है। उसका प्रकार यह है। अरहंत परमेष्ठीका प्रथम अक्षर अ लेना चाहिये। सिद्धपरमेष्ठी शरीररहित वा अशरीर हैं इसलिये उनका भी प्रथम अक्षर अ लेना चाहिये। आचार्यपरमेष्ठीका प्रथम अक्षर आ लेना चाहिये। उपाध्यायका प्रथम अक्षर उ लेना चाहिये तथा साधु मुनिको कहते हैं इसलिये साधु वा मुनिका प्रथम अक्षर म् लेना चाहिये। इसप्रकार पंचपरमेष्ठीके प्रथम अक्षर अ अ आ उ म् ग्रहण करने चाहिये। इन्हींको मिलानेसे 'ओं' बन जाता है सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकामें लिखा है—

अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो। पढमक्खरणिप्पणो ओंकारो पंचपरमेट्ठी॥

अर्थात् अरहंत अशरीर (सिद्ध) आचार्य उपाध्याय और मुनि इनके प्रथमाक्षरोंसे ओंकार बनता है और इसीलिये वह पंच परमेष्ठीका वाचक है।

आगे व्याकरणके अनुसार इसकी सिद्धि लिखते हैं—

"समानः सवर्णे दीर्घो भवति परश्च लोपम्"

अर्थात् सवर्णके परे रहते सवर्णको दीर्घ होजाता है और परका लोप हो जाता है। इस सूत्रसे 'अ अ' इन दोनों अक्षरोंमेंसे पहला अकार दीर्घ[1] आ होजाता है और दूसरे अ का लोप हो जाता है। फिर आ और आचार्यका आ इन दोनों अक्षरोंमें पहला आ दीर्घ होता है और परका लोप हो जाता है। यहांपर पहला आकार पहलेसे ही दीर्घ है इसलिये दीर्घको फिर दीर्घ नहीं होता। सो ही लिखा है—

"मृतकस्य मृतिर्नास्ति तथा दीर्घस्य दीर्घता नास्ति"

और भी लिखा है—

अदीर्घो दीर्घतां याति नास्ति दीर्घस्य दीर्घता। पूर्वं दीर्घं स्वरं दृष्ट्वा परलोपो विधीयते॥

अर्थात् मृत मनुष्यकी फिर मृत्यु नहीं होती इसीप्रकार दीर्घको दीर्घ नहीं होता। तथा—ह्रस्वको दीर्घ होजाता है परंतु दीर्घको दीर्घ नहीं होता। जहांपर पहला स्वर दीर्घ होता है वहांपर केवल परका लोप होजाता है। इस सूत्रके न्यायसे आगेके दूसरे आकारका लोप होजाता है। इसलिये आ के आगेके आ का लोप होजाता है और अकेला आ रह जाता है फिर उसके आगे उपाध्यायका उ आता है। सो 'उवर्णे ओ' इस सूत्रसे आ को ओ हो जाता है और उ का लोप होजाता है। फिर मुनिका मकार आता हैं। उसका 'मोनुस्वारः' मकारको अनुस्वार हो जाता है इस सूत्रसे मकारको अनुस्वार होजाता है। तथा सूचीसूत्र न्यायसे वह अनुस्वार ओके ऊपर चढ जाता है और 'ओं' ऐसा शब्द सिद्ध हो जाता हैं। इस प्रकार इस ओंकार शब्दमें पांचों परमेष्ठी विराजमान रहते हैं। इसीलिये यह ओंकार शब्द सबमें मुख्य माना जाता है और सबसे पहले उच्चारण किया जाता है। इसप्रकार स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी शुभचन्द्र कृत संस्कृत टीकामें सिद्ध किया है।

प्रश्न—यहांपर ओंकार तो सिद्ध होगया परंतु उसके मस्तक पर अनुस्वार होना चाहिये उसके मस्तकपर अर्द्धचन्द्राकार कला किस प्रकार है? पहले जो व्याकरणसे सिद्ध किया है उसमें भी अनुस्वार ही सिद्ध होता है। अर्द्ध चन्द्राकार कला सिद्ध नहीं होती।

१ 'एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।' अर्थात् एक मात्रावालेको ह्रस्व और दो मात्रावालेको दीर्घ कहते हैं।

उत्तर—यह ठीक है कि मकारका अनुस्वार ही होता हैं परंतु छन्दः अथवा वेदमें अनुस्वारको अर्द्ध चन्द्राकार कला भी हो जाती है। अतएव अनुस्वार तो व्याकरणके अनुसार सिद्ध कर लेना चाहिये और फिर अनुस्वारको वेदके अनुस्वार अर्द्धचन्द्राकार कला बना लेना चाहिये।

कदाचित् यहांपर कोई यह पूछे कि वेद क्या है तो इसका उत्तर यह है कि यह ओंकार ही स्वयं साक्षात् वेदस्वरूप है। 'छंदसि अनुस्वारः 'अर्द्धचन्द्रकलामापद्यते' 'वेदमें अनुस्वार अर्धचन्द्राकार हो जाता है' इस सूत्रके अनुस्वार अर्द्धचन्द्राकार होजाता है। ऐसा समझ लेना चाहिये।

यह ओंकार पुरुष है इसीलिये सब कार्योंमें पहले लिखा जाता है। सो ही लिखा है। 'ओंकारः पुरुषो ज्ञेयः' अर्थात् ओंकारको पुरुष समझना चाहिये। ऐसा गायत्रीकी टीकामें लिखा है। इसीको पहले उच्चारण कर पीछे और कार्य करते हैं जिससे उन अन्य सब कार्योंकी सिद्धि होजाय। यह ओंकार परमब्रह्मका स्वरूप है। बडे बडे योगीश्वर नित्य इसका ध्यान करते हैं तथा यह ओंकार काम और मोक्षका देनेवाला है। सो ही लिखा है–

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥

अर्थात् "यह ओंकार बिंदुसहित है योगी लोग सदा इसका ध्यान करते हैं, यह इच्छानुसार फल देनेवाला तथा मोक्ष देने वाला है ऐसे ओंकारको मैं बार बार नमस्कार करता हूं। इसीलिये इस ओंकारको सबसे पहले उच्चारण करते हैं।

अन्य मतवाले ओंकारका रूप बावन अक्षरोंसे भी बनाते हैं। यथा—

अकारादिक १६ स्वर, ककारसे लेकर मकार तक २५ स्पर्श, यकारसे लेकर क्षकार तक (य र ल व श ष स ह ळ क्ष' ये दश तथा एक अनुस्वार ऐसे बावन अक्षरमय ओंकार है ये बावन अक्षर मातृका कहलाते हैं इनसे ही सब शास्त्र उत्पन्न होते हैं इसलिये इनको मातृका कहते हैं इन्ही अक्षरोंसे ओंकार बना है। वेद पुराण यंत्र, मंत्र आदि सब मातृकामें ही गर्भित हैं मातृकासे बाहर कुछ नहीं है। मातृका ही परम मंत्र हैं मातृका ही मूलमंत्र है इसलिये योगीलोग ओंकार मात्रका ही जाप करते हैं हिंदीके सिवाय मराठी आदि भाषाओंमें ळ क्ष ये दो अक्षर और अधिक माने हैं।

अकारादि अः कारान्तं स्वरा षोडशसंज्ञकाः। ककारादिमकारान्ताः स्पर्शाश्च पंचविंशतिः॥
यकारादिक्षकारान्तं दशानुस्वार एव च। ओंकारं मातृकायुक्तं तद् द्विपंचाशदक्षरम्॥
वेदशास्त्रपुराणानि मंत्रयंत्राणि यद्विदुः। तत्सर्वं मातृकामध्ये मातृकायाः परं न हि॥
मातृका च परो मंत्रो मूलमंत्रश्च मातृका। तस्माच्च योगिनो नित्यं ओंकारमात्रजापिनः॥

इसप्रकार इसका स्वरूप है।

इसके सिवाय मन्त्रशास्त्रके मतसे अन्य प्रकारसे भी यह ओं शब्द बावन अक्षरोंकी बनी हुई मातृकासे बनता है। उसका क्रम इसप्रकार है। ककारसे लेकर क्षपर्यंत सब अक्षर तथा अकारादिक सोलह मात्राएं ये सब मिलकर बावन वर्ण मातृका कहलाते हैं। सो सब एक ओंकारकी ही कलायें हैं। भावार्थ–सब वर्ण एक ओंकारसे ही उत्पन्न हुए हैं। ऐसा अन्य मतमें लिखा है। इसका भी विशेष स्वरूप इसप्रकार लिखा है।

'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ' एता कचवर्गकलाः अकारजाः। ट ठ ड ढ ण त थ द ध न एता अष्ट टतवर्ग कलाः उकारजाः। प फ ब भ म य र ल व श एताः पयवर्गकलाः मकारजाः। ष स ह ळ एता षवर्गकलाः विन्दुजाः। क्ष एषा कला अव्यक्तजा। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः एता अवर्गकलाः नादजाः इति प्रणवोत्थकलाः।

अर्थात् क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ये तो सब कलायें अकारसे उत्पन्न हुई हैं सो इन सबका अ लेना चाहिये। तथा ट ठ ड ढ ण त थ द ध न ये सब कलाएं उकारसे उत्पन्न हुई हैं सो इन सबका एक उ लेना चाहिये। प फ ब भ म य र ल व श ये सब कलाएं मकारसे उत्पन्न हुई हैं इसलिये इन सबका मकार लेना चाहिये। ष स ह ळ ये सब विंदुसे उत्पन्न हुई हैं सो इनका विंदु लेना चाहिये। क्ष अव्यक्तकलासे उत्पन्न हुआ है तथा अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ये सोलह कलाएं नादसे उत्पन्न हुई हैं। इसप्रकार इन सब कलाओंका एक नाद शब्द ब्रह्ममय ओं बनता है।

यहांपर थोडासा नादका स्वरूप (अन्यमतके अनुसार) लिखते हैं—

एकवार शिव अर्थात् महादेवने कैलाश पर्वत पर अपना डमरू बजाया था उसमेंसे चौदह सूत्र निकले थे जो 'अ इ उ ण्' 'ऋ लृक्' ए, ओङ्, ऐ औच्, हयवरट् लण्, यमङ्णनम्, झ भ ञ घढधष्, ज ब ग ड द श्, खफ छ ठ थ च ट त व्, क प य्, श ष स र हल् नामसे कहलाते हैं इन्हींसे सब अक्षर बने हैं सो ही लिखा है।

नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव पंच वारान्।

ऐसा पाणिनीयमें लिखा है। इन सब अक्षरमय अ उ म् इनको पहलेके अनुसार उवर्णे ओ। मोनुस्वारः और छंदसि इन सूत्रोंसे सिद्ध करनेपर ओं बनजाता है। इन सूत्रोंकी और साधनिका पहले लिख चुके हैं। इस प्रकार सब अक्षरोंसे ओं बनता है इसलिये सबसे पहले उच्चारण किया जाता है।

इस एक ही अक्षरके 'ओं' मंत्रको 'ओं नमः' इस प्रकार नमस्काररूप योगी लोग सदा ध्यान करते हैं। इसका विशेष वर्णन ज्ञानार्णवसे समझ लेना चाहिये। इस ओं की महिमा अगम अपार है। ऐसा यह ओंकार है।

इसको अन्यमती भी अपने अपने इष्ट देव रूप मानकर ध्यान करते हैं। शैव तो इसको शिवरूप मानते हैं, ब्रह्मवादी परब्रह्मरूप मानते हैं। वैष्णव विष्णुरूप मानते हैं और वेदवाले साक्षात् वेदरूप मानते हैं। इसप्रकार कितने ही प्रकारसे अपने अपने इष्ट देवको मानते हैं। तथा ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों रूप भी इसको मानकर ध्यान करते हैं, ऐसा जानना।

आगे ह्रीं का स्वरूप लिखते हैं यह ह्रींकार ह र ई और विंदु इनसे मिलकर बना है। सो यहां भी छंदसि इस सूत्रसे अनुस्वारको अर्द्धचन्द्राकार बना लेना चाहिये। ओंकार तो वेद है सो पुरुष है और यह ह्रीं मायाबीज है सो वेदमाता है तथा गायत्रीरूप है सो स्त्रीरूप वेदमयी है। सो ही लिखा है—

ओंकारः पुरुषो ज्ञेयः गायत्री स्त्री च कथ्यते।

इसप्रकार गायत्री टीकामें लिखा है। इस न्यायसे यह भी वेद ही है।

इस ह्रींकारमें हकार तो पार्श्वनाथसंबंधी है नीचेका रकार धरणेन्द्र संबंधी है और ईकार स्वर और विंदु पद्मावती संबंधी है इसप्रकार तीनों देवोंका निवास इस मायाबीज ह्रींकारमें प्राप्त होता है। सो ही उभयभाषाकविशेखर श्रीमल्लिषेण सूरि विरचित पद्मावतीकल्पके तीसरे परिच्छेदमें लिखा है—

सान्तः पार्श्वजिनेन्द्रस्तदधोरेफः स धरणेन्द्रः । तुर्यस्वरः सविन्दुः स भवेत्पद्मावतीसंज्ञः ॥ ३७ ॥

जो पुरुष इस मायाबीज ह्रींकारको ओंकारपूर्वक नमस्कारमय एकाक्षरी विद्यामय 'ओं ह्रीं नमः' इस मंत्रको जपते हैं वे मनोवांछित फल पाते हैं इसके सिवाय यह मंत्र तीनों लोकोंके जीवोंको मोहित करनेवाला है। सो ही पद्मावतीकल्पमें लिखा है—

त्रिभुवनजनमोहकरी विद्याप्रणवपूर्विका एषा । एकाक्षरीति संज्ञा जपतः फलदायिनो नित्यम् ॥

यही कथन सोमसेनकृत त्रिवर्णाचारमें लिखा है तथा ज्ञानार्णव, जिनसंहिता, पूजासार, जिनयज्ञकल्प, जिनप्रतिष्ठापाठ, शांतिचक्र, त्रिवर्णाचार महाभिषेक आदि शास्त्रोंमें ह्रींका अर्थ इस प्रकार लिखा है—'ह्रां' यह वीज तो श्री अरहंतका वाचक है। 'ह्रीं' यह वीज सिद्धपरमेष्ठीका वाचक है। 'ह्रूं' यह वीज आचार्यका वाचक है। 'ह्रौं' यह वीज उपाध्यायका वाचक है और 'ह्रः' यह वीज सर्व साधुका वाचक है। इस प्रकार ये पांचों वीजाक्षर पंच परमेष्ठी वाचक हैं। इनमें ह्रींकार सिद्धपरमेष्ठीका वाचक बतलाया है। इसीलिये ओंकारके पीछे ह्रींकार लिखा है। सो ही लिखा है—

'ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः' तथा 'ओं ह्रां णमो अरहंताणं' 'ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं' 'ओं ह्रूं णमो आइरिआणं' 'ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं' 'ओं ह्रः णमो लोये सव्व साहूणं' इन मन्त्रोंमें ह्रीं शब्द सिद्धवाचक लिखा है।

यह ह्रींकार वर्ण हकारादिक अक्षरोंसे बना है। सो इसका नामोच्चारण करनेमें भी कोशके अनुसार देवपना सिद्ध होता है और वह इस प्रकार होता है। मातृका निघंटु शास्त्र मन्त्रशास्त्र आदिमें हकारकी व्योमवीज वा आकाशवीज संज्ञा लिखी है। उसके नीचे जो रकार है उसकी अग्निसंज्ञा बतलाई है। तथा चौथा स्वर जो ईकार है उसको देवोंका ईश्वर संज्ञक वीज बतलाया है। और अनुस्वारको आकाश रूप कहा है। सो ऐसी शक्तिरूपी रकार सब देवोंका ईश्वररूपी ईकार और आकाशरूपी विंदुकी यह शक्ति है। ह्रीं इस वीजाक्षरमें बडा ही देवपना है, यही सिद्धचक्रका मूल वीजाक्षर है। 'ह्रूं' इसमें ह्रीं ऐसा पाठ नहीं है तो भी रेफ आदि अक्षरोंसे एक ही समझना चाहिये। व्याकरणमें लिखा है। 'छिन्नकर्णः लांगूलः न श्वा' जिसके कान कट गये हैं ऐसा लंगूर कुत्ता नहीं हो सकता किंतु लंगूर ही रहता है। अथवा 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' जिसका एक देश विकृत होजाता है वह अन्य नहीं हो जाता किंतु वही रहता है। इस न्यायसे 'ह्रीं' तथा 'ह्रूं' दोनोंमें कुछ भेद नहीं है। लिखा भी है 'उर्ध्वाधो रयुतं सविंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितम्'। इसका विशेष वर्णन ज्ञानार्णव आदि शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये।

हकार अक्षरका अर्थ व्याकरणके अनुसार हिंसा भी होता है। तथा रकार अक्षर दुष्टके संबोधनके अर्थमें आता है। यहां पर दुष्ट आठ कर्म हैं उनको जो हरण करे वह ह है। ऐसा सब देवोंका स्वामी वा प्रभु होता है। तथा यह अर्थ ईश्वरवाचक ईकारके साथ लेना चाहिये। इसप्रकार ह्रीं शब्द बन जाता है। जो कर्मोंको जीतकर देवाधिदेव रूप हों तथा व्योम जो आकाश तत्त्व बिंदुकर सहित हों ऐसे लोकाग्रनिवासी सिद्ध परमेष्ठी ह्रीं के वाच्य होते हैं अर्थात् इसप्रकार सिद्धपरमेष्ठीका वाचक ह्रीं शब्द सिद्ध होता है।

इस ह्रींकारसे आकर्षण, स्तंभन, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, विद्वेषण, आदि समस्त कामनाएं जुदे जुदे प्रयोगोंसे सिद्ध होती हैं सो इसका विशेष वर्णन मायाबीज नामके कल्पमें लिखा है। इसीलिये इसको मायाबीज कहते हैं अथवा शक्तिबीज कहते हैं।

मंत्रोंमें ब्रह्मस्वरूप ओंकार तथा मायास्वरूप ह्रींकार इस प्रकार ब्रह्ममाया दोनों स्वरूप 'ओं ह्रीं' ऐसा मिला हुआ मंत्र लेना चाहिये। इस प्रकार यहांपर मायाबीजका थोडासा अर्थ लिखा है।

इस ओंकार और ह्रींकारका विशेष स्वरूप जैनमतके मंत्रशास्त्र विद्यानुवाद पूर्व, णमोकार कल्प तथा बृहत्पद्मावती कल्पसे जान लेना चाहिये। यहां हमने अपनी बुद्धिके अनुसार लिखा है।

अर्हं शब्दका सामान्य अर्थ तो सब जानते ही हैं तथा विशेष अर्थ आगे कहेंगे। पहले जो और और बीजाक्षर बतलाये हैं उनका नाम इसप्रकार है। 'ओं' प्रणवबीज है। 'ह्रीं' मायाबीज है। 'श्रीं' लक्ष्मीबीज है। 'क्लीं' 'ऐं' कामबीज है। ऐं विद्याबीज हैं। 'अर्हं' परमेष्ठी बीज है। 'हं, व्योमबीज है। 'क्ष्वीं' क्षितिबीज है। 'क्ष्वीं' अमृतबीज है। 'पं' और 'पः' जलबीज है। 'स्वा' वायुबीज है। द्रां द्रीं बाणबीज है। इसप्रकार समझ लेना चाहिये।

१६७। चर्चा एकसौ सडसठवीं।

पहलेके देवदर्शन करनेके श्लोकमें पुनरुक्त पाठ लिखा है यथा—

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्। दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥

ऐसा पाठ है सो अशुद्ध मालूम होता है क्योंकि इसमें पुनरुक्त दोष प्रत्यक्ष दिखाई देता है। 'देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनं' ऐसा पाठ पढना ही निर्दोष है। यदि ऐसा पाठ माना जाय तो इसमें अक्षर कम होनेसे छंदोभंग होता है। 'दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनं' इसमें पहला दर्शन शब्द व्यर्थ जान पडता है। विना प्रयोजनके तथा विना संबोधन आदि अन्य प्रयोजनके एक ही

पाठको दुबारा कहना किस प्रकार ठीक हो सकता है। इससे मालूम होता है कि यह जिनदर्शनका श्लोक किसी छोटेसे पंडितका बनाया हुआ है।

समाधान—ये श्लोक किसी छोटे पंडितके बनाये हुये नहीं हैं किंतु किसी बडे विद्वान्‌के बनाये हुये हैं। केवल न जाननेवालोंको पुनरुक्त दोष मालूम पड़ता है। परंतु वास्तवमें यहां पुनरुक्त दोष नहीं है। देखो 'दर्शनंदेव' इन शब्दका पदच्छेद 'दर्श नंदा इव' करना चाहिये। दर्श शब्दका अर्थ कृष्णपक्षकी अमावस्या है। सो ही लिखा है। 'अमावास्या त्वमावस्या दर्शः सूर्येन्दुसंगमः' अर्थात् अमावास्या अमावस्य दर्श ये उस दिनके नाम हैं जहां सूर्य चंद्रमाका समागम होता है अर्थात् कृष्णपक्षकी अमावसके हैं। तथा नंदा शब्दका अर्थ एकादशी है। सो ही लिखा है 'प्रतिपत्षष्ठी एकादशी नंदा इति बालबोधपंचांगे पाठः' अर्थात् पडवा षष्ठी एकादशीको नंदा कहते हैं ऐसा बालबोध पंचांगमें लिखा है।

वैष्णवमतमें और लौकिक शास्त्रमें ऐसा कहा है कि अमावस्या और एकादशी ये दोनों पुण्यतिथि हैं इनमें दान व्रत उपवास आदि करनेसे महान् पापोंका नाश होता है। ये पर्व बहुतसे पापोंके नाश करनेवाले हैं। इसीलिये इनको पुण्यपर्व कहते हैं। जिस प्रकार अमावस्या और एकादशीके पर्व बहुतसे पापोंके नाश करनेवाले हैं उसी प्रकार देव अर्थात् वीतराग परम देवके दर्शन करना भी बहुतसे पापोंका नाश करनेवाला है। भावार्थ—यहांपर केवल लौकिक दृष्टांत दिखलाया है। वास्तवमें देखा जाय तो वीतराग परमदेवका दर्शन करना अमावस्या और एकादशीके समान नहीं है किंतु इससे अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं सो लिखा ही है 'नैकजन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति' इससे सिद्ध होता है कि वीतराग परमदेवके दर्शन करना सर्वोत्कृष्ट है अमावस्या और एकादशी तो उसके सामने कुछ भी नहीं है।[1]

'दर्श नंदा इव' इस कच्चे रूपका पक्का रूप व्याकरणके नियमानुसार 'दर्शनंदेव' बन जाता है। नंदा इव इसकी संधि करनेसे

---

१ ग्रंथकारने यह परमतका उदाहरण दिखला कर समाधान किया है परंतु इसका समाधान इस प्रकार भी होता है। 'दर्शनं देवदेवस्य' अर्थात् दर्शन देवाधिदेव अरहंतदेवका ही करना चाहिये अन्यका नहीं। (अरहंतदेवके कहनेसे आर्हती दीक्षा धारण करनेवाले आचार्य उपाध्याय साधु भी उसीमें आ जाते हैं) 'दर्शनं पापनाशनं' वह दर्शन अर्थात् अरहंतदेवका दर्शन करना पापोंका नाश करनेवाला है। 'दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम्' वही दर्शन स्वर्गकी सीढी है और मोक्षका कारण है। इसप्रकार इसका अर्थ समझना चाहिये।

'अवर्ण इवर्णे ए' अर्थात् 'इवर्ण परे रहते अवर्णको ए हो जाता है तथा परका लोप हो जाता है' इस सूत्रसे दा के आकारको ए हो जाता है और इव के इकारका लोप हो जाता है। इस प्रकार दर्शनंदेव ऐसा बन जाता है। इससे सिद्ध होता है कि ये श्लोक किसी साधारण विद्वान्के बनाये हुये नहीं हैं किंतु किसी बडे विद्वान्के बनाये हुये हैं और इसमें पुनरुक्त आदि कोई दोष नहीं है। निर्दोष पाठ है।

१६८। चर्चा एकसो अढसठवीं।

पहले पूजाके प्रकरणमें लिखा है कि पूजा करनेवालेको भगवानके चरणस्पर्शित पुष्पमाला तो कंठमें धारण करना चाहिये प्रभुके चरणस्पर्शित चंदनका तिलक लगाना चाहिये वा समस्त शरीरमें आभूषणोंकी रचना करनी चाहिये तथा जिनपादार्चनके अक्षत ललाटमें लगाना चाहिये, ऐसा लिखा है। सो यह लिखना अत्यन्त विपरीत है क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष निर्माल्यका दोष आता है। तथा जैनशास्त्रोंमें निर्माल्यके समान और कोई पाप नहीं बतलाया है। इसलिये ऐसा कहना अथवा करना महा पापकारी है। ऐसा श्रद्धान जैनियोंका नहीं हो सकता अन्य मतियोंका हो सकता है।

भगवानकी मूर्तिके चरणादिकमें चंदन केसर आदि गंध लगाना तथा भगवानके चरणस्पर्शित पुष्प और पुष्पमाला पहनना आदि समस्त श्रद्धान विपरीत है। इसमें महा पापका बंध होता है। इसलिये ऐसा श्रद्धान त्याग करने योग्य है। ऐसा श्रद्धान वा ज्ञान वा आचरण कभी योग्य नहीं गिना जा सकता। ऐसा ज्ञान श्रद्धान बडे बडे अनर्थोंका मूल है इसलिये ऐसा कथन न हमें मान्य है और न हम ऐसा करनेको तैयार हैं।

समाधान—विना शास्त्रोंको समझे और विना निश्चय किये ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। भगवानके चरणस्पर्शित पुष्पमाला की महिमा क्या है और अपने मस्तक पर तथा कंठमें किसने धारण की है उसका थोडासा कथन यहांपर लिखते हैं—

भव्य जीवोंको सबसे पहले जल गंध अक्षत पुष्पादिकसे भगवानकी पूजा करनी चाहिये फिर भगवानके चरणस्पर्शित पुष्पमालाको अपने कंठमें धारण करना चाहिये तथा चरणस्पर्शित शेषगंधका ललाटमें तिलक लगाना चाहिये। ऐसा वर्णन त्रिवर्णाचार में लिखा है। यथा—

जिनांघ्रिस्पर्शितां मालां निर्मले कंठदेशके। ललाटे तिलकं कार्यं तेनैव चंदनेन च ॥

यहांपर जो चकार है उसका अर्थ तिलकपर पूजाके अक्षत लगाना समझना चाहिये। यदि इस कथनको कोई न माने तो जिनप्रतिष्ठापाठमें भी ऐसा ही लिखा है। जिनपदवीकी स्पर्शित पुष्पमाला तीनों लोकोंके ऊपर अनुग्रह करने योग्य है। सो ऐसी यह माला स्वर्गलोककी लक्ष्मी मिलानेके लिये दूतीके समान है। इसलिये जिनपदस्पर्शित श्रेष्ठ पुष्पमाला भव्य जीवोंको आशिकाके लिये मस्तकपर धारण करनी चाहिये। सो ही प्रतिष्ठापाठमें लिखा है—

जिनांघ्रिस्पर्शमात्रेण त्रैलोक्यानुग्रहक्षमां। इमां स्वर्गरमां दूतीं धारयामि वरस्रजम् ॥

भगवज्जिनसेनाचार्यने भी आदिपुराणके ब्यालीसवें पर्वमें ऐसी मालाके लिये लिखा है। जिस प्रकार उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए बालक अपने गुरुकी मालाको अपने मस्तकपर धारण करते हैं उसी प्रकार उनको भगवानके चरण स्पर्शित माला भी अपने मस्तक पर धारण करना चाहिये। सो ही आदिपुराणमें लिखा है—

तथाहि कुलपुत्राणां माल्यं गुरुशिरोधृतम्। मान्यमिव जिनेंद्राघ्रिस्पर्शितमालयांगभूषितम्।

जिनयज्ञ कल्पकी वृत्तिमें लिखा है कि श्री जिनेश्वरके चरण स्पर्शित पूजाकी माला महाभिषेकके अंतमें बहुतसा धन देकर लेनी चाहिये। यह माला अनर्घ्य (अमूल्य) है। इसलिये भव्य जीवोंको अवश्य ग्रहण करनी चाहिये। सो ही वृत्तिमें लिखा है—

श्रीजिनेश्वरचरणस्पर्शितानर्घ्यापूजाप्रतना मा माला महाभिषेकावसाने बहुधनेन ग्राह्या भव्यश्रावकेनेति।

इससे भी ऊपरकी बात ही सिद्ध होती है।

श्रीअजितनाथकी माता जयसेनाने पहले कुमार अवस्थामें पर्वका उपवास कर पारणाके दिन भगवानकी पूजा कर तथा उनके पदस्पर्शित पूजाकी परम पवित्र पुष्पमाला पापोंका नाश करनेके लिये सभामें आकर अपने पिताको दी थी तथा राजाने बडी भक्तिसे अपने दोनों हाथोंसे लेकर अपने मस्तक पर धारण की थी। तदनंतर अपनी पुत्रीको पारणाके लिये विदा किया था। सो ही अजितपुराणमें लिखा है—

जयसेनापि सद्धर्मं तत्रादायैकदा मुदः। पर्वोपवासपरिम्लानतनुरभ्यर्च्य सार्हतः ॥
तत्पादपंकजाश्लेषा पवित्रा पापहानये। चित्रा पित्रापि तद्दत्ताभ्यां हस्ताभ्यां विनयेन च ॥

तामादाय महीनाथो भक्तश पश्य जयाभिधाम् । उपवासपरिश्रान्तां पारयेति विसर्जताम् ।

इस प्रकार लिखा है ।

तिलकके लिये शास्त्रोंमें लिखा है कि देव पूजाकी वस्तुओंमेंसे पूजा करनेके वाद एक तो गंधोदक दूसरा जिनपादस्पर्शित-शेषगंध और पूर्वोक्त जिनपादस्पर्शित पुष्प अथवा पुष्पोंकी माला ग्रहण करनी चाहिये । देखो—

देवस्यार्चनसारवस्तुनिचयाद् गंधाबु पुष्पत्रयम् ।

जिनयज्ञकल्पमें भी लिखा है—

पूज्यपूजावशेषेण गोशीर्षेण हृनालिना । देवाधिदेवमेवार्ये स्ववपुश्चर्चयेत्सुधीः ॥

पूजासारमें भी लिखा है कि पूजा करनेवालेको जिनार्चित गंधसे तिलक करना चाहिये और जिनार्चित चरणस्पर्शित पुष्प-माला विनयसे मस्तकपर धारण करनी चाहिये । सो ही लिखा है—

पुण्याहं घोषयित्वा तदनु जिनपते पादपद्मार्चितां श्री-
शेषां संधार्य मूर्ध्ना जिनपतिनिलयं त्रिःपरीत्य त्रिशुध्या ॥
आनम्येषं विसृज्यामरगणमपि यः पूजयेत्पूज्यपादं
प्राप्नोत्येवाशु सौरुयं भुवि दिवि विबुधाः देवनंदीडितं सः ॥

पूजासारमें इस प्रकार लिखा है ।

जिनक्रमाब्जयुगयोगविशुद्धगंधं संबंधवंधुरदिलेपविशुद्धगात्रः ।
तेनैव मुक्तिवशकृत्तिलकं विधाय श्रीपादपुष्पधरणं शिरसा वहामि ।

१—२ इनका अर्थ इनके ऊपर लिखा है। ३—भगवानकी पूजासे बचे हुये गंधसे पूजकको भगवानकी पूजा करनेके लिये तिलक लगाना चाहिये ४ पुण्याहवाचन पढकर जिनदेवके चरण स्पर्शित शेषाको मस्तकपर धारण कर जिनालयकी तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार कर देवगणोंका विसर्जनकर जो भगवानकी पूजा करता है वह स्वर्गोंके सुख प्राप्त करता है ।

(भगवानके चरण कमलोंके संबंधसे अत्यंत विशुद्ध हुए गंधसे विलेपन कर शरीरको पवित्र करता हुआ तथा उसी गंधसे मुक्तिको वश करनेवाला तिलक लगाकर मैं अपने मस्तकपर भगवानके चरणस्पर्शित मालाको धारण करता हूं।

भगवानके चरण स्पर्शित पुष्पोंको कंठमें धारण करनेका कथन इस प्रकार है।

करकंडूके पूर्वभवमें गोपालने श्रीमुनिराजके उपदेशसे पुष्पराज और सेठके साथ एक सहस्रदलका कमल भगवानके चरणोंपर क्षेपण किया था जिससे उसको महा पुण्यका बंध हुआ था। तथा उसी पुण्यसे वह राजा करकंडू हुआ था। इसकी कथा आराधना-कथाकोशमें विस्तारसे लिखी है। यथा—

तदा गोपालकः सोपि स्थित्वा श्रीमज्जिनागृतः।
भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्मं गृहाणेदमिति स्फुटम्॥
उक्त्वा जिनेन्द्रपादाब्जो परिक्षिप्त्वा सुपंकजम्॥

इत्यादि पाठ है। इसका अर्थ ऊपर लिखे अनुसार है।

तथा मुनिराजके उपदेशसे मैना सुन्दरीने सिद्धचक्रकी पूजाकी थी। उस पूजामें भगवानका अभिषेक किया था चरणोंपर गंध लगाया था और उन चरणोंपर पुष्प चढाये थे। इसप्रकार पूजा करनेके बाद वह अभिषेकका गंधोदक तथा पूजाका गंध और पुष्प ये तीनों ही चीजें मैना सुन्दरीने कुष्ट (कोढ) रोगको दूर करनेकेलिये अपने पति श्रीपालको तथा उनके अंगरक्षक सातसौ योद्धाओंको बडे हर्षसे दिया था। सो ही श्रीपालचारित्रमें लिखा है।

तत्र नंदीश्वराष्टम्यां सिद्धचक्रस्य पूजनम्। चक्रे सा विधिना द्रव्यैर्जलैः कर्पूरचन्दनैः॥
अक्षतैश्चंपकाद्यैश्च पक्वान्नैर्वरदीपकैः। धूपैः सुगंधिभिर्भक्त्या नालिकेरादिसत्फलैः॥
तद्विलेपनगंधांबुपुष्पाणि सा ददौ मुदा। श्रीपालायांगरक्षेभ्यः पाणिभ्यां रुग्विहानये॥

यहांपर भी गंधपुष्प ऊपर चढाना लिखा है। दूर चढाना नहीं लिखा है।

तदनंतर मैनासुंदरीने मुनिराजके उपदेशानुसार सिद्धचक्रके मंत्रोंके द्वारा चमेली आदिके पुष्पोंसे सिद्धचक्रके यंत्रके ऊपर ही जप किया है अर्थात् जपके पुष्प उसके ऊपर ही रक्खे हैं ऐसा श्रीपालचरित्रमें लिखा है। यथा—

यंत्रस्योपरि दातव्या अष्टोत्तरशतप्रमा । जाप्या एकाग्रचित्तेन जातिपुष्पेन धीधनैः ॥

यही बात श्रीगुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराणमें श्रीशांतिनाथ पुराणमें लिखी है । यथा—

स्वयंप्रभापिसद्धर्मं तत्रादायैकदा मुदा । पर्वोपासपरिम्लानतनुरभ्यर्च्य चार्हतः ॥

तत्पादपंकजाश्लेषपवित्रां पापहां स्रजम् । तां पित्रेपि तदुद्धृत्याभ्यां हस्ताभ्यां विनयानतः ॥

तामादाय महीनाथो भक्त्यापश्यत्स्वयंप्रभाम् । उपवासपरिश्रांतां पारयेति व्यसर्जयत् ॥

यशस्तिलकचंपूमें भी लिखा है ।

पुष्पं त्वदीयचरणार्चनपीठसंगात् चूड़ामणिर्भवति देव ! जगत्त्रयस्य ।

अर्थात् हे देव ! आपके चरणोंकी पूजाके सिंहासनके संबंधसे पुष्प भी तीनों लोकोंका चूड़ामणि होजाता है ।

धर्मरसिकमें भी लिखा है ।

त्रिःपरीत्य जिनाधीशं भक्त्या नत्वा पुनः पुनः । जिनांघ्रिस्पर्शनात्पूतां शेषां शिरसि धारयेत् ॥

अर्थात्—भगवानकी तीन प्रदक्षिणा देकर तथा भक्ति पूर्वक बार बार नमस्कार कर भगवानके चरणोंके स्पर्शसे पवित्र हुई शेषाको मस्तक पर धारण करना चाहिये ।

देवपूजाके प्राचीन पुस्तकोंके पाठमें पूजाकी प्रतिज्ञाके समय पूजकको मंत्रोंके द्वारा सब जगह जिनप्रतिमाके ऊपर पुष्पक्षेपण करनेका विधान है । यथा—

ओं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

कथाकोशमें मुकुटसप्तमीकी एक कथा है वह इसप्रकार है । एक सेठके एक कन्या थी उसने श्रीमुनिराजसे मुकुटसप्तमीका व्रत लिया था, उसकी विधिमें मुनिराजने बतलाया था कि श्रावण शुक्ला सप्तमीका उपवास करना चाहिये । उस दिन भगवानका अभिषेक कर पूजा करनी चाहिये । पुष्पोंकी माला पहनाना चाहिये तथा पुष्पोंका मुकुट श्रीजिनबिंबके मस्तक पर धारण कर कहना चाहिये कि हे जिनवर ! आप मुक्तिस्त्रीके वर हो इसीलिये आपके लिये यह मुकुट और माला पहनाई जाती है । उन मुनिराजके उपदेशानुसार उस कन्याने ऐसा ही किया था सो ही व्रतकथाकोशमें मुकुटसप्तमीकी कथामें लिखा है—

शुक्लश्रावणमासस्य सप्तमीदिवसेऽर्हताम् । स्नपनं पूजनं कृत्वा भक्त्याष्टविधमूर्जितम् ॥
वध्यते मुकुटं मूर्ध्नि रचितं कुसुमोत्करैः । कंठे श्रीवृषभेशस्य पुष्पमाला च धार्यते ॥
मुक्तिस्वयंवरास्त्रक् ते समक्षं सर्वभूभुजाम् । कंठभूत्तहृदे कंठे तवार्हन् कुसुमस्रजम् ॥
इत्युक्त्वा मालतीकुंदकुमुदादिसमुद्भवाम् । धारयेदर्हतः कंठे मालां पुण्याप्तिहेतवे ॥

इसप्रकार कथाकोशमें है इनका अर्थ ऊपर लिख चुके हैं सो वहांसे कथासहित देख लेना चाहिये ।

मैनासुन्दरीने भी श्रीमुनिराजके उपदेशानुसार सिद्धचक्रकी पूजा अभिषेक कर अपने पतिको तथा उनके सातसौ साथियोंको वह गंधोदक पुष्प और चंदन दिया था और उसीसे उनका कोढ़ रोग दूर हुआ था । जैसा कि श्रीपालचरित्रमें लिखा है—

इति वृद्धिक्रमेणैषा सिद्धान् प्रपूज्य भक्तितः । ददौ मंत्रैंगरक्षेभ्यस्तत्पुष्पोदकचन्दनम् ॥

इसके सिवाय श्रीगोमट्टस्वामीकी वंदना कहते समय निर्वाणकांडके पाठमें लिखा है कि देव लोग पांचसौ धनुष ऊंची उस गोमट्टस्वामीकी प्रतिमापर केशर और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं । यथा —

गोमटदेवं वंदमि पंचसयधणुहदेहउच्चंतं । देवा कुणंति विट्ठी केसरकुसुमाणि तस्स उवरम्मि ॥

इसके सिवाय और भी अनेक जैनपुराणोंमें यह कथन लिखा है, वहांसे जान लेना चाहिये तथा पूजाके पाठोंमें सब जगह लिखा ही है । यथा —

सुजातिजातैः कुमुदाब्जकुंदैः मंदारमालावकुलादिपुष्पैः ।
मत्तालिमालामुखरैर्जिनेन्द्रपादारविंदद्वयमर्चयामि ॥

इसका अभिप्राय यह है कि पूजा करनेवाला पूजाके समय कहता है कि जुई, कमोदनी, कमल कुंद मंदारजातिके पुष्प मौलिश्री आदि उत्तमोत्तम आदि सुगंधित पुष्पोंसे तथा और भी अनेक प्रकारके पुष्पोंसे जिनपर मदोन्मत्त भ्रमरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं ऐसे सुन्दर पुष्पोंसे मैं भगवानके दोनों चरणकमलोंकी पूजा करता हूं । इत्यादि वर्णन है ।

कदाचित् यहांपर कोई यह कहे कि हम जो पूजा पाठ रोज पढ़ते हैं उसमें यदि लिखा हो तो हम मानेंगे नहीं तो नहीं । उनके

लिये कहते हैं। पहले अनेक ग्रंथोंके प्रमाण दिये उनको न मानना और केवल हठवाद करना योग्य नहीं है। यदि हमारे दिये हुये प्रमाण न माननेका ही हठ है तो तुम जो नित्यपूजापाठ पढते हो उसमें भी पुष्प कहे हैं। यथा—

कुंदारविंदप्रमुखप्रसूनैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥

अर्थात् 'मैं कुंद कमल आदि पुष्पोंसे जिनेन्द्र सिद्धांत और यतियोंकी पूजा करता हूं' ऐसा लिखा है तथा सिद्धपूजामें भी लिखा है 'सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः' अर्थात् श्रेष्ठ गंध अक्षत पुष्पमाला और नैवेद्यसे पूजा करता हूं' यहांपर पुष्पमालासे पूजन करना बतलाया है। कहांतक कहा जाय बहुतसे पाठ हैं वे सब लिखे भी नहीं जा सकते। विवेकियोंको तो एक ही ग्रंथका प्रमाण बहुत है तथा न समझनेवालोंके लिये बहुतसे प्रमाण भी हितरूप नहीं हो सकते। इसप्रकार जिनांघ्रि पर गंध और पुष्प लगानेका वर्णन किया।

भगवानके चरणस्पर्शित गंध पुष्प ही उनके चरणोंकी रज है। वह भव्य जीवोंको गंधोदकके समान मस्तकपर लगाना योग्य है। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं। यह रज बडे पुण्यसे प्राप्त होती है। इसके लगानेसे जीवोंके बडे बडे पाप कट जाते हैं। देखो पूजासारमें लिखा है—

ब्रह्मघ्नोऽथवा गोघ्नो वा तस्करो वान्यपापकृत्। जिनांघ्रिगंधसंपर्कान्मुक्तो भवति तत्क्षणे ॥

अर्थात् 'जिसने गौ वा ब्राह्मणकी हत्या की हो अथवा चोरी की हो तथा स्त्री बालक कन्याका वधरूप अन्य पाप किये हों सो भी भगवानके चरणस्पर्शित गंधके संबंधसे तिलक लगानेसे उसी क्षणमें उन पापोंसे मुक्त हो जाता है।' इसप्रकार जिनांघ्रिस्पर्शित (भगवानके चरणकमलोंसे स्पर्शित) गंध अर्थात् चंदन केसर आदिका माहात्म्य है।

इसमें इतना और समझ लेना चाहिये कि चंदन केसर अथवा पुष्प वा पुष्पमालामें पापोंके काट देनेका गुण नहीं है उसमें तो केवल सुगंधित होनेका ही गुण है। यह गुण तो भगवानके चरणोंका है। उन चरणोंके संबंधसे उनका स्पर्श करनेसे ही उस गंध वा पुष्पोंमें वह गुण आ जाता है।

इसीप्रकार जिनगंधोदकमें भी भगवानके शरीरके स्पर्शसे वह पापोंके काटनेका गुण आ जाता है। केवल चंदन केसर आदि मिले जलमें केवल शीतल और सुगंधित होनेके सिवाय और कोई गुण नहीं है। पाप काटनेका गुण उसमें केवल भगवानके स्पर्श-मात्रसे होता है। इसीप्रकार गंध और पुष्पोंमें समझना चाहिये। गंधोदकमें तथा गंधमें कुछ हीनाधिकता नहीं है। इसीप्रकार पुष्प अक्षतोंमें भी कुछ अंतर नहीं है। ऐसा समझ लेना चाहिये। सो ही लिखा है—

अंगुलग्रमिति देश जिनपादार्चिताक्षतान् । सुगंधलेपनस्योर्ध्वं मध्ये भाले धरेद् गृही ॥

अर्थात् 'गृहस्थोंको जिनपादार्चित अक्षत सुगंध लेप वा तिलकके ऊपर उंगलीके अग्रभागप्रमाण ललाटपर लगाना चाहिये।' यहांपर इतना और समझ लेना चाहिये कि निर्माल्य भक्षणका दोष अक्षतोंके खानेसे होता है विना खाये नहीं। आसिकाके अक्षत तो मस्तकपर धारण करने ही योग्य है। देखो सुलोचनाने अपने पिता राजा अकंपनको पुष्प मालादिक पूजाकी आसिका दी थी। सो ही आदिपुराणमें लिखा है—

विधायाष्टाह्निकीं पूजामभ्यर्च्यार्चां यथाविधि। कृतोपवासा तन्वंगी शेषान् दातुमुपागता ॥ ६२ ॥
नृपं सिंहासनासीनं सोऽप्युत्थाय कृतांजलिः। तद्दत्तशेषानादाय विधाय शिरसि स्वयम् ॥
उपवासपरिश्रान्ता पुत्रिके त्वं प्रयाहि हि। शरणं पारणाकाल इति कन्यां व्यसर्जयत् ॥

भावार्थ—सुलोचनाने उपवास पूर्वक अष्टान्हिकाकी पूजाकी फिर वह सिंहासन पर बैठे हुए राजा अकंपनको उस पूजाकी शेषा देनेके लिये सभामें गई। राजाने उठकर हाथ जोडकर वह शेषा ली और स्वयं अपने मस्तक पर रक्खी। फिर पुत्रीको पारणाके लिये विदा किया।" इस प्रकार लिखा है।

गंध गंधोदक पुष्प अक्षत आदि बडी भक्तिसे विनयपूर्वक अपने मस्तक आदि उत्तमांगमें यथायोग्य रीतिसे धारण करना योग्य है। इनका धारण करना बडे पुण्यबंधका कारण है। तथा महा पापोंको नाश करनेवाला है। जो भाग्यहीन हैं वे ही इसकी अवज्ञा करते हैं। यही अनेक रोगोंको दूर करनेवाला है। गंध गंधोदक तथा पुष्पादिककी कथा जैन शास्त्रोंमें श्रीपाल आदि अनेक भव्य जीवोंके चरित्रोंमें लिखी है। तथा इन सबकी महिमा समस्त शास्त्रोंमें वर्णन की है।

एक यह बात भी समझने योग्य है कि भगवानके चरणस्पर्शित गंध तथा पुष्पोंकी ही चरणरज संज्ञा है। भगवानके चरणोंमें मार्गमें चलनेसे लगी हुई धूलिकी तो संभावना ही नहीं है फिर चरणरजका वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है परंतु ग्रंथोंमें चरणरजके लगानेसे अनेक रोगादिकोंका नाश होना बतलाया है इससे सिद्ध होता है कि भगवानके चरणस्पर्शित गंध धूपको ही चरणरज कहते हैं। जो कोई भीषण जलोदर आदिका रोगी भी इसको लगाता है उसका शरीर भी देवोंके समान अत्यंत रूपवान् होजाता है। इससे जीवोंके समस्त रोग नष्ट होजाते हैं। जिसका शरीर जलोदर आदि अनेक रोगोंसे जर्जरित होगया है, जिसकी

शोचनीय अवस्था होगई है मृत्युके निकट पहुंच चुका है, जीवित रहनेकी जिसकी आशा छूट चुकी है ऐसा मनुष्य भी यदि भगवानके चरणरजको लगावे तो उसके समस्त रोग नष्ट होजाते हैं तथा वह कामदेवके समान सुंदर होजाता है। ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है सो यह गुण जल गंध अक्षत पुष्प आदिमें नहीं है किंतु भगवानके चरणोंके स्पर्श करनेसे उनमें यह गुण आजाता है। सो ही श्रीमानतुंगाचार्य श्रीवृषभनाथकी स्तुतिमें (भक्तामरमें) कहा है।

[1]उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः, शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ॥
त्वत्पादपंकजरजोमृतदिग्धदेहाः, मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥

इसलिये भगवानके चरणस्पर्शित गंध पुष्प सदा ही बंदना करने योग्य हैं। जो कोई पुरुष विना समझे इसकी निंदा करते हैं उनके कर्मका बंध होता है। इसलिये ऊपर लिखे अनुसार तिलक आदि देकर भव्य जीवोंको भगवानकी भक्ति करनी चाहिये।

प्रश्न–यदि कोई तिलक न करे तो क्या दोष है। यह तो इच्छा पर निर्भर है करें या न करें?

समाधान–जैनी श्रावकको विना तिलकके रहनेकी मनाई है। शास्त्रोंमें लिखा है कि णमोकार आदि मंत्रोंके जप, होम, सत्पात्रोंको दान, जैनशास्त्रोंका पांचों प्रकारका स्वाध्याय पितृतर्पण, जिनेन्द्रदेवकी पूजन तथा शास्त्रश्रवण आदि कार्य विना तिलक लगाये कभी नहीं करने चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि पहले तिलक कर लेना चाहिये पीछे ऊपर लिखे कार्य करने चाहिये। सो ही लिखा है।

[2]जपो होमस्तथा दानं स्वाध्यायः पितृतर्पणम्। जिनपूजाश्रुताख्यानं न कुर्यात्तिलकं विना ॥

कदाचित् कोई यह कहे कि "भगवानके चरणोंके गंध लगाना सरागताका कारण है तथा अयोग्यता आदि अनेक दोषोंको उत्पन्न करनेवाला है परंतु ऐसा कहना भी बडे अनर्थका कारण है। यदि यह कहना ठीक है तो इसको कहनेवाले शास्त्रोंका प्रमाण देना चाहिये। भगवानके चरण कमलोंमें केशर चंदन आदिके लगानेका किन किन शास्त्रोंमें निषेध हैं उनको लिखना चाहिये। अमुक शास्त्रमें अमुक गाथामें तथा अमुक भाषा वचनिकामें गंधादिकके लगानेका निषेध है सो बतलाना चाहिये। केवल अपनी इच्छानुसार मुखसे ही कहना या लिखना योग्य नहीं है। विना प्रमाणके ऐसा कहना बडी बात है, छोटी नहीं है इसलिये ऐसी बात न लिखनी चाहिये न कहनी चाहिये।

१–२ इनका अर्थ उनके ऊपर लिखे अनुसार है।

प्रश्न—भगवानके चरणोंपर गंध लगाना कहां कहा है ?

समाधान—गंधका लगाना ऊपर पुष्पादिकके वर्णनमें कह ही चुके हैं तथा जिन जिन शास्त्रोंमें (जैनमतके शास्त्रोंमें) पूजाका प्रसंग आया है वहां ही इसका वर्णन लिखा है। उनमें कुछ शास्त्रोंके नाम श्लोक गाथा आदि लिखते हैं।

श्रीशुभचन्द्रस्वामी विरचित सहस्रगुणी पूजामें लिखा है।

परिमलविमलाढ्यैरिन्दुकश्मीरमिश्रैः निखिलमिलितद्रव्यैश्चन्दनैर्वाणपेयैः।
शिवसदननिविष्टं नाद्यनंतं प्रयुक्तं दशशतकरधारं चर्चये सिद्धचक्रम्।

अर्थात् कर्पूरादि मिले हुये घिसे चन्दनसे सिद्धचक्रकी चर्चना (पूजा) करता हूं।

सकलकीर्तिविरचित श्रीशांतिनाथ पुराण संधि ७ श्लोक १३१ में लिखा है।

स्वच्छनीरैः पवित्रैश्च दिव्यैः गंधविलेपनैः। मुक्ताफलादिजैः सारैरक्षतैः स्वर्गसंभवैः।
चंपकादिमहापुष्पैर्नैवेद्यैश्च चतुर्विधैः। ज्वलद्द्वीपैर्महाधूपैः फलैः कल्पद्रुमादिजैः॥

अर्थात् स्वच्छ पवित्र जलसे, दिव्य गंधके विलेपनसे, मुक्ताफलादिक अक्षतोंसे, चम्पक आदि पुष्पोंसे नैवेद्य दीप धूप फलोंसे भगवानकी पूजा करता हूं।

प्रतिष्ठासारमें भी लिखा है—

कर्पूरजोंगकलवगत्रुटिप्रयंगुकंकोलपूर्वककरंवितचन्दनोघैः।
दूरं स्फुरत्परिमलैर्जिनभर्तुरारात् विद्राणसौरभ मदैरपि चर्चयेंघ्रिम्।

अर्थात् "कपूर लौंग कंकोल आदि मिले हुये चन्दनसे भगवनके चरणकमलों को चर्चता हूं"

वसुनन्दिकृत प्रतिष्ठापाठमें लिखा है।

कर्पूरैलालवंगादिद्रव्यमिश्रितचन्दनैः। सौगंधवासिताशेषदिङ्मुखैश्चर्चयेज्जिनम्।

अर्थात् "सब दिशाओंको सुगंधित करनेवाले कपूर इलायची लौंग आदि द्रव्योंसे मिले हुये चन्दनसे मैं भगवानकी पूजा करता हूं।

भावसंग्रहमें भी लिखा है।

चंदण सुयंध लेऊ जिणवर चरणेसु कुणइ जो भविओ। लहइ तणू विकिरियं सुहाय सुपधयं विमलं ॥

अर्थात् "जो भव्य भगवानके चरण कमलोंपर चंदनका लेप करता है। वह बहुत उत्तम सुगंधित वैक्रियिक शरीर पाता है।

पद्मनंदिआचार्य कृत पद्मनंदिपंचविंशतिकामें भी लिखा है।

यद्वद्वचो जिनपते भवतापहारी नाहं सुशीतलमपीह भवामि तद्वत्।
कर्पूरचन्दनमितीव मयार्पितं सत् त्वत्पादपंकजममाश्रयणं करोति।

अर्थात् जिसप्रकार भगवानके वचन संसारतापको नाश करनेवाले हैं उसप्रकारकी शीलतता मुझमें नहीं है परंतु मैं ऐसा शीतल होना चाहता हूं इसीलिये कर्पूर चंदनको समर्पण करता हूं

धर्मकीर्तिकृत नन्दीश्वर पूजामें भी लिखा है।

कर्पूरकुंकुमरसेन सुचन्दनेन ये जैनपादौ परिलेपयन्ति।
तिष्ठंति ते भविजनाश्च सुगंधगंधा दिव्यांगनापरिवृताः सततं वसंति।
विलेपनं गंधसुगंधद्रव्यैर्येषां प्रकुर्वन्त्यमराश्च तेषाम्।
कुर्वेहमंगे वरचन्दनाद्यैर्नन्दीश्वरद्वीपजिनाधिपानाम्।

अर्थात् जो भव्यजन कपूर कुंकुम चन्दन आदिसे भगवानके चरणोंको लिपन करते हैं वे सुगंधित शरीरको धारण कर सुन्दर देवांगनाओं सहित स्वर्गमें निवास करते हैं। नदीश्वरद्वीपमें विराजमान जिनप्रतिमाओंके अंगमें देवगण सुगंधित द्रव्योंसे लेप करते हैं इसीलिये मैं नन्दीश्वर द्वीपमें विराजमान भगवान के चरणों पर चन्दनका लेप करता हूं।

त्रिवर्णाचारमें भी लिखा है।

जिनांघ्रिचन्दनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत्। यज्ञोपवीतसूत्रं च कटिमेखलया युतम् ॥

अर्थात् भगवानके चरण स्पर्शित चंदनसे अपने शरीरपर लेप करना चाहिये तथा यज्ञोपवीत और कटिमेखला धारण करनी चाहिये।

मुक्तावलिपूजामें भी लिखा है—

सद्गंधसारघनसारविलेपनैश्च गंधागतालिकुलजाततरुप्रकांडैः ।
उद्यापनाय जिनपादसरोजयुग्मं मुक्तावलीव्रतपरस्य यजेति भक्त्या ॥

अर्थात् 'मुक्तावलीव्रतके उद्यापनके लिये भगवानके चरणकमलोंको चंदनसे लिपन करना चाहिये ।

श्रीपालचरित्रमें सिद्धपूजाके समय लिखा है—

मिश्रकुंकुमकर्पूरसुगंधचंदनद्रवैः । हेमादिभाजने सिद्धचक्रमुद्वृत्य भक्तितः ॥

अर्थात् 'सुवर्णादिकके पात्रमें कपूर चंदनादिकसे सिद्धचक्र यंत्रको उद्वर्तन (विलेपन) करना चाहिये ।

अभयनंदिसूरिकृत श्रेयोविधानमें लिखा है—

काश्मीरपंकहरिचंदनसारसांद्रनिष्पंदमाभिरुचितेन विलेपनेन ।
अव्याजसौरभतनोः प्रतिमां जिनस्य संचर्चयामि भवदुःखविनाशनाय ॥

अर्थात् 'संसारके दुःख दूर करनेके लिये मैं भगवानकी प्रतिमाको (उनके चरणोंको) केशर चंदन आदिसे विलेपन कर पूजन करता हूं ।

श्रीप्रभाकरसेनप्रतिष्ठापाठमें लिखा है—

यश्चन्दनैश्च नवकुंकुमजैं जिनस्य कर्पूर.......................... विलपंति देहम् ।

अर्थात् जो भगवानके शरीरको (चरणोंको) चंदनादिकसे विलेपन करता है ।

श्रीआशाधरकृत जिनयज्ञकल्पमें लिखा है—

काश्मीरकृष्णागरुगंधसारकर्पूरपौरस्त्यविलेपनेन ।
निसर्गसौरभ्यगुणोल्बणानां संचर्चयाम्यंघ्रियुगं जिनानाम् ॥

अर्थात् स्वभावसे ही अत्यन्त सुगंधित ऐसे भगवानके चरणकमलोंको केशर कपूर चन्दन आदि द्रव्योंसे विलेपन कर पूजन करता हूं।

त्रिकालचतुर्विंशतिका पूजामें लिखा है—

गंधसारघनगंधविलेपैर्गंधसारहिमकुंकुमयुक्तैः। गंधसारहिमलिंदिकवृंदैर्यायजीमि ऋषभादिजिनेंद्रान् ॥

अर्थात् 'मैं ऋषभादि जिनेन्द्रोंको चन्दनादिकसे विलेपन कर पूजन करता हूं।'

श्रीयोगीन्द्रदेवकृत प्राकृतश्रावकाचारमें दोधक छंदमें लिखा है—

'जो जिणु चंदन चच्चइइए'

अर्थात् जो भगवानको चंदनसे चर्चता है।

प्रथमपुराणकी संधि २३ श्लोक १०६ में लिखा है—

अथोत्थाय तुष्टाः सुरेन्द्राः स्वहस्तैर्जिनस्यांघ्रिपूजां प्रचक्रुः प्रतीताः ॥
सुगंधैः समाल्यैः सदीपैः सधूपैः, सदिव्याक्षतैः प्राज्यपीयूषपिंडैः ॥

अर्थात् इंद्र संतुष्ट होकर खडे हुए और उन्होंने गंध माला दीप धूप अक्षत चरु आदिसे स्वयं भगवानके चरणकमलोंकी पूजा की।

पूजासारमें लिखा है—

क्षोदैः कर्पूरमिश्रैर्वहलपरिमलाकृष्टभृंगांगनानां
मोदैः स्वर्गापवर्गफलममलमतं चंदनैः क्ष्मारुहाणाम् ॥
नैःफल्यं नेति शैत्यं प्रथयतुनिलेनाप्नुवद्भिः दिगन्तान्
गंधैः संबंधनीयं त्रिजगदधिपतेः पादमापादयामि ॥

अर्थात् भगवानके चरण कमलोंको अत्यंत सुगंधित कपूर चंदन आदिसे विलेपन करता हूं।

पूजासारमें दूसरी पूजामें लिखा है—

समृद्धभक्त्या परया विशुद्ध्या, कपूरसन्मिश्रितचन्दनेन ॥
जिनस्य देवासुरपूजितस्य, सुलेपनं चारु करोमि मुक्त्यै ॥

ओं ह्रीं अर्हं सर्वकर्मविलेपनरहितपवित्राय नमः उद्वर्तनम् ।

अर्थात् "मोक्ष प्राप्त करनेके लिये इन्द्रोंसे पूज्य भगवानको बडी भक्तिसे चन्दनादिकसे विलेपन करता हूं। समस्त कर्मोंके विलेपनसे रहित भगवानका उद्वर्तन (उवटन) करता हूं।

भगवदेकसंधिकृत जिनसंहितामें लिखा है।

ओं चन्दनेन कर्पूरविमिश्रेण सुगंधिना व्यालिंपामो जिनस्यांघ्रिः निलंपाधीश्वरार्चितः ।

अर्थात् इन्द्रोंके द्वारा पूज्य भगवानके चरणोंको कपूरचंदन आदिसे लेपन करता हूं।

शांतिचक्रविधानमें लिखा है—

श्रीचंदनमुदा चर्चे चंद्रगर्भैः स्फुरत्प्रभैः । दिव्यतेजोमयं शांतिमंत्रात्मानमघच्छिदे ॥

अर्थात् पापोंको नाश करनेके लिये दिव्य तेजोमय शांतियंत्रको केशर चंदन आदिसे लेपन करता हूं।

अकृत्रिम चैत्यालयकी भाषापूजामें लिखा है—

सौरभेयद्रव्य लेय पादयुग्म चर्चिकें। भवाताप शांत ह्वै जिनेंद्रपीठ अर्चिकें ॥
तीन लोक जैन भौन अकृत्रिम पूजिये। अष्टकर्म भानि सार सौख्यरूप हूजिये ॥

यह चंदन चढ़ानेका है। इसीप्रकार और भी पाठ है, जो चतुर्विंशतिके मंडलपाठमें अलग अलग जिनपादके विलेपन करना कहा है।

देखो सुपार्श्वनाथकी पूजामें लिखा है—

कुंकुमेन कर्पूरेण चंदनेन सुगंधिना। श्रीजिनेन्द्रपदांभोजं विलेपेहं सुभावतः ।

अर्थात् "भगवानके चरण कमलोंको कुंकुम कपूर चन्दन आदिसे लेपन करता हूं।

चन्द्रप्रभ की पूजामें लिखा है।

सुकुंकुमेश्चन्दनचन्द्रमिश्रितैः विलेपयेहं शशिपादपद्म।

अर्थात् "चन्द्रप्रभके चरण कमलोंको कपूर चंदन आदिसे लेपकरता हूं।

शीतलनाथकी पूजामें लिखा है।

सुकुंकुमैः चन्दनेन मिश्रितैः विलेपयामि जिनपादपयोजयुग्मम्।
श्रीशीतलेशं विधिना यजामि संसारतापहननाय सुखाय शांत्यै॥

अर्थात् 'भगवानके चरणकमलोंको कुंकुम चंदन आदिसे लेपन करता हूं।

श्रीश्रेयांसनाथकी पूजामें लिखा है—

सुकुंकुमैश्चंदनचंद्रयुक्तैर्विलेपयेहं जिनपादयुग्मम्।
श्रेयांसदेव परिपूजयेहं त्रैलोक्यनाथार्चितपादयुग्मम्॥

तीनों लोकोंके द्वारा पूज्य ऐसे श्रेयांसनाथके चरणकमलोंको चंदनादिकसे लेपन करता हूं।

श्रीवासुपूज्यकी पूजामें लिखा है—

सुकुंकुमैश्चंदनचंद्रमिश्रितैः विलेपयेहं जिनपादयुग्मम्।
श्रीवासुपूज्यं प्रयजे सदाहं सुवासवानां शतकेन पूज्यम्॥

अर्थात् सौ इन्द्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे श्रीवासुपूज्यके चरणकमलोंको कपूर चंदन आदिसे विलेपन करता हूं।

श्रीविमलनाथकी पूजामें लिखा है—

सुकुंकुमकर्पूरेण चंदनेन विलेपये। विमलजिनपादाब्जं संसारातापहानये॥

अर्थात् 'संसारतापको नाश करनेके लिये विमलनाथके चरणकमलोंको कपूर कुंकुम चन्दन आदिसे विलेपन करता हूं।

श्रीअनंतनाथकी पूजामें लिखा है—

२२७

सचंद्रकर्पूरसुकुंकुमैश्च विलेपयेऽनंतपदाब्जयुग्मम् ।
यजे त्रिकालं वरभावतोऽहं अनंतसौख्याय अनंतनाथम् ॥

अर्थात् 'अनंत सुख प्राप्त करनेके लिये अनंतनाथके चरणकमलोंको केशर कपूर कुंकुमसे विलेपन करता हूं ।

श्रीशांतिनाथकी पूजामें लिखा है—

काश्मीरचंदनसुचंद्रयुतैः सुगंधैः पादारविंदद्वयलेपविलेपनैश्च ।
शोकारिरोगभवदुःखविनाशनाय श्रीशांतिनाथजिनपं प्रयजे सुखाय ॥

अर्थात् शोक रोग आदि संसारके दुःख दूर करनेके लिये केशर चंदन कपूर आदि सुगंधित द्रव्योंसे दोनों चरणकमलोंका विलेपन कर श्रीशांतिनाथकी पूजा करता हूं ।

श्रीअरनाथकी पूजामें लिखा है—

मलयारण्यसंभूतैर्गंधचंदनलेपनैः । दुष्टाष्टकर्मशांत्यर्थं अरनाथमहं यजे ॥

अर्थात् आठों कर्मोंको शांत करनेके लिये मलयागिरके चन्दनसे लेपन कर अरनाथकी पूजा करता हूं ।

श्रीअरिष्टनेमिनाथकी पूजामें लिखा है—

सुकुंकुमैश्चन्दनचन्द्रमिश्रैर्विलेपनैर्नेमिक्रमाब्जयुग्मम् ।
कृष्णप्रभं नेमिजिनं यजेहं सुकंबुकांकं शिवदेविसूनुम् ॥

अर्थात् शंखके चिह्नसहित, शिवदेवीके पुत्र, कृष्णप्रभाको धारण करनेवाले श्रीनेमिनाथके चरणकमलोंको कपूर चन्दन कुंकुम आदिसे लेपन कर पूजा करता हूं ।

श्रीमहावीरस्वामीकी पूजामें लिखा है—

मलयचन्दनकुंकुमचन्द्रजैः सुभवतापहरैः परिलेपनैः ।
परमपावनमुक्तिसुदायकं परियज जिनवीरपदाब्जकम् ॥

अर्थात् चन्दन कपूर कुंकुम आदिसे भगवान वीरनाथके चरणकमलोंका विलेपन कर परम पवित्र और मुक्तिके देनेवाले वीरनाथकी मैं पूजा करता हूं।

इसीप्रकार शांतिचक्र, ऋषिमंडल, पंचकल्याण, कर्मदहन, षोडशकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय, सार्द्धद्वतयद्वीप, इन्द्रध्वज, पंचमेरु नंदीश्वरपूजा आदि अनेक पूजा पाठोंमें लिखा है परंतु ग्रंथका विस्तार होनेके डरसे इन सबके श्लोक नहीं लिखे हैं।

प्रश्न—यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि हमारे भाव लेपन करनेके नहीं हैं इसलिये हम विना लेपन किये ही पूजा करते हैं इसमें क्या दोष है। तुम लेपन करो हम नहीं करते?

समाधान—जिनके चरणकमल केशर चन्दन आदिके रससे लेपन नहीं किये गये हैं ऐसी मूर्तिका जो दर्शन करते हैं वे अज्ञानी हैं। ऐसे लोगोंको ज्ञानहीन कहते हैं। ऐसा वसुनन्दि सिद्धांतचक्रवर्तीकृत जिनसंहिता नामके शास्त्रमें लिखा है। यथा—

अनार्चितपदद्वन्दं कुंकुमादिविलेपनैः। विम्बं पश्यति जैनेन्द्रं ज्ञानहीनः स उच्यते॥

अर्थात् 'कुंकुमादि विलेपनके द्वारा जिनके दोनों चरण चर्चित नहीं किये गये हैं ऐसी जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाके जो दर्शन करता है वह ज्ञानहीन कहलाता है।' इससे सिद्ध होता है कि भगवानके चरण चन्दनसे चर्चे बिना नहीं रखने चाहिये, चंदनका विलेपन जरूर करना चाहिये।

जिनके चरणकमल चन्दनादिकसे चर्चित हो रहे हैं ऐसी प्रतिमाके जो दर्शन नहीं करते वे कभी धर्मात्मा नहीं हो सकते। सो ही वसुनंदिकृत जिनसंहितामें लिखा है—

पश्येन्नो जिनविम्बस्य चार्चितं कुंकुमादिभिः। पादपद्मद्वयं यो हि स भवेन्नैव धार्मिकः॥

अर्थात् जो चन्दनादिकसे चर्चित हुये भगवानके चरणकमलोंके दर्शन नहीं करता वह कभी धर्मात्मा नहीं हो सकता।

जिसने श्रीअरहंतदेवके चरणकमलोंको चन्दनसे विलेपन नहीं किया वह कभी धर्मात्मा नहीं हो सकता ऐसा व्रतकथाकोशमें लिखा है। यथा—

न लिप्तश्चन्दनैरर्हन्

भगवानके चरणकमलोंमें केशर चन्दन लगाना वसुनंदिकृत श्रावकाचारमें भी लिखा है। यथा—

कप्पूरकुंकुमापरुत्तरुक्कमिस्सेण चंदणरसेण । वरवहलपरिमलामोपवासिया सा समूहेण ॥
वासांणुमम्मसंपत्ता मयमत्तालि एव मुहलेण । सुरम उडघट्टचलणं भत्तिए समलहिज्ज जिणं ॥

अर्थात् 'जिसपर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं ऐसे कपूर कुंकुम चंदन आदिसे भक्तिपूर्वक विलेपन करता है वह जिनेन्द्रके समान विभूति पाता है।

सकलकीर्ति कृत सिद्धांतसारप्रदीपककी पन्द्रहवीं संधिमें लिखा है।

तत्र नतोत्तमांगेनार्हन्............अर्चयन्ति महाभूत्या महाभक्त्या महोत्सवैः।
मणिभृंगारनालांतनिर्गतैस्तु जलोत्करैः दिव्यामोदनभोव्याप्तै जगत्सारैर्विलेपनैः।

जो भव्यजीव बड़ी भक्तिसे उत्सवसे विभूतिसे मणिके बने भृंगारकी नालसे निकले जलसे तथा अपनी सुगंधिसे आकाशको व्याप्त करने वाले चन्दनके विलेपनसे भगवानकी पूजा करता है।

षट्कर्मोपदेश रत्नमालामें गंध पूजाके समय लिखा है।

नरेण येन नार्या या कृतं जिनविलेपनं। तयोः कथामहं वक्ष्ये श्रोतव्या सावधानतः।

अर्थात् सकलभूषणने लिखा है कि जिन स्त्री पुरुषोंने भगवानका विलेपन किया उनकी कथा कहता हूं सावधान होकर सुनो।

श्री वसुनंदिने भी पूजाके फलके समय लिखा है।

चंदणलेप्पेण णरो जायइ सोहागसंपण्णो

अर्थात् "यह मनुष्य चंदनका लेप करनेसे सौभाग्यवान होता है।

यशस्तिलकचंपूमें लिखा है।

मंदमदमदनमानं मंदरगिरिशिखरमज्जनावसरे। कंदमुयालतिकायाश्चन्दनचर्चार्चितं जिनं कुर्वे।

अर्थात् "भगवानके चरणोंको चंदनसे विलेपन कर पूजा करता हूं।

प्रतिष्ठापाठ जिन यज्ञ कल्पमें लिखा है।

किसी एक अहिच्छत्रपुर नगरके राजा वसुपालने अपने घरमें श्रीपार्श्वनाथका चैत्यालय बनवाया था उसमें प्रतिष्ठापूर्वक पार्श्वनाथ बिंब विराजमान किया था तथा कितने ही दिन बाद उस राजाने किसी चित्रकारसे उस प्रतिमा पर लेप चढ़वाया था इसका वर्णन आराधनाकथाकोशमें विस्तारके साथ लिखा है। उसमेंसे लेपका श्लोक यह है—

तस्यां लेपः कृतस्तेन सलेपः संस्थितस्तदा। कार्यसिद्धिर्भवत्येवं प्राणिना व्रतशालिना॥

अर्थात् 'उसने फिर उस प्रतिमापर लेप कराया इसलिये वह बिंब लेपसहित विराजमान रहा। सो ठीक ही है व्रती प्राणियोंकी कार्यसिद्धि इसीप्रकार होती है।

जो पुरुष भगवानके चरणकमलोंमें लेप करते हैं उनके अनेक रोगोंकी शांति होती है।

किसी एक मदनावली नामकी रानीने पहले भवमें मुनिकी निंदा की थी उस पापसे उसके शरीरमें अत्यन्त दुर्गंध उत्पन्न हो गया था सो उसने उस रोगको शांत करनेके लिये किसी अर्जिकाके उपदेशानुसार भगवानका अभिषेक कर सात दिनतक प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल तीनों समय गंध लगाकर पूजा की थी उसीसे उसकी वह दुर्गंध व्याधि दूर हुई थी। तथा आयु पूर्ण होनेके बाद वह पांचवें स्वर्गमें उत्पन्न हुई थी।

षट्कर्मोपदेशरत्नमालामें भी इसका वर्णन लिखा है। यथा—

इति मां निश्चयं कृत्वा दिनानां सप्तकं सती। श्रीजिनप्रतिबिंबानां स्नपनं सा ह्यकारयत्॥
चंदनागुरुकर्पूरैः सुगंधैश्च विलेपनैः। सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेन्द्राणां त्रिसन्ध्यकम्॥

अर्थात् 'उस सती रानीने ऐसा निश्चय कर सात दिन तक तीनों समय भगवानका अभिषेक किया और चंदन अगुरु कपूर आदि सुगंधित द्रव्योंसे विलेपन किया।

इसप्रकार और भी कथायें हैं।

श्रीउमास्वामीने अपने श्रावकाचारमें पूजाप्रकरणमें गंधके विलेपन करनेका वर्णन किया है सो पहले पूजामें लिखचुके हैं वहांसे देख लेना चाहिये।

श्रीउमास्वामीने इकईस प्रकारकी पूजाके प्रकरणमें लिखा है कि सबसे पहले भगवानका अभिषेक करना सो स्नानपूजा है।

तदनंतर चंदन आदि सुगंधित द्रव्योंको घिसकर भगवानके चरणोंसे लगाना सो विलेपनपूजा है। फिर पुष्प चढाना सो पुष्पपूजा है। इत्यादि और भी बहुतसा वर्णन है। यथा—

"स्नानैर्विलेपनविभूषितपुष्पवासा" इत्यादि।

और भी पाठ है।

प्रश्न—तुमने जो ऊपर वर्णन किया है वह महा पापका कारण है क्योंकि पूजा आदिमें हिंसादिक महा आरंभ होता है। इसी प्रकार कोई कोई अधर्मी रात्रिमें भी पूजा करते हैं सो उसका पाप तो हम जान ही नहीं सकते क्योंकि उसमें महापाप होता है और धर्म जीव दयापूर्वक है। इसलिये ऐसे कथनको हम नहीं मानते। इसप्रकार कितने ही असमझ पुरुष इन कार्योंकी निंदा करते हैं। उसका समाधान इसप्रकार है। जैनशास्त्रोंको विना समझे केवल उद्धत पुरुषके समान इसप्रकारके निंदारूप वचन कभी नहीं कहना चाहिये। अपना हिताहितका विचार कर विवेकरूप वचन कहना चाहिये। यह जैनमत एकांतपक्षरूप नहीं है अनेकांतरूप है। स्याद्वादरूप नयोंसे सिद्ध है। लिखा भी है—'स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हं' स्याद्वादके स्वामी अनंतचतुष्टयको धारण करनेवाले श्रीअरहंतदेवकी मैं पूजा करता हूं। इसलिये एक पक्षको दृढ़ करनेसे मिथ्यात्वका दोष आता है तथा ऐसा कहना अनेक अनर्थोंको उत्पन्न करनेवाला है।

जो पुरुष भगवानके अभिषेक करनेमें, जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करानेमें, जिनालयके निर्मापण करानेमें तथा जिनयात्रा तीर्थयात्रा आदिमें सावद्य लेश अर्थात् हिंसादिक आरंभका पाप बतलाते हैं, वे जैनधर्मको पालन करते हुये भी मिथ्यादृष्टी और पापी हैं, सम्यग्दर्शनके घातक हैं और केवल निंदा करनेवाले हैं ऐसा सारसंग्रह नामके शास्त्रमें लिखा है। यथा—

[1]जिनाभिषेके जिनपप्रतिष्ठा जिनालये जैनसुपात्रकायाम्।
सावद्यलेशो वदते स पापी स निन्दको दर्शनघातकश्च॥

यहांपर ऐसे पुरुषको दर्शनका घातक बतलाया है और श्रीकुंदकुंदस्वामीने अपने षट्पाहुडमें ऐसे दर्शनघातीको मोक्ष प्राप्त करनेका निषेध किया है। जैसा कि दर्शनपाहुडमें लिखा है—

१ इसका अर्थ ऊपर लिखा है।

दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं। सिज्झंति चरिये भट्टा दंसणभट्टा ण सिज्झंति ॥

अर्थात् दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं क्योंकि जो दर्शनसे (सम्यग्दर्शनसे–जैनशास्त्रोंके यथार्थ श्रद्धानसे) भ्रष्ट हैं उनको मोक्ष कभी नहीं मिल सकती तथा इसका भी कारण यह है कि जो चारित्रसे भ्रष्ट हैं वे समय पाकर मोक्षमार्गमें लग जाते हैं परंतु जो सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे मोक्षमार्गमें कभी नहीं लगते हैं।

श्रीयोगीन्द्रदेवने भी अपने श्रावकाचारमें लिखा है कि जो पुरुष भगवानके अभिषेकमें पाप गिनता है उसके सम्यग्दर्शन कभी नहीं हो सकता। यथा–

आरंभे जिणण्हाइये जो सावज्जं भणंति दंसणं। तेण जिम इयलीयो इच्छुण काई उभंति।

कोई कोई लोग ऐसा कहते हैं कि रात्रिमें श्रावक श्राविका आदि चतुर्विध संघ भी भोजनका त्यागी हो जाता है फिर भला रात्रिमें श्री अरहंतदेवकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये, उनको नैवेद्य किस प्रकार चढाना चाहिये। यह तो बड़ा अपराध है। क्योंकि जो पुरुष रात्रिमें स्वयं नहीं खाता वह भगवानकी जल फलादिकसे रात्रिमें किस प्रकार पूजा कर सकता है इसलिये रात्रिमें भगवानकी पूजा करनेका वा उनको नैवेद्य चढानेका निषेध है। परंतु इसका समाधान यद्यपि ऊपरके श्लोकोंसे होजाता है तथापि थोड़ासा फिर भी बतलाते हैं।

जिस दिन हम उपवास करते हैं उस दिन भगवानकी पूजा करनी चाहिये या नहीं ? कदाचित् कोई यह कहे कि रात्रिमें पूजा किसने की है तो इसका समाधान यह है कि वज्रजंघ श्रीमतीने विवाहके बाद अनेक दीपकोंके उद्योतसे ईर्यापथविशुद्धिपूर्वक अभिषेक कर रात्रिमें पूजा की थी सो ही महापुराणके सातवें पर्वमें लिखा है—

अथापरेद्युरुद्यानमुद्योतयितुमुद्यमी। प्रदोषे दीपकोद्योते महापूतं ययौ वरः।
कृतेर्याशुद्धिरिद्धार्द्धः प्रविश्य जिनमंदिरे। तत्रापश्यद्यतीन् दीप्ततपसः कृतवंदनः।
ततो गंधकुटीमध्ये जिनेंद्रार्चां हिरण्मयीम्। पूजयामास गंधाद्यैरभिषेकपुरस्सरः।

इसीप्रकार व्रतकथाकोशमें चन्दनषष्ठी आदि अनेक व्रतोंके विधानमें कथा और विधिपूर्वक रात्रिपूजनका कथन किया है। २३३

वह सब लिखा भी नहीं जा सकता, ऐसा समझकर निषेध नहीं करना चाहिये। जो लोग निषेध करते हैं वे जिनश्रुतके विरोधी कहे जाते हैं।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि मुनि बनमें ही रहते हैं, मंदिरमें नहीं, रहते सो भी पहले श्लोकोंमें कहा है कि वज्रजंघ श्रीमतीने पहले मुनियोंकी वंदना की फिर भगवानकी पूजा की।

आराधना कथाकोशमें लिखा है कि श्रीमज्जिनेंद्रचन्द्रकी पूजा पापकी नाश करनेवाली है प्रत्यक्ष स्वर्ग मोक्षकी देनेवाली शास्त्रोंमें बतलाई है। जो श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष भगवानकी ऐसी पूजाको धर्मके लिये पवित्र होकर भक्तिपूर्वक करते हैं वेही सम्यग्दृष्टियोंमें शुद्ध हैं और वेही महाभव्य हैं। इसमें सन्देह नहीं। तथा जो जिनपूजाकी निंदा करते हैं वे पापी इस पृथ्वीपर निंदनीय होते हैं और उस निंदाके पापसे दुःखी दरिद्री कोढ अंधापन लंगड़ापन जलोदर आदि अनेक रोगोंसे दुःखी होते हैं, पीछे दुर्गतिके पात्र होते हैं ऐसा लिखा है। यथा—

श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां पूजा पापप्रणाशिनी। स्वर्गमोक्षप्रदा प्रोक्ता प्रत्यक्षपरमागमे।
यः करोति सुधीर्भक्त्या पवित्रोऽपापहेतवे। स एको दर्शने शुद्धो महाभव्यो न संशयः।
यस्तस्या निन्दकः पापी स निंद्यो जगति ध्रुवम्। दुःखदारिद्ररोगादि दुर्गतेर्भाजनं भवेत्।

श्रीनेमिचन्द्रकृत कर्मकांडकी संस्कृत टीकामें तथा दशाध्याय तत्त्वार्थसूत्रकी टीकामें बंध तत्त्वके भेदोंमें ऐसाही कहा है।

श्रीअमृतचन्द्रसूरिने लिखा है कि जो पुरुष तपस्वी गुरु और जिनप्रतिमाकी पूजाका लोप करते हैं, दीन अनाथ कृपण और भिखारियोंको दान देनेका निषेध करते हैं दूसरोंको बांधने मारने बेडी डालने नासिका छेदन करने आदिके लिये कहते हैं जो प्रमादसे देवपर चढाये हुए नैवेद्यको ग्रहण करते हैं जो निर्दोष शास्त्रादि उपकरणोंका त्याग करते हैं प्राणियोंका वध करते हैं दान भोग उपभोग आदिमें विघ्न करते हैं जो ज्ञानका निषेध करते हैं और धर्ममें विघ्न करते हैं उनके अंतराय कर्मका आस्रव होता है। भावार्थ—ये सब कार्य अंतराय कर्मके आस्रवके कारण हैं। ऐसा लिखा है यथा—

तपस्विगुरुचैत्यानां पूजालोपप्रवर्तनम्। अनाथदीनकृपणभिक्षादिप्रतिषेधनम्॥
वधबंधनिरोधैश्च नासिकाच्छेदकर्तनम्। प्रमादाद्देवतादत्तनैवेद्यग्रहणं तथा॥

निरवद्योपकरणपरित्यागो बधोंगिनाम् । दानभोगोपभोगादिप्रत्यूहकरणं तथा ॥
ज्ञानस्य प्रतिषेधश्च धर्मविघ्नकृतिस्तथा । इत्येवमन्तरायस्य भवन्त्यास्रवहेतवः ॥
(तत्त्वार्थसार आस्रववर्णन श्लोक ५५-५८)

इसप्रकार बहुतसा वर्णन है।

आगे सचित्तपूजाका विधान कहते हैं—

जो पुरुष भगवानकी पूजामें पुष्प फल दाभ दूव पत्र जल आदिमें सचित्तपनेका दोष मानते हैं और उनका निषेध करते हैं वे महा पापी हैं, देखो श्रीसमंतभद्र स्वामीने लिखा है—

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जिनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥

अर्थात् "भगवानकी पूजा करनेमें थोडासा पाप होता है परंतु पुण्य बहुत बडा होता है। उसके सामने वह पाप कुछ चीज नहीं है। शीतल अमृतके समुद्रमें भला एक विषकी कणिका क्या दोष उत्पन्न कर सकती है ?"।

श्रीवसुनंदिने भी लिखा है—

मालाधूपप्रदीपाद्यैः सचित्तैः कोऽर्चयज्जिनम् । सावद्यसंभवं वक्ति यः स एवं प्रबोध्यते ॥
जिनार्चानेकजन्मोत्थं किल्बिषं हन्ति यत्कृतम् । सा किंन्न यजनाचारैर्भवसावद्यमंगिनाम् ॥
प्रेर्यन्ते यत्र वातेन दन्तिनः पर्वतोपमाः । तत्राल्पा शक्तितेजस्सु का कथा मषकादिषु ॥
मुक्तं स्यात्प्राणनाशाय विषं केवलमंगिनाम् । जीवनाय मरीच्यादिसदौषधविमिश्रितम् ॥
तथा कुटुंबभोगार्थ आरंभः पापकृद् भवेत् । धर्मकृद् दानपूजादौ हिंसालेशो मतः सदा ॥

अर्थात् "जो पुरुष माला दीप धूपादिकसे पूजा करता है उसको जो पापलेश बतलाता है उसके लिये कहते हैं कि भगवानकी

पूजा अनेक पापोंको नाश करनेवाली है फिर भला वह यत्नाचार पूर्वक होनेवाले प्राणियोंके पापोंको क्यों दूर नहीं कर सकती। जिस हवासे पर्वतके समान हाथी वह जाते हैं उसके सामने थोडीसी शक्ति और थोडेसे तेजको धारण करनेवाले मच्छरोंकी क्या बात है। जो विष अकेला खाया जाय तो प्राणनाश कर देता है परंतु मिरच आदिके सम्मेलनसे वही विष जीवनदाता होजाता है। इसी प्रकार कुटुंब वा भोगोपभोगके लिये किया हुआ आरंभ पाप करनेवाला होता है परंतु धर्मको बढानेवाले दान पूजा आदिमें वही आरंभ पुण्य बढानेवाला होता है।

इस प्रकार पूजाके निंदकोंका स्वरूप बतलाया विवेकी पुरुषोंको हट नहीं करना चाहिये। हट जिनधर्मका नाश करनेवाला है इसलिये ऊपर लिखे हुए शास्त्रोंसे निश्चय कर लेना चाहिये और शास्त्रानुसार गंध पुष्पादिक लगाना चाहिये। केवल अपने मनसे अपनी स्वकल्पित बुद्धिसे हट ग्रहण कर निश्चय किये विना जो व्यर्थ ही अनेक प्रकारके वाचालपनेसे कहते हैं तथा शास्त्रोंका प्रमाण देते नहीं उनके मिथ्यात्वके बंधकी श्रीवीतराग ही जानते हैं। जो अपनी बुद्धिके बलसे व्यर्थ ही वाद करते हैं उससे मौन धारण करना योग्य है। इसप्रकार प्रसंग पाकर थोडासा लिखा है फिर भी विशेष स्वरूप जाननेके लिये प्रश्नोत्तरसहित खंडन मंडन पूर्वक चर्चा करना श्रेष्ठ है।

प्रश्न—यहांपर कोई यह कहे कि हम तो इस कथनको नहीं मानते। अभिषेकमें अप्रमाण जल फैलाया जाता है और बडा आरंभ किया जाता है। इसलिये हम तो केवल प्रतिमाके ऊपरकी धूलि जाले मैल आदिकी मलिनताको दूर करनेके लिये तथा उसको उज्वल रखनेके लिये थोडेसे जलमें वस्त्र भिगोकर प्रतिमाको पोंछ लेते हैं। तुम्हारे समान घोर आरंभ नहीं करते। इन आरंभोंमें कोई पुण्य नहीं है इनमें तो पाप ही पाप है। इन अभिषेकादिकमें कार्य वा फल तो थोडा है और कर्तव्यता वा आरंभ बहुत है ऐसा कार्य यथार्थश्रद्धानी नहीं करते। यह तो मिथ्यातियोंका कार्य है। इस प्रकार नाना विकल्पजालरूप विरुद्ध वचन कहते हैं उसका समाधान इस प्रकार है। पहला विचार यह है कि यथार्थ श्रद्धानी किसको कहते हैं। जो भगवानके कहे हुए तत्त्वोंका श्रद्धान करता है वही यथार्थ श्रद्धानी होता है। ऐसे श्रद्धानके विना केवल जातिश्रद्धानी नामश्रद्धानी अथवा वचनश्रद्धानी तो यथार्थ श्रद्धानी हो नहीं सकते।

दूसरी बात यह है कि मुनि वा श्रावकके त्रिकाल करनेकी सामयिकमें चैत्यभक्तिके पाठमें नीचे लिखे अनुसार लिखा है—

इच्छामि भंत्ते चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सा लोचेओ अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि

किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि, तीसुवि लोएसु भवणवासियवाणार्वितरजोयसिय-कप्पवासयत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिचकालं अचंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति । अहमवि इह संतो तत्थ-संताइ णिचकालं अचेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

अर्थात् 'तीनों लोकोंमें कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय हैं तथा उनमें जो जिनप्रतिमा विराजमान हैं उनकी पूजा भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क तथा कल्पवासी चारों प्रकारके देव करते हैं। वे देव देवोपनीत गंधसे, दिव्य पुष्पोंसे, दिव्य धूपसे, दिव्य चूर्णसे, दिव्य वाससे दिव्य स्नपनसे (अभिषेकसे) सदा अर्चा करते हैं पूजा करते हैं वंदना और नमस्कार करते हैं। अतएव सामायिक करनेवाला मैं भी यहां ही बैठा हुआ सदा अर्चा करता हूं पूजा करता हूं बंदना करता हूं नमस्कार करता हूं। ऐसा करनेसे मेरे दुःख नाश हों, कर्म नाश हों, रत्नत्रयकी प्राप्ति हो, सुगतिमें जन्म हो, समाधिमरण हो और भगवानके गुण प्राप्त हों।

इसप्रकार कथन किया है सो क्या देवोंके विमानोंमें वा आवासोंमें भी प्रतिमापर धूलि आदि मलिनता जम जाती है जो देव उसका अभिषेक करते हैं तथा समोसरणमें केवलियोंको छोड़कर मानस्तम्भादिकों पर जो जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं उनकी इन्द्रादिक देव अभिषेकपूर्वक पूजा करते हैं ऐसा जिनसेनाचार्यने आदिपुराणमें लिखा है। सो क्या वहां भी प्रतिमाकी मलिनता दूर करनेकेलिये अभिषेक किया जाता है वहांपर विना अभिषेकके पूजा क्यों नहीं की जाती? क्या आप लोगोंको यह श्रद्धान नहीं होता कि समवसरणकी भूमि दर्पणके समान निर्मल और निष्कंटक है वहां मलिनता कहांसे आई? सो खूब विचार कर लेना चाहिये। इस कथनको कहनेवाले श्लोक पहले लिख चुके हैं।

इसके सिवाय श्रीपालके जीवने पूर्वभवमें सरोवरके किनारे किसी मुनिको देखकर कहा था कि 'यह मुनि कैसा मलिन दिखता है मानों इसे कोढ़ रोग हो गया हो। यह कभी स्नान नहीं करता इसकी देह महा मैली ग्लानिरूप अमनोज्ञ है जो देखी भी नहीं जा सकती। श्रीपालके जीवकी यह बात सुनकर उसके साथी सातसौ सुभटोंने भी यह बात मान ली और उन्होंने भी कहा कि हां यह

ऐसा ही दिखता है। यह सुनकर श्रीपालके जीवने कहा कि इसको पकड़ कर इस सरोवरमें डुबा दो तथा पकड़कर बहुतसे गोते लगाओ। अपने राजाकी यह बात सुनकर उन सुभटोंने वैसा ही किया और उन मुनिराजको भारी उपसर्ग किया उसी पापकर्मके उदयसे राजा श्रीपालके तथा उनके साथी सातसौ योद्धाओंके महा कोढरोग उत्पन्न हुआ था तथा वे सातसौ योद्धा समुद्रमें पड़कर डूबे थे इसप्रकारका कथन अनेक ग्रंथोंमें विस्तारके साथ लिखा है।

जिन लिंगकी (मुनि वा प्रतिमा आदिकी) विचिकित्सा वा ग्लानि करनेका फल सम्यक्त्वका नाश करनेवाला और महा पाप बंधका कारण है। इसीप्रकार तुम्हारा भी यह कहना है जो प्रतिमाजी मैली होजाती हैं बुरी लगती हैं अच्छी नहीं लगतीं इसलिये जलके वस्त्रसे पोंछकर उज्वल करलेते हैं। तुम लोग अभिषेकसे होनेवाले पुण्यको नहीं समझते।

एक विद्याधर अपनी वल्लभाके साथ मेरु आदि पर्वतोंकी यात्राके लिये जाता था। मार्गमें एक महा बन मिला उसमें एक महामुनि विराजमान थे उन मुनिके शरीरमें उनके अशुभ कर्मके उदयसे अत्यन्त दुस्सह दुर्गंधमय रोग होगया था। उसकी दुर्गंध हवाके सहारे उस विद्याधरके विमान तक फैल गई थी तथा उस विद्याधरको उस दुर्गंधसे उत्पन्न हुई ग्लानि सहन नहीं की गई थी इसीलिये वह नीचे उतरा और उसने देखा कि महा मुनिराज ध्यानमें लीन हुए खडे हैं तदनंतर उसने उनके शरीरपर बावन चंदनका सर्वांग लेप किया। उस विद्याधरने वह लेप कुछ भक्तिभावसे नहीं किया था किंतु अपनी ग्लानि दूर करनेके लिये किया था। उस लेपके लगते ही उसकी सुगंधिसे मुनिराजके शरीरपर बहुतसे भ्रमर आकर लग गये थे जिनसे उन मुनिराजको भारी उपसर्ग हुआ था। जब वे दोनों विद्याधर विद्याधरणी मेरुकी यात्रा कर वापिस आये तो उन्होंने उस भारी अनर्थको देखा। तब उन्होंने अपनी विचिकित्सा वा ग्लानि रूप भावोंकी निंदा की और उन मुनिराजका उपसर्ग दूर किया। तब अपनी निंदा करनेसे उस विद्याधरका थोडासा पाप दूर हुआ। बाकीके पाप कर्मके उदयसे अगले जन्ममें वह विद्याधर किसी सेठकी पुत्री हुआ। तथा कंचन समान (सुवर्णके समान) सुन्दर और सुगंधमय शरीर हुआ।

इसप्रकार जिनप्रतिमा जिनधर्म और जिनलिंगके (मुनिराजके) ग्लानिकरनेका फल तथा उस पापको दूर करनेके लिये अभिषेक तथा चन्दनादिक गंधके लगानेका कथन षट्कर्मोपदेश रत्नमालामें गंधकी पूजाके फलमें विस्तारके साथ बतलाया है। सो कहां तो शास्त्रोंका यह कथन और कहां तुम्हारा यह उनकी निंदा करनेवाला बचन सो भी तुमको विचार करना चाहिये।

व्रतकथाकोश तथा षट्कर्मोपदेश रत्नमालामें वा और भी अनेक ग्रन्थोंमें ज्येष्ठजिनवरव्रतके विधानमें ब्राह्मणी शेठकी पुत्री

तथा कुम्हारकी कथा लिखी है। इन्होंने श्रीजिनप्रतिमाकी जलकी पूजाके समय कुंभके (घटके) जलसे अभिषेक किया था तथा अनुमोदना की थी सो उसका फल उनको अलग अलग महापुण्यरूप मिला था। ऐसा शास्त्रोंमें कथन है। तथा ब्राह्मणीकी सासुने उस अभिषेककी निंदा की थी सो उस निंदाके पापसे उसके मस्तकपर कुंभके समान बडा भारी फोडा हुआ। तथा वह महा दुर्भागा और अत्यन्त निंदनीय हुई थी। तदनंतर उन सब जीवोंने मुनिराजसे अपने पहले भव सुने थे उनको सुनकर उसने उस ब्राह्मणीके जीवके चरण स्पर्श किये थे। उन चरणोंके स्पर्श करनेसे ही उसका वह फोडा अच्छा होगया था। तब उसने अपनी बडी निंदा की थी उस आत्मनिंदासे ही उसका बाकी बचा पाप दूर होगया था, वह भगवानकी भक्ति करने लगी थी और उससे वह स्वर्गमें उत्पन्न हुई थी। इसकथाका वर्णन विस्तारसे उन ग्रन्थोंमें लिखा है।

इसके सिवाय इन्हीं दोनों ग्रंथोंमें तथा और भी शास्त्रोंमें एक पुरंदर विधान लिखा है वह इस प्रकार है। एक किसी विष्णुभट्ट नामके ब्राह्मणने किसी मुनिराजसे पुरंदरविधान व्रत लिया था। उसने पंचामृतका अभिषेक कर फिर जल गंधादिकसे भगवानका महाभिषेक किया था और अष्ट द्रव्यसे पूजा की थी सो उसके फलसे प्रथम तो उसका दारिद्र दूर होगया था फिर उसने राजपद प्राप्त किया था और अंतमें समाधिमरण धारण कर सौधर्म नामके प्रथम स्वर्गमें सौधर्म नामका इन्द्र हुआ था।

देखो कहां तो ऐसा करनेवालोंके महान् पुण्यरूप फलका वर्णन है और कहां तुम्हारे मिथ्या और खोटे वचनोंसे उन पुण्यकार्यों की निंदा और निषेधका कथन है। क्या इससे तुमको दोष नहीं लगेगा? परंतु जीवकी जैसी होनहार गति होती है उसकी बुद्धि भी वैसी ही उत्पन्न हो जाती है। यदि कोई शास्त्रादिकोंके प्रमाणसे उपदेश देता है तो भी उसको सत्य बात भी झूठी दिखाई पडती है। तथा अपनी झूंठी बात भी सत्य मालूम पडती है। ऐसे लोग सैकड़ों शास्त्रोंके वचनोंके तो सबको मिथ्या मानते हैं और अपने वचन सत्य मानते हैं जो शास्त्रोंकी बात छोडकर उस मिथ्याभाषण करनेवालेके मुखसे निकली हुई बात झट मान लेते हैं। यदि एक वा दो शास्त्र हों तो न माने जांय परंतु अनेक शास्त्र भी सब असत्य माने जाते हैं और उसके निंदक वचन सत्य माने जाते हैं यह सर्वथा अयोग्य है। जैनधर्मी तो सत्य वचनोंको मानकर झूठोंका संग ही छोड देते हैं। तथा जो ऐसे मिथ्याभाषियोंका विश्वास कर और जिनवचनोंसे अरुचि कर अनेक प्रकारके विपरीत कथन करते हैं तथा अपनेको अपने ही मुखसे श्रद्धानी बतलाते हैं सो सब मिथ्या है।

इस, अभिषेक महाभिषेक, जिनपूजा प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, देवदर्शन, वंदन पूजन प्रभावना अंग, रथयात्रा रात्रिपूजन आदिमें

जो स्वकपोलकल्पित महापापरूप वचन कहते हैं अनेक प्रकारकी निंदारूप बकवाद करते हैं सो इसका कथन पहले लिख ही चुके हैं वहांसे देखलेना चाहिये।

इस अभिषेकपूर्वक पूजा करनेके समान गृहस्थोंके लिये और कोई भी महा पुण्य नहीं है जो लोग इसकी निंदा करते हैं वे निंदनीय हैं ऐसे लोगोंको सुभाषितग्रन्थोंमें सर्वचांडाल कहा है। यथा—

पक्षीनां काकचांडालः पशुचांडालगर्दभः। मुनीनां कोपचांडालः सर्वचांडालनिंदकः॥

अर्थात् "पक्षियोंमें कौआ चांडाल है, पशुओंमें गधा चांडाल है, मुनियोंमें क्रोधी चांडाल है और निंदा करनेवाला सबसे बढ़कर चांडाल है।"

इसके सिवाय और भी लिखा है यथा—

फलस्य कारणं पुष्पं फलं पुष्पविनाशकः। पुण्यस्य कारणं पापं पुण्यं पापविनाशकः॥
धर्मस्य कारणं पुण्यं पुण्यं धर्मविनाशकः। मोक्षस्य कारणं धर्मः धर्मः मोक्षस्य साधकः॥

अर्थ—जैसे वृक्षमें फल लगनेका कारण पुष्प है परंतु वह फल पुष्पका नाश करनेवाला है। भावार्थ–पहले पुष्प आता है फिर फल लगता है और जब फल लगता है तो पहलेके लगे हुए पुष्पोंका नाश कर उत्पन्न होता है। इसलिये वह फल पुष्पोंका नाश करनेवाला है। इसीप्रकार धर्मसेवन करनेरूप पुण्यका कारण गृहस्थधर्ममें होनेवाले आरंभमय पाप हैं अर्थात् देवपूजाकी सामग्री धोना मुनियोंको दान देनेके लिये रसोई बनाना आदि खेती व्यापार आदि छहों कर्मोंसे उत्पन्न हुये आरंभमय पाप पहले होते हैं तदनंतर दान देने पूजा करने आदि शुभ कार्योंसे पुण्य पीछे उत्पन्न होता है परंतु वह पहले किये हुये समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। पूजा करने दान देने आदिसे जो पुण्य होता है वह जिन आरंभादिक पापोंसे उत्पन्न हुआ था उन आरंभादिक पापोंको अवश्य नष्ट कर देता है। जो पुरुष अभिषेक पूजा तीर्थयात्रा प्रतिष्ठा दान आदि कार्योंमें पहले आरंभजनित पाप जानकर नहीं करते हैं उनके वह महापुण्य भी उत्पन्न नहीं होता है। जिसने मुनिराजको दान नहीं दिया, मुनिराज आये हुये पीछे लौट गये तब उसके पुण्यका तो अभाव होता ही है किंतु साथमें महापाप भी लगता है क्योंकि श्रावकके आरंभपूर्वक ही पुण्य होता है।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि देवपूजा करने या दान देनेसे अनेक जन्मोंके महापाप कट जाते हैं तो फिर उस पूजा

और दान देनेमें जो आरंभजनित थोडासा पाप हुआ है वह तो अवश्य ही कट जाता है और उसी समय कट जाता है। यदि ऐसा न माना जायगा तो जिस पूजा दानसे एक बारका पाप भी नहीं कट सका तो फिर जन्म जन्मांतरके पाप किसप्रकार कट सकते हैं ऐसा भी निश्चय करना पडेगा क्योंकि जिससे कुत्ता भी न जीता गया वह हाथीको किस प्रकार जीत सकेगा। दूसरी बात यह है कि ऐसा ही मान लिया जायगा अर्थात् दान पूजा आदिसे तज्जनित आरंभमय पाप दूर नहीं होते हैं ऐसा मान लिया जायगा तो फिर दान पूजाकी कुछ सफलता ही नहीं रहेगी। तथा जब दान पूजाकी सफलता ही नहीं होगी तो फिर बिना कारणके उससे फलकी प्राप्ति किसप्रकार हो सकेगी इसलिये जो विवेकी पुरुष हैं वे पहले थोड़ासा धन खर्च करनेपर यदि बहुतसा लाभ होता हो तो उस कार्यको करते ही हैं इसीप्रकार ये सब पुण्यकार्य हैं तथा जो कृपण हैं अज्ञानी वा रंक हैं वे बहुतसे लाभके लिये भी अपना थोड़ासा धनका खर्च भी नहीं देख सकते। इसलिये वे व्यापाररहित होते हुये आगामी लाभ नहीं उठा सकते। जिसप्रकार पुष्प फलका कारण है उसीप्रकार पूजा दान आदि आरंभोंसे होनेवाला थोडासा पाप भी महापुण्यका कारण है। जो मनुष्य पुष्पको देख कर उसीको दृढ़तापूर्वक पकड़ लेता है और फलको छोड़ देता है यह अत्यन्त मूर्ख गिना जाता है क्योंकि वह पुष्प भी अधिक दिन तक नहीं ठहरता थोड़े ही दिनमें सूक जाता है तथा उसका फल भी उसे नहीं मिलता। इसप्रकार उसके समान कोई मूर्ख नहीं ठहरता। इसीप्रकार थोडेसे आरंभजनित पापके डरसे जो धर्मके कारण पुण्य कार्योंको नहीं करते हैं वे अवश्य ही पुण्यके अभावसे कुगतिमें जा कर उत्पन्न होते हैं।

जिसप्रकार फल लगते ही पुष्पका नाश हो जाता है उसीप्रकार दान पूजा आदिसे उत्पन्न हुये पुण्यके लगते ही उन कार्योंके आरंभसे उत्पन्न होनेवाला पाप अवश्य नष्ट हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो फिर तुम जो पूजा दानादिक करते हो वह भी निष्फल है। तथा कर्तव्यता महा हिंसा और आरंभादिक महा पापपूर्वक होती है क्योंकि संसारमें कोई भी कार्य और स्थान निरवद्य (पापरहित) और निर्जीव नहीं है।

इसीप्रकार पुण्य धर्मका कारण है और वह धर्म उसी पुण्यका उत्पादक है तथा वह धर्म मोक्षका कारण और मोक्षका साधक है। इस अनुक्रमसे परस्पर हेतुरूप हैं।

जो मनुष्य आरंभादिक थोडेसे पापके डरसे महापापोंको नाश करनेवाले महान् पुण्यबंधको छोड़ देते हैं वे धर्मके कारण जो पुण्य हैं उसके अभावसे मोक्षके कारण और पापके नाश करनेवाले धर्मको भी छोड देते हैं और धर्मका त्याग कर देनेसे महा पाप

कर्मके उदयसे नरक निगोदादिक दुर्गतियोंको प्राप्त होते हैं। यह ऐसी दुर्बुद्धि बिना अशुभ गति बंधके उत्पन्न नहीं हो सकती

कोई दो मनुष्य द्रव्य उपार्जन करनेके लिये घरसे निकलकर रत्नद्वीपको चले। मार्गमें चलते चलते अनेक प्रकारके कष्ट सहते चोर भूख प्यास ठंडी गर्मी वर्षा आदिके दुःख सहते सहते अनुक्रमसे समुद्रके किनारे पहुंचे। वहां जाकर वे दोनों ही जहाजमें बैठे परंतु जहाजवालेने वहां ले जानेके लिये भाडा मांगा सो एक पुरुषने निकालकर दे दिया परंतु दूसरा मनुष्य तुम्हारे समान था सो विचार कर कहने लगा कि "भाई अनेक कष्ट सहकर तो यहांतक आये। अब यहां सबसे पहले अपने पाससे दाम देने पडेंगे रत्नद्वीप पहुंचनेपर न जाने रत्न मिले या न मिले। यदि न मिले तो पासके दाम भी व्यर्थ ही खर्च हो जांयगे इसलिये इस देनेवालेके समान हमसे तो दिया नहीं जाता। पहलेसे ही घाटा देनेवाले व्यापारको भला कौन करता है? इसलिये यहां ही रहना ठीक है अपने पाससे द्रव्य देना ठीक नहीं" ऐसा विचारकर वह उस जहाजसे उतर पडा और निष्फल होकर उसने वापिस घरका रास्ता लिया। दैवयोगसे मार्गमें चोरोंने उसका सब धन लूट लिया वह दरिद्र हो गया और घर घर भीख मांगता हुआ पेट भरने लगा। इसप्रकार अपनी आयु पूर्ण कर मर गया। इसप्रकार अत्यन्त कृपणतासे उसने लोकनिंद्यगति पाई।

दूसरा मनुष्य जहाजका भाडा देकर रत्नद्वीप पहुंचा वहांसे बहुमूल्य अनेक रत्न लाया तथा फिर थोडासा जहाजका भाडा देकर उस जहाजमें बैठकर अपने घर आ पहुंचा। वहां आकर उसने पूजा दान तीर्थयात्राके द्वारा अनेक प्रकारका पुण्योपार्जन किया और फिर अंतमें स्वर्गादिक शुभगतिको पाकर तथा वहांके अनेक सुखोंको भोगकर क्रमसे परमपदको प्राप्त हुआ। इसप्रकार यह उदाहरण है।

आपके समान बुद्धिको धारण करनेवाले पुरुष थोडेसे पापके आरंभके डरसे महापुण्यके कारण ऐसे दान पूजादिकके फलको छोड देते हैं सो यह बुद्धिमानीका काम नहीं है। ऐसे पुरुष तुच्छ बुद्धिवाले कहलाते हैं।

जिसप्रकार अग्निसे जला हुआ पुरुष उसकी शांतिके लिये किसी अच्छे वैद्यके द्वारा बतलाये हुये क्षार पदार्थोंसे धोता है और फिर अग्निसे सेकता है। यदि वह पुरुष किसी कुवैद्यके कहनेसे उस जले हुयेके ऊपर शीतल जल डाल दे तो महा उपद्रव उत्पन्न हो जाय यदि अग्निसे जला हुआ वह पुरुष क्षार पदार्थोंसे धोने और अग्निके सेकसे डर जाय और उस कुवैद्यके वचन मान कर सुवैद्यके वचनोंको छोड़कर शीतल जलसे धो डाले तो उसकी मूर्खताका क्या पूछना?

किसी एक मनुष्यने अपने किसी कुमित्रके कहनेसे अधिक भांग पी ली उसके नशेसे उसको बहुत दुःख हुआ तब किसी

अच्छे वैद्यने उसको थोडासा सर्पफेन अर्थात् अफीम दे दी उसके खानेसे उसका नशा जाता रहा और वह सुखी हो गया। यह देख कर कोई कुवैद्य कहने लगा कि यह उपाय तो अनर्थ करनेवाला है क्योंकि इसको भांगका नशा हो ही रहा है यदि इसके ऊपर फिर अफीमका विष दिया जायगा तो यह मर जायगा। इसप्रकार उस सुवैद्यकी निंदा कर उसको शीतल जलमें रहनेकी क्रिया बतलाता है परंतु उससे उसका नशा और बढ़ जाता है।

इसी प्रकार पापोंमें भी अनेक प्रकारके भेद हैं एक तो असि मसि कृषी वाणिज्य शिल्प पशुपालन आदि गृहस्थसंबंधी पाप हैं। दूसरे हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रहरूप पाप हैं। तीसरे चकी उखली चूल बुहारी पानी आदिसे होनेवाला पाप है। ये सब पाप नित्य होते हैं और इन्हीं पापोंसे यह जीव नरकादिक दुर्गतियोंमें जाता है। इन्ही सब पापोंको दूर करनेके लिये तथा महा पुण्य उपार्जन करनेके लिये परंपरासे मोक्षका साधनरूप धर्मके लिये भगवानने षट् कर्म करनेवाले गृहस्थोंको थोडीसी आरंभजनित हिंसासे होनेवाले पूजा दान आदि उपाय बतलाये हैं क्योंकि गृहस्थोंको असि मसि आदि छहों कर्मोंसे अथवा इन्द्रियोंके विषय भोगोंसे होनेवाले त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसासे महा पाप उत्पन्न होता है। ऐसे आरंभी श्रावकोंकेलिये दान पूजा आदि आरंभमय कार्योंसे ही पुण्य उपार्जन हो सकता है। जो मुनिराज अनारंभी हैं सब तरहके आरंभके त्यागी हैं उनके उन आरंभोंके त्यागसे ही धर्म होता है। गृहस्थ धर्ममें रहकर भी जो थोडासा मुनियोंकासा आचरण पालन करते हैं उनकेलिये ऐसा करना आज्ञाधर्म नहीं है। पूर्वाचार्योंके वचनोंके विरुद्ध परंपरासे चले आये मार्गका बाध करना सर्वथा अयोग्य है। भावार्थ–ऐसा करना अपने कर्तव्यकी विपरीतता है।

देखो दूसरोंके प्राणोंको पीडा पहुंचानेमें धर्म नहीं है साक्षात् पाप है इस बातको सब जीव मानते हैं अन्य मती भी मानते हैं। सो ही लिखा है—

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।

अर्थात् "दूसरोंका उपकार करना पुण्य है और दूसरोंको पीडा पहुंचाना पाप है।" ये वेद व्यासके वचन हैं। श्रीआचार्य उमास्वामीने भी कहा है "प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा" अर्थात् कषायोंके निमित्तसे दूसरोंके प्राणोंका घात करना हिंसा है" इत्यादि बहुतसे वचन हैं और सब निस्संदेह रूप हैं यदि दूसरोंको दुःख पहुंचानेमें कोई दया धर्म बतलावे तो सब लोग उसको झूठा कहते हैं। तथा है भी इसी प्रकार। परंतु यदि किसी जीवके वातव्याधि (वायुका रोग) होजाय विसूचिका होकर उदरमें शूल होजाय अथवा

किसी बालकके ऊर्ध्वश्वास आदि रोग होजाय अथवा सन्निपात तिल्ली आदि अनेक प्रकारके रोग होजांय और कोई परोपकारी भव्य पुरुष उसपर दयाकर उस रोगको शांत करनेके लिये लोहेकी जलती हुई लाल सलाईसे दाग देकर शरीरके किसी एक भाग को अथवा अधिक भागको जलाता है और उस समय वह रोगी अथवा बालक उस जलानेकी वेदनासे दुःखी होकर करुणाजनक त्राहि त्राहि पुकारता हुआ चिल्लाता है। इसी प्रकार गाय बैल घोडा आदि पशुओंके हाथ पांव बांधकर तथा पृथ्वी पर पटक कर किसी रोगको दूर करनेके लिये उपकारी पुरुष दाग देते हैं और वे पशु उसकी भारी वेदनाको सहते हैं। इसी प्रकार यदि किसीके फोड़ा होजाता है तो उसके उस फोडेको शस्त्रसे फाडते हैं चीरते हैं, सीते हैं इत्यादि आसुरी उपाय करते हैं उनसे यह जीव बड़ा भारी कष्ट पाता है। तथा ऐसे उपायोंसे कोई जीव मर भी जाता है। कोई कोई भव्य जीव किसी मुनिके इन वेदनाओंके हो जाने पर यही उपाय करते हैं तथा ऐसा उपाय करते करते भी किसी किसीका मरण होजाता है। परंतु एसे उपाय करनेवाले परोपकारीको हिंसा होते हुए भी दया धर्मका ही महा पुण्य होता है। लौकिकमें भी ऐसे पुरुषको हत्याके पापका प्रायश्चित्त नहीं देते हैं। इसका विशेष वर्णन श्रीअमृतचन्द्रसूरि कृत पुरुषार्थसिद्धयुपायमें स्पष्ट रीतिसे किया है। तथा इस ग्रंथमें भी पहले चर्चाओंमें लिखा है वहांसे देख लेना चाहिये।

इसी प्रकार असत्य त्याग व्रतको धारण करनेवाला अन्य जीवोंकी हिंसा होनेके समय केवल दया धर्मके लिये उन जीवोंकी हिंसा न होने देनेके लिये सत्यव्रतको छोडकर असत्य भाषण करता है तो भी उसका सत्यव्रत भंग नहीं होता ऐसे भगवानके वचन हैं। इसका भी कारण यह है कि हिंसा करनेवाला जानबूझ कर हिंसा करता हो और उससे वह हिंसा न हो सके तो भी उसको उसके पापका फल मिलता ही है यदि हिंसाका उद्देश्य न हो केवल धर्मके लिये कोई पुण्य कारण किया जाय और उसके निमित्तसे अनाश्रित हिंसा हो जाय तो उसका फल दयारूप ही लगता है क्योंकि वह हिंसा जानबूझ कर तो की नहीं है तथा हिंसा करनेके भाव भी नहीं है।

देखो साक्षात् हिंसा करनेवाला राघव महामत्स्य तो नरक जाता है सो तो ठीक ही है क्योंकि वह बडे बडे जलचर जीवोंको भक्षण करता है, इसलिये वह नरक जाता है। परंतु उसके कान वा आंखके पलकमें रहनेवाला तंदुल वा चावलके समान शरीरको

१। यह ग्रंथ विस्तृत हिंदी टीका सहित भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था नं० १२ विश्वकोष लेन, पोष्ट बाघबाजार कलकत्तामें छपा है और वहांसे मिल सकता है।

धारण करनेवाला शालिसिक्थ नामका मत्स्य केवल कान वा नेत्रके मलको खाकर जीवित रहता है परंतु जीवघातके विना भी वह नरकमें जाता है। इसका कारण केवल भावहिंसा है। उसके भावहिंसा सदा बनी रहती है इसीलिये वह नरक जाता है। यह सब कथन पुरुषार्थसिद्ध्युपायसे जानलैना चाहिये। इसका वर्णन पहले भी कर चुके हैं।

अतएव भगवानके वचनोंको प्रमाण मानकर संशय मिथ्यात्वमें नहीं पड़ना चाहिये और न अनेक प्रकारका विपरीत कथन करना चाहिये। जो कोई ऐसा विपरीत कथन करता है उसके पांचों प्रकारके मिथ्यात्वका दोष लगता है। तथा मिथ्यात्वका दोष लगनेसे सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाला श्रद्धान नष्ट होजाता है इसलिये जिनपूजा, प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा रात्रिपूजन अभिषेक दान धर्म आदिमें पापरूप श्रद्धान नहीं करना चाहिये। जो ऐसा विपरीत श्रद्धान करते हैं वे ऊपर कहे हुये शास्त्रोंके, उनके कर्त्ता आचार्योंके तथा परंपरासे पंच परमेष्ठीके, जिनधर्म जिनचैत्य और जिनचैत्यालयके विरोधी समझे जाते हैं। उन शास्त्रोंके प्रमाण पहले अलग अलग सबके दे चुके हैं उनको समझ कर विवेकी जीवोंको जिनेन्द्रदेव, धर्म, गुरु, शास्त्रका विनय करना चाहिये उनकी आज्ञा मानकर उनमें कहे हुये मुख्य धर्मको धारण करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते हैं वे देव धर्म गुरु शास्त्रकी निंदा करने वाले मिथ्यात्वी कहलाते हैं।

प्रश्न—यहांपर कोई शंका करता है कि भाई तुम कहते हो सो ठीक है परंतु यदि निरवद्य (सचित्तघातके दोषसे रहित) पूजा आदि हो सकती है तो वही करनी चाहिये।

समाधान—परंतु उसका उत्तर यह है कि श्रावकके लिये मुख्यतासे ऐसा होना असंभव है। तुम जो पूजा करते हो वह भी निरवद्य (आरंभादिकके पापसे रहित) दिखाई नहीं पडती। यदि तुम फिर भी यह कहो कि हम तो निरवद्य ही पूजा करते हैं तो सुनो। सबसे पहले तुम स्नान करते हो सो वह भी प्रसुक जलसे नहीं करते। पूजाके द्रव्य धोते हो सो भी प्रासुक जलसे नहीं धोते। बादाम सुपारी नारियल इलायची आदि सावद्य फलोंको छोडकर और कोई निरवद्य फल नहीं चढाते, भगवानका प्रक्षालन करते हो अथवा जलधारा देते हो उसमें विना उपदेशके प्रासुक गर्म किया हुआ दूसरेके घरका जल काममें नहीं लाते। घरसे निकलकर ईर्यासमितिसे जिनालय नहीं जाते। दर्शन वंदना पूजा आदि कार्योंको प्रतिलेखन वा प्रतिक्रमणपूर्वक नहीं करते, तीर्थयात्रा निकलवाते हो, जलयात्रामें जाते हो और साधन मिलाकर इन सब कार्योंको देखते हो परन्तु इन सब कार्योंमेंसे एक भी कार्य ऐसा नहीं है जो विना सावद्ययोगके होता हो। जो नवीन जिनमंदिर बनवाते हो उसमें आरंभादिक महा हिंसा होती है, फिर उसमें जिनमूर्ति विरा-

जमान करते हो, चारो ओरसे बहुतसा सामान इकट्ठा करते हो, अनेक प्रकारके पकवान बनाते हो उसमें बहुतसा जल फैलाया जाता है तथा और भी कई प्रकारसे बहुतसे त्रस स्थावर जीवों की हिंसा होती है। जो प्रत्यक्ष सबको दिखलाई पडती है फिर इतना आरंभ क्यों करत हो, अपनी शक्तिके अनुसार द्रव्य देकर सीधी तैयार बनी बनाई प्रासुक हवेली मोल लेकर उसमें भगवान विराजमान क्यों नहीं कर देते ? अथवा अपनी बनी हुई सुन्दर हवेलीमें ही विराजमान क्यों नहीं कर देते ? अपने लिये और हवेली बनवा लेना चाहिये क्या इसमें पुण्य नहीं है ? शिल्पकारसे मूर्ति मोल लेकर योंहीं विना प्रतिष्ठाके विराजमान कर पूजा क्यों नहीं करते हो ? विनय भक्ति आदि सब तो अपने भावोंके आधीन हैं फिर प्रतिष्ठा आदिका व्यर्थ आरंभ क्यों करते हो ? प्रयोजन तो केवल धर्मसाधनसे है फिर व्यर्थ ही हिंसादिकका आरंभ क्यों करना चाहिये ? परंतु ऐसा तुम न करते हो और न करना चाहिये। तुम लोग अपने आरंभादिकके दोषोंको तो ढकते जाते हो और दूसरोंके दोषोंको प्रगट कर निंदा करते हो सो यह सज्जनोंका धर्म नहीं है।

प्रश्न — अभिषेकादिकका वर्णन शास्त्रोंमें कहां लिखा है ?

नित्य अभिषेक पाठ, महा अभिषेकपाठ, शांत्यभिषेक पाठ, बृहत् शांत्यभिषेक पाठ, व्रतोद्यापन विधान व्रत धारण, तथा व्रतोंके धारण करनेकी विधि, नित्य पूजा, नैमित्तिक पूजा, प्रायश्चित्त शास्त्र, अष्टान्हिका, षोडशकारण, दशलाक्षणिक, रत्नत्रय, अक्षयनिधि, मुकुटसप्तमी, आदित्यव्रत, ज्येष्ठ जिनवर, मेघमाला, आकाशपंचमी, निर्दोष सप्तमी, चंदनषष्ठी, पुष्पांजलि, अनंत व्रत, आदि समस्त जिनभाषित व्रतोंके विधानमें, कथा सहित व्रतकथा कोशोंमें, प्रतिष्ठा शास्त्रोंमें, बृहत् आदिपुराण, लघु आदिपुराण, उत्तरपुराण, पांडवपुराण, बृहत् हरिवंश, लघु हरिवंश, बृहत्पद्मपुराण, लघु पद्मपुराण, तथा गाथा बद्ध पद्मपुराण, षट्कर्मोपदेश रत्नमाला, यशस्तिलक महा काव्य, पूजासार संहिता, जिन संहिता, श्रावकाचार आदि समस्त जैनशास्त्रोंमें पंचामृतको आदि लेकर जलादिक गंधोदक पर्यंत भगवानके मस्तकसे लेकर समस्त शरीर पर अभिषेक कहा है यह अभिषेक एक दो चार शास्त्रोंमें नहीं किंतु इस प्रकरणके समस्त शास्त्रोंमें बतलाया है।

आप लोग भी पूजामें जलकी पूजा करते समय भगवानके सामने जलधारा देते हो तथा व्रतोंके उद्यापनोंमें जल इक्षुरस घृत दही दूध आदि पंचामृत तथा जलके कलश भर भर करके बाजे गाजेके साथ जय जय शब्द करते हुए अपने उत्कृष्ट भाव लगाकर तथा अपने नेत्रोंको आनंदसे तृप्त करते हुए भगवानके सामने खडे होकर दूधसे ही किसी अन्य पात्रमें उनकी धारा देते हो। अब इसमें विचारकी बात यह है कि आप लोग भगवानके ऊपर तो जलादिककी धारा नहीं देते किंतु खडे होकर सामने देते हो सो

यह विधि शास्त्रानुसार करते हो ? या केवल अपने बुद्धिबलसे करते हो ? अथवा दूसरेकी देखा देखी केवल स्पर्द्धाके लिये करते हो। तथा जो करते हो उस कर्तव्यका फल पुण्यरूप जानते हो या पापरूप ? इन कार्योंके लिये आपकी जैसी श्रद्धा हो वैसा करो। जो इन कार्योंमें आपकी श्रद्धा पापमयी है तो दूसरोंकी देखादेखी वा दूसरोंकी ईर्षासे व्यर्थ ही जबर्दस्ती अपना अकल्याण क्यों करते हो। यह काम श्रद्धानियोंका नहीं हो सकता। क्योंकि जो धर्मकार्योंमें अपनी मान बडाईके कारण पापोपार्जन करते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं यदि इन कार्योंको धर्मकेलिये वा महा पापोंको दूर करनेके लिये और महा पुण्य उपार्जन करनेकेलिये करते हो तो फिर अन्य ऐसे ही कार्योंका निषेध क्यों करते हो जब दूरसे ही इन जलधाराओंके करनेका इतना शुभफल होता है तो फिर अत्यंत निकट करनेसे और अधिक फलका होना स्वयं सिद्ध है। यदि इन कार्योंमें पाप ही माना जाय तो श्रीगुरुओंने शास्त्रोंमें ऐसा क्यों लिखा है ? ये सब बातें भी तो विचार लेनी चाहिये।

इसके सिवाय श्री वसुनंदिस्वामीने अपने श्रावकाचारके ४९२ गाथामें लिखा है कि "भगवानका अभिषेक करनेके फलसे यह भव्य जीव मेरु पर्वतपर इन्द्र दिक देवोंके द्वारा क्षीरोदधिके जलसे बडी भक्तिपूर्वक स्नान कराया जाता है। भावार्थ—अभिषेकके फलसे यह जीव तीर्थंकर होता है और फिर इन्द्रादिक देव उसका अभिषेक करते हैं। सो ही लिखा है—

अहिसेयफलेण णरो अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरि। खीरोयजलेण सुरिंदपमुह देवेहिं भत्तिस्स ॥ ४९२ ॥

टीका—अभिषकफलन नरः अभिषेकं प्राप्नोति सुदर्शनमेरौ क्षीरोदधिजलेन सुरेन्द्रप्रमुखदेवैः भक्त्या।

इस प्रकार लिखा है इसी प्रकार श्रीयोगीन्द्रदेवने अपने श्रावकाचारमें लिखा है।

"जो जिण ण्हावइ घीयय पइ"

जो भगवानका अभिषेक करता है वह उसी पदको प्राप्त होता है।

इसके सिवाय और भी अनेक शास्त्रोंमें लिखा है जो सब लिखा भी नहीं जा सकता। दूसरी बात यह है कि इन कार्योंमें जो जलादि द्रव्यका आरंभ होता है उससे महा पुण्य प्राप्त होता है। तथा उस आरंभसे होनेवाला पाप शीघ्र ही नष्ट होजाता है। देखो इस लोकमें अनेक प्रकारके विष हैं उनके खानेसे प्रत्यक्ष शीघ्र ही प्राण नष्ट होजाते हैं परंतु वही विष यदि किसी सुवैद्यके द्वारा विधिपूर्वक पकाकर संशोधन कर लिया जाय तो फिर उसको मिरच आदि अन्य औषधियोंके साथ खानेसे सन्निपातादिक

बड़ा दुस्सह और प्राणांत करनेवाले रोग भी शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं और वह खानेवाला मनुष्य जीवित हो जाता है। यदि वही विष किसी कुवैद्यके द्वारा विपरीत क्रियासे शोधा जाय तो वह शीघ्र ही प्राणोंको नष्ट कर देता है। क्योंकि संसारमें जितने पदार्थ हैं वे यथायोग्य पुरुषोंके संबंधसे यथायोग्य गुणोंको धारण करते हैं। अयोग्य और सर्वथा त्याग करने योग्य विष भी अनुपानके द्वारा महा गुणकारी हो जाता है। यदि हटकरके सब तरहसे ग्रहण करने योग्य उस गुणकारी विषको न ग्रहण किया जायगा तो वह पुरुष मरणको प्राप्त होगा ही। इसलिये किसी एक नयसे तो वह विष है ग्रहण करने योग्य नहीं है त्याग करने योग्य है तथा वही विष दूसरे नयसे ग्रहण योग्य है। इसीप्रकार अपनी इन्द्रियोंके विषय भोगोंके लिये किये हुये हिंसा आरंभादिक सावद्य योग त्यागरूप हैं परंतु पूजा, दान, तीर्थयात्रा, प्रतिष्ठा, जिनमंदिर, जिनप्रतिमादि, अभिषेक, रात्रिका जागरण, प्रभावना, रथयात्रा, नित्य दिन रात्रिगत पूजाभिषेक गीत वादित्र जिनमहिमा आदि जो जो धर्मके कारण हैं और प्रबल पुण्य उत्पन्न करनेवाले कार्य हैं उनमें अनाश्रित यत्नाचारपूर्वक कर्तव्योंमें जो कुछ थोड़ासा आरंभ होता है सो उस पूजा दानादिकके होनेपर उसके प्रबल पुण्यके माहात्म्यसे शीघ्र ही भस्म हो जाता है जैसे अग्निका एक छोटासा कणा भारीसे भारी घासके ढेरको शीघ्र ही भस्म कर देता है उसी प्रकार दान पूजादिकके पुण्यसे उससे होनेवाले आरंभजनित पाप शीघ्र ही भस्म हो जाते हैं। यदि वह अग्निका कणा किसी सूखे घासके पूलेको भी न जला सके तो वह अग्निका कणा हरी वनस्पतियोंको किसप्रकार जला सकेगा। इसीप्रकार पूजा दान आदिसे उत्पन्न होनेवाला पुण्य यदि उस पूजा दानादिकके आरंभसे उत्पन्न होनेवाले थोडेसे पापको ही नष्ट नहीं कर सकेगा तो फिर वह पूजा दानादिकसे उत्पन्न होनेवाला पुण्य एक जन्मके अथवा अनेक जन्मोंके पापोंको किस प्रकार नष्ट कर सकेगा? क्योंकि फिर तो उस पूजा दानसे अनेक जन्मके पाप कभी नहीं मिट सकते। क्योंकि जिस मनुष्यसे एक सरसोंका बोझा नहीं उठाया जा सकता वह मेरुपर्वतको किसप्रकार उठा सकेगा। हां जो मेरुपर्वतको उठा सकता है वह सरसोंको सहज रीतिसे उठा सकता है। अथवा विषका छोटासा कणा शीतोपचार करनेवालेको वा शीतलादि युक्त पुरुषको किसी प्रकारका दोष नहीं कर सकता किंतु उस शीत वा सन्निपात आदि दोषोंको दूर कर अनेक प्रकारके गुण उत्पन्न करता है। उसीप्रकार भगवानकी पूजा पूजाकरनेवालेके आरंभादिक सावद्य दोषोंको दूर कर महा पुण्यराशिको उत्पन्न करती है ऐसा श्रीसमंतभद्रस्वामीने कहा है जो पहले भी लिख चुके हैं। यथा—

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशिः।

अर्थात् "जो पुरुष पूज्य भगवानकी पूजा करता है आरंभजनित पाप बहुत थोडा होता है और पुण्यराशि बहुत होती है। श्रीपद्मनंदिस्वामीने भी लिखा है—

मालाधूपप्रदीपाद्यैः सचित्तैः कोर्चयेज्जिनम्। सावद्यसंभवं वक्ति यः स एवं प्रबोध्यते ॥
जिनार्चानेकजन्मोत्थं किल्विषं हंति यत्कृतम्। सा किन्न यजनाचारैर्भवं सावद्यमंगिनाम् ॥
प्रेर्यन्ते यत्र वातेन दन्तिनः पर्वतोपमाः। तत्राल्पशक्तितेजस्सु का कथा मशकादिषु ॥
भुक्तं स्यात्प्राणनाशाय विषं केवलमंगिनाम्। जीवनाय मरीच्यादि सदौषधविमिश्रितम् ॥
तथा कुटुंबभोगार्थमारंभः पापकृद् भवेत्। धर्मकृद् दानपूजादौ हिंसालेशो मतः सदा ॥

अर्थ—जो कोई संशय रखनेवाला जीव जिनपूजा आदि कार्योंमें सुगंधित मनोज्ञ पुष्पोंकी गूंथीहुई मालासे श्रीखंडादिक सुगंधित चूर्णकी बनी हुई धूपको अग्निमें प्रक्षेपण करनेसे तथा अनेक दीपकोंको जलाकर आरती करनेसे पूजामें पाप बतलाता है तथा जल गंध अक्षत नैवेद्य फल दूब दर्भ आदि चढानेमें अथवा पंचामृताभिषेक वा महाभिषेक रात्रिपूजा कार्तिकोत्सव आदिकी प्रभावनामें, तीर्थयात्रा, रथयात्रा, जिनबिंब बनवाना, जिनालय बनवाना, प्रतिष्ठा करना शांतिकपूजन, अष्टाह्निक, महामह, इन्द्रध्वज कल्पवृक्षादि हवनादिकके कार्य आदि शास्त्रोक्त धर्मकार्योंमें पाप बतलाता है उसे इसप्रकार समझाना चाहिये कि हे वत्स ! भगवानकी पूजा करनेसे अनेक जन्मके उपार्जन किये हुये बडे बडे पाप नष्ट हो जाते हैं फिर क्या उसी पूजासे उस पूजा करनेवालेके इस जन्मके किये हुये पाप अथवा उस पूजा रथयात्रा आदि धर्मकार्योंसे उत्पन्न हुये कुछ थोडेसे पाप नष्ट नहीं हो सकते ? अवश्य नष्ट होते हैं जिसप्रकार प्रलयकालकी जिस प्रबल पवनसे पर्वतके समान बडे बडे हाथी उड जाते हैं उस पवनसे क्या जरा जरासे मच्छर नहीं उड सकते ? अवश्य उड जाते हैं। ऐसा समझ कर ऊपर लिखे अनुसार जिनवाणीकी निंदा कर अनंत संसारका बंध नहीं करना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि जिस विषसे यह प्राणी मर जाता है वही विष यदि अच्छीतरह पकाकर शुद्ध कर लिया जाय और कालीमिरच आदि अच्छी औषधियोंके साथ खाया जाय तो उसी विषसे सब रोग दूर हो जाते हैं और खानेवाला मनुष्य मरनेसे बच जाता है। उसीप्रकार कुटुम्बको पालन करनेकेलिये अथवा भोगोपभोग सेवन करनेकेलिये जो पाप किये जाते हैं वे तो पाप हैं

परंतु दान पूजा आदि धर्मकार्योंमें जो कुछ थोडासा पाप होता है वह पाप उन धर्मकार्योंसे नष्ट हो जाता है तथा अन्य इकट्ठेहुए सब पापोंको भी नष्ट कर देता है। ऐसे श्रीवसुनंदिके वचन हैं। जिन जीवोंकी होनहार गति अच्छी नहीं है ऐसे जीव ऊपर लिखे आचार्योंके बचनोंको नहीं मानते हैं।

प्रश्न—हम लोग ऊपर लिखे कार्योंको छोड़ कर जो कुछ करते हैं वह यत्नपूर्वक आरंभको घटा घटा कर थोडेसे ही आरंभसे करते हैं तुम्हारे समान बहुतसा आरंभ नहीं करते। परंतु इसका उत्तर वा समाधान यह है कि श्रीजिनमूर्तिका नग्न, महाव्रतरूप और वीतरागस्वरूप है। उसमें अट्ठाईस मूलगुण तथा चौरासी लाख उत्तरगुण सबका समावेश है, उसमें सब पापोंका त्याग है तथा स्नानका त्याग तो मुख्यतासे है। फिर उस मूर्तिको कच्चे जलसे प्रक्षालन क्यों करते हो? क्या कच्चे जलकी एक एक बूंदमें असंख्यात जीव नहीं है? क्या उनका घात नहीं होता? और फिर भगवानको प्रक्षालन करना उनके त्यागका भंग करना नहीं है? क्योंकि उनके तो स्नानका त्याग है। इसके सिवाय उनके वस्त्रोंका भी त्याग है फिर प्रक्षाल करते समय उनके सब शरीरपर वस्त्रका संबंध क्यों करते हो? क्या यह उनका व्रत भंग करना नहीं है? जिस किसी पुरुषने चार प्रकारके आहारका त्याग कर उपवास धारण किया है वह यदि पानीकी एक बूंद पी ले अथवा भोजनका एक कणा मुखमें रखकर खा ले तो उसका उपवास बना रहेगा या भंग हो जायगा। कदाचित् यह कहो कि इससे उसकी प्रतिज्ञा भंग हो जायगी और इसीलिये तुम लोग चरणोंके नाखूनपर थोडासा गंध लगानेमें भी सरागताका दोष मानते हो तो फिर जो दंतधावनके त्यागी हैं, स्नानके त्यागी हैं, वस्त्रोंके त्यागी हैं और अन्नपानके त्यागी हैं इसलिये स्नान वस्त्र जल नैवेद्य पुष्प गंधार्चन आदि आठ द्रव्योंसे उनकी सराग पूजा क्यों करते हो? क्या इन कार्योंमें आरंभ नहीं है अथवा आप लोगोंको दोष लग नहीं सकता? क्या बात है? सो बतलाना चाहिये। अतएव हट करना श्रद्धानियोंका काम नहीं है। ऐसा अनेक ग्रंथोंमें लिखा है। ज्ञानी पुरुषोंको समझनेकेलिये तो एक ही शास्त्रका प्रमाण बहुत है। जो भगवानकी आज्ञाका पालन करते हैं वे तो एक ही शास्त्रका प्रमाण मान लेते है सो ही लिखा है "सुज्ञेषु बहुनोक्तेन किमित्यलम्" अर्थात् "विद्वानोंको बहुत कहनेसे कोई लाभ नहीं होता" उनके लिये एक ही प्रमाण बहुत है परंतु जो भगवानकी आज्ञा नहीं मानते उनके लिये कहना न कहना दोनों समान हैं, अनेक प्रमाण बतलानेपर भी वे नहीं मान सकते।

फिर भी इसी विषयको उदाहरण देकर बतलाते हैं। यदि कोई दुष्ट पुरुष शिकार करके वा जाल फैलाकर अथवा किसी शस्त्रसे पशु पक्षी मछली आदि जीवोंको मारता हो और उसको अहिंसाणुव्रतको धारण करनेवाला श्रावक उपदेश देकर छुडाता हो और

वह न मानता हो तो क्या करना चाहिये। उसको जबर्दस्ती छुडाना चाहिये या मरने देना चाहिये? यदि वह जबर्दस्ती छुडानेपर भी नहीं मानता है तो पत्थर लकड़ी जूते शस्त्र आदिसे धमका कर वा प्रहार कर भी छुडाते हैं उस धमकी वा मारपीटमें कोई कोई मर भी जाता है अथवा पशुपक्षियोंमें अनेक जीव दूसरोंको मारकर खाते हैं उनको पत्थर लकड़ी आदिकी घातसे छुडाते हैं। जो जीव पत्थर लकडीके घातसे अपने आहाररूप जीवको छोड देता है उसके भोगोंका अंतराय होता है और भूख न मिटनेसे उसके प्राणोंको पीडा होती है। जो खानेकी आशा लगी हुई थी वह निराश हो जाती है। एसी हालतमें उस जीवके छुडानेका फल दया-रूप होता है? या हिंसारूप? इस विषयमें आप लोगोंकी क्या सम्मति है? जीव तो दोनोंमें है अंतर केवल इतना है कि एक स्थान-पर तो रागभाव और करुणासे बचाया जाता है और दूसरी जगह द्वेषभावसे तथा क्रोधपूर्वक हिंसा करनेके भावसे प्रहार किया जाता है और उसके खाने पीनेमें अंतराय किया जाता है और इसमें प्रत्यक्ष हिंसारूप कार्य होता है। मोक्षशास्त्रमें भी लिखा है "प्रमत्त-योगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा" अर्थात् प्रमाद वा कषायके योगसे जो प्राणोंका वियोग किया जांता है उसको हिंसा कहते हैं। इससे सिद्ध होतां है कि केवल जीवोंका घात करनेसे ही हिंसा नहीं होती किंतु अपने परिणामोंके अनुसार हिंसा होती है।

इसीप्रकार जीवोंके कामभोगादिकके कार्योंमें दान लाभ वीर्यादिकके लाभ होनेपर विघ्न करना रोकना सो अंतराय कर्मके आस्रवका कारण है सो ही लिखा है "विघ्नकरणमन्तरायस्य" अर्थात् दान लाभादिकमें विघ्न करना अंतराय कर्मके आस्रवका कारण है। इसी प्रकार दूसरेके अन्नपानादिकका रोकना अहिंसाणुव्रतका अतिचार है। सो ही लिखा है "बंधवधच्छेदातिभारारोपणान्न-पाननिरोधाः" अर्थात् "बांधना, मारना, छेदना, अधिक भार लादना और अन्नपानका निरोध करना ये पांच अहिंसाणुव्रतके अतिचार हैं" इन दोनों बातोंका श्रद्धान ज्ञान आचरण तुम लोगोंके किसप्रकार है? कदाचित् यह कहो कि जीवोंका बचाना केवल उनकी दयाके लिये है उससे चाहे दूसरे जीवको अंतराय हो या भूखा मरना पडे अथवा बचानेमें किसीका घात भी हो जाय तो भी दयारूप परिणाम होनेके कारण उससे पुण्यबंध ही होता है। इसी प्रकार अभिषेक करनेमें पूजा करनेमें तथा और भी ऊपर लिखे हुए कार्योंमें जो थोडासा आरंभजनित पाप होता है वह भी पुण्य संपादनकेलिये है ऐसा ही श्रद्धान ज्ञान आचरण आपको करना पडेगा। कदाचित् इन अभिषेक वा पूजादिकके कार्योंमें हिंसादिक पाप मानोगे या इनको कर्मबंधके कारण मानोगे तो फिर वह श्रद्धान ज्ञान आचरण तेरहपंथी ढूंढिया साधुओंका हो जायगा। एक जगह बाईस टोलेके ढूंढिया साधु थे। उनमें एक भीष्म नामका ढूंढिया था। वह अपने गुरुसे लड़ पड़ा और लडकर उसने अपने नामका एक जुदा ही पंथ चलाया। धीरे धीरे उसके साथ बारह

ढूंढिया और आ मिले। इसप्रकार उन तेरह आदमियोंका पंथ तेरह पंथ कहलाता है। उनका सिद्धांत है कि यदि किसी चूहेको बिल्ली मारे अथवा कोई जीव अपने आहारके लिये किसी जीवको मारनेकेलिये पकडे अथवा मारे और उसको कोई छुडावे तो उसको अठारह प्रकारके पाप लगते हैं। इसलिये दयाधर्म पालन करनेवालेको ऐसे पकडेहुए जीव नहीं छुडाने चाहिये। ऐसा उन तेरह-पंथियोंका श्रद्धान है। तथा इससे मिलता जुलता तुम्हारा श्रद्धान हो जाता है क्योंकि पूजा अभिषेक आदिमें जो थोडासा आरंभजनित पाप होता है तुम उनके करनेका ही निषेध करते हो? इसलिये तुम्हारा श्रद्धान ज्ञान आचरण तेरहपंथियोंकासा समझा जाता है।

प्रश्न—कदाचित् यह कहो कि उस पकडे हुए जीवको छुडाना उसके प्राणोंकी रक्षाकेलिये और उसको अभयदान देनेकेलिये है। क्योंकि पहले उस जीवको छुडानेमें थोडीसी मारकूट आदि अशुभ कार्योंसे थोडासा पाप होता है। परंतु उससे बहुत अधिक पुण्य धर्म उत्पन्न होता है। सो इसका उत्तर वा समाधान यह है कि यहांपर पूजा अभिषेक आदि कार्योंमें भी अपनी इन्द्रियोंके विषय-भोग पुष्ट नहीं किये जाते किंतु भगवानका स्तोत्र करने, णमोकारादि मंत्रोंका पाठ करने भगवानके सामने अनेक प्रकारकी भक्ति ध्यान, वंदना आदि करनेसे महा पुण्य उत्पन्न होता है तथा अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं फिर भला इन कार्योंका निषेध क्यों करना चाहिये। देखो णमोकार मंत्रके पाठमात्रसे सब पाप दूर होते हैं ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। यथा—"एसो पंचणमोयारो सव्व पावपणासणो"। इसलिये भगवान अरहंतदेवकी आज्ञाको भंग करनेवाला मिथ्यात्वरूप खोटे श्रद्धानको छोडकर जैन शास्त्रोंके अनुसार श्रद्धान करना चाहिये। तभी सच्चा श्रद्धानी कहलाता है। केवल अपने मुखसे अपनी स्तुति करने और दूसरे किसीकी भी बात न माननेसे कुछ नहीं होता है। जो दूसरेके द्वारा स्तुति की जाती है वही सच्ची समझी जाती है।

इस उत्तरके कथनको सुनकर कोई बहुत चतुर वृद्ध पुरुष कहने लगा कि आपने अनेक शास्त्रोंका प्रमाण दिया तथा अनेक दृष्टांतोंसे सिद्ध किया सो इन सब शास्त्रोंको वा उदाहरणोंको हम भी जानते हैं परंतु हम इनमेंसे किसीको मानते नहीं। हमारे अनुमान ज्ञानमें जो सिद्ध हो जाय उसे तो हम मानते हैं बाकी किसीको नहीं मानते। ऐसे चतुर वृद्धकेलिये उत्तररूप वा समाधानरूप कहते हैं कि तुम सब शास्त्रोंके प्रमाणोंको जानते हो परंतु मानते नहीं सो यह मानना तो सरासर मिथ्या और असत्य है। देखो पहले लंकाधिपति रावणने श्री अनंतवीर्य केवली भगवानके समीप बलात्कारपूर्वक परस्त्रीसेवनका त्याग दृढतापूर्वक लिया था। परस्त्रीसेवनमें महा पाप है। अन्य मतवाले भी इसमें महापाप मानते हैं। शैवमतमें लिखा है—

परयोनिगतो बिन्दुः कोटिपूजा विनश्यति।

अर्थात् "जो मनुष्य अपनी विवाहिता स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रीकी योनिमें अपने वीर्यकी एक बूंद भी डालता है अर्थात् जो परस्त्रीके साथ संभोग करता है उसके पहले की हुई एक करोड़ प्रमाण महादेवकी पूजा (अथवा विष्णु आदिकी पूजा) सब नष्ट हो जाती है जैसा अन्य मतियोंके यहां भी लिखा है तथा श्रीकेवली भगवानने इससे भी अधिक महापाप बतलाया है। तथा लोकव्यवहारमें भी उसे अत्यंत निंदनीय बतलाया है। इन सब बातोंको जानता हुआ भी वह विवेकी जिनभक्त रावण श्रीरामचन्द्रकी रानी सती सीताको हर ले गया। तथा अपनी पट्टदेवी श्रीमंदोदरीके द्वारा, अपने भाई विभीषणके द्वारा, अन्य कुटुंबियोंके द्वारा, मंत्रियों द्वारा बड़े बड़े देशोंके अन्य राजाओंके द्वारा, तथा हनुमान आदि महापुरुषोंके द्वारा अनेक बार समझानेपर भी उसने किसीकी न मानी सीताके हरनेके कार्यको बुरा समझता हुआ भी वह श्रीरामचन्द्रसे युद्ध करनेकेलिये सामने आया परंतु अंतमें वह हारा और मरकर नरकमें पहुंचा। वहांपर अनेक प्रकारके परम दुःख भोग रहा है और सागरोंतक भोगेगा। इसलिये कहना चाहिये खोटा हट करना जीवोंको सदा दुःख देनेवाला होता है।

और सुनो। एक क्षीरकदंब नामका ब्राह्मण था वह बहुत ही विद्वान् था तथा राजगुरु था। उसके पास राजकुमार वसु, नारद नामका एक विदेशी ब्राह्मण और एक पर्वत नामका उनका ही पुत्र पढा करते थे। कितने ही दिनके बाद राजा मुनि हो गया तथा क्षीरकदंब भी मुनि होगया। तब राजकुमार वसु तो अपने पिताके सिंहासन पर बैठकर राजा बन गया तथा क्षीरकदंबका पुत्र पर्वत उपाध्याय व राजपुरोहित बन गया। इसके कितने ही समय बाद किसी एक दिन क्षीरकदंबके पुत्र पर्वतने अनेक शिष्योंके सामने व्याख्यान देते समय कहा कि "यज्ञकर्ममें वेदके मंत्र पढतेहुए अज अर्थात् अजाके पुत्र बकरेको अग्निमें डालकर होमना चाहिये। उसके इस व्याख्यानको सुनकर नारद ब्राह्मण कहने लगा कि हे पर्वत! तू मेरा गुरुभाई है और गुरुका पुत्र है। तुझे ऐसे झूठ और हिंसामय वचन कभी नहीं कहने चाहिये। तेरे पिताने (हमारे तेरे दोनोंके गुरुने) पढाते समय यज्ञकर्मके प्रकरणमें अज शब्दका अर्थ बकरा नहीं बतलाया था किंतु जो फिर उत्पन्न न हो सके ऐसे तीन वर्षके पुराने जौका नाम अज बतलाया था। ऐसे जौको घीमें मिलाकर होम करनेका विधान बताया था। पशुका होम करना तो अत्यंत निंदनीय और मिथ्या है। जैसा व्याख्यान तेरे पिता कहा करते थे वैसा ही तू कर। विरुद्ध मत कर। तब पर्वत हट कर कहने लगा कि "अज शब्दका अर्थ तो बकरा ही है, जौ नहीं है। इसप्रकार सब शिष्योंके सामने उन दोनोंका बहुत कुछ शास्त्रार्थ हुआ। उस शास्त्रार्थमें दोनों ही अपना अपना पक्ष कहते

रहे, हटे नहीं। अंतमें दोनोंने यह निश्चय किया कि इस शालामें राजा वसु भी पढा है और हमारे साथ पढा है इसलिये वह जो कुछ कह दे वही प्रमाण मान लेना चाहिये। ऐसा न्याय सबके सामने ठहरा। इस बातको सुनकर क्षीरकदंबकी स्त्री पर्वतकी माता सबसे पहले जाकर राजा वसुके पास पहुंची और राजासे कहेन लगी कि हे राजन्! आज मैं आपसे गुरुदक्षिणा मांगने आई हूं, आपके गुरुभाई विदेशी ब्राह्मण नारदने आज सब शिष्योंके सामने शास्त्रार्थमें आपके गुरुभाई पर्वतका मानभंग किया है। अब अंतमें आपके वचनोंके ऊपर न्याय ठहरा है। आप जो कह देंगे वही प्रमाण माना जायगा। इसलिये अब पर्वतके बचनोंका पक्ष हटना नहीं चाहिये बस यही गुरुदक्षिणा चाहती हूं। गुरानीकी यह बात सुनकर राजा वसुने उसको धीरज बंधाया और उसके कहे अनुसार काम करनेका वचन देकर उसे विदा किया।

इसके कुछ समय बाद ही नारद पर्वत और शिष्यमंडली आदि सब राजाके पास पहुंचे, राजा जिस सिंहासनपर बैठा करता था वह स्फटिकमणिका बना हुआ था। किसी एक दिन वह राजा क्रीडा करनेकेलिये किसी बनमें जा पहुंचा था वहांपर उसने एक स्फटिकमणिका ऊंचा खंभा देखा था वह वहांसे उसे ले आया था और उसे अपनी राजसभाके मध्यमें रखकर उसके ऊपर सिंहासन डालकर बहुत ऊचा बैठा करता था और इसप्रकार बहुत ही सुसज्जित और सुंदर लगा करता था। जिस समय नारद पर्वत आदि पहुंचे थे उस समय भी वह राजा वसु उसी सिंहासनपर बैठा था। पर्वतने जाकर सब समाचार राजासे कहे और शिष्य आदि सब राजसभाके सामने कहे। राजा वसु जानता था कि इन दोनोंके वचनोंमें नारदके वचन सत्य हैं तथा पर्वतके मिथ्या हैं तथापि गुरानीके कहनेसे जो पक्ष पकड लिया था उस पक्षके वशीभूत होकर कहने लगा कि "पर्वतके वचन प्रमाण हैं" राजाका यह कहना था कि उस महा झूठके पापसे वह स्फटिकका खंभा पृथ्वीमें घुस गया यह देखकर नारद आदि सब लोगोंने राजासे प्रार्थना की कि "हे राजन् सच कहो झूठ महादुख देनेवाला है।" लोगोंकी इस बातको सुनकर राजा विचार करने लगा कि "वास्तवमें नारदका वचन सच्चा है। मैंने पर्वतका झूठा पक्ष ले कर असत्य वचन कहा है इसीलिये यह खंभा पृथ्वीमें धस गया है। परंतु मैं गुरानीके वचनोंसे बंधा हुआ हूं मैं जानता हूं कि गुरुजीकी ऐसी आज्ञा नहीं है। उनकी आज्ञा नारदके वचनोंके अनुसार है। परंतु जो होनहार होगा सो होगा अब अपने वचनोंका पक्ष तो छोडना उचित नहीं है।" इसप्रकार सोच विचार कर वह राजा वसु फिर दुबारा कहने लगा कि "पर्वतके ही वचन प्रमाण हैं।" राजाके इसप्रकार कहने पर वह स्फटिकमणिका बाकीका खंभा भी पृथ्वीमें धंस गया। तब मंत्री आदि सब बडे बडे सभासद खडे होकर राजासे प्रार्थना करने लगे कि "हे राजन्! आपके असत्य वचनोंके पापसे

ही यह स्फटिकमणिका खंभा सब पृथ्वीमें धंस गया है और आपका सिंहासन पृथ्वीसे आ लगा है। अब आगे क्या हाल होगा इसको सोचकर सच बात ही कह दीजिये" सब लोगोंकी यह बात सुनकर भी उस पापी राजा वसुने अपने हटसे अपने वचनोंका पक्ष नहीं छोड़ा और तीसरी बार भी उसने कहा कि "पर्वतके वचन ही प्रमाण हैं" तीसरी बार राजाका इतना कहना था कि उसी समय राजा वसु सिंहासन सहित पृथ्वीमें धंस गया और मरकर नरकमें पहुंचा। इससे सिद्ध होता है कि कोई भी जाननेवाला पुरुष केवल हटसे अपने वचनोंका पक्ष लेता है तो उसको ऐसी ही निंद्यगति प्राप्त होती है। उस समय नारदके ऊपर देवोंने पुष्पोंकी वर्षा की थी और सब लोगोंने पर्वतको वहांसे निकाल दिया था। ऐसे एक नहीं अनेक कथन हैं सो सब जैनशास्त्रोंसे जान लेना चाहिये।

ऐसा ही हट करनेवाला एक सत्यघोष नामका ब्राह्मण था उसने भी अपना हट नहीं छोडा था और अंततक झूठ ही कहता रहा था इसलिये उसने भी तीन थाली गोबर खानेका, सब धन हरण करे जानेका, और मल्लोंकी तीन मुष्टियोंकी भारी मार सहनेका दंड भोगकर तथा प्राणांत होकर सर्पकी गतिमें जन्म पाया था इसकी कथा आगे भी बहुत है।

इन सब कथाओंसे सिद्ध होता है कि हट करनेवाला अपने कल्याण वा अकल्याणको नहीं देखता, केवल अपने वचनोंकी पक्ष पकड लेता है। उसको नहीं छोडता। परंतु वचनोंका पक्ष करना वा हट करना बहुत ही दुःखदायक है। जो मनुष्य भगवान अरहंत देवकी आज्ञाको मानते हैं वे उनके वचनोंके पक्षको ही अपने मस्तकपर धारण करते हैं।

प्रश्न—कदाचित् यह कहो कि "जो हम मानते हैं वही ठीक है। इस पंचमकालमें जैन शास्त्रोंके बीच बीचमें अनेक श्लोक मिलाकर अनेक प्रकारके सदोष वचन लिख दिये हैं। जिसप्रकार किसी साहूकारके बहुत समयसे पीडी दरपीडीसे सच्चे बहुमूल्य रत्नोंका हार चला आरहा था। किसी एक समय वह बहुमूल्य रत्नोंका हार उजलवानेकेलिये सुनारको दिया। उस सुनारने उस हारमेंसे बीच बीचमेंसे कितने ही बहुमूल्य रत्न निकाल लिये और उनके बदले झूंठे काचके टुकड़ोंके नग जोडकर उजालकर वह हार सोंप दिया। वह साहूकार रत्नोंकी परीक्षा करना नहीं जानता था और उसने किसी जानकारको दिखाया भी नहीं था। सुनारसे लेकर ज्योंका त्यों भीतर रख दिया था। कितने ही दिन बाद वह हार किसी जौंहरीके हाथ दिया गया तब उनकी परीक्षा हुई। तब मालूम हुआ कि इसमेंसे सच्चे रत्न निकाल लिये गये हैं और उनके स्थानपर झूठे कांचके टुकड़ोंके नग जोड़ दिये गये हैं। इसीप्रकार शास्त्रोंमें भी श्वेतांवरी रक्तांबरी आदि विषय कषायी लंपटी और परिग्रह धारण करनेवाले लोगोंने बीच बीचमें झूठे कथन मिला दिये हैं कितना ही नवीन नवीन कथन मिला दिया है। इसलिये उनमेंसे सच्चे कथनको तो हम मान लेते हैं और

मिलाये हुए झूठे कथनको नहीं मानते तो इसका उत्तर वा समाधान यह है कि जैसें आप हो वैसा ही सबको जानते हो। सोचो तो सही जो बीच बीचमें कितने ही रत्न झूठे रख दिये गये तब उसकी कीमत सच्चे रत्नोंकी रहगई या झूठोंकी रह गई।

किसी एक ठगने सच्चे रत्नोंका हार देखा फिर उसमें कितने ही झूठे नग मिले हुए देखे। तब उसने एक नया हार बनवाया। जिसमें आदि अंत और मध्यमें तो सच्चे रत्न लगाये और बाकीके सब रत्न झूठे लगाये और वे झूठे रत्न ऐसे लगाये जिनसे अच्छे अच्छे जौंहरी भी ठगे जा सकें। ऐसा हार बनाकर वह ठग उस हारको बेचने आया और अनुक्रमसे वह उसी जौंहरीके पास पहुंचा जिसके पास सच्चे रत्नोंका हार था किंतु जिसके बीच बीचमें झूठे रत्न मिले हुए थे उस ठगने आकर उस हारकी कीमत सब सच्चे रत्नोंकी मांगी। तब उस जौंहरीने अपने उस पुराने हारसे मिलान किया तो झूठे लगेहुए नग छिप न सके। परंतु उस ठगने भी जौंहरीके हारके बीच बीचके झूठे रत्न दिखलाये और उन झूठे रत्नोंकी परीक्षाकर उस सब हारको झूठे रत्नोंका ठहरा दिया तथा अपने हारके जो आदि अंतमें और मध्यमें सच्चे रत्न थे उनकी भी परीक्षा की और उनकी परीक्षासे सब हारको सच्चे रत्नोंका सिद्ध कर दिखाया। इस प्रकार वह ठग सबकी आंखोंमे धूल डालकर उस हारके बदले सच्चे रत्नोंका मूल्य लेकर चला गया। इसी प्रकार तुम्हारे बनाये हुए नवीन नवीन शास्त्रोंके वचन हैं। दोनोंमें सर्वांग झूठ वा एकदेश झूठ अथवा एकदेश सच किसमें है। इस पंचमकालमें कालदोषसे वा बुद्धिकी हीनतासे अथवा छद्मस्थ ज्ञानके कारण किसीके कहनेमें कुछ भ्रमरूप बचन निकल जाय तो विना सर्वज्ञके संदेह रहित होना कठिन है। यदि उनमें संदेह मानकर पूर्वाचार्योंके वचनोंका लोप कर नवीन झूठी रचना की जायगी तो अनंत संसारका बंध होगा। इसलिये तुम्हारे समान जबर्दस्ती अपना अकल्याण करनेवाला और कोई नहीं दिखता।

यदि किसी मेषीने शास्त्रोंमें कहीं कहीं झूठ लिख दिया भी हो तो जो कोई अयोग्यता वा विरुद्धता करेगा वह अपना फल पावेगा। क्योंकि इसप्रकारकी चोरी करना तो सबसे बुरा है। ऐसी चोरी लोभके वशसे करते हैं यद्यपि वे ऐसे कामोंको और उनके फलोंको परम दुखरूप जानते हैं तथापि लोभसे उसको छोड नहीं सकते उनके फलोंको भोगते हुए भी करते ही जाते हैं। जिन कुलिंगियोंने जिनागमकी विरुद्धता और अनंत संसारमय उसके खोटे फलको जानते हुए भी विरुद्ध वचन लिख दिये हैं उन्होंने बडी भारी अज्ञानता की है उन्होंने अपनापन खो दिया समझना चाहिये ऐसे लोगोंने पूजाकी द्रव्य अथवा भेंटमें अप्रमाण रुपये मोहरें भी लिखी हैं। जब ब्राह्मणोंके समान भेंट लेना लिखा है तो उसमें कुछ न कुछ मिथ्या भी जरूर लिखा होगा परंतु आप लोगोंको वह भी बुरा नहीं दिखता क्योंकि झूठेको दूसरा ही झूठा दिखता है।

यदि थोडी देरके लिये बीच बीचमें मिलानेकी बात मान भी ली जाय तो फिर उनके बनाये हुए पहले प्रमाणमें लिखे हुए शास्त्रोंको वा अन्य शास्त्रोंको क्यों पढते हो ? और उन्हीं शास्त्रोंके द्वारा अथवा उन्हीं लोगोंके द्वारा प्रतिष्ठा की हुई जिन मंदिरोंमें विराजमान जिन प्रतिमाओंको क्यों पूजते हो ? उनके शास्त्रोंका पढना और उनके द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाओंका पूजना भी मिथ्या मानना पडेगा ।

कदाचित् यह कहो कि हम तो ऐसा नहीं कहते पूर्वोक्त बडे बडे ग्रंथोंको अप्रमाण नहीं मानते । तो इसका उत्तर यह है कि तुम्हारे जो भाषा वचनिकाके शास्त्र हैं वे पूर्वाचार्योंके वचनोंके प्रत्यक्ष विरोधी हैं जो गाथा श्लोक आदि मूल आचार्योंके ग्रंथ हैं वे तो प्रमाण है हीं ।

इसपर कदाचित् कोई यह कहै कि हम भी तो सब कार्य श्रेष्ठ ही करते हैं । जल थोड़ा ही खर्च करते हैं, पुष्पादिक चढ़ाते ही नहीं, दीपक जलाते नहीं, रात्रिपूजा करते नहीं, अभिषेक करते नहीं जो जो अच्छी बातें हैं वे सब करते हैं । जो कुछ नवीन भी करते हैं सो भी अच्छा ही करते हैं । परंपरासे चली आई रीतिमें जो जो दोष दिखाई देते हैं उनको नहीं करते । नवीन नवीन रीतियां भी अच्छी अच्छी ही करते हैं । इसमें तो गुण ही है बिगाड़ नहीं है । ऐसा करनेसे पाप छूट जाता है और धर्ममार्गकी प्रवृत्ति होती है । तो इसका उत्तर वा समाधान यह है कि तुम लोग अच्छी अच्छी रीतियां करते हो तो पहलेके आचार्योंने कौन कौनसी बुरी रीतियां चलाई थीं ? अथवा ऐसी कौनसी रीति है जो कालदोषके कारण मलिन वा सदोष बन गई है । पूजादिकके द्रव्य तो सब शुद्ध हैं । जैसे किसी सच्ची टकसालमें बने हुये सोने अथवा चांदीके रुपये मुहरें आदि किसी साहूकारने शत्रु चोर वा राजाके भयसे पृथ्वीके नीचे गाड दिये अथवा और किसी उपायसे छिपा दिये । जिससे वे सब रुपये मोहरें मैली घिसी वा फूटीसी हो गई परंतु खटाई मसाला आदिसे फिर भी उजालने पर वे सुन्दर हो सकती हैं तथा जो परीक्षा करना जानते हैं वे उनको मैली जानकर भी छोडते नहीं । घडेमें भरे हुये घीके समान सदा साररूप ही रहते हैं । यदि कोई ठग कांसे पीतल आदिके खोटे रुपये मोहरे बना ले और उन सबको यंत्रसे उजालकर सुन्दर बना ले तो भी वे सुन्दर और कीमती नहीं हो सकतीं । यदि वे मैली हों तो उनके बदले कोई कौड़ी भी नहीं देता । यदि कोई ठग उन नकली रुपये मुहरोंको बेचने जाय और उनको देखकर कोई संदेह करने लग जाय तो उन सच्चे रुपये मोहरोंमें तो मैले होनेका दोष लगा देता है और अपने नकली रुपये मोहरोंमें ऊपरकी चमक दमक दिखाकर ठगकर बेच जाता है । इसीप्रकार इस समयके शास्त्रोंमें कदाचित् कालदोषसे कुछ थोड़ासा दोष भी हो तो भी उनसे अकल्याण

नहीं हो सकता तथा नवीन मार्ग चलानेवालोंके शास्त्रोंमें सच्चे श्रद्धानका और पूर्वाचार्योंके वचनोंका सर्वांग विरोध आता है तथापि ऐसे शास्त्र केवल ऊपरकी चमक दमकसे चल जाते हैं। नवीन मतोंमें ऊपरसे लोकरंजनकी झलक दिखाई पड़ती है और उसकी उस झलकको देखकर ही लोग उसको मान लेते हैं और उसकी प्रवृत्तिके अनुसार चलने लग जाते हैं। अनेक भेष बनाकर उसकी वृद्धि करते हैं तथा नवीनता प्राचीनतासे कुछ अच्छीसी मालूम पड़ती है इसलिये भी लोग उसमें लग जाते हैं। इसके सिवाय और कोई कारण नहीं हैं।

संसारमें बहुतसे लोग ऐसे भी देखे जाते हैं जिनको सच्चा श्रद्धान तो है नहीं तो भी जो कुछ धर्मकार्य करते हैं वह केवल अपनी स्तुति अथवा दूसरोंकी निंदा करनेके लिये ही केवल दंभरूप करते हैं। अपने कल्याणके लिये नहीं करते।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहै कि हम लोग भेषियोंके द्वारा प्रतिष्ठित जिनबिंबके चरणोंसे लगे हुये गंध पुष्प आदि सब दोषोंकी हटाकर तथा उसे निर्दोष कर फिर उसकी पूजा बंदना करते हैं। सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि इसीप्रकार सदोष पदार्थ निर्दोष हो जाय तो जो कोई बालक अपनी जाति वा कुलका नहीं है उसको भी स्नान कराकर अपना पुत्र बना लेना चाहिये, उसे सब द्रव्यका स्वामी बना देना चाहिये और उसे अपनी जातिमें ब्याह देना चाहिये। यदि केवल स्नान करा देने मात्रसे शुद्धि मान ली जायगी तो फिर किसी शूद्रको भी स्नान कराकर तथा इसप्रकार निर्दोष बनाकर अपना कार्य सिद्धकर लेना निर्दोष माना जायगा यदि ऐसा होना अयोग्य और बुरा है तो फिर तुम्हारा ऊपर लिखा श्रद्धान भी दंभमय ही सिद्ध होगा। फिर उसे परमार्थ वा यथार्थ नहीं कह सकते।

इसपर कदाचित् कोई यह कहै कि "तुम्हारा कहना असत्य है इसको हम नहीं मानते। हम जो कार्य करते हैं सो यथार्थ श्रद्धान सहित ही करते हैं, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि आप लोग जिनागमकी आज्ञाप्रमाण कार्य करते हो तो भगवानने तो शास्त्रोंमें ऊपर लिखे अनुसार अभिषेकपूर्वक पूजा करना तथा पूजामें गंध पुष्प फल आदि चढ़ानेका विधान बतलाया है उसका निषेध आपलोग क्यों करते हो ?

देखो भगवानकी पूजा करनेसे अनेक जन्मके इकट्ठे हुये पाप महापाप नष्ट हो जाते हैं तथा परम पुण्य प्राप्त होता है। ऐसा पूजा पाठ आदि समस्त जिन ग्रंथोंमें विस्तारके साथ लिखा है तथा जिन्होंने भगवानकी पूजा की है उनको महाशुभ फलोदयसे स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त हुए तथा जिन्होंने निंदा की उनके पहले किये हुये समस्त महापुण्य नष्ट हो गये महापापका बंध हुआ

और अत्यंत दुःख देनेवाली नरकादिक नीच गति प्राप्त हुई। ऐसे जीवोंकी अलग अलग कथायें स्थान स्थानपर लिखी हैं तथा पूजा करनेवालोंकी महा व्याधियां नष्ट होती हैं और निंदा करनेवालेके कोढ आदि अनेक प्रकारके रोग दुःख दरिद्रता और दुर्गंधादिमय शरीरकी प्राप्ति होती है। ऐसा अनेक पूजा पाठ ग्रंथोंमें तुम लोग प्रतिदिन पढते हो, पढाते हो, सुनते हो, सुनाते हो तथापि अभिषेक पूजा आदि कार्योंमें होनेवाले थोडेसे आरंभसे डरकर यथार्थ श्रद्धानसे च्युत होकर पूजा पाठ करते हो। पूजापाठ आदि शास्त्रोंमें जो यह लिखा है कि अभिषेक पूजा आदि करनेसे अनेक जन्मके महापाप मिट जाते हैं और महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है सो मालूम नहीं होगी या नहीं ? अथवा यह लिखना सत्य है वा असत्य ? पूजा पाठका जो यह फलस्तुति (स्वर्गादिक सुखोंके प्राप्त होनेकी महिमा) वतलाई है सो केवल रुचि बढानेके लिये ही है अथवा सत्य है ? किसी जगह लिखा भी है "रोचनार्थं फलस्तुतिः" अर्थात् किसी पदार्थकी महिमा उसकी ओर रुचि बढानेके लिये ही की जाती है।" इसप्रकार आप लोगोंका पूजा पाठ अभिषेक आदि शंकासहित किया जाता है।

जैसे किसी समय किसी सेठने एक वनपालको (मालीको) आकाशगामिनी विद्या सिद्ध करनेके लिये "णमो अरहंताणं" इत्यादि मंत्र दिया था। तथा उसकी विधि बतलाई थी कि किसी श्मशान भूमिमें बडके वृक्षकी किसी ऊंची शाखामें एक सौ आठ लडीका एक दाभका छींका लटकाना चाहिये। उसके नीचे तलवार किरच आदि बडे तेज खुले शस्त्र ऊपरकी ओर मुह करके रख देना चाहिये। फिर उस छीकेमें बैठकर एक एक मंत्रको पढकर छुरीसे एक एक लडी काटते जाना चाहिये। इस प्रकार सब लडियों के कट जाने पर विद्या सिद्ध हो जाती है। वह वनपाल विद्या सिद्ध करनेको तो तैयार हुआ परंतु उसका हृदय कुछ सशंकित भी होगया। वह विचारने लगा कि यदि कदाचित सेठ की कही हुई बात झूठी होजाय और विद्या सिद्ध न हो तो फिर मेरा मरण ही हो जायगा। मुझे तो यह भी मालूम नहीं है कि यह सब सत्य है वा असत्य। इस मंत्रसे ओर इस विधिसे विद्या सिद्ध होती है या नहीं ? इस प्रकार आप लोगोंके समान सशंकित होकर वह विचार कर ही रहा था कि इतनेमें एक अंजन नामका चोर वहांपर भागता भागता आ निकला। आते ही उसने वनपालसे पूछा कि तू यह क्या कर रहा है ? तब वनपालने कहा कि मैं सेठके दिये हुये मंत्रको सिद्ध करनेकी चेष्टा कर रहा हूं परंतु साथमें मरनेकी शंका भी होती है तब उस अंजनचोरने उस विद्याकी सब विधि पूछी तथा उस वनपालको छींकेसे उतारकर आप निःशंक होकर उसमें बैठ गया। उसने संशय विपर्यय आदि सब दूरकर विधिके अनुसार मंत्रपूर्वक सब लडियां काट डालीं और उसी समय उसे विद्या सिद्ध होगई। तदनंतर वह अंजनचोर उस आकाश-

गामिनी विद्याके बलसे मेरु पर्वतपर विराजमान उस सेठके पास पहुंचा। वहां जाकर चैत्य बंदना की पूजाकी और-ऋद्धिधारी मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर तपश्चरण कर केवल ज्ञान पाकर मोक्ष पहुंचा। इसप्रकार निःशंकित सहित आप लोगोंका कार्य दिखाई नहीं पडता। आप लोगोंके कार्य वनपालके समान दिखाई देते हैं।

और देखो रेवती रानीके जिनवचनोंमें दृढ श्रद्धान था उसकी परीक्षाके लिये एक क्षुल्लक ब्रह्मचारी अपनी विद्यासे समवसरण सहित तीर्थंकर केवली बनकर आया उसकी बंदना करनेके लिये राजा प्रजा तथा अभयसेन मुनि आदि सब आये। परंतु रेवतीरानी न गई। राजा प्रजा आदि सबने रेवतीको समझाया कि "यहांपर" पहले ब्रह्मा विष्णु महेश आये थे, तब तो तुम नहीं गई थीं, सो ठीक ही था क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीवका यही धर्म है परंतु यहां तो समवसरणसहित केवलज्ञानसे सुशोभित साक्षात् तीर्थंकर भगवान पधारे हैं सो यहां तो अवश्य चलना चाहिये। तब रानीने कहाकि ऐसा होना भगवानकी आज्ञासे बाहर है। इसलिये मैं नहीं जाती तीर्थंकर चौवीस होते हैं सो होगये पच्चीसवां तीर्थंकर होना शास्त्रोंमें बतलाया नहीं यदि कोई केवलज्ञानादि सहित साक्षात् तीर्थंकर का रूप बनाले तो भी जैन शास्त्रोंकी आज्ञाके विना जानेमें आज्ञा भंगका दोष लगता है और आज्ञा भंगका दोष लगनेसे अनंत संसार परिभ्रमण करना पडता है। इसलिये यथार्थ श्रद्धानी पुरुषको कभी ऐसा नहीं करना चाहिये। इसप्रकार रेवती रानीके श्रद्धान में दृढता बनी रही। यदि वह रानी वहां जाकर पूजा वंदना आदि करती तो क्या उसे मिथ्यात्वका दोष लगता? कभी नहीं। क्योंकि ब्रह्मा विष्णु महेषका तो रूप था ही नहीं। वहां तो केवलज्ञानी जिनलिंग थे तो भी शास्त्रकी आज्ञा न होनेके कारण वह रानी वहां नहीं गई।

दूसरी ओर अभव्यसेन मुनिको देखो वह ग्यारह अंग नौ पूर्वका पाठी था और जिन वचनोंमें भी श्रद्धान रखता था। वह महा व्रतोंको पालता था, सैकडोंको उपदेश देता था और स्वर्ग मोक्षका मार्ग दिखलाता था परंतु जिनवचनोंमें संदेह होनेके कारण क्षुल्लक विद्याधरके द्वारा बनाई हुई घास आदि बनस्पतिके ऊपर उसने गमन किया, मायामयी सरोवरमें हाथ पानी लिया, और ब्रह्मा विष्णु महेश केवली सबकी वंदनाको गया इसप्रकार उसने भगवानके वचनोंमें संदेह करते हुये धर्मसाधन किया इसीलिये उसने अंतमें निंद्य गति पाई। इसी प्रकार आप लोगोंका कार्य भी सब सशंकेन ही जान पडता है।

और देखो इस पंचमकालके प्रारंभमें श्रीभद्रबाहु पांचवें श्रुतकेवलीके समय बारह वर्षका दुष्काल पडा था उसमें रामल्य स्थूलभद्र आदि बारहहजार मुनि भ्रष्ट होगये थे। उन्होंने जिन वचनोंमें सशंकित होकर मूलसंघसे विपरीत कथन किया था। केवली

कवलाहार नहीं करते यह मूलसंघका सिद्धांत है परंतु उन्होंने इसमें शंका खडी करदी कि केवली भगवानकी स्थिति आठ वर्ष कम एक करोड पूर्व तक होती है सो इतने दिनतक विना कवलाहार किये यह औदारिक शरीर किस प्रकार टिक सकेगा। बस इसी शंकाको सामने रखकर उन्होंने केवलीके कवलाहारका निरूपण करदिया। इसीप्रकार संशय मिथ्यात्वके उदयसे और भी कितनी ही विपरीत बातें पुष्टकीं तथा इसप्रकार वे जिनवचनके विरोधी हुये इसलिये जिनवचनोंमें शंका करना निःशंकित नामके सम्यग्दर्शनके अंगका घातक है। इसप्रकारकी शंकाओंसहित सम्यग्दर्शनका श्रद्धान आप लोगोंके समान पुरुषों के ही होता है।

और देखो श्री ऋषभदेवकी दिव्यध्वनिमें धर्मका स्वरूप सुनकर तथा उसे अच्छी तरह जानकर भी उनके पोते मारीच आदि मिथ्यातियोंने जिन वचनोंमें शंका रक्खी थी और उस शंकाहीके कारण सांख्य पातंजलि आदि शास्त्रोंकी रचना की थी तथा दंडी संन्यासी परमहंस आदि अनेक भेष धारणकर अनेक प्रकारकी विपरीतता पुष्ट की थी। इसीलिये वे सब जिनवचन बाह्य अथवा जिनधर्मके बाहर समझे गये थे। इससे सिद्ध होता है कि जो जैन वचनोंमें वस्तुके स्वरूपमें संदेहयुक्त प्रवृत्ति करता है वह विपरीतता भी अवश्य करता है यह बात मिथ्या नहीं है किंतु सर्वथा सत्य है।

कदाचित् यह कहो कि "हमें जिन वचनोंमें रंचमात्र भी शंका नहीं है परंतु फल तो अपने भावोंके आधीन है वैसे भाव भी तो होने चाहिये। विना भावोंके केवल क्रियायें करना सब व्यर्थ हैं। तो इसका सीधासा उत्तर यह है कि हम लोग तो विना भावोंके करते हैं तथा आप लोग सब वैसे ही भावोंसे करते हो ? आपके भाव बहुत निर्मल हैं। उनमें रंचमात्र भी संदेह वा शंका नहीं है। क्योंकि आप लोग शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पूजा पाठ पढते हो और उस पूजा पाठमें जो लिखा है जो मुखसे पढते हो उसके अनुसार जो जो मिल सकता है और बन सकता है वह सब ही करते हो ? उसमेंसे न कुछ घटाते हो ? और न कुछ और ही प्रकार करते हो ? जो कहते हो ? वही करते हो। देखो ! जो तुम नित्य पूजा पाठ पढते हो ? शास्त्र वांचते हो ! उसमें पुष्पमाला पुष्पांजलि नैवेद्य दीप फल जो जो लिखा है सो सब चढाते ही हो। कल्पवृक्षके पुष्प वा रत्नादिकके दीपक तो हम तुमसे बन ही नहीं सकते। बाकी सब आप लोग करते हो ? इससे लोगोंके भाव निर्मल मालूम पडते हैं। यदि कोई दूसरा आपके यहां आकर पूजा पाठ करता है उससे आप क्रोध करते हो। मंदिरोंमें यदि अपने संप्रदायकी मूर्ति हो तो आप लोगोंके भाव निर्मल रहते हैं यदि प्राचीन संप्रदायकी हो तो कलुष भाव होजाते हैं इसप्रकार आप समान सम्यग्दृष्टियोंके दो प्रकारके भाव होते हुए भी आप लोग श्रद्धानी कहलाते हो। यह केवल आपका ही मत है।

दूसरी बात यह है कि "भगवानकी प्रतिमाके चरणोंमें गंध लगानेसे अथवा ऐसी प्रतिमाके दर्शन करने, उसकी पूजा वंदना भक्ति अभिषेक आदि पुण्यकार्य करनेसे, पुष्प चढानेसे, दीपक जलाकर चढानेसे, तथा फल चढानेसे तथा अन्य सचित्त पदार्थोंसे पूजा करनेसे कोई जीव मिथ्यादृष्टी होजाता है, वह नरक निगोद आदि नीच गतियोंमें जाता है और अनंत संसार परिभ्रमण करता है" यह बात किसी कथा वा पुराण आदिमें दिखलाना तो चाहिये ? तथा जिनपूजाके निंदकोंने निंद्यगति पाई है सो जिनागममें जहां तहां कथारूपमें विस्तारके साथ लिखी ही है तथा आप लोग सब जानते ही हो ।

विचार करनेकी बात है कि भगवानकी पूजा करने, अभिषेक करने, तीर्थयात्रा, रथयात्रा, नैमित्तिक उत्सव पूजापाठ आदि कार्योंमें आरंभजनित जो कुछ स्थावरादि जीवोंकी हिंसा होती है उसका दोष यदि उस पूजाके करनेसे नहीं मिटता तथा ऐसे कार्योंसे जीवोंके अशुभ कर्मका बंध होता वा अशुभ गति होती तो जो मुनिराज अहिंसा महाव्रतादि पांचों महाव्रतोंको पालन करते हैं पांचसमिति, तीन गुप्ति आदि अट्ठाईस मूलगुणोंको पालन करते हैं उत्तरगुणोंको पालन करते हैं और सब प्रकारके आरंभके त्यागी होते हैं ऐसे महा संयमी मुनिराज स्वयं अपने वचनोंसे नवीन मंदिर बनवाने, जिनप्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराने अभिषेक महाभिषेक करने आदि सावद्य योगरूप पुण्यकार्योंके करनेका उपदेश श्रावकोंके लिये क्यों करते ? इस बातका विचार तो बहुत छोटासा आदमी करसकता है फिर भला मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञानको धारण करनेवाले मुनिराजोंकी समझमें यह बात न आई ? जो उन्होंने ऐसा उपदेश दिया ? क्योंकि जितने जिनागम हैं वा जितने पूजा पाठ हैं उन सबमें उन्हींके कहे हुये वचन हैं। उन्हींने इन क्रियाओंके करनेका उपदेश दिया है । जैनशास्त्रोंमें जितने व्रत बतलाये हैं तथा उनका विधान पूजा अभिषेक आदि जो कुछ कहा गया है वह सब उन्हीं मुनियोंका बताया हुआ है । ऐसे पूजा अभिषेक आदि कार्य जिन्होंने किये हैं उनकी कथा शास्त्रोंमें प्रसिद्ध ही है। तथा उसीप्रकार अब भी लोग करते ही हैं ।

और सुनो एक क्षुल्लक ब्रह्मचारी विद्याधर था उसने निमित्तज्ञानी अपने गुरुसे जाना कि हस्तनापुरमें सातसौ मुनियोंको घोर उपसर्ग होरहा है, और उसको विष्णुकुमार मुनिराज दूर कर सकते हैं उस समय आधी रातका समय था। वह विद्याधर उसी समय मुनिराज विष्णुकुमारके समीप पहुंचा। विष्णुकुमारको विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हुई थी । उस विद्याधरने मुनिराजसे प्रार्थना की कि महाराज हस्तिनापुरमें सातसौ महामुनियोंको घोर उपसर्ग हो रहा है। प्रातःकाल नरमेध यज्ञके लिये उन सब मुनियोंकी अग्निमें होम कर मारेंगे आपको विक्रिया ऋद्धि प्राप्त है सो आप बचाइये। तब मुनिराजने पहले तो विक्रियाऋद्धिके प्राप्त होनेकी २६२

परीक्षा की। फिर उसी समय अर्थात् आधी रातमें ही वे हस्तिनापुर आये। वहांका पद्मनामका राजा उनका भाई था सो उसको महलोंमें जाकर जगाया और उसको समझाकर कहा कि "तू बड़ा दुष्ट है, पापी है, इस राज्यमें वा इस वंशमें कभी ऐसा नहीं हुआ जो आज होरहा है" मुनिराजकी बात सुनकर राजा पद्मने हाथ जोड़े नमस्कार किया और फिर निवेदन किया कि महाराज इसमें मेरा वश नहीं है। मैं तो बलि नामके मंत्रीको अपने वचनोंसे सात दिनका राज्य हार गया हूं। अब यह उपसर्ग मुझसे दूर नहीं हो सकता आपसे ही दूर हो सकेगा। राजाकी यह बात सुनकर वे मुनिराज वामनरूप ब्राह्मणका रूप धारणकर राजा बलिके पास पहुंचे। राजाको आशीर्वाद दिया और तीन पेंड पृथ्वी मांगी। राजा बलिने तीन पैंड पृथ्वी संकल्प कर दी। तब उन मुनिराजनें विक्रियाऋद्धिसे अपना शरीर बढाया तथा एक पैर मेरु पर्वतपर रक्खा, दूसरा पैर मानुषोतर पर्वतपर रक्खा और तीसरा पैर कहीं रखनेकी जगह न रहनेके कारण बलिकी पीठपर रक्खा इस प्रकार राजा बलिको वशकर बांधकर मुनिराजोंका वह घोर उपसर्ग दूर किया। उसीसमय आकाशसे देवोंने उन मुनिराजके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की, जय जय शब्द किया अनेक प्रकारके वीणा आदि बाजे बजाकर विष्णुकुमारके गुणोंकी स्तुति की, स्तुतिके गीत गाये। इसप्रकार मुनिराज विष्णुकुमारने सातसौ मुनियोंकी रक्षा की।

देखो धर्मकी रक्षाके लिये मुनिराजने भी अपने त्यागका भंग किया और वात्सल्यअंगका पालनकर धर्मका उद्योत प्रगट किया। देखो जैनशास्त्रोंमें त्याग भंग करनेका बहुत ही बुरा फल बतलाया है सो आप लोग जानते ही हैं। प्राणांत होनेपर भी व्रतभंग नहिं करा चाहिये। जो कोई मनुष्य थोडेसे भी व्रत लेकर भंग कर देता है उसको जिन प्रतिमासहित सहस्रकूट जिनालयके भंग करनेका महा पाप लगता है। सो ही व्रतकथाकोशमें सप्त परमस्थानव्रतकी कथामें लिखा है। यथा—

१ मुनिराज न तो ऋद्धियोसे काम लेते हैं और न रात्रिगमन वा इसप्रकारका छल करते है। परंतु विष्णुकुमारने किया सो केवल धर्मकी रक्षाके लिये किया उसमें आरंभजनित थोडासा पाप हुआ परंतु धर्मकी रक्षा अत्यंत अधिक हुई। सातसौ मुनिराजकी रक्षा हुई और धर्मका महा उद्योत हुआ मुनिराजको महा पुण्यका बंध हुआ। इसीलिये देवोंने उसी समय पुष्पवृष्टिकर उनकी पूजा की। मुनिराज सब आरंभके त्यागी थे परंतु थोडासा आरंभ उन्हें करना पडा था इसलिये उन्होंने उसका प्रायश्चित्त लिया था। गृहस्थ आरंभका त्यागी नहीं है इसलिये गृहस्थोंको ऐसे कार्य अवश्य करने चाहिये। जब गृहस्थ घरके कामोंके लिये घर बनवाना बगीचा लगाना आदि सब काम करता है तब जिनालय बनवाना प्रतिष्ठा कराना पुष्प चढाना आदि कार्य भी उसके कर्तव्य हैं शास्त्रोंकी आज्ञा है और वह उसका त्यागी नहीं है इसलिये उसे अवश्य करने चाहिये न करनेसे वह कर्तव्यहीन होकर महापापका भागी होता है।

गुरून प्रतिभुवः कृत्वा भनक्त्येकं घृतं व्रतम्।
सहस्रकूटजैनेन्द्रसद्मभंगाघभागलम् ॥ ८०८ ॥

अर्थात्–"गुरुओंकी साक्षी पूर्वक धारण किये हुये एक व्रतको भी जो भंग करता है उसे सहस्रकूट चैत्यालयके भंग करनेका पाप लगता है।" सो विष्णुकुमारने अच्छा किया या बुरा किया। तथा फिर वे विष्णुकुमार मुनि पूज्य रहे या अपूज्य? (व्रतभंग करनेपर भी देवोंने पुष्पवृष्टिकर उसीसमय उनकी पूजा की सो क्यों?)

और सुनो मुनिराज श्रीवज्रकुमार भी महाव्रती थे उन्होंने भी अपने पिता आदि बहुतसे विद्याधरोंको अपने वचनसे कहा था कि "रानी उरविल्या श्रीजिनेंद्रदेवका रथ निकालना चाहती है और बौद्धमतको पालनेवाली उसकी सौत उस रथको रोकना चाहती है। वह कहती है कि पहले बुद्धका रथ चलेगा पीछे जिनेंद्रदेवका रथ चलेगा। इसलिये तुमलोग जैनधर्मकी प्रभावना करनेके लिये उरविल्याका मनोरथ सिद्ध करो और श्रीजिनेंद्रदेवका रथ सबसे पहले चलवाओ। मुनिराजकी यह बात सुन कर उन विद्याधरोंने बुद्धका रथ तो टुकडे टुकडे कर तोड़ फोड़ दिया और श्रीजिनेंद्रदेवका रथ बडे उत्सव और बडी भारी प्रभावनापूर्वक चलवाया। सो क्या महाव्रतीको ऐसा कहना योग्य था। महाव्रती तो मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे समस्त सावद्य (अशुभ) योगोंके त्यागी हैं फिर उन्होंने अपने मुखसे ऐसे वचन क्यों कहे अथवा मुखसे कहकर ऐसा कार्य क्यों कराया? कहांतक कहा जाय केवलज्ञानसे सुशोभित श्रीवृषभदेव तीर्थंकरसे लेकर श्रीमहावीरस्वामी पर्यंत समस्त तीर्थंकरोंने, वृषभसेन गणधरको आदि लेकर गौतम पर्यंत समस्त गणधरोंने, समस्त सामान्य केवलियोंने और अनेक ऋद्धियोंको धारण करनेवाले अनेक महाव्रती साधुओंने इन अभिषक महाभिषेक पुष्प फलसे पूजा करने आदिका उपदेश दिया है तथा उपर लिखे अनुसार सम्यग्दर्शनके अंग पालन करनेका उपदेश दिया है तो फिर इन सब पुण्यकार्योंका निषेध करनेवाला उन तीर्थंकरादिकोंसे भी बडा और पूज्य मान लेना चाहिये जो तीर्थंकरोंके वचनोंका भी उल्लंघन कर झूठी निंदा करता है? जो लोग ऐसे निंदकोंकी बात मानते हैं वे अनंत संसारी हैं। भगवाकी आज्ञाके घातक हैं भगवानकी आज्ञाका पालन करनेवाले नहीं हैं।

इतना समझ लेनेपर भी कदाचित् कोई यह कहै कि 'अभिषेक तो हम भी करते हैं हम उसका निषेध थोडे ही करते हैं हां अंतर केवल इतना है कि हम उन कलशोंको भगवानके मस्तकपर नहीं ढोलते उनके सामने ढोलते हैं।" सो यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि भगवानके सन्मुख कलशाभिषेक करना किस शास्त्रमें बतलाया है।



कदाचित् कोई यह कहै कि भगवानके मस्तकपर कलशाभिषेक करना कहां बतलाया है तो इसका उत्तर यह है कि मस्तकपर कलशाभिषेक करना तो सब पाठोंमें लिखा है। अभिषेकका अर्थ ही उन कलशोंके जलको मस्तकपर ढालना है। अभिषेकका अर्थ उस जलको दूर डाल देना नहीं है। तुमलोग जो प्रतिदिन पूजा पाठ पढते हो मंगल पढते हो उसमें प्रतिदिन पढते हो "सहस अठोत्तर कलशा प्रभुजीके शिर ढुले" सो क्या यह पाठ झूठा है ? या इसका निषेध करनेवाले आपलोग झूठे हैं दोनोंमें कौन झूठा है सो आपलोग ही बतलाओ।

कदाचित् यह कहो कि यह पाठ और यह रीति तो जन्म समयकी है, तपकल्याणक वा ज्ञानकल्याणक समयकी नहीं है। तो इसका उत्तर यह है कि जिनप्रतिमामें क्या जन्मकल्याणक नहीं है और यदि जन्मकल्याणक नहीं है तो क्या तपकल्याणक है? अथवा ज्ञानकल्याणक है ? और यदि तपकल्याणक वा ज्ञानकल्याणक ही है जन्मकल्याणक नहीं है तो फिर पहलेकी जन्मसमयकी सरागताकी रीति क्यों पढते हो ? और उसके लिये द्रव्य क्यों चढाते हो ? गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाण इन पांचों कल्याणकोंसहित क्यों पूजते हो। यह चतुराई तो अजानकारोंकीसी है। इसलिये जो भगवानकी आज्ञाको माननेवाले सच्चे सम्यग्दृष्टी श्रद्धावान हैं वे अपनी बुद्धिकी चंचलताको रोककर देव शास्त्र गुरुके वचनोंपर दृढ श्रद्धान रखते हैं तथा वे ही अपने कार्यमें सफल होते हैं। जो लोग अपने मनमें अनेक प्रकारके विकल्प उठाकर भगवान जिनेंद्रदेवकी आज्ञामें शंका, संशय, मोह और विपरीतता धारण कर भगवानकी आज्ञाका निषेध करते हैं और अपने मनकी कल्पनाके अनुसार चलते हैं वे भगवानकी आज्ञाके बाधक समझे जाते हैं। जो लोग भगवानकी आज्ञाके विरुद्ध केवल अपनी बुद्धिसे कई प्रकारसे अधिक अधिक कल्याण करना चाहते हैं धर्मपालना चाहते हैं तो भी जिनाज्ञाके विरुद्ध होनेसे उनका एक भी कार्य सिद्ध नहीं होता है।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहै कि तुमने अबतक जो कुछ कहा है सो सब बढा बढाकर कहा है सो क्या इतना बढा बढा कर कहनेवाले तुम ही विद्वानहो ? तुम ही पढे हो ? क्या तुम्हारे सिवाय बाकीके सब मूर्ख ही हैं जो तुम उनके लिये ऐसा कहते हो ? तो इसका उत्तर यह है कि "भाई ज्ञानी का ज्ञान तो अनंत है उसका तो पार नहीं है। हमने तो जो शास्त्रोंमें देखा है वा सुना है वही लिखा है। यह ठीक है कि हम प्रशंसाके पात्र नहीं हैं न कुछ पढे लिखे विद्वान हैं श्रेष्ठ हैं तथापि आप लोगोंका पढना गुरुमुखसे नहीं हुआ है, आप लोगोंकी विद्या गुरुमुखसे प्राप्त न होनेके कारण गुरुमार कहलाती है। जो लोग पहले थोड़ा बहुत गुरुसे पढलेते हैं और फिर अपने ज्ञानके मदमें आकर अपने आप सिद्ध बन जाते हैं गुरुसे द्रोह करने लग जाते हैं उनकी विद्या गुरुमार, विद्या

कहलाती है। जो विद्या गुरुआज्ञासे बाह्य होती है वह चोर छद्मस्थ और छलबलकी विद्या कहलाती है ऐसी विद्या कभी सफल नहीं होती।

यहांपर प्रकरणवश लौकिक दृष्टांतको लेकर चार पंडितोंका उदाहरण लिखते हैं। एक नगरमें चार ब्राह्मणके पुत्र परस्पर मित्र थे। वे सब मिलकर कुछ धन कमानेके लिये विदेश चले। उन्होंने एक बैलपर पुस्तकें वस्त्र आदि सब सामान लाद लिया था। चलते चलते मार्गमें वृक्षोंकी सघन छाया, जलका पक्का कुआं, पासमें ही बन और उससे थोडी दूर गांव दिखाई दिया। ऐसे स्थानको देखकर चारोंने सलाह की कि यहांपर देवपूजन स्नान संध्या रसोई आदि सब काम कर लेने चाहिये। तब फिर आगे चलना चाहिये। ऐसा सोचकर वे सब वहांपर उतर पडे। उन चारोंने बहुत थोडा गुरुओंसे पढा था बाकी वे अपनेआप केवल अपनी बुद्धिके ही अनुसार स्वयं पंडित बनगये थे। गुरुमुखसे पूर्ण ज्ञान नहीं पाया था। अंतमें जाकर गुरुसे विमुख होगये थे और अपने ही मनसे कुछका कुछ पढकर पंडित बन गये थे। वहां उतरकर उन चारोंने अपना अलग अलग काम बांट लिया। उनमेंसे एक तो ज्योतिषी था सो वह तो बैल चरानेके लिये बनमें गया। व्याकरणका पढनेवाला वैयाकरणी रसोई बनानेके लिये चौकेमें बैठा। न्यायशास्त्रको पढनेवाला नैयायिक पैसे कटोरी लेकर घी लेने गांवमें गया और चौथा वैद्यक शास्त्रको पढनेवाला वैद्य शाक भाजी लेने गया। इन सबके इस प्रकार काम बांटनेका अभिप्राय यह था कि ज्योतिषी अच्छा मुहूर्त देखकर बैलको चरने छोडेगा जिससे कि वह खोया न जाय। वैयाकरण रसोई अच्छी बनावेगा इसलिये उसे चौके में बिठाया। नैयायिकको घी लेने इसलिये भेजा कि वह अपनी न्याय विद्याके कारण तौल मोलमें ठगा नहीं जायगा तथा देख भालकर उत्तम घी लावेगा। तथा वैद्यजी महाराज निरोग शाक लावेंगे इसलिये उनको शाक लेने भेजा था। अब चारोंकी पंडिताईका हाल सुनिये। उस ज्योतिषीने अंधी चौपडी काणी लग्न देखकर और उसीको निर्दोष मानकर उस निर्जन वनमें चरनेके लिये अपना बैल हांक दिया और स्वयं एक शीतल वृक्षकी छायामें सो रहा।

उस ज्योतिषीने वह लग्न ऐसी स्थापनकी थी जिसमें चोरी गये पदार्थ फिर न मिल सकें। ऐसे समयमें बैलको छोडकर सो रहा था सो वनके भीलादिक उस बैलको लेगये और आप सोता ही रहा। इधर वैयाकरणने दाल चावल धोकर बटलोईमें रखकर चूल्हेपर चढादी। जब वह खिचडी पकने लगी तो बार बार खदबद शब्द करने लगी। उस खदबद शब्दको सुनकर वह वैयाकरण सोचने लगा कि व्याकरणमें खद शब्द तो सिद्ध होजाता है परंतु बद शब्द सिद्ध नहीं होता। यह शब्द अशुद्ध है। और अशुद्ध शब्दके

ऊपर धूल डाल देनी चाहिये। अर्थात् झूठेके मुखमें धूल डाल देनी चाहिये तथा जो शब्द व्याकरणके विरुद्ध है वह झूठा ही है। ऐसा समझकर उसने एक मुट्ठी चूल्हेकी राख भरकर उस खिचड़ीमें डाल दी जिससे वह सब खिचड़ी बिगड़ गई। नैयायिकजी गांवमें गये और कटोरीमें घी लिये आ रहे थे। मार्गमें उनका न्यायशास्त्रका तर्क उठा कि "यह घी पात्रके आधार है या यह पात्र घीके आधार है अर्थात् घीमें कटोरी है या कटोरीमें घी है। "घृताधारं पात्रं वा पात्राधारं घृतं" इस बातको न्यायसे सिद्ध करनेके लिये उसने वह घी भरी कटोरी ओंधी कर दी-उलट दी जिससे सब घी पृथ्वीपर गिरकर धूलमें मिल गया। तदनंतर उसने उस घीसे मिली हुई धूलको कटोरीमें रखकर कहने लगा कि 'हां ठीक है 'पात्राधारं घृतं नतु घृताधारं पात्रम्' अर्थात् पात्रके आधार घी है घीके आधार पात्र नहीं है कटोरीमें घी है घीमें कटोरी नहीं है। इस प्रकार निश्चय करते हुए उसने वह घी मिली धूल रसोई बनाने वाले वैयाकरणको सोंप दी। वैयाकरणने भी खदत्रद शब्दके और खिचड़ीमें धूल डालनेके सब समाचार कह सुनाये तदनंतर बैल चरानेवाले ज्योतिषीको बुलाया बैल तो उसका खो ही गया था वह खाली हाथ रोता आया और अंधी चीपड़ी काणी लग्नको देख-कर बैल हांकनेका सब हाल कहा। अब ये तीनों ही भूखसे व्याकुल होरहे थे सो परस्पर विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। तब सबने सोचा कि अच्छा वैद्यजी महाराज फल पत्र कंदमूल आदि कुछ तो शाक लावेंगे सो उसीको खाकर आगे चलेंगे। इतनेमें वैद्य भी आगया। वह शाक भाजी लेने गया था और उस गांवमें बहुत अच्छे स्वादिष्ट फल थे परंतु वह वहींपर निघंटु शास्त्रके श्लोकोंके अनुसार सबके गुण दोष विचार करने लगा। यह शाक वातुल (वादी) है। यह पित्त करता है। यह कफ करता है। यह त्रिदोष करता है। यह रक्त विकारी है। यह अजीर्ण है यह ज्वरातिसार करता है। यह श्वास बढाता है। यह उदरविकार करता है यह छर्दि (वमन) करता है। यह सोथ शूल और कुष्ट करता है। इसप्रकार सब शाकोंमें दोष देखकर सबको छोड दिया। आगे चलकर नीमके पत्ते देखे उनमें कोई दोष दिखाई नहीं पड़ा। इसलिये उन्हींको लेकर आ पहुंचा। इसीप्रकार आप लोगोंकी विद्वत्ता है।

और सुनो....................................(यहां कुछ पाठ छूट गया है)

जिनचैत्यालयके लिये अपनी ऋद्धि छोडी काय गुप्ति बिगाडी अपने त्यागका भंग किया। तथा रावणने भक्तिकरि तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया।

विचार करनेकी बात है कि यदि इस समय कोई जिनधर्मका द्वषी जिनबिंब वा जिनमंदिरका विघ्न करै वा प्रतिमाजीका भंग करै तब क्या क्रोधादिक क्रूर भाव धारणकर वा उसको बध बंधनादिके द्वारा पीडित कर छुडावेंगे या नहीं ? ऐसी अवस्थामें यदि

वह क्लेश अधिक बढ जाय, दोनों ओरकी अच्छी सामर्थ्य हो और शस्त्रोंके द्वारा परस्पर मनुष्योंका घात भी हो जाय तथा ऐसा करनेसे बडी भारी हिंसा हो जाय तो देव गुरु धर्म जिनबिंब जिनागम आदिकी रक्षा करनेके लिये ऊपर लिखे कार्य करने चाहिये या नहीं ? अथवा इन कार्योंमें महापाप समझकर प्रतिमा जीका भंग और उससे होनेवाला महा अविनय होने देना चाहिये ? उनकी रक्षा नहीं करनी चाहिये ? क्या करना चाहिये सो बतलाओ ?

कदाचित् कोई यह कहै कि ऐसे कार्योंमें पुण्य है अथवा पाप है। सो इसका उत्तर यह है कि यदि अपनेसे दूसरा बलवान हो तो उसे शांत करै वा दान देकर (शाम दाम) छुडाना चाहिये। यदि वह निर्बल हो तो उसे दंड और भेदसे रोकना चाहिये। इनमेंसे जो बनसकै उनसे ही छुडालेना चाहिये। यदि ऐसे कार्योंमें जीव घात होनेकी संभावना हो तो धर्मकी रक्षाके लिये करना चाहिये या नहीं सो कहो ? क्या वह आरंभ देव धर्म गुरु आदिके लिये ही है वा नहीं ? तथा ऐसे कार्यको आप करोगे या प्रतिमाजी आदिका भंग होने दोगे सो कहो ? अपना गृहस्थ जीवन चलाने और धनादिककी रक्षाके लिये तो अच्छे अच्छे बलवान योद्धा रखते हो यदि कोई उस धनको चुराने आता है तो उसको मारकर छुडा लेते हो सो तो आप लोग योग्य समझते हो परंतु धर्मकी रक्षाके लिये आप अयोग्य समझते हो यह कैसा उलटा न्याय ? यदि धर्मकी रक्षाकेलिये ये कार्य करना योग्य है तो पूजा अभिषेक आदिके लिये भी थोडासा आरंभ करना योग्य है।

देखो महाव्रती साधु कच्चे बिना छने जलकी एक बूंदमें असंख्यात त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा समझकर उसका त्याग कर देते हैं और सदा प्रासुक उष्ण जल पीते हैं। स्नान करनेके वे सदाके लिये त्यागी हैं ही। फिर भी वे महाव्रती सिद्धक्षेत्रकी वंदनाके लिये वा जिनचैत्यकी वंदनाके लिये वा धर्मोपदेश देनेकेलिये चलते हैं मार्गमें नदी भी पडती है उससे पार होनेके लिये नावमें बैठते हैं अथवा छातीतक गहरे जलमें प्रवेश कर पार जाते हैं। बतलाओ वहां क्या व्रत भंग नहीं होता ? अथवा जीवोंका घात नहीं होता ? और इन कार्योंमें क्या उनको पाप नहीं लगता ? क्या नहीं होता सो बतलाना तो चाहिये।

कदाचित् यह कहा जाय कि शास्त्रोंमें जो लिखा है सो ठीक है मुनिराज नदी आदिके पार जाते हैं परंतु पीछे कायोत्सर्ग और प्रतिक्रमण करके उसके दोषोंका निराकरण कर देते हैं। तो इसका उत्तर यह है कि यदि कायोत्सर्गसे आरंभजनित दोष निराकरण हो जाता है तो फिर पूजा भक्ति अभिषेक आदिमें शृंगारादिक काम क्रीडा वा विषय भोगोंका पाठ है ? अथवा उन कार्योंमें विषय भोगादिक वा काम क्रीडाएं की जाती हैं। अथवा गृहस्थ संबंधी चक्की उखली चूल बुहारी पानी आदिसे होनेवाले पांचों पाप किये जाते

हैं। उन अभिषेकादिकोंमें भी तो विनय भक्ति स्तुति स्तोत्र जयमाल जप ध्यान आदि सब पुण्य कार्य वा पाप नाश करनेवाले कार्य किये जाते हैं। अभिषेकादिक कार्योंमें द्रव्य पूजा की जाती है और कायोत्सर्ग वा प्रतिक्रमणमें भावपूजा की जाती है आप लोग जो देव दर्शन, वंदन, पूजन, तीर्थयात्रा, नवीन जिनमंदिरोंका बनवाना प्रतिष्ठादिक कराना आदि कार्य करते हो उसमें भी आरंभ-जनित हिंसा होती ही है। ये कार्य भी तो विना हिंसाके होते दिखाई नहीं देते। ये सब क्रियाएं सावद्य (पापपूर्वक) होती है।

इसके सिवाय यह भी विचार करना चाहिये कि पूजा अभिषेकमें जो जल धारासे पूजा करते हो तो सन्मुख दी हुई जलधारासे पूजा करनेमें शुभ फलका श्रद्धान रखते हो तो जब सन्मुख दूर धारा देनेसे ही पुण्यकी प्राप्ति होती है तो फिर भगवानके मस्तक पर दुग्धादिककी धारा देनेसे क्या पाप हो सकता है ? यदि पाप हो सकता है तो फिर आप लोगोंको भी सन्मुख धारा देना योग्य नहीं है।

कदाचित् यह कहो कि फल तो भावोंके आधीन होता है तो फिर प्रश्न यह है कि आप लोग भावोंसे करते हो या नहीं ? यदि भावसहित करते हो तो फिर पूजा पाठमें लिखी हुई बातोंका निषेध कर अपने मनके अनुसार विपरीतता धारण करना नहीं बन सकेगा। तथा पूजा अभिषेकादिककी यथार्थ विधिमें आरंभजनित पाप नहीं मानना पडेगा। यदि कदाचित् आप लोग विना भावोंके करते कहोगे फिर विना भावोंके ऐसा दंभ क्यों करना चाहिये ?

कदाचित् यह कहो कि भाव तो केवलीगम्य है इसलिये भावोंका निश्चय तो केवलज्ञानी ही कर सकते हैं तो फिर इसका उत्तर यह है कि केवलज्ञानीपर विश्वास रखना पडेगा। उनके वचनोंकी आज्ञामें शंका वा संशय करना भी नहीं बन सकेगा। यह निश्चय करना पडेगा कि जो जिनागममें लिखा है सो सब प्रमाण और मान्य है। यदि उसमें कोई सावद्यता (आरंभजनित हिंसा) वा निरवद्यता (पूर्ण अहिंसा) दिखाई पडती है तो उसे भी केवली ही जाने। हम तो केवल उनकी आज्ञा मानते हैं और उसे अपने मस्तकपर रखते हैं। परंतु आप लोग ऐसा नहीं मानते अपने मनके अनुसार कल्पना कर उसका निषेध करते हो। भगवानकी आज्ञामें दोष बताकर नवीन नवीन कल्पना करते हो और फिर भी सम्यक् श्रद्धानी वा सम्यग्दृष्टी बनते हो। सो यह कैसे हो सकता है।

वर्तमानमें सम्यग्दृष्टी कैसे होते हैं उनका स्वरूप अन्यमतका एक उदाहरण देकर बतलाते हैं।

किसी एकदिन वर्षाऋतुमें दुर्वासा ऋषि गोवर्द्धन पर्वतपर आये। यह जानकर श्रीकृष्णने अपनी सोलह हजार गोपांगनाओंसे

(रानियोंसे) आज्ञा की तुम सब एक एक भोजनके थालमें छाक (सब प्रकारके भोजन) भरकर दुर्वासा ऋषिको भोजन करानेके लिये जाओ। श्रीकृष्णकी यह आज्ञा सुनकर सब रानियां अलग अलग थालोंमें अनेक प्रकारके भोजन भरकर उन थालोंको हाथमें लेकर कहने लगीं कि "हे महाराज ! इससमय यमुना नदी अथाह जलसे भरी हुई बडे वेगसे बह रही है। उसमें होकर हम सब किस प्रकार पार हो सकती हैं ? तब श्रीकृष्णने कहा कि तुम सब लोग यमुना नदीके किनारे जाकर कहना कि "हमारे श्रीकृष्ण यदि सचमुच बालब्रह्मचारी हों तो हमको मार्ग दो।" यह सुनकर उन रानियोंने वैसा ही किया और यमुना किनारे जाकर वैसा ही कहा तब यमुना घुटनोंसे भी नीची हो गई। उसमेंसे वे सब रानियां उतर गई और गोवर्द्धन पर्वतपर जाकर उन दुर्वासा ऋषिके सामने अनेक प्रकार भोजनोंसे भरे हुये सब थाल जाकर रख दिये तथा उनसे प्रार्थना की कि श्रीकृष्णने ये सब थाल आपके भोजनके लिये भेजे हैं। कृपाकर आप भोजन कीजिये। रानियोंकी यह बात सुनकर वह दुर्वासा ऋषि उन सोलहहजार थालोंका सब भोजन खा गया तब जाते समय रानियोंने पूछा कि महाराज ! यमुना अथाह भर रही है हमलोग किसप्रकार पार हों। रानियोंकी यह बात सुनकर ऋषिने पूछा कि तुम सब यहांपर आई किसप्रकार थीं ? इसके उत्तरमें रानियोंने पहलेकी सब बात कह सुनाई। उसको सुनकर सोलहहजार भरे हुये थालोंका भोजन करनेवाले दुर्वासा ऋषि कहने लगे कि तुम यमुनाके किनारे जाकर कहना कि हे यमुना महाराणी ! दुर्वासा ऋषि सदा अल्पाहारी हो अथवा सदाकाल उपवास धारण करनेवाला हो तो हमें मार्ग देना। उन रानियोंने ऐसा ही किया। यमुनाके किनारे खडे होकर ऐसा ही कहा जिससे यमुना घुटनों तक हो गई और वे सब रानियां पार उतर गई। उन्होंने जाकर यह सब वृत्तांत श्रीकृष्णसे कहा। सो देखो जिसप्रकार सोलह हजार गोपांगनाओंसे अनेक प्रकारके भोगविलास क्रीडा करता हुआ विषयोंको पुष्ट करता हुआ वा परस्त्रीसेवन करता हुआ भी बालब्रह्मचारी कहलाया तथा सोलह हजार भरे हुये थालोंको एक ही बारमें भोजन करता हुआ ही सदा अल्पाहारी वा उपवासी कहलाया उसीप्रकार सैकडों जैन-शास्त्रोंमें कहे हुये वचनोंको तथा केवलज्ञानी गणधर आचार्य सामान्य मुनियोंके कहे हुये वचनोंको वा उनके आधारपर बडे बडे आचार्योंके द्वारा कहे हुये वचनोंको तो झूठा कह कहकर उनका निषेध करते जाते हो और केवल अपने वचनोंकी हटको स्थापन कर सम्यग्दृष्टी वा यथार्थश्रद्धानी बनना चाहते हो सो भाई आप लोगोंका यह श्रद्धान ऊपर कहे हुये उदाहरणके समान दिखाई पडता है।

कदाचित् यहांपर कोई यह कहै कि यह तो बडा अंधेर है जो सोलह हजार स्त्रियोंसे भोग विलास करते हुये भी बालब्रह्मचारी कहलाया ? सो इसका समाधान यह है कि यह परमतका कथन है। भगवतादि पुराणमें लिखा है कि यदि वेदकी साक्षीपूर्वक जो

योनिमें लिंग प्रवेश करे तो जबतक वीर्यपात नहीं होता तबतक उसकी ब्रह्मचारी संज्ञा है वीर्यपातका दोष मानाजाता है इस लिये कुच मर्दन, चुम्बन लिंगप्रवेशादिका दोष नहीं। यथा—

परयोनिगतो विंदु कोटि पूजां विनश्यति।

अर्थात् परयोनिमें प्राप्त हुई वीर्यकी एक बूंद भी करोडो पूजाओंको नष्ट कर देती है। बेद श्रुतिमें भी लिखा है।

"यावद्वीर्यस्खलनं न भवति तावद्ब्रह्मचारीति श्रुतिः"

अर्थात् "जबतक वीर्य स्खलन नहीं होता तबतक ब्रह्मचारी संज्ञा है। इमीप्रकार वेद श्रुति और स्मृति आदिके वाक्य दिखला कर वे लोग ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देवोंको तथा ऋषियोंको निर्दोष बतलाते हैं सो यह महा मिथ्यात्व है। ये जैन शास्त्रोंके वचन नहीं हैं।

और सुनो आप लोग यह कहते हो कि जहांपर पूजा अभिषेक आदि कार्योंमें बहुतसा आरंभ होता हो तो वहांपर थोडी ही वस्तुसे, वा विना ही उस द्रव्यके, अथवा उसके अभावमें उसकी कल्पनासे, अथवा किसी निर्दोष द्रव्यको वैसा ही नाम रखकर क्या पूजा नहीं हो सकती है? क्या इन्हीं द्रव्योंसे पूजा हो मकती है? चरणोंमें गंध नहीं लगाया उसके बदले गंध मिला हुआ जल दूसरे पूजाके किसी पात्रमें क्षेपण कर दिया। पुष्प न चढाये चावलोंको गंध वा केशरमें रंगकर पूजाके पात्रमें चढा दिये। अनेक प्रकारके शाक, व्यंजन, पकवान, दाल भात दही दूध आदि मिष्टान्नके बदले गोलाके टुकडे पूजाके पात्रमें चढा दिये। दीपककी जगमगाती ज्योतिके बदले गोलेके छोटे छोटे टुकड़ोंको गंध वा केशरसे रंगकर चढा दिया। धूपके सुगंधित धूमके बदले चंदनके चूराको धोकर चढा दिया। अनेक प्रकारके सार सुगंधित तथा मिष्ट और स्वादिष्ट फलोंके बदले बादाम सुपारी आदि पूजा पात्रमें चढा दिये। पुष्पांजलिके बदले केशरमें रंगे हुए चांवल वखेरकर वडे ऊंचे शब्दोंसे जय जय शब्दोंका उच्चारण कर दिया। सो क्या इस प्रकार पूजा नहीं हो सकती। अवश्य हो सकती है। परंतु आप लोगोका यह कहना और इस प्रकारकी पूजाको पूजा मानना ठीक नहीं है। क्योंकि यदि सामर्थ्य नहीं पूजा करनेवाला असमर्थ हो और वह बहुत अच्छे शुभ परिमाणोंसे इससे भी थोडे द्रव्यसे भगवानकी पूजा करे तो भी वह महा फलको प्राप्त होता है परंतु जो समर्थ हैं धनके पात्र हैं वे अपनी इंद्रियोंकी पुष्टिके लिये अपने घरके बने हुए भोजनमें वा किसी एक भी शाकमें यदि थोडासा नमक भी कम होता है तो मांगकर उसमें डालकर उसे खूब

अच्छा स्वादिष्ट बनाकर खाते हैं। यदि ऐसे लोग दूसरेके घर भोजन करने जांय तो लड्डू बरफी आदि मीठे पकवानोंको छोडकर केवल रूखी रोटी कब खाते हैं। अच्छे अच्छे पकवान मांग मांगकर खाते हैं और जबतक वे अच्छे पदार्थ सामने नहीं आते तबतक उनके परिणाम निरंतर उसके लोभमें ही लगे रहते हैं। यदि एक ही दिन दूसरी जगह दो चार घरोंमें भोजन बना हो तो जहां अच्छेसे अच्छा घी शकर मिश्रीका पकवान बना हो वहीं जाते हैं। यदि किसी गरीबके गुडका सीरा बना हो तो उसके यहां कोई नहीं जाता। ऐसे लोग स्वयं सुगंधित गंध लगाते हैं। पुष्पोंकी सार सुगंधि लेते हैं। अपने घर दीपक जलाकर आनंद मनाते हैं। पान सुपारी इलायची लोंग आदि सुन्दर फल खाकर प्रसन्न होते हैं। विवाह शादियोंमें अनेक दीपक जलाते हैं नृत्य गीत बाजे गाजे आदिसे उत्सव करते हैं जिनमें त्रस स्थावर कायके जीवोंका प्रत्यक्ष घात होता है। ऐसे कार्योंसे वे लोग बहुत प्रसन्न होते हैं उन कार्योंमें तल्लीन हो जाते हैं और उन कार्योंमें होनेवाले पापोंको देखते हुये वा जानते हुये भी उन कार्योंका संग्रह करते हैं। अपनी इंद्रियोंके भोगोंसे अपने चित्तकी वृत्तिको किंचित् भी नहीं रोकते। परंतु पूजा पाठ अभिषेक आदि धर्म कार्योंमें सबका निषेध करते हो? सो इसमें सिवाय लोभके और कोई कारण दिखाई नहीं पडता। यदि आपलोग लड्डू बरफी आदि मिष्टान्न भोजनोंके होते हुये भी साधारण भोजनोंसे काम चला लो, जिस तिस तरह अपना पेट भर लो, खीरमें बूरा कम हो वा न हो तो उसे ऐसे ही खा लो अथवा बूरा वा शकरके बदले उसीके समान सफेद पिसा हुआ नमक डालकर खा लो तो हम भी समझें कि आप लोग ठीक कहते हो और जैसा कहते हो वैसा करते हो। परंतु ऐसा आप करते नहीं। जिसप्रकार पूजामें और और वस्तुओंसे काम लेते हो उसीप्रकार भूख मेटनेके लिये केवल अन्नसे पेट भर लेना चाहिये। सो आपलोग करते नहीं इससे मालूम होता है कि आप लोगोंका कहना मिथ्या है। कोरा छल है।

और देखो यदि अपने शरीरमें विषय भोगोंके भोगनेकी हीनता आ जाती है वीर्य क्षीण हो जाता है तब दूध पीते हो पौष्टिक पदार्थोंका सेवन करते हो। ऐसे पदार्थोंको बडे रागसे जहां तहांसे लाकर इकट्ठा करते हो न महंगी देखते हो न और कुछ देखते हो। तथा उन विषय भोगोंको मंद भावोंसे भी सेवन नहीं करते। वाजीकरणके उपाय करते हैं परंतु जब पूजा भक्ति अभिषेक आदिका कार्य आ पडता है तो उसमें मायाचारीसे काम लेते हैं। जो सर्वथा अयोग्य है।

कदाचित् यह कहो कि ये तो गृहस्थसम्बन्धी संसारी कार्य हैं इनको इसप्रकार किये बिना बनता नहीं। गृहस्थी आरंभमय है [illegible] सब कार्य करने ही पडते हैं। परंतु पूजा अभिषेक आदि कार्य धर्मरूप हैं इनमें सावद्ययोग वा आरंभजनित हिंसा

नहीं करनी चाहिये। धर्मकार्य और गृहस्थीके कार्य एक नहीं हो सकते। सो भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि क्या संसारसंबंधी कार्योंमें पापका फल नहीं लगता है। आपलोग सांसारिक कार्य सब इच्छापूर्वक करते हो उनके करनेमें पापसे नहीं डरते परंतु पूजा अभिषेक आदि धर्मकार्योंमें अपने आत्माको बहुत चतुर बनाते हो। आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी अथवा अध्यात्मी बनकर पूजा अभिषेक आदि कार्योंमें अरुचि दिखलाते हो। धर्मकार्योंको विना द्रव्यके जिस तिस तरह सिद्ध कर लेते हो। देव धर्म गुरु और जिनागमके भक्त बनकर उनमें छिद्र ढूंढते हो, दोष लगाते हो और इसप्रकार उनको सदोष बनाकर आप निर्दोष शुद्ध सम्यक्त्वी शुद्ध श्रद्धानी बनते हो। भावार्थ—स्वयं भक्त होकर भी स्वामीको (देव शास्त्र गुरुको) सदोष मानकर स्वामिद्रोहिताका महा दोष लाद कर तथा अपनी स्तुति और परकी निंदा आदिके सब दोषोंको धारण करते हुये भी शुद्ध श्रद्धानी बनते हो सो आप लोगोंके ये कार्य सब दंभमय हैं।

देखो एक पाप तो घीके घडेपर लगी हुई धूलिके समान होता है। संसारसंबंधी विषय भोगोंकी तृष्णारूप वा कषायसे होने वाले अथवा मिथ्यात्व अव्रत योग कषाय प्रमादरूप कार्य सब ऐसे ही पाप हैं इन पापोंका मिटना अत्यन्त कठिन है तथा दूसरे पाप कुम्भारके अवासे (भट्टीसे) निकले हुए घडेपर लगी हुई धूलिके समान है जो फूंक मारते ही उड जाती है। उसी प्रकार भगवानका अभिषेक, पूजा, प्रतिष्ठा नवीन मंदिरका बनाना प्रतिमाजीकी प्रतिष्ठा कराना, तीर्थयात्रा नित्य नैमित्तिक पर्व और व्रतोंके विधान वा उद्यापन करनेमें कुछ थोडासा पाप रूप आरंभ होता है परंतु उसका नाश होना अत्यन्त सुसुखसाध्य है। पूजादिक शुभ कार्योंसे उसी समय नष्ट होजाता है। तथा उसके साथ पहलेके किये हुये समस्त पापोंके समूह नष्ट हो जाते हैं। जिसप्रकार थोडासा घी अग्निकी तीक्ष्ण ज्वालामें पडकर उसी समय भस्म हो जाता है उसीप्रकार वह पाप उसीसमय भस्म होजाता है। तथा महा पुण्य प्रगट होता है। यदि इसमें संदेह करोगे तो फिर पूजादिक कोई भी कार्य नहीं बन सकेगा क्योंकि फिर तो समस्त आरंभोंको छोड कर केवल ढूंढिया साधुओंके समान बनना पडेगा। भावार्थ—निर्ग्रंथ मुनि तो फिर भी भगवानकी पूजा बंदना आदि करते कराते हैं परंतु ढुंढिया साधुओंको भगवानकी पूजा बंदना करनी भी अच्छी नहीं लगती। इसी प्रकार आप लोगोंका हाल हो जायगा।

इसके सिवाय यह भी विचार करो कि जैसे राजाके यहां बहुतसे सेवक होते हैं उनमेंसे कुछ तो निकटवर्ती रहते हैं और कुछ दूर रहते हैं। जो सेवक राजाके निकट रहते हैं वे राजाके हाथ पैर दाबते हैं राजाकी आज्ञानुसार सब सेवा करते हैं और पास रहकर राजाकी भक्ति करते हैं तथा जो दूर रहते हैं वे दूरसे केवल भक्ति करते हैं परंतु इन दोनोंमें लाभ किसको अधिक होता है? अधिक

भक्तिवाला कौन कहलाता है ? अधिक सुख अधिक बडप्पन और राजाका अधिक प्रेम किसको मिलता है ? अपराधोंका निवारण किसके अधिक होता है ? राजाकी सुदृष्टि किसपर अधिक रहती है तो इसके उत्तरमें कहना ही पडेगा कि निकट रहनेवाले सेवकके लिये ही ये सब लाभ अधिक मिलते हैं। इसी प्रकार जो भक्तजन प्रतिमाजीके अभिषेक पूजन आदि कार्योंमें बार बार उनके चरणोंका स्पर्श करते हैं तथा अत्यंत अनुराग विनय और भक्ति भावोंसे चरणस्पर्शनादि कार्य करते हैं उनके पहले किये हुए सब पाप नष्ट होकर स्वर्ग मोक्षका महा लाभ प्राप्त होता है।

यदि किसीके द्वारा योग्य वा अयोग्य अपराध भी बन जाता है तो जिस प्रकार राजा अपने निकटवर्ती भक्त जानकर क्षमा कर देता है और उनकी भक्ति स्तुतिसे संतुष्ट होजाता है उसीप्रकार भगवानके चरणस्पर्श करनेसे स्नान विलेपन पुष्पमाला वा प्रकीर्णक पुष्प उनकी आसिका, तथा नमस्कार भक्ति प्रार्थना आदि उत्तम कार्योंके द्वारा गृहस्थ संबंधी संचित महा पाप नष्ट होजाते हैं तथा उस पूजा अभिषेक आदिसे होनेवाला आरंभजनित दोष भी सब दूर होजाता है। और वह भक्त अपनी इच्छानुसार फल पाता है।

कदाचित् यह कहो कि हम भी प्रक्षालन करते समय चरण स्पर्श करते हैं नमस्कार भक्ति करते हैं पूजते हैं सब काम करते हैं सो भी कहना अयोग्य ही है। क्योंकि सीधासा न्याय तो यह है कि एक वारका फल एक और अनेकवारका फल अनेकगुणा लिखा भी है, "अधिकस्य अधिकं फलम्" आर्थात् अधिकका अधिक फल होता ही है"। जबतक अत्यन्त निकटवर्ती न हुआ जाय तबतक अभिषेक विलेपन पुष्पार्चन आदि कार्य सिद्ध नहीं होते। जो दूर रहते हैं उनके निकट रहनेवालोंके समान बार बार भक्ति सिद्ध नहीं हो सकती। तथा उसका फल भी बहुत थोड़ा है। इसलिये जो यथार्थ श्रद्धानी हैं सम्यग्दृष्टी हैं बुद्धिमान हैं वे व्यर्थका हटकर केवल अपने वचनोंका पक्ष लेकर अपना अकल्याण नहीं करते। तथा जो ऐसा करते हैं वे सम्यग्दृष्टि वा यथार्थ श्रद्धानी नहीं हो सकते। उनको मनोमति वा अपने मनके अनुसार चलनेवाला समझना चाहिये। जैसे ब्राह्मणका लक्षण शास्त्रोंमें लिखा है "ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" अर्थात् जो ब्रह्म वा परमात्माको जाने उसको ब्राह्मण कहते हैं परंतु इस गुणको धारण न करने पर भी सैकडो हजारों केवल जातिसे ब्राह्मण हैं वैसेही शास्त्रानुसार क्रिया न करनेवाले श्रावक भी केवल जातिसे श्रावक समझना चाहिये वे गुणोंसे श्रावक वा यथार्थ श्रद्धानी नहीं हो सकते। जिसप्रकार कोई सुनार चोरीका त्याग करदे तो भी जातिसे चोर कहलाता है और वैश्य यदि चोरी कर भी ले तोभी जातिसे शाह कहलाता है। उसीप्रकार शास्त्रानुकूल क्रिया न करने वाले श्रावक समझना चाहिये। वे गुणसे (सम्यक्त्व रूप गुणसे) श्रावक नहीं हैं किंतु जाति वा नामसे श्रावक हैं। ऐसा सम्यग्ज्ञानियोंको समझ लेना चाहिये।

इन पुरुषोंमें बहुतसे जीव मंदकषायी भी हैं वे यत्नाचरणपूर्वक चलते हैं विषयभोगोंमें रुचि भी कम रखते हैं। क्षमा आदि गुणोंको भी धारण करते हैं विद्वान भी हैं और सब गुणोंसे सुशोभित हैं तथापि एक भगवानकी आज्ञा न माननेके दोषसे राजाकी आज्ञा न माननेवाले वकके समान अपराधी हैं। आज्ञाका मानना सबसे पहला कर्तव्य है। जो जीव राजाकी आज्ञा मानते हैं उनके किये हुये अपराध छूट जाते हैं परन्तु जो जीव राजाकी आज्ञा नहीं मानते वे गुणवान होनेपर भी दोषी गिने जाते हैं इसी प्रकार भगवानकी आज्ञा न मानने वाले अनेक गुणोंको धारण करनेपर भी दोषी ही समझे जाते हैं और भगवानकी आज्ञा माननेवाले यदि कुछ अपराध कर भी लें तो भी वह आज्ञा मानने मात्रसे नष्ट हो जाता है। ऐसा समझकर विवेकी जीवोंको भगवानकी आज्ञा अपने मस्तकपर धारण करनी चाहिये।

कदाचित् यह कहो कि ऊपर लिखे हुए शास्त्रोंके कथनको वा ऐसे जिनागमको हम नहीं मानते उनपर हमारी श्रद्धा नहीं है इसीलिये हम वैसा आचरण नहीं करते तो इसका उत्तर यह है कि इन शास्त्रोंके कथनको हजारों ऋषि मुनियोंने कहा है और तुम्हारा कथन केवल एक दो आदमियोंका कहा हुआ है सो हजारों ऋषि मुनियोंके वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकते और उनके विरुद्ध केवल एक दो साधारण आदमियोंके वचन कभी सच्चे नहीं हो सकते। जो कथन मिथ्या है वह मिथ्या ही रहता है और जो कथन यथार्थ है वह यथार्थ ही रहता है। चन्द्रमाको कितने ही लोग सदोष कहते हैं परतु ऐसी झूठी निंदासे वह सदोषी नहीं होता। यह तो हाथी और कुत्तेके समान अपना अपना स्वभाव है जो जैसा होता है वह दूसरोंको भी वैसा ही समझता है हमने यह कथन केवल भगवानकी आज्ञा माननेवालोंके लिये लिखा है न माननेवालोंके लिये नहीं। दुष्ट लोग सज्जनोंके विरुद्ध सदासे होते चले आये हैं, सो यह उनका स्वभाव मिट नहीं सकता। जो कोई जीव जिनवाणीके एक अक्षरके अर्थको भी छिपाता है वा उसका अर्थ बदलकर दूसरा करता है वह अनंत संसारी होता है क्योंकि ऐसा करनेसे देव गुरु धर्म और जिनागमकी आज्ञाका भंग होता है। भारी अविनय होताहै और ऐसे जीव नरकके पात्र होते हैं।

भगवानकी आज्ञाको न माननेवाले ऐसे मिथ्यादृष्टी जीव लडकोंको* स्त्रियोंको भोलेभाले अज्ञानी जीवोंको थोडे पढे लिखे

* ऐसी ऐसी मिथ्या बातें लडकोंसे ही प्रारंभ होती हैं छोटे छोटे लडके वा अनपढ लोग अथवा विदेशी विद्याओंको सीखनेवाले अभिमानी लोग धर्मका स्वरूप तो जानते नहीं हैं न जाननेका प्रयत्न करते हैं ऐसे लोगोंको चतुर मायाचारी तीव्र मिथ्यादृष्टी लोग अपने वचनजालसे शीघ्र ही अपने वश कर लेते हैं।

वासमझोंको अपने वचनोंकी चतुराई दिखलाकर तथा शास्त्रोंकी झूठी साक्षी दिखलाकर पूर्वाचार्योंके विरुद्ध अपने कपोल कल्पित वचन सिद्ध करते हैं। मान कषायके उदयसे उन्मत्त पुरुषके समान अनेक अनर्थ उत्पन्न करनेवाले वचन कहते हैं, क्रोध करते हैं, दुर्वचन बोलते हैं, परंतु अपना हट नहीं छोडते। बार बार उन्हीं बचनोंको कहते वा करते जाते हैं। ऐसे जो लोग पूर्वाचार्योंके कहे हुए जिनागमके वचनोंको नहीं मानते वे इस वास्तविक मोक्षमार्गमें मूर्ख समझे जाते हैं। लिखा भी है—

मूर्खस्य पंच चिन्हानि क्रोधी दुर्वचनी तथा। हठी च दृढवादी च परोक्तं नैव मन्यते ॥

अर्थात् "क्रोध करना, दुर्वचन कहना, हठ करना, बार बार उसी बातको कहते जाना और दूसरोंकी बात नहीं मानना ये पांच मूर्खताके चिन्ह हैं। ऐसे लोगोंका श्रद्धान कभी यथार्थ नहीं हो सकता केवल आजीविकाके लिये कपटरूप झूठा श्रद्धान होता है मोक्षके लिये यथार्थ श्रद्धान नहीं होता।

१६९। चर्चा एकसौ उनहत्तरवीं।

पहले पूजामें दाभ, दूब, गोमय, भस्मपिंड, सरसों आदि पदार्थ लिखे हैं सो ये पदार्थ तो अपवित्र हैं हिंसा आदि अनेक दोषोंसे भरे हैं इसलिये इनको पूजामें क्यों लेना चाहिये। तथा अष्ट द्रव्योंमें कोन कौनसे द्रव्य लेने चाहिये।

समाधान—ये सब अपवित्र पदार्थ नहीं हैं किंतु मांगलिक द्रव्य हैं इनको पहले भी लिख चुके हैं। जिसप्रकार लोह लाख हल्दी मैनफल आदि मांगलिक पदार्थ विवाहमें वर कन्याके हाथमें बाधते हैं उसीप्रकार अभिषेक पूजा प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें इन मंगल द्रव्योंको ग्रहण किया है। सो ही वसुनंदी श्रावकाचारकी संस्कृत टीकामें लिखा है "यथा विवाहसमये वरकन्यायाः हस्ते लोह-

---

१। वर्तमानमें जो अनेक नवयुवकमंडल यगमेनस् एशोशियेशन, यार दोस्तोंके मंडल, मित्रमंडल युवकपरिषद आदि नवीन नवीन संस्थाऐं खुली हैं वे सब इसी प्रकारकी संस्थाएं हैं। कुछ खुदगर्ज लोग अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये केवल धर्मके नामपर इन संस्थाओंको खोल देते हैं परंतु वे लोग या वे संस्थाएं मनमाने अधर्मकी प्रवृत्तियां चलाती हैं। कोई विजातीयविवाह चलाता है, कोई विधवाविवाह पुष्ट करता है, कोई छूआछूत लोप करता है, कोई मूर्ति पूजाका निषेध करता है, कोई रथोत्सव आदि प्रभावनाओंको रोकता है, कोई पूर्वाचार्योंके शास्त्रोंका खंडन करता है, कोई पुराणोंको नहीं मानता, कोई जम्बूद्वीप नरक स्वर्ग आदिको नहीं मानता। कहांतक कहा जाय ऐसी ऐसी संस्थाएं सब अधर्मका प्रचार कर रही हैं। ऐसी संस्थाओंसे बहुत सावधान रहना चाहिये। तथा अपने बाल बच्चोंको बहुत दूर रखना चाहिये।

लोहसर्षपहरिद्रा दीयन्ते तथाभिषेकप्रतिष्ठादौ दर्भदूर्वागोमयसर्षपादीनि मंगलद्रव्याणि गृह्यन्ते। अन्यत्किमपि नास्ति। महापुरुषैर्यन्मान्यं तदेव मन्यते" अर्थात् "जिसप्रकार विवाहमें वरकन्याके हाथमें लोह सरसों हल्दी आदि मंगल द्रव्य देते हैं उसीप्रकार अभिषेक प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें दाभ दूब गोमय सरसों आदि मंगलद्रव्य ग्रहण किये जाते हैं। इनके ग्रहण करनेका और कोई प्रयोजन नहीं है। पहलेके महापुरुष जो करते चले आये हैं वही किया जाता है तथा वही माना जाता है।

दामके दश भेद हैं सो समयपर जैसा मिले वैसा ही ले लेना चाहिये। हमें दाभ वा दूबके ही लिये कोई हट नहीं है। दाभ न मिले तो अनुक्रमसे जो मिले सो ले लेना चाहिये। दश प्रकारके दाभ ये हैं—

कुशाः कांसाः यवा दूर्वा उशीराश्च कुकुंदराः। गोधूमा व्रीहयो मुंजा दश दर्भाः प्रकीर्तिताः॥

अर्थात् कुश, कांस, जौके पूले, दूब, खसखसके पूले, ककुंदर ( ) गेहूंके पूले, चावलोंके पूले, मूंज ये दश प्रकारके दाभ कहलाते हैं। धर्मरसिकमें भी लिखा है कि दामके अभावमें कांस ले लेना चाहिये ये दोनों एक ही हैं यथा—

'कुशाभावे तु कांसाः स्युः कांसाः कुशमयाः स्मृताः"

१७०। चर्चा एकसौ सत्तरवीं।

पहले पूजाकी विधिमें यक्ष, यक्षिणी, असुरेन्द्र, इन्द्र, दिक्पाल, नवग्रह क्षेत्रपाल आदिका आह्वान स्थापन पूजन आदि लिखा है सो यह तो जैनियोंको करने योग्य नहीं है। ये कार्य तो अन्य मतियोंके हैं। क्योंकि सम्यग्दृष्टी पुरुष तो अरहंतदेव, दयाप्रणीत धर्म और निर्ग्रंथ गुरुको छोड़कर और किसीकी पूजनादिक नहीं करते। जो करते हैं वे मिथ्यादृष्टी कहलाते हैं ऐसा सब ग्रंथोंमें लिखा है। परंतु तुमने यहांपर नित्यपूजनमें ही इनका पूजन लिख दिया सो ऐसा श्रद्धान सम्यग्दृष्टियोंका नहीं हो सकता। इन यक्ष यक्षियोंको मंदिरमें रखना नहीं चाहिये इनको रखना मिथ्यादृष्टियोंका काम है। जैनियोंमें जो यह रीति चली है सो विपरीत चलनेवाले लोगोंने चलाई है। सम्यग्दृष्टी तो प्राणांत होनेपर भी इनकी पूजनादिक नहीं करता।

समाधान—तुमने जो यह प्रश्न किया सो बहुत ठीक किया। यह ठीक है कि श्रीअरहंतदेवके सिवाय अन्य देवको मानना मिथ्यात्व है। परंतु अन्यमतके स्थापन किये हुये कुदेवादिकोंके पूजन करनेका निषेध किया है। जिन शासन देवोंका विधान जैन शास्त्रोंमें लिखा है उनका निषेध नहीं किया है यदि ऐसा न होता तो चौवीस तीर्थंकरोंके गोमुख आदि चौवीस यक्षोंका वर्णन चक्रे-

श्वरी आदि चौवीस यक्षियोंका वर्णन तथा क्षेत्रपाल आदि शासन देवताओंका वर्णन जैनशास्त्रोंमें क्यों लिखा जाता तथा इन यक्ष यक्षियोंकी मूर्ति प्रतिमाजीके अगल बगल वा नीचे क्यों बनाते ? और इनके पूजनादिककी विधि शास्त्रोंमें क्यों कहते। यदि इनका पूजना मिथ्यात्व होता तो जैनशास्त्रोंमें क्यों लिखते ?

कदाचित् कोई यह कहे कि इनका पूजन किन किन शास्त्रोंमें लिखा है तो इसका उत्तर यह है कि "जिनप्रतिष्ठापाठ, इन्द्रध्वज, सार्द्धद्वितयद्वीपक्षेत्रपूजा, शांतिचक्र लघुस्नपन, मध्यस्नपन, बृहत्स्नपन, पंचकल्याण चतुर्विंशतिपूजा, जिनयज्ञकल्प, एकसंधिस्वामी कृत जिनसंहिता, पूजासार, त्रिवर्णाचार, हवनपाठ इनको आदि लेकर समस्त जैनपुराणोंमें यथा अवसर इनका पूजन विधान लिखा है। भगवज्जिनसेनाचार्यने श्रीमदादिपुराणमें गर्भान्वय आदि क्रियाओंका वर्णन करते समय इन्द्रादिकोंका पूजन आह्वान आदि लिखा है। श्रीऋषभदेवके जन्माभिषेकमें मेरु पर्वतपर अपने यथायोग्य स्थानपर दश दिक्पाल बैठे थे ऐसा लिखा है। यथा—

दिक्पालाश्च यथायोग्यं दिग्विदिग्भागसंश्रिताः। तिष्ठन्ति समं निकायैः जिनोत्सवादिदृक्षया ॥

इसीप्रकार श्रीप्रभाचन्द्रने पार्श्वपुराणमें लिखा है कि "इन्द्रने दश दिक्पालोंको स्थापन कर संतुष्ट किया।" बृहद्हरिवंशपुराणमें अंतमंगल करते समय श्रीजिनसेनाचार्यने चौवीस तीर्थंकरोंके महाभक्त चौबीसों जिनशासन देवताओंको तथा चक्रेश्वरी पद्मावती अंबिका ज्वालामालिनी आदि सम्यग्दृष्टी देव देवियोंको पुराणके आश्रय बतलाया है कि ये सब शासनदेवता जिनधर्मके समीप रहते हैं। गिरनार पर्वतपर श्रीनेमिनाथके मंदिरकी उपासना करनेवाली सिंहवाहिनी, चक्रको धारण करनेवाली अंबिकादेवी है जिसके सामने क्षुद्र देवता टिक नहीं सकते ऐसी वह अंबिकादेवी कल्याणके लिये जिनशासनकी सेवा करती है। इसलिये वहांपर किसीका विघ्न नहीं हो सकता।

इसके सिवाय नव ग्रह असुर नाग भूत पिशाच राक्षस आदि नीच देव लोगोंके हितकी प्रवृत्तिमें विघ्न करते हैं। इसलिये विद्वान लोग शासन देवताओंके गुण स्मरणकर उन क्षुद्र देवताओंको शांत करते हैं। ऐसा कथन ग्यारहवें बारहवें श्लोकमें लिखा है सो विचार कर लेना चाहिये। रविषेणाचार्यने सुग्रीव यक्षको अर्घ देनेका कथन पद्मपुराणमें लिखा है तथा सोमसेनकृत लघुपद्मपुराणमें लिखा है कि "रावण अपने श्रीशांतिनाथके मंदिरमें बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा था। उसमें विघ्न करनेके लिये वानरवंशियोंके कुमार लंकापुरीमें गये और अनेक विघ्न किये परंतु रावण अपने ध्यानसे नहीं डिगा। उससमय वह रावण अपने ध्यानमें ऐसा लीन बना था कि यदि ऐसा ध्यान मुक्तिके लिये करता तो वह मुनि केवलज्ञानको अवश्य प्राप्त होता। उस समय श्रीशांतिनाथके मंदिरमें स्थापन

[illegible] हुये क्षेत्रपालने उन वानरवंशी कुमारोंको डराकर भगा दिया था। तथा उन पूर्णभद्र मणिभद्र क्षेत्रपालने जाकर उलाहना दिया था कि ये लोग मंदिरोंमें जाकर विघ्न करते हैं सो यह बात ठीक नहीं है। तब रामचन्द्रने उन क्षेत्रपालोंसे कहा कि "आप लोग अन्यायमार्ग पर चलनेवाले रावणकी तो रक्षा करते हो और धर्मात्माकी रक्षा नहीं करते सो तुमको ऐसा करना योग्य नहीं है। ऐसा पद्मपुराणमें लिखा है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि जिनमंदिरोंमें क्षेत्रपाल रहते ही हैं।

यशस्तिलक महाकाव्यकी टीकामें लिखा है भगवान अरहंतदेव तीनों जगतके नेत्र हैं जो कोई पूजा करनेवाला चतुर्णिकाय देवोंको भगवान् अरहंतदेवके समान जानकर पूजा करते हैं दोनोंको समान जानते हैं वे नरकगतिमें जाकर उत्पन्न होते हैं। परमागम वा जैनशास्त्रोंमें व्यंतरादिक देवोंको जिनशासनकी रक्षाके लिये कल्पित किया है। इसलिये सम्यग्दृष्टी जीवोंको इन शासन देवताओंके लिये यज्ञांश देकर (पूजाका भाग दान कर) मानना चाहिये ऐसा सम्यग्दृष्टियोंके लिये लिखा है। यथा—

देवजगत्त्रयीनेत्र व्यन्तराद्याश्च देवताः। समं पूजाविधानेषु पश्यन् दूरं व्रजेदधः ॥
ताः शासनादि रक्षार्थं कल्पिताः परमागमे। अतो यज्ञांशदानेन माननीयाः सुदृष्टिभिः ॥
तच्छासनैकभक्तानां सुदृशां सुव्रतात्मनाम्। स्वयमेव प्रसीदन्ति ताः पुंसां सपुरंदराः ॥

और देखो विजयार्द्ध पर्वतपर विद्याधर निवास करते हैं उनमें कितने ही सम्यग्दृष्टी उसी भवसे मोक्ष जानेवाले वा स्वर्ग जानेवाले ऐसे राजा महाराजा हुये हैं जिन्होंने विद्या सिद्ध करनेके लिये यक्ष यक्षी आदि व्यन्तरोंकी पूजा वा आराधना की है। यह विषय श्रीगुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण आदि अनेक ग्रंथोंमें प्रसंग पाकर अनेक स्थानोंपर लिखा है।

श्रीपालचरित्रमें लिखा है कि जिस समय धवल सेठने राजा श्रीपालको समुद्रमें गिराकर उसकी रानीका सतीत्वहरण करना चाहा था उस समय उस सती रानीकी महिमा प्रगट करनेके लिये पद्मावती चक्रेश्वरी ज्वालामालिनी आदि यक्षियां तथा पूर्णभद्र मणिभद्र आदि क्षेत्रपाल ये सब शासनदेवता अपने अपने वाहन और शस्त्र लेकर आ उपस्थित हुये थे और सबने उस पापी सेठका घोर अपमान किया था और सतीकी महिमा प्रगट की थी। यथा—

कम्पमानासना बह्वो जिनशासनदेवताः। आजग्मुः शीलरक्षार्थे बहवो व्यन्तरामराः ॥ ७० ॥

१। इनका अभिप्राय यह है। उस समय शासन देवताओंका आसन कपायमान होगया और शीलकी रक्षा करनेके लिये वे सब देवता आगये। मणि-

मणिभद्रोमरः शीघ्रं चक्रेब्धिमतिचंचलम्। वातैः प्रलयकालाभैः वणिक्पोतादिनाशनम् ॥ ७१ ॥
चक्रेश्वरी च पोतान्यभ्रमयच्चक्रवत्तदा। व्यधाद्वृष्टिहरं धूपं महान्तं रोहिणी क्षणात् ॥ ७२ ॥
अग्निं प्रज्वालयामासाहो ज्वालामालिनी क्रुधा। पद्मावती चपेटाद्यैः तन्मुखे मारयद्भृशम् ॥ ७३ ॥
श्वारूढक्षेत्रपालोघात्पापिनं तन्मुखे दहन्। तच्छीलसिद्धये ज्वलता·····ता तेन तत्क्षणम् ॥
आरूढो गरुडं व्यन्तरेन्द्रो दशमुखाह्वयः। बंधनैः पृष्ठगाणि बध्वोर्द्धो ह्रीमघो मुखः ॥ (?)

विन्ध्याचल पर्वतपरके चैत्यालयमें रहने वाले यक्षने भीमको गदा नामका शस्त्र दिया था सो पांडवपुराणमें लिखा ही है।

श्री भद्रवाहु स्वामीने नवग्रह स्तोत्रमें लिखा है कि ग्रहोंकी शांतिके लिये भगवानकी पूजाके साथ नवग्रहोंकी पूजन भी करनी चाहिये। यथा—

जगद्गुरुं नमस्कृत्य श्रुत्वा सद्गुरुभाषितम्। ग्रहशांतिं प्रवक्ष्यामि लोकानां सुखहेतवे ॥
जैनेन्द्रखेचरा ज्ञेया पूजनीया विधिक्रमात्। पुष्पैर्विलेपनैर्धूपं नैवेद्यैः फलसंयुतैः ॥
जन्मलग्ने च राशौ च यदि पीडितखेचराः। तदस्य पूजाया धीमान् खेचरैः सहिता जिन ॥
आदित्यसोममंगलबुधशुक्रशनीश्वराः। राहुप्रमुखः जिनपतिपुरतोयं तिष्ठति ॥
इति भणित्वा पंचवर्णासु पुष्पांजलिं क्षिपेत्। जिनानां गृहे स्थित्वा ग्रहाणां तुष्टिहेतवे ॥
नमस्कारं ततो भक्त्या जपेदष्टोत्तरं सुधीः। श्रीरुद्रवाहुभवाचेदं पंचमः श्रुतकेवली ॥

भद्रने प्रलयकालके समान हवा चलाकर समुद्र चंचल कर दिया जिससे जहाज नष्ट होता दिखाई दिया। चक्रेश्वरीने जहाजको चक्रके समान फिरा दिया। रोहिणीने ऐसा धूंवां फैलाया जिससे कुछ न दिखाई दे। ज्वालामलिनीने अग्नि जला दी। पद्मावतीने उससेठके मुहपर मार लगाई। क्षेत्रपालने उसका मुंह जलाया दशमुख नामके व्यन्तरेन्द्रने उसको बांध लिया।

१। इस सबका भावार्थ यही है कि यदि ग्रह दुष्ट हों पीडा देते हों तो भगवानकी पूजा करनेके बाद इन ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये।

इसका अर्थ विचार लेना चाहिये।

और देखो भरत आदि चक्रवर्तियोंकी आयुधशालामें जब चक्र आयुध प्रगट हुआ तब उन्होंने उसकी पूजा की सो यह कथन प्रसिद्ध ही है। इन बारह चक्रवर्तियोंमेंसे आठ चक्रवर्तीतो उसी भवसे मोक्ष गये और दो स्वर्गमें गये। ये सब सम्यग्दृष्टी थे। इनके सिवाय दिग्विजय करनेके लिये जब चक्रवर्ती निकलते हैं तब समुद्रके किनारे जाकर यक्षको वश करनेकेलिये दाभके आसन पर बैठकर तेला (तीन उपवास) धारण करते हैं यह सब चक्रवर्तियोंकी रीति है।

श्रीमत् आदिपुराणके उनंचालीसवें पर्वमें लिखा है कि तीर्थंकरोंके सिवाय विश्वेश्वरादिक और भी देव हैं जो शांतिके करने वाले हैं।

इन विश्वेश्वरादिकके सिवाय मांसाहारी क्रूर देव आर भी हैं सो उनका त्याग करदेना चाहिये अर्थात् उनको नमस्कार पूजन आदि नहीं करना चाहिये ऐसा लिखा है। यथा—

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवता शांतिहेतवः। क्रूरास्तु देवताः हेयः येषां स्याद् वृत्तिरामिशैः॥

इससे मालूम होता है कि शांति करनेके लिये तीर्थंकरोंके सिवाय और भी देव हैं।

छयालीसवीं क्रियाका वर्णन करते समय लिखा है "कि नौ निधि और चौदह रत्नोंकी पूजनकर फिर चक्रका महोत्सव किया। यथा—

संपूज्य निधिरत्नानि कृतचक्रमहोत्सवः। दत्वा किमिच्छिकं दानं मान्याः संमान्य पार्थिवाः॥ २३६॥
यथावदभिषिक्तस्य तिरीटारोपणं ततः। क्रियते पार्थिवैः मुख्यैश्चतुर्भिः प्रथितान्वयैः॥ २३७॥

इसप्रकार महापुरुषोंने भी किया फिर हमारे तुम्हारे समान श्रद्धानियोंकी तो बात ही क्या है?

दूसरे लघु पद्मपुराणमें भगवान मुनिसुव्रत तीर्थंकरके जन्माभिषेकके समय लिखा है कि "इन्द्रने मेरु पर्वतपर अभिषेक करते समय पहले दश दिक्पालोंको तथा लोकपालोंको स्थापन किया, अर्घ देकर उनका पूजन किया और फिर पांचवें क्षीरसागरका जल लाकर भगवानका अभिषेक किया। यथा—

ततः शक्रेण दिक्पाला लोकपाला यथाक्रमम्। संस्थाप्य पूजिता अर्घैः सर्वशांतिकहेतवे॥ १७॥

जंतुविष्टं जलं चात्र तस्माच्च क्षीरसागरात्। समानीय जिनो देवः तेन संस्नाप्यते मया ॥ ९८ ॥

यहां इन्द्रने भी ऐसा किया सो क्या इसके सम्यक्त्व नहीं है जो अपने सेवकोंका भी अर्घ देकर पूजन किया।

श्रीमद् आदिपुराणके चालीसवें पर्वमें क्रियाओंके मंत्राधिकारमें पीठिका मंत्र आदि मंत्रोंमें जिनेन्द्रदेवके सिवाय अन्य देवोंको भी पूजना लिखा है। यथा—

"सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्यनिर्वाणपूजार्ह अग्नीन्द्राय स्वाहा" इति पीठिका मंत्रः। "सम्यग्दृष्टे ज्ञानमूर्ते सरस्वति स्वाहा" इति जातिमंत्रः। "ग्रामपतये स्वाहा" इति निस्तारमंत्रः। "अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा"। श्रावकाय स्वाहा। देवब्राह्मणाय स्वाहा। सुब्राह्मणाय स्वाहा। सम्यग्दृष्टे भूपते नगरपते कालश्रवण-यक्षाय स्वाहा" इति ऋषिमंत्रः। "सम्यग्दृष्टे कल्पपते दिव्यमूर्ते वज्रनामाय स्वाहा" इति सुरेंद्रमंत्रः।

इसप्रकार और भी परममंत्र राजादिक मंत्रोंमें अग्नींद्र कालश्रमण यक्ष तथा इन्द्र आदिका पूजन है। सो सब विचार कर लेना चाहिये।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि यह सब लिखा है सो तो सब ठीक है परंतु गोमट्टसार त्रिलोकसार आदि ग्रंथोंमें तो नहीं लिखा है। तो इसका समाधान यह है कि प्रथम तो गोमट्टसारमें यह प्रसंग ही नहीं आया है। क्योंकि जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, पूजा, प्रतिष्ठा, श्रावकधर्म आदिका वा प्रथमानुयोगका जहां वर्णन है वहां यह सब कथन किया है। इसलिये यदि एक गोमट्टसारमें नहीं है तो जैनधर्मके अन्य शास्त्रोंमें तो है। यदि एक गोमट्टसारको ही मानोगे अन्य शास्त्रोंको नहीं मानोगे तो गोमट्टसारके विना अन्य सब शास्त्र अप्रमाण मानने पड़ेंगे। फिर उन शास्त्रोंका स्वाध्याय श्रद्धान आदि करना भी नहीं बन सकेगा।

कदाचित् आपको ऐसा ही हट है कि त्रिलोकसार गोमट्टसारके विना हम और ग्रंथोंका श्रद्धान नहीं करते तो देखो त्रिलोक-सारमें अकृत्रिम चैत्यालयोंमें विराजमान श्रीजिनप्रतिमाओंका स्वरूप दिखलाते समय लिखा है कि अकृत्रिम चैत्यालयोंकी प्रतिमाओंके दोनों ओर तथा नीचे सर्वाल्हाद और सनत्कुमार आदि वत्तीस वत्तीस यक्ष और श्रीदेवी तथा श्रुत देवता स्त्री मनु-ष्योंके आकारमें अनादि निधन विराजमान हैं। भावार्थ—प्रतिमाके दोनों ओर वत्तीस वत्तीस यक्ष तो चमर ढुला रहे हैं तथा श्री

देवी वा लक्ष्मीदेवी और श्रुतदेवता वा सरस्वती देवी वहीं पर विराजमान है। प्रतिमाजीके नीचे सर्वाल्हाद और सनत्कुमार ये दोनों जिनभक्त यक्ष बैठे हैं। उनके आगे अष्ट मंगलद्रव्य रक्खे हैं यथा—

दसतालमाणलक्खणभरिया पेक्खंत इव वंदंता वा।
पुरुजिणतुंगा पडिमा रयणमया अट्ठ अहियसया॥ १७६॥
चमरकरणागजक्खग वत्तीसं मिहुणगेहि पुह जुत्ता।
सिरसीए पत्तीए गब्भगिहे सुट्ठ सोहंति ॥ १७७॥
सिरिदेवी सुहदेवी सव्वाण्हसणकुमारजक्खाणं।
रूवाणिय जिणपासे मंगलमट्ठविहमवि होदी॥ १७८॥

इसप्रकार त्रिलोकसारमें लिखा है। इसका अर्थ ऊपर लिखे अनुसार है।

इसीप्रकार गोमट्टसारमें कर्मकांडके नौवें अधिकारकी समाप्तिमें जहां समस्त ग्रंथ पूर्ण होता है तथा शास्त्रकी पूर्णता होती देख कर आचार्य श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तीकी प्रतिज्ञा पूरी होती है वहांपर अंत मंगल करते समय लिखा है कि पंचसंग्रह सूत्ररूप यह गोमट्टसार ग्रंथ सदा जयशील हो। तथा गोमट्ट नामके पर्वतके शिखरपर श्रीचामुण्डरायके किये हुये जिनालयमें श्रीगोमट्ट जिन अर्थात् श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरकी एक हाथ प्रमाण ऊंची इंद्रनीलमणिकी प्रतिमा विराजमान है वह सदा जयशील हो। इसीप्रकार जिस राजा चामुण्डरायने श्रीनेमिनाथके जिनालयमें जो एक बहुत ऊंचा स्तम्भ खड़ा किया है तथा उसपर जो यक्षदेवकी मूर्ति स्थापित की है जिसके मुकुटके अग्रभागसे निकलती हुई किरणरूपी जलसे सिद्धपरमेष्ठीके आत्मप्रदेशोंके आकारस्वरूप दोनों शुद्ध चरण धोये जाते हैं ऐसा वह राजा चामुण्डराय सदा जयशील हो। यहांपर जो यक्षके मुकुटकी किरणोंसे सिद्धपरमेष्ठीके चरण धोये जानेकी बात लिखी है सो केवल उपमामात्र है उस खंभेकी उंचाई अधिक दिखलाई है। कुछ वे किरणें सिद्धोंतक थोडे ही पहुंचती हैं। अभिप्राय केवल इतना ही है कि राजा चामुण्डरायने बहुत ऊंचा स्तंभ बनवाया है जिस पर यक्षकी मूर्ति स्थापित की है, ऐसा गोमट्टसारमें लिखा है। यथा—

गोम्मटसंगहसुगो गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरायविणिम्मियदक्खिणकुक्कडजिणो जयऊ॥ ५२॥
जेणुब्भियथंभुवरिमजक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया।
सिद्धाण सुद्धपाया सो राओ गोम्मटो जयउ॥ ५३॥

इसप्रकार गोमटसारमें भी जिनालयमें स्थापन किये हुये यक्षदेवका वर्णन है।

और देखो—

देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रवंद्यान् शुंभत्पदान् शोभितसारवर्णान्।
दुग्धाब्धिसंस्पर्द्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम्॥

इत्यादि पूजा पाठ नित्य पढा जाता है। यह पाठ नरेन्द्रसेन भट्टारककृत प्रतिष्ठापाठका है उसी पाठमें यक्ष, यक्षी, इन्द्रादिक देव, नवग्रह, दिक्पाल, क्षेत्रपाल आदिकी पूजा करना लिखा है।

श्रीसमन्तभद्रस्वामीने अपने रत्नकरंडश्रावकाचारमें लिखा है कि "सम्यग्दृष्टी पुरुषोंको भय, आशा, स्नेह वा लोभसे कुगुरु कुदेव और कुशास्त्रोंको नमस्कार और विनय कभी नहीं करना चाहिये। यथा—

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्। प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः॥

यहांपर कुदेवोंका निषेध किया है सम्यग्दृष्टी देवोंका निषेध नहीं किया है। इसप्रकार अनेक शास्त्रोंमें लिखा है।

कदाचित् यहांपर यह कहो कि "शास्त्रोंमें लिखा है तो हम क्या करें? हमको तो किसी प्रकार करना योग्य नहीं है। क्योंकि सम्यग्दृष्टी जीव किसी प्रकार भी इन देवोंकी पूजा बंदना आदि नहीं करते क्योंकि समस्त जैनग्रंथोंमें कुदेवोंके माननेका त्याग लिखा है। कुदेवोंके माननेका त्याग किसी एक शास्त्रमें नहीं किंतु समस्त शास्त्रोंमें लिखा है। इसलिये सम्यग्दृष्टी पुरुषोंको इस प्रकारका (इन देवोंके पूजनेका) श्रद्धान ज्ञान आचरण करना ठीक नहीं है। परंतु इसका उत्तर वा समाधान यह है कि आपका कहना तो सत्य है और शास्त्रोंमें आपके कहे अनुसार ही लिखा है आपका यह कहना अन्यथा अथवा मिथ्या नहीं है किंतु उन

शास्त्रोंमें कुदेवोंका त्याग लिखा है। जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, विनायक, क्षेत्रपाल, चंडी, भैरव, मारुती आदि कुदेव अन्य मतियोंके स्थापन किये हुये हैं उन्हींकी पूजा सेवाके त्याग करनेके लिये लिखा है। जैनशास्त्रोंमें कहे हुये सम्यग्दृष्टी शासन देवताओंका निषेध नहीं है। यदि जैनशास्त्रोंमें कहे हुये शासन देवताओंका निषेध माना जायगा तो अनेक शास्त्रोंमें इनका वर्णन क्यों लिखा जाता ? क्योंकि जैनशास्त्रोंमें तो पूर्वापरविरुद्धरहित वचन हैं।

यदि ऐसा न मानोगे तो गोमटसारके पहले अधिकारमें लिखा है कि "महाभारत वा रामायण आदि शास्त्रोंको नहीं सुनना चाहिये। सो क्या जैनशास्त्रोंमें कहे हुये भारत अर्थात् कौरव पांडवोंका चरित्र वा यादववंशियोंका कथन जो हरिवंशपुराण वा पांडवपुराणादिकोंमें लिखा है तथा रामायण अर्थात् रामचन्द्र रावणकी कथा जो पद्मपुराणमें लिखी है वह भी क्या नहीं सुननी चाहिये। परंतु हम आप सब ही इन ग्रंथोंको पढते पढाते वा सुनते सुनाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि अन्य मतके रामायण भारत आदि ग्रंथ नहीं सुनने चाहिये जैनशास्त्रोंमें कहे हुये रामायण भारत आदिके सुननेका निषेध नहीं है। यदि जैनशास्त्रोंमें कहे हुये भारत रामायण आदिके सुननेका निषेध मानोगे तो हरिवंशपुराण, पांडवपुराण, पद्मपुराण आदि ग्रंथोंका भी लोप करना मानना पड़ेगा। इसलिये अपना और परका विचार कर कहना चाहिये।

जैनशास्त्रोंमें जो शासन देवताओंका पूजन लिखा है सो ये सब देवता सम्यग्दृष्टी जिनभक्त हैं और जैनशासनके रक्षक हैं इसलिये ये साधर्मियोंके समान हैं। यदि सम्यग्दृष्टी पुरुष इनकी पूजा सत्कार करे तो क्या दोष है। जो साधर्मी पुरुष अपनेसे गुण, तप वा आयु आदिमें बडे हों उनकी विनय, भक्ति, यथायोग्य पूजा सन्मान विनय आदि अन्य साधर्मी पुरुष करते ही हैं यह रीति सदासे चली आ रही है। शास्त्रोंमें भी साधर्मीकी सेवा आदर सत्कार आदि करना लिखा ही है। तथा वर्तमान समयमें भी श्रावक परस्पर वात्सल्यभाव धारण कर एक दूसरेको दान, मान और सन्मान कर संतुष्ट करते ही हैं तो फिर देवगतिके साधर्मियोंको माननेमें मिथ्यात्वका दोष किस प्रकार आ सकता है ? अन्य कुदेवादिकके माननेमें मिथ्यात्व वा हिंसाका दोष प्रत्यक्ष आता है इसलिये सम्यग्दृष्टी पुरुष उनको कभी नहीं मानते हैं और न कभी मानना ही चाहिये। जो पुरुष इस कथनसे विपरीत कथन करते हैं वे सम्यक्त्वी नहीं हैं साक्षात् मिथ्यादृष्टी हैं। ऐसा अनेक शास्त्रोंमें लिखा है।

१७१। चर्चा एकसौ इकहत्तरवीं।

पहले सब कार्योंमें मंत्र शब्द लिखा है सो मं त्र इन दोनों अक्षरोंका अर्थ क्या है और इनसे मिले हुए मंत्र शब्दका अर्थ क्या है।

समाधान—मंत्र शब्दमें दो अक्षर हैं पहला अक्षर मं है उसका अर्थ मन अथवा मनसे संबंध रखनेवाली मनोकामना है और त्र शब्दका अर्थ रक्षा करना है। इन दोनों अक्षरोंके मिलानेसे मंत्र शब्द बनता है। जो 'मं' अर्थात् मन वा मनोकामनाकी 'त्र' अर्थात् रक्षा करे उसको मंत्र कहते हैं। सो ही लिखा है—

मकारं च मनः प्रोक्तं त्रकारं त्राणमुच्यते। मनसस्त्राणयोगेन मंत्र इत्यभिधीयते॥

१७२। चर्चा एकसौ बहत्तरवीं।

पहले जो जिनपूजाका वर्णन लिखा है सो उस पूजाको करनेवाला कैसा होना चाहिये।

समाधान—जैन शास्त्रोंमें पूजाके प्रकरणमें पूज्य, पूजक, पूजा, पूजा हेतु और फल ये पांच प्रकरण लिखे हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है। जो क्षुधा तृषा आदि अठारह दोषोंसे रहित है, केवलज्ञानसे सुशोभित है जो कृतार्थ है अर्थात् अष्ट कर्मोंके नाश करने रूप कार्यको कर चुके हैं सिद्ध हो चुके हैं, जो सबका भला करनेवाले हैं, इन्द्रादिक देव भी जिनके चरण कमलोंकी पूजा करते हैं, जो आठों प्रातिहार्योंसे विभूषित हैं और छयालीस गुणोंसे सुशोभित हैं ऐसे वीतराग अरहंत देव पूज्य हैं। भावार्थ—अन्यमतके द्वारा माने हुए हरि, हर, चंडी, मुंडी, भैरव, क्षेत्रपाल, दुर्गा, वीजासणी शीतला भवानी गणपति हनुमान अऊत पत्र भूत प्रेत पितर सती आदि अनेक प्रकारके मिथ्यादृष्टि कुदेवादिक कभी पूज्य नहीं हो सकते। सम्यग्दृष्टी जीव ऐसे कुदेवादिकोंकी कभी पूजा नहीं कर सकते किंतु भगवान अरहंत देव ही सदा पूज्य होते हैं सो ही पूजासारमें लिखा है।

पूज्यः स प्राप्तकेवल्यो निष्ठितार्थो जिनेश्वरः। सार्वः सर्वेन्द्रवंद्यांघ्रिः प्रातिहार्यादिसंयुतः॥ १४॥

आह्वान स्थापन सन्निधिकरण पूजा और विसर्जन इस प्रकार पंचोपचारी पूजाका स्वरूप जो पहले कहा है उसका करना पूजा है। पूजा करना पुण्यवृद्धिका कारण है यही पूजाका हेतु है। मोक्ष प्राप्त होना पूजाका अंतिम फल है। पूजकका स्वरूप अभी आगे बतलाते हैं। इस प्रकार पूजाके पांच भेद हैं सो ही पूजासारमें लिखा है।

पंचोपचारविधिना पंचशुद्ध्यान्विताईतः। भव्यात्माचरणं पूजा प्रतिष्ठादिक्रियाविधिः॥
पूज्यो जिनपतिः पूजा पुण्यहेतुः जिनार्चना। फलं साभ्युदयामुक्ति भव्यात्मा पूजकः स्मृतः॥

ऐसा क्रमसे समझ लेना चाहिये। आगे पूजक अर्थात् पूजा करनेवालेका विशेष स्वरूप लिखते हैं। जो जाति और कुलसे शुद्ध

हो, शीलवान हो, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वा उत्तम शूद्र हो, व्रतोंको दृढताके साथ पालन करनेवाला, आचरण जिसके दृढ हों, जो सत्य बोलनेवाला हो शौचाचारको पालन करनेवाला हो, मित्र बांधव आदिके द्वारा पवित्र हो, (जातिच्युत न हो) अपने गुरुके दिये हुए मंत्रसे सुशोभित हो (अष्ट मूलगुण और यज्ञोपवीत आदिको धारण करनेवाला हो) और जो जीवोंकी हिंसासे अत्यंत दूर हो ऐसा मनुष्य भगवानकी पूजा करनेका अधिकारी होता है। सो ही पूजासारमें लिखा है—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाथ सुशीलवान् । दृढव्रतो दृढाचारः सत्यशौचसमन्वितः ॥
कुलेन जात्या संशुद्धः मित्रबंध्वादिभिः शुचिः । गुरूपदिष्टमंत्राढ्यः प्राणिवधादिदूरगः ॥

आगे पूजा करनेवालेका लक्षण और भी विशेषतासे कहते हैं। जो पवित्र हो (जिसके कुलमें धरेजा वा विधवाविवाह न हो) जो प्रसन्न वदन हो, सदा प्रसन्न रहनेवाला हो, जो गुरुका भक्त हो, व्रतोंको दृढताके साथ पालन करनेवाला हो, दयालु हो, चतुर हो, जप तप कर सहित हो और बीजाक्षरोंको धारण करनेवाला हो वही भगवानकी पूजा करनेका अधिकारी होता है। सो ही पूजासारमें लिखा है।

शुचिः प्रसन्नो गुरुदेवभक्तो दृढव्रतः सत्यदयासमेतः ।
दक्षः पटुः बीजपदावधारी जिनेन्द्रपूजासु स एव शस्तः ॥

आगे दूसरे प्रकारसे भी पूजा करनेवालेका स्वरूप लिखते हैं। जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंमेंसे कोई हो, जो

शूद्रके लिये जो पूजाका अधिकार लिखा है सो इसका अभिप्राय यह है कि जिन शूद्रोंमें विधवाका धरेजा नहीं होता ऐसे शूद्रोंको उत्तम शूद्र कहते हैं ऐसे शूद्रोंको केवल दूरसे पूंजा करनेका अधिकार है उसको अभिषेक चरणस्पर्श आदि करनेका अधिकार नहीं है। जिनकुलोंमें विधवाओंका धरेजा होता है वे चाहे ब्राह्मण हों चाहे क्षत्रिय हों चाहे वैश्य हों और चाहे शूद्र हों वे सब निंच शूद्र कहलाते हैं ऐसे लोगोंको पूजा आदि करनेका कोई अधिकार नहीं है।

१ इस श्लोकमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ही पूजा करनेके अधिकारी लिखे हैं। इससे सिद्ध होता है कि शूद्रोंको पूर्ण पूजा करनेका (अभिषेकपूर्वक पूजा करनेका) अधिकार नहीं है। ऐसी पूजा करनेका अधिकार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको ही है। शूद्र केवल दूरसे ही द्रव्य चढा सकते हैं वे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके साथ मिलकर भी पूजा नहीं कर सकते। अलग रहकर ही द्रव्य चढा सकते हैं। आगेकी चर्चामें ही शूद्रोंको पूजा करनेका निषेध लिखा है।

अत्यंत रूपवान हो, सम्यग्दृष्टी हो, अणुव्रती हो चतुर हो, जो सदा सदाचारका पालन करनेवाला हो, पंडित हो वह पूजा करनेका अधिकारी होता है। सो ही जिनसंहितामें लिखा है—

त्रैवर्णिकोतिरूपांगः सम्यग्दृष्टिरणुव्रती। चतुरः शौचवान् विद्वान् योग्यः स्याज्जिनपूजने ॥

ऐसा जिनसंहिताके तीसरे सर्गमें लिखा है।

१७३। चर्चा एकसौ तिहत्तरवीं।

पूजा करनेवालेका स्वरूप तो जाना परंतु जो पूजा करने योग्य नहीं है उनका स्वरूप क्या है?

समाधान—साधारण रीतिसे तो यह समझ लेना चाहिये कि जो ऊपर लिखे कथनसे विपरीत चलनेवाला पुरुष है वही पूजा करनेके अयोग्य है। तथा विशेष रीतिसे इतना और समझ लेना चाहिये कि पूजा करनेके वेही अधिकारी हैं जो कुलहीन न हो, मिथ्यादृष्टी न हो, पापी न हो, मूर्ख न हो, निकृष्ट क्रियावाला और निकृष्ट आचरणवाला न हो किसी रोगसे दूषित न हो अर्थात् दाद, खुजली, विचर्चिका, कोढ, मेदा, आदिक रोग न हों जिसका मुंह बुरा दिखने वाला न हो, जो अंधा बहरा काणा, ऐंचाताना न हो, जिसके शरीर पर सफेद फूल न हो जो गूंगा लंगडा पागल टोंटा न हो तथा और २ ऐसे ही रोगोंसे पीडित न हो, जिसके शरीरमें अधिक अंग न हो छह उंगली न हो हाथ पैर आदिमें कोई अंग अधिक न हो, कोई अंग कम न हो, हाथ पैर मुख मस्तक, नाक कान आदि शरीरके अवयव जिसके कम न हों। जो मूर्ख न हो अत्यन्त बुढा न हो, बालक न हो, साहसिक (मारने आदिकी हिम्मत रखने वाला) न हो ओ अधिक लंबा न हो, बौना न हो, कुरूप न हो शास्त्रोंका अजानकार न हो, न लोभी हो, न अत्यन्त क्रोधी न हो, न दुष्ट हो, जो अभक्त वा भक्तिहीन न हो धनकी अत्यंत इच्छा रखने वाला न हो, पाखंडी न हो, वदसूरत न हो, जो क्रोधी न हो अत्यंत मोहवाला न हो, धीठ न हो, व्रतोंको शिथिलतासे पालन करनेवाला न हो रोगी न हो अर्थात् ज्वरातिसार संग्रहणी, अजीर्ण, विशूचिका, कृमि, पांडु, रक्त पित्त श्वास, कास, शूल, गुल्म आदि अनेक रोगोंमेंसे जिसको कोई रोग न हो, जो अन्यायी न हो अविनयी न हो ज्वारी न हो, अज्ञानी न हो विदूषक न हो, नाट्यकर्मका उपासक न हो, नपुंसक नहो, महाव्रती न हो, सो पूजा करने योग्य है तथा ऊपर लिखे हुये दोष जिसमें हो वह पूजा करने योग्य नहीं है। सो ही पूजासारके दूसरे अधिकारमें लिखा है।

न कुलीनो न दुर्दृष्टिर्नपापी नाप्यपण्डितः। न निकृष्टक्रियावृत्तिर्नातंकपरिदूषितः ॥ ३० ॥

नाधिकांगो न हीनांगो नातिदीर्घो न वामनः । न विरूपो न मूढात्मा नातिवृद्धो न बालकः ॥ ३१ ॥
न साहसिकदुर्वेषो नाशास्त्रज्ञो न लोभवान् । नातिक्रोधी न दुष्टात्मा नाभक्तो न विरूपकः ॥ ३२ ॥
न क्रोधावी न मोहावी न दुष्टो नादृढव्रतः । नानर्थी न च पाखंडी न रोगी नाविनीतकः ॥ ३३ ॥
न द्यूतव्यसनासक्तो नाविद्वान् न विदूषकः । न नाथ्योपासको षंडः नानयो न महाव्रती ॥ ३४ ॥

जिनमें ऊपर लिखे दोष हों वे पूजा करनेके अधिकारी नहीं हैं । इनके सिवाय और भी कितने ही दोष हैं वे भी पूजा करनेवालेको छोड़ देने चाहिये । जैसे आलसी, तंद्रालु, अत्यन्त मानी, मायाचारी, शूद्र हो और जो जिनसंहिताके मार्गको अर्थात् पूजापाठ करने आदिकी क्रियाओंको न जानता हो वह भी पूजा करनेके योग्य नहीं है । सो ही भगवद् एकसंधिकृत जिनसंहिताके तीसरे अधिकारमें लिखा है । यथा—

न शूद्रः स्यान्न दुर्दृष्टिर्न पापाचारपंडितः । न निकृष्टक्रियावृत्तिर्नातंकपरिदूषितः ॥ ३ ॥
नाधिकांगो न हीनांगो नातिदीर्घो न वामनः । न विदग्घो न तंद्रालुर्नातिवृद्धो न बालकः ॥ ४ ॥
नातिलुब्धो न दुष्टात्मा नातिमानी न मायिकः । नाशुचिर्नविरूपांगो नाजानन् जिनसंहिताम् ॥ ५ ॥

प्रश्न —यहांपर जिनसंहिताके मार्गको न जाननेवालेके लिये पूजा करनेका निषेध लिखा सो इसका कारण क्या है ?

उत्तर—जैनमतके संहिताशास्त्रोंमें जिनस्नपन पूजा प्रतिष्ठा आदि अनेक कर्तव्य कर्मोंकी विधि लिखी है। यदि कोई पुरुष जिन-संहिताको नहीं जानेगा तो वह पूजाके मार्गको भी नहीं जानेगा । इसलिये पहले जिनसंहिताका अभ्यास कर लेना चाहिये । पूजाके मार्गको विधिको जान लेना चाहिये तब फिर पूजा करनी चाहिये । जो पुरुष इन संहिताओंको नहीं जानता वह पूजा प्रतिष्ठा आदिकी विधिको भी नहीं जान सकता । इसलिये सबसे पहले जिनसंहिताओंका अभ्यास करना चाहिये पूजादिककी विधि जाननी चाहिये और फिर पूजा अभिषेक आदि कार्य करने चाहिये । जो पुरुष संहिता ग्रंथोंको नहीं जानता उनके न जाननेसे पूजा प्रतिष्ठाकी आम्नाय वा विधि भी नहीं जान सकता जिससे वह अनेक प्रकारके संशय उठाता है अनेक विपरीत कार्य करता है और फिर

अपने मनकी कल्पनाओंके अनुसार करता है। इसलिये जो संहिताग्रंथोंमें कही हुई विधिको नहीं जानता वह पूजा करनेके अयोग्य है।

प्रश्न—जिनसंहिताका अर्थ क्या है ?

उत्तर—संहिता शब्द दो शब्दोंसे बना है–सं और हित। जो कल्याण वा हित करनेवाली है उसको हिता कहते हैं, जो सं अर्थात् सम्यक् वा अच्छी तरह जीवोंका कल्याण करनेवाली हो उसको संहिता कहते हैं। अथवा जिसके संसर्गसे जीवोंका कल्याण हो उसको संहिता कहते हैं तथा जो जिन अर्थात् भगवान अरहंतदेवसे संबंध रखनेवाली अरहंतदेवकी कही हुई हो उसको जिनसंहिता कहते हैं। सो ही पूजासारके पहले अधिकारमें लिखा है—

संगतं हितमेतस्या भव्यानामिति संहिता। जिनसंबंधिनी सेयं नाम्ना स्याज्जिनसंहिता॥ १०॥

इसप्रकार इसकी निरुक्ति है।

१७४। चर्चा एकसौ चौहत्तरवीं।

पहले योग्य अयोग्य पूजकका स्वरूप दिखलाते हुये जो यह लिखा है कि अयोग्यको पूजा नहीं करनी चाहिये सो यदि किसी देश कालमें किसी अयोग्यके द्वारा पूजा हो जाय तो इसमें क्या दोष है पूजा करनेमें तो गुण ही है क्योंकि यदि ऊपर लिखे अनुसार किसी पूजा करनेवाले गुणवानका प्रसंग न मिले तो जैसा मिले वैसा कर लेना ठीक है। परंतु इसका समाधान यह है कि पहले तो भगवानकी ऐसी आज्ञा नहीं है। ऐसा करनेसे भगवानकी आज्ञाका भंग होता है जिससे महा पाप होता है। फिर भी जो कोई अयोग्य मनुष्य पूजा करता है उसका फल शास्त्रोंमें ऐसा कहा है "जो अयोग्य मनुष्य मोहवश होकर जिनपूजा करता है अर्थात् तीव्रभाव होनेपर भक्तिके वश होकर पूजा करता है तो उस पुरुषका, उस देशका उस देशके राजाका तथा उस राजाके सब साम्राज्यका नाश हो जाता है। इस प्रकारकी पूजा करनेवाले और करानेवाले इन दोनोंको पूजाके फलकी प्राप्ति नहीं होती। उनकी वह पूजा निष्फल होती है। इसलिये ऊपर कहे लक्षणोंसे सुशोभित होनेवाले पुरुषको ही भगवानकी पूजा करनी चाहिये। सोई पूजासारके प्रथम अधिकारमें लिखा है—

१ शास्त्र और विधि ग्रन्थोंकी आज्ञा है कि बालकको सबसे पहले श्रावकाचार पढ़ाना चाहिये। उन श्रावकाचारोंमें भी सबसे पहले संहिता ग्रंथ है। देवदर्शन करना पूजा भक्ति अभिषेक आदि करना ही सबसे पहले सिखाने चाहिये फिर मूलगुण उत्तरगुणोंका स्वरूप सिखाना चाहिये। इसके बाद फिर अन्य विद्यायें सिखानी चाहिये। जो ऐसा नहीं करते उनकी संतान सदा अधार्मिक उत्पन्न होती है।

यदि मोहात्तथाभूतो पूजयेत् त्रिजगद्गुरुम् । पुरं राष्ट्रं नरेशश्च राज्यं सर्वं विनश्यति ॥ ३५ ॥
न कर्ता फलमाप्नोति नापि कारापिता स्वयम् । तस्मात्सल्लक्षणोपेतो जिनपूजासु शस्यते ॥ ३६ ॥

यहांपर अयोग्य पुरुषसे पूजा करानेवालेको भी अशुभ फल होता है ऐसा समझ लेना चाहिये । सो ही जिनसंहिताके तीसरे अधिकारमें लिखा है—

निषिद्धः पुरुषो देवं यद्यर्चेत् त्रिजगत्प्रभुम् । राजराष्ट्रविनाशः स्यात्कर्तृकारकयोरपि ॥ ६ ॥
तस्माद्यत्नेन गृह्णीयात् पूजकं त्रिजगद्गुरोः । उक्तलक्षणमेवार्यः कदाचिदपि नापरम् ॥ ७ ॥

इससे सिद्ध होता है अयोग्य पुरुषसे कभी पूजा नहीं करानी चाहिये । तथा जो कोई कराता है उसको बुरा फल मिलता है ।

कदाचित् कोई यह कहे कि ऐसा करनेसे तो सब जगह पूजा करनेका लोप हो जायगा । क्योंकि ऊपर जो पूजा करनेवालेके लक्षण लिखे हैं ऐसे लक्षणवाले तो पुरुष बहुत थोडे हैं । तथा जिनमंदिर बहुत हैं । ऐसी हालतमें क्या करना चाहिये । तो इसका उत्तर यह है कि पूजकके दो भेद हैं एक तो जिनप्रतिष्ठादिक महा कार्योंमें पूजा करनेवाला सो तो ऊपर लिखे लक्षणोंसे सुशोभित ही होना चाहिये । अन्य नहीं होना चाहिये । तथा नित्यपूजा विधान करनेवाला ऊपर लिखे दोषोंसे रहित होना चाहिये । यदि ऐसा न हो तो महादोषोंसे रहित समयानुसार जो यथायोग्य हो उसको ही पूजा करनी चाहिये । जिसके महादोष प्रगट दिखाई देते हों जो सर्वथा अयोग्य हो उसको नित्यपूजा भी नहीं करनी चाहिये । सो ही पूजासारमें लिखा है ।

पूजकः पूजकाचार्यः इति द्वेधास्तु पूजकः । आद्यो नित्यार्चकोऽन्योस्तु प्रतिष्ठादिविधायकः ॥ १६ ॥

इससे सिद्ध है कि पूजा करनेवाला योग्य ही देखना चाहिये ।

१७५ । चर्चा एकसौ पिचहत्तरवीं ।

पूजा करते समय किसीके हाथसे श्रीजिनप्रतिमा पृथ्वीपर गिर पड़े तो उसका प्रायश्चित्त क्या है ?

समाधान—जो पूजा करते समय जिनमूर्ति पृथ्वीपर गिर पड़े तो उस पूजा करनेवालेको उस मूर्तिका शुद्ध जल तथा गंधोदक पर्यंत भरे हुए एकसौ आठ कलशोंसे मंत्र पूर्वक भगवानका अभिषेक करना चाहिये । फिर पूजा कर एकसौ आठ मूलमंत्रोंसे

आहूति देकर फिर वहीं विराजमान कर देना चाहिये। ऐसा इसका प्रायश्चित्त है। सो ही जिनसंहितामें आठवें अधिकारमें लिखा है—

पतिते जिनबिम्बेऽष्टशतेन स्नापयेद् घटैः। अष्टोत्तरशतं कुर्यान्मूलमन्त्रेण चाहुतीः॥ २४॥

इस प्रकार मूर्तिके गिर पड़नेपर बहुतसे लोग बिना समझे केवल अपने मनसे ही किसी सचित्त वस्तुके खानेका त्याग कर देते हैं वा उपवास एकाशन आदि कर लेते हैं वा करा देते हैं सो शास्त्रकी विधिसे विपरीत है।

१७६। चर्चा एकसौ छिहत्तरवीं।

पूजा करते समय मंत्रपूर्वक नैवेद्य आदि चढानेमें किसीके हाथसे वह नैवेद्यादिक पृथ्वी आदि अन्य क्षेत्रमें गिर जाय पूजाके स्थानमें न चढाया जा सके बीच ही में गिर जाय तो क्या करना चाहिये।

समाधान—पूजा करते समय मंत्र पढकर द्रव्य चढ़ाना चाहिये यदि वह द्रव्य बीचमें गिर जाय तो उसे छोड देना चाहिये। फिर जो द्रव्य गिरा है उसी द्रव्यको लेकर और उसी मंत्रको पढ़कर एकसौ आठ वार आहूती देनी चाहिये अर्थात् अक्षत गिरा हो तो अक्षतका मंत्र पढ़कर अक्षतकी एकसौ आठ आहूती देनी चाहिये। यदि पुष्प गिरा हो तो इसी प्रकार पुष्पकी एकसौ आठ आहूती देनी चाहिये। इस प्रकार जलादिक आठों द्रव्योंमेंसे जो द्रव्य गिरा हो उसीका मंत्र पढ़कर एकसौ आठ आहूती देनी चाहिये। फिर बाकीकी पूजा पूर्ण करनी चाहिये। यही इसका प्रायश्चित्त है। सो ही संहिताके अठारहवें अधिकारमें लिखा है—

प्रपांत वलिपिंडस्य जिनमन्त्रेण मन्त्रवित्। अष्टोत्तरशतं कुर्यादाहूतीस्तद्विधिक्रमात्॥

१७७। चर्चा एकसौ सतहत्तरवीं।

यदि कोई हीन जातिका अस्पृश्य मनुष्य जिनबिंबका स्पर्श कर लेवे तो उस मूर्तिका क्या करना चाहिये।

समाधान—जो जिनबिंबके गिर जानेका प्रायश्चित्त है वही प्रायश्चित्त अस्पृश्य मनुष्यके द्वारा जिनबिंबके स्पर्श कर लेनेपर करना चाहिये। अर्थात् उस मूर्तिका एकसौ आठ कलशोंसे अभिषेक कर पूजाकर मूलमंत्रसे एकसौ आठ आहूती देनी चाहिये फिर उसको वहीं विराजमान कर देना चाहिये। सो ही पूजासारमें लिखा है।

अस्पृश्यजनसंस्पर्शेप्येवमेवं जिनेशिनाम्।

१७८। चर्चा एकसौ अठहत्तरवीं।

यदि स्पृश्य मनुष्य विना स्नान किये जिनप्रतिमाका स्पर्श कर लेवे तो क्या करना चाहिये ?

समाधान—यदि स्पृश्य मनुष्य विना स्नान किये भगवानकी मूर्तिका स्पर्श कर लेवे तो भगवानका पच्चीस कलशोंसे मंत्रपूर्वक अभिषेक करना चाहिये सो ही जिनसंहितामें लिखा है—

स्पृष्टेऽनिंद्यजनैः पंचविंशत्या स्नापयेद् घटैः।

१७९। चर्चा एकसौ उन्यासीवीं।

यदि किसीके हाथसे प्रतिमाका भंग होजाय तो क्या करना चाहिये।

समाधान—यदि किसीके हाथसे जिनप्रतिमाका भंग हो जाय तो उसी तीर्थंकरकी अन्य प्रतिमाका एक हजार आठ शुद्धजलके कलशोंसे तथा पंचामृतसे मंत्रपूर्वक महाभिषेक करना चाहिये। फिर एकसौआठ वार मूलमंत्रसे आहूती देनी चाहिये। तथा उस भग्न हुई प्रतिबिंबको किसी अगाध जलमें विराजमान कर देना चाहिये ऐसा करनेसे वह दोष दूर होता है और शांति होती है। सो ही जिनसंहितामें लिखा है।

स्नापयेदंगभंगेष्टसहस्रेण जिनेश्वरम्। होमं वा पातवत्कुर्याद् भग्नं चांगं सुमेवयेत्।
ततो जलाधिवासादिप्रतिष्ठापनमाचरेत्।

१८०। चर्चा एकसौ अस्सीवीं।

यदि क्षेत्रपालादिक यक्षोंकी पूजाका द्रव्य गिर जाय तो क्या करना चाहिये ?

समाधान—क्षेत्रपालादिककी पूजाका द्रव्य गिर जाय तो उसकी पच्चीस आहूती देनी चाहिये। यदि क्षेत्रपालकी मूर्ति गिर जाय तो इतने ही घटोंसे स्नान कराना चाहिये। यदि उसकी मूर्तिका भग हो जाय तो वैसी ही दूसरी मूर्तिका एकसौ आठ कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये। यदि उसके स्थानका भंग होजाय तो गिर पडनेके समान प्रायश्चित्त करना चाहिये। यह यक्षकी पूजाका प्रायश्चित्त है। सो ही जिनसंहितामें लिखा है—

यक्षाचापतने पंचविंशत्या तत्समं घटैः। भंगे त्वष्टशतेन स्यात्सद्मभेदे तु पातवत् ॥

१८१। चर्चा एकसौ इक्यासीवीं।

यदि जिनमंदिरमें हड्डी मांस आदिके गिर जानेसे वह दूषित हो जाय अथवा उसमें चांडाल आदि अस्पृश्य मनुष्य घुस जांय तो क्या करना चाहिये ?

समाधान—पहले तो हड्डी मांस आदि अपवित्र पदार्थोंको दूर कर समस्त मंदिरको जलसे धुलवाना चाहिये। ध्वजारोपण, अंकूरारोपण और धूपके धूएंसे पवित्र करना चाहिये। फिर भगवानका अभिषेक कर पूजा जप और होम करना चाहिये। सो ही जिनसंहितामें लिखा है—

दूषितेऽस्थ्यादिभिर्देवधाम्न्यस्पृश्यजनैरपि।
संशोध्य सकलं धाम हुत्वा धूम्रध्वजांकुरैः।
सिक्त्वा च सुधया देवं तैरेव स्नापयेद् घटैः॥ २८ ॥

१८२। चर्चा एकसौ बियासीवीं।

भगवानकी पूजा तीनों समय की जाती है। यदि किसी एक समय प्रतिमाजी अपूज्य रहें, दो समय वा तीन समय अपूज्य रहें इसीप्रकार एक दिन दो दिन तीन दिन चार पांच छह सात दिन तथा पंद्रह दिन एक महीने तक जिनप्रतिमाजी अपूज्य रहें। इतने दिनतक उनकी पूजा न हो तो फिर क्या करना चाहिये ?

समाधान—प्रतिमाजीके अपूज्य रहनेका प्रायश्चित्त अलग अलग है उसीको अनुक्रमसे लिखते हैं। यदि एक समय पूजा न बन सके तो दूसरे समय दूनी पूजा कर लेनी चाहिये तथा एकसौ आठ बार णमोकार मंत्रका जप करना चाहिये। यदि दो समय तक भगवानकी पूजा न हुई हो तो सोलह घटोंसे भगवानका अभिषेक करना चाहिये। यदि एक दिन भगवानकी पूजा न हुई हो तो उन प्रतिमाओंका पच्चीस कलशोंसे जलाभिषेक करना चाहिये। यदि पांच दिन तक भगवानकी पूजा न हुई हो तो इक्यावन

१ उस मदिर पर सफेदी भी करानी चाहिये।

कलशोंसे उन प्रतिमाजीका अभिषेक करना चाहिये। यदि दश दिनराततक भगवानकी पूजा न हुई हो तो उस मंदिरमें विराजमान मूर्तिका इक्यासी कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये। यदि पंद्रह दिनतक भगवान अपूज्य रहे हों तो एकसौ आठ कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये। यदि एक महीने तक भगवानका पूजन न हुआ हो तो दोसौ आठ कलशोंसे उनका अभिषेक करना चाहिये। यदि दो महीने तक पूजा न हुई हो तो उन अरहंतकी प्रतिबिंबका तीनसौ आठ कलशोंसे स्नपन करना चाहिये। यदि तीन महीने तक पूजा न हुई हो तो चारसौ आठ घटोंसे अभिषेक करना चाहिये। यदि चार महीने तक पूजा न हुई हो तो पांचसौ आठ कलशोंसे उनका अभिषेक करना चाहिये। यदि पांच महीने तक पूजा न हुई हो तो फिर एक हजार आठ कलशोंसे महाभिषेक करना चाहिये यदि छह महीने तक प्रतिमाजी अपूज्य रहें तो एक हजार आठ कलशोंसे महाभिषेक कर संप्रोक्षण करना चाहिये। संप्रोक्षण करनेकी विधि जिनसंहितासे जान लेनी चाहिये।

इसप्रकार प्रत्येक पांच पांच दिन अपूज्य रहनेपर उन पापोंकी शांतिके लिये अधिक अधिक कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये। ऊपर लिखी सब विधियोंमें अभिषेक पूर्वक आठों द्रव्योंसे पूजा करनी चाहिये। एकसौ आठ बार मूल मंत्रोंसे जप करना चाहिये और आहूति देनी चाहिये। यदि सात आठ नौ दश ग्यारह बारह महीने तक वा इससे भी अधिक काल तक वा बहुत समय तक प्रतिमाजी अपूज्य रहें तो सर्वलोकशरण्य विधि करनी चाहिये और बलिविधान प्रतिष्ठापनविधान प्रोक्षणविधि और विहार विधान आदि जिनसंहितामें कहे अनुसार करना चाहिये। यहांपर ग्रंथ विस्तार होनेके डरसे नहीं लिखा है। इसप्रकार अनुक्रमसे पहले कहे हुये कथनको विचार कर समझ लेना चाहिये। यह सब कथन भगवदेकसंधिकृत जिनसंहिता नामके शास्त्रमें आठवें अध्यायमें लिखा है। यथा—

एकसंध्यार्चनाभावे जिनेन्द्रप्रतिमालये। संध्यायामपरस्यायां पूजयेदधिकं विभुम्॥ २ ॥
जिनेन्द्राभ्यर्चने हीनसाधेन सति धीधनैः। जपो हृदयमंत्रः स्याद्वारानष्टोत्तरं शतम्॥ ३ ॥
संध्याद्वयार्चनाशून्ये जिनदेवनिकेतने। घटैः षोडशसंख्यानैः स्नापयेदखिलेश्वरं॥ ४ ॥
एकवासरमभ्यर्चारहिते देवधामनि। कलशैः पंचविंशत्या स्नापयेत्परमेष्ठिनम्॥ ५ ॥
त्यक्तदेवार्चणा देवभवने पंचवासरान्। एकपंचाशतैः कुंभैः स्नापयेत्त्रिजगद्गुरून्॥ ६ ॥

देवार्चाविकले देवमंदिरे दशवासरान् । घटैरेकोत्तराशीत्या स्नापयेच्चतुराननम् ॥ ७ ॥
अर्द्धमासं जिनेंद्राचासंत्यक्ते जिनवेश्मनि । अष्टोत्तरशतेनार्हत्स्वामिनं स्नापयेद् घटैः ॥ ८ ॥
मासं जिनेश्वराभ्यर्चाविहीने जिनसद्मनि । देवमष्टशतेन द्व्यर्हतेन स्नापयेद् घटैः ॥ ९ ॥
मासौ द्वौ चर्चनारिक्ते जाते जैनेश्वरालये । त्रिभिरष्टशतैः कुंभै स्नापयेत्त्रिजगत्प्रभुम् ॥ १० ॥
मासान् त्रीन् वर्जिते चैत्यपूजया जिनधामनि । चतुःघ्नेन घटैरष्टशतेन स्नापयेज्जिनम् ॥ ११ ॥
जिनाभ्यर्चापरित्यक्ते चतुर्मासं जिनालये । अर्द्धेनाष्टसहस्रस्य स्नापयेद् जिनपं घटैः ॥ १२ ॥
जिनचैत्यालये पंचमासं मानविवर्जिते । अष्टोत्तरसहस्रेण स्नापयेत्कलशैः प्रभुम् ॥ १३ ॥
देवधिष्णे विनिर्मुक्ते षण्मासं देवपूजया । कृत्वा संप्रोक्षणे देवे तदेव स्नापयेद् घटैः ॥ १४ ॥
पंचपंचदिनान्येवं प्रध्वस्ताशेषकल्मषम् । कलशैरुदितैरेतैः स्नापयेत्पापशांतये ॥ १५ ॥
अष्टोत्तरशतं कुर्यान्मूलमंत्रेण चाहुतीः । अभिषेकदिनेष्वार्यस्तदन्ते तद्विधिक्रमात् ॥ १६ ॥

इसप्रकार पाठ है। इसके सिवाय जो अपने मनसे और अनेक प्रकारकी विधि करते हैं सो सब शास्त्रबाह्य हैं। मनोनुकूल प्रमाण नहीं है। जो पुरुष विना शास्त्रोंके अपनी बुद्धिके बलसे अपने मनकी कल्पनानुसार कहते हैं वे पुरुष वाचाल गिने जाते हैं इसलिये उनके वाक्य अप्रमाण मानेजाते हैं।

कदाचित् कोई यह कहे कि वह भी तो शुभ कार्य ही बतलाता है तो इसका उत्तर यह है कि प्रायश्चित्तकर्म चिकित्साशास्त्र अर्थात् रोग दूर करनेके लिये दवाईका देना, लग्न मुहूर्त गणित शास्त्र आदि ज्योतिषशास्त्र और धर्मशास्त्रका निर्णय सब बातोंको इनके अलग अलग शास्त्र देखेविना जो अपने मनसे ही बुद्धिमान बनकर अपने मनके अनुसार कहता है अथवा तू ऐसा करले इस प्रकार दूसरोंसे कहता है उसको लौकिक शास्त्रमें ब्रह्मघाति बतलाया है। अर्थात् लौकिक नीतिके अनुसार उसे हत्यारा वा पातकी कहते हैं। सो ही लिखा है—

प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्योतिषं धर्मनिर्णयम् । विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥

वैद्यक शास्त्रमें भी लिखा है कि जो आचार्य (प्रायश्चित्त आदि धर्मशास्त्रका निर्णय देनेवाला) ज्योतिषी, राजा और वैद्य ये चारोंही पुरुष अपने अपने कामोंको विना शास्त्र देखे केवल अपने मनसे वा केवल बुद्धिके बलसे करते हैं उनको मानों ब्रह्माने यमके दूतोंके समान केवल प्रजाको मारनेके लिये ही इस पृथ्वीपर बनाया है सो ही लंघनपथ्यनिर्णयशास्त्रमें लिखा है ।

आचार्यदैवज्ञनृपाश्चवैद्याः ये शास्त्रहीना रचयन्ति कर्म ।
देवैः पृथिव्यां यमदूतरूपाः सृष्टाः प्रजासंहरणाय नूनम् ।

यहांपर आचार्य शब्दसे प्रायश्चित्त देनेवाला वा धर्मशास्त्रका उपदेश देनेवाला समझना चाहिये ।

१८३ । चर्चा एकसौ तिरासवीं ।

यदि कोई पुरुष प्रायश्चित्तकी विधि न करे तो क्या हो ?

समाधान—जिनसंहितामें ऐसा लिखा है कि जो कोई पुरुष अनेक प्रकारके अनर्थ उत्पन्न करनेवाले जिनपूजा संबंधी दोषोंको शांत करनेके लिये ऊपर लिखे अनुसार प्रायश्चित्त नहीं करता तो वह पुरुष अपने नगरसे देशसे राष्ट्रसे सबसे भ्रष्ट होजाता है सबसे रहित होजाता है । इसलिये पापोंकी शांतिके लिये ऊपर लिखे हुए प्रायश्चित्त अवश्य करने चाहिये सो ही लिखा है—

इत्थं प्रायश्चित्तमनर्थे प्रतिषिद्धे जाते दोषे शीघ्रतरं सम्प्रविधेयम् ।
नो चेदेवं राष्ट्रमशेषं परिहीनः नगरं राष्ट्रपतिं प्रविहीनः ॥ ३३ ॥

१८४ । चर्चा एकसौ चौरासीवीं ।

यदि कोई जैनी गृहस्थ श्रावक वा श्राविकाके किसी कारणसे अनाचार वा हीनाचरण करनेमें आजाय तो उस दोषको दूर करनेके लिये क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये ?

समाधान—यदि किसी श्रावक वा श्राविकाने अपने अजानपनमें विना समझे मद्य, मांस, मधु (शहत) बड़फल, पीपल फल, गूलर अंजीर और पाकर इन आठ वस्तुओंमेंसे किसीएक वस्तुका भक्षण कर लिया हो तो उसको नीचे लिखे अनुसार प्राय-

श्चित्त देना चाहिये। अलग अलग तीन उपवास करना, बारह एकासन करना, जिनके साथ अपना पंक्तिभोजन है ऐसे एकसौ आठ पुरुषोंको पंक्तिभोजन कराना, भगवान अरहंत देवकी प्रतिमाका एकसौ आठ कलशोंसे अभिषेक करना, अपनी शक्तिके अनुसार केशर चन्दन पुष्प अक्षत आदि द्रव्योंसे भगवानकी पूजा करना, एकसौ आठवार पुष्पोंकेद्वारा णमोकार मंत्रका जप करना और दो तीर्थयात्रा करना इसप्रकार प्रायश्चित्त लेनेपर वह शुद्ध होता है पंक्तिमें बैठने योग्य होता है। सो ही लिखा है—

मद्यं मांसं मधु भुक्ते अज्ञानात्फलपञ्चकम्।
उपवासत्रयं चैकभक्तद्वादशकं तथा ॥ ७५ ॥
अन्नदानाभिषेकश्च प्रत्येकाष्टोत्तरं शतम्।
तीर्थयात्राद्वयं गंधपुष्पाक्षतस्वशक्तितः ॥ ७६ ॥

यदि कोई श्रावक श्राविका म्लेच्छ जातिके घर वा किसी नीचके घर भोजन पान करले तो उसको तीस उपवास, त्रिरेपन एकासन, अपनी जातिके दो सौ पुरुषोंको आहार दान, गौदान, पांच पांच घड़ोंसे दोसौ वार भगवानका अभिषेक, गंध पुष्प अक्षतादिकसे भगवानकी पूजन और विशेषताके साथ दो तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा करनी चाहिये। यह उसका प्रायश्चित्त है। इतना कर लेनेपर वह शुद्ध होता है, पंक्तिमें बैठने योग्य होता है। सो ही लिखा है—

म्लेच्छादिनीचजा गेहे भुक्तं त्रिंशदुपोषणम्। एकभुक्ते त्रिपंचाशत् पात्रदानं शतद्वयम् ॥
एका गौः पंचकुंभैश्चाभिषेकानां शतद्वयम्। पुष्पाक्षतं तीर्थयात्राद्वयं कुर्याद्विशेषतः ॥

यदि कोई श्रावक श्राविका विजातिके घर (जो अपनी जातिका नहीं है दूसरी जातिका है उसके घर) भोजन करले तो उसको नौ उपवास नौ एकासन नौ अभिषेक, अपनी जातिके नौ पुरुषोंको आहार दान, और तीनसौ पुष्पोंसे जप करना चाहिये। यह उसको दंड वा प्रायश्चित्त है। इतना करलेनेपर वह शुद्ध और पंक्तियोग्य होता है। सो ही लिखा है। यथा—

विजातीयानां गेहे तु भुक्तं चोपोषणं नव। एकभुक्तयन्नदानाभिषेकपुष्पशतत्रयम् ॥

जिसके घर कोई मनुष्य पर्वतसे गिरकर मरगया हो अथवा सांपके काटलेनेसे मरगया हो अथवा हाथी घोडा आदि किसी सवारी

से गिरकर मरगया हो तो उसके बाद रहनेवालेको नीचे लिखे अनुसार प्रायश्चित्त लेना चाहिये। उसको पचास तो उपवास करने चाहिये और पचास ही भगवानके अभिषेक करने चाहिये। तथा पूजा करनी चाहिये। इतना प्रायश्चित्त करनेपर वह शुद्ध और पंक्ति योग्य होता है। सोही लिखा है—

गिरेः पातो हि दष्टश्च गजादिपतनान्मृतः। उपवासाश्च पंचाशदभिषेकाश्च तैः समाः॥

यदि कोई अग्निमें पडकर मर गया हो तो उसके पीछेवालेको पचपन उपवास, अपनी जातिके पांच पांच पुरुषोंको अन्नदान, एक तीर्थयात्रा वीस भगवानके अभिषेक, गऊदान, केशर चंदन पुष्प अक्षत आदिसे भगवानकी पूजा अपनी शक्तिके अनुसार गुरुपूजा और भगवानके भंडारमें अपनी शक्तिके अनुसार द्रव्यदान देना चाहिये। इतना प्रायश्चित्त कर लेने पर वह शुद्ध और पंक्ति-योग्य होता है। सो ही लिखा है—

मृतेऽग्नौ पातके जाते प्रोषधाः पंचपंचाशत्। पंचपंचान्नदानं च जिनाभिषेकविंशतिः॥
तीर्थयात्रा च गोदानं गंधपुष्पाक्षतादयः। यथाशक्ति गुरुपूजा द्रव्यदानं जिनालये॥

सब प्रायश्चित्तोंमें प्रायश्चित्त लेनेवाले पुरुषको अपने मस्तकका मुंडन कराना चाहिये, केशर अगुरु चंदन और पुष्पादिक पूजाके द्रव्य अपनी शक्तिके अनुसार जिनालयमें देना चाहिये, यथायोग्य ग्रह पूजा करनी चाहिये सम्यग्दृष्टी जैनी ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये यथायोग्य रीतिसे चार प्रकारके संघकी पूजा करनी चाहिये और गृहस्थ श्रावकोंको भोजन देना चाहिये। ये सब बातें यथा योग्य रीतिसे सब जगह समझ लेना चाहिये। यह सब प्रायश्चित्तोंमें समुच्चय प्रायश्चित्त है। सो ही लिखा है—

प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु शिरोमुंडं विधीयते। काश्मीरागुरुपुष्पादि द्रव्यदानं स्वशक्तितः॥
ग्रहपूजा यथायोग्यं विप्रेभ्यो दानमुत्तमम्। संघपूजा गृहस्थेभ्यो ह्यन्नदानं प्रकीर्तितम्॥

यदि किसी स्त्री आदिका चांडाल आदिसे संसर्ग हो जाय तो उसे पचास उपवास, पांचसौ एकाशन, सुपात्रोंको दान, तीर्थयात्रा, पचासवार पुष्प चंदन अक्षत आदिसे भगवानकी पूजा, संघपूजा, मंत्रके जप, व्रत और जिनालयमें द्रव्य दान देना चाहिये। इतना प्रायश्चित्त कर लेनेपर वह शुद्ध और पंक्ति योग्य होता है। सो ही लिखा है—

चांडालादिकसंसर्गं कुर्वन्ति वनितादिकाः। पंचाशत्प्रोषधाश्चैकभक्ताः पंचशतानि च ॥
सुपात्रदानं पंचाशत्पुष्पचन्दनपूजनम्। संघपूजा च जाप्यं च व्रतं दानं जिनालये ॥

यदि स्त्री आदिका माली आदिसे संसर्ग हो जाय तो उसे पांच उपवास, दश एकाशन, अपनी जातिके बीस पुरुषोंको भोजन, देना चाहिये। इतना प्रायश्चित्त करलेनेपर वह शुद्ध और पंक्तियोग्य होता है। सो ही लिखा है—

मालिकादिकसंसर्गं कुर्वन्ति योषितादयः। प्रोषधा पंच चैकान्नं दश पात्राणि विंशतिः ॥

इसी प्रकार वृद्धि सूतकमें (किसी बालकके जन्म होनेसे जो सूतक लगता है उसमें) अथवा मृत्यु सूतकमें (किसीके मरनेपर जो सूतक लगता है उसमें) पांच उपवास, ग्यारह एकाशन, पात्रदान और केशर चन्दन आदि द्रव्योंसे भगवानकी पूजन करनी चाहिये। इतना प्रायश्चित्त कर लेनेपर उसका वह सूतक दूर होता है। तथा वह शुद्ध होकर पंक्तियोग्य होता है। सो ही लिखा है—

सूतके जन्ममृत्योश्च प्रोषधाः पंचशक्तितः। एकभुक्ता दशैकाद्याः पात्रदानं च चंदनम् ॥

जिस पुरुषने किसी वस्तुका त्याग कर रक्खा है वह यदि विना जाने खानेमें आ जाय तो एक उपवास, दो एकाशन, और अपनी शक्तिके अनुसार पुष्पाक्षतादिकसे भगवानकी पूजा करनी चाहिये। तब वह त्यागभंगका प्रायश्चित्त होता है। सो ही लिखा है।

(यहां एक श्लोककी छूट है)

इसीप्रकार विना जाने यदि मुखमें हड्डीका टुकडा आ जाय तो तीन उपवास, चार एकाशन और अपनी शक्तिके अनुसार केशर चंदन अक्षत आदि पूजाकी सामग्री मंदिरमें देनी चाहिये तब उसकी शुद्धि होती है। सो ही लिखा है—

आयाते मुखेऽस्थिखंडे चोपवासास्त्रयो मताः। एकभुक्ताश्च चत्वारो गंधाक्षताः स्वशक्तितः ॥

यदि अपने हाथसे हड्डीका स्पर्श हो जाय अथवा अपने शरीरसे हड्डीका स्पर्श हो जाय तो स्नान कर दोसौ बार णमोकारमंत्रका जप करना चाहिये। यह उसका प्रायश्चित्त है। यथा---

स्पर्शितेऽस्थिकरे स्वांगे स्नात्वा जाप्यशतद्वयम्। अस्थि यथा तथा चर्म केशश्लेष्ममलादिकम् ॥

जिसप्रकार हड्डीके स्पर्शका प्रायश्चित्त बतलाया है वही प्रायश्चित्त गीले चमडेके स्पर्श करनेका, केश श्लेष्म (कफ खकार) नाकका मल आदिका हाथसे वा शरीरसे स्पर्श हो जाने पर लेना चाहिये।

अपनी स्त्रीके गर्भपातसे उत्पन्न होनेवाले पापके होनेपर बारह उपवास, पचास एकाशन और अपनी शक्तिके अनुसार पुष्प अक्षतादिक जिनालयमें देना चाहिये तब शुद्धि होती है। सो ही लिखा है—

गर्भस्य पातने पापे प्रोषधा द्वादशाः स्मृताः। एकभक्ताश्च पंचाशत्पुष्पाक्षतादिशक्तितः॥

यदि अज्ञानसे वा प्रमादसे दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय आदि विकलत्रय जीवोंकी हिंसा हो जाय तो दोइन्द्रिय जीवकी हिंसा होनेपर दो उपवास करने चाहिये और णमोकारमंत्रकी दो मालाएं जपनी चाहिये। तेइन्द्रिय जीवकी हिंसा होनेपर तीन उपवास और णमोकारमंत्रकी तीन मालाओंका जप करना चाहिये तथा चौइन्द्रिय जीवकी हिंसा होजाने पर चार उपवास और णमोकार मंत्रकी चार मालाओंका जप करना चाहिये। तब उसकी शुद्धि होती है। सो ही लिखा है—

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा विकलत्रयघातके। प्रोषधा द्वित्रिचत्वारो जपमालाः तथैव च॥

यदि घास भुस खानेवाले पंचेन्द्रिय पशुका घात हो जाय तो अट्ठाईस उपवास, पात्रदान, गौदान और अपनी शक्तिके अनुसार पुष्प अक्षत आदि पूजाके द्रव्य जिनालयमें दान देना चाहिये तब उसकी शुद्धि होती है तथा तभी वह पंक्तिके योग्य होता है। सो ही लिखा है—

घातिते तृणभुक्जीवे प्रोषधा अष्टविंशतिः। पात्रदानं च गोदानं पुष्पाक्षतादि स्वशक्तितः॥

यदि जलचर, थलचर वा किसी पक्षीका किसीसे घात हो जाय अथवा चूहा बिल्ली कुत्ता आदि दांतसे हत्या करनेवाले जीवका किसीसे घात हो जाय तो उस पुरुषको बारह उपवास सोलह एकाशन, सोलह अभिषेक, गौदान, पात्रदान करना चाहिये तथा अपनी शक्तिके अनुसार गुरु जो बतलावें सो करना चाहिये तब वह शुद्ध और पंक्तियोग्य होता है। सो ही लिखा है—

जलस्थलचराणां तु पक्षिणां घातकः पुमान्। गृहे मूषकमार्जारश्वादीनां दन्तदोषिणाम्॥
प्रोषधा द्वादशकान्नाभिषेकाश्चानुषोडश। गोदानं पात्रदानं तु यथाशक्ति गुरोर्मुखात्॥

यदि किसीसे गाय घोडा भैंस बकरी आदि जीवोंकी हिंसा हो जाय तो उस पातकीको तेईस उपवास, एकसौ एक एकाशन, तथा अपनी शक्तिके अनुसार पात्रदान तीर्थयात्रा आदि करना चाहिये। तब वह शुद्ध और पंक्तिके योग्य होता है सो ही लिखा है—

गोऽश्वमहिषीछागीनां वधकर्ता त्रिविंशतिः । प्रोषधा एकभक्तानां शतं दानं तु शक्तितः ॥

यदि किसीसे किसी मनुष्यकी हिंसा हो जाय तो उसको तीनसौ उपवास, गोदान, पात्रदान आदि पहले कही हुई सब विधि और तीर्थयात्रा आदि करनी चाहिये तब वह शुद्ध और पंक्तिके योग्य होता है। सो ही लिखा है—

मनुष्यघातिनः प्रोक्ता उपवासाः शतत्रयम्। गोदानं पात्रदानं तु तीर्थयात्रा स्वशक्तितः ॥

यदि कोई पुरुष किसी पुरुषके कारणसे विष खाकर वा और किसी तरह मर जाय अथवा अन्न जलका त्याग कर मर जाय अथवा पतिके मरने पर कोई विधवा स्त्री अग्निमें प्रवेश कर मर जाय अथवा खरीद विक्री आदि व्यापारके संबंधसे किसी मनुष्यका घात हो जाय अथवा घरमें अग्नि लगने पर कोई मनुष्य वा पशु मर जाय, अपना कूआ खोदनेमें कोई मर जाय, अपने तलावमें पड कर कोई मर जाय, जो अपना सेवक द्रव्य कमाने गया हो और मार्गमें चोर आदिके द्वारा वह मारा जाय अथवा अपने मकानकी दीवाल पड जानेसे कोई मर जाय तो जिस मनुष्यको कारण मानकर वह मरा है अथवा जिसके कूआ तलाव दीवाल आदिसे वह मरा है उसको पांच उपवास करने चाहिये बावन एकाशन करना चाहिये, गौदान, संघपूजा, दयादान, अभिषेक, पुष्प अक्षत आदि पूजा द्रव्यको जिनभंडारमें देना और णमोकारमंत्रका जप यथायोग्य रीतिसे करना चाहिये। तब वह शुद्ध और पंक्तियोग्य होता है। सो ही लिखा है—

यस्योपरि मृतो जीवो विषादिभक्षणादिना । क्षुधादिनाथ वा भृत्ये गृहदाहे नरः पशुः ॥
कूपादिखनने वापि स्वकीयेत्र तडागके । स्वद्रव्योपार्जिते भृत्ये मार्गे चौरेण मारिते ॥
कुड्यादिपतने चैव रंडा वह्नौ प्रवेशने । जीवघातो मनुष्येण संसर्गे क्रयविक्रये ॥
प्रोषधाः पंच गोदानमेकभक्ताद्विपंचाशत् । संघपूजादयादानं पुष्पं चैव जपादिकम् ॥

यदि अपने पानी आदिके मिट्टीके वर्तन अपनी जातिके बिना अन्य जातिके मनुष्यसे स्पर्श हो जांय तो उतार देना चाहिये। यदि तांबे पीतल लोहेके वर्तन दूसरी जातिवालेसे छू जांय तो राखसे (भस्मसे) मांज कर शुद्ध कर लेना चाहिये। यदि कांसेके वर्तन अन्य जातिवालेसे छू जांय तो अग्निसे गर्म कर शुद्ध करना चाहिये। काठके वर्तन कठवा कठोती कुंडी आदि हों और चौकामें

काम आ जाने पर दूसरोंके द्वारा छूये जांय तो वे शुद्ध नहीं हो सकते। यदि कांसे तांबे वा लोहेके वर्तनमें अपनी जातिके सिवाय अन्य जातिवाला भोजन कर ले तो अग्निसे शुद्ध कर लेना चाहिये। जिस वर्तनमें मद्य, मांस, विष्ठा, मूत्र, निष्ठीवन (उलटी वा वमन) खकार कफ मधु आदि अपवित्र पदार्थोंका संसर्ग हो जाय तो उस पात्रको उत्तम श्रावक त्याग कर देते हैं। फिर काममें नहीं लेते। चलनी, वस्त्रसे मढा सूप, मूसल, चक्की आदि रसोईके उपकरण अपनी जातिके विना अन्य जातिके लोगोंसे स्पर्श हो जाने पर विना धोये शुद्ध नहीं होते। उनको धो कर शुद्ध कर लेना चाहिये।

यदि स्वप्नमें किसी अन्नादिक वस्तुका भक्षण किया जाय तो उस वस्तुका तीन दिन तकके लिये त्याग कर देना चाहिये। यदि किसीने स्वप्नमें मद्य मांसका भक्षण किया हो तो दो उपवास करना चाहिये। यदि नींदमें परवश होकर ब्रह्मचर्यका भंग हो जाय तो एक हजार णमोकार मंत्रका जप करना चाहिये और तीन एकाशन करना चाहिये। यदि स्वप्नमें अपनी माता भगिनी पुत्री आदिका संसर्ग हो जाय तो दो उपवास और एक हजार मंत्रका जप करना चाहिये।

यदि कोई मिथ्यादृष्टीके घर एक रात्रि रहकर भोजन कर ले अथवा एक वार शूद्रके घर भोजन कर ले तो उसको पांच उपवास और दो हजार णमोकार मंत्रका जप करना चाहिये। यदि शूद्रके घर अपनी रसोई भी बना कर खावे तो भी दोष ही है। इसप्रकार यह थोडीसी प्रायश्चित्तकी विधि बतलाई है। विशेष जाननेकी इच्छा हो तो अन्य अनेक जैनशास्त्रोंसे जान लेना चाहिये। सो ही लिखा है—

स्वतोन्यैः स्पर्शितं भांडं मृन्मयं चेत्परित्यजेत्। ताम्रारलोहभांडं चेच्छुध्यते शुद्धभस्मना ॥ १ ॥
वह्निना कांश्यभांडं चेत्काष्ठभांडं न शुद्धयति। कांश्यं ताम्रं च लोहं चेदन्यभुक्तेग्निना वरम् ॥ २ ॥
यद्भाजने सुरामांसं विण्मूत्रश्लेष्ममाक्षिकः। क्षिप्तं ग्राह्यं न तद्भांडं तत्त्याज्यं श्रावकोत्तमैः ॥ ३ ॥
चालिनीवस्त्रसूर्पं च मुशलं घट्टियंत्रकम्। स्वतोन्यैः स्पर्शितं शुद्धं जायते क्षालनात्परम् ॥ ४ ॥
स्वप्ने तु येन यद्भुक्तं तत्त्याज्यं दिवसत्रयम्। मद्यं मांसं यदा भुक्तं तदोपवासकद्वयम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मचर्यस्य भंगे तु निद्रायां परवश्यतः। सहस्रैकं जपेज्जापमेकभुक्तं त्रयं भवेत् ॥ ६ ॥
मात्रा तथा भगिन्या च समक्षे योग आगते। उपवासद्वये स्वप्ने सहस्रैकं जपोत्तमम् ॥ ७ ॥

मिथ्यादृष्टिगृहे रात्रौ भुक्तं वा शूद्रसद्मनि। तदोपवासाः पंच स्युः जाप्यं तु द्विसहस्रकम्॥ ८॥
इत्येवमल्पशः प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः स्फुटम्। अन्यो विस्तारतो ज्ञेयः शास्त्रेष्वन्येषु भूरिषु॥ ९॥

इसप्रकार प्रायश्चित्तका विधान त्रिवर्णाचारके नौवें अध्यायमें लिखा है—

कदाचित् यहांपर कोई यह प्रश्न करे कि इस प्रायश्चित्तकी विधिमें गौदान तथा ब्राह्मणको दान देना लिखा है सो यह कहना वा करना तो जिनधर्मसे वाह्य है ऐसा तो अन्यमती कहते हैं इसलिये ऐसा श्रद्धान करना खोटा है। तो इसका समाधान यह है कि जैनशास्त्रोंमें चार वर्ण बतलाये हैं। तीन वर्ण तो अनादिसे चले आ रहे हैं तथा चौथा ब्राह्मण वर्ण महाराज भरतने स्थापन किया है। जो क्षत्रियवंशमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टी, उपासकाचारके साधक, दानके पात्र, ब्रह्मज्ञानके प्रकाशक बारह तप और पांचों अणुव्रतादिकोंको पालन करनेवाले थे उनको ब्राह्मण वर्ण स्थापन किया था। सो ही लिखा है—

ब्रह्मज्ञानविकाशकाः तपोव्रतयुतास्ते ब्राह्मणाः।

ऐसे ब्राह्मण सम्यग्दर्शन आदि अनेक गुणोंको पालन करते हैं और रत्नत्रयके चिन्ह स्वरूप यज्ञोपवीतको धारण करते हैं। ऐसे धर्मात्मा ब्राह्मणोंको दान देना लिखा है। यदि ब्राह्मण मिथ्यादृष्टी, पाखंडी, विषयभोगके लंपटी, दुराचारी, हिंसादिक महा पापके धारी महारंभी जैनधर्मके निंदक द्रोही अभिमानी और दूसरोंको ठगनेवाले ऐसे अपात्र हों तो उनको दानादिक कभी नहीं देना चाहिये। ऐसे ब्राह्मणोंको दानका फल जैनशास्त्रोंमें खोटा लिखा है। ऐसे ब्राह्मणोंको कभी दान नहीं देना चाहिये।

प्रश्न—यदि वर्तमानसमयमें सम्यग्दृष्टी ब्राह्मण न मिलें तो क्या करना चाहिये तो इसका उत्तर यह है कि जैनशास्त्रोंमें और प्रकारसे भी गोदान करना लिखा है। भगवान अरहंतदेवके अभिषेक करनेके लिये श्रीजिनमंदिरमें गोदान देना चाहिये। इसलिये यदि सम्यग्दृष्टी ब्राह्मण न मिले तो जिनमंदिरमें गोदान करना चाहिये।

प्रश्न—जिनमंदिरमें गोदान करना कहां लिखा है तथा इसकी प्रवृत्ति भी आज कल कहां है। तो इसका उत्तर यह है कि यह प्रकरण त्रिवर्णाचारमें दश दानका वर्णन करते समय लिखा है वह इसप्रकार है—पहले तो उत्तरपुराणमें लिखा है। शास्त्रदान अभयदान और अन्नदान ये तीनों दान बुद्धिमानोंको देने चाहिये। ये तीनोंदान अनेक प्रकारके फल देने वाले हैं। सो ही उत्तरपुराणमें लिखा है—

शास्त्राभयान्नदानानि प्रोक्तानि जिनशासने। पूर्वंपूर्वं बहुपात्रफलानीमानि धीमता।

और देखो दशवें तीर्थंकर श्रीशीतलनाथके अंतरालमें एक भूतिशर्मा नामके ब्राह्मणके एक मुण्डशालायन नामका पुत्र हुआ था। उसने बहुत विद्या पढी थी परंतु मिथ्यात्वकर्मके तीव्र उदयसे वह जिनधर्मका तीव्र द्रोही था उसने जिनधर्मके विरुद्ध बहुतसे शास्त्र बनाये और लोभके वशीभूत होकर अपनी आजीविकाके लिये "ब्राह्मणोंको कन्या आदि दश प्रकारके दान देना चाहिये" ऐसा वर्णन किया और उसमें बहुत पुण्य बतलाया। कन्या, हाथी, सुवर्ण घोडा, कपिला (गौ) दासी, तिल, रथ, भूमि, घर ये दश प्रकारके दान ब्राह्मणोंको देने लिये बतलाये। इसप्रकार उसने महा हिंसाकी प्रवृत्तिकरनेवाले कुत्सित दानोंका स्थापन किया। सो ही लिखा है–

कन्याहस्तिसुवर्णवाजिकपिलादासीतिलाः स्यन्दनं,
क्ष्मागेहप्रतिबद्धमंत्रदशधा दानं दरिद्रेशिनम्॥
तीर्थान्ते जिनशीतलस्य सुतरामाविश्चकारः स्वयं
लुब्धो वस्तुषु भूतिशर्मतनयोऽसौ मुण्डशालायनः॥

ऐसे पुरुषोंका जो दान बतलाया है वह हिंसादिक महापापोंका बढानेवाला है। जैनधर्मको धारण करनेवाले धर्मात्माओंको कभी ऐसा दान नहीं देना चाहिये।

परंतु इन्हीं दानोंका वर्णन जैनशास्त्रोंमें भी है। किंतु उनके देनेका अभिप्राय जुदा है। जैनधर्ममें तीन प्रकारके पात्र बतलाये हैं। उत्तम पात्र मुनि हैं, मध्यम पात्र व्रत प्रतिमाको आदि लेकर ग्यारह प्रतिमा तकको धारण करनेवाले श्रावक हैं। तथा जघन्य-पात्र ब्राह्मणादि वर्णोंमें उत्पन्न हुये सम्यग्दृष्टी मूलगुणादिकोंको धारण करनेवाले सप्त व्यसनादिक कितने ही पापोंके त्यागी ऐसे व्रती गृहस्थ वा गृहस्थाचार्य हैं। इनमेंसे जघन्य पात्रोंको योग्यायोग्य विचार कर ऊपर लिखे दश प्रकारके दान देने चाहिये तथा मध्यम और उत्तम पात्रोंको आहार औषध आहार और बसतिका इन चार प्रकारके दानोंमेंसे यथायोग्य रीतिसे कोईसा भी दान देना चाहिये। सो ही लिखा है—

विचार्य युक्तितो देयं दानं क्षेत्रादिसंभवम्। योग्यायोग्यसुपात्राय जघन्याय महात्मभिः ॥ १ ॥
मध्यमोत्तमयोर्लोके पात्रयोर्न प्रयोजनं। क्षेत्रादिना ततस्ताभ्यां देयं पूर्वं चतुर्विधम् ॥ २ ॥

इससे सिद्ध होता है कि जघन्यपात्रको भूमि आदिका दान देना चाहिये।

इसके सिवाय भगवान जिनेन्द्रदेवका मंदिर बनवाना, प्रतिमाजी बनवा कर तथा उनकी प्रतिष्ठा कराकर उस मंदिरमें विराजमान करना उस प्रतिष्ठामें जो श्रावक श्राविका संघ आया हो उसको भोजनदान देना, तथा सुवर्ण दान देकर सबको तृप्त करना, उस मूर्तिकी पूजा सदा काल होती रहे इसकेलिये भूमि, क्षेत्र और गांव आदिका दान देना, तथा पंचामृतसे भगवान अरहंत देवका नित्य अभिषेक होता रहे इसके लिये जिनमंदिरमें गौदान करना प्रत्येक गृहस्थका कर्तव्य है। मंदिरमें गौदान देनेसे दूध दही घी आदि पंचामृतसे भगवान अरहंतदेवका नित्य अभिषेक होता रहता है जिससे सदाकाल टिकनेवाला महा पुण्य होता है। ऐसा महा मुनियोंने कहा है। इसी प्रकार जो धर्मात्मा श्रावक अपनी जातिमें उत्पन्न हुआ है जो जाति कुलसे शुद्ध है, ऐसे निर्धन धर्मात्माके पुत्रको भी धर्मकी स्थिति अच्छी तरह पालन करनेके लिए अपनी कन्या देनी चाहिए। सो ही लिखा है—

चैत्यालयं जिनेन्द्रस्य निर्माप्य प्रतिमां तथा। प्रतिष्ठां कारयेद्धीमान् हेमैः संघं तु तर्पयेत् ॥ १ ॥
पूजायै तस्य सत्क्षेत्र ग्रामादिकं प्रदीयते। अभिषेकाय गोदानं कीर्तितं मुनिभिस्तथा ॥ २ ॥
शुद्धश्रावकपुत्राय धर्मिष्ठाय दरिद्रिणे। कन्यादानं प्रदातव्यं धर्मसंस्थितिहेतवे ॥ ३ ॥

यदि घरमें भार्या न हो तो उसका सदाचार अच्छी तरह पालन नहीं हो सकता तथा घरमें भार्याके होनेसे ही पात्रदान हो सकता है और पात्रदान, जिनपूजन आदि धर्मके कार्य आगामी कालमें परंपरा तक सदा होते रहें, इसकेलिये गृहस्थोंको स्त्रीकी परम आवश्यकता है। विवाहका मुख्य उद्देश अपने समान धर्मात्मा पुत्रको उत्पन्न करना है जिससे कि धर्मकी संतति बराबर चलती रहे। इसके लिये अपनी जातिके धर्मात्मा श्रावकको कन्यादान देना चाहिये। सो ही लिखा है—

विना भार्यां सदाचारो न भवेद् गृहमेधिनाम्। दानपूजादिकं कार्यं प्रगे सन्तति सम्भवः ॥

यदि किसी अशुभ कर्मके उदयसे कोई धर्मात्मा श्रावक दरिद्री हो जाय और दरिद्र हो जानेके कारण उसका श्रावकाचार नष्ट होता हो तो उसके धर्मावस्थाको स्थिर करनेके लिये उसे सुवर्ण दान देना बतलाया है। सो ही लिखा है—

श्रावकाचारनिष्ठोपि दरिद्रः कर्मयोगतः। सुवर्णदानमारुयातं तस्मै ह्याचारहेतवे ॥ १ ॥

यदि कोई धर्मात्मा मनुष्य निराधार हो उसके रहनेका ठिकाना न हो तथा निर्धन हो और घर वा धनके विना जिसकी निश्चलता न हो और पूजा दान आदि श्रावक धर्ममें विघ्न आता हो ऐसे घररहित श्रावकको धर्मकी रक्षाके लिये और पूजा दानकी दृढताके लिये उसके रहने योग्य घरका देना वास्तुदान कहलाता है वास्तुदान देनेसे उसके परिणाम निश्चल और निर्मल रहते हैं और धर्मसाधन बन सकता है सो ही लिखा है—

निराधाराय निःस्वाय श्रावकाचाररक्षिणे। पूजादानादिकं कर्तुं गृहदानं प्रकीर्तितम् ॥

यदि कोई धर्मात्मा पुरुष अपने पैरोंसे तीर्थयात्रा आदि धर्मकार्योंके लिये जानेमें असमर्थ हो और वह पूजा मंत्रादिक गुणोंसे सुशोभित हो जिनधर्मी सुपात्र हो उसको तीर्थयात्रा आदि धर्मसाधनके लिये गाडी घोडा आदि सवारी देना जिसके कि उसकी तीर्थयात्रा आदि धर्मसाधन अच्छी तरह होजाय अथवा भगवानको विराजमान करनेके लिये और प्रभावना अंगकी सिद्धिके लिये जिनालयमें अमूल्य रथ बनवाकर देना गृहस्थका कर्तव्य है। सो ही लिखा है—

पद्भ्यां गन्तुमशक्ताय पूजामंत्रविधायिने। तीर्थक्षेत्रसुपात्राय रथाश्वदानमुच्यते ॥

तथा भट्टादिक आदि जिनाश्रमोंमें रहनेवाले प्रभाव बढानेवाले धर्मात्मा हैं उनके लिये धर्मकी प्रभावना प्रगट करने और अपनी कीर्ति बढानेके लिये हाथी आदिका दान देना बतलाया है। ऐसे कीर्तिपात्रोंको हाथीका दान देना भी निष्फल नहीं है। सो ही लिखा है—

भट्टादिकाय जैनाय कीर्तिपात्राय कीर्तये। हस्तिदानं परिप्रोक्तं प्रभावनांगहेतवे ॥

इसी प्रकार जो मार्ग निकट और कठिन हो और जिसमें कूआ तलाव बावड़ी आदि कोई जलाशय न हो ऐसे मार्गमें चलने-

१ इस समय श्रीपूज्य सम्मेदाचल पर्वतकी तलहटी मधुवनके जिनालयमें किसीका दान दिया हुआ हाथी है। जाडेके दिनोंमें जब यात्री लोग तीर्थयात्रा करने आते हैं और उनमेंसे जो वहांपर रथोत्सव करते हैं उस रथोत्सवकी शोभामें वह हाथी काम आता है। कभी कभी वह हाथी जैनधर्म-ध्वजा फहराता हुआ आगे चलता है और कभी कभी भव्यजनोंको सवार कराकर उनकी शोभा बढाता है। इस प्रकार वह धर्मकी प्रभावना करता है। इससे भी सिद्ध होता है कि धर्मकी प्रभावनाके लिये हाथी देना भी सफल है। तथा जिनालय आदिमें हाथी देनेकी रीति प्राचीन है।

वाले लोगोंकी प्यास व दाह बुझानेके लिये शुद्ध छना हुआ शीतल मीठे जलकी प्याऊ बनवा देना चाहिये। इसको प्रपाशालाका दान कहते है। सो ही लिखा है—

दुर्घटे विघटे मार्गे जलाशयविवार्जिते। प्रपास्थानं परं कुर्यात् शोधितेन सुवारिणा ॥

इसीप्रकार अपनी शक्तिके अनुसार प्रत्येक गांवमें अन्नक्षेत्र बनवाना चाहिये जहांसे लोगोंको अन्न मिलता रहे तथा शीतकालमें शीतकी बाधा दूर करनेके लिये सुपात्रोंको रुईकी सौड, बिछौना, अंगरखा, टोपा आदि वस्त्र देना चाहिये। सो ही लिखा है—

अन्नक्षेत्रं यथाशक्ति प्रतिग्रामं समर्पयेत्। शैत्यकाले सुपात्राय वस्त्रदानं मतूलकम् ॥

जिन लोगोंके साथ अपने अन्नपानीका व्यवहार है ऐसे अपनी जातिके लोगोंका व्यवहार चलानेके लिये और उनको अन्न जल भरनेका सुभीता हो इसके लिये धर्मात्मा सुपात्रोंको कांसे आदिके थाल लोटा आदि वर्तन देना चाहिये। महाव्रती मुनियोंके लिये पीछी कमंडलु देना चाहिये। जिन मंदिरोंमें सोने चांदी तांबे कांसे आदि धातुओंके बने हुए थाल भृंगार आदि पूजाके उपकरण देना चाहिए और पूजा मत्र आदिकी विधिको जाननेवाले जैन शास्त्रोंके ज्ञाता विद्वानोंको अच्छे भूषण देना चाहिये। सो ही लिखा है।

जलान्नव्यवहाराय पात्राय कांश्यभाजनम्। महाव्रतियतीन्द्राय पिच्छं चापि कमंडलुम् ॥
जिनगेहे प्रदेयानि पूजोपकरणानि वै। पूजामंत्रविधिज्ञाय पण्डिताय सुभूषणम् ॥

इस प्रकार दानके अनेक भेद हैं सो विवेकी पुरुषोंको यथायोग्य अपनी शक्तिके अनुसार देना चाहिये। इनके सिवाय और भी प्रकारान्तरसे गृहस्थोंको दान देना बतलाया है। यथा—इस संसारमें उत्तम पात्र निर्ग्रंथ महामुनि हैं मध्यम पात्र ग्यारह प्रतिमाओंको धारण करनेवाले श्रावक हैं और जघन्य पात्र अव्रत सम्यग्दृष्टी श्रावक हैं। ऐसे मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका आदि चारो प्रकारके संघको आहारदान, अभयदान, औषधदान, शास्त्रदान, वसतिकादान, वस्त्रदान आदि यथायोग्य देना चाहिये। तथा स्त्री आदि सांसारिक सुखमें रहनेवाले धर्मात्मा पात्रोंको श्रावक धर्मकी सिद्धिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार शुभ वस्त्र वा आभरण देना चाहिये। जो देने योग्य होकर भी नहीं देता और उस धर्मात्माके वचनको नहीं मानता तो फिर उसके घरमें पूजा दान आदि धर्म कार्योंका लोप हो जाता है। सो ही लिखा है—

भोगपात्रं तु दारादिसंसारसुखदायकं । तस्य देयं सुभूषादि स्वशक्त्या धर्महेतवे ॥
यदि न दीयते तस्मै करोति न वचस्तदा । पूजा दानादिकं नैव कार्यं हि घटते गृहे ॥

संसारमें अपनी कीर्तिको बढानेवाले भाट आदि याचक जन हैं इसलिये यश बढाने और सुखी होनेके लिये ऐसे भाट आदि याचक जनोंको भी बहुतसा धन देना चाहिये। क्योंकि संसारमें यदि धनी लोगोंकी कीर्ति न हो तो लोकापवाद होनेके कारण उनका जन्म ही व्यर्थ हो जाता है। अपनी निंदाके सुननेसे मानसिक दुख होता है मानसिक दुःखसे आर्तध्यान होता है और आर्तध्यानसे पापबंध होता है। इसलिये अपनी यशःकीर्तिके लिये समयानुसार और योग्यतानुसार भाट आदिको भी धन देना चाहिये। सो ही लिखा है—

भट्टादिकं यशस्पात्रं लोके कीर्तिप्रवर्तकम् । देयं तस्मै धनं भूरि यशसे च सुखाय च ॥ १ ॥
विना कीर्त्या वृथा जन्म मनो दुःखप्रदायकम् । मनोदुःखे भवेदार्तः पापबंधस्तथार्ततः ॥ २ ॥

दासी दास नौकर चाकर आदि जो सेवाके पात्र हैं उनको यथेष्ट (आवश्यकतानुसार) अन्न वस्त्र देना चाहिये। तथा दया पालन करनेके लिये समस्त जीवोंको अपनी शक्तिके अनुसार यथोचित दान देना चाहिये। इसीप्रकार गाय वछड़ा भैंस आदि भूखे प्यासे जानवरोंको घास भुस और छना पानी आदि देना चाहिये। सो ही लिखा है—

सेवापात्रं भवेद्दासी दासभृत्यादिकं ततः । तस्मै देयं पटाद्यन्नं यथेष्टं च यथोचितम् ॥ १ ॥
दयाहेतोस्तु सर्वेषां देयं दानं स्वशक्तितः । गोवत्समहिषीनां च जलं च तृणसंचयम् ॥ २

इसप्रकार दानका स्वरूप अनेक प्रकार है और इन सबका फल जुदा जुदा है सो ही लिखा है—

पात्रे धर्मनिबंधनं तदितरे श्रेष्ठं दयाख्यापकं, मित्रे प्रीतिविवर्द्धनं रिपुजने वैरापहारक्षमम् ॥
भृत्ये भक्तिभरावहं नरपतौ सन्मानसंपादकं, भट्टादौ तु यशस्करं वितरणं तत्काप्यहो निष्फलम् ॥

अर्थात् अपने हाथसे जो पात्रोंको दान दिया जाता है वह स्वर्ग मोक्षको देनेवाला और धर्मकी वृद्धि करनेवाला है तथा उत्तम मध्यम जघन्य तीनों पात्रोंके सिवाय अन्य जीवोंको दयाके लिये दिया हुआ दान उत्तम ही है। देखो मित्रको दिया हुआ दान प्रेम

बढाता है। शत्रुको दिया हुआ दान वैरको दूर करता है। दासी दास नौकर चाकर आदिको दिया हुआ दान भक्ति बढाता है। राजाको दिया हुआ दान अपना सन्मान बढाता है। तथा भाट राव आदि याचकोंको दिया हुआ दान अपनी कीर्तिको बढाता है। इससे सिद्ध होता है कि हाथसे दिया हुआ दान कभी निष्फल नहीं होता। दानका ऐसा ही माहात्म्य है। इसलिये प्रायश्चित्तोंमें जो गोदान लिखा है सो वह भी समयानुसार यथायोग्य पात्रको देना चाहिये। सर्वथा एकांत पक्षको पकड़कर हठ नहीं करना चाहिये। जैनमत स्याद्वाद रूप है।

इसके सिवाय जैनधर्ममें अनेक शास्त्र हैं सो किसी एक शास्त्रको पकड़कर हट नहीं करना चाहिये। "सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो वलवान् भवेत्।" अर्थात् सामान्य शास्त्रसे विशेष शास्त्र वलवान् होते हैं। यह सब न्याय और नीति समझ लेना चाहिये।

गृहस्थोंको यह सब दान महा पापोंको दूर करनेके लिये तथा अपनी जातिमें धर्मकी वृद्धि करनेके लिये और अपने प्रायश्चित्त-की शुद्धिके लिये लेना चाहिये। यह सब लोकाचरण है जिन लोकाचरणोंमें सम्यग्दृष्टी व्रती श्रावकको सम्यग्दर्शन और व्रतोंमें दोष न लगे ऐसे लोकाचरण करनेमें कोई हानि नहीं है। सो ही यशस्तिलक चंपूमें लिखा है। और चर्चासमाधानमें भी लिखा है। यथा—

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः। यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्॥

यह विषय और भी अनेक शास्त्रोंमें लिखा है—

श्री आदिनाथके पुत्र महाराज भरतेश्वरने एक वार ऐसा विचार किया था कि दान किसको देना चाहिये। उसी समय यह निश्चय किया था कि जो अहिंसा आदि अणुव्रतोंमें धीर हों, जो गृहस्थ धर्म धारण करनेवालोंमें अग्रेसर हों ऐसे लोगोंको हाथी घोडा रथ चाकर वाहन आदि मनोवांछित पदार्थ तथा अन्न वस्त्र घर गौ आदि दान देकर उनकी आशा पूर्ण करनी चाहिये। ऐसा श्री आदिपुराणके अडतीसवें पर्वमें आठवें श्लोकमें वर्णन किया है। यथा—

ये च व्रतधरा धीरा धौरेया गृहमेधिनाम्। तर्पणीया हि तेऽस्माभिरीप्सितैः वस्तुवाहनैः॥

यद्यपि इस श्लोकमें गो शब्द नहीं है तथापि धातूनां अनेकार्थत्वात्, अवयवानां अनेकार्थत्वात्। अर्थात् धातुओंके अनेक

अर्थ होते हैं तथा अवयवोंसे अनेक कार्य बनते हैं। इस प्रसंगको देख लेना चाहिये। प्रकरण दानका है इसलिये ईप्सित वा इष्ट पदार्थोंमें गौ भी आती है।

इसके सिवाय इसी अडतीसवें पर्वमें पात्रदान दयादान समदान अन्वयदान ऐसे दानके चार भेद लिखे हैं उनमेंसे समदत्ति-दानमें ऐसा लिखा है कि जिनकी आत्मा समान है तथा क्रिया मंत्र व्रत आदि भी जिनके समान हैं ऐसे निस्तारक वा गृहस्था-चार्योंको पृथ्वी, सुवर्ण आदि दान देना चाहिये। जो व्रत क्रिया मंत्र आदिसे समान हैं ऐसे श्रावकोंको धर्मकी स्थिरताके लिये पृथ्वी सोना आदि दान देना चाहिये। यथा—

समानायात्मनान्यस्मै क्रियामंत्रव्रतादिभिः। निस्तारकोत्तमायेह भूहेमाद्यतिसर्जनम्॥ ३८॥

श्री पद्मनंदि मुनिने अपने पंचविंशतिका काव्यमें दूसरे दान प्रकरणमें लिखा है कि अभयदान औषधिदान आहारदान शास्त्रदान ये चार दान हैं सो ये चारों ही दान अलग अलग महाफलके देनेवाले हैं। सो ही लिखा है—

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्व्याधो भेषजैर्भवेत्। अन्नदानात्सुखी नित्यं अभयोऽभयदानतः॥

अर्थात् ज्ञानदानसे ज्ञानी होता है। औषध दानसे नीरोग रहता है। अन्नदानसे सदा सुखी रहता है और अभयदानसे सदा निर्भय रहता है इन चार दानोंके सिवाय अन्य मतियोंके द्वारा कल्पना किये गये ऐसे गोदान सुवर्णदान भूमि रथ कन्या आदि पहले कहे हुए जो दश दान हैं वे सब दान पापके कारण हैं। सो ही पंचविंशतिकामें लिखा है—

चत्वारि यान्यभयभेषजभुक्तिशास्त्रदानानि तानि कथितानि महाफलानि॥
नान्यानि गोकनकभूमिरथांगनादि दानानि निश्चितमवद्यकराणि यस्मात्॥ ५०॥

इससे आगे उसी पंचविंशतिकामें लिखा है भूमि आदिका दान जिन मंदिरमें देना चाहिये जिससे नवीन मंदिर बन सके तथा सुवर्ण गौ आदिभी जिनमंदिरमें देना चाहिये जिससे दीर्घ कालतक वह मंदिर बना रहे जिनशासनकी प्रवृत्ति बनी रहे और सदा पूजा अभिषेक आदि धर्म कार्य होते रहें। सो ही लिखा है।

यद्दीयते जिनगृहाय धरादि किंचित् तत्तत्र संस्कृतिनिमित्तमिह प्ररूढम्।
आस्ते ततस्तदतिदीर्घतरं हि कालं जैनं च शासनमतः कृतमस्ति दातुः॥

यद्यपि इस काव्यमें गौ दानका स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि आदि शब्दसे कहा है।

कदाचित् यहांपर कोई यह कहे कि यहां काव्यमें गौ दानका वर्णन आदि शब्दसे कहा है सो इससे हमारा संदेह दूर नहीं होता तो इसका उत्तर यह है कि देखो —जिस समय सीताजीकी बाई आंख फडकी थी तब सीताजीने अपशकुन समझकर भंडारीको बुलाया था और उस होनहार विघ्नकी शांतिके लिये तथा अपने सुखकी इच्छासे उस भंडारीसे कहा था कि हे भंडारके स्वामी! हमारे घरसे पात्रोंके लिये चारों प्रकारके दान दो। हमारे देशमें सब जगके जीवोंकी रक्षा करो कराओ। हमारे देशमें किसीके द्वारा भी जीवघात न होने पावे। इसीप्रकार हमारे देशमें अनेक ऊंचे शिखरोंसे सुशोभित जिनमंदिर कराओ। तथा भगवानका नित्य अभिषेक होनेके लिये बहुतसी गायें जिनमंदिरोंमें दो जिनपूजा कराओ और जिनमंदिरोंमें भगवानकी नाटयशालायें बनवाओ। इसप्रकार सीताजीने आज्ञा की। सीताजीकी यह आज्ञा सुनकर भंडारीने वैमाही कर देनेका सब प्रबंध करदिया अर्थात् सीताजीके कहे हुये सब कार्य कर दिये ऐसा स्पष्ट कथन लिखा है। यथा—

भांडागाराधिपं प्राह सीता स्वस्य सुखेप्सया। देहि दानं च सर्वेभ्यो पात्रकेभ्यश्च मद्गृहात् ॥ ४७ ॥
जीवरक्षां च सर्वत्र कारयेद्विषये मम। मद्देशे कारयेज्जैनप्रासादाः शिखरान्विताः ॥ ४८ ॥
अभिषेकाय विम्बानां जिनानां गोधनं बहु। देहि चैत्यालयेषु त्वं कारयेत्पूजनं परम् ॥ ४९ ॥
नाट्यशाला जिनेन्द्रस्य कारयेज्जिनसद्मसु। तच्छ्रुत्वा तेन तत्सर्वं कृतं परं च तत्क्षणात् ॥ ५० ॥

इसप्रकार प्रसंगानुसार लिखा है श्लोकोंका अर्थ ऊपर लिखा जाचुका है।

इसके सिवाय श्रीअकलंकदेवकृत श्रावकप्रायश्चित्त नामका ग्रंथ है उसमें भी प्रायश्चित्त वर्णनमें यथोचित गोदान लिखा है। जैसे—

कलशाभिषेकश्चैको गौरेका च प्रदीयते ॥

अर्थात् एक कलशाभिषेक करना चाहिये और एक गाय देनी चाहिये।

द्विशतं भुक्तिदानानां तिस्रो गावो भवंति हि।

अर्थात् दोसौ आहारदान और तीन गायें देनी चाहिये।

द्विगावो कलशस्नानम् ॥

दो गाय देना चाहिये और कलशाभिषेक करना चाहिये।

पंचाशद्भुक्तिदानानि गावस्तिस्र उदाहृताः ॥

अर्थ—पचास आहारदान और तीन गायें देनी चाहिये।

त्रयोभिषेकाः कलशैर्गावस्तिस्रः प्रकीर्तिताः ॥

अर्थ—कलशोंसे तीन अभिषेक करने चाहिये और तीन गायें देनी चाहिये।

द्वौ गावौ दशगंधस्य फलानि कुसुमानि तु ॥

अर्थ—दो गायें, दश गंध, दश फल और दश फूल देने चाहिये।

द्विगावौ भुक्तिदानानि ॥

अर्थ—दो गायें और आहारदान देना चाहिये।

मोकला गौर्हि एका स्यादुपवासादयो मताः ॥

अर्थ—मोकल्ला एक गौ उपवासादिक करने चाहिये।

द्वौ च गावौ भुक्तिशतद्वयम् ॥

दो गाय और सौ आहारदान देना चराहिये।

गौरेकात्र प्रदीयते ॥

इसमें एक गाय देनी चाहिये।

गौरेकाहारदानानि ॥

एक गाय और आहारदान देना चाहिये।

गौरेका त्रीणि लक्षाणि पुष्पं गंधं फलानि च ॥

एक गाय तीन लाख पुष्प गंध फल देने चाहिये।

गौरेकाहारदानानि पंचपंचाशदेव हि ॥

एक गाय और पचपन आहारदान देना चाहिये।

धेनुरेका प्रदीयते ॥

एक गाय देनी चाहिये।

इसप्रकार अकलंक देवने अपने प्रायश्चित्त ग्रन्थमें कहा है। यहां सामान्य कथन (थोडासा वर्णन) किया है। विशेष विस्तार जानना हो तो वीरसेनकृत तथा अकलंकदेवकृत प्रायश्चित्त ग्रंथोंमें देखना चाहिये।

प्रश्न—प्रायश्चित ग्रन्थोंमें जो शिरमुंडन लिखा है सो यह आम्नाय तो अन्य मतियोंकी है सो जैनशास्त्रोंमें क्यों लिखी गई है।

समाधान-प्रायश्चित्तके समय जैन शास्त्रोंमें भी शिर मुंडन करानेका उपदेश है। इसलिये लिखा है। देखो मुनि अर्जिकाके प्रायश्चित्त ग्रंथोंमें भी लिखा है—

तहय सुवण्णादीणं दव्वं इच्छयाण जह जोगं। सिर मुंडणं च कुज्जा लेयाणं किं गाहणट्ठं ॥

अर्थात्—यथा योग्य सुवर्णादिक द्रव्य देना चाहिये। और सिर मुण्डन कराना चाहिये।

इसमें भी शिर मुण्डन लिखा है। तथा दूसरी जगह लिखा है—

सकृद्भ्रांत्यथ दर्पाद्वा सेविता दुर्जनेरिता। प्रायश्चित्तोपवासाः स्युः त्रिशतं शीर्षमुंडनम् ॥

अर्थात् किसी दुष्टकी प्रेरणासे वा प्रमादसे एकबार मुंडन सेवन की हो तो तीन सौ उपवास शिर मुंडन करना उसका प्रायश्चित्त है।

१८५। चर्चा एकसौ पचासीवीं।

मुनियोंके प्रायश्चित्त विधि क्या है?

समाधान—बारह प्रकारके तपोंमें एक प्रायश्चित्त नामका तप है। यदि किसी मुनिके अज्ञान अथवा प्रमादसे पांच महाव्रतादिक अट्ठाईस मूलगुणोंमें अथवा उत्तर गुणोंमें वा अन्य किसी क्रिया आचरणमें किसीप्रकारका अतिचार वा अनाचार लग जाय तो वे मुनिराज अपने गुरु आचार्यके निकट जाकर अपने किये हुये दोषको प्रगट करते हैं। तदनंतर आचार्य महराज जो प्रायश्चित्त दें उसे वे अपने दोष दूर करनेके लिये बडे हर्षके साथ स्वीकार करते हैं। गुरुके दिये हुये प्रायश्चितमें किसी प्रकारका विषाद नहीं करते किंतु उसको यथोचित रीतिसे पालकर शुद्ध होते हैं। वही प्रायश्चित्त थोडासा यहां लिखते हैं। मुनियोंके प्रायश्चित्त की विधि गृहस्थके समान नहीं है किंतु उसकी विधि अलग ही है और वह इसक्रमसे है।

प्रायश्चित्त विशुद्धि, मल हरण, पापनाशन और छेदन ये पांच भेद हैं,। उसमेंसे नौ णमोकार मंत्रका एक कायोत्सर्ग होता है। बारह कायोत्सर्गका एकसौ आठ णमोकार मन्त्रोंका एक जप होता है। एव जपका फल एक उपवास है। यहांपर उपवास शब्दका अर्थ यही है। आचाम्ल, निविडि, गुरुनिरत, एक स्थान, उपवास ये पांचों मिल कर एक कल्याण होता है। यदि कोई मुनि इस कल्याणकके पांचों अगोंमेंसे आचाम्ल पांच, निविड पांच वा उपवास पांच इनमेंसे कोईएक कर लें तो वह लघु कल्याणक कहलाता है। यदि पांचों कल्याणोंमें कोई एक कम करे तो उसको भिन्न कल्याणक कहते हैं। यदि वे आचाम्ल, गुरु निरत, एक स्थान, निविड इनको करें तो अर्द्ध कल्याणक कहाजाता है। ऐसा सब जगह समझ लेना चाहिये। सो ही लिखा है—

पायच्छित्त विसोही मलहरणं पावणासणं छेदो। पंचाया मूलगुणं मासियसट्ठाण पंचकल्लाणे ॥
एक्केहिवि कायोस्सग्गे णव णवकारा हवेति बारससु। सय अट्ठात्तर भेदे भवंति उववासयं सफलं ॥
आयं विलेण वियडि पुरिमंडल सेयट्ठाणमुववासं। कल्लाणमे गमेदे हि पंच हि पंचकल्लाणं ॥
आयंविलेण पउणं खमण पुरिमंडले तहापादो। एकट्ठाणे अद्धं णिवि पडिए परामेव ॥

यहांपर मूलगुण मुनियोंके अलग हैं और श्रावकोंके अलग हैं उसीप्रकार उत्तरगुण भी अलग अलग हैं। उनको क्रमसे बतलावेंगे।

आगे अहिंसा महाव्रतमें जो दोष लगते हैं उनकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त कहते हैं। यदि किसी मुनिसे बारह एकेंद्रिय जीवोंका घात अज्ञानपनेसे होजाय तो उनको ऊपर लिखा हुआ (बारह कायोत्सर्गका) एक उपवास करना चाहिये। यदि छह दो इंद्रिय जीवोंका घात होजाय तो भी ऊपर लिखा एक उपवास करना चाहिये। यदि चार ते इंद्रिय जीवोंका घात होजाय तो भी एक उप-

वास करना चाहिये। यदि तीन चतुरिंद्रिय जीवोंका घात होजाय तो भी एक उपवास करना चाहिये। यदि छत्तीस एकेंद्रिय जीवोंका घात होजाय तो प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास करने चाहिये। इसी प्रकार अठारह दो इन्द्रिय बारह ते इन्द्रिय नौ चौ इंद्रिय जीवोंके घातका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास समझना चाहिये। यह जघन्य प्रायश्चित्त है।

यदि किसी मुनिसे अजानकारीमें एकसौ अस्सी एकेंद्रिय जीवोंका, नव्वे दो इन्द्रिय जीवोंका वा साठ ते इंद्रिय जीवोंका वा पेंतालीस चतुरिन्द्रिय जीवोंका वध हो जाय तो अलग अलग एक एक पंचकल्याणक करना चाहिये। यह उत्कृष्ट प्रायश्चित्त है। अन्य आचार्योंके मतमें पंचकल्याणक, छह आवश्यक और प्रतिक्रमणसहित पंच कल्याणक समझना चाहिये। सो ही लिखा है।

मूलगुणाविय दुविहा समणाणं चेवयाणं च। उत्तरगुण तहेव यंते हिंसोहिं पचखामि ॥ ६ ॥
ए इंदियाय काओ दो इंदिय गणणाय जीव चउइंदी। एकाउसग्गेय तहा वारस छह उचदठ तिइकमणं ॥
छत्तीसदठारसवारस णवयहि छदठपरिकमणं। सिदि सयण उदिहि सट्ठियण दाल एहि मूलगुणं ॥ ८ ॥

यदि नौ प्राणोंको धारण करनेवाले असैनी पंचेंद्रिय जीवका वध होजाय तो अलग अलग आठ प्रकारके मुनियोंको अलग अलग प्रायश्चित्त होता है। सो ही लिखा है—

पंचेदिय असणीए वधकरणे चेत्र मूलगुणमत्तो। थिर अथिर पयदचारी अपदोई दरा ए ॥

अर्थ—मूलगुणके भेद चार उत्तरगुणके भेद चार स्थिर मूलगुण चारित्रधारी १ अस्थिर मूलगुण चारित्रधारी २ प्रयत्नचारित्र मूलगुणधारी ३ अप्रयत्न चारित्र मूलगुणधारी ४। ये ही चार भेद उत्तरगुणधारियोंके समझने चाहिये। इन सबके जुदा जुदा प्रायश्चित्त होता है। यथा—स्थिर मूलगुण चारित्रवालेको प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास करना चाहिये। अस्थिर मूलगुण चारित्र-वालेको प्रतिक्रमण पूर्वक एक पंच कल्याणक, प्रयत्न चारित्र मूलगुण चारित्रवालेको प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास और अप्रयत्न मूलगुणवालेको प्रतिक्रमणपूर्वक एक पंच कल्याणक, प्रयत्न चारित्र मूलगुणचारित्रवालेको प्रतिक्रमणपूर्वक तीन उपवास और अप्रयत्नचारित्र मूलगुणवालेको प्रतिक्रमण पूर्वक एक लघुकल्याणक करना चाहिये। इसीप्रकार अनुक्रमसे ऊपर कहा हुआ प्रायश्चित्त उत्तर गुणवालोंका जानना चाहिये। यह प्रायश्चित्त एक पंचेन्द्रिय असेनी जीवके वध होनेका है।

प्रश्न—यदि किसी मुनिसे अनेक पचेंन्द्रिय असेनी जीवोंका वध होजाय तो उसे क्या प्रायश्चित्त लेना चाहिये?

उत्तर-यदि ऊपर लिखे आठ प्रकारके मुनियोंसे नौ प्राणोंको धारण करनेवाले असेनी पंचेंद्रिय जीवोंका अनेक बार बध हो जाय तो उन्हें अनुक्रमसे नीचे लिखे अनुसार प्रायश्चित्त लेना चाहिये। पहलेको (स्थिर मूलगुण चारित्रधारीको) तीन उपवास, अस्थिर मूलगुणधारीको एक कल्याणक, प्रयत्नचारित्रमूल गुणधारीको दो लघु कल्याणक, अप्रयत्नचारित्र मूलगुणधारीको तीन पंच कल्याणक इसप्रकार इनका प्रायश्चित्त समझ लेना चाहिये। सो ही लिखा है—

वहुवारेसु विच्छेदो छट्ठ लहुमास मासियं मूलं। तिण्णुववासा छट्ठ लहुगच्छट्ठाणमट्ठण्णं ॥ ११ ॥

यदि उत्तरगुणको धारण करनेवाले साधु अपने प्रमादसे एकेंद्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यंत जीवोंके गमन आगमनको रोकें तो एक कायोत्सर्ग करें। यदि वे असेनी पंचेंद्रियका गामनागमन रोकें तो एक उपवास करें। यदि मूलगुण धारण करनेवाले साधु प्रमादसे एकेंन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यंत जीवोंके गमन आगमनको रोकें तो एक कायोत्सर्ग करें। यदि मूलगुणधारी साधु अपने किसी अहंकारसे असेनी पंचेंद्रियका गमन आगमन रोकें तो वे तेरह उपवास करें। सो ही लिखा है—

उत्तरमूलगुणीणं पमाददप्पं हि जाणमलहरणं। काओसग्गोवामो इंदियपाणेण गमणाए ॥ १२ ॥

तथा जहां जहांपर प्रयत्नाचार वा अप्रयत्नाचारके द्वारा एकेन्द्रिय पर्यंत जीवोंका वा असैनी पंचेंद्रिय जीवोंका गमन आगमन रुके तो एक कायोत्सर्ग करना चाहिये यदि ऐसे ही साधुओंसे सेनी पंचेन्द्रिय जीवोंका गमन आगमन रुके तो बारह कायोत्सर्गका एक उपवास करना चाहिये। सो ही लिखा है।

अहवा जतनाजतने इंदियगण्णाय पाणगण्णाय। काओस्सग्गो होंति उववासा वारसा देहि ॥ १४ ॥

यदि किसी मुनिसे क्रोधादिक कषायोंके वश होकर अपनी सामर्थ्यसे तथा अशुभ कर्मके उदयसे अनेक अनर्थोंका मूल ऐसा महा-पात हो जाय अर्थात् यद्यपि महामुनि समस्त जीवोंकी रक्षा करने वाले हैं, सब प्रकारकी हिंसाका त्याग कर अहिंसा महाव्रतको धारण करनेवाले हैं तथापि यदि दैवयोगसे दुष्ट बुद्धिसे उनसे कोई अनुचित बनजाय तो वे मुनि भारी दंड देनेके योग्य हैं। आगे उसी दंडको अनुक्रमसे कहते हैं। यति मारनेका प्रायश्चित्त एकवर्ष पर्यंत निरंतर तेला पारणा करना चाहिये। श्रावक मारनेका प्रायश्चित्त छह महीने पर्यंत निरंतर तेला पारणा करना चाहिये। बाल हत्या स्त्री हत्या गौ हत्या होजानेपर यति हत्याके अनुक्रमसे आधा आधा दंड लेना चाहि अर्थात्—यति हत्याका एकवर्ष पर्यंत तेला, श्रावक हत्याका छह महीने तक तेला, बालहत्याका तीन

महीनेतक निरंतर तेला पारणा, स्त्री हत्याकाका डेढ महीने तक निरंतर तेला पारणा। गौ हत्याका साढेबाईस दिनतक निरंतर तेला पारणा करना चाहिये।

परमती पाखंडीके मारनेका प्रायश्चित्त छह महीने तक तेला पारणा करना है, पाखंडियोंके भक्तके मारनेका प्रायश्चित्त तीन महीने तक तेलापारणा करना है और नीचके मारनेका प्रायश्चित्त डेढ महीनेतक तेला पारणा करना है। ब्राह्मणके मारनेका प्रायश्चित्त आदि अन्तमें तेला करना और छह महीनेतक एकांतर उपवास (एक उपवास एक एकासन) करना है। क्षत्रियके मारनेका आदि अंतमें तेला और तीन महीनेतक एकांतर उपवास है। वैश्यके मारनेका डेढ महीने तक एकांतर उपवास और आदि अन्तमें तेला करना है शूद्रके मारनेका प्रायश्चित्त तेईस दिनतक एकांतर उपवास आर आदि अन्तमें तेला करना है। किसी किसी आचार्यके मतमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शुद्रके मारनेका प्रायश्चित्त आठ महीने चार महीने दो महीने और एक महीनेतक एकांतर उपवास और आदि अन्तमें तेला बतलाया है।

इसी प्रकार घास भुस खानेवाले पशुके मरजाने पर उसकी शांतिके लिये चौदह उपास मांसभक्षी पशुके मर जाने पर ग्यारह उपवास, पक्षी सर्प, जलचर, छिपकली आदि जीवोंके मरनेका प्रायश्चित नौ उपवास हैं। यहांपर बारह कायोत्सर्गसे होनेवाला उपवास नहीं है किंतु तेला बेलाके संबंधसे चारप्रकारके आहारका त्यागकरना उपवास लिया है। सो ही लिखा है—

रिसि सावय वालाणं इत्थि गोघायणं हि मलहरणं। बारसमासादीणं· अद्धद्धकमेण छट्ठ छट्ठ तवं॥
पासंडा तव्वगुरु जोणि सरिसाण घादण छेदो। छम्मासं छट्ठतवं अद्धद्धं होदि णायव्वा॥
वंभण खत्तिय वेस्सास सुद्दा चउपयंग दुण पायम्मि। एगंतर छम्मासा अद्धद्धं छट्ठमासमंतेण॥
तणवत्था य विहंगम उरपरिसप्पाण जलचरवधेहिं। चोदसमोदिकादि उणवंत खमणाणि मलहरणं॥

इस प्रकार अहिंसा नामक प्रथम महाव्रतका तथा अहिंसा उत्तरगुणका प्रायश्चित्त बतलाया।

एकबार प्रत्यक्ष असत्य कहनेका प्रायश्चित एक कायोत्सर्ग है। एकबार परोक्ष असत्य कहनेका प्रायश्चित्त दो उपवास है। एक बार मन बचन कायसे असत्य कहनेका प्रायश्चित्त तीन उपवास है अनेकबार प्रत्यक्ष कहनेका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। अनेक बार परोक्ष असत्य भाषण करनेका प्रायश्चित पंचकल्याणक है। अनेक बार प्रत्यक्ष परोक्ष मिले हुये असत्य कहनेका प्रायश्चित्त

पंच कल्याणक है। अनेक बार मन वचन कायसे असत्य कहनेका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है। सो ही लिखा है—

सइ पच्चक्ख परोक्खं उभयं तियकरण नोसमासीसे। काउस्सग्गुववासो एगुत्तव असइसट्ठाणं ॥

इस प्रकार असत्य त्याग महाव्रतका प्रायश्चित्त बतलाया यहां पर बारह कायोत्सर्गका एक उपवास समझना चाहिये। चार प्रकारके आहारका त्यागरूप उपवास नहीं है।

यदि मोहसे एकबार परोक्ष चोरी कीजाय तो एक कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त है। यदि एकबार प्रत्यक्ष चोरी की जाय तो एक उपवास प्रायश्चित्त है। यदि एकबार प्रत्यक्ष परोक्ष दोनों प्रकारकी चोरी की जाय तो दो उपवास प्रायश्चित्त है। यदि एकबार मन वचन कायसे चोरी की जाय तो तीन उपवास प्रायश्चित्त है। यदि अनेक बार परोक्ष चोरीकी जाय तो पंच कल्याणक प्रायश्चित्त है। यदि अनेकबार प्रत्यक्ष चोरीकी जाय तो पंच कल्याणक प्रायश्चित्त है। यदि अनेक बार मन वचन काय तीनोंसे चोरी की जाय तो पंचकल्याणक प्रायश्चित्त है। सो ही लिखा है—

सुद सुद सुणं हि समक्खेणाभोगे अदत्त गहिदम्हि। काउस्सग्गुववासा गुत्तर असइमासिट्ठं ॥

यहां भी बारह कायोत्सर्गका उपवास समझना चाहिये। इस प्रकार अचौर्य महाव्रतका प्रायश्चित्त बतलाया।

आगे ब्रह्मचर्यव्रतके दोषोंका प्रायश्चित्त बतलाते हैं। यदि मुनि नियमरहित और देववंदनासहित रात्रिमें निद्रा लें और स्वप्नमें वीर्यपात होजाय तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण पूर्वक दो उपवास हैं। यदि मुनि नियमसहित देव वंदनापूर्वक रात्रिमें निद्रा लें और स्वप्नमें वीर्यपात होजाय तो प्रतिक्रमण पूर्वक एक उपवास प्रायश्चित्त है। यदि पिछिली रातमें सामायिक कालके पहले निद्रामें वीर्यपात होजाय तो प्रतिक्रमण पूर्वक एक उपवास प्रायश्चित्त है। यदि शामकी सामायिक करनेके बाद नियम सहित सोनेवाले साधुके नींदमें वीर्यपात होजाय तो प्रतिक्रमण पूर्वक एक प्रायश्चित्त है। यदि सामायिक कर नियमसहित देव बंदना पूर्वक सोते हुए वीर्यपात होजाय तो प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास प्रायश्चित्त है। यदि कोई मुनि आसक्त होकर स्त्रीके साथ वचनालाप करें तो प्रतिक्रमणपूर्वक एक उपवास करना चाहिये। यदि स्त्रीका स्पर्श हो जाय तो प्रतिक्रमणपूर्वक एक उपवास करना चाहिये। यदि किसी मुनिने अपने मनमें स्त्रीका चिंतवन किया हो तो प्रतिक्रमणपूर्वक एक उपवास करना चाहिये। सो ही लिखा है—

पाथो सणियमरहिदे बंदण सहियं णमज्झएसु तस्सेर । दणिर वरणे उवधा वण दणिख वण्णाणी ॥
णियमे जुत्तस्स पुणो सेसरिहं सछेद पुव्वं वा । सण्णा परहियसुत्तो पावदीउ च वासेण त्तसेण ॥
सो हि लहइ रेदणिक्खरणे.. ॥
सज्झाय णियम म हियं वंदण रहियं सरेदणिक्खरणे । उवट्ठावण उववासो चेरकं यणं वासणियमस्सछ ॥
सज्झायणिम वंदण तिणि विकाउण जो सुवई । साडरेदेदे णिरकरणं हिय उवट्ठा वण छट्ठ दिवसेय ॥
अब्भंह्मं घासत्तो इत्थिहिय मोहिपदाध इछंत्तो । काउसग्गुववासो उवणा वट्ठदप्पं हि ॥ (?)

यदि कोई तिर्यंच देव वा मनुष्य किसी मुनि पर उपसर्ग करें और उस उपसर्गमें प्रमादसे मुनिका ब्रह्मचर्य भंग होजाय उससे मैथुन करले तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण पूर्वक पंचकल्याणक है। यदि मुनि काम विकारसे मन बचन कायसे स्त्रीसे फिर भी मैथुन करें तो उनका महाव्रत भंग होजाता है। वे फिर दुवारा दीक्षा लेने पर शुद्ध हो सकते हैं। सो ही लिखा है—

तिरियादि दुवस्सग्गे अबंभं सेविदं समूलगुणं । मूलट्ठाणं दप्पे तिरयण सेविसस्स जणणादो ॥

यदि कोई महाव्रती मुनि किसी अर्जिकासे एकवार मैथुन सेवन करे तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण सहित पंच कल्याणक है। यदि कोई मुनि अनेक वार किसी अर्जिकासे मैथुन सेवन करे तो उसका महाव्रत भंग होजाता है। फिर दीक्षा लेनेसे वह शुद्ध होता है। यदि इस बातको बहुतसे लोग जान लें वा देख लें और फिर भी वह न छोडे तो फिर उसको उस देशसे निकाल देना चाहिये। सो ही लिखा है—

आलासं संगोण मूलगुण मूलठाण बहुवारं । जणणादं हि विवेगो देसादो णिद्धाउण होदि ॥

इसप्रकार चतुर्थ ब्रह्मचर्य नामके महाव्रतका प्रायश्चित्त बतलाया। आगे अपरिग्रह महाव्रतका प्रायश्त्ति कहते हैं।

यदि एकबार उपकरणादिक, पदार्थोंके संग्रह करनेकी इच्छा करें उन मुनिको एक उपवास प्रायश्त्ति करना चाहिये। यदि एकवार प्रेमपूर्वक उपकरणादिक पदार्थ रक्खें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि नित्यप्रति सदा किसी उपकरणादिक पदार्थके रखनेकी इच्छा करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि और लोगोंसे दान दिलावें तो उसका प्रायश्चित्त पंच

कल्याणक है। यदि सब परिग्रहोंको रक्खे तो उसका महाव्रत भंग हो जाता है। यदि वह फिरसे दीक्षा ले तो शुद्ध हो सकता है। सो ही लिखा है–

उवयरण ठवण लोहिदि णमुहे दाणमण विखादे। सग्गग्गहणस्वमणं छट्टट्टं मूलगुणलघंति॥

इस प्रकार महाव्रतका प्रायश्चित्त बतलाया।

जो मुनि रोगके वश होकर एक रातमें चारों प्रकारके आहारका अशनपान करें तो उसके प्रायश्चित्तमें तीन उपवास करना चाहिये। यदि रोगके वशीभूत होकर एक जल ग्रहण करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि किसीके उपसर्गसे कोई मुनि रातमें भोजन पान करें तो उसका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है। यदि कोई मुनि अपने दर्पसे अनेक वार भोजन पान करें तो फिर उनका महाव्रत भंग होजाता है। वे फिर दीक्षा लेनेसे शुद्ध हो सकते हैं। सो ही लिखा है–

रत्तिगलाणभुत्ते चउविह एगं हि छट्ठखमणं तु। उवसग्गो सट्ठाणं चरियाए मूलगुणे भुत्ते॥

इस प्रकार रात्रिभोजन त्याग नामके मूलगुणका प्रायश्चित्त है।

यदि कोई मुनि टेडे मार्गकी एक कोससे कम प्रासुक भूमिमें गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि वे किसी सीधे मार्गकी एक कोस अप्रासुक भूमिमें गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि वर्षाकालमें तीन कोस तक प्रासुक भूमिमें गमन करे तो एक उपवास प्रायश्चित्त करें। यदि वर्षाकालमें दिनमें दो कोस अप्रासुक मार्गमें गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि वर्षाकालमें रात्रिमें एक कोस गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त वा दंड चार उपवास हैं। यदि शीतकालमें दिनमें प्रासुक भूमिपर छह कोस तक कोई मुनि चलें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि शीतकालमें दिनमें अप्रासुक भूमिपर छह कोश तक चलें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि शीतकालमें रात्रिमें प्रासुक मार्गसे चार कोस तक चलें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि गर्मीके दिनमें दिनोंमें नौ कोश तक प्रासुक भूमिमें गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि गर्मीके दिनमें अप्रासुक भूमिमें छह कोस तक चलें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि गर्मीमें रातमें अप्रासुकमार्गसे छह कोश तक चलें तो उसका प्रायश्चित्त दो उपवास है।

यदि मुनि बिना पीछीके सात पेंड तक चलें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि विना पीछीके एक कोश तक गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है।

यदि मुनि घुटने तक पानीमें होकर गमन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि घुटनेसे चार अंगुल ऊपर तक पानीमें गमन करें तो एक उपवास प्रायश्चित्त है। फिर आगे प्रति चार अंगुल पर दूने दूने उपवास प्रायश्चित्त हैं। सो ही लिखा है—

वियायामगमण मुणिणो उमग्गो पासुगो असुद्धं। काउस्सग्गो खमणं अपुण्णकोसं हि दायत्वं ॥
वासरते दिव वसो पासुगां य गच्छं हि पदर गा। दिव्वति यदुग कोसे एगोगां तिण्णि चउ खमणं ॥
छहमे तेहिय दिवसो पातुय गच्छं हि पदरगा। दिव्वति पदुगे कोसे एगो गां वे णित्तिय खमणं ॥
गिण्हे दिवि संहि चहा पासुगोछं इि यद्दारण्हादि। चण गच्छ एकोसे एगोगां दोण्णि दुग खमणं ॥
काउस्सगे सुद्धदि सत्तसु पादेसु पिच्छि विण गमणे। सुगमणादि पडिकमणं णो खमणं होदि णियमेण ॥
जण्हं हि विजो सगो खमणं चउंगलं हि तसुवारं। तं भोयदुगण दुगणे उववासा अंगुलं चडके ॥

इसप्रकार यह ईर्यासमिति नामके मूलगुणका प्रायश्चित्त है।

यदि कोई मुनि लोगोंमें जाकर भाषा समितिमें दोष लगाते हुए बचन कहें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि कोई मुनि सम्यग्दृष्टी श्रावकके दोष प्रकाशित करे तो उसका प्रायश्चित्त चार उपवास है। यदि कोई मुनि जल, अग्नि, बुहारी, चक्की उखली और पानी आदि छह कर्मोंके करनेका वचन कहे तो उसका प्रायश्चित्त तीन उपवास है। यदि कोई मुनि शृंगारादिकके गीत स्वयं गावे वा किसीसे गवावे तो उसका प्रायश्चित्त चार उपवास है। सो ही लिखा है—

भासंनाण पउज्जो वेज्जो वोलइ पुनत्थिणं दोम। काउस्सग्गो अट्ठम अविरदया सुभवोधं हि ॥
छकम देश करणे उववासे अट्ठमं तु गिदिदिंचा। वण अवराह गाणं गदि दालणं होई ॥

इसप्रकार भाषासमिति नामके मूलगुणका प्रायश्चित्त बतलाया।

यदि कोई मुनि बिना जाने कंद मूलादिक साधारण प्रत्येक सचित्त अचित्त वनस्पति एकवार भक्षण करें अर्थात् कंदमूल अचित्त भी भक्षण करें तथा अन्य वनस्पति सचित्त भक्षण करें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि बिना जाने अनेक वार कंदादिक वनस्पतियोंका भक्षण करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि रोगके वशीभूत होकर कंदादिक वनस्प-

तियोंका भक्षण करें तो उसका प्रायश्चित एक कल्याणक है। यदि कोई मुनि अपने सुखके लिये एकबार कंदादिकका भक्षण करें तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि कोई मुनि अपने सुखके लिये अनेक वार कंदादिकका भक्षण करें तो उनकी दीक्षा भंग होजाती है। सो ही लिखा है—

अण्णाणि ण वाहि दप्पे भक्खण कंदादि एग वहुवारं, काउस्सग्गुववासो खमणणय गच्छमूलगुणमूलं।

यदि मुनिराजके आहार लेलेनेपर दाता यह कहे कि भोजनमें जंतु था उसको दूर कर हमने आपको आहार दिया है नहीं तो अंतराय पड जाता" इसप्रकार सुन लेनेपर उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण पूर्वक एक उपवास है। यदि आहार लेते समय थालीके बाहर (गीली हड्डी आदि भारी) अन्तराय दिखाई पडे तो उसका प्रायश्चित प्रतिक्रमण पूर्वक तीन उपवास है। यदि भोजनमें ही (गीली हड्डी चमडा आदि भारी) अंतराय आजाय तो प्रतिमक्रण पूर्वक चार उपवास करना चाहिये। सो ही लिखा है—

वट्टंतराय जादे सुदं हि तु तं स होइ खमणं खु। स भुंजमाण दिट्ठ छट्ठट्ठमुट्ठपडिकमणं॥

यदि कोई मुनि तीन चार घडी दिन चढनेसे पहले अथवा गोसर्जन समयमें एकवार आहार करें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि कोई मुनि तीन चार घड़ी दिन चढनेसे पहले अथवा गोसर्जन समयमें अनेक वार भोजन करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि रोगके वशीभूत होकर एकवार अपने हाथसे अन्न बनाकर भोजन करें तो उसका प्रायश्चित एक उपवास है। इसी प्रकार यदि कोई मुनि किसी रोगके वश होकर कईवार अपने हाथसे भोजन बनाकर आहार करें तो उसका प्रायश्चित्त तीन उपवास है। यदि नीरोग अवस्थामें कोई मुनि एकवार अपने हाथसे बनाकर भोजन करें तो उसका प्रायश्चित पंच कल्याणक है। यदि नीरोग अवस्थामें कोई मुनि अनेकवार अपने हाथसे बनाकर आहार करें तो उनका महाव्रत भंग होजाता है। सो ही लिखा है—

आधा कम्मेणादो गलाण णीरोगए वहुवारे। उववास छट्ठ मासे मूलं पय होइ मलहरणं॥

इसप्रकार एषणासमितिका प्रायश्चित्त बतलाया।

यदि कोई मुनि दिनमें काठ पत्थर आदि पदार्थोंको हटावे वा दूसरी जगह रक्खे तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है यदि कोई मुनि रातमें किसी काठ पत्थरको उठावे वा हिलावे वा दूसरी जगह रक्खे अथवा रातमें इधर उधर फिरे तो उसका प्रायश्चित एक उपवास है। सो ही लिखा है—

उड्डादि वियडि दालण ठाणादो वा खिवेज अणट्ठ। काउस्सग्गं पक्खइ असंखविषं उववासो ॥

यह आदाननिक्षेपण समितिका प्रायश्चित्त है।

यदि कोई मुनि हरित काय पृथ्वीपर रात्रिमें एकवार मलमूत्र निक्षेपण करें तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है। यदि वे बार बार निक्षेपण करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। सो ही लिखा है—

हरिभूदेचेज उवरिं उच्चारादि करेदि एदेहिं। दो वे काउस्सग्गुववासो जाण बहुवारं ॥

इसप्रकार यह प्रतिष्ठापन समितिका प्रायश्चित्त बतलाया।

स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियां हैं। यदि कोई मुनि अप्रमत्त होकर स्पर्शन इंद्रियका विषय पोषण करे उसको वशमें न रक्खे तो एक कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त है। रसना इंद्रियको वशमें न करनेका प्रायश्चित्त दो कायोत्सर्ग है इसी प्रकार घ्राण इन्द्रियको वशमें न करनेका प्रायश्चित्त तीन कायोत्सर्ग, चक्षु इन्द्रियको वशमें न करनेका प्रायश्चित्त चार कायोत्सर्ग और कर्ण इंद्रियको वशमें न करनेका प्रायश्चित्त पांच कायोत्सर्ग है। यदि कोई मुनि प्रमादी होकर इन इंद्रियोंको वशमें न रक्खे तो उनका प्रायश्चित्त इसप्रकार है—प्रमत्त होकर स्पर्शन इंद्रियको वशमें न रक्खे तो एक उपवास, रसना इंद्रियको वशमें न रक्खे तो दो उपवास, घ्राण इन्द्रियको वशमें न रक्खे तो तीन उपवास, चक्षु इंद्रियको वशमें न रक्खे तो चार उपवास और श्रोत्र इंद्रियको वशमें न रक्खे तो पांच उपवास प्रायश्चित्त है। सो ही लिखा है—

फरस रस घाण चक्खु सोददि चोर पमत्त इदरस्स। काउसग्गुववासो एगुतर वड्ढिया कमसो ॥

इसप्रकार यह पंचेन्द्रिय निरोधका प्रायश्चित्त बतलाया।

यदि कोई मुनि वंदना आदि छहों आवश्यकोंके करनेमें तीनोंकालोंके नियमोंको भूल जाय अथवा समयका अतिक्रम होजाय तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमणपूर्वक एक उपवास है। यदि कोई मुनि तीन पक्ष तक प्रतिक्रमण न करे तो उसका प्रायश्चित दो उपवास है यदि कोई मुनि चातुर्मासिक प्रतिक्रमण न करे तो उसका प्रायश्चित्त आठ उपवास है। यदि कोई मुनि वार्षिक प्रतिक्रमण न करे तो उसका प्रायश्चित चौवीस उपवास है। सो ही लिखा है—

वंदणग्गह णियम विरहि उपवासो होइकाल छिण्णेवा। तह सज्झाव चउक्के काउसग्गो अवलाए ॥

ते हि अधिकं तु पक्खे चउमासे य जाण वासो य। सोवट्ठावण छेदो .... ॥

यह षट् आवश्यकोंका प्रायश्चित्त बतलाया।

यदि कोई रोगी मुनि चार महीनेसे ऊपर केशलोंच करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई रोगी मुनि एकवर्षसे ऊपर केशलोंच करें तो उसका प्रायश्चित्त तीन उपवास है। यदि कोई रोगी मुनि पांच वर्षके ऊपर केशलोंच करें तो उसका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है। यदि कोई नीरोग मुनि चार महीने बाद वा एक वर्ष बाद वा पांच वर्ष बाद केशलोंच करें तो उसका प्रायश्चित्त निरंतर पंच कल्याणक प्रायश्चित्त है। सो ही लिखा है—

चउमासिय वरसिय जुगं तरे चेव मदि चोर। उपवास छट्ठ मासिय गिलाण इदरे च णर वादं।

यह केशलोंच मूलगुणका प्रायश्चित्त है।

यदि कोई मुनि किसीके उपसर्गसे वस्त्र ओढलें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि व्याधिके वश होकर वस्त्र ओढ लें तो उसका प्रायश्चित्त तीन उपवास है। यदि कोई मुनि अपने दर्पसे अहंकार वश होकर वस्त्र ओढलें तो उसका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है। इनके सिवाय अन्य किसी कारणसे वस्त्र ओढलें तो महाव्रत भंग होता है। सो ही लिखा है—

उवसग्गवाहिकरणे दप्पेण चेलभंग करणे हि। उपवास छट्ठ मासिय कमेण मूलं च होइ सयं।

इसप्रकार वस्त्र त्याग मूलगुणका प्रायश्चित्त है।

यदि कोई मुनि एकवार स्नान करें तो उसका प्रायश्चित्त एक पंच कल्याणक है। यदि एकवार दंतधावन (दतौन) करें तो उसका भी प्रायश्चित्त एक कल्याण है। यदि एकवार कोमल शय्यापर शयन करें तो उसका प्रायश्चित्त भी एक कल्याण है। यदि इनको बार बार करें तो प्रत्येकका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है। यदि कोई मुनि प्रमादसे एकवार बैठकर भोजन करें खडे होकर भोजन न करें तो उसका प्रायश्चित पंच कल्याणक है। यदि कोई मुनि प्रमादसे दिनमें दो वार आहार करें तो भी उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याण है। यदि कोई मुनि अहंकारके वश होकर एक बार बैठकर भोजन करें अथवा दिनमें दो वार भोजन करें तो उसका प्रायश्चित्त दीक्षा छेद है। यदि कोई मुनि बार बार बैठकर आहार लें अथवा वार बार दिनमें दो वार आहार लें तो उसका प्रायश्चित्त फिरसे दीक्षा देना है अर्थात् उसके मूलगुणका नाश होजाता है। सो ही लिखा है—

अदंत अण्हाणस्स भंगे गिहत्ते सिज्जासु एइए सुत्तो। एगेवारे पणगं वहुवारे पंचकल्लाणं ॥
अच्छिय अणेय भुत्तें पमाद दप्पे हि एग बहुवारे। पणगं मासिय छेदो मूलं च कमेण जाणादि ॥

यदि कोई मुनि पांच समिति, पांचों इन्द्रियोंको निरोध, भूशयन, केशलोंच और अदंत धावन इन तेरह मूलगुणोंमें एकवार संक्लेश परिणाम करे तो उसका प्रायश्चित एक कायोत्सर्ग है। यदि कोई मुनि इन तेरह मूलगुणोंमें वार वार संक्लेश परिणाम करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई मुनि वाकीके पंद्रह मूलगुणोंमें अर्थात् पांच महाव्रत छह आवश्यक, खडे होकर आहार लेना, नग्न रहना, स्नान करना, इन पंद्रह मूलगुणोंमें एकवार संक्लेश करे तो उसका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है यदि कोई मुनि इन पंद्रह मूलगुणोंमें वार वार संक्लेश करे तो उनका महाव्रत भंग होजाता है। सो ही लिखा है—

समिदिंदिय खिदिसयणे लोचं दंतधवण संकिलेसेण। काउस्सग्गुववासो वहुवारे मूलभिदाराणं।

इस प्रकार मुनिराजके अट्ठाईस मूलगुण हैं उनके प्रमाद अप्रमादसे होनेवाले दोषोंका ऊपर लिखे अनुसार प्रायश्चित्त समझना चाहिये।

इसप्रकार अट्ठाईस मूलगुणोंका प्रायश्चित्त समाप्त हुआ।

यदि कोई मुनि मर्यादापूर्वक स्थिर[1] योग धारण करे तो जितने कालकी मर्यादा थी उसके बीचमें ही किसी कारणसे योग समाप्त करना पडे तो जितना काल शेष रहा है उतने ही उपवास करना उसका प्रायश्चित्त है।

एक महीनेके तीन भाग करना चाहिये। ऐसा करनेसे दश दश दिनका एक एक भाग होता है। यदि कोई मुनि महीनेके पहले भागमें प्रतिक्रमण न करे तो उसका प्रायश्चित्त एक पंच कल्याणक है। यदि दूसरे भागमें प्रतिक्रमण न करे तो जितने दिन प्रतिक्रमण न किया हो उतने दिन उपवास करना चाहिये। यदि तीसरे भागमें प्रतिक्रमण न किया जाय तो एक लघु कल्याणक करना चाहिये। सो ही लिखा है—

१। वृक्षमूल और अतोरण ये योग स्थिर योग है आतापन स्थिर और चल दोनों प्रकार है। अभ्रावकाश स्थाने मौन और वीरासन ये चल योग हैं। अथवा सभी योग स्थिर हो सकते हैं।

थिर जोगाणं भंगे वाही पडिकारकं च जावंतं। जइ दिवसा तइ खमणं इणगं हि रायणणं ॥
स पडिकमणं मासिय तव्वुववासा तहेव लहुमासं। पढमे पक्खे वदिये पच्छिम पक्खेय जोगहिदे ॥

इसप्रकार ये उत्तर गुणोंके प्रायश्चित्त हैं।

यदि किसी मुनिने किसी अप्रासुक भूमिमें एकवार योग धारण किया हो तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमणपूर्वक एक उपवास है। यदि किसी अप्रासुक भूमीमें अनेक वार योग धारण किया हो तो उसका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है। यदि कोई मुनि किसी योगकी भूमिको मनोहर देख कर उससे मोह वा प्रेम करे तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि कोई मुनि किसी योगकी मनोहर भूमिको देखकर उसपर अहंकार करे तो फिर उसका व्रत भंग हो जाता है। सो ही लिखा है—

अप्पासुगेहमत्तो एय वहुवेर मोहहंकारे। उववासा पणयमासिय सोद्धाणं हणइ मूलगुणं ॥

जो मुनि गांव, नगर, घर, वसतिका आदिके वनवानेमें दोषोंको न जानता हुआ उनके बनवानेका उपदेश करता है उसका प्रायश्चित्त एक कल्याणक है। यदि उनके वनवानेके दोषोंको जानता हुआ उनके आरंभका उपदेश देता है उसका प्रायश्चित्त पंच कल्याणक है। यदि वह गर्व वा अहंकारमें चूर होकर उनके बनवानेका उपदेश दे तो उसका व्रत भंग होजाता है।

जो मुनि पूजाके आरंभसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको नहीं जानता है वह यदि एक बार गृहस्थोंको पूजा करनेका उपदेश दे तो उसके आरंभके अनुसार आलोचना अथवा कायोत्सर्ग को आदिलेकर उपवास पर्यंत प्रायश्चित्त हैं। यदि वे मुनि बार बार उपदेश दे तो उसका प्रायश्चित्त कल्याणक है।

जो मुनि पूजाके आरंभके दोषोंको जानते हैं वे यदि एकवार पूजाके आरंभका उपदेश दें तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण सहित कल्याणक है। यदि वे बार बार उपदेश दें तो उनका प्रायश्चित्त मासिक पंच कल्याणक है। तथा जिस पूजाके उपदेश देनेसे छह कायिक जीवोंका बध होता हो तो उसका प्रायश्चित्त छेदोपस्थापना वा पुनर्दीक्षा है।

यदि कोई सल्लेखना करनेवाला साधु क्षुधा तृषासे पीडित होकर लोगोंके न देखते हुये भोजन करले अथवा सल्लेखना न करनेवाला साधु अनेक उपवासोंके कारण भूख प्याससे पीडित होकर लोगोंके न देखते हुए भोजन करले तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण सहित उपवास है। यदि ऊपर लिखे दोनों प्रकारके मुनि किसी रोगी मुनिके देखते हुये भोजन करलें तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है।

यदि कोई मुनि सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हुये लोगोंके साथ अथवा व्रतोंसे भ्रष्ट हुए लोगोंके साथ विहार करें उनकी संगति करें तो उसका प्रायश्चित्त पंचकल्याणक है। यदि वे अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधुओंमें अवर्णवाद लगावें उनकी निंदा करें झूठे दोष लगावें तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण कायोत्सर्ग सहित उपवास करना है।

यदि कोई मुनि सिद्धांतके अर्थको जानते हुये भी उपदेश न दें सिद्धांतकी विनय करके ही अलग होजाय तो उसका प्रायश्चित्त आलोचना पूर्वक कायोत्सर्ग है। यदि वे सिद्धांतके श्रोताओंको संतोष उत्पन्न न कर क्षोभ उत्पन्न करें तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है।

यदि कोई मुनि विद्या मंत्र तंत्र यंत्र वैद्यादिक अष्टांग निमित्त ज्योतिष वशीकरण गुटिका चूर्ण आदिका उपदेश दें तो उसका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण पूर्वक एक उपवास है।

यदि कोई अप्रमत्त मुनि (प्रमाद रहित) जीव जंतुओंसे रहित प्रदेशमें सांथरेको न शोधकर सोगये हों तो उसका प्रायश्चित्त कायोत्सर्ग है यदि वे मुनि प्रमादसे जीव जंतुओंसे रहित स्थानमें सांथरेको न शोधकर सोये हों तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई प्रमाद रहित मुनि जीवजंतुओं रहित स्थानमें सांथरेको न शोधकर सोगये हों तो उसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि कोई प्रमाद सहित मुनि जीव जंतुओं सहित स्थानमें सांथरेको न शोधकर सोये हों तो उसका प्रायश्चित्त कल्याण है।

यदि किसी मुनिसे कमंडलु आदि उपकरण नष्ट होगये हों फूट टूट गये हों तो जितने अंगुल फूटे हों उतने उपवास करना चाहिये अथवा किसी आचार्यके मतमें जितने घनांगुल फूटा हो उतने उपवास करना चाहिये। सो ही लिखा है—

गामादिआरभाणं अजाणमाणो करेदि उवदेसं। जाणंतो दं मत्तं पणमासिय मूल गारविए॥
आलोयण तणुसग्गो अजाणमाणो स पूज उवदेसे। एय वहुवार गुज्झति उवसेसो पयण पडिकमणं॥
जाणतं स बिसोही पूजा करणेहि एग वहुवारं। पणगं मासिय बहुसो बधकरणे मूल पडिकमणं॥
इतिरिय जन्नकाले सभा हि भूदोवि एहि भुजप्पे। अण्णादे उववासो मासिय पडिकमण जणणादे॥
वददंसणदो भट्ट सज्जो गिज्जो मुहादिसं अरुहादि। अवण्णेणध पावदि उपवासं पडिकमण॥
सुत्तत्थ चोरियाए गिण्हतो विणय पुच्छ रहिदो वा। आलोचण तनु संगो पावहि दिहवकोरोय सुदगुरणे॥

विज्जा मंतो वेज्जं अट्ठं गणिमत्त मूलगुणं। चूणाणि जो कुणइ सो पावइ उपवास पडिकमणं ॥
सचारम सोहंतो पयदा पयदे सुखवण पणगं तु। काउसग्गुववासो सुद्धा सुद्धंहि जाणावे ॥
अह उवकरणे णट्ठे जावदिया अंगुलाणि तावदिया। उववासा तावदिया वंदंति घणमंगुलं केई ॥

इस प्रकार प्रायश्चित्त चूलिका नामके ग्रंथसे यह थोडीसी प्रायश्चित्तकी विधि लिखी है विशेष कथन और प्रायश्चित्त ग्रंथोंसे समझना चाहिये। ये सब गाथाएं प्रायश्चित्त चूलिकाकी समझना चाहिये।

१८६। चर्चा एकसौ छयासीवीं।

यदि अर्जिकाके व्रताचरणमें कोई दोष लगे तो उसके प्रायश्चित्तकी विधि क्या है?

समाधान—जो पहले मुनीश्वरोंके प्रायश्चित्तका वर्णन किया है, उसी प्रकार अर्जिकाओंका प्रायश्चित्त समझना चाहिये। उसमें विशेष केवल इतना ही है कि अर्जिकाको त्रिकाल योगका धारण तथा सूर्य प्रतिमायोगधारण ये दो प्रकारके योग धारण नहीं करना चाहिये। बाकी सब प्रायश्चित्त मुनियोंके समान हैं। सो ही लिखा है—

सह समणाणं भणियं समणीणं तहय होइ मलहरणं। वज्जिय तियाल जोग्गं दिणपडिमं छेदमालं च ॥

१८७। चर्चा एकसौ सतासीवीं।

प्रश्न—अर्जिका रजस्वला समयमें क्या करे?

समाधान—यदि अर्जिका रजस्वला होजाय तो उस दिनसे लेकर चौथे दिन तक अपने संघसे अलग होकर किसी एकांत स्थानमें रहना चाहिये। उन दिनों आचाम्लव्रत (भात मात्र खाकर) तथा निविड वा उपवास धारण कर रहना चाहिये। सामायिक आदिका पाठ मुखसे उच्चारण नहीं करना चाहिये। इन सामायिक पाठोंका मनसे चिंतवन कर सकती है। उसे दिन दिनमें प्रासुक जलसे अपने अंग और वस्त्र यथायोग्य रीतिसे शुद्ध कर लेना चाहिये, पांचवे दिन प्रासुक जलसे स्नान कर तथा यथायोग्य रीतिसे वस्त्र धोकर अपने गुरुके समीप जाना चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार किसी एक वस्तुके त्याग करनेका नियम कर लेना चाहिये। सो ही लिखा है—

पुप्फं पस्सदि विर दित दिवसादि चउवड दिवसोत्ति। आयं विलि णिव्वेयडि समणे वा तत्थ कायव्वा ॥

आवायसयथि मोणे ण चेव तिस्से तदा समुहिट्ठं। वदरेहणं पि पच्छा कादव्वं गुरु सविवं हि॥

इसमें जो अर्जिकाके लिये स्नान और वस्त्र प्रक्षालन लिखा है सो ये दोनों ही क्रियाएं गृहस्थोंके समान नहीं हैं किंतु अपने वा दूसरेके कमंडलुके प्रासुकजलसे यथायोग्य शरीरको धोना और रक्त मिले हुए वस्त्रको शुद्ध करना कहा है। यदि वह इतना भी न करे तो उसका निरंतराय आहार कैसे हो। तथा सामायिक आदिक छह अवश्यक कर्म किस प्रकार बन सकें। गणिनीके साथ बैठना गणिनी वा अन्य अर्जिकाओंको स्पर्श करना, धर्मका उपदेश देना, पढना, पढाना, जिन दर्शन करना, आचार्यादिकके दर्शन करना और शास्त्र श्रवण करना आदि कार्य किस प्रकार बन सकें। यदि वह स्नानादिक न करे तो चार दिन तक वह जो एकांत स्थानमें मौन धारण कर गणिनीसे अलग सामायिक आदिकी क्रियाओंके चारणसे रहित रहती है सो उसका वह रहना भी नहीं बन सकेगा। अर्जिकाके साक्षात् महाव्रत तो हैं नहीं न साक्षात् अट्ठाईस मूलगुण हैं इसलिये उसको स्नानादिकका दोष नहीं लगता। इसके सिवाय एक बात यह भी है कि वह जो स्नान और वस्त्र प्रक्षालन करती है उसका वह प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होती है। अर्जिका जो वह स्नान करती है सो सुखके लिये नहीं करती सो ही प्रायश्चित्त ग्रंथमें लिखा है—

अज्जाकचेलधवणे उपवासो आउकाउघादेण। काउस्सग्गो कहिओ पास गणीरेण पात्तादी॥

यदि आर्जिका अप्रासुक जलसे वस्त्र धोवे तो इसका प्रायश्चित्त एक उपवास है। यदि वह अपने पात्र शरीर तथा वस्त्रोंको प्रासुक जलसे धोवे तो उसका प्रायश्चित्त एक कायोत्सर्ग है।

इसप्रकार वह अर्जिका यथायोग्य रीतिसे अपने शरीर वस्त्रादिकके धोनेका प्रायश्चित्त लेती है गृहस्थके समान स्नान करनेका तो उसको अधिकार ही नहीं है। क्योंकि जैनशास्त्रोंमें तीन प्रकारके स्नान लिखे हैं। जलस्नान व्रतस्नान और मंत्रस्नान इनमेंसे गृहस्थोंके लिये जलस्नान बतलाया है। तथा साधुओंको व्रतस्नान और मंत्रस्नान कहा है। सो ही लिखा है—

तिविहोवि होइ ण्हाणं तोयेण वदेण मंतसंजुत्तं। तोयेण गिहथाणं मंतेण वदेण साहुणं॥

इस प्रकार अर्जिकाकी विधि है।

१८८। चर्चा एकसौ अठासीवीं।

जैन मतमें गृहस्थोंके सूतक पातकके विचारकी विधि क्या है?

समाधान—सूतक दो प्रकार है। जो गृहस्थके घर पुत्र पुत्री आदिका जन्म हो तो दश दिनका सूतक है यदि मरण हो तो बारह दिनका सूतक है। जिस घरमें वा जिस क्षेत्रमें प्रसूति हो उसका सूतक एक महीनेका है। यह सूतक जिसके घर जन्म हो उसको लगता है। जो उसके गोत्रवाले हैं उनको पांच दिनका सूतक लगता है।

यदि प्रसूतिमें ही बालक का मरण होजाय तो अथवा देशांतरमें किसीका मरण होजाय या किसी संग्राममें मरण होजाय अथवा समाधिमरणसे प्राण छोडे हों तो इन सबका सूतक एक दिनका है।

घोड़ी गाय भैंस दासी आदिकी प्रसूति यदि अपने घरमें वा आंगनमें हो तो उसका सूतक एक दिनका लगता है यदि गाय भैंस आदिकी प्रसूति घरमें न हो घरके बाहर किसी क्षेत्रमें वा बगीचेमें हो तो उसका सूतक नहीं लगता।

जिस गृहस्थके यहां पुत्रादिकका जन्म हुआ है उसको बारह दिन पीछे भगवान अरहंतदेवका अभिषेक, जिनपूजा और पात्रदान देना चाहिये तब उसकी शुद्धि होती है। अन्यथा शुद्धि नहीं होती।

यदि दासी दास वा कन्याकी प्रसूति वा मरण अपने घर हो तो उस गृहस्थको तीन दिनका सूतक लगता है। वह प्रसूति या मरण अपने घर हुआ है इसलिये दोष लगता है।

यदि किसी गृहस्थके स्त्रियोंके गर्भका स्राव होजाय वा पात (गर्भपात) होजाय तो जितने महीनेका वह गर्भ हो उतने ही दिन का सूतक लगता है, इसप्रकार समुदाय रूपसे सूतकका वर्णन है उसमें भी थोडासा विशेष यह है कि क्षत्रियोंको पांच दिनका सूतक है ब्राह्मणोंको दश दिनका सूतक है वैश्यको बारह दिनका सूतक है और शूद्रको पंद्रह दिनका सूतक है। सो ही प्रायश्चित्त ग्रन्थमें लिखा है—

पण दश बारण णियमा पण्णारस होइ तहय दिवसे हि। खत्तिय बंभा विस्सा सुद्दा हि कमेण सुद्धंति।

इस अनुक्रमसे सूतक जानना चाहिये।

लौकिकमें जो सती होती है उसके बाद रहनेवाले घरके स्वामीको उसकी हत्याका पाप छह महीनेतक रहता है। छह महीने बाद प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होता है। जिसके घरमें कोई सती होगई हो उसको छह महीने पहले प्रायश्चित्त देकर शुद्ध नहीं करना चाहिये।

यदि कोई अपघात कर मर जाय तो उसके बाद रहने वाले घरके स्वामीको यथायोग्य प्रायश्चित्त देना चाहिये।

भैंसका दूध प्रसूतिके दिनसे पंद्रह दिन पीछे शुद्ध होता है। गायका दूध प्रसूतिके दिनसे दश दिन बाद शुद्ध होता है। बकरीका दूध प्रसूतिके दिनसे आठ दिन बाद शुद्ध होता है इन सबका दूध ऊपर लिखे दिनोंसे पहले शुद्ध नहीं होता।

इसप्रकार गृहस्थोंको संक्षेपसे सूतकका विचार समझ लेना चाहिये। सो ही मूलाचारकी टीकामें लिखा है।

सूतकं वृद्धिहानिभ्यां दिनानि दश द्वादश। प्रसूतिकास्थानं मासैकं दिनानि पंच गोत्रिणाम् ॥ १ ॥
प्रसूतौ च मृते बाले देशांतरे मृते रणे। सन्यासे मरणे चैव दिनैकं सूतकं भवेत् ॥ २ ॥
अश्वी च महिषी चेटी प्रसूता गौर्गृहांगणे। सूतकं दिनमेकं स्यात् गृहबाह्ये न सूतकम् ॥ ३ ॥
पुत्रादिसूतके जाते गते द्वादशके दिने। जिनभिषेकपूजाभ्यां पात्रदानेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
दासी दासस्तथा कन्या जायते मरणे यदि। त्रिरात्रिं सूतकं ज्ञेयं गृहमध्ये तु दूषणम् ॥ ५ ॥
यदि गर्भ-विपत्तिः स्यात् स्रावणं चापि योषितः। यावन्मासं स्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकम् ॥ ६ ॥
पंचाहान् सूतकं क्षत्रे दशाहान् ब्राह्मणे विदुः। द्वादशाहान् च वैश्ये हि शूद्रे पक्षैकसूतकम् ॥ ७ ॥
सतीनां सूतकं हत्यापापं षण्मासकं भवेत्। अन्येषामपहत्यानां यथापापं प्रणाशयेत् ॥ ८ ॥
महिष्याः पक्षकं क्षीरं गोक्षीरं च दिनं दश। अष्टमे दिवसेऽजायाः क्षीरं शुद्धं न चान्यथा ॥ ९ ॥

इसप्रकार सूतकका सामान्य वर्णन समझना चाहिये।

१८९। चर्चा एकसौ नवासीवीं।

गोत्रीको सूतक किसप्रकार पालना चाहिये।

समाधान—यदि गोत्री चौथी पीढी तकका हो तो उसको दश राततक सूतक लगता है, पांचवीं पीढी वालेको छह रातका सूतक लगता है। छठी पीढीवालेको चार दिनका सूतक लगता है चार दिन बाद वह शुद्ध है सातवीं पीढीवाला तीन दिन बाद शुद्ध होता है। आठवीं पीढीवालेको एक दिनरातका सूतक है, पीछे वह शुद्ध है, नौवीं पीढीवालेको दो पहरका सूतक है।

तथा दशवीं पीढी वालेको स्नान करने मात्रका सूतक है। इसके बाद सब शुद्ध हैं। इसप्रकार गोत्रका सूतक समझना चाहिये। सो ही मूलाचारकी टीकामें लिखा है—

चतुर्थे दशरात्रिः स्यात् षट्रात्रिः पुंसि पंचमे। षष्ठे चतुरहः शुद्धिः सप्तमे च दिनत्रयम्॥ १॥
अष्टमे पुंस्यहोरात्रिः नवमे प्रहरद्वयम्। दशमे स्नानमात्रं स्यादेतद् गोत्रस्य सूतकम्॥ २॥

इसप्रकार गोत्रीके सूतकका विचार है। दूसरी तीसरी पीढीका सूतक पहिली पीढीके समान है। पीछे सूतकके दिन घटते जाते हैं। ऐसा समझ लेना चाहिये।

प्रश्न—मुनिको अपने गुरु आदिके मरनेका सूतक किसप्रकार है? तथा राजाके घर मृत्यु आदिका सूतक किसप्रकार है?

समाधान—मुनि तो एक कायोत्सर्ग कर लेनेपर एक क्षणमें ही शुद्ध हो जाते हैं। तथा राजाके पांच दिनका सूतक लगता है। सो ही प्रायश्चित्त शास्त्रमें लिखा है—

यतिः क्षणेन शुद्धः स्यात्पंचरात्रेण पार्थिवः।

१९० । चर्चा एकसौ नव्वेवीं ।

गृहस्थोंके घर स्त्रियां रजस्वला होती हैं उनके योग्य अयोग्य आचरणकी विधि किसप्रकार है?

समाधान—इसका विधान भाषाके क्रियाकोश आदि शास्त्रोंमें लिखा है। तथापि यहां पर कुछ विस्तार और विशेषताके साथ लिखते हैं स्त्रियां जो रजस्वला होती हैं सो प्रकृतिरूपसे तथा विकृतिरूपसे ऐसे दो प्रकारसे होती हैं। जो स्वभावसे ही प्रत्येक महीने योनिमार्गसे रुधिरका स्राव होता है वह प्रकृतिरूप होता है। जो असमयमें ही अर्थात् महीनेके भीतर ही रजःस्राव होता है उसको विकृतिरूप कहते हैं वह दूषित नहीं है उसके होनेपर केवल स्नानमात्रसे शुद्धि होती है। उसका सूतक नहीं होता। यदि पचास वर्षके बाद पचास वर्षकी अवस्थासे ऊपर रजःस्राव हो तो उसकी शुद्धि स्नान मात्र ही है। अभिप्राय यह है कि जो रजःस्राव महीनेसे पहले होता है वह विकाररूप है और रोगसे होता है। स्त्रियोंके प्रदर आदि अनेक रोग होते हैं उन्हींसे होता है। इसीप्रकार रजोधर्मका समय पचास वर्षतक है। उससे बाद जो रजोधर्म हो तो वह रजःस्वलाके समान सदोष नहीं है उसकी शुद्धि स्नानमात्रसे ही होती है। जो बारहवर्षकी अवस्थासे लेकर पचास वर्षतक प्रतिमास रजोधर्म होता है वह काल रजोधर्म है। इसके बाद अकालरूप कहा जाता है। इसप्रकार इसके दो भेद हैं।

आगे इसका विशेष वर्णन लिखते हैं। जिस दिन स्त्रीके रजका अवलोकन हो उस दिनसे लेकर तीन दिन तक अशौच है। यदि उस दिन आधी रात तक रजोदर्शन हो तो भी पहला ही दिन समझना चाहिये। आगे इसीका खुलासा लिखते हैं। रात्रिके तीन भाग करना चाहिये। उसमेंसे पहला और दूसरा भाग तो उसी दिनमें समझना चाहिये। और पिछिला एक भाग दूसरे दिनकी गिनतीमें लेना चाहिये। ऐसी आम्नाय है।

यदि ऋतुकालके बाद फिर वही स्त्री अठारह दिन पहले ही रजस्वला हो जाय तो वह केवल स्नानमात्रसे ही शुद्ध हो जाती है। उसको तीन दिनका आशौच नहीं लगता है। यदि कोई स्त्री अत्यंत यौवनवती हो और वह रजःस्वला होनेके दिनसे सोलह दिन पहले ही फिर रजःस्वला होजाय तो वह स्नान करने मात्रसे शुद्ध होजाती है। इसका भी स्पष्ट अभिप्राय यह है कि रजस्वला होनेके बाद फिर वही स्त्री रजस्वला होनेके दिनसे यदि अठारह दिन पहले ही फिर रजस्वला होजाय तो वह स्नान करने मात्रसे शुद्ध हो जाती है। यदि उसके अठारहवें दिन रजोधर्म हो तो उसको दो दिनका सूतक पालन करना चाहिये यदि उसके उन्नीसवें दिन रजोधर्म हो तो उसको तीन दिन तक सूतक पालन करना चाहिये। तब वह शुद्ध होती है। यदि रजस्वला होनेके बाद चौथे दिन स्नान करले और फिर रजस्वला होजाय तो फिर वह अठारह दिन तक शुद्ध नहीं होती अर्थात् उसे अठारह दिनतक सूतक पालन करना चाहिये। सो ही त्रिवर्णाचारके तेरहवें परिच्छेदमें लिखा है।

रजः पुष्पं ऋतुश्चेति नामान्यस्यैव लोकतः। द्विविधं तत्तु नारीणां प्रकृतं विकृतं भवेत् ॥ १ ॥
तत्प्रकृतं यत्तु स्त्रीणां मासे मासे स्वभावतः। अकाले द्रव्यरोगाद्युद्रेकात्तु विकृतं मतम् ॥ २ ॥
अकाले चेद्यदि स्त्रीणां तद्रजो नैव दुष्यति। पंचाशद्वर्षादूर्ध्वं तु अकाल इति भाषितः ॥ ३ ॥
रजो वा दर्शनात्स्त्रीणां अशौचं दिवसत्रयम्। कालजे चार्द्धरात्राच्चेत् पूर्वं तत्कस्यचिन्मतम् ॥ ४ ॥
रात्रेः कुर्यात्त्रिभागं तु द्वौ भागौ पूर्ववासरे। ऋतौ सूते मृते चैव ज्ञेयोऽन्त्यः स परेहनि ॥ ५ ॥
ऋतुकाले व्यतीते तु यदि नारी रजस्वला। तत्र स्नानेन शुद्धिः स्यादष्टादशदिनात्पुरा ॥ ६ ॥
दिनाच्चेत्षोडशादर्वाक् नारी या चातियौवना। पुनः रजस्वलापि स्याच्छुद्धिः स्नानेन केवन ॥ ७ ॥

रजस्वलायाः पुनरेव चेद्रजः प्रागृदृश्यतेऽष्टादश वासराच्छुचिः॥
अष्टादशाहि यदि चेद् दिनद्वयादेकोनविंशे त्रिदिनात्ततः परम् ॥ ८ ॥
रजस्वला यदि स्नात्वा पुनरेव रजस्वला। अष्टादशदिनादर्वाक् शुचित्वं न निगद्यते ॥ ९ ॥

आगे रजस्वला स्त्रीके आचरण आदिके योग्य अयोग्यकी विधि लिखते हैं।

यदि कोई स्त्री अपने समयपर रजस्वला हुई हो तो उसको तीन दिनतक ब्रह्मचर्य पूर्वक रात्रिमें किसी एकांत स्थानमें जहां मनुष्योंका संचार न हो ऐसी जगह डाभके आसनपर सोना चाहिये। उसको खाट पलंग शय्या वस्त्र रुईका विछोना तथा ऊनका बिछोना आदिका स्पर्श न करना चाहिये। तीन दिन तक उसको देवधर्मकी बातभी नहीं करनी चाहिये। जिसप्रकार मालती माधवी वा कुन्द आदिकी वेल संकुचित रूपसे रहती है उसीप्रकार संकुचित होकर प्राण धारण कर रहना चाहिये। तीन दिन तक शीलव्रत पालना चाहिये दूध दही घी छाछ आदि गोरसका त्याग करदेना चाहिये। एकबार रूखा अन्न खाना चाहिये। उसका नेत्रोंमें काजल अंजन आदि कुछ नहीं डालना चाहिये। उवटन करना, तेल लगाना, पुष्पमाल पहनना, गंध लगाना आदि शृंगारके सब साधनोंका त्याग करदेना चाहिये। तीन दिनतक उसको अपने देव गुरु राजा और अपने कुलदेवताका रूप दर्पणमें भी नहीं देखना चाहिये तथा न इनसे किसी प्रकारका संभाषण करना चाहिये। इन स्त्रियोंको तीन दिनतक किसी वृक्षके नीचे अथवा पलंग पर नहीं सोना चाहिये तथा दिनमें भी नहीं सोना चाहिये। उसे अपने मनमें पंच णमोकार मंत्रका स्मरण करना चाहिये। उसका उच्चारण नहीं करना चाहिये। केवल मनमें चिंतवन करना चाहिये। अपने हाथमें वा पत्तलमें भोजन करना चाहिये। किसी भी धातुके वर्तनमें भोजन नहीं करना चाहिये। यदि वह किसी तांबे पीतल आदिके पात्रमें भोजन करें तो उस पात्रको अग्निसे शुद्ध करना चाहिये। चौथे दिन गोसर्ग कालके बाद स्नान करना चाहिये। प्रातःकालसे लेकर छह घडी पर्यंत गोसर्ग काल कहा जाता है। चौथे दिन स्नान करनेके बाद वह स्त्री अपने पतिके और भोजन बनानेके लिये शुद्ध समझी जाती है। देव पूजा गुरु सेवा तथा होम कार्यमें वह पांचवें दिन शुद्ध होती है। सो ही त्रिवर्णाचारमें लिखा है—

काले ऋतुमती नारी कुशासने स्वपेत्सती। एकांतस्थानके स्वस्था जनदर्शनवर्जिता ॥ १० ॥
मौनयुताथ वा देवधर्मवार्ताविवर्जिता। मालतीमाधवीवल्लीकुंदादिलतिकाकरा ॥ ११ ॥

स्वोच्छीलं दिनं त्रीणि चैकभक्तं विगोरसम् । अंजनाभ्यंगस्नानगंधमंडनवर्जिता ॥ १२ ॥
देवं गुरुं नृपं स्वस्य रूपं च दर्पणेपिवा । न पश्येत्कुलदेवं च नैव भाषेन तैः समम् ॥ १३ ॥
वृक्षमूले स्वपन्नैव खट्वाशय्यासनं तथा । मंत्रं पंचनमस्कारं जिनस्मृतिं स्मरेद् हृदि ॥ १४ ॥
अंजलावश्नीयात्पर्णपात्रे ताम्रे च पैत्तले । भुक्त्वा चेत्कांश्यजे पात्रे शुद्ध्यति तत्तु वन्हिना ॥ १५ ॥
चतुर्थे दिवसे स्नायात् प्रातः गोसर्गतः परम् । पूर्वाह्ने घटिका षट्कं गोसर्ग इति भाषितः ॥ १६ ॥
शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेह्नि भोजने रंधनेऽपि वा । देवपूजागुरूपास्तिहोमसेवासु पंचमे ॥ १७ ॥

रजस्वला स्त्रियोंके आचरण इस प्रकार बतलाये हैं। जो स्त्रियां रजोधर्मके तीन दिनमें अंजन लगाती हैं, उबटन करती हैं पुष्पमाला पहनती हैं गंध लगाती हैं तेल मर्दन करती हैं और ऊंचे स्वरसे बोलती हैं उनका गर्भ सदोष और विकृत रूप हो जाता है।

स्त्रियोंको ऋतुस्रावके तीन दिन तक ब्रह्मचर्यपूर्वक दाभके आसनपर सोना चाहिये, अपने पतिको भी न देखना चाहिये। हाथपर रखकर अथवा मिटीके सकोरामें वा पत्तोंकी पत्तलोंमें रखकर रूखा अन्न भोजन करना चाहिये। आंसू डालना, नाखून काटना, उबटन लगाना, तेल लगाना, गंध लगाना, आंखोंमें अंजन लगाना, पानीमें डूब कर स्नान करना, दिनमें सोना, दौडना, बहुत ऊंचे स्वरसे किसीको आवाज देते हुए बोलना, ऐसे ही ऊंचे शब्द सुनना, हंसना अधिक बकवाद करना, कूटना, पीसना, अधिक बोझा उठाना, पृथ्वी खोदना, फैल फूटकर (बहुतसी जगह घेरकर) बैठना वा सोना तथा और भी ऐसे ही ऐसे अयोग्य कार्य तीन तक नहीं करना चाहिये।

यदि कोई स्त्री अपनी अजानकारीसे वा प्रमादसे वा उसमें लोलुपताके कारण अथवा दैवयोगसे ऊपर लिखे कार्योंको करती है तो उसके अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न हो जाते हैं। यदि कोई स्त्री इन ऋतुके तीन दिनोंमें रोती है तो उसके गर्भके बालकके (जो बालक आगे गर्भमें आवेगा) उसके नेत्र विकृत हो जाते हैं। अंधा हो जाता है धुंधला होजाता है। आंखमें फूला हो जाता है वा काणा ऐंचाताना होजाता है। अथवा वह टेर होजाता है। उसकी आंखोंसे पानी बहता रहता है। उसकी आंखें लाल होजाती हैं वा बिल्लीकीसी (मांजरी) आंखें हो जाती है। इस प्रकार उस बालकके नेत्रोंमें अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न होजाते हैं। यदि कोई

१२६

स्त्री इन तीन दिनोंमें नाखून काटती है तो उसके बालकके नाखूनोंमें विकार होजाता है। उस बालकके नाखून फटे टूटे सूखे, काले हरे, टेडे, और देखनेमें बुरे होजाते हैं। यदि वह स्त्री इन तीन दिनोंमें उबटन करती है वा तेल लगाती है उसके बालकके अठारह प्रकारके कोढ रोगोंमेंसे कोईसा भी कोढ रोग होजाता है। यदि वह इन तीन दिनोंमें गंध लगावे वा जलमें डूबकर स्नान करे तो वह बालक दुराचारी व्यसनी होता है। यदि वह आंखोंमें अंजन लगावे तो उसके बालकके नेत्र नाद सहित होजाते हैं। दिनमें सोनेसे वह बालक रातदिन सोनेवाला होता है। अथवा सदा ऊंघनेवाला बालक होता है। जो स्त्री इन तीन दिनोंमें दौडती है उसका बालक चंचल होता है उत्पाती उपद्रवी होता है। ऊंचे स्वरसे बोलने वा सुननेसे उसका बालक बहिरा होता है। जो स्त्री इन तीन दिनोंमें हंसती है उसके बालकके तालु जीभ ओठ काले पडजाते हैं। इन तीन दिनोंमें अधिक बोलनेसे उस स्त्रीके प्रलापी बालक होता है। जो झूठा हो लवार हो उसको प्रलापी कहते हैं। 'प्रलापोऽनृतभाषणम्' झूठ बोलनेका नाम प्रलाप है। जो स्त्री रजोधर्मके समयमें परिश्रम करती है उसके उन्मत्त उन्माद रोगवाला वा बावला पुत्र होता है। जो स्त्री उन दिनों पृथ्वी खोदती है उसके दुष्ट बालक होता है। जो चौडेमें सोती है उसके उन्मत्त बालक होता है। इसप्रकार अयोग्यतासे अनेक दोष उत्पन्न होजाते हैं। इसलिये वे अयोग्य कार्य नहीं करने चाहिये। विवेक पूर्वक रहना चाहिये। यह कथन जैन शास्त्रोंका नहीं है किंतु लटकन मिश्रके पुत्र भाव मिश्रके बनाये हुए भावप्रकाश नामके वैद्यक शास्त्रमें लिखा है यहां प्रकरण समझकर लिख दिया है। यथा—

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लौल्याद्वा दैवतश्च वा। साचेत्कुर्यान्निषिद्धानि गर्भे दोषास्तदाप्नुयात् ॥
एतस्या रोदनाद् गर्भो भवेद्विकृतलोचनः। नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यंगतो भवेत् ॥
अनुलेपात्तथा स्नानाद् दुःशीलो जननादहक्। स्वापिशीलो दिवास्वापाच्चंचलः स्यात्प्रधावनात् ॥
अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरः खलु जायते। तालुदंतोष्ठजिह्वासु श्यामो हसनतो भवेत् ॥
प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात्। खलोतिभूमिखननादुन्मत्तो वातसेवनात् ॥

इसप्रकार अयोग्य कर्मोंके करनेके दोष बतलाये हैं सो इनका त्याग करना ही उचित है।

जो कोई अनाचारी भ्रष्ट इनका दोष नहीं मानते। कितने ही लोग स्पर्श करलेनेपर भी स्नान नहीं करते। कितने ही लोग दूसरे तीसरे दिन स्नान कराकर उसके हाथके किये हुए सब तरहके भोजन खा लेते हैं। कोई कोई लोग उन्हीं दिनोंमें कुशील-

सेवन भी करते हैं परन्तु ऐसे लोग महा अधर्मी पातकी भ्रष्ट और नीचातिनीच कहलाते हैं। ऐसे लोग स्पर्श करने योग्य भी नहीं है। इसका भी कारण यह है कि रजोधर्मवाली स्त्रीकी पहले दिन चांडाली संज्ञा है दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी संज्ञा है तीसरे दिन रजकी संज्ञा है। और चौथे दिन शुद्ध होती है। यथा—

प्रथमेहनि चांडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेहनि शुद्ध्यति ॥

इसलिये स्त्री चौथे ही दिन शुद्ध होती है। जो स्त्री परपुरुषगामिनी है वह जीवनपर्यंत अशुद्ध रहती है। व्यभिचारिणी स्त्री स्नानादिक करलेने पर भी शुद्ध नहीं होती। वह परपुरुषका त्यागकर देनेमात्रसे ही शुद्ध हो सकती है। सो ही लिखा है—

त्रिपक्षं जायते सूता ऋतुधात्री दिनत्रयम्। परजनरता नारी यावज्जीवं न शुद्ध्यति ॥

कितने ही अधर्मी इन तीन दिनोंमें भी सामायिक प्रतिक्रमण तथा शास्त्रके स्पर्श आदि कार्योंको करते हैं ऐसे लोग उससे होने वाले अविनय और महापापको नहीं मानते। यदि कोई इन कामोंके करनेके लिये निषेध करता है तो उत्तर देते हैं कि इस शरीरमें शुद्ध पदार्थ है ही क्या? इसमेंसे नव द्वार सदा बहते रहते हैं यदि किसीके गांठ वा फोडा हो जाता है और वह पककर फूट जाता है उसी प्रकार स्त्रियोंका यह मासिकधर्म है। इसप्रकार कहकर वे लोग मानते नहीं परन्तु ऐसे लोग आज्ञाबाह्य है महा-पातकी वा अनाचारी हैं।

रजस्वला स्त्रियोंके स्पर्श अस्पर्शका, उसकी भूमिकी शुद्धिका तथा संभाषण आदिके दोषोंका और उनके शुद्ध करनेका वर्णन विशेषकर त्रिवर्णाचार आदि प्रायश्चित्त शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये। यहां संक्षेपसे लिखा है।

कितने ही पापी अपनी लक्ष्मीके मदमें आकर रजस्वला स्त्रियोंको भूमिपर नहीं सोने देते किंतु उन्हें पलंगपर ही सुलाते हैं। यदि कोई इसका निषेध करता है तो अपनी राजरीतिका अभिमान करते हुये नहीं मानते हैं किंतु उसी तरह चलते हैं परंतु ऐसे लोग बडे अधर्मी और पातकी गिने जाते हैं। जो मुनि होकर घोडेपर चढे, जो स्त्री रजस्वला अवस्थामें ही पलंगपर बैठे या सोवै तथा जो गृहस्थ शास्त्रसभामें बैठकर बातैं करें ऐसे पुरुषोंको देखकर ही वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। भावार्थ—जब ऐसे लोगोंको देखनेसे ही देखनेवालोंको वस्त्र सहित स्नान करना पडता है तो फिर उन लोगोंके पापकी तो बात ही क्या है अर्थात् वे बहुत भारी दोषके भागी होते हैं सो ही लिखा है— ३३८

अश्वारूढं यतिं दृष्ट्वा खट्वारूढां रजस्वलाम् । शास्त्रस्थाने गृहवक्तॄन् सचेल स्नानमाचरेत् ॥

१९१ । चर्चा एकसौ इक्यानवेवीं ।

यदि रजस्वला स्त्रीके पास बालक हो तो उसके स्पर्शास्पर्शकी शुद्धि किसप्रकार है ?

समाधान—यदि कोई बालक मोहसे रजस्वला स्त्रीके पास सोवै बैठे वा रहे तो सोलह वार स्नान करनेसे उसकी शुद्धि होती है यदि कोई दूध पीनेवाला बालक दूध पीनेके लिये उसका स्पर्श करे तो जलके छींटे देने मात्रसे ही उसकी शुद्धि हो जाती है। ऐसे छोटे बालकको स्नान करनेका अधिकार नहीं है। सो ही त्रिवर्णाचारमें लिखा है—

तयासह तद्बालस्तु व्यष्ट स्नानेन शुद्ध्यति । तां स्पर्शन् स्तनपायी वा प्रोक्षणे नैवशुद्ध्यति ॥

कदाचित् कोई यहांपर छींटा देनेका संदेह करे तो इसका उत्तर यह है कि प्रायश्चित्त शास्त्रोंमें और भी कितने ही पदार्थ बतलाये हैं जिनमें स्पर्शका दोष नहीं माना जाता। जैसे मक्खी, हवा, गाय, सुवर्ण, अग्नि, महानदी, नाव, पाथोदक और सिंहासन अस्पर्श्य नहीं होते ऐसा विद्वानोंका कहना है—

मक्षिका मारुतो गावः स्वर्णमग्निमहानदी । नावः पाथोदकं पीठं नास्पृश्यं चोच्यते बुधैः ॥

१९२। चर्चा एकसौ बानवेवीं।

ऊपर लिखे अनुसार गृहस्थका यथायोग्य आचरण तो मालूम हुआ परंतु यदि रजस्वला स्त्री रोगिणी हो अशक्त हो उसको स्नानादिक किस प्रकार कराना चाहिये।

समाधान—यदि कोई स्त्री किसी रोग वा शोकसे अशक्त हो वा बुढापेसे अशक्त हो और वह रजस्वला हो जाय तो उसकी शुद्धि इसप्रकार करना चाहिये कि चौथे दिन कोई निरोग सशक्त स्त्री उसे स्पर्श करे फिर स्नान करे, फिर स्पर्श करे फिर स्नान करे। इस प्रकार वह दशबार उसको स्पर्श करे तो वह स्त्री शुद्ध होजाती है। अंतमें रजस्वलाके वस्त्रोंको बदलवाकर दश वा बारह आचमन कर तथा स्नान करलेनेसे वह नीरोग स्त्री भी शुद्ध होजाती है रोगिणी रजस्वला स्त्रीकी शुद्धिका यह क्रम है। सो ही त्रिवर्णाचारमें लिखा है—

आतुरे तु समुत्पन्ने दशवारमनातुरा। स्नात्वा स्नात्वा स्पर्शेदेनामातुरा शुद्धिमाप्नुयात्॥ ८५॥
जराभिभूता या नारी रजसा चेत्परिप्लुता। कथं तस्य भवच्छोच्यं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा॥ ८६॥
चतुर्थेहनि संप्राप्ते स्पर्शेदन्या तु तां स्त्रियम्। सा च सचैव ग्राह्या यः स्पर्शेस्नात्वा पुनः पुनः॥ ८७॥
दश द्वादश वा कृत्वा ह्याचमनं पुनः पुनः। अंत्ये च वाससां त्यागं स्नात्वा शुद्धा भवेत्तु सा॥

१९३। चर्चा एकसौ तिरानवेवीं।

सोलह स्वर्गके ऊपर नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पांच पंचोत्तर विमान बतलाये हैं सो नौ ग्रैवेयक और पांच पंचोत्तरका विमानोंका नाम तथा वहांकी आयु काय आदिका स्वरूप तो मालूम है। परन्तु नव अनुदिशके नाम प्रगट सुननेमें नहीं आये सो कौन कौन हैं?

समाधान—अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन ये चार विमान तो पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर इन चार दिशाओंमें श्रेणीवद्ध विमान हैं तथा सोम, सोमरूप, अंक, फलिक ये चार विमान आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य और ईशान इन चारों विदिशाओंमें प्रकीर्णक विमान हैं और आदित्यनामका विमान सबके मध्यमें इन्द्रक विमान है। इसप्रकार नौ अनुदिशके नौ विमान हैं। सो ही त्रिलोकसारमें लिखा है–

अच्चीय अच्चिमालिणि वइरे वइरोयण अणुद्दिसगा। सोमो य सोमरूवे अंके फलिके य आइच्चे॥ ४५६॥

इनकी आयु काय आदिका वर्णन त्रिलोकसारसे जान लेना चाहिये।

१९४। चर्चा एकसौ चौरानवे वीं।

जिन देवोंकी आयु जितने सागरोंकी है उनका मानसिक आहार उतने ही हजार वर्ष बाद होता है। तथा उनका श्वासोच्छ्वास उतने ही पक्ष बाद होता है। यह कथन प्रसिद्ध है परंतु जिन देवोंकी आयु पल्योंकी है उनके आहार और श्वासोच्छ्वासका क्या नियम है।

समाधान—भवनवासियोंमें उत्कृष्ट आयु असुरकुमार देवोंकी है। तो उनके मानसिक आहार एक हजार वर्षसे अधिक समय

बाद होता है तथा सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतिषी देवोंके सागरोपके अंशोंके हिसाबसे अलग अलग है। और बाकीके जो नौ प्रकारके भवनवासी समस्त देवांगनाओंके मानसिक आहारका समय इसीक्रमसे समझना चाहिये। सो ही लिखा है—

असुरेतित्तिसु सासाहारा पक्खं समासहस्संतु। सुमुहुत्त दिणाणद्धं तेरस बारस दलूणट्ठं ॥ २४८ ॥

भावार्थ—असुरकुमारनिके एक पक्ष भये एक बार उस्वास होता है, हजार वर्ष गये एक बार आहार होता है। बहुरि नागकुमार आदि तीन जातिविषैं साढा बारा मुहूर्त भये उच्छ्वास हो है साढ़ा बारा दिन गये आहार हो है। बहुरि दिक्कुमार आदि तीन जाति-विषैं साढा सात मुहूर्त भये उच्छ्वास होवै साढा सात दिन गये आहार हो है।

भवणावासादीणं गोउरपायागणचणादिघरा भोम्माहारुस्सासा साहिय पणदिण मुहुत्ताय। त्रिलोकसार।

बहुरि व्यंतरनिके आहार किछू अधिक पांच दिन भये अर उच्छ्वास किछू अधिक पांच मुहूर्त भये जानना।

ज्योतिष्कोंका आहार कुछ अधिक एक हजार वर्ष पीछे होता है। कुछ अधिकका परिमाण अंतर्मुहूर्त अधिक लेना चाहिये। जैसा कि मूलाचारमें लिखा है—

उक्कस्सेणाहारो वाससहस्साहिएण भवणाणं। जोदिसियाणं पुण भिण्णमुहुत्तेणेदि सेसउक्कस ॥ १०५ ॥

इसीप्रकार ज्योतिषियोंका भिन्न मुहूर्त अधिक एक पक्षके पीछे उच्छ्वास होता है जैसा—

उक्कस्सेणुच्छासो पक्खेणादिएण होइ भवणाणं। मुहुत्तपुधत्तेण तहा जोइसिणांगाण भोमाण। १०६ मू०

१९५। चर्चा एकसौ पिचानवे वीं।

दंडकमें लिखा है कि तीसरे नरकसे निकलकर कोई जीव तीर्थंकर भी होते हैं सो यह वर्णन किस प्रकार है।

समाधान—बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती ये जीव नरकसे निकलकर कभी नहीं होते। स्वर्गलोकसे आनेवाले जीवोंको ही यह पद प्राप्त होता है। इसका भी कारण यह है कि यह पदवी विना संयमके प्राप्त नहीं होती तथा संयमसहित मरण करनेवाला जीव नरकमें जाता नहीं। इसलिये इन पदवियोंको पानेवाला स्वर्गसे ही आता है। सोही मूलाचारमें लिखा है।

णिरएहि णिग्गदाणं आणंतरभवेहि णत्थि णियमा दु। बलदेववासुदेवतणं च तह चक्कवट्टीणं ॥ २० ॥

यह नियम है कि नरक योनिसे निकलकर बलभद्र वासुदेव और चक्रवर्तीकी पदवी प्राप्त नहीं होती।
सो ही सिद्धांतसार दीपिकामें लिखा है।

निर्गत्य नरकाज्जीवा चक्रेशबलकेशवाः। तच्छत्रवो न जायन्ते चयन्त्यंते यतो दिवात्॥

त्रिलोकसारमें भी लिखा है—

णिरयचरो णत्थि हरिबलचक्की'॥ २०४॥

इसप्रकार लिखा है।

यहांपर कदाचित कोई यह पूछे कि तिरेसठ शलाका पुरुष कहां कहांसे आकर उत्पन्न हो सकते हैं और कहां कहांसे आकर उत्पन्न नहीं होते इसका खुलासा किसप्रकार है।

उत्तर—मनुष्य तथा तिर्यंचगतिसे आकर तीर्थंकर चक्रवर्ती नारायण, प्रतिनारायण, और बलभद्र नहीं होते। स्वर्ग वा नरक इन दो गतियोंसे ही आकर उत्पन्न होते हैं सोही मूलाचारमें लिखा।

माणुस तिरियाय तहा सलाग पुरिसा ण होंति खलु णियमा।
तेसिं अण्णंतरभवे भयणिज्जं णिव्वुदीगमणं॥

प्रश्न—जो शलाकापुरुष देवगतिसे आकर होते हैं वे किन किन देवोंकी जातियोंसे आकर होते हैं और किन किन निकायोंसे नहीं होते।

समाधान—भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी इन तीन निकायोंके देव तो आकर शलाका पुरुष होते नहीं तथा सोलह स्वर्ग नौ ग्रैवेयक नौ अनुदिश और पंच पंचोत्तरके देव आकर तीर्थंकर आदि शलाका पुरुष हो सकते हैं ऐसा नियम है। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

आजोंदिसित्ति देवा सलागपुरिसा ण होंति ते णियमा। तेसिं अणंतरभवे भयणिज्जं णिव्वुदीगमणं॥

त्रिलोकसारमें भी लिखा है—

णरतिरियगदीहिंतो भवणतियादो य णिग्गया जीवा। ण लहंतेते पदविं तेवट्ठिसलागपुरिसाणं॥ ५४१ ॥

स्वर्गलोकमें भी कल्पवासी तथा कल्पातीत देवोंमें भी कितने ही जीव आकर इन पदवियोंको पाते हैं और बहुतसे जीव नहीं पाते। उनका क्रम इसप्रकार है। अनुदिश वा अनुत्तर विमानवासी कल्पातीत देव वहांसे आकर बलभद्र तीर्थंकर चक्रवर्ती पद पाते हैं किंतु वहांसे देवोंमेंसे आकर वसुदेव नहीं होते। यह नियम है।

सो ही मूलाचारमें लिखा है—

णिव्वुदिगमणे रामत्तणे य तित्थयरचक्कवट्टित्ते। अणुदिसणुत्तरवासी तदो चुदा होंति भयणिज्जा॥ ४० ॥

ऐसा शलाका पुरुषोंके होनेका नियम है।

१९६। चर्चा एकसौ छ्यानवेवीं।

यह मनुष्य किस किस गतिसे आकर हो सकता है तथा किस किस गतिसे आकर नहीं हो सकता।

समाधान—अग्निकाय और वायुकाय इन दोनोंके सूक्ष्म तथा स्थूल जीव आकर मनुष्यभव धारण नहीं करते ऐसा नियम है बाकीके समस्त गतियोंके जीव आकर मनुष्य हो सकते हैं। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

सव्वेपि तेउकाया मव्वे तह वाउकाइया जीवा। ण लहंति माणुसत्तं णियमादु अणंतरभवेहिं॥ २५ ॥

दंडक भाषामें भी लिखा है—

तेजकाय अरु वायुकाय। इन विन और सवै नर थाय।

चर्चा एकसौ सतानवेवीं।

अन्यमतके तपसी परिव्राजक आदि तप करते हैं वे मरकर ऊपर स्वर्गमें कहांतक जा सकते हैं।

समाधान—असंख्यात वर्षकी आयुवाले जीव अर्थात् कुभोगभूमिके मनुष्य वा तिर्यंच मरनेके बाद अपने मिथ्यात्वरूप

१—नरकसे निकलकर चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव प्रतिवासुदेव नहीं होते ऐसा नियम है इसमे तीर्थंकरका निषेध नहीं है तथा शलाका पुरुषोंका मनुष्य तिर्यंच गतिसे आकर होनेका निषेध है। इससे सिद्ध होता है कि तीर्थंकर स्वर्ग वा नरकसे आकर हो सकते हैं।

भावोंसे भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क इन तीनों ही जातिके देवोंमें उत्पन्न होते हैं । वे आगे वैमानिक देवोंमें उत्पन्न नहीं हो सकते । इसीप्रकार जो उत्कृष्ट भावोंको धारण करनेवाले हिंसापूर्वक पंचाग्नि आदि तप धारण करने वाले और कंदमूल भक्षण करनेवाले तपस्वी मरनेके बाद अपने अज्ञान तपके फलसे भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क और कल्पवासी देवोंतक सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न हो सकते हैं आगे कल्पातीत देवोंमें उत्पन्न नहीं होते सो ही मूलाचारमें लिखा है ।

संखादीदाऊणं मणुयतिरिक्खाण मिच्छभावेण । उववादो जोदिसिए उकस्सं तावसाणं तु ॥ ३१ ॥

तथा अन्यमती परिव्राजक लोग अपने शुभ भावोंसे मरकर भवनवासियोंसे लेकर बारहवें सहस्रार स्वर्ग तक उत्पन्न हो सकते हैं । आगे नहीं जा सकते । सो ही लिखा है—

परिवाजगण णियमा उकस्सं होदि वंभलोगम्हि । उकस्स सहस्सार ति होदि या आजीवगाण तहा ॥

भाषामें भी लिखा है ।

परिव्राजक नामा परमती । सहस्रार ऊपर नहि गती ॥

१९८ । चर्चा एकसौ अठानवेवीं ।

सुना जाता है कि एकेंद्रियसे लेकर पचेंद्रिय तकके जीव सब तीनों लोकोंमें सब जगह भरे हुए हैं सो क्या यह बात ठीक है ?

समाधान—यह बात ठीक नहीं हैं इसमें इतना विशेष है कि पृथ्वीकायिक अपकायिक तेजस्कायिक वायुकायिक और वनस्पतिकायिक तथा नित्यनिगोद इतरनिगोदके समस्त एकेंद्रिय जीव ऊर्ध्वलोक मध्यलोक अधोलोक समस्त तीनों लोकोंमें भरे हुए हैं, तथा पंचेन्द्रिय देव नारकी मनुष्य तिर्यंच आदि सेनी जीव तीनों लोकोंमें रहनेवाली त्रसनाडीमें भरे हुए हैं और दो इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, असेनी पशु और मनुष्य गतिके पंचेंद्रिय जीव मध्यलोकमें ही उत्पन्न होते हैं । ये जीव दूसरी जगह उत्पन्न नहीं होते । नरक स्वर्ग तथा सिद्धस्थानमें ये जीव उत्पन्न नहीं होते, मध्यलोकमें ही उत्पन्न होते हैं । सो ही मूलाचारमें लिखा है—

एइंदियाय पंचेंदियाय उड्ढमह तिरयलोएसु । सयल विगलिंदिया पुण जीवा तिरिय हि लोयं हि ॥ ६० ॥

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें भी लिखा है—

वितिचउक्खा जीवा हवंति णियमेण कम्मभूमीसु। चरिमे दीवे अद्धे चरिमसम्मुद्देसु सव्वेसु ॥ ४२ ॥

१९९। चर्चा एकसौ निन्यानवेवीं।

पहले एक चर्चामें लिखा है कि देवगतिमें देवोंके केश उत्पन्न नहीं होते सो केशोंमें ऐसा क्या दोष है?

समाधान—शरीरमें केश आदि कितने ही चिन्ह ऐसे हैं जो पिताके गुणोंसे उत्पन्न होते हैं सो ही शारीरिक शास्त्रमें लिखा है—

केशः स्मश्रु च लोमानि नखा दन्ताः शिरास्तथा। धमन्यः स्नायवः शुक्रमेतानि पितृजानि हि ॥

अर्थात् शिरके केश, दाढी, मूछ, रोम, नख, दांत, शिरा चौवीस धमनी नाडी, नसाजाल, और वीर्य सब शरीरमें पिताके वीर्यके गुणसे उत्पन्न होते हैं। बाकीके मांस रुधिर मज्जा मेदा, यकृत प्लीहा, अंतडी, नाभि, हृदय गुदा आदि माताके रुधिर नामके धातुसे उत्पन्न होते हैं। सो ही शारीरिक शास्त्रमें लिखा है—

मांसासृक्मज्जामेदा च यकृत्प्लीहांत्रनाभयः। हृदयं च गुदा चापि भवन्त्येतानि मातृतः ॥

इसप्रकार ये सब गुण माताके रुधिरसे उत्पन्न होते हैं। देवोंके शरीरमें रस रुधिर मांस मेदा अस्थि मज्जा शुक्र आदि धातु उपधातु है नहीं फिर केश कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। देवोंका शरीर वैक्रियिक है और केश आदि सब गुण औदारिकके हैं। देवोंका जन्म उपपाद जन्म है यथा "देवनारकाणामुपपादः" देव नारकियोंका उपपाद जन्म होता है। इस सूत्रसे देवोंके उपपाद जन्म होनेके कारण माता पिताके गुणोंका अभाव सिद्ध होता है।

देवगतिमें चतुर्णिकाय देवोंके तथा देवियोंके केश अर्थात् मस्तक, भृकुटी नेत्र, नासिका (नाक) दाढी मूछ आदिकके केश, लिंग वृषण आदिके केश शरीर पर होनेवाले रोम नहीं होते। इसी प्रकार हाथ पांवकी वीसों उंगलियोंमें नख नहीं होते, समस्त शरीर पर विभासिनी नामका पहला चमडा (चमडेके ऊपर एक पतलासा चमडा) नहीं होता। इसीप्रकार सात प्रकारके चमडे, नख, रुधिर, हड्डी, मल, मूल, वीर्य, पसीना, छाया नेत्रोंकी टिमकार आदि समस्त देवोंके नियमसे नहीं होते हैं सो ही मूलाचारमें लिखा है—

केस णह मंसु लोमा चम्म वसा रुहिर मुत्ति पुरीसं वा।
णेवट्टी णेव सिरा देवाण सरीरसंठाणे ॥ ११ ॥

प्रश्न—यदि देवोंके केश नहीं है तो उनका रूप रुड मुंडसा मालूम पडता होगा।

समाधान—समस्त देव देवागनाओंका शरीर तथा तीर्थंकरादिक शलाका पुरुषोंका शरीर अत्यंत सुंदर होता है। जिस प्रकार सोलह वर्षका राजकुमार शोभायमान होता है उसी प्रकार सदा शोभायमान बना रहता है। जहां जहां जैसी सुंदरता चाहिये वहां पर वैसी ही सुंदरता पुण्यपरमाणुरूप नामकर्मके उदयसे बन जाती है।

इनका विशेष वर्णन अन्य ग्रंथोंसे जान लेना चाहिये।

२००। चर्चा दोसौवीं।

आश्रमोंमें रहनेवाले त्यागी लोग गृहस्थोंके बालकोंको पांचो उदंबर फल और मद्य मांस मधुका त्याग करा देते हैं। परंतु कितने ही अनाचारी किसी रोगमें वैद्योंके कहनेसे औषधिमें शहत खा लेते हैं सो क्या ठीक है?

समाधान—त्याग करनेके बाद जो खाते हैं सो महा पापी हैं। यदि केवल शहतसे ही प्राण बचते हों तो भी त्याग करने बाद नहीं खाना चाहिये। क्षुद्रशाल नामके भीलके समान दृढ रहना चाहिये। इसके सिवाय यह शहत ही मद्य और मांसके समान है। क्योंकि मद्य मांस और शहत तीनों ही एकसे कहे गये हैं। इसलिये जैनीके कुलमें जन्म लेकर इनका ग्रहण कभी नहीं करना चाहिये। जैनशास्त्रोंमें इसके सेवन करनेका महा दोष लिखा है। देखो जैसा मद्य है वैसा ही शहत है। इसके सेवन करनेवाले पुरुषको महापाप लगता है। यह पदार्थ ही अत्यंत घृणित अपवित्र और निंदनीय है। इसलिये इसका त्याग करना ही उचित है इसको सेवन करना कभी उचित नहीं है।

जिसप्रकार भोजनमें कोई मक्खी पड़ जाय तो उसको देखकर लोग कहते हैं कि इसमें मक्खी पड गई है अब यह कैसे खाया जा सकता है तो फिर शहत तो उन्हीं मक्खियोंके अंडोंका निचोड वा अर्क है उसे लोग कैसे खा जाते हैं। वसुनंदी श्रावकाचारमें लिखा है—

जह मज्जय तहय मधु जनयति पावं णरस्स अइवहुगं । असुइव्व णिंदणिज्जं वज्जेयव्वं पयत्तेण ॥८०॥
दट्ठूण असनमज्झे पडिइ जइ मत्थियंपि णिट्ठिवई । कह मत्थपिंडयाणं णिज्जासं णिग्घिणो पवई ॥८१॥

अन्यमती भी शहतके खानेमें महापाप बतलाते हैं । उनके यहां लिखा है—

सप्त ग्रामेषु दग्धेषु यत्पापं जायते नृणाम् । तत्पापं जायते पुंसां मधुर्विंद्वैकभक्षणात् ॥ १ ॥

सात गांवोंके जलानेमें जो पाप होता है उतना पाप शहतकी एक बूंद खानेसे होता है । जो लोग सदा शहत खाते रहते हैं वे अवश्य नरकमें जाते हैं इसमें कोई संदेह नहीं है । सो ही वसुनंदिश्रावकाचारमें लिखा है—

जो अवलेहइ णिच्चं णरयं सो जाइ णत्थि संदेहो ।

इसके सिवा और भी अनेक शास्त्रोंमें शहतके सेवन करनेका निषेध लिखा है वहांसे देख लेना चाहिये । बहुत कहांतक कहा जाय प्राणांत होनेपर भी शहत नहीं खाना चाहिये ।

प्रश्न—रोगादिकके उपायोंमें शहतका अनुपान बहुत जगह लिखा है । इसलिये बिना शहतके बदले क्या उपाय करना चाहिये । इसके बिना तो रोगीका काम ही नहीं चल सकता ।

उत्तर—चिकित्सा शास्त्रमें लिखा है कि यदि औषधिके अनुपानमें मधु लिखा हो और वहांपर मधु न मिलता हो तो उसके बदले पुराना गुड काममें ले लेना चाहिये । पुराना गुड भी शहतके समान गुण करनेवाला है इसलिये गुडसे काम चला लेना चाहिये किंतु शहत कभी नहीं खाना चाहिये । सो ही लटकन मिश्रके पुत्र भावमिश्र विरचित भावप्रकाशमें लिखा है—

मधु यत्र न लभते तत्र जीर्णो गुडो मतः ।

शार्ङ्गधर संहितामें लिखा है—

मध्वभावे गुडं जीर्णं ।

भाषाके वैद्यरत्नमें भी लिखा है—

शहत ठौर प्राचीनगुड गुणकर शहत समीप ।

इसलिये धर्मात्मा जैनियोंको अपने कल्याणके लिये जैन शास्त्रोंके अनुसार ही अपना कर्तव्य करना चाहिये।

२०१। चर्चा दोसौएकवीं।

श्रीऋषभदेव तीर्थंकर थे तथा भरतेश्वर चक्रवर्ती थे। यह बात तो प्रसिद्ध ही है परंतु कोई कोई इनको कुलकर भी कहते हैं सो यह कथन किस प्रकार है।

समधान—कुलकर चौदह होते हैं परंतु जैनशास्त्रोंमें श्री ऋषभदेवको पंद्रहवां कुलकर और भरत चक्रवर्तीको सोलहवां कुलकर बतलाया है इसका भी करण यह है कि ये दोनों ही तीसरे कालके अंतमें हुये हैं। श्रीऋषभदेवने पहले चौदह कुलकरोंके समान बाल्यावस्थामें ही असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प पशुपालन आदिकी रचना लोगोंको बतलाई थी। तथा लोगोंको बहुतसे धनका दान दिया था, प्रजाका प्राण पोषण किया था। दीक्षाके समय जिनलिंगकी रीति प्रगट की थी। तथा केवलज्ञानके समय धर्मका मार्ग दिखलायाथा था और स्वर्ग मोक्षका मार्ग प्रगट किया था सो ही लिखा है—

वत्ताणुट्ठाणे जणधणु दाणे पयपोसिउ तवखत्तधरू।
तव चरणविहाणे केवलणाणे तवपरमप्पह परमपरू॥

इसलिये श्री ऋषभदेवको पन्द्रहवां कुलकर कहते हैं।

भरतेश्वरको सबसे पहले चक्रवर्तीकी पदवी प्राप्त हुई थी जिससे उसने छहो खंडोंको सिद्ध किया था और देशोंमें राज्यकी रीति स्थापित की थी इसलिये इसको सोलहवां कुलकर कहते हैं। सो ही आदिपुराणके ३ पर्व श्लोक २१३ में लिखा है। यथा—

---

१ मक्खियां फूलोंके रसको पीती हैं पेटमें उनका कुछ देर तक पाक होता है शहत बन जानेके बाद उसे वे छत्तेमें उगलती हैं उगलती हुई चीजमें अनेक जीव उत्पन्न होनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है इसलिये उसमें सदा जीव उत्पन्न होते और मरते हैं। दूसरी बात यह है कि शहत निकालने वाले पहले मक्खियोंको उडा देते हैं जिससे हजारों मक्खियां घररहित होजाती हैं। यद्यपि उसमेंसे बडी बडी मक्खियां उड जाती हैं तथापि सैकडों छोटी २ मक्खियां और सैकडों ही अंडे उस छत्तेमें रहजाते हैं। सहत निकालने वाले मक्खियोंके उड जानेपर उस छत्तेको निचोड लेते हैं जिससे उन अंडोंका तथा छोटी छोटी मक्खियोंका सब खून मांसका अर्क उस शहतमें आ जाता है उसमें प्रतिसमय अनेक जीव उत्पन्न होते रहते हैं इसप्रकार शहतका स्वरूप ही महा अपवित्र घृणित और महापापकी खानि है।

वृषभस्तीर्थंकृच्चैव कुलकृच्चैव संमतः। भरतश्चक्रभृच्चैव कुलधृच्चैव वर्णितः ॥

प्रश्न— कुलकरोंको मनु भी कहते हैं सो कुलकर शब्दकी तथा मनु शब्दकी निरुक्ति क्या है क्योंकि निरुक्तिके विना अर्थ स्पष्ट नहीं होता है।

उत्तर—जो कुल उत्पन्न करे पुत्र पौत्रादिककी वंश वृद्धिको बढाये उसको कुलकर कहते हैं। व्याकरणके कृदन्त प्रकरणमें लिखा है कुलं करोतीति कुलकरः। उन कुलकरोंसे ही संतान परंपरा अबतक चली आरही है और आगमी कालमें भी बराबर चलती चलेगी।

मनु शब्द 'मनु अवबोधने' धातुसे बना है। अवबोधनका अर्थ दूसरोंको बतलाना है। जितने कुलकर हुए हैं उन सबने प्रजाकेलिये यथायोग्य बातोंका ज्ञान कराया है। उन्हे अनेक बातें समझाई हैं। इसीलिये उन सबको मनु कहते हैं। श्रीऋषभदेवने तथा महाराज भरतने प्रजाके लिये अनेक बातें बतलाई हैं इसलिये ये भी मनु वा कुलकर कहलाते हैं। सिद्धांतसारदीपकमें भी नौवें अधिकारमें यही बात लिखी है।

नाभेः कुलकरस्यांतिमस्यात्रासीत्सुतः परः। ऋषभस्तीर्थकृत्पूज्यः कुलकृत् त्रिजगद्धितः ॥ २७ ॥

हा मा धिग्नीतिमार्गोक्तोऽस्य पुत्रो भरतोग्रजः। चक्री कुलकरो जातो बधबंधादिदण्डभृत् ॥ २८ ॥

२०२। चर्चा दोसौ दोवीं।

मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थानोंमें कौन कौनसे संहनन होते हैं?

समाधान—मिथ्यात्व, सासादन मिश्र, अविरत, देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्त, इन सातों गुणस्थानोंमें छहों संहननवाले जीव रहते हैं। अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांत मोह इन चारों गुणस्थानोंमें रहनेवाले तथा उपशमश्रेणी चढने वाले साधुओंके पहलेके तीन संहनन होते हैं। अर्थात् पहलेके तीन संहननवाले जीव ही उपशम श्रेणी चढ सकते हैं इसीप्रकार आठ नौ दस तथा क्षीणमोह नामके बारहवें गुणस्थानमें और सयोग जिन नामके तेरवें गुणस्थानमें क्षपकश्रेणी चढनेवाले साधुओंके पहला वज्रवृषभनाराचसंहनन ही होता है। सो ही सिद्धांतसार दीपकमें ग्यारहवीं संधिमें लिखा है—

मिथ्यात्वाद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानेषु सप्तसु। प्रमत्तवन्तजीवानां सन्ति संहननानि षट् ॥

अपूर्वकरणाभिख्येऽनिवृत्तिकरणाह्वये । सूक्ष्मादिसांपरायाख्ये ह्युपशांतकषायके ॥ २५ ॥

श्रेण्यामुपशमाख्यां तिष्ठतां योगिनां पृथक् । त्रीणि संहननानि स्युरादिमानि दृढानि च ॥ २६ ॥
अपूर्वकरणाख्ये चानिवृत्तिकरणाभिधे । सूक्ष्मादिसांपरायाख्ये क्षीणकषायनामनि ॥ २७ ॥
सयोगे च गुणस्थाने ह्याद्यं संहननं भवेत्..

२०३ । चर्चा दो सौ तीसरी ।

श्रीतीर्थंकर केवलीके समवसरणमें पहले दूसरे कोटके वीचमें चारों ओर अशोक बन, चम्पक बन आम्रबन और सप्तच्छद बन बतलाये हैं जोकि बहुत भारी शोभाको धारण करते हैं। उनमेंसे एक एक वृक्ष भगवान अरहंत देवकी प्रतिमासहित विराजमान है जिसको चैत्यवृक्ष कहते हैं। सो अशोक चपक और आम्रके वृक्ष तो देखे सुने जाते हैं परन्तु सप्तच्छद कौनसा वृक्ष है और वह कहां उत्पन्न होता है।

समाधान—सप्तच्छद सादड्य अथवा मातवणीको कहते हैं। इसके पत्ते बडे बडे होते हैं और एक पत्ता सात सात पत्तोंके आकारका होता है। ऐसे पत्ते उस वृक्ष पर बहुतसे लगते हैं इसलिये उन वृक्षोंका नाम सप्तच्छद है। अमरकोशमें लिखा है—

सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः ।

धन्वन्तरी कृत निघंटुमें भी लिखा है—

सप्तपर्णः सुपिपर्णः छत्रपर्णो सुपर्णकः । सप्तच्छदो गुच्छपुच्छस्तथा शाल्मलिपत्रकः ।

प्रश्न—यहांपर सप्तच्छद वृक्षका नाम नहीं बतलाया है किंतु सप्त छद, सप्तपर्ण वा सप्तदल बतलाया है सो कोई और वृक्ष होगा।

उत्तर—यह कहना मिथ्या है, शास्त्रोंसे विरुद्ध है। क्योंकि छद दल पर्ण सब पत्तोंके नाम हैं। लिखा भी है—'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान्। पत्र पलाश छदन दल पर्ण और छद ये सब पत्तोंके नाम हैं। इन सबका एक ही अर्थ है। इसके सिवाय विचारनेकी वात यह है कि वृक्षोंकी शोभा सुन्दर पत्ते सुगंधित पुष्प और फलोंसे होती है।

प्रश्न—इस वृक्षमें कौन कौन गुण हैं ?

उत्तर—इसमें अनेक गुण हैं। निघंटुमें लिखा है—

सप्तपर्णी त्रिदोषघ्नी सुरभी दीपिनी परम् ।

अर्थात् सप्तपर्ण वृक्ष वात पित्त कफ इन तीनों दोषोंको नाश करने वाला है। बहुत ही सुगंधित है और दीपन पाचन है। इसके पत्ते बहुत ही सुगंधित हैं और सात पत्तोंके आकारके छत्रके आकारके समान बहुत ही सुशोभित होते हैं। ऐसा स्पष्ट अर्थ है।

प्रश्न—दाडिम, नारंगी, केला, नीबू, बिजोरे, सुपारी, नारियल, आदि अत्यन्त शोभायमान वृक्ष क्यों नहीं बतलाये। सप्तच्छदका ही वन क्यों कहा?

उत्तर—इस जंबूद्वीपमें अनादिनिधन जंबूवृक्षको चैत्यवृक्ष बतलाया है। तथा धातकी द्वीपमें धातकी वा आवड़ा वा धायके वृक्षको चैत्यवृक्ष बतलाया है। तथा पुष्कर द्वीपमें शामला शीमला अथवा शाल्मलि वृक्षको चैत्यवृक्ष कहा है। सो यहां भी क्या आप लोग तर्क करेंगे? कि अच्छे वृक्ष क्यों नहीं बतलाये? अनादि निधन रचना जैसी है वैसी ही शास्त्रोंमें कही है। उसमें संदेह नहीं करना चाहिये। जो लिखा है उसमें ही प्रमाण मानना चाहिये। यही कथन अकृत्रिम जिनमंदिरोंकी शोभामें अशोक आम्र चंपक सप्तच्छद आदि वनोंकी शोभाका वर्णन है। वह भी विवेकी पुरुषोंको शास्त्रोंसे जान लेना चाहिये।

२०४। चर्चा दोसौ चारवीं।

श्रीपंचणमोकार मंत्र द्वादशांगका मूल है, पेंतीस अक्षरमयी है, उसके जपनेसे करोड़ों जन्मोंके महापाप कट जाते हैं। अनेक प्रकारके विघ्नजाल मिट जाते हैं। संसारमें सार पदार्थ एक यही है। इस महामंत्रके प्रसादसे अनेक जीवोंने स्वर्ग मोक्ष प्राप्त किया है इसकी महिमा अपार है। इसकी महिमा जैन शास्त्रोंमें अनेक जीवोंकी कथाओं सहित लिखी है। इसको मंत्रराज कहते हैं। यह अपराजित मंत्र है। समस्त पापोंको नाश करनेवाला है। समस्त मंगलोंमें प्रथम मंगलमय है। इसप्रकार अनेक महिमाओंसे सुशोभित यह पंच नमस्कार मंत्र है। सो इसके पदोंके अक्षरोंकी रचनाका स्वरूप क्या है। इनमें कौन कौन देव हैं यह मंत्र किस किस धातुसे किस किस प्रत्ययसे किस किस संधि और विभक्तिसे बना है। इसका क्या अर्थ है तथा क्या फल है सो इन सबका स्वरूप समझना चाहिये।

समाधान—यह प्रश्न बड़े धर्मात्मा भव्य जीवोंका है। क्योंकि यह णमोकार मंत्र जीवोंको संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला है। उसका स्वरूप रुचिसे पूछना अहोभाग्य है। संसारमें वह जीव धन्य है जो मन बचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे

इस णमोकार मंत्रका निरंतर जाप करता है वा इसके स्वरूपका निरंतर चिंतवन करता है अभ्यास करता है। वही जीव संसाररूपी वनको छेदकर मोक्ष गतिको प्राप्त होता है। इसलिये इसकी प्रतीति और श्रद्धाके लिये जो इसका स्वरूप पूछता है वह भी धन्य है।

आगे इसका थोडासा स्वरूप शास्त्रोंके अनुसार अपनी भक्तिसे लिखा जाता है। यह पंच णमोकार मंत्र अनादिनिधन है। इसका कोई कर्ता नहीं है। यह अनादिकालसे स्वयं सिद्ध चला आ रहा है। कालाप व्याकरणका पहला सूत्र है "सिद्धो वर्णसमाम्नायः" अर्थात् वर्णोंका समुदाय सब स्वयंसिद्ध है। अकारसे लेकर ह तकके अक्षरोंको वर्ण कहते हैं—वे ये हैं। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह। ळ क्ष। ये सब अक्षर स्वाभाविक हैं इन्हीं अक्षरोंके द्वारा द्वादशांगकी रचना हुई है। वह भी अनादिनिधन है और परंपरासे बराबर चली आ रही है। ओ और णमो अरहंताणं इत्यादि द्वादशांगका मूल है। सो भी अनादिनिधन है। इनका विशेष और संपूर्ण स्वरूप तो श्री सर्वज्ञदेव ही जानते हैं। अथवा गणधरादिक उत्तरोत्तर ऋद्धिधारी मुनि जानते हैं। परन्तु इस समय जैनशास्त्रोंमें बारह हजार प्रमाण प्राकृत घत्ता छंदमयी णमोकारकल्प नामका सिद्धांत शास्त्र है उसमें इसका स्वरूप बहुत अच्छी तरह बतलाया है। विशेष ज्ञानियोंको वहांसे जान लेना चाहिये। यह हम अपनी छोटीसी बुद्धिके अनुसार थोडासा लिखते हैं वह भव्य जीवोंको विचार लेना चाहिये।

मूलमंत्र यह है।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं। णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।

इसका अर्थ यह है—अरहंतोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और इस लोकमें रहने वाले समस्त साधुओंको नमस्कार हो। ऐसा मान्य अर्थ है। अथवा नमः शब्दके साथ चतुर्थी विभक्ति लगती है। इसलिये अरहंतके लिये नमस्कार हो, सिद्धोंके लिये नमस्कार हो इसप्रकार पांचो पदोंमें जोड लेना चाहिये।

अब अलग अलग पदोंका अर्थ बतलाते हैं। पहला पद 'णमो अरहंताणं' अथवा 'णमो अरिहंताणं' है। अर अथवा अरि शत्रुको कहते हैं। हंता मारनेवाले वा घात करनेवालेको कहते हैं इन दोनोंके मिलनेसे द्वितीया विभक्तिका बहुवचन अरिहंन् बनता है। णमोका अर्थ नमः है इनके मिलानेसे 'शत्रुओंको कर्मरूप वा रागद्वेष रूप शत्रुओंको नाश करनेवाले अरहंत भगवानको नमस्कार करता हूं" ऐसा अर्थ होता है।

प्रश्न—पहले तुमने इस मंत्रकी बड़ी महिमा बतलाई इसको समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाला वा पापोंका नाश करनेवाला और समस्त मंगलोंमें मुख्य मंगल बतलाया । लिखा भी है—

एसो पंच णमोयारो सव्वपावपणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥

तथा "विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति" इत्यादि बहुतसी महिमा लिखी है । मंगलकार्योंमें सबसे पहले इसका उच्चारण करते हैं सो उच्चारणमें सबसे पहले भगवानका नाम लेना चाहिये परंतु यहांपर सबसे पहले अरि अर्थात् शत्रु वैरी वा रिपुका अमंगलकारी नाम लिया है । और फिर उसके बाद हंताणं शब्द कहा है । हंताण शब्द भी हन हिंसायां अर्थात् हिंसार्थक हन धातुसे बना है । इस-प्रकार यह दूसरा शब्द भी रक्षावाचक नहीं है । घात वाचक दुःखरूप है । इसलिये यह निःसंदेह शब्द नहीं है । संदेह रूप है ।

समाधान—सबसे पहले अन्य मतोंके द्वारा अरिहंताणं शब्दको मांगलिक पद सिद्ध करते हैं । यहांपर पहले पदमें जो अरहंत पद है सो विशेषणरूप है । यथा—जो ज्ञानावरणादि कर्मरूपी अरि वा शत्रु अथवा रिपु वा वैरीके हंता घातक है ऐसे जो सकल पर-मात्मा, सर्वज्ञ, वीतराग अरहंत आदि एक हजार आठ नामोंसे कहे जाते हैं अथवा अनंत नामोंसे कहे जाते हैं ऐसे श्रीकेवलज्ञानी भट्टारक अरहंतदेवको अरहंत वा अरिहंत कहते हैं । ऐसे अरहंतदेवको नमस्कार हो ऐसा प्रथम पदका अर्थ है सो ही लिखा है । "कर्मारातीन् हंतीति अरहंत अथवा अरीन् हंतीति अरिहंत" इस प्रकार व्याकरणोंके सूत्रसे इसकी निरुक्ति है ।

कदाचित् इस शब्दको दूषित कहोगे और अरि तथा घात रूप होनेसे अमंगल रूप बतलाओगे तो इसका उत्तर यह है कि इसमें 'अरहंत' ऐसे चार अक्षर हैं । इसमें भी पहला अक्षर अ है । यह 'अ' अव रक्षणे अथवा अव रक्ष पालने इस धातुसे कृदन्तीय प्रत्यय लगकर बनता है । जिसका अर्थ रक्षा करना वा पालन करना होता है । फिर भला यह अमंगलरूप कैसे हो सकता है ? अर्थात् कभी नहीं हो सकता है ।

इसके सिवाय एक बात यह है कि यह 'अ' वर्णादि है वर्णोंका प्रारंभ इसीसे होता है इसलिये भी यह मांगलिक है । मंत्रोंमें अ को अनाहत मंत्र संज्ञा है । जो सज्जन इस मंत्रका स्थिरीभूत होकर अभ्यास करते हैं वे शांत भावोंको प्राप्त होते हैं और वे इस संसार सागरसे पार होजाते हैं । जो सज्जन मनको निश्चलकर इस 'अ' का ध्यान करते हैं वे निर्मलताको प्राप्त होते हैं तथा पीछे क्रियोंसे उत्पन्न हुए मनके विकारोंको नष्ट कर एक क्षणमें साक्षात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, इसके ध्यान करनेसे अणिमादिक सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं । दैत्य दानव आदि सब इसकी सेवा करते हैं । इससे आज्ञा और ईश्वरता सब सिद्ध हो जाती है । तथा अनेक २५२

क्लेशोंसे भरे हुए संसाररूपी बनसे पार होजाते हैं और शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। ऐसा केवल यह पहला अक्षर 'अ' है। सो ही ज्ञानसमुद्रमें लिखा है—

विंदुहीनं कलाहीनं रेफद्वितीयवर्जितम् । अनक्षरत्वमापन्नमनुच्चार्यं विचिंतयेत् ॥ १ ॥
चन्द्रलेखासमं सूक्ष्मं स्फुरन्तं भानुभास्करम् । अनाहिताभिधं देवं दिव्यरूपं विचिंतयेत् ॥ २ ॥
अस्मिन् स्थिरीकृताभ्यासाः शान्तिभावमुपाश्रिताः । अनेन दिव्यपोतेन नीत्वा जन्मागूमागरम् ॥ ३ ॥
तदेव च पुनः सूक्ष्मक्रमात् बालागूसन्निभम् । ध्यायेदेकागूतां प्राप्य कर्तुं चेतः सुनिश्चलम् ॥ ४ ॥
ततोपि गलिताशेषविषयीकृतमानसः । अध्यक्षमीक्षते साक्षात् जगज्ज्योतिर्मयं क्षणे ॥ ५ ॥
सिद्ध्यति सिद्धये सर्वा अणिमाद्या न संशयम् । सेवां कुर्वन्ति दैत्याद्या आज्ञेश्वर्यं च जायते ॥ ६ ॥
क्रमात् प्राच्याव्य लक्षेभ्यः अलक्षे निश्चलं मनः । दधतोऽस्य स्मरन्त्न्तर्ज्योतिरत्यक्षमक्षयम् ॥ ७ ॥
एतत्तत्त्वं शिवाख्यं वा समालंव्य मनीषिणः । उत्तीर्य जन्मकान्तारमनंतक्लेशसंकुलम् ॥ ८ ॥

इसप्रकार एक अकार अक्षरका स्वरूप ऊपर लिखे श्लोकोंसे लेना चाहिये। ऊपर इन्हीं श्लोकोंका थोडासा सामान्य अर्थ लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि यह अकार मांगलिक और परमेश्वरमय है।

जो भव्य जीव आनंदित और एकाग्र चित्त होकर पांचसौ वार इस केवल अकार अक्षरका जप करते हैं उनको एक उपवासका फल प्राप्त होता है तथा बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। ऐसा यह केवल एक अकार है। सो ही ज्ञानार्णवमें लिखा है—

अवर्णस्य सहस्रार्द्धं जपन्नानन्दसंभृतः । प्राप्नोत्येकोपवासस्य निर्जरां निर्जिताशयः ॥

इसके सिवाय इस आकारकी अन्य मतियोंके शास्त्रोंमें विष्णु संज्ञा कही है। सो ही एकाक्षरी वर्णमात्रा कोशमें लिखा है—

अकारो विष्णुनामा स्यात्।

विष्णुका अर्थ सर्व व्यापक है। श्रीअरहंत भगवान अपने केवलज्ञानके द्वारा तीनों लोकोंमें रहनेवाले चर अचर समस्त पदार्थोंके

के त्रिकालवर्ती द्रव्य गुण पर्यायोंको एक समयमें ही जानते हैं उनके ज्ञानके बाहर कोई पदार्थ नहीं है। इसप्रकार सिद्ध होता है कि सर्व व्यापक एक सर्वज्ञ देव ही हैं और कोई नहीं है।

अन्यमती लोग सर्वव्यापक विष्णुको कहते हैं परंतु विष्णु सर्वव्यापक बन नहीं सकते। इसका भी कारण यह है कि किसी एक दिन अर्जुनका संदेह दूर करनेकेलिये विष्णुने अपना मुख फाडकर अपनी दाढ़में तीनों लोक दिखाये थे। जब उसकी दाढमें ही तीनों लोक आगये तब वह व्यापक कहां रहा ? परन्तु फिर भी उसको व्यापक कहते हैं सबमें व्याप्त बतलाते हैं जैसा कि विष्णु-पंजरमें लिखा है—

जले विष्णुः थले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके। ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वविष्णुमयं जगत्।

मार्कंडेय पुराणमें भी लिखा है—

पृथिव्यामप्यहं पार्थ वायावग्नौ जलेप्यहम्। वनस्पतिगतस्याहं सर्वभूतगतोप्यहम्।

अर्थात् पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति आदि सबमें हूं। यह समस्त संसार विष्णुरूप है।

इसप्रकार विष्णुको सर्वव्यापक मानते हैं परन्तु जब महाकालासुरने विष्णुके पुत्र प्रद्यम्नकुमारको हर लिया था तब कृष्णको मालूम भी नहीं हुआ था। इसीप्रकार रामावतारमें जब सीताका हरण हुआ था तब रामचंद्र उसके विरहसे पर्वत वृक्ष पक्षी आदि सबसे सीताको पूछते थे। सीताको कौन हर ले गया सो भी उनको खबर नहीं हुई थी। उस समय उनकी सर्वव्यापकता कहां चली गई थी। ऐसी ऐसी अनेक विरुद्ध बातें हैं जिनसे विष्णुकी सर्वव्यापकता सिद्ध नहीं हो सकती। इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापक एक सर्वज्ञदेव अरहंत ही है और कोई नहीं है।

कोई कोई कहते हैं कि अरहंत नामका कोई राजा हुआ है उसका चलाया यह जैनमत है। परंतु यह कहना सब मिथ्या और वृथा है। सत्य नहीं है। भगवान सर्वज्ञ वीतरागको ही अरहंत कहते हैं। उन्होंने जो कुछ प्रतिपादन किया है वही जैनधर्म है।

इसप्रकार यह अकार परमेश्वर है। समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाला और समस्त पापोंका घात करनेवाला है। महा मंगल-रूप है और सज्जनोंका रक्षक है इसीलिये यह प्रथम मंगलवाचक है।

इस अकार अक्षरको अन्यमतमें श्रीकंठ, केशव, निर्वृत्ति, ईश्वर, मातृका, वात आदि कितने ही नामसे पुकारते हैं और ये सब नाम मांगलिक तथा मोक्षके वाचक हैं। सो ही मातृका निघंटुमें लिखा है—

श्रीकंठः केशवश्चापि निवृत्तिरीश्वरादिकः। अकारो मातृकाद्याश्च वात इत्यपि कीर्तितः॥

इसप्रकार अरहंतका प्रथम अक्षर अकारका स्वरूप सिद्ध किया।

अब दूसरे अक्षर 'र' का स्वरूप दिखलाते हैं। र का अर्थ राग है, बल है, रव अर्थात् शब्द है जेत्व अर्थात् जय होना है, शब्द है और गधेकी आवाज है सो ही एकाक्षरी वर्णमात्रा कोशमें लिखा है—

रागे बले रवे जत्वे शब्दे च खरशब्दके।

यहां शुभ प्रसंग है। इसलिये 'र' शब्दका अर्थ बलवान सामर्थ्यपना, शब्दपना, अथवा जय वा जीत लेना चाहिये। इसप्रकार यह रकार अक्षर भी मांगलिक और अनेक गुणोंवाला सिद्ध होता है।

इसके आगे हकार है। ह का अर्थ हर्ष और हनन है। प्रकरणके वशसे यहां हर्ष ही लेना चाहिये। सो ही एकाक्षरी वर्णमात्रा कोशमें लिखा है। "हर्षे च हनने हः स्यात्"।

हकारके ऊपर अनुस्वार है सो इसकी अन्यमतमें परब्रह्म संज्ञा है। और परब्रह्म श्री अरहंतको कहते हैं। एकाक्षरी वर्णकोशमें लिखा है। "हं परब्रह्मसंज्ञकः" इसप्रकार यह तीसरा अक्षर 'हं' परमात्मस्वरूप और मांगलिक सिद्ध होता है। हं शब्दका अर्थ मत भी है। एकाक्षरी कोशमें लिखा है। 'हं मते'।

इस हकारको सदा शिव अर्थात् सदा कल्याणरूप और मोक्षवा मुक्तिका वाचक भी लिखा है। अथवा प्राणसंज्ञाको कहनेवाला है। इसप्रकार इसके और भी नाम हैं सो ही मातृका निघंटुमें लिखा है।

नभो वराहो नकुली हृदो वामः पदस्थितः। सदाशिवोरुणप्राणो हकारश्च दयाननः॥

इसप्रकार हकारका स्वरूप बतलाया।

उसके आगे चौथा अक्षर 'त' है। तकारका अर्थ शूरता और चोर है। सो ही एकवर्णमातृका निघंटुमें लिखा है—'क्रूरे चौरे च तः प्रोक्तः' सो यह मंगलाचरणमें शूरता अर्थ लेना चाहिये। शूरताका अर्थ सामर्थ्य वा बल है। सो अनंत बल भगवान अरहंतदेवमें है। इसप्रकार तकारका अर्थ बतलाया। इस अनुक्रमसे अरहंत शब्दका अर्थ बतलाया।

आगे इसकी निरुक्ति बतलाते हैं। जो नमस्कारके अर्हति अर्थात् योग्य हों उनको अरहंत कहते हैं। अथवा जो पूजाके योग्य

अर्थात् योग्य हों उनको अरहंत कहते हैं। अथवा लोकमें भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क और वैमानिक ऐसे चार प्रकारके देव हैं। इन चारों प्रकारके देवोंमें जो उत्तम हों उनको अरहंत कहते हैं। अथवा मोहनीय और अंतराय कर्मको अरि कहते हैं। अरि शब्दका पहला अक्षर 'अ' है। तथा ज्ञानावरण और दर्शनावरणको रज कहते हैं। रजका पहला अक्षर 'र' है इस प्रकार 'अर' शब्दका अर्थ चारों घातिया कर्म होते हैं। ये चारों घातिया कर्म इस जीवके शत्रु हैं इसलिये इन चारों घातिया कर्मोंको अरि भी कहते हैं उन चारों घातिया कर्मरूपी शत्रुओंको जो हंता अर्थात् नाश करनेवाले हों उनको अरहंत वा अरिहंत कहते हैं। इसप्रकार अरहंत शब्द की निरुक्ति होती है। सो ही मूलाचारमें संस्कृत धारामें लिखा है—

अर्हन्ति नमस्कारमर्हा पूजाया अर्हंतः । वा सुरोत्तमा लोके तथा अर्हन्तः। वा रजसः हंतारः अरेश्च हंतारश्चार्हंतस्तेन उच्यते।

यही बात गाथामें लिखी है। यथा—

अरिहंता णमोकारं अरिहा पूया सुरोत्तमा लोए। रजहंता अरिहंता अरहंता तेण उच्चंते॥

इस प्रकार अरहंत पद अथवा अरिहंत पद सिद्ध होता है।

अरिहंत शब्दमें जो पिछला हंत पद है वह हन हिंसागत्योः अर्थात् हिंसार्थक और गत्यर्थक हन धातुसे शतृङ् प्रत्यय होकर हंतृ शब्द बनता है उसके प्रथमाका एक वचन हंता बनता है। इसका अर्थ मारनेवाला घात करनेवाला होता है। सबका मिलकर अर्थ होता है। "ज्ञानावरणादिचतुर्घातिकर्मारातीन् हंतीति अरिहंत। अथवा कर्मारातीन् हंतीति अरहंत। अथवा अरीन् हंतीति अरिहंत। अर्थात् जो ज्ञानावरणादि चारों घातिया कर्मरूपी शत्रुओंको मारे घात करे वह अरहंत है। अथवा कर्मरूप शत्रुओंका घात करनेवाला अरहंत है। इस प्रकार अरहंत शब्द बनता है। इसकी द्वितीयाका बहुवचन अरिहंतृन् बनता है। अरिहंतृ शब्दसे द्वितीयाकी बहुवचन विभक्ति शस आती है। अकारका लोप हो जाता है। पूर्व स्वरको दीर्घ होकर सकारको नकार होजाता है। इस प्रकार अरिहंतृन् बन जाता है। इसके पहले णमो शब्द है। "णमु प्रभुत्वे शब्दे च" अर्थात् णम् धातुका अर्थ प्रभुपना और शब्द है। चकारसे भक्ति करना नम्र होना भी है। उससे नमः बनता है। अथवा नमः अव्यय है। उसका अर्थ नमस्कार करना होता है। नमःके संयोगमें चतुर्थी विभक्ति होजाती है। लिखा भी है। "नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलं वषट् योगे चतुर्थी" अर्थात् नमः

स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलं वषट् इनके योगसे चतुर्थी होजाती है। इसके संयोगसे अरहंत शब्दमें चतुर्थी विभक्ति होती है। ऐसा करनेसे 'नमोर्हते' अथवा 'नमो अरिहते' वा 'नमो अरहते' बनता है। नमः अर्हते यहांपर व्याकरणके नियमानुसार संधि होनेपर (विसर्गको उ और अ उ मिलकर ओ हो जानेपर) नमो बन जाता है और नमोर्हते सिद्ध होजाता है प्राकृत भाषामें नकार होता नहीं है। इसलिये 'णमो' ही रहता है। तथा प्राकृत भाषामें चतुर्थी विभक्तिमें अरहंताण ही बनता है यह प्राकृत भाषाका ही रूप है। इस प्रकार 'णमो अरिहंताणं' अथवा 'णमो अरहंताणं' बनता है।

अरिहंत अथवा अरहंत पदमें चार अक्षर हैं इन चारों अक्षरोंका माहात्म्य शास्त्रोंमें बहुत कुछ वर्णन किया है। ज्ञानार्णवमें लिखा है—

चतुर्वर्णमयं मंत्रं चतुर्वर्गफलप्रदम्। चतुःशतं जपन् योगी चतुर्थस्य फलं लभेत्।

अर्थात्—यह "अरहंत" मंत्र चार अक्षरोंका है। सो यह धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। जो योगी इसको चारसौ वार जप लेता है वह एक उपवासके फलको प्राप्त होता है। इसप्रकार इसका अचिंत्य माहात्म्य है और अचिंत्य फल है।

इसी अरहंत शब्दको 'अर्हं' इन दो अक्षरोंसे भी जपते हैं। इसको अन्य मतमें परमतत्त्व कहते हैं। जो इसको जानता है वही तत्त्वोंका जानकार समझा जाता है। इस 'अर्हं' पदमें पहला अक्षर अकार है, अन्तमें हकार है। हकारके ऊपर रेफ व रकार है जो अकार हकारके मध्यमें है। तथा अंतमें विंदु वा अनुस्वार है। सोही लिखा है—

अकारादिहकारान्तं रेफमध्यं सविंदुकम्। तदेव परमं तत्त्वं यो जानाति स तत्त्ववित्॥

इसप्रकार यह दो अक्षरोंका अर्हं मंत्र है। यह मंत्र अरहतमय है। ज्ञानका वीज है, समस्त संसारके द्वारा वंदनीय है और जन्म जरा मरणको दूर करनेवाला है। यह 'अर्हं' मंत्र अकार हकार रेफ विंदु और कलासे बनकर "अर्हं" ऐसा बना है। यह भुक्ति मुक्तिका देनेवाला अमृतमयी किरणोंको बरसानेवाला है और सब मंत्रोंका राजा है। जो बुद्धिमान् अपनी नासिकाके अग्रभागमें, भ्रूलताओंके मध्यमें अथवा महान् उज्वल तालु छिद्रके द्वारा अथवा निर्मल मुखरूपी कमलसे एकबार भी समस्त सुख देने वाले इस मंत्रका उच्चारण करते हैं अथवा इस मंत्रको अपने हृदयमें स्थिरतापूर्वक धारण करते हैं वे मोक्ष जानेकेलिये मानों अपने

साथ पाथेय ले जाते हैं। मार्गमें खानेके लिये जो सामान साथ लिया जाता है उसको पाथेय कहते हैं। जो पुरुष इस महामंत्रराज अर्हंका ध्यान करता है वह अपने समस्त कर्म नष्ट कर मोक्ष सुखको प्राप्त होता है। इस दो अक्षर वाले अर्हं मंत्रकी ऐसी ही अपार महिमा है। सो ही ज्ञानार्णवमें लिखा है—

ज्ञानबीजं जगद्वंद्यं जन्ममृत्युजरापहम्। अकारादि हकारान्तं रेफबिन्दुकलान्वितम्॥
मुक्तिभुक्त्यादिदातारं स्रवन्तममृतांशुभिः। मन्त्रराजमिमं ध्यायेद्धीमान् विश्वसुखावहम्॥
नासाग्रे निश्चलं वा भ्रूलतान्तरे महोज्वलम्। तालुरन्ध्रेण वा मातं विशन्तं वा मुखाम्बुजे॥
सकृदुच्चारितो येन मंत्रोयं वा स्थिरीकृतम्। हृदि तेनापवर्गाय पाथेयं स्वीकृतं परम्॥

इमं महामंत्रराजं यः ध्यायाति स कर्मक्षयं कृत्वा मोक्षसुखं प्राप्नोति।

इसप्रकार अर्हं मंत्रका स्वरूप है। इसकी निरुक्ति आदि सब पहले लिख चुके हैं। तथा अर्ह पदकी निरुक्ति फिर भी लिखते हैं जो मोहरूपी शत्रुको अथवा क्षुधा तृषा आदि समस्त दोषरूपी शत्रुओंको घात करनेके अर्ह अर्थात् योग्य हो उसको अर्ह कहते हैं अथवा सदाकाल कर्मरूपी रजको घात करनेके अर्ह अर्थात् योग्य हो उसको अर्ह कहते हैं। अथवा विशेषकर रहः अर्थात् अंतराय कर्मके घात करनेके योग्य हो उसको अर्ह कहते हैं अथवा जो पूजाके अर्ह अर्थात् योग्य हो उसको अर्ह कहते हैं। सोही सामायिकपाठमें लिखा है—

मोहारिसर्वदोषारिघातकेभ्यः सदा हत रहोभ्यः। विरहितरहस्कृतिभ्यः पूजार्हद्भ्यो नमोर्हद्भ्यः॥

इसके सिवाय इस अर्ह पदको ब्रह्मवाचक अथवा परमेष्ठी वाचक बतलाया है सो ही लिखा है—

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।

इसी मंत्रको सिद्धचक्रका बीज बतलाया है।

यथा—'सिद्धचक्रस्य सद्बीजम्' ऐसे इस अर्ह पदको हम लोग सदा निरन्तर प्रणाम करते हैं सो लिखा भी है "सर्वतः प्रणमाम्यहम्"

इसप्रकार णमोकार मंत्रमें जो "णमो अरहंताणं" ऐसा प्रथम पद है उसका स्वरूप बतलाया।

अब आगे णमो सिद्धाणं पदको सिद्ध करते हैं इसका पहला अक्षर सि है। उसका अर्थ सिद्ध है। सो ही एकाक्षरी नाम माला कोषमें लिखा है "सि सिद्धौ च" सिद्ध परमात्माके ही समस्त कार्य सिद्ध होगये हैं कोई कार्य बाकी नहीं रहा है इसलिये सिद्ध भगवानको ही सिद्ध कहते हैं। सिद्धभगवान निष्ठितार्थ हैं अर्थात् उनके समस्त अर्थ सिद्ध होगये हैं। तथा वरिष्ठ हैं सर्वोत्तम हैं इसलिये उनको सिद्ध कहते हैं। सामायिक पाठमें लिखा भी है—

सिद्धेभ्यो निष्ठितार्थेभ्यो वरिष्ठेभ्यो कृतान्तरः।

भगवान सिद्ध परमेष्ठीके तप संयम चारित्र दर्शन ज्ञान आदि सबही सिद्धियां ऋद्धियां प्राप्त हो चुकी हैं इसलिये ही उनको सिद्ध कहते हैं। सायायिक पाठमें लिखा है—

तवसिद्धे णयसिद्धे संयमसिद्धे चरितसिद्धे य। णाणमयं दंसणमयं सिद्धं सिरसा णमस्सामि।

तथा धर्मार्थकाममोक्षादिसकलपुरुषार्थानां सिद्धिर्भवति येषां ते सिद्धाः। तथा स्वात्मोपलब्धीनां सिद्धिर्भवति येषां ते सिद्धाः अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों ही पुरुषार्थ जिनके सिद्ध होगये हों उनको सिद्ध कहते हैं। अथवा जिनको अपने शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होगई हो उनको सिद्ध कहते हैं ऐसी सिद्ध शब्दकी निरुक्ति है।

अब आगे दूसरे प्रकारके सिद्ध शब्दकी निरुक्ति बतलाते हैं। यह जीव ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंके द्वारा अनादिकालसे दुखी हो रहा है। वह जीव जब कर्मरूप प्रकृतियोंके संक्रमण उदय, उदीर्णा, उत्कर्षण आदिसे रहित हुए सित अर्थात् कर्मबंधको ध्वस्त अर्थात् नाशकर देता हैं और सम्यग्ज्ञानमय शुद्ध आत्मभावको निधत्त अर्थात् प्राप्त होता है तब उसको सिद्ध कहते हैं। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

दीर्घकालमयं जन्तुरुषितो ह्यष्टकर्मसु। सिते ध्वस्ते निरस्ते च सिद्धत्वमुपगच्छति ॥

प्राकृतमें भी लिखा है—

दीहकालमयं जंतु उसिदो अट्ठकम्मसु। सिदे धत्ते णिधत्ते य सिद्धत्तमुवगच्छइ ॥

अब आगे यह जीव सिद्धत्व पदको किस प्रकार प्राप्त होता है सो ही उदाहरण देकर बतलाते हैं—

आवेशनी अर्थात् चूल्हा वा भट्टी तो यह शरीर है। इंद्रियां ही ऐरण (घन जमीनमें गाडनेका बहुत बड़ा लोहा) हतोडा संडासा आदि उपकरण हैं। मन ही आकरी अर्थात् केवलज्ञानरूप जानकार उपाध्याय वा लुहार है और यह आत्मा धातु है। इस आत्मारूपी धातुको निर्मल करनेके लिये अग्निमें दहन करना चाहिये। जिसप्रकार चतुर लुहार धातुओंको अग्निमें पकाकर शुद्ध कर लेता है उसी प्रकार शरीररूपी भट्टी वा चूल्हेमें बाईस परिषहरूपी अग्निके द्वारा इंद्रियरूपी हतोडे संडासी आदि उपकरणोंसे कर्म रूपी मैलका नाश कर तथा शरीर और इन्द्रियरूपी भट्टी वा औजारोंको छोडकर यह आत्मरूप सुवर्ण धातु अपने आप शुद्ध हो जाता है तथा केवलज्ञानरूप सिद्धत्वपदको प्राप्त हो जाता है। उसीको सिद्ध कहते हैं। इस उदाहरणके समान उपाय करनेसे यह आत्मा सिद्ध होजाता है। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

आवेशनी शरीरं इन्द्रियाभांडानि मन वा आकरी ध्मातव्यं जीवलोहं द्वाविंशतिपरीषहाग्निभिः।

गाथामें भी लिखा है–

आवेसणी सरीरेंदियभंडो मणो व आगरियो। धमिदव्व जीवलोहे वावीसपरीसहग्गीहिं॥

इसप्रकार सिद्धपदकी निरुक्ति है।

यहांपर भी विभक्ति आदि सब पहलेके समान समझ लेना चाहिये। व्याकरणके अनुसार नमः सिद्धेभ्यः। अथवा नमो सिद्धान् सिद्ध होता है। 'प्राकृतमें णमो सिद्धाणं' ऐसा सिद्ध होता है।

जो भव्यजीव प्रकारांतरसे इस सिद्धपदका जप करते हैं वे समस्त सिद्धियोंको प्राप्त होते हैं। लिखा भी है—

वर्णद्वयं श्रुतस्कंधे सारभूतं शिवप्रदम्। ध्यायेज्जन्मोद्भवाशेषक्लेशविध्वंसनक्षमम्।

अर्थात्—सिद्ध यह दो अक्षरका मंत्र है। समस्त द्वादशांगका सार है। शिव अर्थात् कल्याण वा मोक्ष देनेवाला है। ऐसे सिद्धपदको वा अर्हं शब्दको जो ध्यान करते हैं वे लोग बहुत शीघ्र अपने जन्म जन्मान्तरके पापोंको नष्ट कर देते हैं।

अर्हं शब्द पहले अरहंत शब्दमें भी कह आये हैं और अब फिर कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि अर्हं यह बीजाक्षर अरहंतका भी वाचक है और सिद्धका भी वाचक है। लिखा भी है–

सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम्।

इसप्रकार यह सिद्धपद सिद्ध होता है।

इस संसारमें बहुतसे अन्यमतवाले इस सिद्ध शब्दका अर्थ नवनाथ वा चौर सिद्ध कहते हैं तथा वे रात दिन निरंतर इस मध्यलोकके आकाशमें परिभ्रमण करते रहते हैं। लोग जो परस्पर शुभ वा अशुभ बात कहते हैं उनके लिये 'तथास्तु' 'ऐसा ही हो' इसप्रकार कहते चले आ रहे हैं ऐसे चौरासी सिद्ध बतलाते हैं सो सब मिथ्या है क्योंकि सिद्ध होनेपर भी जिसको इतना करना बाकी रहा वह सिद्ध नहीं हो सकता। सिद्ध तो वे ही हैं जिनका स्वरूप ऊपर लिखा है। बाकी सब मिथ्या है।

'णमो सिद्धाणं' के बाद 'णमो आइरिआणं' पद है। यह प्राकृत भाषाका है इसका संस्कृतमें आचार्य बनता है। इसका पहला अक्षर 'आ' है इसका अर्थ सूर्य और मर्यादा है। सो यहांपर मर्यादा अर्थ लेना चाहिये और मर्यादाका अर्थ प्रमाण होता है। उसके 'चार्य' है जो चर धातुसे बना है। चर धातुका अर्थ रक्षण और यति है अथवा चर धातुका अर्थ गति और भक्षण है। सो प्रकरण-वश यहां चर धातुका अर्थ गति लेना चाहिये। आ पूर्वक चर धातुसे आचार्य शब्द बना है। जो दर्शन ज्ञान चारित्र तप और वीर्य इन पांच प्रकारके आचारोंको स्वीकार करें अथवा इन पांचों प्रकारके आचारोंमें जो गमन करें उनको आचार्य कहते हैं। लिखा भी है "दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यान् आचारन्ति इति आचार्याः"

अथवा 'आ' का अर्थ आमंत्रण भी है। आमंत्रणका अर्थ सामने करना है। अथवा सामने होना है। जो दर्शन ज्ञान चारित्र तप वीर्य इन पाचों आचार्योंको अपने सामने करें अथवा जो स्वयं इन पांचों आचारोंके सामने हों उनको आचार्य कहते हैं।

आगे इसकी निरुक्ति कुछ और विशेषताके साथ लिखते हैं।

जो दर्शन ज्ञान चारित्र तप वीर्य इन पांचों आचारोंके स्वरूपको रातदिन यथार्थरूपसे जाने परमार्थसे जाने उनको 'सदाचार' कहते हैं सत् शब्दका अर्थ अच्छा भला सुशोभित है। वित् शब्दका अर्थ सम्यग्ज्ञान है जिसके सुशोभित होनेवाले पांचों आचारोंका सम्यग्ज्ञान हो जो पाचों आचारोंको परमार्थसे जाने उनको सदाचारवित् आचार्य कहते हैं। जो गणधरादिक महामुनियोंके द्वारा अंगीकार किये हुये धारण किये हुए आचरणोंको स्वयं सदाकाल आचरण करें उनको सदाचरितंचर आचार्य कहते हैं। अथवा सदा आचरण करने योग्य अर्थात मुनिपदके योग्य दीक्षाकाल शिक्षाकाल आदि सबका अच्छी तरह आचरण कर जो कृतकृत्य हो चुके हैं उनको सदाचारितंचर आचार्य कहते हैं। अथवा जो अन्य मुनियोंसे पांचों आचारोंका आचरण करावें उनको आचार्य कहते हैं। इसप्रकार आचार्यपदकी निरुक्ति है। सो ही मूलाचारमें लिखा है–

सदाचारवित् सदाचरितंचरः आचारं यत्नाच्चर्यंते तेनोच्यते आचार्यः।

प्राकृत भाषामें भी लिखा है-

सदा आयारविदण्हू सदा आइरियं चरे आयारं आयारवंतो आइरिय उच्चते।

इसप्रकार यह आचार्य पद सिद्ध होता है सो इसकी विभक्ति आदि पहले कहे हुए अरहंत वा सिध्दके समान समझ लेना चाहिये। शस् विभक्ति लाकर द्वितीयाका बहुवचन आचार्यान् सिद्ध कर लेना चाहिये। अथवा नमः शब्दके योगमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर 'नमः आचार्येभ्यः' बना लेना चाहिये इन दोनोंका प्राकृतभाषामें 'णमो आइरिआणं' बन जाता है।

लोकमें ब्राह्मणोंमें भी कितने ही आचार्य होते हैं किन्हीका गोत्र आचार्य है। कोई रसोई आदि बनानेसे आचार्य कहलाते हैं सो सब मिथ्या है। वे नामके आचार्य हैं यथार्थ आचार्य नहीं है। पांच प्रकारके आचारोंको पाले बिना आचार्य कहना सर्वथा मिथ्या है। भारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपस्य कीटवत्।

अर्थात् "यदि गुण न हो तो केवल नाममात्रसे ही वह पदार्थ पुकारा जाता है। जैसे बरसातमें लालकीडेको इन्द्रकी गाय कहते हैं।

इसके आगे 'णमो उवज्झायाणं' ऐसा पद है। इसका संस्कृतमें 'नमः उपाध्येयेभ्यः' बनता है। यह उपाध्याय शब्द उप उपसर्ग पूर्वक इङ् अध्ययने धातुसे बनता है। जो अध्यापयति अर्थात् अध्ययन करावें उनको अध्यापक वा अध्याय कहते हैं। जो द्वादशांग श्रुतज्ञानको स्वयं अध्ययन करें वा दूसरोंको अध्ययन करावें उनको अध्याय वा अध्यापक कहते हैं उपका अर्थ समीप है। जो द्वादशांगको समीप कर उध्ययन करावें उनको उपाध्याय कहते हैं। इन्हीं उपाध्यायको पाठक कहते हैं। यह पाठक शब्द पठ् धातुसे बनता है। जिसका अर्थ पठनपाठन है। जो द्वादशांगको स्वयं पढें वा औरोंको पढावें उनको पाठक कहते हैं। इसप्रकार उपाध्याय वा पाठक शब्द सिद्ध होता है।

आगे प्रकारान्तरसे इसकी निरुक्ति लिखते हैं—

भगवान् अरहंतदेवने जो ग्यारह अंग चौदह पूर्वरूप द्वादशांगका निरूपण किया है उसको जो अध्ययन करें करावें उनको उपाध्याय कहते हैं। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

द्वादशांगं जिनाख्यानं स्वाध्यायः कथितो बुधैः। उपदिशति स्वाध्यायं तेनोपाध्याय उच्यते ॥

प्राकृतमें भी लिखा है–

वारं संगं जिणक्खादं सज्झायं कथिदं बुधे। उवदेसइ सज्झाया तेणोवज्झाय उच्चदि ॥

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। जो अपनेमें व्यापक हो उसको स्वाध्याय वा उपाध्याय कहते हैं। अधि शब्दका अर्थ व्यापक है। जो द्वादशांगमें व्यापक हो तल्लीन वा तन्मय हो तद्रूप हो उसको स्वाध्याय कहते हैं। जो द्वादशांग श्रुतज्ञानमें स्वयं लीन हो तथा औरोंको भी लीन करावे, स्वयं पठन पाठन करे वा औरोंको पठन पाठन करावे उसको उपाध्याय वा पाठक कहते हैं।

इसका द्वितीयाका बहुवचन शस् विभक्ति लगाकर अरहंत सिद्ध वा आचार्यके समान उपाध्यायान् बनाना चाहिये। उसके पहले नमो शब्द लगाकर नमो 'उपाध्यायान्' अथवा 'नमः उपाध्यायेभ्यः' पद सिद्ध होता है। इसीको प्राकृतभाषामें 'णमो उवज्झायाणं' कहते हैं।

संसारमें ब्राह्मणोंमें भी बहुतसे उपाध्याय वा पाठक कहलाते हैं। परंतु उनमें उपाध्यायोंके गुण नहीं हैं वे केवल नाममात्रके उपाध्याय हैं जिसप्रकार वैष्णवोंमें एक वासुदेव हुआ है उसकी कथा भागवत नामके पुराणमें लिखी है। उसीप्रकार उनको भी नाममात्रके आचार्य उपाध्याय वा पाठक समझना चाहिये। वे सच्चे ब्राह्मण वा पाठक नहीं हैं।

जो शांत हो दांत वा तपश्चरणके क्लेश सहनेमें समर्थ हो, जिसके कर्ण शास्त्रकरि परिपूर्ण हो, इन्द्रियोंको दमन करनेवाला हो, परिग्रहका त्यागी हो, और जो गृहस्थोंको तरण तारण करनेमें समर्थ हो उसको ब्राह्मण कहते हैं। जिसने स्त्रीमात्रका त्याग कर दिया है, जो आचारवान् है, जिसने भोगोंका त्याग कर दिया है और जो जितेन्द्रिय है उसीको गुरु कहते हैं। वही समस्त प्राणियोंको अभयदान देने योग्य है। ब्राह्मण ब्रह्मचर्यसे ही कहलाता है जैसे जो शिल्पीका काम करे उसको शिलावट कहते हैं। जो ब्रह्मचर्य पालन नहीं करता वह केवल नाम मात्रका ब्राह्मण है। जैसे बरसातमें होनेवाले लालकीडे वा वीरबहूटीको संस्कृतमें इन्द्रगोप कहते हैं। उसमें इन्द्रगोपके गुण नहीं है किंतु नाम मात्रसे कीडेको ही इन्द्रगोप कहते हैं। उसी प्रकार विना ब्रह्मचर्यके ब्राह्मण भी नाममात्रके ही समझना चाहिये। वह गुणसे ब्राह्मण नहीं है।

जिसके सत्यता हो, तप हो, इन्द्रियोंका निग्रह हो, समस्त प्राणियोंमें दया हो वही ब्राह्मण कहलाता है। जिसके सत्य नहीं

है, तप नहीं है, इन्द्रियां वशमें नहीं हैं, और जीवोंकी दया नहीं है वह ब्राह्मण नहीं है किंतु चांडाल है। क्योंकि ये चांडालके लक्षण हैं ब्राह्मणके नहीं हैं। ऐसा महाभारतके शांतिपर्वमें लिखा है। यथा–

ये शान्तदांता श्रुतपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः।
परिगृहैः संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः॥
त्यक्तदाराः सदाचारा मुक्तभोगा जितेन्द्रियाः। जायन्ते गुरवो नित्यं सर्वभूताभयप्रदाः॥
ब्राह्मणा ब्रह्मचर्येण यथा शिल्पेन शिल्पिकः। अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपस्य कीटवत्॥
सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म ब्रह्म चेन्द्रियनिगृहः। सर्वभूतदया ब्रह्म एतद् ब्राह्मणलक्षणम्॥
सत्यं नास्ति तपो नास्ति नास्ति चेन्द्रियनिगृहः। सर्वभूतदया नास्ति एतच्चांडाललक्षणम्॥

ऐसा महाभारतमें लिखा है।

यदि कोई अपनी जातिमात्रसे ही ब्राह्मणपनेका अभिमान करता है तो वह शूद्रके समान माना जाता है। भारतमें लिखा है—जो जातिसे शूद्र है परंतु जो शीलव्रतको पालन करनेवाला है स्त्रीमात्रका त्यागी है, ब्रह्मचर्य व्रतसे परिपूर्ण है तो वह गुणवान् ब्राह्मण कहलाता है। यदि कोई जातिसे ब्राह्मण होकर भी क्रियाहीन हो व्यभिचारी हो, परस्त्रीलंपटी हो तो वह शूद्रके पुत्रके समान माना जाता है। सो ही भारतमें लिखा है—

शूद्रोपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत्। ब्राह्मणोपि क्रियाहीनः शूद्रापत्यसमो भवेत्॥

इससे सिद्ध होता है कि जाति पूज्य नहीं है किंतु गुणपूज्य हैं। लिखा भी है "गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते" अर्थात् सब जगह गुण ही पूज्य होते हैं। वृद्ध चाणिक्यमें भी लिखा है—

गुणेषु यत्नः क्रियतां साटोपैः किं प्रयोजनं। विक्रियन्ते न घंटाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः॥

अर्थात् बिना दूधवाली गायके गलेमें चाहे जितने घंटे बांधो तब भी वह नहीं बिकती और दूधवाली गायके गलेमें एक भी घंटा न हो तो भी वह तुरंत बिक जाती है। इसलिये गुण धारण करनेमें प्रयत्न करना चाहिये व्यर्थके आडंबरसे कोई प्रयोजन नहीं है।

कदाचित् कोई यह कहे कि हमारी जाति और कुल ही पूज्य है चाहे वह गुणवान् हो या न हो तो इसका उत्तर यह है कि कहनेसे तो कोई मानता ही नहीं है इसलिये जो महाभारतमें लिखा है वही थोडासा यहां दिखाया जाता है। देखो वाल्मीक ऋषि मीलिनीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं तथापि वे तपसे ही ब्राह्मण कहलाये हैं। वशिष्ठऋषि उर्वशी नामकी वेश्यासे उत्पन्न हुये हैं सो भी तपसे ही ब्राह्मण हुये हैं। पाराशर ऋषि चाण्डालिनीके गर्भसे जन्मे हैं तो भी वे तपसे ब्राह्मण कहलाये हैं। गार्ग्य नामके मुनि गर्दभीसे उत्पन्न हुये हैं वे भी तपश्चरणसे ही ब्राह्मण कहलाये हैं। ऋषिभृङ्ग मुनि हिरणीसे उत्पन्न हुये हैं वे भी तपश्चरणसे ही ब्राह्मण कहे गये हैं विश्वामित्र क्षत्रियाणीके कुलसे उत्पन्न हुये हैं वे भी तपसे ही ब्राह्मण हुए हैं। मांडव्य ऋषि मेंडकीसे जन्मे हैं वे भी तपसे ही ब्राह्मण हुये हैं। विदुर नामके ऋषि दासीसे उत्पन्न हुए हैं तथापि वे तपसे ब्राह्मण हुये हैं। मत्स्यगंधा धीवरीसे वेदव्यासका जन्म है सो भी तपसे ही ब्राह्मण हुये हैं। इससे सिद्ध होता है कि ब्राह्मण जातिका ऊंचता केवल जातिसे ही नहीं होती किंतु ब्राह्मणकी पूज्यता तपसे ही होती है। सो ही महाभारतमें लिखा है—

भिलिगर्भसमुत्पन्नो वाल्मीकस्तु महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति र्न कारणम् ॥
उर्वशीगर्भसंभूतो वशिष्ठोपि महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति र्न कारणम् ॥
चाडांलीगर्भसंभूतः पाराशर महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति र्न कारणम् ॥
गर्दभीगर्भसंभूतो गार्ग्यो नाम महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति र्न कारणम् ॥
हरिणीगर्भसंभूतः ऋषिशृंगो महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्मज्जाति र्न कारणम् ॥
क्षत्रियाणां कुले जातो विश्वामित्रो महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति र्न कारणम् ॥
मंडूकीगर्भसंभूतो मांडव्योयं महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति र्न कारणम् ॥
दासीगर्भसमुत्पन्नो विदुरो यो महामुनिः। तपसा ब्राह्मणो जातः तस्माज्जाति र्न कारणम् ॥

इसप्रकार ऋषियोंकी उत्पत्ति जातिहीन है परंतु इन्होंने तपरूपी गुणसे ब्राह्मण पद प्राप्त किया है। इसलिये जातिमात्रका अहंकार करना व्यर्थ है। गुण ही पूज्य होते हैं।

कदाचित् कोई यह कहे कि हमारे श्रीकृष्णने कहा है ब्राह्मण चाहे विद्याहीन हो या विद्या सहित हो दोनों ही मेरे शरीररूप हैं, मेरे ही शरीर हैं। गुणवान् वा निर्गुण दोनों ही मेरी देह हैं। सो ही भगवद्गीतामें लिखा है—

'अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः'

इससे सिद्ध होता है कि ब्राह्मण सब भगवानका शरीर हैं। परंतु इसका उत्तर यह है कि शरीरके दो भेद हैं एक उत्तमांग और दूसरा अधमांग। उन दोनोंमेंसे गुणवान ब्राह्मण तो भगवानके मुखभागके उत्तमांगके अधिकारी हैं और केवल जातिमात्रका अभिमान करने वाले निर्गुणी ब्राह्मण भगवानके शरीरके अधमभाग गुदाके भागी हैं ऐसा श्रीकृष्णने ही कहा है। यथा—

'सविद्यो ब्राह्मणो ह्यास्यमविद्यो मामकी गुदा'

इसप्रकार भगवानके शरीरमें भी जुदे जुदे भाग हैं उससे उत्पन्न हुए ब्राह्मण केवल नाममात्रसे पूज्य नहीं होते किंतु गुणसे ही पूज्य होते हैं। इसीप्रकार पहले कहे हुये आचार्य उपाध्याय वा पाठक ऊपर कहे हुये गुणोंसे ही पूज्य हैं। केवल नामसे पूज्य नहीं होते।

आगे पांचवां पद "णमो लोए सव्वसाहूणं" ऐसा प्राकृत पद है। इसको संस्कृतमें "नमो लोके सर्वसाधून्" अथवा "नमः लोके सर्वसाधुभ्यः" बनता है। आगे इसकी निरुक्ति लिखते हैं। "साधुकार्याणि साधयंतीति साधवः" जो अच्छे कार्योंको सिद्ध करें उनको साधु कहते हैं। अथवा जो "आत्महितानि साधयंति इति साधवः" अपने आत्माके हितको सिद्ध करें उनको साधु कहते हैं। अथवा "पंचमहाव्रतादि अष्टाविंशतिमूलोत्तरगुणादि साधुव्रताचरणं साधयन्ति इति साधवः" जो पंच महाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुण वा उत्तरगुणरूपी साधुओंके व्रतोंको वा आचरणोंको सिद्ध करें उनको साधु कहते हैं। इसप्रकार इसकी निरुक्ति है।

साधु शब्दका अर्थ शोभनीक, अच्छा, योग्य, शिरोमणि और पूज्य है। जो शुभकार्योंको सिद्ध करें उनको साधु कहते हैं। अथवा निर्वाणको सिद्ध करनेवाले और मोक्ष प्राप्त करनेवाले ऐसे योग ध्यान वा मूलगुणादिक तपश्चरणको जो रात दिन समस्त समयमें अपनी आत्मामें सिद्ध करें उनको साधु कहते हैं। तथा जो छहों कायके समस्त प्राणियोंमें समताभाव धारण करें उनको साधु कहते हैं। सो ही मूलाचारमें लिखा है—

निर्वाणसाधकान् योगान् सदा युजन्ति ते साधवः। सर्वेषु भूतेषु समभावं प्राप्नुवन्ति ते साधवः॥

प्राकृत भाषामें भी लिखा है—

णिव्वाणसाधए जोगे सदा जुंजंति साधवो। समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्वसाधवो॥

इसप्रकार साधुपदकी निरुक्ति है।

इस मध्यलोकके ढाईद्वीपमें अर्थात् दोनों समुद्रवर्ती तथा पांच भरत, पांच ऐरावत और पांचों महा विदेहोंमें रहने वाले साधुओंको लोके सर्वसाधु ऐसा कहते हैं। इसके रूप भानु शब्दके समान चलते हैं। शस् विभक्ति लगाकर लोके सर्वसाधून् ऐसा द्वितीयाका बहुवचन बनता है। इसके पहले नमो शब्द लगानेसे 'नमो लोके सर्वसाधून्' बन जाता है।

इस संसारमें संयोगी साधु, अयोगी साधु, रामवत् नीमावत्, विष्णुस्वामी, माधवाचार्य आदि कितने ही साधु कहलाते हैं तथा निर्मोही नागा, खाखी, दादुपंथी कबीर रामचरण दयालके शिष्य आदि कितने ही प्रकारके साधु कहलाते हैं। परन्तु वे सब गुणोंसे साधु नहीं हैं केवल जातिमात्रसे साधु कहलाते हैं। जिसप्रकार किसीकी जाति क्षत्रिय है, किसीकी वैश्य है, किसीकी ब्राह्मण है तथा किसीकी शूद्र है। उसीप्रकार उन साधुओंकी जाति भी साधु ही है वे केवल नाम मात्रके साधु हैं। यदि उनको नाममात्रसे साधु न माना जाय तो फिर उनमें शस्त्र धारण करना, खेती करना, विवाह करना, व्यापार करना, हिंसादिक महारंभ करना, वस्त्राभरण धारण करना, खाद्य अखाद्य भक्षण करना, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि पांचों पापोंमें तल्लीन रहना मंत्र यंत्र, तंत्र, ज्योतिष वैद्यक, शिल्प, गीत, नृत्य, वादित्र, आदिके द्वारा जीविका करना, आकर्षण स्तंभन मोहन, वशीकरण, मारण, उच्चाटन, आदि विद्याओंके द्वारा आजीविका करना, असि मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, पशुपालन आदिमें तल्लीन रहना और मोक्षके उपायोंसे बहुत दूर रहना आदि क्रियाएं कैसे बन सकेंगी। जो नाम मात्रके साधु हैं वे ही इन क्रियाओंको करते हैं। उनको साधु मानना मिथ्या है। यदि भेषमात्रको ही साधु माना जाय उनमें गुण न देखा जाय तो इस संसारमें भांड भी भेष धारण कर लेते हैं, साधु बन जाते हैं उनको भी साधु मानना पडेगा। इसलिये जिनमें ऊपर लिखे गुण हों जो मोक्षके साधक हों उनको सच्चे साधु कहते हैं अन्यथा नहीं।

कदाचित् कोई यह कहे कि इन साधुओंमें सब ही तो ऐसे नहीं होते। इनमेंसे कितने ही पंचाग्नि तप तपते हैं, कोई ऊर्ध्वबाहु (ऊपरको बांह उठाये रखना) ऊर्ध्वपाद (ऊपरको पैर उठाये रखना) अधोशीश (नीचेकी ओर शिर लटकाये रहना) आदि तपोंके द्वारा अनेक प्रकारका कष्ट सहते हैं। कितने ही केवल दूध पीकर रहते हैं, कितने ही पत्ते पुष्प फल कंदमूल आदिका ही आहार

करते हैं, अन्न नहीं खाते। कितने ही संयमी हैं। कितने ही मौनी हैं, कितने ही ध्यानी हैं, कितने ही मज्जनानंदी हैं सो इन सबका निषेध क्यों करते हो। परंतु इसका उत्तर यह है कि ये सब प्रकारके साधु षट्कायिक जीवोंकी हिंसा पूर्वक अपने सब कार्य करते हैं, सब क्रोध मान माया लोभके वशीभूत हैं और सब अज्ञान तप करनेवाले हैं। परमार्थ स्वरूप आत्माको जाननेवाले कोई नहीं हैं। इनमेंसे कितने ही मांसभक्षक हैं, कितने ही मद्य पीते हैं, कितने ही अन्य प्रकारसे जीवोंके घातक हैं। इसप्रकार सब साधु अधोगतिके कारणोंको करनेवाले हैं। इनमेंसे कोई गिर, कोई पुरी, कोई नाथ आदि नामसे कहलाते हैं परंतु इनमेंसे मोक्षके पात्र कोई नहीं हैं। इसीप्रकार ब्राह्मणोंमें कान्यकुब्ज आदि कितने ही ब्राह्मण ऐसे हैं जो मांसभक्षक हैं, शक्तिके उपासक ब्राह्मण मद्य मांसका भक्षण करते हैं इसलिये कहना चाहिये कि न तो ऐसे साधु ही साधु हैं और न ऐसे ब्राह्मण ही साधु हैं। इसलिये ऊपर लिखे गुणोंसे पूज्य ही साधु हैं। सम्यग्दृष्टियोंको उन्हींकी पूजा करना चाहिये।

प्रश्न—ऊपर लिखे हुए नाथ, गिर आदि साधु भी तप करते हैं महा कष्ट सहते हैं। सो इनका फल भी अच्छा ही होगा। तप और कष्ट व्यर्थ तो न जायगा ?

उत्तर—अज्ञानतपका फल भवनत्रिक आदि असुरोंमें उत्पन्न होना बतलाया है सो वहांके फल भोगकर फिर वे निगोदके पात्र होते हैं। इसलिये वे मोक्षमार्गके पात्र साधु नहीं कहे जा सकते।

प्रश्न—इस समय ऐसे अतिथि वा साधु कोई नहीं हैं जिनको माना जाय ?

उत्तर—संसारसे अतिथि वा साधुजन वे ही मानने योग्य हैं जो स्नानके त्यागी हों, भोगोपभोगोंसे रहित हों, तिलक शृंगार अलंकार आभूषण आदि सबसे रहित हों, जो शहत मांस मद्यके त्यागी हों उन्हींको गुणवान् अतिथि कहते हैं। जो सत्यता, निष्कपटता, दया आदि गुणोंसे सुशोभित हों, जीवहिंसा आदि पापारंभोंसे सर्वथा रहित हों, जो वेला तेला आदि उग्र उग्र महा तपश्चरणसे सुशोभित हों वे ही निश्चयसे अतिथि वा साधु कहलाते हैं। तिथि पर्व वा त्योहारका नाम है। जिसने तिथि वा पर्वके दिनोंके समस्त उत्सवोंका त्याग कर दिया है सो ही अतिथि वा साधु कहलाते हैं। जो अतिथि वा त्योहारोंके उत्सवोंको मानते हैं वे कभी अतिथि वा साधु नहीं हो सकते। ऐसे लोगोंको प्राघूर्णक वा पाहुना कहते हैं। जब किसी घरमें पाहुना आता है तब उसके सामने अनेक प्रकारकी भोजनपानकी सामग्री शय्या आसन आदि देकर उसको प्रसन्न करते हैं परंतु उनको साधु वा अतिथि नहीं कहते पाहुना कहते हैं। सो ही महाभारतके शांतपर्वमें लिखा है—

स्नानोपभोगरहितः पूजालंकारवर्जितः । मधुमांसनिवृत्तश्च गुणवानतिथिर्भवेत् ॥ १ ॥
सत्यार्जवदयायुक्तः पापारम्भविवर्जितः । उग्रोग्रतपसायुक्तः जानीयादतिथिर्ध्रुवम् ॥ २ ॥
तिथिः पर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना । अतिथिं तं विजानीयात् शेषं प्राघूर्णकं विदुः ॥ ३ ॥

ऐसे अतिथि वा साधु कहलाते हैं । वाकीके सब नाममात्रके साधु हैं सो सब व्यर्थ हैं ।

इनके सिवाय श्वेताम्बराम्नायके चौरासी गच्छ हैं उनमेंसे भी लोंकागच्छ निकला है तथा लोंकागच्छमेंसे भी ढूंढिया साधु तथा भीष्म साधु आदि अनेक गच्छ वा भेष निकले हैं सो वे सब साधु नाममात्रके नाम रखने योग्य साधु हैं। वे अपने ही शास्त्रोंसे विपरीत चलते हैं इसलिये वे कभी साधु नहीं कहलाये जा सकते। इनका विस्तार पूर्वक वर्णन भद्रबाहु चरित्रमें तथा अन्य कितने ही शास्त्रोंमें किया है इनकी उत्पत्ति आदि सब लिखी है सो वहांसे जान लेना चाहिये। इनके इतिहासका आचरणोंका दिगम्बर आम्नायके विरुद्ध चौरासी चर्चाओंका तथा और भी अनेक प्रकारके इनके शिथिलाचारका वर्णन वसुनंदि श्रावकाचारकी वचनिकामें लिखा है वहांसे जान लेना चाहिये। तथा कुछ इनका स्वरूप आगे भी लिखेंगे। यहां विस्तार होनेके डरसे नहीं लिखा है।

इससे सिद्ध होता है कि पहले कहे हुए अट्ठाईस मूलगुणोंसे जो सुशोभित हैं और जो रत्नत्रयको धारण करते हैं वे ही सच्चे साधु हैं। अन्यथा केवल नाममात्रके धारी हैं। सो ही विष्णुपुराणमें लिखा है—

मुंडनात् श्रमणो नैव संस्काराद् ब्राह्मणे न च । मुनिर्नारण्यवासित्वाद् वल्कलान्न च तापसः ॥

इससे सिद्ध होता है कि केवल मुंडन करने वनमें रहने आदिसे साधू नहीं हो सकता। कोई कोई कहते हैं कि जन्म से तो शूद्र ही होता है फिर संस्कारसे ब्राह्मण होता है। जिसको द्विज कहते हैं। यथा—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते ।

सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि केवल संस्कारमात्रसे ही ब्राह्मण नहीं हो सकता और न केवल वनमें रहनेसे मुनि हो सकता है तथा भोजपत्र वृक्षकी छाल आदिका लंगोट लगाने वा छाल ओढनेसे तापसी नहीं हो सकता। यह तो केवल वाह्य भेष है परंतु गुणोंके विना केवल वाह्य भेष कार्यकारी नहीं है। सो ही भारतमें लिखा है—

यद्वत्काष्ठमयो हस्ती यद्वच्चर्ममयो मृगः । ब्राह्मणस्तु क्रियाहीनस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥

अर्थात् काठका बना हुआ हाथी चमडेका बना हुआ हिरण और क्रियाहीन ब्राह्मण ये तीनों ही केवल नामको धारण करनेवाले हैं। काठका बना हाथी केवल नामका हाथी है, चमडेका बना हिरण केवल नामका हिरण है उसीप्रकार क्रियारहित ब्राह्मण अथवा केवल जातिमात्रका ब्राह्मण नाममात्रका ही ब्राह्मण समझना चाहिये। वह गुणसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता।

इसप्रकार पंच णमोकार मंत्रके पांचों पद सिद्ध हुए। सबको इकट्ठा लिखनेसे "नमः अरिहंतान् नमः सिद्धान् नमः आचार्यान् नमः उपाध्यायान् नमो लोके सर्व साधून्। इसप्रकार सिद्ध होते हैं। अब इनको द्वितीयाके बहुवचन और प्राकृत भाषाके शब्दोंको मिलाकर यंत्र रचनाके द्वारा दिखलाते हैं। यदि इन्हीं शब्दोंकी षष्ठीका बहुवचन बनाया जाय तो इन शब्दोंसे आम् विभक्ति लगाकर नु का आगम करते हैं न् आम् नाम् हो जाता है, नाम् परे रहते अकारको दीर्घ हो जाता है इन सब क्रियाओंको कर लेने पर अरहंताणं-सिद्धानां आचार्यानां उपाध्यायानां तथा भानु शब्दके समान सर्वसाधूनां सिद्ध होते हैं। नमः शब्दके लगानेसे इन सबको नमस्कार हो, ऐसा अर्थ होता है।

प्राकृत भाषाके अनुसार इन सब विभक्ति सहित शब्दोंकी यंत्र रचना इस प्रकार है।

संस्कृत द्वितीयाका बहुवचन	षष्ठीका बहुवचन	प्राकृत भाषाका पाठ
नमो अरिहंतान्	नमो अरिहंतानां	णमो अरिहंताणं अथवा णमो अरहंताणं
नमो सिद्धान्	नमो सिद्धानां	णमो सिद्धाणं
नमो आचार्यान्	नमो आचार्याणाम्	णमो आइरिआणं
नमो उपाध्यायान्	नमो उपाध्यायानाम्	णमो उवज्झायाणं
नमो लोके सर्वसाधून्	नमो लोके सर्वसाधूनाम्	णमो लोए सव्वसाहूणं

प्रश्न—इस णमोकार मंत्रमें नमः शब्द है। इसके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है। सो तुमने द्वितीया और षष्ठीका रूप क्यों लिखा है। चतुर्थी विभक्तिका ही रूप लिखना चाहिये।

समाधान—चतुर्थी विभक्ति भी होती है परंतु द्वितीया षष्ठीका निषेध नहीं है। आगे प्रश्नके अनुसार चतुर्थी विभक्तिका भी रूप दिखलाते हैं।

णमो अरहंताणं-नमोर्हद्भ्यः अरहंतोंकेलिये नमस्कार हो। णमो सिद्धाणं नमः सिद्धेभ्यः सिद्धोंकेलिये नमस्कार हो। णमो आइरिआणं नमः आचार्येभ्यः आचार्योंकेलिये नमस्कार हो। णमो उवज्झायाणं नमः उपाध्यायेभ्यः उपाध्यायोंकेलिये नमस्कार हो। णमो लोए सव्वसाहूणं नमः लोके सर्वसाधुभ्यः लोकमें समस्त साधुओंकेलिये नमस्कार हो। इस प्रकार द्वितीया चतुर्थी और षष्ठी तीनोंके रूप सिद्ध होते हैं।

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इन पांचोंको परमेष्ठी कहते हैं। पर शब्दका अर्थ उत्कृष्ट है। मा शब्दका अर्थ लक्ष्मी है। इन दोनोंके मिलानेसे परम शब्द बनता है। इसका अर्थ उत्कृष्ट लक्ष्मी होता है। इसके आगे उसकी सप्तमीका एक वचन परमे बनता है। इसके आगे ष्ठी शब्द है जो स्था धातुसे बना है। स्था धातुका अर्थ रहना वा ठहरना है। जो उत्कृष्ट लक्ष्मीमें ठहरें निवास करे उनको परमेष्ठी कहते हैं। संसारमें सबसे उत्कृष्ट लक्ष्मी स्वात्मस्वरूप है, जो अपने शुद्ध आत्मामें ठहरें निवास करें उनको परमेष्ठी कहते हैं। अरहंतादिक पांचों ही अपने शुद्ध आत्मामें निवास करते हैं इसलिये ये पांचों ही परमेष्ठी कहलाते हैं। "अर्हतादि पंचानां परमेष्ठीनां संहारः इति पंचपरमेष्ठी" ऐसी इसकी निरुक्ति है। इस प्रकार ये पांचों ही परमेष्ठी कहलाते हैं।

आगे इन परमेष्ठियोंके गुण बतलाते हैं।

अरहंता छीयाला सिद्धा अट्ठेव सूरि छत्तीसा। उवज्झाया पणवीसा अठवीसा होंति साहूणं ॥

अरहंत भगवानके छयालीस गुण हैं उनमेंसे दश जन्मके अतिशय, दश केवलज्ञानके अतिशय और चौदह देवकृत अतिशय ऐसे चौंतीस अतिशय हैं आठ प्रातिहार्य हैं और चार अनंतचतुष्टय हैं। इसप्रकार छयालीस गुण होते हैं। भगवान अरहंत परमेष्ठी समवसरणकी बाह्य लक्ष्मीसे सुशोभित हैं और अनन्तचतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मीसे सुशोभित हैं दोनों प्रकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित होनेके कारण भगवान अरहंतदेव परमेष्ठी कहलाते हैं।

कोई कोई लोग ब्रह्माको ही परमेष्ठी कहते हैं। लिखा भी है—

ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठो परमेष्ठी पितामहः।

सो ठीक नहीं है क्योंकि ब्रह्माने ध्यान करते करते ही उर्वशीसे राग बढा लिया था, पात्र दंड कमंडलु आदि उसके सदा साथ रहनेवाले पदार्थ उसकी अकृतार्थताको सिद्ध करते हैं। जिसने तपसे भ्रष्ट होकर और क्रोधित होकर इन्द्रादिक देवताओंसे युद्ध किया ऐसा रागी द्वेषी क्रोधी ब्रह्मा परमेष्ठी कैसे हो सकता है। जो क्षुधा तृषा आदि अठारह दोषोंसे रहित हों और सर्वज्ञ हों ऐसे भगवान अरहंत देव ही ब्रह्मा कहे जा सकते हैं और वे ही परमेष्ठी कहलाते हैं। अकलंकाष्टक स्तोत्रमें लिखा है—

उर्वश्यामुदपादि रागबहुलं चेतो यदीयं पुनः। पात्रीदंडकमंडलुप्रभतयो यस्या कृतार्थस्थितिम् ॥
आविर्भावयितुं भवन्ति स कथं ब्रह्मा भवेन्मादृशां। क्षुत्तृष्णाश्रमरागरोगरहितो ब्रह्मा कृतार्थोस्तुनः॥

ऐसा श्रीअकलंक देवकृत अकलंकस्तोत्रमें लिखा है। तथा इनका विशेष स्वरूप धर्मपरीक्षासे जान लेना चाहिये।

ब्रह्मा शब्दका अर्थ सबसे बड़ा है। जो सबसे बडा हो, सबसे प्रथम हो, पूज्य हो उसको ब्रह्मा कहते हैं ऐसे ब्रह्मा श्रीवृषभदेव ही हो सकते हैं और नहीं।

भगवान सिद्धपरमेष्ठीमें आठ गुण हैं। यथा—

सम्मत्त णाण दंसण वीरज सुहमं तहेव अवगहणं। अगरुलहु अव्वबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं॥

अर्थात् सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध ये आठ गुण सिद्धोंमें होते हैं। इस प्रकार जो आठ गुणरूपी बाह्य लक्ष्मीसे तथा अनंत गुणरूपी अंतरंग लक्ष्मीसे सुशोभित हैं जो मोक्षरूप वा शुद्ध आत्मस्वरूप सर्वोत्कृष्ट स्थानमें विराजमान हैं उनको सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं।

संसारमें बहुतसे लोग महादेवको ही सब देवोंका देव, सबमें बडा देव महादेव वा शिवरूप कहते हैं सो ठीक नहीं है। महादेव कभी भी शिवरूप वा देवोंके देव महादेव नहीं हो सकते। यदि महादेव ईश्वर हैं तो सब देवोंने तथा ऋषियोंने उसका लिंग क्यों काट डाला। जब उसका लिंग कट रहा था तब उसकी ईश्वरता कहां चली गई थी। इसका विशेष वर्णन धर्मपरीक्षासे जान लेना चाहिये। बहुतसे लोग इसी महादेवको विगतभय वा भय रहित कहते हैं परंतु यदि वह भयरहित होता तो हाथमें त्रिशूल क्यों लिये रहता क्योंकि विना भयके कोई शस्त्र धारण नहीं कर सकता। इसलिये वह भय रहित भी नहीं है इसीप्रकार इसको सबका स्वामी वा सबका नाथ कहते हैं परन्तु यदि वह सबका स्वामी होता तो भीख क्यों मांगता ? भिखारीके विना कोई भीख नहीं

मांगता। इसलिये वह सबका स्वामी भी नहीं है। इसके सिवाय महादेवको यति कहते हैं परंतु यह भी ठीक नहीं बनता क्योंकि यदि वह यति होता तो गंगा, गौरी, भीलनी आदिसे रमण कैसे करता? तथा यदि वह यति होता तो स्वामिकार्तिकेय आदि उसके पुत्र कैसे होते। यति तो वही हो सकता है जो समस्त विषयकषाय वा इन्द्रियोंको जीते। सो ये गुण उसमें हैं नहीं। इसलिये वह कभी यति नहीं हो सकता। यदि महादेव यति होता तो उसके पास लक्ष्मी क्यों नहीं दिखाई पड़ती। उसका तो स्वरूप महा दरिद्र है। उसके शरीरपर भस्म है ओढ़ने विछानेको हिरणका चमड़ा है। हाथमें मनुष्यकी खोपड़ी है। गलेमें मनुष्योंके मुण्डोंकी माला है, एक सर्प है मस्तकपर जटायें हैं। कमरमें लंगोट है। अथवा नग्न रहता है। इसप्रकार उसका भयंकर रूप है श्मशानमें वह रहता है, श्मशानमें ही सोता है बैठता है, लेटता है तथा भूतप्रेतोंमें रहता है वह यति किसप्रकार हो सकता है। इसीप्रकार उसको अजन्मा वा स्वयंभू कहते हैं। जो विना जन्मके स्वयंसिद्ध हो उसको स्वयंभू कहते हैं सो वह स्वयंभू भी नहीं हो सकता। क्योंकि यदि वह स्वयंभू होता तो आर्द्रामें उत्पन्न हुआ क्यों कहलाता? लोग उसको वेत्ता भी कहते हैं परंतु वह वेत्ता होता तो अपने विघ्नोंको तो जानता? सो वह अपने विघ्नोंको भी नहीं जानता। इसलिये वह वेत्ता नहीं है इसीप्रकार उसको पशुपति कहते हैं इसीप्रकार उसकी कितनी ही विरुद्धचेष्टायें वा विरुद्ध नाम बतलाते हैं। उसको इस सृष्टीका हरण करनेवाला वा मारनेवाला बतलाते हैं और शिव भी कहते जाते हैं। परंतु जो घातक है वह शिव वा कल्याणरूप कैसे हो सकता है। इनका सिद्धांत है कि ब्रह्मा सृष्टिको उत्पन्न करता है, विष्णु रक्षा करता है और शिव उसका संहार वा भक्षण करता है सो ऐसा अनर्थ करनेवाला महादेव शिवरूप वा मोक्षरूप कल्याणमय कभी नहीं हो सकता। सो ही लिखा है—

ईशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात्।
नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं सांगनः सात्मजश्च॥
आर्द्राजः किन्त्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायं।
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोत्र धीमानुपास्ते॥

इससे सिद्ध होता है कि महादेव सब देवोंका देव वा शिवरूप मोक्षरूप नहीं हो सकता। जो आठों कर्मोंसे रहित हैं वे ही शिव वा सिद्ध हो सकते हैं।

तीसरे परमेष्ठी आचार्य परमेष्ठी हैं वे आचार्य परमेष्ठी पंचाचार आदि छत्तीस गुणरूपी बाह्य लक्ष्मीसे तथा रत्नत्रयरूपी अंतरंग लक्ष्मीसे सुशोभितरहते हैं तथा अपने शुद्ध आत्मारूपी सर्वोत्कृष्ट स्थानमें लीन रहते हैं इसलिये वे आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं। सो ही नीतिसारमें लिखा है—

पंचाचाररतो नित्यं मूलाचारविदग्रणीः। चातुर्वर्णस्य संघस्य स आचार्य इतीष्यते ॥

चौथे पदमें उपाध्याय परमेष्ठी हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी पच्चीस गुणरूपी बाह्य लक्ष्मीसे तथा रत्नत्रयरूपी अंतरंग लक्ष्मीसे सुशोभित रहते हैं। तथा शुद्ध आत्मस्वरूप उत्कृष्ट स्थानमें सदा लीन रहतेहैं। इसलिये वे उपाध्याय परमेष्ठी कहलाते हैं। सो ही नीतिसारमें लिखा है—

अनेकभयसंकीर्णशास्त्रार्थविकृतिक्षयः। पंचाचाररतोऽज्ञेष उपाध्यायसमाहिते ॥

पांचवें पदमें सर्व साधु परमेष्ठी हैं। वे साधु परमेष्ठी अट्ठाईस मूलगुणरूपी बाह्य लक्ष्मीसे तथा रत्नत्रयरूपी अंतरंग लक्ष्मीसे सुशोभित रहते हैं और निज शुद्धात्मरूपी परम स्थानमें विराजमान रहते हैं। इसलिये वे साधु परमेष्ठी कहलाते हैं। सो ही नीतिसार में लिखा है।

सर्वद्वन्दविनिर्मुक्तो व्याख्यानादिषु कर्मसु। विरक्तो मौनवान् ध्यानी साधुरित्यभिधीयते।

इसप्रकार सिद्ध होता है कि अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु ये पांचों ही परमेष्ठी हैं और इन्हींका वाचक णमोकार मंत्र है। इसलिये यह णमोकार मंत्र पंच परमेष्ठीका वाचक है।

कदाचित् कोई यह कहे कि यहांपर "णमोअरहंताणं" पाठ सिद्ध किया है सो "नमोअरहंताणं" ऐसा क्यों नहीं सिद्ध किया? तो इसका उत्तर यह है कि यह प्राकृत भाषाका शब्द है। संस्कृतका नहीं है। प्राकृत भाषामें नकारको णकार हो जाता है। इसलिये णमो ही बनता है। नमो नहीं।

कदाचित् कोई यह कहे कि सब पाठ संस्कृतमें ही बना लेना चाहिये। नमो अरहंतान् अथवा नमो अरहंतानां ऐसा बना लेना चाहिये वा नमोर्हद्भ्यः बना लेना चाहिये। सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यह मूलमंत्र अनादि है। आम्नायपूर्वक ऐसा ही चला आ रहा है। इसलिये इनको इसीप्रकार "णमोअरहंताणं" इसी रूपमें पढना चाहिये।

इस णमोकार मंत्रकी महिमा अपरंपार है। जो जीव इसका जप करते हैं वे इच्छानुसार फल पाते हैं। इस मंत्रके प्रसादसे पहले अनेक जीव तिर चुके हैं। अब अनेक जीव तिर रहे हैं, और आगे अनेक जीव तिरेंगे। इस महामंत्रके गुणोंकी महिमा अनंत है, अपार है, योगी लोग भी इसकी महिमाका पार नहीं पा सकते फिर अन्य तुच्छ बुद्धिवाले तो इसका पार कैसे पा सकते हैं। इस महामंत्रको जपनेवाले वा धारण करनेवाले अनेक जीव अनेकप्रकारके फलोंको पाकर स्वर्गादिक उत्तम गतियोंमें उत्पन्न हुये अथवा केवलज्ञान पाकर मोक्ष पधारे। अनेक जीवोंके अनेक प्रकारके विघ्न दूर हुये। इत्यादि इस महामंत्रके गुणोंकी महिमाका वर्णन पुण्यास्रव, आराधना कथाकोश, व्रतकथाकोश, पार्श्वपुराण, महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण आदि अनेक जैन शास्त्रोंमें कथासहित बहुत विस्तारके साथ वर्णन किया है। वहांसे देख लेना चाहिये। वह सब यहां लिखा नहीं जा सकता।

इस महामंत्रके जप करनेके और भी बहुतसे प्रकार हैं। जैसे पेंतीस अक्षरका मंत्र, सोलह, छह, पांच, चार, दो, एक आदि अक्षरोंके मंत्रों द्वारा तथा गुरूके उपदेशानुसार अन्य मंत्रोंके द्वारा इसका ध्यान वा चिंतवन करना चाहिये। सो ही लिखा है—

पणतीस सोल छ पण चदु दुग मेगं च जवह झाएह। परमेट्ठि वाचयाणं अण्णंच्च गुरुवएसेण ॥

पेंतीस अक्षरका मंत्र।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरिआणं। णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं ॥

सोलह अक्षरका मंत्र—"अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः" अथवा "अरहंत सिद्ध आइरिया उवज्झाया साहू" है। छह अक्षरका मंत्र—"अरहंत सिद्ध" पांच अक्षरका मंत्र "अ सि आ उ सा" चार अक्षरका मंत्र 'अरहंत' है अथवा 'अर्हत्सिद्ध' है। दो अक्षरका मंत्र "सिद्ध" वा अर्हं' है। एक अक्षरका मंत्र—'ओं' वा 'अ' है। ये सब मंत्र पंच परमेष्ठीके वाचक हैं। सब णमोकारमय हैं। इनके जप करनेकी वा चिंतवन करनेकी विधि पहले लिख चुके हैं। वहांसे जान लेना चाहिये।

ऐसे इस पंच परमेष्ठीके वाचक णमोकार मंत्रको हमारा बार बार नमस्कार हो। यह णमोकार मंत्र संसारके परिभ्रमण और कर्मोदयसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके दुःखोंको दूर करो तथा ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंका नाश करो। इसके प्रसादसे शुद्धात्मस्वरूपका और रत्नत्रयका लाभ हो, सुगति प्राप्त हो, समाधिमरण हो, भगवान अरहंतदेवके अनंत चतुष्टय आदिक छ्यालीस गुण प्राप्त हों। इस णमोकार मंत्रके प्रसादसे हमारे ये सब इष्ट पदार्थ प्राप्त हों ऐसी प्रार्थना है, वह पूर्ण हो।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरिआणं। णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

ऐसे इस णमोकार मंत्रका जप करो तथा भव भवमें यही हमारे शरण हो।

हमने अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार णमोकार मंत्रका स्वरूप बहुत थोडासा बतलाया है परंतु इसका वर्णन करना महान् कार्य है यदि इसमें कोई भूल रह गई हो तो विशेष बुद्धिमान लोग क्षमा करें।

२०५। चर्चा दोसौ पांचवीं।

तीर्थंकर आदिक पदवीधर पुरुषोंपर जो चमर ढुलाये जाते हैं उनका प्रमाण क्या है?

समाधान—श्री तीर्थंकर केवली भगवानके तो सदा चौसठ चमर ढुलते रहते हैं। चक्रवर्तीके बत्तीस ढुलते हैं, नारायणके सोलह, महामंडलेश्वरके आठ, अधिराजके चार और महाराजके दो चमर ढुलते हैं। सो ही लिखा है—

तीर्थंकराणामिति चामराणि चत्वारि षष्ठ्यात्यधिकानि नित्यं।
अर्द्धार्द्धमानानि भवन्ति तानि चक्रेश्वराद्यावदसौ सुराजा।

२०६। चर्चा दोसौ छहवीं।

स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्रके पशु पक्षियोंकी आयु उत्कृष्ट है परन्तु यहांके पशु पक्षियोंकी कितनी है?

समाधान—न्योला, चूहे, घूस, वाघ, चीते, कबूतर, कुत्ते, और सूअर आदि पशुओंकी आयु भगवान अरहंत देवने बारह वर्षकी बतलाई है तथा इसी प्रकार अन्य पशुओंकी भी यथा योग्य हीन वा अधिक समझ लेनी चाहिये। सो ही त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें लिखा है—

नकुलानां मूषकानां घूषकानां तथैव च। व्याघ्रचित्रकपोतानां मंडलानां जिनोदितम् ॥
शूकराणां तथैवात्र संवत्सराणां द्विषट् मतम्।

१०७। चर्चा एकसौ सातवीं।

मुसलमान आदि कितने ही यवन, कितने ही शूद्र, कितने ही क्षत्रिय, तथा अधोगतिके पात्र कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञानको धारण

करनेवाले अपने वचनोंकी चतुरतासे अपनेको बडे बुद्धिमान माननेवाले ऐसे कितने ही ब्राह्मणादिक अपनी इन्द्रियोंको पुष्ट करनेके लिये महा अधर्म रूप बचन कहते हैं। वे कहते हैं कि जीवोंका आहार ही जीव है। जीवोंके आहारके विना यह जीव जीवित नहीं रह सकता। इस संसारमें जीवदया पल नहीं सकती। चांवल, जो, गेंहू, उडद, मूंग, मसूर, चना, ज्वार आदि अनेक धान्य हैं तथा शाक पत्र फल पुष्प जल आदि अनेक भक्ष्य वा खाने योग्य पदार्थ हैं परंतु इन सबमें जीव हैं, विना जीवके इनमें कोई नहीं है। तथा धान्योंको वा शाक फल आदिको सब भक्षण करते हैं उसी प्रकार हम पशु पक्षी आदि जीवोंके मांसका भक्षण करते हैं। क्या अन्न आदिमें जीव नहीं है। क्योंकि विना जीवके पृथ्वीपर बोनेसे कैसे उत्पन्न होजाते हैं और उनपर फल पुष्प आदि कैसे लग जाते हैं इससे सिद्ध होता है कि जीव सबमें हैं। हां; अंतर केवल इतना है कि मांसादिकके खानेसे एक जीवके मांससे अनेक जीवोंका पेट भर जाता है इसलिये मांस खानेवालेको एक जीवकी हिंसाका थोडासा भाग लगता है। परंतु अन्न खानेवाले सेर आधासेर अन्न खाते हैं। उसमें जितने दाने हैं उतने ही जीव हैं इसलिये उनको अनेक जीवोंकी हिंसाका पाप लगता है। इसप्रकार अन्नादिक भक्षण करनेमें बहुत पाप लगता है और मांस भक्षण करनेमें थोडा पाप लगता है इसलिये मांस भक्षणका निषेध करना ठीक नहीं है।

समाधान—समस्त जीवोंको समान मानकर मांसभक्षण पुष्ट करना दुष्टोंका काम है। ऐसे दुष्टोंकी बुद्धिको धिक्कार हो। इस जीवकी जैसी गति होनहार होती है वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है। लिखा भी है "बुद्धिः कर्मानुसारिणी"

यदि समस्त जीवोंको समान मान लिया जाय तो फिर पांच प्रकारके स्थावर और चार प्रकारके त्रस आदि जो जीवोंके भेद हैं वा योनियोंके भेदसे चौरासी लाख भेद हैं अथवा कुलकोडके भेदसे एकसौ साडे निन्यानवे लाख कुलकोडि जीवोंके भेद हैं वे अलग अलग जीवोंके भेद किस प्रकार सिद्ध होंगे।

यदि समस्त जीवोंको एकसा माना जाय तो स्त्रीयोनिकी अपेक्षासे माता पुत्री बहिन आदि सब ही स्त्रीके समान हो जांयगी फिर क्या स्त्रीके समान सबसे संभोग करना चाहिये। अथवा माताके समान स्त्रीका भी स्तनपान करना चाहिये। क्योंकि जब स्त्रियां एक ही हैं सब समान हैं फिर किसीमें भेदभाव नहीं रखना चाहिये। यदि सब स्त्रियां स्त्रीपर्यायकी अपेक्षासे समान होने पर भी उन्हें माता पुत्री स्त्रीकी अपेक्षासे भेद मानोगे तो फिर जीवोंमें भी भेद मानना ही पडेगा। जीवोंकी उत्पत्ति, इन्द्रियां प्राण पर्याप्ति आदिकी हीनाधिकतासे उनकी हिंसामें भी भेद पडता है तथा हिंसामें अंतर पडनेसे पापमें भी हीनाधिकता होती है। सब जीवोंके घातका समान पाप नहीं लगता।

किसी एक एकेन्द्रिय जीवकी हिंसासे लट आदि द्वीन्द्रिय जीवकी हिंसामें अनेक गुणा पाप लगता है। दो इन्द्रियसे तेइंद्रिय जीवकी हिंसामें अधिक पाप लगता है तेइन्द्रियसे चौइन्द्रिय और चौइन्द्रियसे पंचेन्द्रिय जीवोंकी हिंसामें अधिक पाप लगता है इस-लिये ही एकेन्द्रिय जीवोंके कलेवरके सिवाय अन्य समस्त जीवोंके कलेवरोंके भक्षण करनेका त्याग बतलाया है। तथा एकेन्द्रिय जीवोंमें भी जो योग्य हैं वे ही ग्रहण करने योग्य हैं अनन्त जीवोंका समुदायरूप साधारण जीवोंका वहां भी त्याग बतलाया है।

तू जो समस्त जीवोंको एकसा बतलाता है सो इसमें तो बडाभारी दोष आता है। साक्षात् पंचेन्द्रिय जीवको मारकर उसका मांस खाना अत्यंत हिंसाका, निर्दयीपनेका क्रोध मान माया लोभका तथा महा अशुद्धिका कारण है। यह साक्षात् चांडाल कर्म है इसलिये उसमें महा दोष उत्पन्न होता है।

स्थावर जंगमके भेदसे जीवोंके दो भेद हैं। उनमेंसे जंगम वा त्रस जीवोंके शरीर पिंडमें तो मांस उत्पन्न होता है। परंतु स्थावर जीवोंके शरीर पिंडसे मांस नहीं निकलता। उसमें तो पत्ते फल फूल आदि निकलते हैं। यह प्रत्यक्ष है इसमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार स्त्रियोंमें माता भोग्य नहीं है और अपनी स्त्रीके स्तनपान करना योग्य नहीं है। उसी प्रकार मांस कभी भी किसी भी हालतमें भक्षण करने योग्य नहीं है। ऐसा निश्चित सिद्धांत है। सो ही लिखा है—

१ एकेन्द्रिय जीवोंके कलेवरकी मांस संज्ञा नहीं होती। गेहूं जौ उडद आदिको वा लकडी फल पत्तोंको कोई मांस नहीं कहता। शास्त्रोंमें भी यही लिखा है—

मांसं जीवशरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मांसम्। यद्वन्निम्बो वृक्षः वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्बः॥

अर्थात्–मांस जीवका शरीर ही होता है परंतु जीवोंके जितने शरीर हैं वे मांस होते हैं अथवा नहीं भी होते जैसे नीम एक वृक्ष होता है परंतु जितने वृक्ष हैं वे सब नीम नहीं होते कोई होते हैं और कोई नहीं भी होते। अभिप्राय यह है कि त्रस जीवोंके कलेवरों की तो मांस संज्ञा है परंतु एके-न्द्रिय जीवोंके कलेवरोंकी मांस संज्ञा नहीं है। क्योंकि उसमें हड्डी रुधिर आदि कुछ भी नहीं होता है। त्रस जीवोंके कलेवरोंमें बदबू होती है। उसमें अनंतानंत जीव प्रतिसमयमें उत्पन्न होते और मरते रहते हैं और इसीलिये उसमें बदबू होती है। परंतु गेहूं जौ आदि धान्योंमें यह बात नहीं है। न उसमें बदबू है और न उसमें प्रतिसमयमें अनंतानंत जीव उत्पन्न होते हैं। जिसप्रकार गायका दूध पीने योग्य है परंतु गायका मांस खाने योग्य नहीं है वह त्याग करने योग्य है उसी प्रकार एकेंद्रिय जीवोंसे उत्पन्न हुये धान्य भक्ष्य हैं और मांस कभी किसी हालतमें भी भक्ष्य नहीं है।

स्थावरा जंगमाश्चैव प्राणिनो द्विविधाः स्मृता। जंगमेषु भवेन्मासं फलं च स्थावरेषु च॥
जीवत्वेनेह तुल्यास्ते यद्यप्येते भवन्ति वै। स्त्रीत्वे सति यथा माता अभक्ष्या जंगमास्तथा॥ २॥

इस प्रकार समस्त जीवोंकी समानता नहीं है। यदि सब जीव एक हैं तो फिर जीवोंके शरीरका, उनकी गति वा इन्द्रियोंका जुदा जुदा आकार क्यों दिखाई पडता है। इससे सिद्ध होता है कि सब जीव एक नहीं हैं। कोई बडा है, कोई छोटा है, कोई स्त्री है, कोई पुरुष है, कोई नपुंसक है, कोई पुत्र है, कोई पिता है, कोई पुत्री है, कोई भगिनी है, कोई मामा है, कोई भानजा है इत्यादि व्यवहार सबको एक मान लेनेपर कैसे होगा? तथा पशु, पक्षी, जलचर आदि जुदे जुदे जीवोंका जुदा जुदा आकार किस प्रकार होगा।

कदाचित् कोई यह कहे कि जीव तो सब एक हैं परंतु परमेश्वरकी इच्छानुसार सब जुदे जुदे होगये हैं सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि तुम्हारे कहनेसे ही दो भेद होजाते हैं। फिर एकता कैसे रह सकती है?

कदाचित् कोई यह कहे कि जीव तो सब एक ही हैं क्योंकि सबमें एक परमेश्वरकी ही सत्ता है अर्थात् भगवान सबमें है सो यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसा मानना अनेक अनर्थोंकी जड है। क्योंकि यदि सब जीवमें ईश्वर हैं तो फिर जो जीवोंको मार कर खाते हैं वे परमेश्वरको ही मार कर खाते हैं ऐसा मानना पडेगा और इसमें महापाप स्वीकार करना पडेगा।

कदाचित् कोई यह कहे कि जीवोंमें परमेश्वरका अंश नहीं है किंतु सब जीव एक हैं। सो यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि यदि सब जीव एक हैं, तो फिर ब्रह्माने जब सृष्टि रची तब उसको अपनी माया कैसे बतलाई तथा विष्णुको सर्वगत किसप्रकार बतलाया और सब सृष्टिमें परमात्मा कैसे बतलाया? यह सब कहना व्यर्थ हो जायगा। इसलिये कहना चाहिये कि जीवोंमें सर्वत्र परस्पर भेद है। सब जीव समान नहीं हैं। राजा वा सेवकके समान अपने अपने कर्मोंके उदयसे समस्त जीव इस संसारमें अनेक प्रकारके पुद्गलोंको ग्रहण करते हुए अनेक रूप धारण करते हैं। फिर भला एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव समान कैसे हो जायंगे।

इससे सिद्ध होता है कि एकेन्द्रिय जीवोंका कलेवर तो फल फूल पत्ते आदि वनस्पति रूप है तथा दो इन्द्रिय ते इन्द्रिय चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवोंका शरीर मांसरूप है। एकेंद्रिय जीवोंका कंदमूल पत्र फल पुष्प रूप शरीर जलसे उत्पन्न होता है। तथा

पंचेंद्रिय मनुष्य वा पशु पक्षी जलचरादिक जीव पिताके वीर्य और माताके रुधिरसे उत्पन्न होते हैं। इस समयके मुसलमान आदि यवन लोग शूद्र जातिके मूत्रकी बूंदमें तो बड़ा दोष मानते हैं परन्तु उसी मूत्रकी बूंदसे बने हुए मांसको खा जाते हैं। उसमें कोई दोष नहीं मानते। सो यह उनकी बडी मारी भूल है।

कितने ही उत्तम जातिके लोग वा उत्तम कुलके लोग वेदको मानते हैं उसमें लिखे हुए वाक्योंकी पुष्टि करते हुए यज्ञकर्म करने, उसमें जीवोंका होम करने तथा देवताओंके लिये बलिदान देकर जीवोंके मारने और उसकी प्रसादी समझकर उन जीवोंके मांस-भक्षण करनेका विधान करते हैं। तथा इसप्रकारका मांस भक्षण करते हैं। यदि कोई उनके इस कामकी निंदा करता है तो वेदोंके वाक्य बतला देते हैं। यदि कोई वेदोंको नहीं मानता तो उसको चांडाल कहते हैं। उनके यहां लिखा है "वेदबाह्यास्तु चांडालाः' इसप्रकार वे लोग अपना मांसभक्षण पुष्ट करते हैं। वे लोग यह भी कहते हैं कि पहले बडे बडे लोग मांस भक्षण करते थे। श्रीरामचंद्र भी शिकार खेलते थे। क्योंकि सुवर्णके मृगको मारनेके लिये वे दोडे ही थे। बडे बडे राजाओंने जीवोंका बधकर उनका मांस खाया है। हमारे क्षत्रिय वंशका यही धर्म है। इसप्रकार कहकर वे लोग अपने शरीर और इंद्रियोंकी पुष्टि करते हैं परन्तु उनका यह सब कहना व्यर्थ है। यदि उनके वेद और पुराणोंमें होम आदिके द्वारा जीवोंका बध करना लिखा है और उनके मांस भक्षणका विधान बतलाया है तो फिर उन शास्त्रोंको शास्त्र ही नहीं कहना चाहिये। जिन शास्त्रोंके वचनोंसे जीवोंका बध हो वे शास्त्र नहीं किंतु शस्त्र हैं। उनका प्रयोग उपदेश अर्थको कहनेवाली शास् धातुसे नहीं बना है किंतु हिंसार्थक शस् धातुसे बना है। वे लोग उन शास्त्रोंको वेद कहते हैं सो वह वेद नहीं है किंतु वेत है। जिसप्रकार बेतकी मारसे मनुष्य आदि जीवोंका चमड़ा उधर आता है। उसीप्रकार जिसके ऋचारूपी वेतके उच्चारणरूपी प्रहारसे पशु आदि जीवोंका बध होता हो पशुओंका चमड़ा उतारकर होमते हों वह वेद नहीं है किंतु बहुत बड़ा बेंत है। इसप्रकार वह वेद शास्त्र नहीं है किंतु शस्त्र है। ऐसे वेदको मानना महा पाप है, महा हिंसाका कारण है।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि जीवोंकी हिंसा करना तथा मांस भक्षण करना इस लोकमें महापाप माना जाता है। यह बात सब शास्त्रोंमें लिखी है। हिंसा और मांस भक्षणका फल महा दुःखरूप है, और नरकादि अनेक दुर्गतियोंका कारण है। शास्त्रोंमें ऐसे लोगोंकी अनेक कथाएं लिखी हैं। इन सब शास्त्रोंको जानते हुए भी लोलुपी लोग सबका लोपकर फिर भी मांस भक्षणादिककी पुष्टि करते हैं और कहते हैं कि वेदमें लिखा है "यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः" अर्थात् इस संसारमें पशुओंकी रचना यज्ञके

ही लिये हुई है। वे लोग उन यज्ञोंके भी कितने ही भेद बतलाते हैं। जिसमें बकरा होमा जाय वह अजामेध यज्ञ है। जिसमें गाय होमी जाय वह गोमेध यज्ञ है। जिसमें घोडा होमा जाय वह अश्वमेध यज्ञ है। जिसमें मनुष्य होमे जांय नरमेध यज्ञ है। इस प्रकार वे लोग यज्ञोंके अनेक भेद बतलाते हैं उन यज्ञोंमें अनेक जीवोंको होमते हैं और उनका अलग अलग फल बतलाते हैं। सो सब महापापका मूल है। क्योंकि इन्हींके शास्त्रोंमें जीवोंके होम करनेमें उनका बध करनेमें, और मांस भक्षण करनेमें महापाप लिखा है। तथा ऐसे ऐसे समस्त कार्योंके करनेका त्याग करना बतलाया है। उनके शास्त्रोंमें ऐसे महापापोंका निषेध कहां कहां लिखा है सो यहां प्रसंग पाकर थोडासा लिखते हैं।

भारतमें लिखा है—मद्यका पीना, मांस भक्षण करना, रात्रिमें अन्न पान लेह्य स्वाद्य आदि चारों प्रकारके आहारका भक्षण करना, कंदमूल खाना महापाप है। जो कोई पुरुष इनका सेवन करता है उसकी तीर्थयात्रा जप तप आदि सब व्यर्थ होता है। उनके यहां सब अडसठ तीर्थ माने हैं सो जो पुरुष मांस, मद्य, रात्रिभोजन, कंदमूल आदिका सेवन करते हैं उनकी अडसठ तीर्थों की यात्रा व्यर्थ होती है। राम, कृष्ण, परमेश्वर आदिका जप सब व्यर्थ होता है। गायत्री मंत्रका जप भी सब व्यर्थ होता है। तथा चान्द्रायण व्रत तथा और भी व्रत, तथा पंचाग्नि आदि अनेकप्रकारके कष्ट देनेवाले तप सब व्यर्थ होजाते हैं। सो ही भारतमें लिखा है—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्। ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः॥

उसीमें आगे लिखा मद्य मांस भक्षण करनेवाले वा रात्रि भोजन करनेवालोंके एकादसी व्रतका उपवास करना, नारायणके मंदिरमें जागरण करना, पुष्करकी यात्रा करना, और चंद्रायण तप करना आदि सब व्यर्थ हो जाता है। जबतक वह मद्य मांसादिकका त्याग नहीं करता तब तक उसको जप तप व्रत उपवास आदिका कोई फल नहीं मिलता। मद्य मांसादिकका त्याग करनेसे ही इनका फल मिल सकता है। सो ही भारतमें लिखा है—

वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः। तथा च पुष्करीयात्रा वृथा चंद्रायणं तपः॥

मनुस्मृतिमें लिखा है जो कोई जीवोंकी हिंसा करता है उसके न तो ध्यान हो सकता है न स्नानसे शुद्धि हो सकती है न वह दान दे सकता है। तथा न वह शुभ क्रियाएं कर सकता है। हिंसा करनेवालेके इन सब बातोंका अभाव हो जाता है। यदि

वह इन क्रियाओंको कर भी डाले तो भी जीवघात करनेसे उसका सब किया हुआ निष्फल हो जाता है। सो ही मनुस्मृतिमें लिखा है—

न च ध्यानं न च स्नानं न दानं न च सत्क्रियाः। सर्वे ते निष्फलं यांति जीवहिंसां करोति यः॥

भारतमें लिखा है—जो प्राणी बकरा हिरण सांभर गीदड सूअर आदि पशुओंका घात करता है वह उस पापके फलसे उस पशुके शरीरमें जितने रोम हैं उतने ही हजार वर्ष तक अग्निमें पकाया जाता है। यथा—

यावंति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भो नर। तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशुघातकाः॥

भारतमें श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहेते हैं कि विष्ठाके कीडेको और स्वर्गमें रहनेवाले इन्द्रको दोनोंको जीवित रहनेकी आकांक्षा एकसी है। दोनोंके जीवित रहनेकी इच्छामें कोई कमी नहीं है। इन्द्र महा सुखी है सो उसे तो जीवित रहनेकी इच्छा सदा लगी ही रहती है। परंतु विष्ठाका कीडा भी मरना नहीं चाहता दुखी होने पर भी वहीं रहना चाहता है। इससे सिद्ध होता है कि उसको भी जीवित रहनेकी इच्छा लगी हुई है। इसी प्रकार मरनेका भय दोनोंको एकसा है। दोनों ही मरनेसे डरते हैं मरनेमें सभीको समान दुःख होता है। इसलिये जिसप्रकार अपने प्राण मुझे प्यारे लगते हैं उसी प्रकार अन्य प्राणियोंको भी अपने अपने प्राण प्रिय लगते हैं। यही समझकर बुद्धिमान पुरुषोंको घोर और भयंकर ऐसा प्राणियोंका वध कभी नहीं करना चाहिये। उपदेश बुद्धिमानोंको ही दिया जाता है। मूर्ख और अज्ञानी पुरुष तो किसीकी मानता ही नहीं है इसलिये उसको कहना ही व्यर्थ है। सो ही भारतमें लिखा है—

अमेध्यमध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये। समाना जीविताकांक्षा समं मृत्युभयं द्वयोः॥ १॥
यथा ममप्रियाः प्राणास्तथा चान्यस्य देहिनः। इति मत्वा न कर्तव्यो घोरप्राणिवधो बुधैः॥ २॥

इसीप्रकार मार्कंडेय पुराणमें श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है कि हे अर्जुन! इस पृथिवीमें भी मैं हूं। समस्त अग्नि, वायु, वनस्पति आदिमें भी मैं हूं और तीनों लोकोंके समस्त प्राणियोंमें भी मैं हूं। मैं सर्वगत वा सब जगह सब पदार्थोंमें सब जीवोंमें रहने वाला हूं। इसलिये सब जीवोंमें मुझे समझकर जो जीवकी हिंसा नहीं करते उनकी रक्षा मैं करता हूं। जो जीवोंकी हिंसा करते हैं उनका क्षय होता है। ऐसा मार्कंडेयपुराणमें लिखा है। यथा—

पृथिव्यामप्यहं पार्थ सर्वाग्नौ च जलेप्यहम् । वनस्पतिगतोप्यहं सर्वभूतगतोप्यहम् ॥
यो मां सर्वगतं ज्ञात्वा न हिंसति कदाचन । तस्याहं न प्रणस्यामि स मे न प्रणस्यति ॥

शिवधर्ममें लिखा है कि मांसमें, मद्यमें, शहतमें और मक्खनमें उसी वर्णके (मांस मक्खन वा शहतके रंगके) असंख्यात असंख्यात जीव हर समय उत्पन्न होते रहते हैं। यथा—

मद्ये मांसे मधुनि च नवनीते वहि र्न ते। उत्पद्यन्ते असंख्यातास्तद्वर्णास्तत्र जन्तवः ॥

इसप्रकार मांसमें महा दोष है। पहले तो यह जीवोंकी हिंसासे उत्पन्न होता है। तथा फिर उसमें अनेक दोष हैं यही समझकर धर्मात्मा पुरुष हिंसाका और मांस भक्षणका सर्वथा त्याग कर देते हैं।

जो जीव स्वयं मांस नहीं खाते परंतु दूसरोंको उपदेश देते हैं। कहते हैं यह राजाओंका धर्म है। शिकार खेलना राजाओंका धर्म है। उसके लिये मुहूर्त देते हैं सो हिंसा करना वा उसके लिये उपदेश देना वा कारण सामग्री मिलाना सब एक है। जो लोग इन निंद्य कार्योंका उपदेश देते हैं वे धर्मके नाश करने वाले, पापको बढानेवाले, इंद्रियोंके लंपटी अधर्मी और महा पतित हैं। ऐसा समझना चाहिये।

प्रश्न—यदि मांसमें ऐसा दोष है तो श्राद्धमें मांस खिलानेका विधान क्यों लिखा है। स्मृतिशास्त्रमें लिखा है। "मछलीका मांस खिलानेसे पितर लोग दो महीने तक तृप्त रहते हैं। हिरणके मांससे तीन महीने तक रहते हैं। मेंढके मांससे चार महीने तक तृप्त रहते हैं पक्षियोंके मांससे पांच महीने तक बकरेके मांससे छह महीने तक, कबूतरके मांससे सात महीने तक, एण जातिके हिरणके मांससे आठ महीने तक रोरव नामके हिरणसे नो महीने तक, सूअर तथा भैंसके मांससे दश महीने तक, खरगोश और कच्छपके मांसहे ग्यारह महीने तक और गायके दूधकी खीर खिलानेसे बारह महीने तक पितर लोग तृप्त रहते हैं। सो ही लिखा है—

द्वौमासौ मत्स्यमांसेन त्रिमासा हारिणेन वै। औरभ्रेण तु चत्वारः शाकुनेन तु पंच वै ॥
षट्मासाः छागमांसेन पार्वतेन तु सप्त वै। अष्टावेण्यस्य मांसेन रौरवेण नवैव तत् ॥ २ ॥
दशमासास्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः। शशकूर्मस्य मांसेन मासा एकादशैव च ॥ ३ ॥
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वै।

इसप्रकार श्राद्धमें मांसका विधान लिखा है सो क्यों लिखा है ?

समाधान—जो लोग इसप्रकार मांसका विधान करते हैं वे चाहे श्रद्धा करनेवाले गृहस्थ हों, चाहे श्राद्ध करानेवाले आचार्य हों अथवा तृप्त होनेवाले पितर हों वे सब राक्षस वा भील समझने चाहिये। क्योंकि मांसका विधान करना राक्षसोंका काम है। दूसरी बात यह है कि यदि मांसके विधानका ही दृढ विश्वास किया जायगा तो श्राद्ध अधिकारमें जो तिल चावल जल, शर्करा, घी, दूध, मधु, दही आदिका पिंड करना कैसे बतलाया। देखो श्राद्धकल्पमें लिखा भी है—

तिलान्नं चैव पानीयं शर्कराज्यं पयस्तथा। मधु दध्ना समायुक्तः अष्टांगः पिंड उच्यते ॥

इसप्रकार जो अष्टांग पिंड बतलाया है वह सब व्यर्थ हो जायगा।

आगे तुम्हारे यहां लिखा है—

विंध्यस्य चोत्तरे भागे मांसभक्षी न दोषभाक्।

अर्थात् विंध्याचलके उत्तर भागमें मांस भक्षण करनेवाला दोषी नहीं गिना जाता। इसप्रकार कहकर बहुतसे शक्तिके उपासक कान्यकुब्ज, सनोडिया, सर्वरिया पुरविया आदि ब्राह्मण मछली बकरा आदिका मांस भक्षण करते हैं। परंतु उनका यह कहना और करना सब मिथ्या है। क्योंकि मांस कुछ पृथिवी जलसे तो उत्पन्न होता ही नहीं है अथवा फलोंके समान वृक्षों पर लगता नहीं है। वह जंगम जीवोंके घात करनेसे होता है। इसप्रकार जंगम जीवोंके घात करनेसे उत्पन्न हुए मांसको भक्षण करने वाले लोगोंके भला जीवदया किसप्रकार पल सकती है क्योंकि श्राद्धादिकमें मांसका काम पडता ही है। इसलिये कहना चाहिये कि इसप्रकार कहनेवाले वा माननेवाले बडे ही अधर्मी हैं।

आगे जो लोग यह कहते हैं कि क्षत्रियोंके कुलमें परंपरासे मांसभक्षण वा शिकार खेलना चला आया है तथा उनमेंसे कितने ही इन्द्रियोंके लंपटी, विषयकषायोंको पुष्ट करनेवाले, महाकामी, अधोगतिके जानेवाले, भ्रष्ट, महापापी, चांडालोंके समान क्रूर परिणामी, क्रोधी अधर्मी लोग शास्त्रोंमें भी मांसभक्षणकी पुष्टि करते हैं, धर्म मानकर हिंसाकी वा मांसभक्षणकी पुष्टि करते हैं परंतु ऐसे लोग महा दुर्बुद्धि और महा मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसे लोग ग्रामीण सूअरोंके समान हैं। जैसे ग्रामीण सूअरोंके सामने चाहे जैसे उत्तम पकवान रक्खे जांय परंतु वह सूअर उन उत्तम उत्तम पकवानोंको छोडकर विष्ठापर ही पडता है। उसीको प्रेमसे खाता है और तृप्त होकर आनंद मानता है। अथवा उल्लू जातिका पक्षी अनेक प्रकारके उत्तम उत्तम भोजनोंको छोडकर पक्षियोंका मांस

भक्षण कर ही अपना पेट भरता है उसी प्रकार दुष्ट बुद्धिके लोग उत्तम उत्तम पदार्थोंको छोडकर मांस भक्षणका विधान करते हैं। जिनकी नीच गति होनहार होती है उनके ऐसे ही नीच बुद्धि उत्पन्न हुआ करती है ऐसे नीच बुद्धिवालोंके उत्तम बुद्धि कभी नहीं हो सकती।

ऐसे लोग ऊपर लिखे शास्त्रोंको कहकर अपने मिथ्या धर्मकी पुष्टि करते हैं परंतु पहली बात तो यह है कि श्राद्धकर्म कुछ मोक्ष देनेवाला नहीं है। यह तो स्वार्थी लोगोंने अपने स्वार्थके लिये चलाया है। इसलिये वह कभी प्रमाणरूप नहीं हो सकता। कदाचित् यह कहा जाय कि हमारे वेदमें लिखा है सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि जो जीवहिंसाका उपदेश दे वह वेद कभी नहीं कहा जा सकता। उसे तो वेधक-जीवोंका घात करनेवाला कहना चाहिये भला जो "यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः" अर्थात् पशुओंको यज्ञमें होमनेके लिये ही उत्पन्न किया है" इस महाहिंसाकी पुष्टि करते हैं वे महा हिंसक, महापाप रूप, घातक शस्त्रोंके समान समझे जाते हैं। इसलिये उनको वेध वा वेधक कहना चाहिये।

यहांपर कदाचित् कोई वेदको माननेवाला यह कहे कि "यज्ञमें पशुओंको होमना हमारे वेदमें लिखा है। सो मंत्रोंकी आहु-तीयोंसे होमना बतलाया है। इसी प्रकार देवताको बलिदान देनेके लिये होमके अंतमें वध करना भी होमके लिये है। अथवा उस देवताके लिये है इसलिये ऐसी हिंसामें हिंसाका पाप नहीं लगता। ऐसे यज्ञोंको जो करता है अथवा कराता है अथवा जो बकरा, भैंसा, घोडा, मनुष्य आदि जीव होमे जाते हैं वे सब स्वर्गमें जाते हैं इसलिये ही यज्ञमें जीव होमनेका निषेध नहीं हैं। किंतु कर्तव्य है ऐसा वेद कहता है" इस प्रकार वेद माननेवालेका कहना महा हिंसाके दोषको उत्पन्न करता है क्योंकि यदि वेद यह कहता है कि "मंत्रपूर्वक जीवोंका होम करनेसे पाप नहीं लगता" तो वेदका यह कहना मुसलमानोंके कहनेके समान हुआ। क्योंकि मुसलमान भी यह कहते हैं कि हमारे कुराणकी लिका जीवके ऊपर पडनी चाहिये और उसको शस्त्रसे मारकर उसका मांसभक्षण करना चाहिये। इस प्रकार जीवको मारने और उसका मांसभक्षण करनेमें कोई दोष वा पाप नहीं है। लिका पढ लेनेके बाद फिर उसमें कोई दोष वा पाप नहीं रहता। यदि कोई जीव अपने आप मर जाय तो हम (मुसलमान) उसे छूते भी नहीं हैं। लिका पढनेके बाद जो जीव मारा जाता है वह सीधा विहिस्तमें (स्वर्गमें) जाता है। इस प्रकार वेदका कहना और मुसलमानोंका कहना समान ही हुआ। वेद माननेवाले गायको अच्छी मानते हैं और मुसलमान सूअरको अच्छा मानते हैं बस इतना ही दोनोंमें अंतर दिखाई पडता है। हिंसा करना दोनोंका बराबर है। दोनों ही समान हिंसक हैं।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि पहले लोग ऐसे समर्थ होते थे कि वे जीवोंको होम भी देते थे और फिर उनको मंत्र पढकर जीवित भी कर देते थे। सो उनका यह कहना भी मिथ्या है। क्योंकि यदि वे इतने समर्थ थे तो फिर उन्होंने अपने कुटंबको मरनेसे क्यों नहीं बचाया। अपने सब कुटुंबको अमर क्यों नहीं बना दिया। परंतु आजतक किसीने अपने कुटंबको अमर नहीं बनाया इससे सिद्ध होता है कि उनका इस प्रकार कहना सब मिथ्या है। जो जीव यज्ञमें होमे जाते हैं वे सब सीधे स्वर्ग चले जाते हैं यदि यह बात सच है तो फिर उन लोगोंने अपने कुटुंबको ही क्यों नहीं होम दिया, जिससे उनका सब कुटंब स्वर्ग चला जाता? परंतु अपने कुटुंबको कोई नहीं होमता। इससे मालूम होता है कि होम करना सब स्वार्थ और जिह्वालंपटताकेलिये है।

इसके सिवाय एक बात विचार करनेकी यह है कि यदि मांसभक्षण योग्य होता तो भारत आदि तुम्हारे ही शास्त्रोंमें मांसको अत्यंत निंद्य और त्याग करने योग्य क्यों बतलाया जाता? जैसा कि पहले भारतका प्रमाण देकर लिख चुके हैं। तथा यहां फिर भी प्रसंग आगया है इसलिये प्रसंगानुसार कुछ और भी लिखते हैं। आपके धर्मशास्त्रमें लिखा है—

मांसाशिनो न पात्राः स्युर्न मांसदानमुत्तमम्। तत्पित्राणां कथं तृप्त्यै भुक्तं मांसाशिभिर्भवेत्॥ १॥
पुत्रेणार्पितदानेन पितरः स्वर्गमाप्नुयुः। तर्हि तत्कृतपापेन तेपि गच्छंति दुर्गतिम्॥ २॥
किं जाप्यहोमनियमैस्तीर्थस्नानेन भारत!। यदि मांसानि खादन्ति सर्वमेव निरर्थकम्॥ ३॥

अर्थ—जो मांस भक्षी हैं वे कभी पात्र नहीं होसकते। कितने ही लोग कहते हैं हम ब्राह्मण हैं इसलिये दानके पात्र हैं परंतु उनका यह कहना मिथ्या है। जो ब्राह्मण होकर मांस भक्षण करता है वह न तो ब्राह्मण है और न कभी पात्र हो सकता है। इसी प्रकार मांसका दान भी दान नहीं कहा जा सकता। ऐसी हालतमें उन पितरोंकी तृप्ति कैसे होसकती है। कदाचित् ब्राह्मणोंको मांस खिलानेसे पितर लोग तृप्त होजांय तो फिर यह भी मानना पडेगा कि वे पितर लोग भी मांसभक्षी हैं। यदि अपने पुत्रके द्वारा दान देनेसे यदि पितर लोगोंको स्वर्गकी प्राप्ति होती है तो फिर पुत्रने जो मांसदानकेलिये जीवोंका वध किया वा कराया मांस पिंड दिया तथा मांसका भक्षण किया उसके पापसे पितरोंको दुर्गति की भी प्राप्ति होनी चाहिये। हे भारत! जो जीव मांस भक्षण करते हैं वे चाहे जितना राम कृष्ण आदिका नाम उच्चारण कर जप करें चाहे जितना होम करे, चाहे जितने नियम करें, चाहे जितनी तीर्थयात्रा करें और चाहे जितने तीर्थ स्नान करें परंतु उनका सब करना व्यर्थ है मिथ्या है। इस प्रकार धर्मशास्त्र और पुराणोंमें केवल मांसभक्षण के ही अनेक दोष बतलाये हैं। भारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

न देयानि न ग्राह्याणि षड्वस्तूनि पंडितैः । अग्निर्मधु विषं शस्त्रं मद्यं मांसं तथैव च ॥ १ ॥

अर्थ–विचारशील पंडितोंको अग्नि शहद विष शस्त्र मद्य और मांस ये छह वस्तुयें न तो किसीको देनी चाहिये न किसीसे लेनी चाहिये। जब इन छहों पदार्थोंका लेन देन भी निषिद्ध बतलाया है तब फिर मांसभक्षण करना वा कराना किसप्रकार संभव हो सकता है। फिर भी जो लोग मानते हैं सो सब मिथ्या है।

इसके सिवाय भी भारतके शांतिपर्वमें लिखा है–

एकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यं च एकतः। एकतः सर्वपापानि मद्यमांसं च एकतः ॥ १ ॥
न गंगा न च केदारं न प्रयागं न पुस्करम्। न च ज्ञानं न च ध्यानं न तपो जपभक्तयः ॥ २ ॥
न दानं न च होमश्च न पूजा न गुरौ नुतिम्। तस्यैव निष्फलं यान्ति यस्तु मांसं प्रखादति ॥ ३ ॥
तिलसर्षपमात्रं च यो मांसं भक्षयेन्नरः। स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४ ॥

जिसप्रकार एक ओर चारो वेद हैं और एक ओर ब्रह्मचर्य है उसीप्रकार एक ओर संसारभरके समस्त पाप हैं और एक ओर मद्यमांसका सेवन है। भावार्थ—ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद हैं। सो चारों ही वेद तो एक ओर हैं और स्त्री मात्रका त्याग करनेरूप ब्रह्मचर्य एक ओर है इनमें भी चारों वेदोंसे शीलव्रतकी महिमा अधिक है जिसप्रकार चारों वेदोंसे ब्रह्मचर्य की महिमा अधिक है उसी प्रकार संसार भरके समस्त पापोंसे मद्यमांस सेवनका पाप अधिक है। इससे सिद्ध होता है कि मद्य मांस सेवन करनेसे सबसे अधिक पाप होता है।

इसी प्रकार जो मांस भक्षण करते हैं उनके न तो गंगा है, न केदार, है, न प्रयाग है, न पुस्कर है, न ज्ञान है, न ध्यान है, न जप है, न तप है, न भक्ति है, न दान है, न होम है, न पूजा है, न वंदना है। अर्थात् मांस भक्षण करने वालेकी सब क्रियायें व्यर्थ हैं। उसके किये हुवे समस्त पुण्यकार्य भी व्यर्थ होजाते हैं–निष्फल होजाते हैं। इसप्रकार महा दोषसे भरेहुये मांसको जो तिल वा सरसों मात्र भी खाता है वह जब तक आकाशमें सूर्य चन्द्रमा रहेंगे तबतक घोर नरकमें सड़ता रहेगा इस प्रकार मांस खानेका फल महा निंद्य और तीव्र बतलाया है।

भारतमें लिखा है—श्रीकृष्ण पांडवोंसे कहते हैं—

स्नानोपभोगरहितः पूजालंकारवर्जितः । मधुमासनिवृत्तश्च गुणवान् तिथिर्भवेत् ॥

अर्थ—जिसने शहत और मांसका त्याग कर दिया है वह चाहे स्नानउपभोगसे रहित हो और चाहे तिलक आदि पूजाके अलंकारोंसे रहित हो तो भी वह गुणवान् अतिथि माना जाता है। बहुतसे लोग स्नान आचमन संध्या तर्पण तिलक कंठी आदिका अभिमान करते हैं परंतु उन्हें सोचना चाहिये कि सबसे मुख्य शहत और मांसका त्याग है। जिसने शहत और मांसका त्याग नहीं किया है उसके स्नान आचमन आदिका कोई मूल्य नहीं है। विना मांस शहतका त्यागकिये केवल स्नानादिक करनेमें कोई गुण नहीं है। शहत और मांसका त्याग करना सबसे श्रेष्ठ है। शक्तिके उपासकोंको या अन्य शहत मांस खानेवालोंको यह उपदेश बहुत अच्छीतरह समझ लेना चाहिये।

कितने ही भेषमात्रको धारण करनेवाले वैरागी शहत और मांसका भक्षण करते हैं और शहत मांसको खाते हुये भी अपनेमें ब्राह्मणपना मानते हैं सो भी मिथ्या है। क्योंकि शहत और मांसका खाना ब्राह्मणका लक्षण नहीं है किंतु चांडालका लक्षण है। सो ही महाभारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

मद्यमांसमधुत्यागी पंचोदुम्बरदूरगः । निशाहारपरित्यक्तः एतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ १ ॥
सत्यं नास्ति तपो नास्ति नास्ति चेंद्रियनिग्रहः । सर्वभूतदया नास्ति एतच्चांडाललक्षणम् ॥ २ ॥

अर्थ—जिसके मद्य मांस और शहतके भक्षण करनेका त्याग हो, बडफल, पीपल फल, गूलर पाकर अंजीर इन पांचो उदंबर फलोंका त्याग हो और जिसके रात्रिमें भोजन करनेका त्याग हो वही ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणके ये ही लक्षण हैं इन लक्षणोंके विना केवल अपने आप ब्राह्मण बनने वाले कभी ब्राह्मण नहीं हो सकते। जिसमें ऊपर लिखे ब्राह्मणके लक्षण हों और जो सम्यग्दर्शनसे सुशोभित हों वही ब्राह्मण माननेयोग्य समझा जाता है। जिसके मद्य मांसादिकका त्याग न हो, न सत्य भाषण करता हो, न तपश्चरण करता हो, न इन्द्रियोंका निग्रह करता हो और जो समस्त प्राणियोंकी दया पालन भी न करता हो वह ब्राह्मण नहीं किंतु चांडाल कहा जाता है। क्योंकि ये चांडालके लक्षण हैं। मद्य मांसादिका सेवन करनेवाला कभी ब्राह्मण नहीं हो सकता।

प्रश्न—यदि यह बात है तो धर्मकी उत्पत्ति किसप्रकार है, ऐसा प्रश्न अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा है। सो ही भारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

कथमुत्पद्यते धर्मः कथं धर्मो विवर्द्धते। कथं च स्थाप्यते धर्मः कथं धर्मो विनश्यति ॥

अर्थ—अर्जुन पूछते हैं कि हे भगवन्! धर्म किसप्रकार उत्पन्न होता है किन किन कारणोंसे बढता है किसप्रकार ठहरता है और किसप्रकार नाशको प्राप्त होता है। इनका उत्तर जो श्रीकृष्णने दिया है वह इसप्रकार है। जैसा कि भारतमें लिखा है—

सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानेन वर्द्धते। क्षमया स्थाप्यते धर्मो क्रोधलोभाद्विनश्यति।

अर्थ—सत्यव्रतसे तो धर्म उत्पन्न होता दया पालन करने और दान देनेसे बढता है समस्त जीवोंपर क्षमाभाव धारण करनेसे धर्मकी स्थिरता रहती है तथा क्रोध और लोभसे धर्मका नाश होता है।

इसके आगे फिर श्रीकृष्ण युधिष्ठरसे कह रहे हैं जैसा कि भारतमें लिखा है—

तस्य व्यर्थानि कर्माणि सर्वे यज्ञाश्च भारत!। सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च यः कुर्यात्प्राणिनां वधः ॥ १ ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम्। एतेषु पंचसूक्तेषु सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥
अहिंसालक्षणो धर्मः अधर्मः प्राणिनां वधः। तस्माद्धर्मार्थिना लोके कर्तव्या प्राणिनां दया ॥ ३ ॥
ध्रुवं प्राणिवधे यज्ञो नास्ति यज्ञ हिंसकः। सर्वसत्त्वेष्वहिंसैव सदा यज्ञो युधिष्ठिर ॥ ४ ॥

अर्थ—जो प्राणियोंका वध करता है उसकी सब क्रियाएं, सब यज्ञ और समस्त तीर्थों पर किये हुए अभिषेक व्यर्थ हैं। क्योंकि अहिंसा सत्य परिग्रहका त्याग और मैथुन करनेका त्याग वा ब्रह्मचर्यका पालन करना इन पांचोंमें ही सब धर्मोका समावेश हो जाता है। इस संसारमें अहिंसा वा किसी प्रकारकी हिंसा न करना ही धर्म है और प्राणियोंका वध करना ही अधर्म है इसलिये धर्मात्मा लोगोंको समस्त प्राणियों पर दया अवश्य पालन करनी चाहिये। जो यज्ञ प्राणियोंका वध करनेसे होता है वह कभी यज्ञ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि प्राणियोंका वध करनेवाला हिंसक समझा जाता है। और हे युधिष्ठिर! यज्ञ वही कहलाता है जिसमें समस्त प्राणियोंपर दयापालन की जाय, किसी भी प्राणीकी हिंसा न की जाय।

इसी भारतके शांतिपर्वमें लिखा है—

इन्द्रियाणि पशून् कृत्वा वेदीं कृत्वा तपोमयीम्। अहिंसामाहुतिं कुर्याच्चात्मयज्ञं यजामहे ॥

अर्थ—पांचों इंद्रियां ही होम करनेकी सामग्री बनाना चाहिये तपश्चरणको वेदी बनाना चाहिये और अहिंसाकी आहुति देनी चाहिये। इसप्रकार आत्मयज्ञ सदा करते रहना चाहिये।

इस संसारमें देखो बलिदान लेनेवाले देवता भी कैसे निर्दयी हैं जो हाथी घोडे सिंह आदिका बलि तो नहीं लेते किन्तु केवल बकरेका होम बतलाते हैं। सो ठीक ही है। दैव भी दुर्बलोंका ही घात करता है। सो ही लिखा है—

अश्वं नैव गजं नैव सिंहो नैव च नैवच। अजापुत्रं बलिं दद्यात् देवो दुर्बलघातकः॥

जो देवता बलिदान चाहते हैं वे देवता भी निर्दयी समझने चाहिये और उनका कर्ता भी महापापी समझना चाहिये। लिखा भी है—

यज्ञं कृत्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्। यद्येव गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते॥

अर्थात्—यज्ञ करनेवाले यज्ञमें अनेक पशुओंको मारकर और रुधिरकी कीचड मचाकर यदि स्वर्ग चले जाते हैं तो फिर वे नरकमें किन किन कामोंके करनेसे जायंगे। भावार्थ–ये सब काम तो नरकमें जानेके कारण हैं यदि इनको स्वर्गका कारण मान लिया जायगा तो फिर नरकका कारण संसारमें कुछ मिलेगा ही नहीं अथवा अहिंसा सत्य आदिको नरकका कारण मानना पडेगा परन्तु ऐसा हो नहीं सकता इसलिये यज्ञादिककी कल्पना सब व्यर्थ है। भारतके शांतिपर्वमें कृष्ण अर्जुनके संवादके समय लिखा है कि लोभी, मायाचारी, कपटी और इंद्रियोंके विषय भोगोंके लोलुपी मनुष्योंने केवल अपने स्वार्थके लिये जीवोंकी हिंसामें धर्म माना है सो उनकी यह विपरीतता है। सो ही लिखा है—

लोभमायाभिभूतानां नराणां भोगकांक्षिणाम्। एषां प्राणिवधे धर्मो विपरीता भवन्ति ते॥

भारतमें दया और हिंसाका स्वरूप दिखलाते हुए लिखा है—

अहिंसा सर्वभूतानां सर्वज्ञैः प्रतिभासिता। इदं हि मूलं धर्मस्य शेषं तस्यैव विस्तरः॥
उद्यन्तं शस्त्रमालोक्य विषादमयविह्वलाः। जीवाः कम्पति संत्रस्ताः नास्ति मृत्युसमं भयम्॥

अर्थ—समस्त जीवोंकी दया पालना सबकी रक्षा करना अहिंसा है। यही सब धर्मोंका मूल है। बाकी सब इसीका विस्तार है। भावार्थ—जिस प्रकार वृक्षके टिकनेका मुख्य कारण जड है। जड होनेपर उसकी शाखायें प्रतिशाखाएं होती हैं और शाखाएं

आदि होनेपर उनपर फल लगते हैं उसी प्रकार धर्मरूपी वृक्षकी जड वा मूल दया है। दयाके सहारे ही यह धर्मरूपी वृक्ष टिका है। बाकी सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य आदि सब इसी दयारूप मूलकी शाखायें हैं तथा त्याग, व्रत, जप, तप, संयम, उपवास, तीर्थयात्रा दान आदि भी सब इस दया धर्मकी शाखाएं हैं। इस प्रकार यह दयाधर्म सर्वोत्तम धर्म है ऐसा सर्वज्ञदेवने कहा है। हिंसा इससे विपरीत है। देखो जिस समय चंड कर्मोंको करनेवाला, दुष्ट बुद्धिको धारण करनेवाला, हिंसाके भावरूप रौद्र परिणामोंसे अत्यंत भयानक, महापतित अधम नीच भ्रष्टाचारी कोई घातक वा शिकारी पुरुष पशु पक्षियोंको देखकर उनके मारनेकेलिये उनपर शस्त्र उठाता है उस समय उस चमचमाते हुए शस्त्रको देखकर अपने मरनेके भयसे वह पशु वा पक्षी अत्यंत विषादको प्राप्त होता है अत्यत विह्वल होजाता है, घवडा जाता है उसका शरीर कंपने लगता है तथा वह बहुत ही भयभीत हो जाता है। सो ठीक ही है क्योंकि इस संसारमें मृत्युके ममान और कोई भय नहीं है। ऐसी हिंसाको न जाने लोग किसप्रकार कर डालते हैं। भारतमें लिखा है—

कंटकेनापि विद्धस्य महती वेदना भवेत्। चक्रकुंतासिशक्त्याद्यै छिद्यमानस्य किं पुनः॥

अर्थ—यदि अपने पैर आदि शरीरमें कहीं कांटा भी लग जाता है तो उससे ही बडी भारी वेदना वा दुःख होता है फिर भला अन्य जीवोंपर चक्र, भाला, वरछा, तलवार शक्ति तीर गोली आदि अनेक प्रकारके शस्त्रोंके प्रहार करने पर छिदते वा मरते हुए उन जीवोंको कितना दुःख होता होगा। अपने शरीरमें कांटेका भी महादुःख होता है और उस कांटेसे बचनेके लिये जूता पहनते हैं वा और अनेक उपाय करते हैं परंतु वे ही लोग अन्य जीवोंपर शस्त्रोंका प्रहार करते हुए उनके शरीरमें अनेक घाव करते हुए उनको मार डालते हैं यह कितना बडा अन्याय है। ऐसे लोग शिकारी वा व्याधा कहे जाते हैं। उनके वर्ण वेष आदि भी महा विकराल और पापरूप दिखाई पड़ता है।

भारतमें लिखा है—श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं कि—

यो दद्यात्कांचनं मेरुं कृत्स्नां चापि वसुंधराम्। एकोऽपि जीवितं दद्यात् न च तुल्यं युधिष्ठिर॥

अर्थ—श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे युधिष्ठिर! किसी पुरुषने मेरुपर्वतके समान सुवर्ण दान दिया। तथा समस्त द्वीपोंकी समस्त पृथ्वी दान दे दी। तथा किसी दूसरे मनुष्यने किसी एक जीवको अभयदान दिया अर्थात् उसे मरनेसे बचाया उसे जीवदान दिया तो उस सुवर्णदान वा पृथ्वी दान देनेवालेका पुण्य जीवदान देनेवालेके पुण्यके समान नहीं होता। भावार्थ—उस सुवर्णदान वा सम- १९४

स्त पृथ्वीदानसे भी एक जीवके अभयदानका पुण्य बहुत अधिक है। संसारमें अभयदानके समान और कोई पुण्य नहीं है अथवा कोई दान नहीं है। जो लोग अपने स्वार्थकी सिद्धिकेलिये जीवहिंसाकी पुष्टि करते हैं वे अत्यंत दुष्ट और नीच हैं। भारतमें लिखा है—

यो यत्र जायते जन्तुः स तत्र रमते चिरम्। ततः सर्वेषु भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ॥

अर्थात्—यह जीव जहां जन्म लेता है वहीं रम जाता है क्रीडा करने लगता है, वहीं सुख मानता है और वहां ही बहुत दिन-तक रहकर जीना चाहता है। इसीलिये सज्जन पुरुष वा उत्तम मनुष्य समस्त प्राणियों पर दया पालन करते हैं। भारतमें लिखा है—

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु। तस्य ज्ञानं च मोक्षं च किं जटाभस्मचाम्बरैः ॥

अर्थ—जिसका हृदय समस्त प्राणियोंमें होनेवाली दयाके द्वारा द्रवीभूत है, कोमल है उसीको ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उसीको मोक्षकी प्राप्ति होती है। ज्ञान और मोक्षके लिये जटाओंका बढ़ाना, शरीरमें भस्मका लगाना, तथा गेरु आदिके रंगे हुए वस्त्रोंको धारण करना सब व्यर्थ है। विना दयाके केवल भेष धारण करना स्वांग है उस भेषसे मोक्ष नहीं मिल सकती। वह भेष केवल लोभके लिये है।

यदि जीवोंके वध करनेमें जीवोंकी हिंसा करनेमें धर्म है और जीवोंका घात करनेवाले वा मांस भक्षण करनेवाले पुरुष स्वर्गमें जाते हैं तो फिर संसारका त्याग करने वाले व्रती, संयमी, तपस्वी वा अनेक यम नियमोंको धारण करनेवाले पुरुषोंको स्वर्गलोककी प्राप्ति कभी नहीं होनी चाहिये। ऐसे तपस्वियोंको फिर नरककी प्राप्ति होनी चाहिये परन्तु ऐसा होता नहीं है। भागवतमें लिखा है—

यदि प्राणिवधे धर्मः स्वर्गश्च खलु जायते। संसारमोचकानां तु कुतः स्वर्गोभिधीयते ॥

इससे सिद्ध होता है कि जीवोंकी हिंसा करनेवाले मांस भक्षण करनेवाले वा और भी सप्त व्यसनोंका सेवन करनेवाले जीव ही नरकमें जाते हैं। लिखा भी है—

द्यूतं च मासं च सुरां च वेश्यां पापर्द्धिचोरीपरदारसेवाम्।
सेवन्ति सप्तव्यसनानि लोकाः घोरातिघोरे नरके प्रयान्ति।

अर्थ—जूआ खेलना, मांस भक्षण करना, मद्य पान करना, वेश्यासेवन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्रीसेवन

करना ये सात व्यसन कहलाते हैं। जो पुरुष इन सातों व्यसनोंका वा इनमेंसे किसी भी व्यसनका सेवन करते हैं वे घोरसे भी महाघोर नरकमें जाते हैं। इन व्यसनोंके सेवन करनेका ऐसा ही नरकमें जाना ही फल है।

कोई कोई कहते हैं कि हम तो तीर्थोंपर स्नान करके अथवा और कोई पुण्य कार्य करके इन व्यसनोंसे उत्पन्न हुए पापोंको धो डालते हैं सो उनका यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि इसका उत्तर पहले अनेक श्लोकोंका प्रमाण देकर अच्छीतरह बतला चुके हैं। तथा प्रसंगानुसार थोडासा यहां भी लिखते हैं। भारतमें लिखा है—

मृदो भारसहस्रेण जलकुम्भशतेन च। न शुद्ध्यन्ति दुराचाराः तीर्थस्नानशतैरपि ॥ १ ॥
कामरागमदोन्मत्ताः स्त्रीणां ये वशवर्तिनः। न ते जलेन शुद्ध्यन्ति स्नानतीर्थशतैरपि ॥ २ ॥

अर्थ—जो पुरुष दुराचारी है वह अपनी शुद्धताके लिये यदि हजार भार प्रमाण मिट्टी अपने हाथ पैर आदि सब शरीरसे लगावे और फिर गंगा यमुना सरस्वती आदि नदियोंके पवित्र जलके सैकडों घडे भरकर स्नान करे तो भी वह शुद्ध नहीं होता। दुराचार सैकडों तीर्थस्नानोंसे भी शुद्ध नहीं हो सकते। इसीप्रकार जो लोग कामके रागसे मदोन्मत्त हो रहे हैं और जो सदा स्त्रियोंके वशी-भूत रहते हैं वे पुरुष न तो जलसे ही शुद्ध होते हैं और न सैकडों तीर्थस्नानोंसे शुद्ध होते हैं। दुराचारी लोगोंको ऐसा ही महा-पाप लगता है जो तीर्थोंके स्नानसे भी नहीं छूट सकता। फिर भला वह पाप दूसरी जगह कहां छूट सकता है ? अर्थात् वह पाप कहीं नहीं छूट सकता।

शार्ङ्गधर संहितामें लिखा है—

कर्षाभ्यामर्द्धपलं ज्ञेयं शुक्तिरष्टमिका तथा। शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ॥

दशमासेका एक कर्ष होता है। लिखा भी है "कर्षस्तु दशमासकः" दो कर्षका एक पैसा होता है। दो पैसेका एक टका होता है। यहां टका कहनेसे टकाभर तौल समझना चाहिये इस प्रकार चालीस मासेका एक टका भर तौल समझना चाहिये। आगे उसी शार्ङ्गधरमें लिखा है—

पलानां द्विसहस्रं तु भारः एकः प्रकीर्तितः।

अर्थात् दो हजार पलोंका एक भार होता है। इसप्रकारके एक हजार भार मिट्टीसे तथा गंगा आदि तीर्थोंके सैकडों घडे जलसे भी मांसाहारी कभी शुद्ध नहीं हो सकता। यही बात पहले पर्वमें लिखी है—

चित्तं रागादिसङ्क्लिष्टमलीकवचनैर्मुखम् । जीवहिंसाभिः कायोयं गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥

अर्थ—जिसका चित्त राग, द्वेष, मोह, मद, काम आदिसे मलीन है, मुख मिथ्या वचनोंसे झूठ बोलनेसे मलीन है और जीवोंकी हिंसा करनेसे जिसका शरीर मलीन है उसके लिये गंगा भी प्रतिकूल हो जाती है। गंगा ऐसे पुरुषके सम्मुख कभी नहीं हो सकती। ऐसे पापियोंको नहीं मिल सकती अर्थात् ऐसे पापियोंके पाप तीर्थोंमें भी नहीं कट सकते।

कोई कोई लोग तीर्थोंमें स्नान करने मात्रसे ही समस्त पापोंका छूट जाना मानते हैं तथा शुभ गतियोंका होना मानते हैं सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि यदि तीर्थोंमें स्नान करनेमात्रसे जीव तिर जांय पापोंसे छूट जांय तो फिर गंगा आदि तीर्थोंके जलमें रहनेवाले मछली, मेंडक मगर मच्छ कछवा आदि जलचर जीव सब ही मुक्त हो जाना चाहिये। सबहीके पाप छूट जाना चाहिये। परंतु ऐसा होता नहीं है। लिखा भी है—

यद्यंबुस्नानतो देही कृतपापाद्विमुच्यते। मुक्तिं यांति मदा सर्वे जीवास्तोयसमुद्भवाः ॥

वेदव्यासने अठारह पुराण बनाये हैं। परन्तु उन सबका सार केवल दो वचनोंमें लिखा है। जीवोंको अभयदान देनेसे तथा अन्य प्रकारसे पर जीवोंका उपकार करनेसे पुण्य होता है तथा अन्य जीवोंको पीडा देनेसे पाप होता है। बस सब पुराणोंमें येही दो वचन सार हैं और बाकी सब निःसार हैं। सो ही लिखा है—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् । परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

इसप्रकार और भी अनेक पुराणोंमें जीवोंकी हिंसा करनेमें और मांस भक्षण करनेमें अनेक दोष बतलाये हैं। तथा स्थान स्थान-पर इनके त्याग करनेका उपदेश दिया है। इसलिये सत्पुरुषोंको इन दोनोंका त्याग कर देना ही उचित है। जो निर्दयी, नीच, शूद्रोंके समान विषयोंके लंपटी, महापापोंके द्वारा अधोगतिको जानेवाले धर्मोंका नाश करनेवाले और पापोंको बढानेवाले लोग अनेक प्रकारकी बातें बनाकर जीवहिंसा करने मांस भक्षण करने मद्यपान करने, शहत खाने तथा और भी महापापोंका आचरण करनेमें आनंद मानते हैं और धर्मकी हंसी करते हैं वे महा अशुभ कर्मोंका बंध कर नरकादि कुगतियोंमें चिरकाल तक परिभ्रमण करते रहते हैं।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि सब लोग तो ऐसा करते नहीं हैं। द्राविणी संप्रदायके ब्राह्मण तो इसका नाम उच्चारण

होते ही भोजनका त्याग कर प्रायश्चित्त लेते हैं। वे अपने धर्ममें इतने दृढ हैं। परन्तु कुछ संप्रदायवाले इनका ग्रहण करते हैं सो वे जुदे हैं। सो उनका यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि यद्यपि द्राविडी आदि संप्रदायके लोग इनका ग्रहण नहीं करते तथापि वे इनके ग्रहण करनेका उपदेश तो देते हैं। वेद, पुराण, ज्योतिष, वैद्यक, यंत्र तंत्र मंत्र आदि कार्योंमें जीव हिंसाका उपदेश देते हैं। यज्ञमें जीवोंके हवन करनेका तथा देवताओंको बलिदान देनेका उपदेश देते हैं। राजा आदि क्षत्रियोंको शिकार खेलना तथा मद्य मांस शहत आदिका सेवन करना उनका परंपरासे चला आया कुल धर्म बतलाते हैं। इन सब पापोंको शास्त्रोक्त बतलाते हैं और उसमें धर्म बतलाते हैं। परन्तु उनका यह उपदेश देना उनके सेवन करनेसे भी बढकर है। जो अपने स्वार्थकेलिये बकरे भैंसा आदि पशुको मारता है वह अवश्य नरकमें जाता है। तथा इनका उपदेश देनेवाला इनके करनेवालोंसे बहुत अधिक पापी गिना जाता है।

बहुतसे लोग कहते हैं देवताओंकी पूजाके लिये, पितरोंको तृप्त करनेके लिये, यज्ञमें होम करनेके लिये पशुओंकी हिंसा करनी हिंसा नहीं कहलाती है। वे लोग ऐसे कार्योंमें पशुओंको मारते हैं उनके मांसको खाते हैं और कहते हैं कि इसमें कोई पाप नहीं है। यह मांस नहीं है किंतु देवताओंका प्रसाद है। ऐसा कहकर तथा उसे निर्दोष बताकर उपदेश देते हैं और फिर उसमें शास्त्रोंकी साक्षी बतलाते हैं जैसा कि शार्ङ्गधर कथित सुभाषितसंहिता तीसवें परिच्छेदमें लिखा है—

आत्मार्थं यः पशुं हन्यात् सोऽवश्यं नरकं व्रजेत् ।
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक् ॥ ३५ ॥

इसप्रकार बहुतसे ब्राह्मण उपदेश दिया करते हैं परंतु उनका यह उपदेश देना महा मिथ्या है। क्योंकि उपदेश देनेसे करनेसे भी अधिक पाप लगता है। करनेसे एक ही जीव द्वारा हिंसा होती है और उपदेश देनेसे हजारों जीवोंके द्वारा हिंसा होती है तथा हजारों जीवोंको मिथ्या श्रद्धान और मिथ्या ज्ञान होजाता है। इसलिये ऐसा करना वा कराना सत्पुरुषोंका धर्म नहीं है। ऐसा समझकर उत्तम धर्मका सेवन करना चाहिये और हिंसामयी धर्मका दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये। यही कहनेका अभिप्राय है।

इनके वेद पुराणोंमें भी जीवोंकी प्रत्यक्ष हिंसामें तथा अनेक अनाचारोंमें धर्म बतलाया है। तथा बडे बडे विरुद्ध वचन लिखे

हैं। जैसे मत्स्यावतारके मत्स्यका उदर बनाते हैं, कच्छपावतारमें कछुएका मुंह बताते हैं, वराह (सूअर) अवतारमें सूअरका मुंह कहते हैं, नृसिंहावतारमें सिंहका मुह बताते हैं। इस प्रकार उन अवतारोंको पशुओंके आकारके बतलाते हैं तथा उन्हें पशुओंकी योनि मानते हैं। इसीप्रकार कल्की अवतारको केवल अश्वरूप (घोडेके अकारका) मानते हैं और कहते हैं कि परमेश्वरने दैत्यादिक दुष्ट जीवोंका वध करनेके लिये अथवा भक्तोंका पालन करनेके लिये उस घोडेमें आकर निवास किया है। ऐसे पुराणोंके वाक्य हैं। ऐसे वाक्योंको कहते हुए भी बडे बडे वैष्णव तथा शैवधर्म वाले अथवा भील आदिक जीव उन मत्स्योंको कछुओंको, सूअरोंको और सिंहोंको शस्त्रोंसे वा जालमें पकड़ कर मारते हैं और फिर उसको शिकार कहते हैं। वे लोग उनके मांसको खाते हैं और कहते हैं हम वैष्णव हैं। वे लोग जनेऊ पहिनते हैं, तिलक लगाते हैं, कंठी पहिनते हैं, स्नान, संध्या आचमन तर्पण पूजन, दान आदि करते हैं और फिर पीछे भोजनके समय जो छूने योग्य नहीं ऐसी अस्पृश्य रसोईमें बैठकर उन्हीं पात्रोंमें जीवोंका मांस भक्षण करते हैं। उसे अपना कुलधर्म बतलाते हैं। उस मांसको बड़ी प्रशंसा करते हुए खाते हैं और साथमें मद्य भी पीते हैं। ऐसे अनेक निंद्य कर्तव्य करते हैं। परंतु उस समय वे लोग ठीक शूद्रोंमें खटीक जातिके शूद्रोंके समान, तथा मुसलमानोंमें कसाइयोंके कामको करनेवालोंके समान दिखाई पडते हैं। वे लोग जो जनेऊ पहिनते हैं और अपनेको पवित्र मानते हैं सो उनका जनेऊ पहिनना वा पवित्र मानना मद्य भरे हुए घडेके समान है। जिस प्रकार मद्यके घडेको मिट्टीसे मांजकर ऊपरसे गंगा जलसे धोते हैं इसप्रकार उसे ऊपरसे साफ कर लेते हैं तथापि उसके भीतरकी अशुद्धता कभी जाती नहीं वह मद्य भरा हुआ घड़ा मांजने और गंगाजलसे धोनेपर भी कभी शुद्ध नहीं हो सकता। उसी प्रकार मद्य मांस आदिका सेवन करनेवाले पुरुष जनेऊ पहिनने वा गंगास्नान कर लेने पर भी कभी शुद्ध नहीं हो सकते।

इन लोगोंकी विरुद्धता कहांतक कही जाय देखो जिस मुखसे तुलसी और शलिगरामका चरणामृत लेते हैं और फिर उनके भोगका महा प्रसाद भी खाते हैं और फिर उससे अपनी अच्छी गति भी चाहते हैं सो यह बडा अनर्थ है। देखो इस समय भी लोक परंपराके अनुसार वृद्ध पुरुष झूठ बोलनेवालोंसे कहा करते हैं कि जिस मुखसे खांड खाई जाती है उस मुखसे क्या धूलि खानी चाहिये। सो उनका यह कहना सत्य है। क्योंकि जिस मुखसे तुलसीका चरणामृत लेना उसी मुखसे क्या मांस खाना और मद्य पीना योग्य है? और उस मांस भक्षण करने तथा मद्य पान करनेमें धर्म मानना अधोगतिका कारण नहीं है। अवश्य ही ऐसे लोगोंको नरकादिक अधोगति प्राप्त होती है।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि गति तो मुसलमान जैनी वा वैष्णव तीनोंकी नहीं हो सकती। ये लोग चाहे तो मद्य मांसादिकका सेवन करे अथवा उसका त्याग करे, तथापि तीनों ही नरकके पात्र हैं। सो ही लिखा है—

म्लेच्छा ध्यानं दया जैनी भक्तिर्भागवता जनाः। त्रयोपि नरकं यान्ति हिंसा अशुचि निन्दनात् ॥

अर्थ—मुसलमान आदि म्लेच्छ लोग तो ध्यानको मुख्य मानते हैं। एक दिनमें पांच वार नमाज़ पढते हैं तो भी वे जीवोंकी हिंसा करनेसे नरकमें जाते हैं। जीवहिंसाके कारण उनका ध्यान भी कुछ काम नहीं करता। जैनी लोग दया पालन करते हैं परंतु एक अपवित्रताके पापसे वे भी नरक जाते हैं। इसीप्रकार भागवती वैष्णव पुरुष नारायणकी भक्ति करते हैं तथापि परनिंदाके पापसे वे भी नरकके पात्र कहे जाते हैं। इस प्रकार मुसलमानोंके ध्यानके फल तो हिंसा करनेसे निरर्थक हो जाता है, जैनियोंकी दया पालनेका शुभ फल मलिनताके दोषसे व्यर्थ होजाता है और वैष्णवोंकी भक्तिका फल परनिंदासे मिथ्या होजाता है। इस प्रकार तीनोंको ही अच्छी गति नहीं मिल सकती परंतु उनका यह कहना कुछ अंशोंमें सत्य है। म्लेच्छोंका ध्यान तो कुछ ध्यान ही नहीं है और न वह कुछ प्रशंसाके योग्य है क्योंकि उनकी सब क्रियाएं उल्टी हैं। इसलिये वे सर्वथा अयोग्य हैं। भागवती पुरुष परनिंदाके महापापसे नरक जाना ही चाहिये। भागवती पुरुष जैनधर्मसे भारी शत्रुता रखते हैं। अरहत देव और जैनधर्मकी बडी निंदा करते हैं। जैनधर्मसे द्वेष करते हुए अनेक प्रकारके विपरीत कार्य करते हैं। "न गच्छेज्जैनमंदिरम्" अर्थात् "जैनियोंके मंदिरमें कभी नहीं जाना चाहिये।" यहांतक वे उपदेश देते हैं। सो ऐसे पुरुषोंको नरक होना ही चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं। परंतु जैनियोंकी दया अपवित्रताके दोषसे नरक जाने वाली बतलाई सो ठीक नहीं है। क्योंकि सब जैनी अपवित्र नहीं है। कुछ केवल नाम मात्रके जैनी कहलाने वाले श्वेताम्बरादिक ऐसे हैं जिन्होंने अपवित्र आचरणोंका निरूपण किया है उन्हीं श्वेताम्बरोंमें परस्परके रागद्वेषसे तथा क्रोध मान आदि कषायोंसे विजयगच्छ, खरतर गच्छ, पुण्यागच्छ आदि अलग अलग चौरासी गच्छ होगये हैं। उन्हींमें एक लोकागच्छ हुआ था उसने अनेक प्रकारके हीनाचरण स्थापन किये हैं। उस लोकागच्छके उत्पन्न होनेके कितने ही वर्ष पीछे ढूंढिया साधु हुए हैं। उनके पीछे एक भीष्म नामका ढूंढिया हुआ था जिसने तेरह ढूंढीयाओंका अलग समुदाय बनाकर अपने नामका भीष्मपंथ अथवा तेरहपंथ चलाया। इसप्रकार इन लोगोंने अलग अलग धर्म चलाये हैं। और हीनसे हीन, महा अपवित्र, महा अशुद्ध आचरणोंका निरूपण किया है। ये लोग दया पालनका तो उपदेश देते हैं परंतु महा अशुद्ध रहनेके कारण उनके द्वारा अनेक जीवोंकी हिंसा होती है। इसलिये ऐसी हिंसा करनेवाले ढूंढिया आदि जैनी नरकके पात्र हैं ही।

एक ढूंढियाओंके निंद्य आचरणोंको देखकर सब जैनी ऐसे अपवित्र नहीं हैं। ऐसा जानकर जीवोंकी दया सदा पालन करते रहना चाहिये। संसारमें जीवदया ही मुख्य धर्म है।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि संसारमें जीवोंकी दया पल कैसे सकती है। क्योंकि विना आहारके तो कोई जीव जीवित रह ही नहीं सकता। परंतु उसका यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि जितने जीवोंकी रक्षा हो सकती है उतने जीवोंकी रक्षा जरूर करनी चाहिये। त्रस जीवोंकी रक्षा करना तो मनुष्य मात्रका धर्म है तथा अपने भाव सब जीवोंकी रक्षा करनेके रखने चाहिये। बहुतसे आरंभका तो त्याग करदेना ही चाहिये। तथा अल्प आरंभमें अपने भावोंसे महा हिंसाका त्याग कर देना चाहिये। संसारमें यही सार है और सब असार है।

कितने ही मुसलमान वा चांडालादिक नीच शूद्र हिंसा करते हैं मद्यमांसका सेवन करते हैं और अपने कुमतिज्ञान वा कुश्रुत-ज्ञानके बलसे उस मद्य मांसादिकके सेवनको ठीक बतलाते हैं सो वे प्रत्यक्ष अधोगामी हैं इसमें किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है।

कदाचित् यहांपर कोई मुसलमान यह कहे कि "तुम लोग खाते पीते हो क्या उसमें जीवोंकी हिंसा नहीं होती? सो भी कहना मिथ्या है क्योंकि इसका उत्तर पहले बहुत कुछ दिया जा चुका है। तथा फिर भी अत्यंत संक्षेपसे इसका उत्तर यह है कि इस संसारमें जीव दोप्रकार हैं। एक तो ऐसे हैं जिनमें जीवकी सत्ता जीवके प्राण वा जीवका स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई पडता है ऐसे जीवोंको त्रस जीवकहते हैं। तथा दूसरे ऐसे हैं जिनमें जीवकी सत्ता वा स्वरूप केवल अनुमानसे जाना जाता है बाहरसे वे अजीवसे ही दिखाई पडते हैं। ऐसे जीवोंको एकेन्द्रिय जीव कहते हैं। ये एकेन्द्रिय जीव पत्ते पुष्प फल आदिक जलसे उत्पन्न होते हैं इसलिये ये माताके दूधके समान ग्रहण करने योग्य वा खाने योग्य समझे जाते हैं। तथा पशु पक्षी मछली मनुष्य आदिक जीव त्रस जीव हैं जो माता पिताके रुधिर वीर्यसे उत्पन्न होते हैं। जिनको तुम लोग पेशाबसे उत्पन्न होना बतलाते हो। सो ऐसे स्त्रीके दूधके समान अग्राह्य वा त्याग करने योग्य अभक्ष्य बतलाये हैं। जिसप्रकार स्त्रियोंके दूधकी अपेक्षा माता और स्त्रीका दूध समान है तथापि माताका दूध पीने योग्य है और स्त्रीका दूध पीने योग्य नहीं है। उसी प्रकार जीवत्वकी अपेक्षासे जीव एक हैं तथापि उनकी उत्पत्तिमें अंतर होनेसे तथा वृक्ष आदिक एकेंद्रिय जीवोंके शरीरकी मांस संज्ञा न होनेसे वे ग्रहण करने योग्य वा भक्ष्य कहे गये हैं। जिसप्रकार गायके दूध और गायके मांसमें अंतर है जिस प्रकार मनुष्यके विष्ठा और गायके गोबरमें अंतर है उसी प्रकार त्रस और स्थावर जीवोंमें भी अंतर है। मांस

भक्षण स्त्रीके दूधके समान ग्रहण करने योग्य नहीं है पेशाबसे उत्पन्न होनेके कारण नापाक वा अपवित्र है। जिस पेशाबके लगनेसे किया हुआ रोज़ा भी नहीं लगता उस पेशाबसे बने हुये मांसके भक्षण करनेसे भला पवित्रता कहां रह सकती है।

इसप्रकार अन्य शास्त्रोंके प्रमाण देकर मांसके अनेक दोष बतलाये। अब आगे जैन शास्त्रोंके अनुसार इसका विचार करते हैं। श्री वसुनंदिश्रावकाचारमें लिखा है–

मांसं अमेज्झसरिसं किमिकुलभरियं दुगं विभत्थं। पाएणवि णत्थि वे उ जंण नीरए स कह भोत्तु॥

अर्थ–यह मांस मनुष्यकी विष्ठाके समान है। विष्ठा और मांसमें कोई भेद नहीं है। दोनो एक ही हैं इसलिये मांस विष्ठाके समान है। गांवके सूअर तथा कौवे गीध मांसाहारी जीव मांस और विष्ठा दोनोंको खाते हैं इससे साबित होता है कि मांस बिल्कुल विष्ठाके समान है। इसके सिवाय वह मांस लट तथा अन्य छोटे छोटे जंतुओंसे भरा हुआ है। अत्यंत दुर्गंध मय घृणित है। पैरसे भी छूने योग्य नहीं है। और न कोई उसके पास जाता है। ऐसा मांस भला भक्षण योग्य किसप्रकार हो सकता है? अर्थात् कभी नहीं हो सकता। ऐसे महा निन्दनीय मांसको खाना अत्यंत अशुभ कर्मके उदयका माहात्म्य है। ऐसे घृणित मांसको घृणित जानते हुये जो खाजाते हैं वे अवश्य नरकके पात्र हैं इसमें कोई संदेह नहीं। ऐसे जिन शास्त्रोंके वचन हैं। इसका विशेष स्वरूप अन्य ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये।

मांसादिकके भक्षण करनेमें दयाधर्मका लोप होता है। जो जीव इनका त्याग नहीं करते वे उस पापके उदयसे नरकमें ही जाते हैं ऐसा सिद्धांत है। जो लोभ लोभी हैं कपटी हैं मानी हैं, क्रोधी हैं, इन्द्रियोंको पुष्ट करने वाले विषय भोगोंके लंपटी हैं उन्होंने अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकेलिये तथा राजा महाराजा आदि बडे लोगोंको ठगनेकेलिये हिंसामयी शास्त्र बनाये हैं। तथा ऐसे शास्त्रोंका पढना पढाना भी स्वार्थके ही लिये होता है। राजा महाराजाओंको खुश रखनेके लिये उनकी इच्छानुसार अर्थ निरूपण किया है। धर्मके अनुसार चलनेवाले स्पष्ट वेत्ताओंके स्पष्ट वाक्य नहीं है इसलिये विपरीत हैं और सम्यग्दृष्टियोंके श्रद्धान करने योग्य नहीं हैं।

शास्त्रोंमें जो यह लिखा है कि–

येषां न विद्या न तपो न दानं। न चापि शीलं न दया न धर्मः॥

ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति ॥

अर्थात्—जिसके पास न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है, न दया है, और न धर्म है अर्थात् जो जीवोंकी हिंसा करते हैं। मांस भक्षण करते हैं मद्य पान करते हैं ऐसे जीव इस मृत्युलोकमें पृथ्वीके भार है। ऐसे मनुष्य मनुष्यके आकारके पशु ही समझने चाहिये। यह जो शास्त्रोंमें लिखा है सो ऐसे ही हिंसक वा मांसाहारियोंके लिये लिखा है।

मांसाहारी पुरुषोंके आचरण कुत्तोंसे भी गये वीते हैं। देखो राजा महाराजा आदि बडे बडे मांसाहारी पुरुष मांसके लोभसे बनमें शिकार खेलने जाते हैं। उनके साथ अनेक शिकारी कुत्ते रहते हैं तथा उन कुत्तोंको पालने वाले चांडाल आदि भी साथ रहते हैं। उन चाडालोंकी उच्छिष्ट वा झूठन वे कुत्ते खाते ही हैं। ऐसे कुत्तोंको हिरण सांभर रोज आदि जंगली जानवरोंपर छोड देते हैं वे कुत्ते अपने मुंहसे उन पशुओंको पकड लेते हैं तथा मारकर ले आते हैं। फिर उसका शरीर फाडकर मांस निकालते हैं और वे राजा महाराजा आदि बडे आदमी उस मांसको खाजाते हैं। भला सोचनेकी बात है चांडाल वा मुसलमान आदिकी झूठन खानेवाले शिकारी कुत्तोंके मुंहसे पकड़ा हुआ वह मांस बडे बडे पुरुषोंके द्वारा खाया जाता है। तथा वे बडे बडे पुरुष उस कुत्तोंकी झूंठन मांसको खाकर अपनेको बहुत कुछ कृतार्थ मानते हैं। एक तो वह मांस दूसरे कुत्तोंकी झूंठन परंतु फिर भी लोग उसे खा जाते हैं ऐसे मांसको खानेवाले संध्या आचमन भी करते हैं नमाज पढते हैं, रोजा रखते हैं हज करते हैं और इन कामोंको करते हुए अपनेको बहुत कुछ कृतार्थ मानते हैं। परंतु विचार करनेपर वे सब चांडालके समान वा कुत्तोंके समान अस्पृश्य मालूम होते हैं।

कदाचित् यहांपर कोई वेदांती यह कहे कि ये सब जीवात्मा प्राणीमात्र इस ब्रह्मांडमें सृष्टि मात्रके भूत वा प्राणी हैं वे सब सदा जीवित रहते हैं। वे किसीके द्वारा मारे नहीं जाते। यह जीव अनादिकालसे जीता आ रहा है, वर्तमानमें जी रहा है, और आगे जीवेगा। न कभी मरा है न कभी मरेगा इसलिये दया पालन करना व्यर्थ है। क्योंकि किसी भी जीवकी कभी हिंसा होती ही नहीं है। परंतु वेदांतीका यह कहना सर्वथा मिथ्या है। और महा अनर्थका मूल है। क्योंकि यदि यह जीव अमर है कभी मरता ही नहीं तो फिर गाय ब्राह्मण आदिकी हत्या करनेवालेको हत्यारा क्यों कहते हो? तथा जबतक उसे प्रायश्चित्त नहीं दे लेते तब तक उसे पंक्तिबाह्य क्यों रखते हो? स्त्री, बालक, राजा, कन्या, ब्राह्मण गुरु गाय मुनि आदिकी हिंसा करनेवालेको महापापी क्यों कहते हो? यदि जीवको सर्वथा अमर मानोगे तो अन्य जीवोंकी हिंसा करनेसे पाप उत्पन्न होता है और ऊपर लिखे स्त्री बालक आदि जीवोंकी हिंसा करनेसे महापाप उत्पन्न होता है। यह जो शास्त्रोंमें लिखा है सो सब व्यर्थ हो जायगा परंतु यह शास्त्रोंका

लिखना कभी व्यर्थ नहीं हो सकता और तेरा कहना कभी सत्य नहीं हो सकता क्योंकि पुराणोंमें लिखा है कि गाय ब्राह्मण आदि की दया पालनी चाहिये उनकी रक्षा करनी चाहिये। उनकी दयाके लिये क्षत्रियोंको उचित है कि वे सिंहादिक दुष्ट जीवोंके शब्द सुनते ही भोजन छोडकर उनके बचानेके लिये जांय। जब यहांतक जीवोंकी दयाका विधान है तो फिर वेदांतियोंका कहना कभी सत्य नहीं हो सकता।

दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार गाय ब्राह्मण आदिकी हिंसा करनेमें महापाप होता है और उनकी रक्षा करनेमें महा धर्म होता है उसी प्रकार अन्य जीवोंकी हिंसा करनेमें भी महापाप होता है और उनकी दया पालन करने वा रक्षा करनेमें महा धर्म होता है। वास्तवमें देखा जाय तो समस्त जीवोंकी दया पालन करना ही सबसे बडा धर्म है। पाप कार्य करनेसे यह जीव नरक तिर्यंच गति पाता है। पुण्य कार्य करनेसे मनुष्यगति पाता है और धर्म साधन करनेसे स्वर्ग मोक्ष पाता है। यह जो शास्त्रोंमें लिखा है सो कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। और इसीलिये तेरा कहना कभी सत्य नहीं हो सकता।

यदि यह मान लिया जायगा कि जीव सब एक समान हैं क्योंकि सब ब्रह्मस्वरूप हैं तो फिर माता, पुत्री, बहिन, स्त्री आदिका ब्रह्म भी एक ही माना जायगा और फिर सबके साथ विषय सेवन करना भी एकसा हीं माना जायगा परंतु ऐसा कहना वा मानना अनर्थोंका उत्पन्न करनेवाला है। इसलिये इस प्रकार कहनेवाला वेदांतमत कभी ठीक नहीं हो सकता।

यहांपर कोई आयुर्वेदी कहता है कि यह जीव अपनी आयु पूर्ण होनेपर ही मरता है किसीके मारनेसे नहीं मर सकता। आयु पूर्ण होनेपर चाहे कितने ही यंत्र मंत्र किये जांय परंतु वह बच नहीं सकता। इससे सिद्ध होता है कि आयु पूर्ण हुए विना कोई मर नहीं सकता। हां; जिसको जैसा निमित्त मिलना होता है या जैसी होनहार होती है जिस प्रकार मृत्युका होनहार निश्चित होता है उसी प्रकार वह जीव मरता है। जिसकी आयु अधिक होती है जो दीर्घ आयुवाला होता है वह विना प्रयत्नके भी बच जाता है। बचानेसे कोई जीव बचता नहीं और मारनेसे कोई मरता नहीं। मारने वा बचानेका कर्तव्य करना सब झूठा है। सो ही लघु चाणिक्यमें लिखा है—

भवितव्यं यथा येन नासौ भवति चान्यथा। नीयते तेन मार्गेण स्वयं वा तत्र गच्छति॥ १॥

अर्थात्—जो होनहार होता है वह अन्यथा नहीं हो सकता। जिसका जहां जैसा होनहार होता है वह दैवके द्वारा उसी मार्गसे ले जाया जाता है अथवा वह स्वयं उस मार्गसे चला जाता है। ऐसा आठवें अध्यायमें लिखा है। परंतु आयुर्वेदीका यह कहना भी

सत्य नहीं है। यदि यह बात सत्य मान ली जाय तो जब वह मनुष्य स्वयं रोगी होता है अथवा उसके परिवार वा कुटुंबका कोई मनुष्य रोगी होता है तो उसको औषधि क्यों दी जाती है। यदि कोई शस्त्रादिकसे मारना चाहता है तो उसके बचानेका उपाय क्यों किया जाता है। उसका रोग दूर करने अथवा उसको बचानेके लिये देव देवियोंका आराधन क्यों किया जाता है। दान पुण्य जप क्यों किया जाता है, परमेश्वरका भजन वा भक्ति क्यों की जाती है। यदि जीव मारनेसे मरता ही नहीं आयु पूर्ण होने-पर ही मरता है तो फिर संसारमें जो जो उपाय किये जाते हैं वे सब व्यर्थ मानने पड़ेंगे। क्योंकि यदि आयु होगी तो वह विना किसी उपायके अपने आप बच जायगा। आयु पूर्ण हुए विना कोई भी रोगी नहीं मर सकता इसलिये उसकी चिकित्सा करना–इलाज करना व्यर्थ हो जायगा परंतु संसारमें ऐसा होता नहीं है और न यह किसीका सिद्धांत है इसलिये आयुर्वेदीका ऊपर लिखा सिद्धांत सर्वथा मिथ्या है।

यदि जन्म मरण कोई चीज नहीं है तो अपने मरनेके समय तथा अपने कुटुम्बके किसीके मरने समय शोक क्यों करते हो? रोते क्यों हो, किसीका जन्म होते समय हर्ष क्यों मनाते हो। यदि जन्म मरण कुछ नहीं है तो जन्म मरणके समय हर्ष विषाद भी नहीं करना चाहिये परंतु समस्त संसार करता है और शास्त्रोंमें भी लिखा है इसलिये जन्म मरणको न मानना लोकविरुद्ध और शास्त्रविरुद्ध है। दया धर्मका लोप करनेवाला है और हिंसादिक महापापोंको उत्पन्न करनेवाला है इसलिये धर्मात्माओंको कभी मान्य नहीं हो सकता।

कदाचित् यहांपर कोई यह कहे कि आयु पूर्ण हुए विना जीव मरता है यह बात अभीतक निःसंदेह नहीं हुई है। तो इसका उत्तर यह है कि मरणके दो भेद हैं। उदय और उदीरणा। जो शस्त्र, अग्नि, जल, श्वासोच्छ्वासका निरोध मर्मस्थानकी चोट, क्षुधा तृषा, दुस्तर रोग और पतन आदिसे जीवका मरण होता है उसको कदलीघात मरण अथवा उदीरणामरण कहते हैं। इसका विशेष स्वरूप अष्टपाहुड आदि शास्त्रोंमें लिखा है। इसीप्रकार अपनी आयु पूर्ण होनेपर जो मरण होता है उसको उदयमरण कहते हैं। जिसप्रकार कच्चे आमको पालमें देकर पकालेते हैं और वह पालमें देनेसे मर्यादाके पहले ही पकजाता है उसीप्रकार विष शस्त्र आदिके कारण मिलनेसे जो आयुके समस्त निषेक बीचमें ही खिर जाते हैं उसको अकालमरण कदलीघातमरण वा उदीरणा मरण कहते हैं तथा जिसप्रकार आम डालीपर लगा हुआ क्रम क्रमसे अपने समयपर पकता है और पककर गिरजाता है उसीप्रकार आयु पूर्ण होनेपर मरण होना उदय मरण कहलाता है। लिखा भी है—

अपक्वमपि चूतस्य सुंठिगुडप्रलेपनात्। घर्मे संस्थापनादेव सुस्वादु पक्वत्वां व्रजेत् ॥

अर्थात्—कच्चे आमको सोंठ गुडका लेप करनेसे तथा धूपमें रखनेसे वह पक जाता है और स्वादिष्ट हो जाता है उसी प्रकार कारण मिलनेपर मरण भी समय पूर्ण हुये विना ही हो जाता है। श्रीउमास्वामीने भी श्रीतत्वार्थसूत्रमें लिखा है—

औपपादिकचरमोत्तमदेहा संख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः।

अर्थात्—देव नारकी उत्तम शरीरको धारण करनेवाले चरमशरीरी और असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियां। इनकी आयु तो बीचमें नष्ट नहीं होती अर्थात् इनका तो कदलीघातमरण नहीं होता बाकी जीवोंका नियम नहीं हैं। होता भी है और नहीं भी होता।

यहांपर सब ही चरमशरीरियोंका ग्रहण नहीं है किंतु उत्तम शरीर कहनेसे तीर्थंकरका ही ग्रहण करना चाहिये। अन्य सामान्य केवली, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, गुरुदत्त, पांडव आदिके उदय उदीरणा दोनों मरण समझना चाहिये। जिसप्रकार दीपकमें तेल रहते हुये भी वायुके झोकेसे दीपक बुझ जाता है उसीप्रकार उपसर्ग वा शस्त्रादिकसे आयु पूर्ण हो जाती है।

यहांपर कदाचित कोई तत्ववादी यह कहे कि यह आत्मा पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश इन पांच तत्वोंसे बना है आयु पूर्ण होनेपर इसके सब तत्त्व अपने अपने तत्त्वोंमें मिल जाते हैं। इसलिये जीवोंकी हिंसा वा दया कुछ नहीं है। जीवके मरनेका अर्थ तत्त्वका तत्त्वमें मिल जाना है सो इसमें हिंसा होती नहीं है। परंतु उनका यह कहना भी सर्वथा मिथ्या है तथा महा पापरूप है। यदि पंचतत्त्व मिलकर ही शरीरमें जीव बन जाता है उसके पुण्य पाप कुछ होता नहीं है फिर स्वर्ग वा नरकोंमें जीवोंका आकार अनेकरूपका किस प्रकार हो जाता है। इन गतियोंमें जीव अनेक प्रकारके सुख दुख किस प्रकार भोगते हैं। स्वामी, सेवक, माता, पिता, पुत्र, पौत्र, भगिनी पुत्र आदिका व्यवहार किसप्रकार होजाता है। तेरी तथा अन्य मनुष्योंकी उत्पत्ति माता पितासे ही क्यों होती है पंचतत्त्वोंसे ही क्यों नहीं होती? यदि पंचतत्त्वसे जीव उत्पन्न होता है पंचतत्त्वसे ही उत्पन्न होना चाहिये फिर मातासे क्यों उत्पन्न होता है।

१। सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक आदि ग्रन्थोमें सब ही चरमशरीरियोका मरण उदयमरण बतलाया है। उसमे लिखा है कि चरमशरीरियोंका शरीर उत्तम होता ही है इसीलिये उत्तम शरीर यह चरम शरीरियोंका विशेषण है। यदि 'चरमोत्तमदेहाः' इसकी जगह चरमदेहाः ऐसा पाठ करदें तो भी कोई हानि नहीं है इसके अनुसार राजकुमार पांडव आदि अन्तकृतकेवलियोंको जो मोक्ष हुई है सो आयुके पूर्ण होनेपर ही हुई समझना चाहिये।

यदि जीव पंच तत्त्वसे उत्पन्न हुआ है तो फिर वेद पुराणोंमें यह जो लिखा है कि जीव मरकर परलोकमें जाता है। वहांपर धर्मराय सबके पुण्य पापका हिसाब देखते हैं तथा उनके कर्तव्यके अनुसार नको नारकादिक गति देते हैं सो यह पंचतत्त्वके मिले विना उत्पन्न हुआ जीव कौनसा है। जो इस प्रकार परलोकमें जाता है।

यदि जीव पंच तत्वसे बना है और मरकर पंच तत्त्वमें ही मिल जाता है तो फिर जो कोई जीव मरकर सर्प वा भूत प्रेत योनिमें जन्म धारण कर लेता है और फिर अपने कुटुंबसे कहता है कि हम प्रेतादिक योनिमें उत्पन्न हुए हैं। हमारा उद्धार करो। गंगा यमुना प्रयाग काशी गया आदिमें पिंड भरो श्राद्ध करो और इसप्रकार हमारी गतिका उद्धार करो। सो लोग भी श्राद्ध पिंडादिक करते ही हैं। इसीप्रकार स्वर्गके लिये विष्णुभक्ति, तीर्थयात्रा, यजन, याजन, यज्ञ, दान, पुण्य व्रतोपवास आदि करते हैं सो सब व्यर्थ मानना पडेगा। क्योंकि यदि जीव पंच तत्वसे जुदा ही नहीं है फिर ये सब कार्य किसके लिये करना चाहिये। यदि जीव पंच तत्त्वसे जुदा नहीं है तो फिर गाय ब्राह्मणकी दयाका पालना वा भोजनादिकका दान देकर उनको संतुष्ट करना आदि सब व्यर्थ हो जायगा। इसीप्रकार परमेश्वर वैकुंठसे आकर यहां अवतार लेते हैं और दैत्यादि दुष्ट जीवोंका विध्वंस कर भक्तोंकी सहायता करते हैं सो सब व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि तत्वके मिलापसे बने हुए शरीरसे भिन्न कोई जीव है ही नहीं फिर परमेश्वर किसके लिये ये सब कार्य करता है। जब इस शरीरमें पांच तत्व मिले ही हैं फिर अपने कुटुम्बकी रक्षा क्यों की जाती है। मरनेसे बचनेका उपाय क्यों किया जाता है। रोगादिकके होनेपर औषधि देकर उसके जीनेका उपाय क्यों किया जाता है। स्नान संध्या तर्पण आदि किसके लिये किया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि पंच तत्वसे जीव अलग पदार्थ है।

विचार करनेकी बात है कि यह जीव पंच तत्वोंके मिलनेसे ही उत्पन्न होता है तथा पंच तत्वोंके अलग अलग हो जानेसे जीव उन्हींमें मिल जाता है। तो फिर रसोईघरमें जिस बटलोईमें दाल पकती है उसमें पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश आदि सभी तत्व मिले हुए हैं फिर उनमें जीव क्यों नहीं उत्पन्न हो जाता ? चौका चूल्हा बटलोई आदि पृथिवी तत्व है। बटलोईमें जो जल भरा है वह जल तत्व है। अग्नि जलती है जल बटलोई आदि सब अग्निरूप हो जाता है वही अग्नि तत्त्व है। वायु सब जगह भरी हुई है और आकाश सब जगह व्याप्त है ही। इसप्रकार वहांपर पांचों तत्त्व उपस्थित हैं। फिर वहां पर जीव उत्पन्न क्यों नहीं हो जाता ? परन्तु कहीं किसी भी रसोईमें जीव उत्पन्न नहीं होता इससे सिद्ध होता है कि जीव पंच तत्त्वसे उत्पन्न नहीं होता किंतु जुदा पदार्थ है।

कदाचित् कोई यह कहे कि तत्त्वोंमें तो जीव नहीं है। तत्त्व तो पुद्गल स्वरूप है, जीव इन तत्त्वोंसे जुदा है। तत्त्व जड है और जीव चैतन्य स्वरूप है। परंतु उसका यह कहना भी मिथ्या है क्योंकि इसमें भी हिंसाकी ही पुष्टि होती है। जब तत्त्व तत्त्वमें मिल जाता है और जीव जुदा रहता ही है। तब फिर जीवके मारनेसे हिंसा भी नहीं होती और उसके बचानेसे दया भी नहीं होती। क्योंकि जब जीवका विनाश ही नहीं होता, केवल तत्त्व तत्त्वमें मिल जाता है। तो फिर जीवका विनाश हुए विना ही हिंसा किस प्रकार सिद्ध हो सकती है। इसप्रकार महा दोष उत्पन्न होता है। इसलिये ऐसा मानना भी हिंसाको सिद्ध करता है। इससे दयाका पालन नहीं होता। यथा और भी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। इसलिये ऐसे मिथ्या बचन कहनेमें कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जीवोंकी दया पालन करना ही सत्य धर्म है। जो लोग हिंसाको धर्म कहते हैं सो सब मिथ्या है। शास्त्रोंमें लिखा है—

आचारः प्रथमो धर्मः सर्वधर्मे प्रकीर्तितः।

अर्थात् अपने आत्माको शुद्ध रखना, स्नान संध्यादिक करना और मद्य मांस आदि अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण न करना ही आचार है। यह आचार ही समस्त धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म है। परन्तु ऊपर लिखे हुए आयुर्वेदीके सिद्धांतके अनुसार यह सर्व व्यर्थ हो जाता है और यह आचाररूप धर्म कभी व्यर्थ हो नहीं सकता इसलिये आयुर्वेदीका कहना ही मिथ्या है।

कदाचित् यहांपर आदि शक्तिका उपासक यह कहे कि आदिशक्तिके कटाक्षमें अनेक अवसर होगये इसलिये शक्ति आदि है। सूअर आदिके द्वारा मद्य मांसादिकका सेवन करना उसकी उपाधि है। इसका विशेष वर्णन रामायण वेद पुराण आदिमें लिखा है। रामचंद्र आदि सब देवताओंने सहस्रनाम आदिके द्वारा इसकी स्तुति वा पूजा की है। जब वे लोग शक्तिके तेजको सह नहीं सकते थे तब नमस्कार कर उसके स्वरूपको संकोच करनेके लिये प्रार्थना करते थे इसीलिये हम लोग (शक्तिके उपासक लोग) उसकी उपासनाके लिये दुर्गा, चंडी कात्यायनी, विंध्यवासिनी, अंबिका, काली, आदि अनेक स्वरूपोंको धारण करनेवाली शक्तिकी पूजा करते हैं। उसकी पूजाके लिये बकरे भैंसे आदिको मारकर बलिदान देते हैं। उसपर मद्य चढाते हैं और उसकी प्रसादी समझ कर उस मद्य मांसका भक्षण करते हैं। यही सबसे बड़ा धर्म है। तथा ब्राह्मण मात्र सब शक्तिके उपासक हैं ऐसा ही सब शास्त्रोंमें लिखा है। इस संसारमें शिव तथा विष्णुके उपासक कोई नहीं है। लिखा भी है—"ब्राह्मणाः शाक्तिकाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः"।

अर्थात् ब्राह्मण सब शक्तिके उपासक हैं शिव वा विष्णुके उपासक कोई ब्राह्मण नहीं है इसीलिये हम शाक्तिक हैं। इस प्रकार

वे लोग कहते हैं। परंतु उनका यह कहना सब हिंसामय है। पापका बढानेवाला है। ऐसे लोगोंसे जीवोंकी दया कभी नहीं पल सकती। क्योंकि वे सब कुछ जानते हुए और देखते हुए भी मद्य मांसका सेवन करते हैं, और उसको सोमपा कहते हैं सो यह किसै प्रकार बन सकता है। उनका यह कहना सब मिथ्या है सोम शब्दका अर्थ अमृत है, और पा शब्दका अर्थ पीनेवाला है। जो अमृत को पीवे उसको सोमपा कहते हैं। मद्य पान करनेवाला कभी सोमपा नहीं हो सकता। उसे तो राक्षस कहना चाहिये। वह तो उपासना करने योग्य कभी नहीं हो सकता। वह तो दूरसे ही त्याग करने योग्य है। जो लोग ऐसोंकी उपासना करते हैं मानते हैं वे भी राक्षस ही हैं।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो माता गाय भैंस बकरी आदिका दूध दही घी छाछ आदि क्यों खाते पीते हो? यह भी तो शरीरसे ही उत्पन्न होता है। रसनामके धातुसे उपधातु बनता है उसीप्रकार मांसभी शरीरसे उत्पन्न होता है। लगभग दूध और मांस एकसा है। फिर दूधके समान मांस खानेमें क्या दोष है।

उत्तर—यद्यपि दूध और मांस दोनों ही शरीरसे उत्पन्न होते हैं। तथापि मांस त्याग करने योग्य है। और दूध ग्रहण करने योग्य है। जिसप्रकार स्त्री भी स्त्री है और माता भी स्त्री है, स्त्री पर्यायकी अपेक्षा दोनों एकसे हैं तथापि स्त्री सेवन करने योग्य है माता सेवन करने योग्य नहीं है। तथा भगिनी पुत्री आदि भी सेवन करने योग्य नहीं है। उसीप्रकार मांस भक्षण करना कभी योग्य नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक पदार्थमें भिन्नता माने विना कभी काम नहीं चल सकता। सबको एक मानना सर्वथा मिथ्या है। इसलिये दूध दही घी आदि पदार्थ पवित्र होनेके कारण ग्राह्य हैं और मांस सर्वथा हेय वा त्याग करने योग्य है।

प्रश्न—हम तो जीवोंको तुरंत मारकर उसका मांस खाते हैं। इसको हलाल कहते हैं। हलाल कर खानेमें कोई दोष नहीं है। न कोई पाप है। पाप तो मरे हुए जीवके मांसमें है। क्योंकि उसको हराम कहते हैं सो उसका खाना योग्य नहीं है।

उत्तर—ऐसा कहनेमें भी महा दोष उत्पन्न होता है। क्योंकि हलाहल और हरामका भेद करना तो लोगोंको बहकाना है। लोगोंको बहकानेके सिवाय और कुछ नहीं है। क्योंकि प्रत्यक्ष जीवोंको मारना तो योग्य समझा जाय और मरे हुएका स्पर्श करना भी अयोग्य समझा जाय। यह कभी नहीं हो सकता है। ये दोनों बातें एक ही हैं इनमें कोई अंतर नहीं है। जो लोग ऐसा कहते हैं वे अपनी इंद्रियोंकी पुष्टिके लिये अथवा अपनी जिह्वा इंद्रियके स्वादके लिये कहते हैं। भावप्रकाशमें लिखा है—

पूतिमांसं स्त्रियो वृद्धाः वालार्कस्तरुणं दधि। प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणिहराणि षट्॥

अर्थ—दुर्गंधमय मांसका भक्षण करना, वृद्ध स्त्रियोंका सेवन करना, कन्याराशिकी धूपको सहना, तुरंतके जमाये हुये दहीको खाना, प्रभातके समय मैथुन करना तथा प्रभातके समय नींद लेना। इन छह बातोंके करनेसे शीघ्र ही प्राण नष्ट हो जाते हैं। यहां पर प्राण शब्दका अर्थ बल है। इन ऊपर लिखे छहों कामोंमेंसे कोईसा भी काम करनेसे उसी समय बल नष्ट हो जाता है। सब पराक्रम जाता रहता है। आगे उसी भावप्रकाशमें लिखा है—

सद्यो मांसं नवान्नं च बालास्त्री क्षीरभोजनम्। घृतमुष्णोदकस्नानं सद्यः प्राणकराणि षट्॥

अर्थ—तुरन्तके मरे हुए जीवका मांस भक्षण करना, नव यौवन स्त्रीका सेवन करना, तुरंत बनी हुई रसोईका भोजन करना, दूध पीना, घी खाना, और गर्म जलसे स्नान करना। इन छह कार्योंके करनेसे शीघ्र ही बल पराक्रम बढ़ जाता है। इत्यादि भावप्रकाशके बचनोंके आधारसे वे लोग जीवोंको तुरंत मारकर उनके मांस खानेकी पुष्टि करते हैं सो केवल अपने स्वार्थकेलिये अनेक प्रकारके बचनजाल फैलाकर लोगोंको ठगते हैं यह सब उनके मिथ्यात्व कर्मके उदयका माहात्म्य है।

ऐसे लोग संसारके नासमझ लोगोंको यह समझाया करते हैं कि जो बाजे चमडेसे मढे जाते हैं वे सब जीवोंको तुरंत मारकर उनके चमडेसे मढे जाते हैं इसीलिये उस चमडेको जीवित चमड़ा कहते हैं परंतु अपने आप मरे हुएके चमडेसे मढा हुआ बाजा कभी नहीं बजता इसी प्रकार मरे हुए जीवका मांस नहीं खाना चाहिये किंतु जीवोंको तुरंत मारकर उनका मांस खाना चाहिये परंतु उनका यह कहना महा पापका कारण है। 'ताजे चमडेसे बाजे मढे जाते हैं, अपने आप मरे हुए जीवोंके चमड़ेसे नहीं मढे जाते' उसका कारण तो यह है कि अपने आप मरे हुए पशु घडी दो घडी घंटे पहर रात दिन आदि कितने काल तक पडे रहते हैं इसलिये उनका रुधिर वा शरीरका द्रव्र (पतला) भाग उनके चमडेके रोम रोममें भर जाता है। इसी कारण वह चमड़ा भारी होजाता है उसके रोम सब बंद होजाते हैं और वह चमड़ा गूंगा होजाता है इसीलिये वह बजता नहीं है। परंतु उसी समय मारे हुए जीवका चमड़ा वे कसाई लोग उसी समय निकाल लेते हैं इसलिये उसके रोमोंमें रुधिर भर नहीं सकता रोमोंमें रुधिरके न भरनेसे चमड़ा भारी और गूंगा नहीं होता तथा रोम खुले रहते हैं इसलिये वह ठीक तरहसे बजता है इसके सिवाय उसमें और कोई भेद नहीं है। तथा मांस तो दोनोंका ही महा घृणित और अपवित्र है इसलिये कभी ग्रहण करने योग्य नहीं हो सकता।

ऐसे ही दुष्टोंके बचनोंको सुनकर कितने ही क्षत्रिय भी ऐसा ही कहने लगे तथा जीवोंको मारकर मांस भक्षण करने

कमें हैं सो वे भी उन्हींके समान हैं। क्षत्रियोंका धर्म तो यह है कि जो कोई अपराधी भी हो परंतु उनके सामनेसे भाग जाय तथा उस अपराधको क्षमा करानेके लिये पीछे उनके सामने आवे, अपने केशोंको छूटे हुए रक्खे, मुखमें तृण दबावे तो फिर उसको वे क्षत्रिय लोग कभी नहीं मारते हैं, छोड देते हैं तो फिर हिरण आदि पशु तो सदा बनमें ही रहते हैं, किसीका कोई अपराध नहीं करते, उनके केश सदा छूटे रहते हैं, मुखमें सदा तृण दावे रहते हैं और मनुष्योंको देखते ही भाग जाते हैं। ऐसे हिरण आदि पशुओंको क्षत्रिय होकर भी शस्त्रसे मारना और मारकर उनका मांस खाना कभी योग्य और क्षत्रियोंका धर्म नहीं हो सकता। ऐसा यह निंदनीय कार्य कभी क्षत्रियोंका नहीं हो सकता। इस प्रकार जो लोग कहते हैं वे सब मिथ्या हैं वे लोग नरकादिक कुगतियोंके बीज बोते हैं। यह क्षत्रियोंका धर्म नहीं है किंतु नीच शूद्रोंका कार्य है। क्षत्रिय शब्दकी व्याख्या तो इसप्रकार है "क्षतात् त्रायन्ति इति क्षत्रियाः" अथवा "क्षितिं त्रायन्ति इति क्षत्रियाः" अर्थात् जो क्षत अर्थात् मरते हुएको त्रायंति अर्थात् रक्षा करे उसको क्षत्रिय कहते हैं, क्षत्रियका धर्म है कि किसीके द्वारा मारने नहीं देवे, सबकी रक्षा करे वही क्षत्रिय कहलाने योग्य है। अथवा क्षिति अर्थात् पृथिवीकी रक्षा करे उसको क्षत्रिय कहते हैं। जहांतक अपनी पृथ्वी है वहांतकके मनुष्य पशु पक्षी सभी जीवोंकी रक्षा करे उसको क्षत्रिय कहते हैं। इस प्रकार क्षत्रिय शब्दकी निरुक्ति है। इस निरुक्तिसे भी सिद्ध होता है कि हिंसा करनेवाले कभी क्षत्रिय नहीं हो सकते। जो जीवोंकी हिंसा करते हैं, मद्य मांसका सेवन करते हैं और पृथिवीकी प्रजाको लूटते हैं ऐसे अन्यायी अधर्मी वर्तमानके कुछ क्षत्रिय कभी क्षत्रिय नहीं कहे जा सकते।

ऐसे ऐसे ही मांसभक्षी क्षत्रियोंके आचरण देखकर तथा उनके फुमलानेमें आकर कितने ही श्वेतांबर संप्रदायके वैश्य मांसभक्षण वा मद्यपान करते हैं यदि कोई उनकी निंदा करता है तो कहते हैं कि हम पहले क्षत्रिय थे अब वैश्य होगये तो क्या हो गया। हम तो पहलेके क्षत्रिय हैं इसलिये मांसभक्षण आदि करना हमारे लिये तो ठीक ही है। इसप्रकार मांस भक्षणादिकके लिये वे जबर्दस्ती क्षत्रिय बनते हैं परंतु जिसकी जैसी होनहार होती है उसीप्रकार उसकी बुद्धि हो जाती है और फिर उसीप्रकार वह बकता है। आचरणोंसे कुछ क्षत्रिय वा वैश्य नहीं होता। चाहे क्षत्रिय हो चाहे वैश्य हो निंद्य आचरणोंसे निंद्य कहलाता है और उत्तम आचरणोंसे उत्तम कहलाता है इसका भी कारण यह है कि इस संसारमें साक्षात् सर्वज्ञ वीतराग अरहंतदेवका कहा हुआ अहिंसामयी धर्म ही जीवोंको स्वर्ग मोक्ष देनेवाला है। इसके सिवाय हिंसाका प्रतिपादन करनेवाले समस्त धर्म संसारके कारण हैं अनंतकालतक दुःख देनेवाले हैं। इसलिये भगवान अरहंतदेवके कहे हुए जैनधर्मका शरण लेना ही जीवोंका कल्याण करनेवाला है सो सदा जयवंत हो।

२०८ चर्चा-दोसौ आठवीं।

कोई कोई अन्यमती ऐसा कहते हैं कि तुम्हारे केवली भगवान् अरहंतदेव अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य इन चारों अनंत चतुष्टयोंसे सुशोभित हैं परन्तु यह बात सत्य नहीं है क्योंकि ज्ञान और दर्शन तो एक हैं। जो जानना है वही देखना है और जो देखना है वही जानना है। इसलिये अनंतदर्शन वा अनंतज्ञानमेंसे एक ही रह सकेगा दोनों नहीं बन सकते।

समाधान—ज्ञान दर्शन एक नहीं है किंतु जुदे जुदे हैं। ज्ञानका कार्य केवल जानना है और दर्शनका कार्य केवल देखना है। जिसप्रकार अंधा पुरुष जान सकता है परंतु देख नहीं सकता और लंगडा पुरुष देख सकता है परन्तु दूर न जा सकनेके कारण दूरके पदार्थोंको जान नहीं सकता। छोटा बच्चा अनेक पदार्थोंको देखता है परन्तु जानता नहीं। इससे सिद्ध होता है कि दर्शन अलग पदार्थ है और ज्ञान अलग पदार्थ है "ज्ञानांधः दर्शनं पंगु" जैसे अंधा और लंगडा दोनों मिल जांय तो अपने कार्यकी सिद्धि कर सकते हैं। उसीप्रकार ज्ञान दर्शन दोनोंसे ही पदार्थका स्वरूप जाना जाता है। दोनों ही आत्माके अलग अलग गुण हैं। इसलिये अनंत चतुष्टय अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है।

---

१ प्रत्येक पदार्थमें सामान्य और विशेष दो धर्म रहते हैं ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें ये दोनों धर्म न रहते हों तथा ये दोनों धर्म अविनाभावी हैं। एक दूसरेके साथ रहते हैं। विना सामान्यके विशेष नहीं रहता और विना विशेषके सामान्य नहीं रहता। लिखा है "निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खर विषाणवत्। विशेषरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि।" अर्थात् विना विशेषके सामान्य गधेके सींगके समान अभावरूप ही रहता है। इसीप्रकार विना सामान्यके विशेष भी गधेके सींगके समान है। इससे सिद्ध होता है कि पदार्थका स्वरूप उभयात्मक है। तथा आत्माका समस्त पदार्थोंका जानना है। पदार्थोंमें जो सामान्य गुण है उसका ज्ञान होना दर्शन है और विशेषका ज्ञान होना ज्ञान है। इसीलिये ज्ञान साकार है और दर्शन निराकार है। दर्शनमें "यह घट है यह पट है" ऐसा आकार नहीं होता है। ज्ञानमें यह आकार होता है। आत्मामें ज्ञान गुण अलग हैं इसलिये उसको ढकनेवाला ज्ञानावरण कर्म अलग है। तथा दर्शन गुण अलग है इसलिये उसको ढकनेवाला दर्शनावरण कर्म अलग है। इसप्रकार हर तरहसे दर्शन और ज्ञान दोनों गुण अलग अलग सिद्ध होते हैं।

प्रश्न—यदि अरहंत भगवान देखते हैं और जानते हैं तथा त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थोंको और उनकी तीनों कालमें होनेवाली समस्त पर्यायोंको प्रत्यक्ष देखते और जानते हैं तो फिर कहना चाहिये कि वे बडे निर्दयी हैं। क्योंकि संसारी जीव नरकादिक गतियोंमें अनेक प्रकारके दुख पा रहे हैं उनको देखते जानते हुए भी बचाते नहीं। हमारे ईश्वरके समान अवतार धारण कर सबकी रक्षा करना चाहिये। सो अरहंत देव करते नहीं। इसलिये कहना चाहिये कि वे बडे निर्दयी हैं।

उत्तर—भगवान अरहंतदेव निर्दयी नही हैं किंतु सबसे अधिक दयालु हैं। तथा वे इतने दयालु हैं कि यदि जातिविरोधी जीव भी उनके समीप आजांय उनके समवसरणमें आजांय तो भगवान अरहंतदेवके प्रभावसे वे सब जीव अपना अपना विरोध छोड़ देते हैं इससे बढकर और दयालुता कोई हो नहीं सकती। परन्तु साथमें ही अरहंत देव सबसे बडे पुरुष हैं और वीतराग हैं। जो पुरुष सबसे बड़ा और न्यायवान् होता है वह किसीके लेने देनेमें बोलता नहीं। यदि वह बीचमें बोले तो अन्यायी समझा जाता है। इसीप्रकार समस्त संसारी जीव अपने अपने किये हुए कर्मोंके फलको भोगते हैं। कर्मोंका फल कभी छूट नहीं सकता। यदि छूटेगा तो उसीके ध्यानादिकसे छूटेगा। इसलिये उनके बीचमें पडना न्यायवान् महापुरुषोंका काम नहीं है। इसके सिवाय भगवानके राग द्वेष वा मोह नहीं है। जो रागी वा द्वेषी है वे ही मारने वा बचानेका काम किया करते हैं और इसीलिये वे परमेश्वर नहीं कहे जा सकते। भगवान् अरहंत देव वीतराग हैं। इसीलिये वे परमेश्वर कहे जाते हैं। वे अठारह दोषोंसे रहित हैं और सर्वज्ञ हैं।

२०९। चर्चा दोसौ नवमीं।

कोई परवादी कहते हैं कि तुम्हारे निर्ग्रंथ गुरु प्रत्यक्ष रागी द्वेषी हैं क्योंकि जो नवधाभक्ति करता है उसके घर आहार लेते हैं और जो उनको नमोस्तु आदि न करें उनके घर आहार नहीं लेते। यह एक प्रकारका अभिमान वा राग द्वेष समझना चाहिये।

समाधान—वास्तवमें यह बात नहीं है। महामुनिराज छयालीस दोष बत्तीस अंतराय और चौदह मलोंको टालकर दिनमें एक वार खडे खडे आहार लेते हैं। जो जैनी नहीं है वह न तो आहारकी विधि जानता है और न निर्दोष प्रासुक शुद्ध आहार तैयार कर सकता है। इसलिये वे मुनिराज नमोस्तु आदि पडगाहन की विधिको न देखकर अंतराय समझकर चले जाते हैं। रागद्वेष वा मानसे नहीं जाते। अपने गुरुको आये हुए समझकर भक्तिसे उठना, सामने जाना, प्रदक्षिणा देना, नमोस्तु कहना, पडगाहन करना, पाद प्रक्षालन करना, पूजन करना आदि आहार देनेकी विधिको जैन शास्त्रोंके जाननेवाले श्रावकोंके विना अन्यमती जानते नहीं।

इससे उनके प्रासुक शुद्ध आहारकी अजानकारी भी स्वयं सिद्ध हो जाती है। इसलिये अंतराय समझकर वे मुनिराज चले जाते हैं। जो जैनी श्रावक बडे बडे विद्वान होकर भी इस विधिको नहीं करते उनके घर भी वे अंतराय समझकर छोड देते हैं। ऐसे घरोंका छोडना केवल अपने व्रतोंकी रक्षाके लिये है और कुछ नहीं है। यदि वे मुनिराज किसी धनवान, राजा वा मित्रके घर तो चले जांय और दरिद्री रंक वा शत्रुका घर छोड दें तब तो वे रागी द्वेषी समझे जाय परंतु ऐसा वे कभी करते नहीं। इसलिये उनके रागद्वेष कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इसके सिवाय वे मुनि स्वादिष्ट भोजनमें वा स्वादिष्ट भोजन देनेवालेमें राग नहीं करते तथा स्वादहीन भोजनमें वा उसके देनेवालेमें द्वेष नहीं करते इसलिये भी रागद्वेष रहित सिद्ध होते हैं।

जो पडगाहन करते हैं उन्हींके घर आहार लेते हैं इसका एक कारण यह भी है कि मुनिराजके भ्रामरी आहार है। जिसप्रकार भ्रमर विना किसीको सताये फूलका रस लेता है उसीप्रकार वे मुनिराज विना किसीको तकलीफ दिये अपना निर्वाह करना चाहते हैं और वह इसीप्रकार पडगाहन करनेसे दातारकी उत्कट इच्छासे हो सकता है अन्यथा नहीं इसप्रकार भी वे मुनिराज रागद्वेषरहित स्वार्थरहित परम वीतरागी सिद्ध होते हैं।

२१०। चर्चा दोसौ दशवीं।

मुनिराज पीछी रखते हैं सो इसमें ऐसा कौनसा गुण है जो वे सामायिक, वंदना देवदर्शन करनेमें चलने बैठनेमें सब कामोंमें उसको अपने पास रखते हैं। तथा उसके वियोगमें प्रायश्चित लेते हैं, सो यह क्या बात है।

समाधान—पीछीमें पांच गुण होने चाहिये जो धूल और पसीनेको दूर करे जो कोमल हो, जो चिकनी हो और जो छोटी वा हलकी हो। ये पांच गुण पीछीमें होने चाहिये ऐसी पीछीसे जीवोंको अभयदान दिया जाता है। यह उसमें सबसे उत्तम गुण है। ऐसा भगवान अरहंतदेवने कहा है। यदि पीछी न हो साधुजनोंकी ईर्यासमितिका नाश होजाता है। तथा स्थूल सूक्ष्म आदि अनेक जीवोंका घात होता है। जिससे उन मुनियोंका मुनिपद ही भ्रष्ट होजाता है। इसीलिये पीछीके वियोगमें मुनिराज प्रायश्चित लेते हैं सो ही सकलकीर्तिकृत धर्मप्रश्नोत्तरमें लिखा है—

अथ पिच्छिकागुणाः रजःस्वेदाग्रहणद्वयम्। मार्दवं सुकुमालत्वं लघुत्वं सद्गुणा इमे॥
पंच ज्ञेयास्तथा ज्ञेया निर्भयादिगुणोत्तमाः। मयूरपिच्छजातायाः पिच्छिकाया जिनोदिताः॥

समितिस्तां विना नश्येत्साधूनां कार्यसाधने । स्थूलसूक्ष्मादिहिंसाद्या व्यर्थं जन्मदीक्षणम् ॥

इस पंचमकालके दोषसे कितने ही ऐसे मुनि बन गये हैं जो पीछी नहीं रखते और अपनेको मुनि मानते हैं परन्तु वास्तवमें वे मुनि नहीं है। शास्त्रोंमें उनको जैनाभास (जैनी तो नहीं है परन्तु जैनियोंके समान दिखाई पड़ते हैं) बतलाया है। सो ही नीतिसारमें लिखा है—

कियत्यपि गते काले ततः श्वेताम्बरोऽभवत् । द्राविडो यापनीयश्च केकीसंघश्च मानतः ॥
केकिपिच्छः श्वेतवासो द्राविडो यापनीयकः । निःपिच्छश्चेति पंचैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ॥
स्वस्वमत्यनुसारेण सिद्धांतव्यभिचारिणः ।

२११। चर्चा दोसौ ग्यारहवीं।

सिद्धक्षेत्रोंमें सबसे पहले कैलाश बतलाया है और वहांसे श्री ऋषभदेव मोक्ष पधारे हैं। तथा महाराज भरतने सुवर्णमय बहत्तर जिनालय बनवाकर उनमें भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालोंके चौवीस चौवीस तीर्थंकरोंकी बहत्तर प्रतिमाएं विराजमान की हैं। ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है सो वह कैलाशपर्वत कहां है। अन्यमती भी कैलाश पर्वत मानते हैं और वहांपर शिवका निवास मानते हैं सो वह भी कहीं जाना नहीं जाता। इसलिये बताना चाहिये कि वह कहां है।

समाधान—कैलाश पर्वत विजयार्द्ध पर्वतकी ओर है। अयोध्या नगरीसे सेंतालीस हजार दोसौ तिरेसठ लघु योजन दूर है। इसके एक लाख नवासीहजार बावन कोश होते हैं। यह अयोध्यासे उत्तर पूर्वकी ओर ईशान दिशाकी ओर है। चक्रवर्ती मकर संक्रांतिके दिन अपने महलों पर चढ़कर अपने नेत्रोंसे कैलासकी ध्वजाको देख लेता है। इसप्रकार कैलाशका स्वरूप एक चर्चाकी पुस्तकमें लिखा है। उसमें श्लोक वा गाथा आदिका कुछ प्रमाण नहीं दिया है। इससमय वहांपर किसीका गमन नहीं है। श्रीअजितनाथ तीर्थंकरके समय दूसरे सगर चक्रवर्तीके साठ हजार पुत्रोंने गंगा महानदीका किनारा तोडकर उसके जलका प्रवाह कैलाश पर्वतके चारों ओर कर दिया है। इससे वहां पहुंचना अशक्य है। तथा अत्यंत दूर और दुर्गम होनेके कारण भी वहां पहुंचना अशक्य है। अन्यमती भी यही कहते हैं कि कैलाशके बीचमें हिमालय पर्वत है। इसलिये वहां किसीका गमन नहीं है।

२१२। चर्चा दोसौ बारहवीं।

शास्त्रोंमें पुरुषोंका उत्कृष्ट आहार बत्तीस ग्रास तक बतलाया है। इसीप्रकार स्त्रियोंके आहारका प्रमाण क्या है?

समाधान—स्त्रियोंका उत्कृष्ट आहार अट्ठाईस ग्रासका बतलाया है। सो ही आचार्य शिवकोटिविरचित भगवती आराधनामें लिखा है।

बत्तीसं किर कवलाहारो कुक्खिपूरणो होई। पुरुसस्स महिलाए अट्ठावीसं हवे कवला॥

यही कारण है कि मुनि और अर्जिका इसी बत्तीस और अट्ठाईस ग्रासके प्रमाणसे आहार लेते हैं यह उत्कृष्टतासे है इसीलिये मुनि अर्जिका इससे कम ग्रास ले लेते हैं इससे अधिक नहीं लेते।

प्रश्न—एक ग्रासका प्रमाण क्या है?

समाधान—एक हजार चावलोंका उत्कृष्ट एक ग्रास होता है। सो ही षट्धर्मोपदेश रत्नमालामें लिखा है—

द्वाविंशत्कवलैः पुंसामाहारः कथितो जिनैः।
अष्टाविंशतिसंख्यैश्च स्त्रीणां लेपः प्ररूपितः॥ १५॥
सहस्रतंदुलैः प्रोक्तो ह्येकः कवल उत्तमः।

इसप्रकार अहारहवें परिच्छेदमें लिखा है।

२१३। चर्चा दोसौ तेरहवीं।

कोई कोई कहते हैं कि विदेहक्षेत्रमें तीर्थंकरोंके पंचकल्याणकोंका नियम नहीं है। ज्ञानकल्याणक और निर्वाणकल्याणक ये दो ही कल्याणक सामान्य केवलीके समान होते हैं। पांचों कल्याणकोंका नियम नहीं है तो भी वे तीर्थंकर कहलाते हैं।

समाधान—तीर्थंकर प्रकृतिके बंधके लिये दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाएं हैं। सो जिसने पहले भवमें सोलह कारण भावनाओंका चितवन नहीं किया है। उसके पांचों कल्याणक नहीं होते। उनके केवल दो कल्याणक होते हैं। उनके समवसरण भी नहीं होता। सामान्य केवलीके समान गंधकुटी होती है। जन्मके समय मति श्रुत अवधि ये तीनों ज्ञान नहीं होते। जन्मके दश

अतिशय नहीं होते। फिर तीर्थंकरोंके चौंतीस अतिशयोंमेंसे चौवीस ही अतिशय मानने पडेंगे। तथा ऐसे तीर्थंकरोंको हीनपुण्य मानना पडेगा। सो ऐसा श्वेताम्बर मानते हैं। वास्तवमें ऐसा तीर्थंकर तो पूर्ण पांचों कल्याणकोंको धारण करनेवाले ही होते हैं ऐसा नियम है। कम कल्याणकवाले तीर्थंकर नहीं होते।

शास्त्रोंमें लिखा है कि मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊंचा है। उसके ऊपर चौथा पांडुक नामका वन है। उसकी प्रदक्षिणा रूपसे चूलिकाकी ईशान दिशामें चार पांडुक शिला हैं वे अर्द्ध चंद्रमाके समान सुशोभित हैं सौ योजन लंवी पचास योजन चौडी और आठ योजन ऊंची हैं। ये शिलाएं स्वयं सिद्ध अनादि अनिधन शास्वती विराजमान हैं। एक एक पांडुक शिलापर तीन तीन सिंहासन विराजमान हैं। मध्यके सिंहासनपर श्री तीर्थंकर विराजमान होते हैं और अगल वगल सिंहासनों पर अभिषेक करनेकेलिये इन्द्र खडे होते हैं। भरतक्षेत्रकी अपेक्षा ईशान कोणकी पांडुक शिलापर भरतक्षेत्रके तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है। अग्निकोणकी शिला पर पश्चिमविदेहमें उत्पन्न हुये तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है। मेरु पर्वतकी नैऋतकोणमें विराजमान शिलापर रक्खे हुए मध्यके सिंहासनपर ऐरावत क्षेत्रके तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है तथा मेरुपर्वतके वायव्य कोणमें विराजमान पांडुक शिलाके मध्यभागमें रक्खे हुए मध्यके सिंहासन पर पूर्व विदेह क्षेत्रके तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है। इसी प्रकार दो मेरु पर्वत धातकी द्वीपमें हैं तथा दो मेरु पुष्कर द्वीपमें हैं। इन चारों मेरु पर्वतोंपर भी उन उन द्वीपोंके क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुए तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है। ऐसा शास्त्रोंमें है। जिसका जन्माभिषेक होता है उसके पांचों कल्याणक अपने आप सिद्ध हो जाते हैं। ऐसा सिद्धांत है।

प्रश्न—पांडुक शिलाएं किस रंगकी हैं चारों ही शिलाएं एक रंगकी हैं अथवा अलग अलग रंगकी हैं।

समाधान–चारों पांडुक शिलाएं अलग अलग चार रंगकी हैं। जिस पर भरतके तीर्थंकरोंका अभिषेक होता है वह सुवर्णमय है। जिसपर पश्चिम विदेहके तीर्थंकरोंका अभिषेक होता है वह सफेद चांदीकी है। जिसपर ऐरावत क्षेत्रके तीर्थंकरोंका अभिषेक होता है वह ताये हुए सोनेके समान है और पूर्व विदेहके तीर्थंकरोंका अभिषेक जिसपर होता है वह पद्मराग मणिके समान अथवा गुलावी कमलके समान है। इस प्रकार इन चारों शिलाओंका स्वरूप है।

एक एक शिलापर जो तीन सिंहासन हैं उनमेंसे मध्यके सिंहासन पर तो तीर्थंकर विराजमान होते हैं। दक्षिणकी ओरके सिंहासनपर सौधर्म इन्द्र और उत्तरकी ओरके सिंहासन पर ऐशान इन्द्र अभिषेक करनेके लिये रहता है। ऐसी अनादिनिधन परंपरा है। सो ही सिद्धांतसार दीपकके छठे अधिकारमें लिखा है—

पांडुकवने चूलिकायाः प्रदक्षिणं ऐशानादिविदिक्षु शतयोजनायामाः पंचाशद्योजनविस्तीर्णाः अष्टयोजनोन्नताः अर्द्धचन्द्रोपमाः रत्नतोरणवेदिकाद्यलंकृताः स्वस्वक्षेत्रसन्मुखाः स्फुरत्तेजोमयाः पाण्डुक-शिलाद्याः चतस्रः दिव्याः शिलाः सन्ति । तासामाद्या सुवर्णवर्णा पूर्वापरदीर्घा भरतक्षेत्रोत्पन्नतीर्थंकराणां जन्मस्नानपीठिका पाण्डुकशिला भवति । अर्जुनच्छाया दक्षिणोत्तरदीर्घा अपरविदेहजिनेन्द्राणां जन्माभिषकपीठिका पांडुकंवलाख्या आग्नेयदिशि शिलास्ति। तृतीया तपनीयनिभा पूर्वापरदीर्घा ऐरावतवर्षजतीर्थकृज्जन्माभिषकनिबद्धा रक्ताख्या नैऋत्यदिग्भागे शिला स्यात्। चतुर्थी पद्मवर्णा दक्षि-णोत्तरदीर्घा पूर्वविदेहजातश्रीजिननाथजन्मस्नानहेतुभूता वायुदिग्भागे रक्तकंवलाख्या शिला विद्यते। आसां चतुःशिलानामुपरि प्रत्येकं स्फुरद्रत्नमयानि त्रीणि सिंहासनानि भवन्ति। तेषां सिंहासनानां मध्यस्थसिंहासनं पंचशतधनुरुत्तुंगं पंचशतचापभूविस्तृतं सार्द्धद्विशतदण्डाग्रव्यासं तीर्थकृतां जन्मा-भिषकस्थित्यै स्यात् । दक्षिणदिग्भागस्थितं सिंहासनं जिनजन्माभिषकसमये सौधर्मेन्द्रस्योपवेशनाय भवति। उत्तरदिग्भागस्थं हरिविष्टरं तीर्थकृज्जन्माभिषवने ऐशानेन्द्रस्य संस्थितयेऽस्ति।

इस प्रकार ये चार शिला हैं उनके नाम पांडुक, पांडुकंवला, रक्ता, रक्तकंवला है।

यहांपर कदाचित् कोई यह कहे कि जिस समय तीर्थंकरकी मोक्ष होती है उसी समय अन्य किसी सामान्य मुनिके सोलह कारण भावना पूर्वक तत्काल केवलज्ञान उत्पन्न होजाता है। उनको ही तीर्थंकर कहते हैं। जो नाम उन मोक्ष जानेवाले तीर्थंकरका था वही नाम उन नये केवली भगवानका होजाता है। जैसे श्री सीमंधर स्वामीके मोक्ष गये बाद वहांपर जो तीर्थंकर होंगे वे भी श्री सीमंधर ही कहलावेंगे क्योंकि तीर्थंकरकी गद्दी सूनी नहीं रहती। इसीलिये पांचों कल्याणकोंका नियम नहीं रहता। ऐसा कोई कहता है। परंतु उसका यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसा कथन किसी शास्त्रमें नहीं आया है। यदि ऐसा होता तो शास्त्रोंमें जो पांडुक शिला आदिका वर्णन लिखा है। सो क्यों होता। इससे सिद्ध होता है कि तीर्थंकर गर्भसे ही होनहार तीर्थंकर होते हैं

और इन्द्रादिक देव उनके गर्भ कल्याणक आदि पांचों कल्याणक करते हैं। जन्म समयमें जन्मकल्याणक करते हैं तब सब तीनों लोक उनको तीर्थंकर कहते हैं। पीछे अनुक्रमसे तप कल्याणक ज्ञान कल्याणक और निर्वाणकल्याणक होते हैं। पहले तीर्थंकरके मोक्ष जानेके बाद गद्दी खाली न रहनेका कोई नियम नहीं है। यह निश्चित है कि पांचों कल्याणकोंके बिना तीर्थंकर नहीं होते जैसा कि पहले बता चुके हैं। यदि सामान्यकेवलीको ही तीर्थंकर कह दिया जायगा तो इसमें दोष आवेंगे। यदि यह कहोगे कि उस क्षेत्रके स्वभावसे ऐसा होता है तो फिर श्वेताम्बरोंके समान इसे अछेडा मानकर मानना पडेगा। इसलिये ऊपर लिखे अनुसार शास्त्रोक्त श्रद्धान करना ही योग्य है। अन्यथा नहीं।

२१४। चर्चा दोसौ चौदहवीं।

भगवान तीर्थंकरके जन्माभिषेकके समय अपने अपने इन्द्रों सहित चारों निकायोंके देव आते हैं। उस समय इन्द्रकी सवारीके आगे इन्द्रकी सात प्रकारकी सेना चलती है। वह सातों प्रकारकी सेना गुणानुवाद करती चलती है। सो वह सेना तीर्थंकर भगवान-के ही गुण गाती है या और भी किसीके गुण गाती है।

समाधान––सातों ही प्रकारकी सेना नृत्य करती हुई चलती है। उनमेंसे प्रथम सेनाके देव, विद्याधर कामदेव और राजाधि-राजोंके चरित्र और गुण गाते हुए गमन करते हैं। दूसरी सेनाके देव अर्द्ध मंडलीक सकल मंडलीक और महा मंडलीक राजाओंके चरित्र और गुण गाते हुए तथा नृत्य करते हुए गमन करते हैं। तीसरी सेनाके देव बलभद्र, नारायण, और प्रतिनारायणोंके बल वीर्य गुण आदिका वा उनके जीवनचरित्रका वर्णन करते हुए तथा नृत्य करते हुए गमन करते हैं। चौथी सेनाके देव चक्रवर्तीकी विभूति तथा बल वीर्य आदिका गुण वर्णन करते हुए चलते हैं। पांचवीं सेनाके देव लोकपाल जातिके देवोंका गुणानुवाद तथा उसी भवसे मोक्ष जानेवाले चरमशरीरी मुनियोंका गुणानुवाद करते हुए चलते हैं। छठी सेनाके देव गणधरदेव तथा ऋद्धिधारी मुनियोंके गुण और यशको वर्णन करते हुए चलते हैं। सातवीं सेनाके देव श्रीतीर्थंकरके छयालीस गुणोंका वा उनके जीवनचरित्रका वर्णन करते हुए गाते नृत्य करते हुए गमन करते हैं। सो ही सिद्धांतसार दीपकमें लिखा है—

प्रथमे नर्तकीनीके विद्याधरकामदेवराजाधिराजनां चरित्रेण नटन्तोऽमराः गच्छन्ति। द्वितीये सकलार्द्धमहामंडलीकानां वरचरित्रेण नर्तनं कुर्वन्तः सुराश्च। तृतीये बलभद्रवासुदेवप्रतिवासुदेवानां वीर्यादि-

गुणनिबद्धचरित्रेण नृत्यंतो देवाः गच्छंति । चतुर्थे चक्रवर्तिनां विभूतिवीर्यादिगुणनिबद्धचरित्रेण महन्नर्तनं भजन्तोऽमराश्च । पंचमे चमरांगयतिलोकपालसुरेन्द्राणां गुणरचितचरित्रेण नटन्तो निर्जराश्च । षष्ठे गणधरदेवानां ऋद्धिज्ञानादिगुणोत्पन्नवरचरित्रेण परं नृत्यं कुर्वाणः सुराः यान्ति । सप्तमे नर्तकानीके तीर्थंकराणां चतुस्त्रिंशदतिशयाष्टप्रातिहार्यानन्तज्ञानादिगुणरचितचरित्रेण तद्गुणरागरसोत्कटाः नाकिनः प्रवरं नर्तनं प्रकुर्वन्तो गच्छन्ति ।

प्रश्न—वे देव किस स्वरसे गाते हैं ?

समाधान—खड्ग, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ये सात स्वर हैं । इनमेंसे एक एक सेना एक एक स्वरसे गाती है तथा अनुक्रमसे गाती है । सो ही सिद्धांतसारदीपकमें लिखा है—

आद्यनीके खड्गस्वरेण जिनेन्द्रगुणान् गायन्तः, द्वितीये ऋषभस्वरेण च गानं कुर्वन्तः, तृतीये गांधारनादेन गायन्तो गंधर्वा गच्छन्ति । चतुर्थे मध्यमध्वनिना जन्माभिषेकसंबन्धिगीतान् गायन्तः, पंचमे पंचमस्वरेण गानं कुर्वाणः, षष्ठे धैवतध्वनिना च गायन्तः, सप्तमे निषादघोषणकलं गीतगानं कुर्वन्तो गंधर्वा व्रजन्ति ।

२१५ । चर्चा दोसौ पंद्रहवीं ।

सातों ही नरकोंमें कोई महापापी जीव अलग अलग नरकोंमें उत्कृष्टता कर कितनी कितनी बार जन्म धारण करता है ।

समाधान—पहले घम्मा नामके नरकमें उत्कृष्टताकर असंज्ञी जीव जाता है सो वह अधिकसे अधिक आठवार जाकर जन्म लेता है । दूसरे वंशा नामके नरकमें सरीसृप अर्थात् सर्प (फणा रहित जातिका जोडी डु जातिका सर्प) को आदि लेकर महापापके उदयसे अधिकसे अधिक सातवार जन्म धारण करते हैं । तीसरे मेघा नामके नरकमें दुष्ट पक्षी आदि जीव उत्कृष्ट पापके उदयसे छहवार जाकर जन्म लेते हैं । चौथे अंजना नामके नरकमें सर्पादिक तिर्यंच महापापके उदयसे पांचवार उत्कृष्ट जन्म धारण करते हैं । पांचवें अरिष्टा नामके नरकमें सिंहादिक जीव अधिकसे अधिक चार वार जाकर जन्म लेते हैं । मघवी नामके छठे नरकमें मनुष्यणी

स्त्री अधिकसे अधिक तीनवार जन्म लेती है । माघवी नामके सातवें नरकमें मनुष्यादिक जीव अधिकसे अधिक दो वार जन्म लेते हैं । इस प्रकार ये जीव मिथ्यात्वादिक महापाप कर्मोंसे तथा हिंसादिक पापोंसे उत्पन्न हुए कर्मोंके उदयसे नरकोंमें उत्कृष्ट जन्मोंको धारण करते हैं। तथा वहांपर सागरों पर्यंतकी आयु तक छेदन, भेदन, शूलारोपण, ताडन पीडन, आदिके महा दुःख भोगते हैं। उन दुःखोंको भगवान् सर्वज्ञ देव ही जानते हैं। इसलिये भव्यजीवोंको मिथ्यात्वादिक महापापोंका त्याग कर देना चाहिये, सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिये तथा अपने आत्माका कल्याण करनेके लिये अहिंसा आदि व्रतोंको धारण करना चाहिये ।

प्रश्न—यहांपर नरकोंमें जानेकी जो संख्या लिखी है सो नरकोंसे निकलकर अन्य जन्मोंको धारण करता है फिर नरकमें जाता है । सो नरकसे निकलकर किन किन गतियोंमें जन्म लेता है ।

समाधान—नरक गतिसे निकलकर मनुष्य और तिर्यंच गति ही प्राप्त होती है। मनुष्य वा तिर्यंच गतिको पाकर बाकी बचे हुये पहलेके पाप कर्मके उदयसे वा उस भवमें किये हुये पापकर्मोंके उदयसे फिर नरकमें जाता है। सातवें नरकसे निकलकर तिर्यंच ही होता है। सो ही सिद्धांतसारमें लिखा है—

उत्कृष्टेन स्वसंतरया सोऽसंज्ञी प्रथमावनौ । अष्टवारान् क्रमाद् गच्छेत्सरीसृपोतिपापतः ॥ १ ॥
सप्तवारान् द्वितीयायां तृतीयायां खगो व्रजेत् । षड्वारांश्च चतुर्थ्यां हि पंचवारान् भुजंगमः ॥ २ ॥
पंचम्यां च चतुर्वारान् याति सिंहो निरंतरम् । षष्ठ्यां योषित्त्रिवारान् सप्तम्यां वारद्वयं पुमान् ॥ ३ ॥
श्वभ्रेभ्यो निर्गता एते तिर्यग्नरगतिद्वये । कर्मभूमिषु जायंते गर्भजाः संज्ञिनः स्फुटम् ॥ ४ ॥

२१६ । चर्चा दोसौ सोलहवीं ।

पहले नरकसे लेकर सातवें नरकतक तीसलाख आदिके क्रमसे चौरासी लाख बिल हैं। उन बिलोंमें ये जीव अपने पापकर्मके उदयसे उत्पन्न होते हैं । पहले उन बिलोंके ऊपर बने हुए घंटाकार घृणित ऐसे उपपाद स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं और फिर वहांसे नीचे नरकमें पडते हैं। सो किसी समय वे बिल खाली रहते हैं या नहीं अथवा उनमें जीव सदा ही बिना किसी अंतरके उत्पन्न होते रहते हैं। इसका स्वरूप क्या है ।

समाधान—ये विल कभी खाली तो रहते नहीं। हां; जब कभी उसमेंके नारकीकी आयु पूरी हो जाती है तो नियत अंतरालके बाद दूसरा नारकी अवश्य उत्पन्न हो जाता है। उन नरकोंमें एक नारकीके मरनेके बाद दूसरे नारकीके उत्पन्न होनेतक जो अंतराल रहता है वह नीचे लिखे कोष्ठकसे स्पष्ट हो जाता है।

नरकोंके नाम	विलोंका प्रमाण		उत्कृष्ट अंतराल
रत्नप्रभा	तीसलाख	३००००००	चौवीस मुहूर्त
शर्कराप्रभा	पच्चीसलाख	२५०००००	सात दिन
वालुकाप्रभा	पंद्रहलाख	१५०००००	पंद्रह दिन
पंकप्रभा	दशलाख	१००००००	एक महीना
धूमप्रभा	तीनलाख	३०००००	दो महीना
तमःप्रभा	पांचकम एकलाख	९९९९५	चार महीना
महातमःप्रभा	पांच	५	छह महीना

इस नियत अंतरालके बाद कोई जीव अवश्य उत्पन्न होता है। सो ही सिद्धांतसारदीपकमें लिखा है—

प्रथमे नरके ज्येष्ठमुत्पत्तौ मरणांतरम्। चतुर्विंशतिसंख्यानां मुहूर्ता द्वितीयेंगिनाम्॥ १४॥
दिनानि सप्त वै श्वभ्रे तृतीये पक्षसंख्यकम्। चतुर्थे चैकमासो हि पंचमे मासयुग्मकम्॥ १५॥
षष्ठे मासचतुष्कं च सप्तमे नरकात्मनाम्। षण्मासा अन्तरं निःसरणप्रवेशयोर्महत्॥ १६॥

२१७। चर्चा दोसौ सत्रहवीं।

स्वर्गलोकमें जो जीव उत्पन्न होते हैं उनमें भी इसीप्रकार अंतराल है अथवा उनमें अंतराल है ही नहीं?

समाधान—देवोंके उत्पन्न होनेमें जो अंतरल होता है वह क्रमसे इस प्रकार है। सौधर्म ऐशान इन दो स्वर्गोंमें किसी देवके मरण होनेपर दूसरे देवके उत्पन्न होनेका अंतर अधिकसे अधिक सात दिन है। सानत्कुमार माहेन्द्रमें उत्कृष्ट अंतरल एक पक्ष है।

ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ट इन चार स्वर्गोमें किसी देवके मरनेके बाद दूसरे देवके उत्पन्न होनेका अंतर एक महीना है। शुक्र महाशुक्र सतार सहस्रार इन चार स्वर्गोंमें किसी देवके मरनेपर उसके स्थानपर दूसरे देवके उत्पन्न होनेका अंतर दो महीना है। आनत प्राणत आरण अच्युत इन चार स्वर्गोंमें उत्कृष्ट अंतर चार महीना है। इन सोलह स्वर्गोंसे ऊपर नव ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पांचो पंचोत्तर इन समस्त कल्पातीत विमानोंमें किसी अहमिंद्रके मरजानेपर दूसरे अहमिंद्रके उत्पन्न होनेका अंतर अधिकसे अधिक छह महीना है। इस प्रकार इनका अंतर है। सो ही सिद्धांतसार दीपकमें लिखा है—

सौधर्मैशानयोः प्रोक्तमुत्पत्तौ मरणेऽतरम्। उत्कृष्टेन च देवानां दिनानि सप्त नान्यथा ॥ १३ ॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रवासिनां कर्मपाकतः। संभवे मरणं ख्यातं पक्षैकमन्तरं परम् ॥ १४ ॥
अंतरं ब्रह्मनाकादिचतुःस्वर्गनिवासिनाम्। उत्पत्तौ च्यवने स्याच्च महत्मासैकमेव हि ॥ १५ ॥
अंतरं मरणोत्पत्तौ भवत्यत्र च नाकिनाम्। मासौ द्वौ परमं शुक्रादिकस्वर्गचतुष्टये ॥ १६ ॥
आनतादिचतुःस्वर्गवासिनां परमंतरम्। चतुर्मासाश्च विज्ञेयं मरणं च संभवे तथा ॥ १७ ॥
नवग्रैवेयकाद्येषु मरणे च समुद्भवे। सर्वेषामहमिंद्राणां मासषट्कं परान्तरम् ॥ १८ ॥

इसप्रकार सिद्धांतसार दीपकके सोलहवें अधिकारमें लिखा है।

२१८। चर्चा दोसौ अठारहवीं।

नरक और स्वर्गोमें अलग अलग कौन कौनसे कालकी प्रवृत्ति रहती है ?

समाधान—सातो ही नरकोंमें सदा शाश्वता समस्त असाताओंकी खानि ऐसा अतिदुःखमा अथवा दुःखमा दुःखमा नामका छठा काल रहता है। तथा चतुर्णिकाय देवोंके स्थानोंमें भवनोंमें आवासोंमें वा विमानोंमें सब जगह शास्वता सदा सुखोंका समुद्र ऐसा सुखमासुखमा नामका पहला काल रहता है। सो ही सिद्धांतसार दीपकके नौवें अध्यायमें लिखा है—

कालोतिदुःखमाभिख्यो नरकेष्वस्ति सप्तसु। विश्वासाताकरीभूताः शाश्वतो नरकांगिनाम् ॥ १ ॥
चतुर्णिकाये देवानां स्वर्गादिसर्वधामसु। सुखमासुखमा कालो नित्योस्ति सुखसागरः ॥ २ ॥

यहांपर जो सुखमा सुखमा वा दुःखमा दुःखमा काल बतलाया है सो केवल सुख वा दुःखकी अपेक्षासे बतलाया है उस काल की आयु काय आदिकी अपेक्षासे नहीं बतलाया है। भावार्थ-नरक स्वर्गकी जो आयु वा काय नियत है वही रहती है। उसमें अंतर नहीं पड़ता केवल सुख वा दुःख उस कालके समान है।

२१९। चर्चा दोसौ उनईसवीं।

स्वर्गके विमान आकाशमें किसके आधारपर स्थिर हैं।

समाधान-सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार तक बारह स्वर्गोंके विमान जल और पवनके आधार हैं तथा आनत स्वर्गसे लेकर बाकीके स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक नौ अनुदिश और पांचों पंचोत्तरोंके समस्त विमान विना किसी आधारके निराधार अपने आप स्थिर हैं। सो ही सिद्धांतसार दीपकके प्रथम अध्यायमें लिखा है—

जलवातद्वयाधोरणैव व्योम्नि मनोहराः। प्रगान्ताधिकल्पानां चतुर्वर्णा विमानकाः ॥ ७९ ॥
ग्रैवेयकादिपंचानुत्तरान्तानां भवन्ति ते। निराधारास्त्रयोविंशागूमहस्रप्रमाः स्वयम् ॥ ८० ॥

प्रश्न—यह लोक किसके आधार है?

समाधान— यह लोक घनोदधि बात, घनवात और तनुवातके आधार है। अर्थात् यह लोक घनोदधि नामकी घनीभूत वायुसे घिरा है। उसीके आधारपर ठहरा है, घनोदधि वायु घनवायुके आधार हैं, घन वायु तनुवायुके आधार है और तनुवायु आकाशके आधार है तथा आकाश स्वयं अपने आधार है। सो ही सिद्धांतसारमें पहले अधिकारमें लिखा है—

घनोदधिर्घनारुयश्च तनुवात इमे त्रयः। सर्वतो लोकमावेष्ट्य नित्यास्तिष्ठंति वायवः ॥ ८० ॥

श्रुतसागरी टीकामें भी इसीप्रकार लिखा है—

घनोदधिजगत्प्राणः सर्वलोकस्य वेष्टनं। घनप्रभजनो नाम द्वितीयस्तदनंतरम् ॥
तनुवात उपयस्य त्रैलोक्याधारशक्तिमान्। वाता एते स्थितिस्तेषां कथ्यमानानि शम्यतं ॥

२२०। चर्चा दोसौ वीसवीं।

एक मुनि, एक अर्जिका, एक श्रावक और एक श्राविका इन चारों धर्मात्माओंका चतुर्विध संघ रहेगा और कल्की इनसे दंड मागेगा सो इन चारोंका क्या नाम है ?

समाधान—मुनिका नाम वीरांगद होगा जो इन्द्रराज मुनिके शिष्य होंगे। अर्जिकाका नाम सर्वश्री होगा। श्रावकका नाम अग्निल होगा और उसकी स्त्रीका प्रयंगुसेना होगा। इस प्रकार इन चारोंके नाम होंगे। उस समय जो कल्की होगा वह पापी इनसे ग्रासका दंड मागेगा सो ये चारो ही जीव सन्यास धारण कर मरण करेंगे और पहले स्वर्गमें उत्पन्न होंगे।

प्रश्न—इनका मरण किस महीनेकी किस तिथिमें होगा ?

समाधान—ये चारों जीव तीन दिनतक सन्यास धारण करेंगे फिर दुःखमा कालके अंतमें जब तीन वर्ष साडे आठ महीना बाकी रहेंगे उस दिन कार्तिक कृष्णा अमावस्याके दिन प्रातःकाल मरण करेंगे। ये चारों ही जीव सौधर्म स्वर्गमें उत्पन्न होंगे। वहां पर मुनिके जीवकी आयु एक सागरकी होगी, और बाकीके तीनों जीवोंकी आयु एक एक पल्यकी होगी। सो ही सिद्धांतसार दीपकके नौवें अधिकारमें लिखा है—

इन्द्रराजमुनेः शिष्यो यतिर्वीरांगदाभिधः। अंतिमश्चार्यिका सर्वश्री श्रावकोग्निलाख्यकः ॥ ९३ ॥
श्राविका प्रिया तस्य प्रियंगुसेनाभिधा तदा। कालदोषेण चत्वारोऽमी स्थास्यंति सुधार्मिणः ॥ ९४ ॥
स कल्की पापधीः पापात् पूर्ववत्तस्य सन्मुनेः। सद्ग्रासहरणाद्यैर्महोपसर्गं करिष्यति ॥ ९५ ॥
चत्वारस्ते तदा तस्मिन्नुपसर्गे शिवाप्तये। गृहीष्यन्ति सुसन्यासं त्यक्त्वाहारं चतुर्विधम् ॥ ९६ ॥
ततो दिनत्रयेणैव मुक्त्वा प्राणान् समाधिना। दुःखमस्यैव कालस्यावसानस्य स्थितेषु च ॥ ९७ ॥
सार्द्धाष्टमाससंयुक्तत्रिवर्षोद्धरितेष्वपि। पूर्वाह्ने कार्तिके कृष्णेमावस्यायां शुभोदयात् ॥ ९८ ॥
अन्ते सौधर्मकल्पान्ते चत्वारः सुखसागरम्। गमिष्यन्ति महाशर्मभोक्तारो धर्मतत्पराः ॥ ९९ ॥
तन्मुनेः सागरैकं च भवितायुरखंडितम्। तत्र शेषत्रयाणां च पल्यमेकं हि साधकम् ॥१००॥

२२१। चर्चा दोसौ इकईसवीं।

असुर कुमारोंके इन्द्र चमरेंद्र और वैरोचनेन्द्र हैं ये दोनों सौधर्म स्वर्गके स्वामी सौधर्मेन्द्रसे तथा ऐशान स्वर्गके स्वामी ऐशानेन्द्रसे युद्ध करनेको गये थे। तब इन्द्रने इनपर वज्रका प्रहार किया था तब चमरेंद्र वहांसे भागा और अपने पातालमें आ छिपा। ऐसी कहावत है सो क्या सत्य है ?

समाधान—यह कहावत असत्य है। दिगम्बर आम्नायके विरुद्ध है। यह कहावत श्वेतांम्बर आम्नायकी है इसलिये विरुद्ध और श्रद्धान करने योग्य नहीं है।

प्रश्न—यदि ये दिगम्बर आम्नामके वाक्य नहीं हैं तो फिर दिगम्बर आम्नायमें यह कहावत प्रचलित क्यों है ?

समाधान–कुछ क्षेत्रका स्वभाव ही ऐसा है जिससे चमरेन्द्र सौधर्म इन्द्रसे व्यर्थ ही ईर्षाभाव रखता है। इसी प्रकार वैरोचन इन्द्र ईशान इन्द्रसे व्यर्थ ही ईर्षाभाव रखता है। यद्यपि ये दोनों ही सौधर्म ऐशान इन्द्रोंका कुछ कर नहीं सकते तथापि ईर्षाभाव रखकर व्यर्थ ही पापका बंध करते हैं। ऐसा वर्णन सिद्धांतसार प्रदीपकके दशवें अधिकारमें आया है। यथा–

सौधर्मेन्द्रेण चित्ते चमरेन्द्रः कुरुते वृथा। सहाकिंचित्करामीर्ष्यां क्षेत्रसद्भाववर्तनात् ॥ ७० ॥
तथैशानसुरेन्द्रेण सहेर्ष्यां निष्फलां मुधा। हृदि वैरोचनेन्द्रोपि करोति पापकारिणीम् ॥ ७१ ॥

इससे सिद्ध होता है कि ये लडने नहीं गये, लडनेकी बात कहना मिथ्या है।

२२२। चर्चा दोसौ बाइसवीं।

भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी ये तीनों भवनत्रिकदेव कौनसे तप करनेसे होते हैं ?

समाधान–जो जीव उन्मार्गचारी (मोक्षमार्गको छोडकर कुमार्गमें चलनेवाले) होते हैं, सम्यग्दर्शनके घातक, अकाम निर्जरा करनेवाले, युवावस्थामें ही तपश्चरण धारण कर शिथिलाचाररूप श्वेताम्बरादिकके धर्मको धारण करनेवाले अथवा मिथ्या संयमको धारण करनेवाले, पंचाग्नि तप करनेवाले, दूसरोंकी निंदा करनेवाले, तपसियोंका भेष धारण करनेवाले, अज्ञानतासे काय क्लेश करनेवाले ऐसे शिव धर्मके उपासक शैवलिंगी, वैष्णव तथा और भी अनेक भेषोंको धारण करनेवाले मनुष्यादिक जीव मरकर भवनत्रिकोंमें देव उत्पन्न होते हैं। इनके सिवाय जो चंडी, मुंडी, भैरव, क्षेत्रपाल, बीजासणी, शीतला, दुर्गा, कात्यायनी आदि अनेक

नीच देवोंकी उपासना करनेवाले जीव तथा पांचों महा पापोंको धारण करनेवाले क्रोधी मानी कपटी लोभी कामी आदि अनेक अवगुणोंको धारण करनेवाले, केवल भेष बनाकर लोगोंसे जबर्दस्ती गुरु बननेवाले ऐसे नीच गुरुओंकी सेवा करनेवाले और हिंसामयी नीच धर्मको माननेवाले, झूंठ चोरी कुशील परिग्रह आरंभ आदिमें धर्म माननेवाले वा ऐसे धर्मको धारण करनेवाले, नीच पाखंडियोंके भक्त, नीच भेष वा खोटे भेषको धारण करनेवाले हिंसा धर्मको प्रतिपादन करनेवाले खोटे शास्त्रोंको माननेवाले जीव नीच देवोंमें जाकर उत्पन्न होते हैं। ऐसा समझकर अपने आत्मसुखके लिये स्वर्ग मोक्षके देनेवाले जैनधर्मको ही धारण करना चाहिये। यही कल्याणका मार्ग है। दुष्टोंके समान कुमार्ग वा मिथ्यामार्ग कभी स्वीकार नहीं करना चाहिये। सो ही सिद्धांतसार दीपकके चौदहवें अधिकारमें लिखा है—

उन्मार्गचारिणो येत्र विराधितसुदर्शनाः। अकामनिर्जरायुक्ता बालावलतपोन्विताः ॥ २४ ॥
शिथिला धर्मचारित्रे मिथ्यासयंमधारिणः। पंचाग्निसाधने निष्ठाः सनिदानाश्च तापसाः ॥ २५॥
अज्ञानक्लेशिनः शैवलिंगिनो ये नरादयः। भावनादित्रयाणां ते यान्ति जीवगतित्रयम् ॥ २६ ॥
ये नीचदेवसंसक्ता नीचानीचगुरुश्रिताः। नीचधर्मरताः नीचपाषंडीभक्तिकाः शठाः ॥ २७ ॥
नीचसंयमदुर्वेशाः नीचशास्त्रतपोन्विताः। तेऽहो सर्वत्र नीचाः स्युः देवत्वेऽन्यत्र च सदा ॥ २८ ॥
मत्वेति जैनसन्मार्गं स्वमोक्षदं सुखार्थिभिः। विमुच्य श्रेयसे जातु न ग्राह्यं दुष्पथं खलम् ॥ २९ ॥

२२३। चर्चा दोसौ तेवीसवीं।

चतुर्णिकायके देवोंमें महा ऋद्धियोंको धारण करनेवाले इन्द्रादिक देव अपनी आयु पूरी कर किस किस गतिको प्राप्त होते हैं?

समाधान—सौधर्म इन्द्र सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेके प्रभावसे उसकी महादेवी इन्द्राणी, समस्त दक्षिणदिशाके इन्द्र चारों लोकपाल समस्त लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्र अपनी आयुके क्षय होनेपर वहांसे चयकर महा पुण्याधिकारी मनुष्यभव धारण करते हैं। वहांपर वे पुरुष ही होते हैं। संसारके सुखोंको भोगकर मुनिव्रत धारणकर तथा तपश्चरण कर केवलज्ञान पाकर मोक्ष जाते हैं। अर्थात् ऊपर लिखे हुए सौधर्म इन्द्रादिक देव एक भवावतारी जीव हैं। एक मनुष्य भव धारण करके ही मोक्ष जाते

हैं। नौ अनुदिशोंके देव, पांचों पंचोत्तरोंके देव वहांसे चयकर नारायण प्रतिनारायण पदको कभी नहीं पाते हैं। इस प्रकार तिर्यंच मनुष्य और भवनत्रिकके देव अपनी आयुके क्षय होनेपर वहांसे चयकर शलाका पुरुष कभी नहीं होते अर्थात् चौवीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ बलभद्र और नौ प्रतिनारायण इन तिरेसठ शलाका पुरुषोंकी पदवीको कभी प्राप्त नहीं होते। तथा विजयादिक विमानोंके रहनेवाले अहमिन्द्र तथा अनुदिशोंके अहमिन्द्र दो मनुष्य भव धारणकर मोक्ष जाते हैं। अर्थात् वहांसे चयकर मनुष्य होकर फिर विजयादिकमें जन्म लेकर फिर मनुष्य होकर मुक्त होते हैं। सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

विजयादिषु द्विचरमाः।

यही सब बात सिद्धांतसार प्रदीपकके पंद्रहवें अधिकारमें लिखी है।

सौधर्मेन्द्रस्य दृष्टयाधा महादेव्यो दिवश्च्युताः। सर्वे च दक्षिणेन्द्रा हि चत्वारो लोकपालकाः ॥ ३७७ ॥
सर्वे लौकांतिका विश्वे सर्वार्थसिद्धिजामराः। निर्वाणं तपसा यान्ति संप्राप्य नृभवं शुभम् ॥ ३७८ ॥
नवानुत्तरजा देवाः पंचानुत्तरवासिनः। ततश्च्युत्वा न जायंते वासुदेवा न तद्द्विषः ॥ ३७९ ॥
तिर्यंचो मानवाः सर्वे भावनादित्रिजामराः। शलाकाः पुरुषाः जातु न भवन्त्यमरार्चिताः ॥ ३८० ॥
विजयादिविमानेभ्योऽहमिन्द्रा गत्य भूतलम्। मर्त्यजन्मद्वयं प्राप्य ध्रुवं गच्छन्ति निर्वृतिम् ॥ ३८१ ॥

२२४। चर्चा दोसौ चौवीसवीं।

इस मध्यलोकमें जंबूद्वीपसे लेकर स्वयंभूरमण समुद्रतक कालचक्रका वर्ताव किसप्रकार है। अर्थात् सुखमा सुखमा आदि छहों कालोंमेंसे कौन कौन काल कहां वर्तता है?

समाधान—ढाई द्वीपके पंचमेरु संबंधी पांचों भरतक्षेत्र और पांचों ऐरावत क्षेत्रोंमें अनुक्रमसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीकालके छहों कालोंका वर्ताव रहता है अर्थात् अवसर्पिणी कालका पहला दूसरा तीसरा चौथा पांचवां छठा तथा उत्सर्पिणी कालका छठा पांचवां चौथा तीसरा दूसरा पहला इसप्रकार इन दशों क्षेत्रोंमें कालचक्र बराबर फिरता रहता है तथा इन्हीं कालोंके द्वारा उनमें वृद्धि ह्रास सदा होता रहता है। इसीप्रकार समस्त विजयार्द्ध पर्वतोंपर तथा प्रत्येक क्षेत्रके पांचों म्लेच्छखंडोंमें सदा चौथाकाल रहता है। उसमें

भी इतना अंतर है कि विदेहक्षेत्रके विजयार्द्धोंको छोडकर बाकीके भरत ऐरावत संबंधी दशों विजयार्द्धोंमें चतुर्थकाल हीनाधिक रूपसे रहता है। अर्थात् उनमें तीर्थंकरोंकी आयु कायके समान हीनाधिकता होती रहती है। पहले तीर्थंकरके समय पांचसौ धनुष-का शरीर और एक करोड पूर्वकी आयुवाले विद्याधर होते हैं। तथा अंतिम तीर्थंकरके समय एक धनुषका शरीर और एक सौ वीस वर्षकी आयु वाले विद्याधर होते हैं। बाकीके विदेह क्षेत्र संबंधी एकसौ साठ विजयार्द्ध निवासी विद्याधरोंकी आयु काय उत्कृष्ट श्री सीमंधर स्वामीके समान सदा रहती है। वहांकी आयु काय हीनाधिक नहीं होती।

विदेहक्षेत्रकी एकसौ साठ नगरियोंमें तथा पंच मेरु संबंधी दश कनकाचल पर्वतोंपर सदा मोक्षमार्गका प्रवर्तक चौथा काल रहता है अर्थात् इन क्षेत्रोंमें कभी दूसरा काल नहीं बदलता सदा चौथा काल ही रहता है। पांचों मेरु पर्वतकी दक्षिण उत्तर दिशा-की ओर जो देवकुरु और उत्तरकुरुकी दश भूमियां हैं जिनमें सदा उत्कृष्ट भोगभूमि रहती है उसमें सदा पहला काल ही रहता है। पांचों मेरु संबंधी पांचों हरिक्षेत्रोंमें तथा पांचों रम्यक क्षेत्रोंमें सदा मध्यम भोगभूमि रहती है और सदा दूसरा काल रहता है। इसी प्रकार पांचों हैमवत क्षेत्रोंमें और पांचों हैरण्यवत क्षेत्रोंमें सदा जघन्य भोगभूमि रहती है और सदा तीसरा काल रहता है। मानुषो-त्तर पर्वतसे आगे नागेन्द्रनामके पर्वततक मध्यके असंख्यात द्वीप समुद्रोंमें सदा जघन्य भोगभूमिकी रचनाके समान तीसरा काल रहता है। नागेन्द्र पर्वतसे आगे स्वयंभूरमण नामके अंतके द्वीपके आधे क्षेत्रमें सदा पांचवां काल रहता है। इस प्रकार मध्यलोकमें काल-की फिरनका स्वरूप है। सोही सिद्धांतसार दीपकके नौवें अधिकारमें लिखा है—

भरतैरावतक्षेत्रेषु सर्वेषु द्विपंचसु। द्विषट्कालाः प्रवर्तन्ते वृद्धिह्रासयुताः सदा॥ ३५४॥
विजयार्द्धनगेष्वत्र म्लेक्षखंडेषु पंचसु। चतुर्थकाल एवास्ति शास्वतो निरुपद्रवः॥ ३५५॥
किंतु चतुर्थकालस्य यदा स्याद्भरतादिषु। आयुः कायसुखादीनां वृद्धिः ह्रासाश्च जन्मिनाम्॥ ३५६॥
तदा तेन समः कालो वृद्धिह्रासयुतो भवेत्। रूप्याद्रिम्लेच्छखण्डेषु शेषकालश्च न क्वचित्॥ ३५७॥
पूर्वापरविदेहेषु द्विपंच स्वर्णपर्वते। चतुर्थकाल एवैको मोक्षमार्ग प्रवर्तकः॥ ३५८॥
देवोत्तरकुरुष्वेव द्विपंच भोगभूमिषु। दक्षिणोत्तरयो मेरौ प्रथमः काल ऊर्जितः॥ ३५९॥

२२७। चर्चा दोसौ सत्ताईसवीं।

छठेकालमें मनुष्य कैसे होंगे तथा उनका व्यवहार कैसा होगा ?

समाधान—छठेकालका नाम दुःखमा दुःखमा है। वह इकईस हजार वर्षका है उसके प्रारंभमें मनुष्य धूएंके रंगके होंगे दो हाथ ऊंचे बन्दरोंके समान नग्न होंगे। उनकी उत्कृष्ट आयु वीस वर्षकी होगी। एक दिनमें अनेकवार भोजन करेंगे मांस भक्षी होंगे। उनका निवास बिलोंमें होंगे। उस समय नगर, पुर, गांव आदिकी रचना नहीं रहेगी। उनका स्वभाव दुष्ट होगा। नरक वा तिर्यंच गतिसे आये हुये ही वहांपर उत्पन्न होंगे। अपनी माता भगिनी पुत्री आदि स्त्रियोंके साथ ही पशुओंके समान काम सेवन करेंगे। तथा अपनी आयुके अंतमें मरकर तिर्यंच वा नरकमें ही उत्पन्न होंगे। इस प्रकार छठे दुःखम दुःखमा कालमें दुराचारी महापापी उत्पन्न होंगे और वे घोर दुःखोंके भोगनेवाले होंगे। उस समय बादलोंमें पानी नहीं रहेगा, पृथ्वीके वृक्षादिक वनस्पतियोंमें कोई रस स्वाद नहीं रहेगा। मनुष्य स्त्रियां सब निराश्रय रहेगीं उस छठे कालके अंतमें मनुष्योंकी ऊंचाई एक हाथकी होगी। वे बहुत कुरूपी होंगे। उससमय उत्कृष्ट आयु सोलह वर्षकी होगी। तथा शीत उष्णकी बाधासे वे बहुत ही पीडित होंगे सो ही सिद्धांतसारदीपकके अधिकारमें लिखा है—

तस्यादौ धूम्रवर्णाभा नरा हस्तद्वयोन्नताः। शाखामृगोपमा नग्ना वर्षविंशतिजीविनः ॥ ३०४ ॥
मांसाद्याहारिणोनेकवाराशिनो दिनं प्रति। विलादिवासिनो दुष्टा आयान्ति दुर्गति द्वयात् ॥ ३०५ ॥
मात्रादिकामसेवांधास्तिर्यक्नरकगामिनः। भविष्यन्ति दुराचाराः पापिनो दुःखभोगिनः ॥ ३०६ ॥
तस्मिन्काले शुभातीते मेघाः स्वच्छजलाप्रदाः। स्वादुवृक्षोज्झिता पृथ्वी निराश्रया नरास्त्रियः ॥ ३०७ ॥
कालस्यान्ते करैकोचदेहा नराः कुरूपिणः। उत्कृष्टषोडशाव्दायुष्काः शीतोष्णादिपीडिताः ॥ ३०८ ॥

२२८। चर्चा दोसौ अट्ठाईसवीं।

श्रीमहावीर स्वामीको तथा श्रीपार्श्वनाथ स्वामीको तपश्चरण करते समय उपसर्ग हुआ था परंतु उस समय तीनों लोकोंके इंद्रोंको वा चतुर्णिकायके देवादिक अन्य जीवोंको भी मालुम नहीं हुआ था। क्योंकि श्रीपार्श्वनाथपर सात दिन तक बराबर उपसर्ग

होता रहा। सात दिनके बाद धरणेन्द्र पद्मावती आये और उपसर्ग दूर किया। तदनंतर भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ सो धरणेन्द्र पद्मावती भी पहले क्यों नहीं आये। इसका कारण क्या है ?

समाधान—यदि धरणेन्द्र पद्मावती उसी समय आ जाते तो इतने दिनतक उपसर्ग कैसे रहता ? वे अपने पहले बंधे हुए कर्मोंके फलको किसप्रकार भोगते ? तथा उस उपसर्गसे जो अनंत कर्मोंकी निर्जरा हुई थी सो कैसे होती ? तथा बिना कर्मोंकी निर्जरा के इतनी शीघ्रतासे केवलज्ञान किस प्रकार उत्पन्न होता? इसलिये कहना चाहिये कि इनके लिये ऐसे ही निमित्त मिलने थे। जिससे कि इतना उपसर्ग हो और नियत समयपर केवलज्ञान हो।

दूसरी बात यह है कि इस भरतक्षेत्रमें असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल बीत जानेपर एक हुंडावसर्पिणी काल आता है। उसमें उस हुंडावसर्पिणी कालके दोषसे कितनी ही बातें विपरीत होती हैं। लिखा भी है—

हुंडावसर्पिणीकाले णियमेण भवंति पंच पाषंडा। चक्किहरमाणभंगो उवसग्गो जिणवरंदाणं ॥

अर्थात्—असंख्यात उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी कालके बीतने पर इस भरतक्षेत्रमें एक हुंडावसर्पिणी काल आता है। उसमें नियमसे पंच पाखंड बढ जाते हैं। एकांत, विनय, विपरीत, संशय, अज्ञान ये पांचों मिथ्यात्व बढ जाते हैं। चक्रवर्तीका मान भंग होता है, और तीर्थंकरोंको छद्मस्थ अवस्थामें उपसर्ग होता है। यह सब हुंडावसर्पिणीका माहात्म्य है । इसका विशेष वर्णन सिद्धांत-प्रदीपकमें लिखा है। यथा—

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यसंख्यातेषु गतेस्वपि । हुंडावसर्पिणीकालः इहायाति न चान्यथा ॥ ७३ ॥
तस्यां हुंडावसर्पिण्यां पंचपाषंडदर्शिनः। शलाकाः पुरुषा जाताः सद्य भेदा अनेकशः ॥ ७४ ॥
जिनशासनमध्ये स्युः विपरीता मतान्तराः। चीवराद्यावृता निंद्याः सग्रंथाः संति लिंगिनः॥ ७५ ॥
उपसर्गो जिनेन्द्राणां मानभंगाश्च चक्रिणाम् । कुदेवमठमूर्त्याद्याः कुशास्त्राणि अनेकशः ॥ ७६ ॥
भरतस्य वाहुवलिना मानभंगः प्रजायते ।

इस प्रकार इस हुंडावसर्पिणी कालके ऊपर लिखे हुए पांचों मिथ्यात्वोंकी वृद्धि हुई है। शलाका पुरुषोंमें कमी हुई है*। जिन-शासनमें भी वस्त्रोंको धारण करनेवाले श्वेताम्बरोंके साधु हुए हैं श्वेताम्बरोंने और भी कई प्रकारकी विपरीतता चलाई हैं सो सब काल दोषका प्रभाव है।

इसके सिवाय तीर्थकरोंको उपसर्गका होना चक्रवर्तीका मानभंग होना, कुदेवोंकी मूर्ति वा मठ स्थापन होने और कुशास्त्रोंका बहुत प्रचार होना आदि सब काल दोष है। इस प्रकार इस काल दोषका बर्णन संक्षेपसे कहा है। यदि इसका विस्तार जानना हो तो त्रिलोकप्रज्ञप्तिसे जानना चाहिये।

प्रश्न—श्रीपार्श्वनाथके तपश्चरण करते समय उपसर्ग हुआ था और उपसर्गके समय धरणेन्द्र पद्मावतीने उनके मस्तकपर उस उपसर्गको दूर करनेके लिये सर्पका फणा बनाया था। तदनंतर भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। केवलज्ञानके समय वह फणा नहीं रहा था तथा मूर्ति केवलज्ञानके समयकी बनाई जाती है और उस समय उनके मस्तकपर फणा था नहीं। फिर अब उनकी मूर्तिपर फणा क्यों बनाया जाता है?

समाधान—केवलज्ञानका स्वरूप गर्भ जन्म तप इन तीनों कल्याणोंके विना नहीं होता। तुमको जो केवल केवलज्ञानकल्याणकी मूर्ति प्रतिभासित होती है सो नहीं है किंतु वह प्रतिमा गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण इन पांचों कल्याणमय है। प्रतिष्ठाके समय भी पांचों कल्याणकोंकी प्रतिष्ठा होती है। तप कल्याणकी विधिमें पार्श्वनाथकी प्रतिमापर फणावली भी होनी चाहिये इसी अभिप्रायको लेकर प्रतिमाके निर्माण करते समय धातु वा पाषाणमें फणाका चिन्ह बनाया जाता है। बननेके बाद वह दूर हो नहीं सकता। तथा प्रतिष्ठाके समय पहलेके पंच कल्याणकोंके संस्कार सब होने ही चाहिये। प्रतिमाजी तभी प्रतिष्ठित कहलावेंगी। ऐसी प्रतिष्ठित प्रतिमाएं मंदिरोंमें विराजमान रहती हैं इसी कारण उनपर फणाका चिन्ह रहता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि समस्त तीर्थकरोंकी प्रतिमाएं पंच कल्याणकमयी ही होती हैं। इसीलिये उनका पंचामृताभिषेक किया जाता है तथा जल गंधादिकसे स्नान वा विलेपनादिक कर पूजनादिक किया जाता है। जो कोई ज्ञानकल्याणकमय वा तप कल्याणकमय मानते हैं सो सब मिथ्या है।

कोई कोई श्रावक भगवान पार्श्वनाथजीकी प्रतिमा पर फणोंका चिन्ह होते हुए प्रक्षाल अभिषेक पूजन दर्शन वंदन आदि करते समय मनमें अरुचि लाते हैं, कितने ही श्रावक प्रक्षाल करते समय फणाको छोड देते हैं तथा कोई कोई श्रावक फणा सहित

* शांतिनाथ कुंथुनाथ अरनाथ ये तीर्थकर भी थे और चक्रवर्ती भी थे। इस प्रकार तिरसठ शलाका पुरुषोंमें तीन जीवोंकी कमी हुई।

प्रतिमाकी पूजन वा दर्शन नहीं करते सो ठीक नहीं है। उनकी यह क्रिया शास्त्रविरुद्ध और अपने मनकी कल्पनाके अनुसार है।

कदाचित् कोई यह कहे कि हम तो परीक्षाप्रधानी हैं आज्ञाप्रधानी नहीं हैं तो इसका समाधान यह है कि धर्मध्यानके चार भेद वा दश भेद बतलाये हैं उनमें आज्ञाविचय नामका भेद सबसे पहले और सबसे मुख्य बतलाया है। वह व्यर्थ

१। उत्तरपुराणमें लिखा है।

ततो भगवतो ध्यानमाहात्म्यान्मोहसंक्षये। विनाशमगमद्विश्वो विकारः कमठः द्विषः ॥

अर्थ—तदनंतर भगवान ध्यानमें तल्लीन हुये ध्यानके माहात्म्यसे मोहनीयकर्म नष्ट हो गया और मोहनीयके नाश होनेसे कमठ शत्रुका सब विकार नष्ट होगया।

इसके पहले उत्तरपुराणमें लिखा है—

भर्तारमस्थादावृत्य तत्पत्नी च फणाततेः। उपर्युच्चैः समुद्धृत्य स्थिता वज्रातपच्छदम् ॥ १४० ॥ पर्व ७३ ॥

अर्थात्—उसकी देवी पद्मावती अपने फणाओके समूहका वज्रमयी छत्र बनाकर बहुत उंचा ऊपर उठाकर खडी रही।

इससे सिद्ध होता है कि वह वज्रमय फणा पद्मावतीने बनाया। तथा उसी अवस्थामें उनको केवलज्ञान हुआ क्योंकि जबतक वह उपद्रव दूर नहीं हुआ था तबतक तो वे धरणेन्द्र पद्मावती हट ही नहीं सकते थे। तथा उन्होंने जो फणा किया था सो बहुत ऊंचा किया भगवानके शरीरसे उसका संबंध नहीं था। तथा वह उपद्रव मोहनीय कर्मके नाश होनेके बाद हुआ है। इससे सिद्ध है कि वह फणा मोहनीय कर्मके नाश होने तक था। तथा मोहनीय कर्मके नाश होनेपर अन्तर्मुहूर्तमें ही केवलज्ञान हुआ है। आगे इसी उत्तरपुराणमें लिखा है कि केवलज्ञान होनेके बाद वह संवर ज्योतिषी देव शांत हो गया। यथा—

तदा केवलपूजां च सुरेन्द्रा निरवर्तयन। संवरोप्याप्तकालादिलब्धिः शममुपागमत् ॥ १४५ ॥

अर्थात् केवलज्ञान होनेपर इन्द्रोंने पूजा की और काललब्धि प्राप्त होनेसे संवर ज्योतिषी भी शांत हो गया। इससे सिद्ध होता है कि केवलज्ञान प्राप्त होनेतक वह ज्योतिषी शांत नहीं हुआ है। ऐसी अवस्थामें पद्मावती देवी भी उसी तरह रही होगी। यह बात उत्तरपुराणमें लिखी ही है कि पद्मावतीने वह फणा बहुत ऊंचा लगाया था और भगवानके शरीरसे उसका कोई संबंध नहीं था तथापि कमसे कम मोहनीय कर्मके नाश होनेतक तो फणा था ही। अब उसके हटानेका समय वही होना चाहिये जो इन्द्रादिक देवोंके आसन कंपायमान होनेका या आनेका है। जैसा कि १४५ वें श्लोकसे सिद्ध होता है। इसप्रकार यह मूर्ति केवलज्ञान उत्पन्न होनेके समय की ही है।

हो जायगा । भगवान वीतराग सर्वज्ञदेवने अपने केवलज्ञान वा केवलदर्शनके द्वारा अत्यंत सूक्ष्म पदार्थोंका भी निरूपण किया है । उनका जानना वा देखना छद्मस्थ पुरुषोंके ज्ञानगम्य नहीं है। एक जलकी बूंदमें असंख्यात त्रस जीव बतलाये हैं यदि वे कबूतरका शरीर धारण कर उडने लगें तो इस एक लाख योजन व्यासवाले जंबूद्वीपमें भी न समावें। इसीप्रकार पृथिवीकाय आदिमें जीवोंकी संख्या बतलाई है। एक निगोदिया जीवके शरीरमें अनंतानंत निगोदिया जीवोंका निवास बतलाया है। उनमेंसे यदि एक जीवका मरण हो तो सबका मरण हो जाता है। एकका जन्म हो तो सबका जन्म हो जाता है। इनके सिवाय मेरुपर्वत, कुलाचल पर्वत, गंगा सिंधु आदिक नदियां, विदेहक्षेत्र, समुद्र, असंख्यात द्वीप समुद्र, स्वर्ग, नरक, तीनों लोक, अलोक, छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय आदिका वर्णन किया है सो इनमेंसे नेत्रोंके द्वारा वा इंद्रियोंके द्वारा बहुत थोडा देखा वा जाना जाता है। बाकी सब सर्वज्ञगोचर है। छद्मस्थके ज्ञानगोचर नहीं है। यदि उन सबकी परीक्षा कर ही श्रद्धान किया जायगा तो यथार्थ श्रद्धानकी विराधना माननी पडेगी। तथा इसके साथ साथ अनंत संसारका परिभ्रमण स्वीकार करना होगा। सो ही नरेन्द्रसेनकृत सिद्धांतसारसंग्रहकी चौथी संधिमें लिखा है—

जिनोक्तानां हि भावानां श्रद्धानमेकलक्षणम्। शुद्धाशुद्धविमिश्रादि भेदतस्तत्त्रिधा मतम् ॥ १३ ॥
कथमप्यक्षरं यस्तु जिनोदितमनिंदितम्। अन्यथा कुरुते तस्यात्मानंतसंसृतेर्भवेत् ॥ १४ ॥
यस्तु तत्त्वमिदं सम्यक् जीवाजीवादिगोचरम्। विपरीतं करोत्येषः किं स्यात् ज्ञानादिकेवली ॥ १५ ॥

इससे सिद्ध होता है कि परंपरा पूर्वक सनातनसे जो शास्त्रोक्त तथा प्रमाण पुरुषोंके द्वारा विधि चली आ रही है वही करनी चाहिये। अपनी बुद्धिके बलसे केवल संशय धारण नहीं करना चाहिये। जो ऐसा संशय करते हैं वे श्वेताम्बरोंके समान मिथ्यादृष्टि समझे जाते हैं।

एक बात बहुत विचारनेकी यह है कि श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमाजीपर फणाका चिन्ह परंपरा पूर्वक चतुर्थकालसे ही चला आ रहा है उसका वर्णन शास्त्रोंमें जहां तहांपर बहुत मिलता है। उदाहरणके समान थोडासा यहां लिखते हैं। आराधना कथाकोशमें आचार्य पात्रकेसरीकी एक कथा लिखी है। पात्रकेसरीने जब आप्तमीमांसाका पाठ सुना और अष्टशती उसकी टीका देखी तब उनको ब्राह्मणोंके माने हुए (नैयायिक आदिके माने हुए) अनुमानके लक्षणमें संदेह हुआ था। उस समय पद्मावती देवीने रात्रिमें

ही श्री पार्श्वनाथकी मूर्तिके मस्तकपर रहनेवाले सर्पके फणापर अनुमानका लक्षण लिख दिया था और पात्रकेसरीको स्वप्नमें उस मंदिरके दर्शन करनेकेलिये कहा था। पात्रकेसरीने प्रातःकाल होते ही भगवानके दर्शन किये उन लिखे हुए श्लोकोंको देखकर अपना संदेह दूर किया। यह कथा प्रसिद्ध है। इसके सिवाय श्रीमाघनंदि मुनिकृत जयमालामें भी पार्श्वनाथकी स्तुतिमें सर्पके फणाका वर्णन किया है यथा—

फणिमणिमण्डितमण्डपदेहं। पार्श्वनि जगतहत संदेहम्॥

पण्डितप्रवर बनारसीदासजीने लिखा है—

"सजल जलद ननु मुकुट सपत फण" इत्यादि

इस समय सैकड़ों वा हजारों वर्षोंकी प्रतिमा दिखाई पड़ती हैं जिनपर फणाका चिन्ह है। इसलिये ऐसी प्रतिमाओंकी जो मन वचन कायसे अवज्ञा करता है उसे जिनमतका विरोधी समझना चाहिये। इसप्रकार भगवानके पांचों ही कल्याणक पूज्य हैं। केवल एक या दो नहीं।

२२९। चर्चा दोसौ उनतीसवीं।

पहले हुण्डावसर्पिणी कालदोषसे विपरीत आदि पांच प्रकारके मिथ्यात्व बतलाये सो इन पांचों मिथ्यात्वोंका स्वरूप क्या है?

समाधान—इनका विशेष स्वरूप तो जैनग्रन्थोंमें प्रसंगानुसार जहां तहां बहुत लिखा है। तो भी यहां बहुत संक्षेपसे लिखते हैं। पांच मिथ्यात्वोंके नाम ये हैं—

एयंतं संसइयं विवरीयं विणयजं महामोहं। अण्णाणं मिच्छंतं णिदिट्ठ सव्वदरसी ही।

अर्थ—एकांतमिथ्यात्व, संशयमिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, विनयमिथ्यात्व और अज्ञानमिथ्यात्व ये पांचप्रकारके मिथ्यात्व भगवान सर्वज्ञ देवने कहे हैं। अब इनका अलग अलग स्वरूप बतलाते हैं।

जो जीवोंके स्वरूपको क्षणिक बतलाते हैं, यह जीव क्षण क्षणमें बदलता रहता है पहला नष्ट होजाता है और क्षण क्षणमें नया उत्पन्न होता रहता है। इसप्रकार कर्मोंको करनेवाला अन्य जीव है और उनके फल भोगनेवाला अन्य है इसप्रकार प्रत्येक पदार्थोंके स्वरूप क्षणिक माननेवाले एकांत मिथ्यात्वी हैं। ये क्षणिकवादी कहते हैं कि यह जीव पृथिवी जल तेज वायु आकाश इन

तत्त्वोंसे बना है अथवा पच्चीसतत्त्वोंसे बना है। मछली, हिरण, बकरा, भैंसा, सूअर, मुर्गा, कबूतर, लावा, तीतर, मोर आदि इन जीवोंके भक्षण करनेमें कोई पाप नहीं है। इसप्रकार कहनेवाले अत्यन्त दुःख देनेवाली मिथ्याबुद्धिको धारण करनेवाले तथा धूर्तोंके कहेहुये कल्पित वचनोंको धारण करनेवाले सब एकांतमिथ्यात्वी समझने चाहिये।

जो केवली भगवानको कवलाहार मानते हैं, जो स्त्री पर्यायमें महाव्रत धारण करना, केवलज्ञानका उत्पन्न होना और उन स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति होना मानते हैं। जो कहते हैं कि श्री महावीर स्वामीका गर्भ किसी ब्राह्मणीके उदरमें हुआ था फिर इन्द्रने वहांसे उठाकर त्रिशलाके उदरमें रक्खा। श्रीमहावीरस्वामीको समवसरणमें भी उपसर्ग हुआ। समवरणमें विराजमान रहते हुये श्री महावीरस्वामीके रक्तातिसार रोग हो गया। इसप्रकार जो विपरीत कथन करते हैं जो जिनलिंगको धारण करनेवाले महाव्रती साधुओंके भी दंड वस्त्र पात्र आदि चौदह उपकरण मानते हैं। इसप्रकार माननेवाले श्वेताम्बर सब संशयमिथ्यात्वी समझने चाहिये। इनका विशेष वर्णन श्री भद्रबाहुचरित्रसे तथा वसुनंदिश्रावकाचारकी वचनिकासे तथा और भी अनेक शास्त्रोंसे स्पष्ट जान लेना चाहिये।

जो जीवोंकी हिंसामें पुण्य मानते हैं, यज्ञमें बकरा भैंसा घोडा मनुष्य आदिको मार कर होमते हैं, जो देवताओंपर बकरा भैंसा आदि जीवोंको मार बलिदान देते हैं तथा इसीप्रकारके जीवघात करनेमें जो पुण्य मानते हैं। जैसा कि उनके यहां लिखा है—

देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक्।

अर्थात् देवता और पितरोंको बलिदान देकर फिर उस मांसके खानेमें कोई दोष नहीं है इस प्रकारके यज्ञ वा बलिदान करने वा करानेवालोंको स्वर्गकी प्राप्ति होना मानते हैं, जो तीर्थोंपर स्नान करनेमात्रसे आत्माकी शुद्धि मानते हैं। जो क्रूर कर्म करनेवाले वा महा पापरूप आरंभ करनेवाले कुदेवोंकी पूजा भक्ति करते हैं, कामी क्रोधी लोभी तथा महा आरंभ परिग्रहधारी गुरुओंकी सेवा भक्ति करते हैं। जो गाय, हाथी, घोड़ा, बैल, भैंस, भैंसा आदि पशुओंकी पूजा करते हैं, जो दुष्ट सर्प कौआ, उल्लू कुत्ता आदि पशुओंकी पूजा करते हैं जो अपने माता पिताके मरण होनेके बाद जल तिल आदि पदार्थोंसे तर्पण करते हैं, श्राद्ध करते हैं, पिंडदान करते हैं। इत्यादि ब्राह्मणोंके बहकाये हुये जो विना विचारे कार्य करते हैं सो सब विपरीतमिथ्यात्व है।

जो देव, कुदेव, गुरु, कुगुरु, धर्म, कुधर्म, पात्र, अपात्र आदि सबको एकसा मानकर सबका एकसा विनय करते हैं सबकी एकसी भक्ति, सेवा, नमस्कार, पूजन आदि करते हैं ऐसे तापसियोंको विनयमिथ्यात्वी समझना चाहिये।

जो मद्य, मांस, सहत, पांच उदंबर, बाईस अभक्ष्य आदिके खानेके विचारसे रहित हैं ऐसे म्लेच्छ आदिसे उत्पन्न हुआ धर्म तथा शून्यवादियोंसे उत्पन्न हुआ धर्म सब अज्ञानमिथ्यात्व है । इसप्रकार पांचो मिथ्यात्वोंका थोडासा स्वरूप बतलाया सो ही प्रश्नोत्तरोपासकाचारमें लिखा है—

कथ्यते क्षणिको जीव यत्र तत्त्वं च सर्वथा । अन्यः कर्म करोत्येव भुंक्ते चान्यो हि तत्फलम् ॥
मत्स्यादिभक्षणे दोषो नास्ति दुःखाकरं खलम् । मिथ्यात्वं विद्धि तन्मित्र कुबोधमतकल्पितम् ॥
श्रूयते यत्र तीर्थेशे चाहारो मुक्तिसंभवम् । स्त्रीणां गर्भापहारं च वर्द्धमानस्य दुःखदम् ॥
यष्टिकवस्त्रपात्रादि सर्वं धर्मस्य साधनम् । तद्धि संशयमिथ्यात्वं भवेत्श्वेतपटव्रजम् ॥
पुण्यं जीववधाद्यत्र शुद्धिः स्नानेन कथ्यते । क्रूरकर्मरताः देवाः गुरवः कामलालसाः ॥
पूजनं पशुदुष्टार्हीस्तर्पणं मृतसज्जलात् । विपरीतं च तज्ज्ञेयं मिथ्यात्वं द्विजसंभवम् ॥
विनयो गीयत यत्र पात्रापात्रेषु प्रत्यहम् । देवादेवेषु तद्विद्धि मिथ्यात्वं तापसव्रजम् ॥
अज्ञानजं कुमिथ्यात्वं भवेन्म्लेच्छादिगोचरम् । खाद्याखाद्य परित्यक्तविचारं शून्यवादिजम् ॥

इसप्रकार इन मिथ्यात्वोंका स्वरूप है ।

श्रीपार्श्वनाथजीके समयमें सरयू नामकी नदीके किनारे एक पलास नामके गांवमें रहनेवाले पिहितास्रव गुरुके शिष्य बुद्धिकीर्तिने एकांत नामका मिथ्यात्व स्थापन किया था । उस एकांत मिथ्यात्वमें आत्माको क्षणिक माना है और मांसभक्षणादिकमें दोष नहीं बतलाया है । इसप्रकार एकांत मिथ्यात्वकी उत्पत्ति हुई है। सो ही लिखा है ।

सिरि पासनाह तित्थे सरऊ तीरे पलास णयरत्थो । पिहियासवस्स सिस्सो पहासदो बुद्धिकित्तिये ॥

इसी पंचमकालमें महाराज विक्रमके परलोक जानेके एकसौ छत्तीस वर्ष बाद सोरठ नामके देशके वल्लभीपुर नगरमें अर्द्धफालक नामके मतसे बना हुआ श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ था । वही संशय मिथ्यात्व है । सो ही लिखा है—

पंचसया छत्तीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तेसु । सोरट्ठे वलहीए उप्पणो सेवडो संघ ॥

विपरीत मिथ्यात्वकी उत्पत्ति आगे बतलावेंगे।

श्री ऋषभदेवके पौत्र मारीचको आदि लेकर सब तीर्थंकरोंके समयमें अनेक तापसियोंने विनय मिथ्यात्व चलाया है। सो ही लिखा है—

सव्वेसु तित्थेसु वेणइयाणं समुज्झ चो अत्थि । स जडा पुंडीय सिस्सा मिहिणो ण गायके इम ॥
दुट्ठं गुणवंतं विय समया भत्तिण सव्वदेवाणं । णमण दंडो व जणेयरि कलियंते हि मूढे हिं ॥
उम्हइ जिण पुत्तपुत्तो मिच्छत्तकलंकि दो महामोहो । सव्वेसिं भट्ठाणं धुरि गुणी उपत्तसरी हिं ॥

श्रीमहावीर स्वामीके तीर्थमें बहुश्रुतके उपासकके संघकी सीमा ऐसे मस्तक पूर्ण नामके आचार्यने इस लोकमें अज्ञान मिथ्यात्व अर्थात् म्लेच्छ वा मुसलमान आदि यवनोंका मत तथा शून्यवादियोंका मत स्थापन किया है। इस अज्ञान मिथ्यात्वमें अज्ञानताकी मुख्यता है। ये लोग मुक्त जीवके भी ज्ञान नहीं मानते। उसे भी अज्ञान रूप ही मानते हैं। ये लोग भवभवमें जीवोंका उत्पन्न होना और मरना नहीं मानते। ये सब जीव शुद्ध बुद्ध कर्ता और एकरूप हैं तथा यह लोक सब शून्य है ऐसा वर्णन करते हुए अज्ञान पंथ स्थापन किया है। इसप्रकार अज्ञान मिथ्यात्वकी उत्पत्ति है। सो ही लिखा है—

सिरि वीरनाह तित्थे बहुसुदोपाससंघगणिसीमो । मक्कड पूरण साहू अण्णाणं भासिए लोए ॥
अण्णाणादो मुक्खो णाणं णत्थित्ति मुत्तजीवाणं । पुणरागमणं भमणं भवे भवे णत्थि जीवस्स ॥

श्री ऋषभदेवके भरत थे और भरतका पुत्र मरीच था। जब महाराज वृषभदेवने दीक्षा ली थी तब उनके साथ बिना समझे तथा बिना गुरु आम्नायके केवल ऋषभदेवकी भक्तिसे मारीचको आदि लेकर चार हजार राजाओंने दीक्षा ली थी। वह दीक्षा केवल देखा देखी ली थी। तदनंतर वे सब मुनि क्षुधा तृषा शीत उष्ण दंशमसक आदि परीषहोंसे पीडित होकर तथा अपने मनसे ही उस संयमकी विराधना कर अनेक भेषोंको धारण करने लगे। कोई त्रिदंडी हुए, कोई परिव्राजक हुए। इसप्रकार उन्होंने अपने मनके अनुसार जुदे जुदे अनेक भेष बनाकर अनेक मत स्थापन किये। वे सब कंद, मूल, पत्र, पुष्प, फल और बिना छना जलका आहार

लेने लगे। उन सबमें मारीच मुख्य था सो उसने अपनी बुद्धिसे सांख्य और पातंजलि नामके दो शास्त्र बनाकर सांख्यमत और पातंजलि मतका स्थापन किया। सो ही लिखा है—

विन्नगीय मक्खं किच्चा विणासयं सव्वसंयमं लीए। तत्तो पत्तासे वे सत्तमणरयं महाघोरं॥

उसी समय महाराज भरतने ब्राह्मण वर्णको स्थापन किया था। वे ब्राह्मण कालदोषसे दशवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथके समयमें जैनधर्मके श्रद्धान ज्ञान और आचरणसे विमुख होगये थे। तथा जैनधर्मके द्रोही और निंदक बन गये थे। उसी समय एक मुंडशालायन नामके ब्राह्मणने धर्मके लिये ब्राह्मणोंको गोदान सुवर्णदान आदि दश प्रकारके दान देनेकी स्थापना की थी। उस समय उन्होंने और भी कितने ही प्रकारकी विपरीतता स्थापन की थी। तदनंतर श्रीमुनिसुव्रतनाथके समयमें एक क्षीरकदंब ब्राह्मणके पुत्र पर्वतने महा विपरीत मिथ्यात्वका स्थापन किया। उसने विचित्र यज्ञ कर्म करनेका विधान बतलाया। यज्ञमें अज अर्थात् जो बोनेसे फिर उत्पन्न न हों ऐसे तीन वर्षके पुराने चावल वा जौसे तो होम करनेका निषेध किया और अपने चलाये हुये झूठे और विपरीत मतके अनुसार उस यज्ञकी अग्निमें अज अर्थात् बकरेके होम करनेका विधान बतलाया। इसप्रकार उसने महा-पापरूप बचनोंका स्थापन किया। उसी समय उसी क्षीरकदंबके शिष्य नारद नामके ब्राह्मणने उस पर्वतके मतका खंडन किया परन्तु राजा बसुने पर्वतकी पक्ष लेकर नारद ब्राह्मणको झूठा करना चाहा। परन्तु वह राजा बसु उस झूठके पापसे उसी समय सिंहासन समेत पृथ्वीमें धस गया और मरकर नरक पहुंचा। इस प्रकार विपरीत मिथ्यात्वकी उत्पत्ति हुई है। यह कथन उत्तर-पुराण, पद्मपुराण, बृहद्धरिवंशपुराण पुण्यास्त्रव आराधनाकथाकोश तथा और भी अनेक शास्त्रोंमें लिखा है। वहांसे विस्तारके साथ जान लेना चाहिये।

किसी एक दिन अयोध्या नगरके राजा आनंद भगवानकी प्रतिमाकी पूजन करनेमें संदेह हुआ था वह सोचने लगा था कि यह भगवानकी मूर्ति धातु और पाषाणकी बनी हुई है। ये सब मूर्तियां जड हैं अचेतन हैं और अजीव हैं। इनसे स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। इसी संदेहमें पडकर उसने मुनिराजसे पूछा। मुनिराजके उपदेशसे उसका सब संदेह दूर होगया। उस समय उन मुनि महाराजने उस राजाको तीनों लोकोंमें विराजमान श्रीजिन मंदिरोंका और उनमें विराजमान श्रीजिन प्रतिमाओंका स्वरूप बतलाया था। उन्होंने सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतिषी देवोंके विमानोंमें विराजमान श्रीजिन मंदिर और जिन प्रतिमाका वर्णन सबसे पहले किया था फिर अन्य सब मंदिर और प्रतिमाओंका वर्णन किया था। उसको सुनकर वह राजा उस दिनसे प्रति दिन

सूर्यबिंबमें विराजमान जिनप्रतिमाको प्रणाम करने लगा और अर्घ देकर पूजन करने लगा। तथा अन्य जिन प्रतिमाओंकी पूजा भी वह बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ करने लगा। उसने सूर्यके विमानके आकारका एक नवीन मंदिर बनवाया उसमें जिनप्रतिमा विराजमान कीं और फिर उनकी पूजन वह बड़ी भक्तिके साथ प्रतिदिन तीनों समय करने लगा। लोगोंने उस समय राजाके वास्तविक अभिप्रायको तो समझा नहीं केवल राजाकी रीतिको देखकर सूर्यकी ओर पूजनके लिये जलांजलि देकर नित्य अर्घ देने लगे। इस प्रकार राजरीतिको देखकर सूर्यको अर्घ देना चल पड़ा जो आजतक चला आ रहा है। लिखा भी है "यथा राजा तथा प्रजा" इस प्रकार यह विपरीत मिथ्यात्व चला है। सो ही पार्श्वनाथपुराणमें लिखा है—

इत्यादि हेतुदृष्टान्तैरुत्पाद्य निश्चयं शुभम्। भूपतेः श्रीजिनार्चादौ धर्मपूजादिकं तथा॥ ७०॥
तत्कथावसरे लोकत्रयचैत्यालयाकृतीः। सम्यग्वर्णयितुं वांच्छन् विस्तरेण महाद्भुतान्॥ ७१॥
प्रागादित्यविमानस्थजिनेन्द्रभवनं महत्। स्वर्णरत्नमयं दिव्यं महाभूत्युपलक्षितम्॥ ७२॥
भानुकोट्यधिकातीव्र तेजो बिम्बौघमंभृतम्। मुनीशो वर्णयामास सूर्यदेव नमस्कृतम्॥ ७३॥
कृत्वा साधारणीं भूतिं महतीं जिनधामजाम्। श्रुत्वा वहन परां श्रद्धामानन्दोपि मुदान्वितः॥ ७४॥
दिनादौ च दिनान्ते श्रीजिनेशां रविमंडले। स्वकरौ कुड्मलीकृत्य करोति स्तवनं परम्॥ ७५॥
आनम्रमुकुटो धीमांस्तद्गुणग्रामरंजितः। धर्ममुक्त्यादिसिद्ध्यर्थं ज्ञानादिगुणसंचयैः॥ ७६॥
पुनरर्कविमानं सः शिल्पिभिर्मणिकांचनैः। जिनेन्द्र भवनोपेतं कारयामास ह्यद्भुतम्॥ ७७॥
चतुर्मुखं रथावर्तं सर्वतोभद्रमूर्जितम्। कल्पवृक्षं च दीनेभ्यो ददद्दानमवारितम्॥ ७८॥
तद्विलोक्य जिनाः सर्वे तत्प्रामाण्य स्वयं च तत्। स्तोस्तुमारेभिरे भक्त्या पुण्याय रविमंडलम्॥ ७९॥
अहो लोका प्रवर्त्तन्ते नृपाचारेण भूतले। सद्विचारे न जानन्ति कार्याकार्यं शुभाशुभम्॥ ८०॥
तदा प्रभृति लोकस्मिन् बभूवार्कोपसेवनं। मिथ्याकारं च मूढानां विवेकविकलात्मनाम्॥ ८१॥

इसके सिवाय जैनमतमें भी विपरीत मिथ्यात्व उत्पन्न हुआ है आगे उसीका थोडासा वर्णन करते हैं।

सिरिपुज्जपादसिस्सो दाविडसंघस्स कारणं दुट्ठो। णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासत्थो ॥ १ ॥
अप्पासुयचणयाणं भक्खण दोसो ण वज्जिओ मुणिहिं। परिरइयं विवरीयं विसेसियं वयण वोज्जं ॥ २ ॥
वीएसु णत्थि जीवो ऊणवणं णत्थि फासुयं णत्थि। सावज्जं णहु मण्णइ ण मणइ गिहकप्प अट्ठे ॥ ३ ॥
कच्छे खेत्तवसही वाणिज्जं कारिऊण जीवंतो। ण्हाइंतो सीयलणीरे पावं पउरं समज्जेरी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री पूज्यपाद मुनिका वज्रनंदि नामका एक दुष्ट शिष्य था उसने प्राभृतवेदी नामका महाशास्त्र बनाया और द्राविड नामके संघकी स्थापना करनेके लिये अनेक प्रकारका विपरीत कथन किया। उसने बतलाया कि कच्चे चनोंके खानेमें सचित्त द्रव्यके समान पाप नहीं लगता अर्थात् कच्चे चनेमें जीव नहीं है वह अजीव है अचित्त है इसलिये भक्षण करने योग्य है। इस-प्रकार वचन स्थापन कर विपरीतमिथ्यात्वको पुष्ट किया। इसी प्रकार बीजमें भी जीवका निषेध किया। उसने बतलाया कि गृहस्थोंको अन्न जल खेत व्यापार आदिके कामोंमें होनेवाले थोडेसे पाप गिनने ही नहीं चाहिये। शीतल कच्चे जलसे स्नान करनेमें कोई पाप नहीं है इस प्रकार उसने बहुत कुछ विपरीत मिथ्यात्वका प्रचार किया।

सिरिवीरसेणसिस्सो जिणसेणो सयलसत्थ विण्णाणी। सिरि पउमणंदी पच्छा चउसंघ समुद्धरण धीरो ॥१॥
तस्स य सिस्सो गुणवंतो गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो। परमाबुद्धी सामी महातवो भाव लिंगोय ॥२॥
तेण पुणोवि य मच्चु णाऊण मुणी स विणयसेणस्स। सिद्धंतं घोसित्ता सयमत्थं जाण्ण लोयस्स ॥३॥
आसी कुमारसेणो णंदि पडंविणयसेण दिक्खीय। सण्णासभंजणेणय अगहिय पुण दिक्खिओ जाऊ ॥४॥
परिवज्जिऊण पीछं चमरं घित्तूण मोहकलिदेण। ऊमग्गं संकिलिसं वागडविसयेसु सव्वेसु ॥५॥
इत्थीणं पुण दिक्खा खुल्लयलोयस्स वीरचरियंत्तं। ककस्सकेसगहणं छट्ठं गुणव्वदं णाम ॥६॥
आयम सत्थपुराणं पायच्छित्तं च अण्णहा किंपि। विरइत्ता मिच्छत्तं पवट्टियं मूढलोएसु ॥७॥

सो सवणसंघवज्झो कुमारसेणो हु समयमिच्छत्तो। चत्तोवसमो रुद्दो कट्ठं संघं परूवेदी ॥ ८ ॥
सत्तसये तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स। णंदियरे वरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥ ९ ॥
णंदियरे वरगामे कुमारसेणो य मिच्छविण्णाणी। कट्ठो दंसणभट्ठो जादो सल्लेहणा काले ॥ १० ॥

अर्थ—राजा विक्रमके मरण होनेके सातसौ वर्ष बाद नंदिवर नामके गांवमें विनयसेन मुनिके शिष्य कुमारसेन मुनिने पहले अपने सन्यासका भंग किया फिर मूलसंघसे दूसरा काष्ठसंघ नामका एक संघ स्थापन किया। उसका क्रम इसप्रकार है। श्री आचार्य वीरसेनके शिष्य श्री जिनसेनाचार्य हुए। वे जिनसेनाचार्य समस्त शास्त्रोंके जाननेवाले थे। उनके बाद श्री पद्मनंदि नामके आचार्य हुए जो चारों प्रकारके संघको धारण करनेके लिये बडे धीर वीर थे। उनके शिष्य श्री गुणभद्राचार्य थे जो बडे ही गुणवान् थे, दिव्यज्ञानसे परिपूर्ण थे, परमबुद्धिके स्वामी थे, महा तपस्वी थे और भावलिंगी थे। गुणभद्राचार्यके शिष्य विनयसेन थे जो समस्त पदार्थोंको जानते थे। उन विनयसेन मुनिका शिष्य कुमारसेन नामका मुनि हुआ। जिसने गुरुसे सन्यास धारण किया और फिर उसका भंग किया। तदनंतर उसने अगृहीत दीक्षा ली अर्थात् गुरुके पास छेदोपस्थापना किये विना ही स्वयं दीक्षा ले ली। उसने मयूर पीछीका त्याग कर दिया और सुरागायके पूछके बालोंकी पीछी ले ली। उसने उन्मार्ग अर्थात् सनातन मोक्षमार्गसे विरुद्ध काष्ठसंघका स्थापन किया और मूलसंघ दिगंबराम्नायके विरुद्ध कितनी ही बातोंका प्रचार किया। उससे स्त्रियोंको पुनः दीक्षा लेनेका अधिकार दिया। क्षुल्लक श्रावकोंको वीरचर्याका अधिकार दिया और कठोर केशोंके ग्रहण करनेका विधान बतलाया। इसप्रकार उसने और भी कितनी ही विपरीत बातें स्थापन कीं। इसके सिवाय आगम, शास्त्र, पुराण, प्रायश्चित्त आदि शास्त्रोंमें भी अन्यथा वर्णन कर अज्ञानी लोगोंमें प्रवृत्ति की। इसप्रकार कुमारसेन मुनिने मुनियोंमें रुद्रके समान प्रकाष्ठसंघकी वृत्तिकी और यह काष्ठसंघ मूलसंघसे अलग स्थापन हुआ। इसके कुछ वर्ष बाद इसी काष्ठसंघमें और भी विपरीतता हुई। सीताको जनककी पुत्री बतलाया, अभिषेकमें पहले घृताभिषेक बतलाया। काष्ठकी प्रतिमा बनाना, सीताका दंडकवनमें हरण होना, पूजामें अष्टद्रव्योंमें अक्षतके पहले पुष्प चढाना पुष्पोंके बाद अक्षत चढाना। श्रीनेमिनाथका द्वारावतीमें जन्म होना इत्यादि कितनी ही बातें मूलसंघसे विरुद्ध स्थापन कीं। इसप्रकार संक्षेपसे काष्ठसंघका वर्णन किया।

इसीप्रकार विक्रम सम्वत् सात सौ पांचमें कल्याण वर नामके नगरमें श्वेतांबर मतमेंसे एक यापुलीय संघ प्रगट हुआ। इन्होंने

अपने साधुओंका स्वरूप तो नग्न ही रक्खा पर आचरण सब श्वेतांबरोंके समान शिथिल ही रक्खे। इसका विशेष वर्णन भद्रबाहु चरित्रमें लिखा है। यथा—

कल्लाणे वरणयरे सत्तसयं चउत्तरे जादे। जावलियसंघभावो सिरिकलसादोवि सेवडादो॥

इसके दो सौ वर्ष बाद मथुरा नगरमें माथुरान् नामके गुरुके शिष्य रामसेन नामके साधुने निपिच्छ संघ स्थापन किया। उसमें उन्होंने कमंडलु और पीछीके ग्रहणको भी परिग्रह बतलाया। सो ही षट्पाहुडमें लिखा है—

जिहिजाइरूपसरसो तिलतुसमत्तसु अत्थेसु। जहि लइ अप्प बहुल तत्तो पुण जाइ णिगोदं॥

इत्यादि बचनोंको ग्रहणकर मुनिका स्वरूप पीछीरहित बतलाया तथा सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्वकी स्थापना करते हुये उसने ममत्व बुद्धिसे प्रतिमामें भी विपरीतता की स्थापन की प्रतिष्ठा रहित प्रतिमाको ही पूज्य बतलाया गुरुओंको पीछी रहित बताया इसप्रकार उसने संघको नाश करनेका विचार किया। इसप्रकार निःपिछि मत स्थापन हुआ। इससमयमें भी कितने ही लोग विना समझे मुनिको पीछी रहित ही मानते हैं। पीछीको परिग्रह कहते हैं। सो उनको भी मूलसंघसे बाह्य समझना चाहिये। सो ही लिखा है—

तत्तो दुसएतीदे महुराए माहुराण गुरुणाहो। णामेण रामसेणो णिपिच्छं वण्णयं तेण॥
सम्मत्तपयडमिच्छत्तं कहियं जं जिणंदर्विवेसु। अप्पपर णिट्ठएसु य ममत्तबुद्धिए परिवसणं॥
ऐसो मम दो भु गुरु अवरो णरियीति त्तिरपरिरमणं। संग गुरु कुलाहिमाणो इयरेसु विभंगकरणं च॥

इसप्रकार निःपिच्छ मतकी उत्पत्ति बतलाई।

श्रीमहावीर स्वामीके अठारहसौ वर्ष बाद दक्षिण देशके पुस्खल नगरमें बारिचन्द्रमुनिने भिल्लुसंघकी स्थापना की। उसने उसमें सोनीय गच्छ स्थापन किया। प्रतिक्रमणमें तथा अन्य कितने ही क्रिया चरणोंमें उसने मूलसंघसे विपरीत बातें निरूपण कीं। सो ही लिखा है—

दक्खिणदेसे विज्झे पुर कलए वारचंद मुणिणाहो। अट्ठारसएतीदे भिल्लुघं संघ परूवेदी॥

सो णियगच्छं किचा पडिकमणं तहय भिण्णकरि आऊ। वण्ण वण्ण निवाई जिणवग्गं सुट्ठुमिहरेदे ॥

इसप्रकार भिल्लुसंघकी उत्पत्तिका वर्णन किया।

इसप्रकार पंचमकालमें जैनमतमें भी विपरीत मिथ्यात्वकी उत्पत्ति हुई है। उन सबमें उनके स्थापन करनेवालोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सिद्धांतादिक शास्त्रोंमें मूलसंघसे विरुद्ध विपरीत बातें निरूपण की हैं। सो ही नीतिसारमें लिखा है—

पूर्वं श्रीमूलसंघस्तदनु सितपटः काष्ठसंघस्ततो हि
तत्राभूद् द्राविडाख्यं पुनरजनि ततो यापुलीसंघ एकः।
तस्मिन् श्रीमूलसंघे मुनिजनविमले सेननंदी च संघौ
स्यातां सिंहाख्यसंघो भवदुरुमहिमा देवसंघश्चतुर्थः ॥
कियत्येपि ततोऽतीते काले श्वेताम्बरोऽभवत्। द्राविडो यापनीयश्च केकीसंघश्च नामतः ॥
केकीपिच्छः श्वेतवासः द्राविडो यापनीयकः। निःपिच्छश्चेति पंचैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ॥
स्वस्वमत्यनुसारेण सिद्धांतव्यभिचारणम्। विरचय्य च जैनेन्द्रं मार्गं निर्भेद यांति भो ॥ ४ ॥

अर्थ—मूलसंघ तो अनादि निधन है उसके पीछे अर्द्धफाल्कीके द्वारा श्वेताम्बर गच्छ उत्पन्न हुआ। उसके बाद काष्ठासंघ उत्पन्न हुआ। उसके कितने काल बाद श्वेताम्बर धर्म सेवड़ासंघ, प्रकट हुआ। तदनंतर द्राविडसंघ, यापनीयसंघ, केकीसंघ प्रकट हुए। केकी, श्वेताम्बर द्राविड यापनीय निःपिच्छ ये पांचों संघ जैनाभास कहलाये। इनका बाह्य लिंग तो जैनियोंका रहा परन्तु क्रिया आचरण आदि सब शिथिल और हीन बने रहे। इनका श्रद्धान ज्ञान आचरण सब मूलसंघसे विरुद्ध है इसलिये इनको जैनाभास कहते हैं। इन पांचों जैनाभासोंके आचार्योंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार अपने सिद्धांतमें दोष उत्पन्न करनेवाले विरुद्ध बातें निरूपण की और अपने संघकी स्थापना की सो सम्यग्ज्ञानियोंको श्रद्धान करने योग्य नहीं है।

इन सबके पीछे भोपाल नामके नगरमें सिरोज (मेलसा) गांवका रहनेवाला ताराचंद नामका श्रावक था। वह बडा मानी अधोमतिका पात्र, महा मिथ्यात्वी था। किसी एक दिन वह अपने पिताके साथ विदेशके लिये चला। उसके पिताके बगलमें

नित्य पूजन करनेका नियम था। इसलिये उसने अपने साथ श्री जिनप्रतिमाजी ले रक्खी थीं। मार्गमें प्रातः कालके समय किसी नदीके किनारे उतरे। पिताने वह प्रतिमाजी और पूजनकी सामग्री आदि सब अपने पुत्रके पास रखदी और वह स्वयं शौच होनेके लिये बाहर गया। ताराचंदने अपने पिताको अपने मतमें दृढ करनेके लिये वे प्रतिमाजी और पूजनकी सब सामग्री उस नदीमें अगाध जलमें डुबोदी। पिताने आते ही सामग्री आदि पूछी तब ताराचंदने कहा कि तुम्हारे दर्शन और पूजा करनेका दृढ नियम है तो भगवान आप आकर मिल जायंगे। यदि जिनेन्द्रदेव सच्चे हैं तो वे जलसे निकलकर तुम्हारा धर्म रख लेंगे। हमें भी तो देखना है तुम्हारे भगवान कैसे हैं। ताराचंदकी यह बात सुनकर पिताने अन्न जलका त्याग किया और सन्यास धारण कर मरण किया। पिताके मर जाने पर ताराचंदने उनको भी उस अगाध जलमें डुबा दिया। तदनंतर उसने एक नवीन भाषामें छन्दोबद्ध शास्त्र बनाया। उसमें धर्मका स्वरूप तथा कथाएं आदि तो जनधर्मसे मिलती जुलती लिखीं। परन्तु श्रीमंदिरोंमें विराजमान जिन-प्रतिमाओंको अचेतन और जडरूप बतलाकर उनका निषेध किया तथा कितने ही मन्दिरोंमेंसे प्रतिमाएं उठवा दीं और उन वेदियोंमें बड़ी विनयके साथ केवल शास्त्र विराजमान किये। वे लोग नित्य उन शास्त्रोंकी पूजा करने लगे उनको बांचने लगे और उन पर नैवेद्य चढाकर उसका प्रसाद बांटने लगे और खाने लगे। उन्होंने जिनप्रतिमाके दर्शन बंदन पूजन आदिका निषेध किया और जिनप्रतिमाके समान केवल शास्त्रोंकी ही पूजा भक्ति करने लगे। यदि कोई उनसे इसका कारण पूछता है तो वे कहते हैं कि हमारे यहां एक तारणस्वामी हुए हैं उन्हींका चलाया हुआ यह धर्म है।

ये तारणपंथी लोग भैंसके सींग समान हैं अथवा रोडीकी मलिन पृथ्वीके समान हैं। भैंसके सींग और रोडीकी मलिन पृथ्वी ऊपरको नहीं जाती। टेडी ही जाती है। कोमल पृथ्वी ही ऊपरको आती है। इस प्रकार उनके लिये भ्रष्ट दृष्टांत दिया जाता है। जैसे वे हैं वैसे ही उदाहरणके द्वारा उनको उपमा मिली है। जैसे लोकमें कहावत है "जैसी शीतला देवी वैसे ही उसको गधेकी सवारी।" लिखा भी है—

यादृशी शीतला देवी तादृशो खरवाहनः।

प्रश्न—यहां शीतलाका उदाहरण दिया सो इस उदाहरणसे क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—स्कंधपुराणमें लिखा है—

नमस्ते शीतला देवि सूर्यालंकारमस्तके। सस्मिता च लंबौष्ठी च रासभस्था दिगम्बरी॥

करे तु मार्जनोपेता..

अर्थात् जिसका मस्तक सूर्यसे सुशोभित होरहा है जो मंदमंद हंस रही है जिसका होठ लंबा है जो गधेपर बैठी है, नग्न है और जिसके हाथमें बुहारी है। ऐसी शीतला देवी है उसके लिये नमस्कार हो। इसका अभिप्राय यह है कि जैसी वह देवी थी वैसी ही उसको सवारी मिली। उसीप्रकार जैसे वे तारणपंथी थे वैसा ही उनके लिये भैंसके सींगका उदाहरण दिया गया है।

उन तारणपंथियोंसे यदि कोई पूछता है कि ये तारण स्वामी कौन हुए हैं तो वे उत्तर देते हैं कि श्रेणिकजी महाराज पहले नरकसे निकलकर तीर्थंकर रूप प्रगट हुए हैं। इस प्रकार उन्होंने अनेक प्रकार विरुद्ध वचनोंके द्वारा विपरीत मिथ्यात्व स्थापन किया है और उसका नाम तारणपंथ रक्खा है। यह तारणपंथ समैया जातिमें चला आ रहा है, समैया जातिका अर्थ यह है कि इनमें कोई जुदी जुदी जातियोंका व्यवहार नहीं है। इनके धर्ममें जो कोई शामिल हो जाता है चाहे वह नीच जीतिका हो वा ऊंच जातिका हो वह वही समैया कहलाता है। उसीके साथ ये लोग रोटी बेटी आदिके देने लेनेका व्यवहार कर लेते हैं। इसप्रकार यह तारण स्वामीके मतकी तारणपंथकी उत्पत्ति एक समैयाके मुखसे सुनकर लिखी है। सो समझ लेनी चाहिये।

पहले जो अर्द्धफाल्कीका श्वेताम्बर मत लिख आये हैं उसमें भी कितनी ही विपरीत बातें उत्पन्न हुई, उनको जाननेके लिये थोडीसी यहांपर भी लिखते हैं।

श्रीमहावीर स्वामीके मोक्ष गये बाद श्रीगौतम स्वामी सुधर्माचार्य, और जंबूस्वामी ये तीन तो केवली हुए। ये तीनों केवली बासठ वर्षमें हुए। तदनंतर सौ वर्षमें विष्णुकुमार, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पांच द्वादशांगके धारक श्रुत-केवली हुए। यहांतक भगवानके मोक्ष जानेके बाद एकसौ बासठ वर्ष व्यतीत हुए थे। इनमेंसे पांचवें श्रुतकेवली भद्रबाहुके समयमें उज्जयिनी नगरीमें राजा चन्द्रगुप्त राज्य करता था। उसने रात्रिमें कल्पवृक्षकी शाखाका भंग होना आदि महा अशुभकी सूचना देनेवाले सोलह स्वप्न देखे। प्रातःकाल उनके फल सुननेकी इच्छासे कुछ चिंतवन करता हुआ बैठा ही था कि इतनेमें ही किसीने आकर भद्रबाहुके आनेकी बधाई दी। मुनिराजको आये हुए जानकर राजाको बहुत ही हर्ष हुआ। उसने मुनिराजके समीप जाकर उनके दर्शन किये, वंदना की, पूजा की और धर्मवृद्धि ग्रहण कर लेनेके बाद उसने रातमें देखे हुए सोलह स्वप्नोंका फल पूछा। भद्रबाहुने भी राजाके सामने उनके होनहार फल कहे। भद्रबाहुने यह भी समझ लिया कि यहांपर बारह वर्षका महा दुर्भिक्ष पडेगा। उनके साथ चौवीस हजार साधुओंका संघ था उन सबसे भद्रबाहुने ये समाचार कहे। तथा कहा कि यहां संयम

पलना कठिन है इसलिये संयमकी रक्षाके लिये अन्य देशमें चलना चाहिये। आचार्यकी यह बात सुनकर बारह हजार मुनि तो उनके साथ हो लिये, और बाकीके बारह हजार मुनि सेठ कुवेरमित्र, जिनदास, माधवदत्त और बंधुमित्र आदि शेठोंके आग्रहसे वहींपर रहगये। दुष्कालके पडते ही वहांपर बहुतसे लोग बाहरसे आगये जिससे ऊपर लिखे शेठोंके घरका सब अन्न निवट गया।

ज्यों ज्यों दुष्काल भीषण होता गया त्यों त्यों कंगाल और दरिद्रोंकी तथा मांगनेवालोंकी संख्या बढती गई। उनके कारण मुनियोंके आहारमें भी विघ्न होने लगा। किसी एक दिन रामलाचार्य आदि कितने ही साधु आहार लेकर बनमें जा रहे थे परंतु मार्गमें उन मांगनेवाले कंगलोंने किसी मुनिका पेट फाड डाला और उनके पेटमेंसे खाया हुआ अन्न निकालकर भक्षण कर गया। इस बातको सुनकर सब शहरमें हाहाकार मच गया। तब कुवेरमित्र आदि शेठोंने उन मुनियोंसे प्रार्थना की कि महाराज आप बनमें रहना छोड दीजिये और नगरमें रहिये। तब वे मुनि नगरमें आगये और अलग अलग उपाश्रयोंमें रहने लगे। इतना सब करनेपर भी भोजनके समय मार्गमें कंगलोंके द्वारा अंतराय होना बंद नहीं हुआ। तब श्रावकोंके हटसे उन मुनियोंने दिनमें आहारके लिये जाना छोड दिया और रातमें तुंबीफलके पात्रमें (सूकी तूंवडीमें) आहार लाकर दिनमें खाने लगे।

किसी एक दिन एक नग्न मुनि रातमें आहार लेनेके लिये एक यशोभद्र नामके शेठके घर गये, उस शेठकी धनश्री नामकी शेठानी गर्भवती थी सो हाथमें दंडपात्र लिये नग्न और दुर्बल मुनिको देखकर तथा उन्हें राक्षस समझकर वह डर गई और डरते ही उसका गर्भपात होगया। वे मुनि तो वापिस चले गये परंतु उस समय उन सब लोगोंने विचार कर उन भ्रष्ट यतियोंसे कहा कि "इस समय यह नग्न भेष पल नहीं सकता इसलिये एक खंड वस्त्रकी धोती पहिनो और मस्तकपर एक कंवलका अर्द्धफाल्क (कंवलका आधा टुकडा) रक्खो। फिर रातको भोजन लाकर उपाश्रयमें रखलो और दिनमें खालो। इस प्रकार उन मुनियोंसे निवेदन किया। वे मुनि भ्रष्ट तो थे ही उन्होंने इन श्रावकोंकी सब बातें स्वीकार कर लीं। इसके बाद उन श्रावकोंने उन मुनियोंसे यह भी कहा कि आप लोग इन कंगलोंकी दुर्गंध रोकनेके लिये हाथमें एक वस्त्र रक्खो। दुर्गंध आनेपर उससे मुंह नाक बंद कर लिया करो। सो भी उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अर्द्धफाल्कोंकी उत्पत्ति हुई है।

१ इसके बाद कितना ही काल बीत जाने पर कितने ही श्वेताम्बर साधुओंने हाथमें वस्त्र लेनेके बदले उसमें डोरा लगाकर मुहसे बांध लिया जिससे वे मुंहपट्टीवाले कहलाये। यदि कोई उनसे इसका इसका कारण पूछता है तो कहते हैं कि वायुकायके जीवोंकी रक्षाके लिये यह पट्टी बांधी गई है।

राजा चन्द्रगुप्तने उन सोलह स्वप्नोंका फल सुनकर दीक्षा धारण कर ली थी और मुनिराज भद्रबाहुके साथ दक्षिण देशको चला गया था। बारहवर्षका दुष्काल बीत जानेपर जब सब मुनि उज्जयिनी नगरीकी ओर चलने लगे तब भद्रबाहु स्वामी अपनी आयु निकट जानकर चन्द्रगुप्तके साथ वहीं रहगये। आयु पूर्ण होनेपर भद्रबाहु मुनि तो समाधिमरण धारण कर स्वर्ग पधारे और मुनिराज चन्द्रगुप्त वहीं रहगये। शेष बारह हजार मुनि धीरे धीरे विहार करते हुए उज्जयिनी नगरीमें आ पहुंचे। उन मुनियोंको आया जान कर वे पहलेके रहे हुए भ्रष्ट मुनि भी उनकी वंदना करनेकेलिये आये परंतु इन मुनियोंने उनको तपसे भ्रष्ट देखकर प्रतिवंदना नहीं की। तथा उनको छेदोपस्थापना आदि प्रायश्चित्त लेनेके लिये उपदेश दिया। सो कितने ही साधु तो उन मुनिके उपदेशके अनुसार प्रायश्चित्त लेकर यथार्थ मुनि होगये परंतु रामल्याचार्य आदि मुनि वैसेके वैसे ही भ्रष्ट बने रहे। उन्हीं भ्रष्टोंमें एक स्थूल भद्राचार्य थे उन्होंने उन सब भ्रष्ट मुनियोंसे फिरसे दीक्षा धारण करनेके लिये कहा। तब सब भ्रष्ट मुनियोंने उस स्थूलभद्राचार्यको मारकर उसके मृतक शरीरको किसी एक गड्ढेमें छिपाकर डाल दिया। वे स्थूलभद्राचार्य आर्तध्यानसे मरे थे, इसलिये मरकर व्यंतर देव हुए। उस व्यंतर देवने विभंगावधिसे अपने पहले भवकी सब बात जान ली और फिर उसने उन भ्रष्ट मुनियोंपर अनेक उपद्रव किये। तब उन सब भ्रष्ट मुनियोंने उस व्यंतरदेवके हाथ जोडे उसको नमस्कार किया और उसकी हड्डियां लाकर उनकी पूजा की तब कहीं जाकर उनको शांति मिली। तबसे ही ये लोग खम्मणहडी नाम रखकर काठकी पट्टीको (तखतीको) अबतक पूजते हैं इसके सिवाय इन्होंने अनेक शास्त्र बनाये और आचारांग सूत्र आदि नाम रखकर उनमें बहुतसे शिथिलाचारोंका निरूपण किया तथा बहुतसी विपरीत बातोंका निरूपण किया और बहुतसी बातें दिगम्बराम्नायसे विरुद्ध लिखीं। इस प्रकार अर्द्धफाल्ककी प्रवृत्ति हुई।

इसके कितने ही वर्ष बाद उज्जयिनी नगरीमें एक चन्द्रकीर्ति नामका राजा हुआ। उसके चन्द्रलेखा नामकी पुत्री हुई थी। वह चन्द्रलेखा अर्द्धफाल्की गुरुओंके समीप पढने लगी। वह क्रमसे यौवन अवस्थाको प्राप्त हुई और सोरठ देशके बलभी पुर नगरके राजा प्रजापालके पुत्र लोकपाल को परणाई। किसी एक दिन उस चन्द्रलेखाने अपने पतिसे कहा कि हे स्वामिन् मेरे गुरु कानकुब्ज देशमें हैं सो वहांसे बुलाओ। राजाने उसके आग्रहसे उनको बुलाया। वे चन्द्रलेखाके गुरु राजाके बुलानेसे आये। राजा लेनेकेलिये उनके सामने गया परन्तु उनको भ्रष्टलिंग देखकर रानी चन्द्रलेखासे कहा कि तुम्हारे गुरु गुरु नहीं हैं। वे निर्ग्रंथ नहीं हैं सग्रंथ हैं सो हमारे वंदना करने योग्य नहीं हैं। इनका भेष निंदनीय भेष है तब रानी चन्द्रलेखाने अपने गुरुके पास जाकर कहा कि महाराज इस मलिन भेषकी हंसी हमारे सामने हुई है। इसलिये इस भेषको तो छोडो और ये सफेद वस्त्र धारण करो तब उन सब भ्रष्ट

मुनियोंने सफेद वस्त्र धारण कर लिये। तदनंतर वे राजा रानी उनको उत्सवके साथ अपने नगरमें लाये और उन्होंने बडी भक्ति की। तबसे यह अर्द्धफाल्कोंका मत श्वेत वस्त्र धारण करनेसे श्वेतांबर कहलाया। इसप्रकार राजा विक्रमके मरनेके एकसौ छत्तीस वर्षबाद श्वेताम्बर मत प्रगट हुआ। सो ही भद्रबाहुचरित्रमें लिखा है—

मृते विक्रमभूपाले षट्त्रिंशदधिके शते। गताब्दानामभूल्लोके मतं श्वेताम्बराभिधम्।

इन्हीं श्वेताम्बरियोंमें एक जिनचंद्र नामका श्वेतांबर हुआ है। उसने सूत्रोंमें अनेक प्रकारकी विपरीत रचना की है। उसने उन सूत्रोंका नाम आचारांग सूत्र आदि नाम रक्खा है और उनमें मूलसंघसे अत्यन्त विरुद्ध कथन किया है। उन विरुद्ध बातोंमेंसे कुछके नाम यहां लिखते हैं।

१ केवलज्ञानीके कवलाहारका सद्भाव मानना।
२ केवलज्ञानीके रोगोंकी उत्पत्ति मानना।
३ केवलज्ञानीके मलमूत्रका नीहार मानना।
४ केवलियोंके परस्पर नमस्कार करनेका व्यवहार मानना।
५ केवलज्ञानीके उपसर्गका सद्भाव मानना।
६ जिनबिम्बोंके आभूषणोंका सद्भाव मानना।
७ तीर्थंकरोंका पाठशालामें पढना।
८ केवलीकी पहिली वाणीका व्यर्थ जाना।
९ श्रीबर्द्धमान स्वामीका देवनन्दा ब्राह्मणीके गर्भमें तिरासी दिनतक रहना और फिर इन्द्रके द्वारा उस गर्भको वहांसे उठाकर त्रिशला नामकी क्षत्राणीके गर्भमें रखना। इसप्रकार श्रीमहावीर स्वामीका गर्भापहरण करना।
१० श्रीऋषभदेव तीर्थंकर और उनकी रानी सुनंदाको युगलिया मानना अर्थात् श्रीऋषभदेवने अपनी सगी बहिनके साथ विवाह किया मानना।
११ केवलीको छींकका सद्भाव मानना।
१२ सुनन्दा ब्राह्मणी मिथ्यादृष्टिनी और असंयमी थी तो भी उसका सत्कार करनेकेलिये भगवान महावीर स्वामीकी आज्ञासे गौतम स्वामीका उसके सामने जाना।

१३ स्त्रियोंके महाव्रतका सद्भाव मानना।
१४ स्त्रियोंके केवलज्ञानकी उत्पत्ति मानना।
१५ स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति होना मानना।
१६ दीक्षा लेनेके बाद तीर्थंकरोंको इन्द्र श्वेत वस्त्र देता है सो साधु अवस्थामें तीर्थंकर उन्हीं इन्द्रके दियेहुए सफेद वस्त्रोंको पहिनते हैं। दीक्षा लेनेके बाद भी तीर्थंकर नग्न नहीं रहते ऐसा मानना।
१७ जिनप्रतिमाके लंगोट और करधनीका चिन्ह मानना।
१८ मल्लिनाथ तीर्थंकरको स्त्री मानना अर्थात् उनको पुरुष न मानकर मल्लिबाई कहना।
१९ देवता लोग युगलियोंका छोटा शरीर बनाकर उनको भरतक्षेत्रमें लाये थे उनसे हरिवंशकी उत्पत्ति मानना।
२० श्रीमहावीर तपश्चरण कर रहे थे उस समय किसी गवालियेने आकर उनके कानमें लोहेके कीले ठोंक दिये तब महावीर स्वामीने पुकारकी और पुकारनेकेलिये पर्वतपर चढे ऐसा मानना।
२१ साधु लोग दंड, पात्र, ओंघा, पुंजणी, बडी धोती कंबल मुहपट्टी आदि चौदह उपकरण रखते हैं, ये धर्मके साधन हैं, इनके रखनेमें दोष नहीं है ऐसा मानना।
२२ श्रीमुनिसुव्रतनाथके एक घोडा गणधर हुआ था ऐसा मानना।
२३ साधु लोग श्रावकोंके घरसे अपने पात्रमें अहार पानी लाकर अपने उपाश्रयमें खा लेवें तो कोई दोष नहीं हैं ऐसा निरूपण करना।
२४ यदि आहार बाकी बंच जाय तो तेला आदि अधिक उपवास करनेवाले साधुओंको उपवासमें ही खिला देनेको निर्दोष मानना।
२५ यदि गर्म जलके मिलनेकी विधि न बने तो अपने पेशाब पीनेको भी निर्दोष मानना।
२६ निंदक जीवोंके मारनेमें पाप न गिनना।
२७ युगलियोंकी नरकगति होना।
२८ भरतने अपनी बहिन ब्राह्मीसे विवाह करनेका विचार किया था ऐसा मानना।

२९ दीक्षा लिये बिना ही अर्थात् महाव्रत धारण किये बिना ही भरत चक्रवर्तीको केवल भावनाओंके बलसे आरोसा भवनमें ही केवलज्ञानकी उत्पत्ति मानना।

३० शिष्य ग्वालको समझानेकेलिये श्रीमहावीर स्वामीका कुम्हारके बाडेमें समवसरण सहित रहना मानना।

३१ अर्जुनकी स्त्री द्रोपदीको सोलहसे तीनमें सती कहना और उसको पांचों भाइयोंकी स्त्री मानना।

३२ एक बूढा गुरु किसी कुंवारे (अविवाहित) शिष्यके कंधे पर बैठा किसी मार्गमें जा रहा था। गुरुने देखा कि वह शिष्य ईर्यासमितसे गमन नहीं कर रहा है। इसलिये उस गुरुने उस शिष्यके शिरमें ओघेके दंडकी मार लगाई परन्तु उस शिष्यने क्षमा धारण करते हुए वह मार सह ली। इसीसे उस शिष्यको उसी समय केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और गुरु कंधेपर बैठा ही रहा। केवलज्ञान होने पर गुरुने पूछा कि क्या तुझे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है इससे मालूम होता है तू ईर्यासमिति सहित चलता है। तब शिष्यने कहा महाराज आपके प्रमादसे ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। इतने कह सुन लेने पर उस गुरुने उस केवलज्ञानी शिष्यका शिर कूटना बंद किया और फिर वह उसके कंधेसे नीचा उतरा। इस प्रकार मानना।

३३ श्रीमहावीर स्वामीने अपना विवाह किया था, उनके पुत्री हुई थी और उसका विवाह किसी जयमिली नामकी जातिके माली साथ किया मानना।

३४ कपिल नारायणको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ मानना और उसी अवस्थामें उसका नृत्य करना मानना।

३५ वसुदेवके बहत्तर हजार रानियोंका मानना।

३६ साधु शूद्रके घरसे आहार पानी लाकर खा लेवे तो उसमें कोई दोष न मानना यदि कोई मांस भी दे देवे तो उसको रक्खे नहीं केवल प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाय ऐसा मानना।

३७ देवोंका मनुष्यस्त्रियोंसे भी भोग करना मानना और उनसे पुत्रादिककी उत्पत्ति मानना। एक सुलसा नामकी श्राविकासे किसी देवने भोग किया था और उससे उसके पुत्र उत्पन्न हुआ था ऐसा मानना।

३८ चक्रवर्तियोंके छयानवे हजार स्त्रियोंका नियम न मानना।

३९ बाहुबलिके शरीरकी ऊंचाई सवा पांचसौ धनुष न मानकर केवल पांचसौ धनुषकी मानना।

४० श्री महावीर स्वामीका म्लेच्छखंडोंमें भी विहार करना मानना।
४१ चौथे कालमें साधु लोग असंयमियोंकी पूजा करते थे ऐसा मानना।
४२ देवोंका एक कोश मनुष्योंके चार कोशके बराबर है ऐसा मानना।
४३ तीर्थंकर केवली भगवान समवसरणमें वस्त्र सहित दिखाई पडते हैं नग्न नहीं ऐसा मानना।
४४ साधुओंको हाथमें दंडका रखना।
४५ श्री वृषभदेवकी माता मरुदेवी मिथ्यादृष्टिनी थी। जब श्रीवृषभदेवने दीक्षा ली थी तब वह उनके वियोगसे बहुत रोई थी और रोते रोते अंधी होगई थी परंतु पीछे समवसरणको देखकर सूझती हो गई थी ऐसा मानना।
४६ मरुदेवको हाथीपर बैठे ही बैठे केवलज्ञानका होना।
४७ चांडालादिक नीच कुलोंमें उत्पन्न होनेवालोंको भी पांच महाव्रतोंका धारण करना मानना।
४८ केसीकुमार जातिके भंगीको भी केवलज्ञान और मोक्षका होना मानना।
४९ श्री महावीर स्वामीके समवशरणमें चंद्र सूर्य देवोंका मूल शरीर सहित बंदना करनेकेलिये आना।
५० पहले स्वर्गका इन्द्र दूसरे स्वर्गमें जाकर इन्द्र होवे और दूसरे स्वर्गका इन्द्र पहले स्वर्गमें आकर इन्द्र होवे ऐसा मानना।
५१ युगलियोंका शरीर मरनेके बाद कपूरके समान खिरता नहीं पडा रहता है ऐसा मानना।
५२ तीर्थंकरादिक केवलज्ञानियोंके निर्वाण गये बाद उनके शरीरका पडा रहना कपूरके समान उडना न मानना।
५३ यदि किसी यतिका मन स्त्रीसेवनकेलिये चलायमान हो जाय तो श्रावकोंको उसे स्त्री देकर उसका मन स्थिर रखनेमें कोई पाप नहीं है ऐसा मानना।
५४ तीर्थंकरोंका स्वरूप अठारह दोष सहित मरूपण करना।
५५ केवलज्ञानीके मूल शरीरसे पांच प्रकारके स्थावर जीवोंके घातका सद्भाव मानना।
५६ भगवानके गर्भमें आनेके समय माताका चौदह स्वप्नोंका देखना। सोलह स्वप्न न मानना।
५७ स्वर्गोंकी संख्या सोलहके बदले बारह मानना।
५८ गंगा देवीके साथ पचास हजार वर्षतक किसी युगलियाने भोग किया मानना।

५९ प्रलयकालमें देवता बहत्तर स्त्री पुरुषोंके जोड़ोंको उठा ले जाते हैं।

६० चर्मके पात्रमें रक्खे हुए घी तेल हींग जल आदिके खाने पीनेमें कोई दोष नहीं मानना।

६१ बासे भोजनके भक्षण करनेमें दोष न मानना, पक्वान्नको निर्दोष मानना।

६२ महावीर स्वामीके दीक्षा लेनेके पहले ही उनके माता पिताकी मृत्यु मानना।

६३ बाहुबलिको युगलोंका रूपवान कहना तथा बाहुबलिने ही मुसलमान बनाये मानना।

६४ पूरे फलको खानेमें कोई दोष न मानना।

६५ युगलिया भी परस्पर ईर्ष्या करके युद्ध करते हैं ऐसा मानना।

६६ शास्त्रोंको अचेतन मानकर उनकी विनय न करना।

६७ तिरेसठ शलाका पुरुषोंके नीहारका सद्भाव मानना।

६८ इन्द्रोंकी संख्या सौ न मानकर चौसठ मानना।

६९ यदुवंशियोंको मांसाहारी मानना।

७० मानुषोत्तर पर्वतके बाहर तेरह द्वीप तक ऋद्धिधारी साधुओंका तथा विद्याधर आदि मनुष्योंका गमन मानना।

७१ कामदेवोंकी संख्या चौवीस न मानकर हीनाधिक मानना।

७२ तीर्थंकरोंके मोक्ष होनेके बाद देवता उनके मुखमेंसे दाढ निकालकर ले जाते हैं और स्वर्गमें उसकी पूजा करते हैं ऐसा मानना।

७३ नव ग्रैवेयकके देवोंका नव अनुदिश तक गमन करना मानना।

७४ नाभिराय और मरुदेवीको युगलिया मानना।

७५ किसी एक शिष्यने छमछरीका (वार्षिक प्रतिक्रमणके दिन) उपवास नहीं किया था उसने आहार लाकर गुरुको दिखाकर खानेकी आज्ञा मांगी थी सो गुरुने उसकी निंदाकर उसके भोजनके पात्रमें थूक दिया था परंतु उस शिष्यने उससे घृणा न की उस जुगुप्साको जीत लिया और गुरुके थूक सहित उस उच्छिष्ट भोजनको खा गया इसीकारण उसको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ऐसा मानना।

७६ गृहस्थोंको कुदेवोंकी उपासनामें दोष न मानना।
७७ कुदेवोंकी पूजासे भी सम्यक्त्वका घात न मानना।
७८ कुदेवोंकी पूजा करना गृहस्थोंका कार्य मानना।
७९ बोलते समय मुखके ऊपर वस्त्रकी पट्टी बांधकर बोलना चाहिये उघाडे मुखसे नहीं बोलना चाहिये ऐसा मानना।
८० जहां चित्रामकी लिखी हुई स्त्रियां हों वहांपर साधु न रहें परंतु व्याख्यानमें सैकड़ों स्त्रियोंके पास रहते हुए भी दोष न मानना।
८१ बाहुबलि साधु अपने अभिमानके कारण पृथ्वीको भरतकी पृथिवी जानकर एक अंगूठेके सहारे खडे रहे। इसीलिये उनको ध्यानकी प्राप्ति नहीं हुई ऐसा मानना।
८२ बाहुबलिके चारों ओर केवलज्ञान फिरते रहा उत्पन्न नहीं हुआ। तब ऋषभदेवके बचनसे भरतने ब्राह्मीसे कहा कि तू अपने भाईको समझा जिससे वह मानरूपी हाथीसे उतरे। तब ब्राह्मीने जाकर समझाया तब वह चारों ओर फिरनेवाला केवलज्ञान बाहुबलिको प्रगट हुआ।
८३ श्रीमहावीर स्वामीके समवसरणमें किसी गोशालामें जन्म लेनेवाला कोतका पुत्र गोशाला आया था उसने आकर भगवानको गालियां दीं बहुतसे निंदनीय बचन कहे 'रे' 'तू' आदि बुरे शब्द कहकर उसके ऊपर तेजो लेश्या चलाई। जिसको लोकमें मूठ कहते हैं। उस मूठसे वे भगवान मरे नहीं क्योंकि उनका बहुत बड़ा अतिशय था परंतु रक्तातिसार नामकी व्याधि (खूनके दस्त) हो गई। ऐसा मानना।
८४ जिससमय गोशालाने तेजो लेश्या चलाई थी उस समय समवसरणमें दो साधु भगवानका यह अपमान देख नहीं सके थे और वे दोनों क्रोधित होकर उस गोशालासे लडने लगे। परंतु उस गोशालाने अपनी तेजो लेश्यासे अर्थात् अग्निकी ज्वाला रूप मंत्रसे उन दोनों साधुओंको भी जला दिया जिससे वे दोनों मर गये ऐसा मानना।

इसप्रकार कितनी ही विपरीत बातें चलाईं जिनप्रतिमाके नेत्रोंके ऊपर और नेत्र लगाना, उनके मुखको सिंदरफसे रंगना, नौ अंगोको चन्दनादिकसे पूजना आदि कितनी ही विपरीत बातें स्थापन की जिनका विशेष वर्णन अन्य ग्रन्थोंमें लिखा है। इसप्रकार श्वेताम्बरोंका स्वरूप बतलाया।

इसी श्वेतांबर मतमेंसे कितने ही कालके बाद पहले लिखा हुआ यापनीय संघ उत्पन्न हुआ। उसका थोड़ासा वर्णन इसप्रकार है। श्वेताम्बरोंका भक्त एक लोकपाल राजा था। उसके चित्रलेखा नामकी रानी थी। उसके एक नृकुला नामकी पुत्री हुई थी। वह करहाट नगरके राजा भूपालको व्याही गई थी। वहां जाकर किसी एक दिन उस रानीने अपने गुरु बुलाये। राजा उनको लेनेकेलिये सामने गया परन्तु उस श्वेतांबरीको देखकर अर्थात् गुरुको निर्ग्रंथ न देखकर राजा पीछे लौट आया। तब रानी बहुत लज्जित हुई और उसने अपने गुरुके पास जाकर प्रार्थना की कि आप मेरे आग्रहसे फिर एक बार निर्ग्रंथ हो जाइये। वस्त्रोंका त्याग कर दीजिये। तब रानीके आग्रहसे वे नग्न तो होगये परन्तु उनका आचरण शिथिल ही रहा इसप्रकार आयाल संघ उत्पन्न हुआ। उसके गुरुओंका रूप तो नग्न था परन्तु क्रिया आचरण सब श्वेतांबरोंके थे। इसप्रकार उसने नटकासा स्वांग बनाकर नया मत चलाया। तदनंतर उनमें भी परस्पर क्रोध मान आदि कषाये बढने लगीं और उनमें भी विजय तपा खरतरा पुन्या आदि चौरासी गच्छ उत्पन्न हो गये।

इसके भी कुछ दिन पीछे इस श्वेताम्बर मतसे राग द्वेष कर मान कषायके आवेशसे इन्हीं श्वेताम्बरोंका विरोधी लोकागच्छ नामका मत प्रगट हुआ। आगे उसीका थोडासा स्वरूप लिखते हैं।

महाराज विक्रमके मरनेके पंद्रह सौ सत्ताईस बर्ष बाद गुजरात देशके अणहल्ल नगरमें प्रग्वाट कुलका एक लुंका नामका ओसवाल वैश्य हुआ था। उसने यतियोंसे उनके सूत्र पढे और फिर अपने नामका एक गच्छ स्थापन किया। उसीने यह लुंका नामका धर्म चलाया। तीव्र मिथ्यात्वके उदयसे उसने श्रीजिनप्रतिमाकी पूजा करनेका भी निषेध किया तथा जिनपूजा तीर्थयात्रा पात्रदान जिनमंदिर प्रतिष्ठा आदि धर्मकार्योंमें हिंसा और आरंभ बतलाकर इन सब कार्योंका निषेध किया इन सब कार्योंको उसने पापरूप बतलाया और सबका निषेध करता हुआ जैनधर्मका शत्रु बन गया। इसप्रकार उसने अपना विपरीत मिथ्यात्व धर्म चलाया। सो ही भद्रबाहु चारित्रमें लिखा है—

मृते विक्रमभूपाले सप्तविंशतिसंयुते। दशपंचशतेऽब्दानामतीते शृणुता परम्॥ १॥
लुंकामतमभूदेकं लोपकं धर्मकर्मणः। देशेऽत्र गौर्जरख्याते विद्वत्ताजिननिर्जरे॥ २॥
अणहलपत्तने रम्ये प्राग्वाटकुलजो भवेत्। लुंकाभिधो महामानी श्वेतांशुकमताश्रयी॥ ३॥

अन्योन्यमीर्ष्यया दुष्टः कुपितः पापपण्डितः। तीव्रमिथ्यात्वपाकेन लुंकामतमकल्पयत्॥ ४॥
सुरेन्द्रार्चिजिनेन्द्राचां तत् पूजादानमुत्तमम्। समुत्थापितवान् पापी प्रतीपो जिनसूत्रतः॥ ५॥

इसप्रकार लुंकामत प्रगट हुआ।

तदनन्तर इस लुंकामतके दो गच्छ हुये। एक तो जिनप्रतिमा मंदिर पूजा प्रतिष्ठा आदिके करनेका श्रद्धान करते हुये उपाश्रयमें रहने लगे और दूसरे ज्योंके त्यों बने रहे।

तदनंतर ऊपर कहे हुये जिन प्रतिमाको उठानेवाले लुंकामतके साधुओंसे ढूंढिया मत प्रगट हुआ। उसने श्वेतांबरोंसे भी विरुद्ध कथन निरूपण किया। तथा जिनप्रतिमाकी निंदा कर उसके दर्शन पूजन वंदना आदि करनेका निषेध किया और लोगोंको अपना मिथ्यात्व धर्म ही सच्चा धर्म बतलाया अनेक प्रकारके भ्रष्टाचरणोंका निरूपण किया।

आगे इसीकी उत्पत्ति बतलाते हैं—

किसी एक समय मेवाड देशके भीला शहरमें लुंकामतके यति माणिक ऋषिने चतुर्मास किया। उसके व्याख्यानमें प्रतिदिन सब श्रावक आते थे। वहांपर वहींका रहनेवाला एक ढेड भी आताथा उसने अपनी जाति हंजा जाति बतलाई तथा राम राम जपता हुआ। वह प्रतिदिन पुराण सुनने आया करता था दैवयोगसे उसको कुछ ज्ञान प्राप्त होगया। अतएव माणिकऋषिने उससे जीवोंकी हिंसाका त्याग करादिया। तदनंतर वहांपर वर्षा हुई। किसान लोग सब अपने अपने हल बैल और मजदूर लेकर खेत जोतने चले उस समय यह हंजा भी अपनी स्त्री और पुत्रके कहनेसे हल लेकर खेतकी ओर गया। वहां उसने बहुतसे गिंडोरे देखे सो उनपर दया धारण करता हुआ यह पीछे लौट आया। उसको लौटकर आते हुये देखकर पुत्रने पूछा कि आप पीछे क्यों आये। स्त्रीने कहा कि आजका मुहूर्त ऐसा है जो आजका बोया धान्य बारह महीने तक निबट नहीं सकता। आज तू लौट क्यों आया। इन सबको हंजेने उत्तर दिया कि मैं इस संसारमें थोडेसे जीवनके लिये ऐसा हिंसारूप पाप नहीं करता। यह सुनकर स्त्री पुत्रने क्रोधकर सको घरसे बाहर निकाल दिया। तब वह हंजा बनकर माणिक ऋषिके समीप आया और यति बनने की दीक्षा मांगने लगा। माणिक ऋषिने कहा तू जातिका ढेड है इसलिये तुझे दीक्षा लेनेका अधिकार नहीं है। तब हंजेने कहा "यह पुद्गल ही शूद्र है जीव तो शूद्र नहीं है।" इस प्रकार अद्वैत ब्रह्मज्ञानका निरूपण कर ऋषिसे दीक्षा ले ली। वे माणिक ऋषि चतुर्मास तक तो वहां रहे फिर वहांसे बाहर चले गये।

किसी एक दिन माणिक गुरु किसी श्रावकके घरसे कसारके लाडू लाये थे सो उनका बांट कर हंजाको दूरसे हाथ बढाकर विना उसको छूये दिया और उसे दूर विठा दिया तब हंजेने कहा कि पहले तो भोजनमें इतना जुदापन नहीं था अब इतना जुदापन क्यों दिखलाते हो। इसपर दोनोंमें विवाद होगया और माणिक ऋषिने उस हंजेको अपने यहांसे निकाल दिया। तब हंजेने सोचा कि अब क्या करना चाहिये अब तो दूसरा नया मत स्थापन करना चाहिये। ऐसा विचारकर अहमदाबाद आया वहांपर एक हंजा नामके पीरकी कुछ चमत्कार दिखानेवाली कबर थी। वहांपर जाकर वह सात दिनतक भूखा रहा तब वहांवालोंने पीर बनकर कहा कि तू गुरुद्रोही है इसलिये हमारी दरगासे चलाजा। तेरा मुंह देखने योग्य नहीं है। तब हंजेने उसकी बड़ी स्तुति की उसको प्रसन्न किया। तब पीरने कहा "यदि तू मेरा नाम चलावेगा जैसा मैं हूं उसी मार्गसे चलेगा तो तेरा मत चलेगा। तू सब ओरसे मलिन रहना, मुहपट्टी सदा रखना, शूद्र आदि सबके घरकी भिक्षा लेना, वर्तन धोनेका वा और भी ऐसा ही उच्छिष्ट पानी पीना इस प्रकारकी मलिनता रखना यदि कोई तुझे वंदना करे तो बदलेमें धर्मलाभ नहीं कहना किंतु हांजी कहकर मेरा नाम लेना ऐसा तू कर तब उस हंजेने सब स्वीकार किया। इसप्रकार सम्वत् पंद्रहसौ पिचासीके भादोंसुदी अष्टमी रविवारके दिन ऊपर लिखे हुये लुंका मतसे उस हंजा नामके ढेडने यह ढूंढियाओंका मत चलाया और नाहंजा पीरकी सहायतासे चलाया है। कालांतरमें उसमें बाईस यति और आकर मिल गये। उनके नाम ये हैं–संघनाथ १ भीष्म २ जयमल्ल ३ पैमा ४ जगरूप ५ कान्हा ६ सांवला ७ मनरूप ८ रतना ९ नाथू १० माणो ११ चौथमल्ल १२ भारमल्ल १३ केशों १४ रायचन्द्र १५ लच्छो १६ गुमाना १७ टीकम १८ जसरूप १९ चित्रा २० माना २१ पानाचन्द २२ इस प्रकार हीनकुली वाईस यति और मिलगये। इसीलिये ये सब बाईस टोलाके साधु कहलाते हैं। इन्होंने अनेक प्रकारकी विपरीत बातें निरूपण की हैं वे सब सम्यग्ज्ञानियोंको श्रद्धान ज्ञान आचरण करनेके सर्वथा अयोग्य हैं। यह कथन हमने मरुस्थलके (मारवाड़के) कुचेरा गांवके रहनेवाले खरतर गच्छकी बडी शाखाके गच्छके ज्ञान-कीर्तिनामके यतिके शिष्य हेमकीर्ति कृत "हेम विलास" नामकी भाषा छंदकी ढालसे लिखा है। इसका विस्तार जानना हो तो वहांसे जानना।

तदनंतर सम्वत् अठारहसौ तेईसकी सालमें ऊपर लिखे हुए ढूंढिया मतमें एक रघुनाथ नामके साधुका शिष्य भीष्म नामका ढूंढिया साधु था। उसने किसी एक समय मारवाड़के वगडी नामके गांवमें चौमासा किया। वहांपर उसने अपने गुरुसे ईर्ष्याकी गुरुकी आज्ञाका लोप किया उससे जुदा होगया और उसने अपने नामका भी मपंथ नामका जुदा ही पंथ चलाया। उसने उस

अपने नये पंथमें जैनधर्मसे तथा ढूंढिया मतमें भी बहुतसी विरुद्ध और विपरीत बातें निरूपण कीं। उसने बतलाया कि कोई मांस-भक्षी हिंसक जीव किसी दूसरे जीवको पकड़कर मारता हो तो उसे छुड़ाना वा बचाना नहीं चाहिये। जो छुडाता है वह दूसरेके (पकड़नेवालेके) प्राणोंको पीड़ा देता है। इसलिये उसे अठारह पाप लगते हैं। वे कहते हैं कि जो कोई किसी जीवके काम वा भोगमें अंतराय करता है तो उसके अंतराय कर्मका आस्रव होता है इसलिये किसीके द्वारा किसी पकडे हुये जीवको नहीं छुडाना चाहिये। इसीप्रकार यदि किसी गावमें अग्नि लगगई हो वा और कोई घोर उपद्रव आगया हो और उससे अनेक जीव मरते हों। गाय भैंस घोड़ा बकरे मनुष्य पशु पक्षी आदि जीवोंके समूह मरते हों तो उनको बचाना नहीं चाहिये वा बचानेका कोई उपाय नहीं करना चाहिये। उन्हें मरने देना चाहिये दुःख सहन करने देना चाहिये। क्योंकि उनके कर्मोंका ऐसा ही उदय आया है सो अपना फल देकर निर्जरित हो जायगा। इसप्रकार (मरनेपर) उन कर्मोंकी निर्जरा हो जानेपर वे जीव सुखी हो जांयगे। जो लोग दया पालन करनेके लिये उन्हें बचाते हैं उन्हें अठारह पाप लगते हैं। इस महा हिंसामयी कथनके साथ साथ वे लोग यह भी कहते हैं कि यदि कोई अपने कुटुम्बका हो वा कोई साधु हो वा श्रावक हो तो उसे बचा लेना चाहिये। इस प्रकार उसने बहुतसी निर्दय और विपरीत बातें बतलाईं। उसने जिनप्रतिमापूजनका भी निषेध किया और इसप्रकार ढूंढिया मतसे भी अपना भिन्नमत और गच्छ स्थापन किया उनका मत तेरहपंथी साधु कहलाया और उसकी माननेवाले तेरहपंथी साधु कहलाये। उन्होंने अपना नवीन ढाला बनाया है तथा और भी कई प्रकारसे अपना मत पुष्ट किया है सो वह भी सम्यग्ज्ञानियोंको श्रद्धान ज्ञान वा आचरणके योग्य नहीं है वह सब विपरीत मिथ्यात्व है। इसप्रकार भीष्मपंथीकी उत्पत्ति बतलाई।

प्रश्न—तेरहपंथी तो दिगम्बराम्नायमें होते हैं इन ढूंढियाओंमें तेरह पंथी कैसे?

उत्तर—इनमें भी तेरह साधु मिले थे इसलिये उनको माननेवाले तेरह पंथी साधु कहलाये थे। वह मत भीष्मपंथी ही रहा।

प्रश्न—दिगम्बर आम्नायमें जो तेरह पंथीकी आम्नाय है सो उसकी उत्पत्ति किसप्रकार है तथा उसका श्रद्धान ज्ञान आचरण ठीक है वा नहीं?

समाधान—एक भाषा छंदका नाटक संग्रह ग्रंथ है उसमें इसकी उत्पत्तिका वर्णन लिखा है। उससे लेकर यहां थोड़ासा लिखते हैं। यथा—

छंद चौपाई भाषा।

आदिपुरुष यह जिन मति भाष्यो। भवि जीवनि नीके अभिलाष्यो॥
पहले एक दिगंबर जानो। तातैं श्वेताम्बर निकसानो॥ १६॥
तिनमें ईकसि भई अति भारी। सो तो सब जानत नर नारी।
ताही मांहि रहसि अब करिकें। तेरह पंथ चलायो अडिकें॥ १७॥
तब कितेक बोले बुधिमान। उपज्यो पंथ यह केही थान।
किहि सम्मत कारण कहु कौन। सो समुझाय कहो तजि मौन॥ १८॥

दोहा।

प्रथम चल्यो मत आगरे श्रावक मिले कितेक। सोलहसै तीयासीये गही कितेक मिलि टेक॥ १९॥
काहू पंडितपै सुने किते अध्यातम गूंथ। श्रावक किरिया छोडिकै चलन लगे मुनिपंथ॥ २०॥
फिरि कामामें चलि पर्‌यो ताहीके अनुसारि। रीति सनातन छांडिकै नई गही अघकारि॥ २१॥

....
....
....

किते महाजन आगरे जात करण व्योपार। बनि आये अध्यातमी लखि नूतन आचार॥ २५॥

सोरठा।

ते मिलिके दिनरात छाने चर्चा करत नित।

प्रगट भए जिह भांति जा नगरीसों विधि सुनो ॥ २६ ॥

चोपाई ।

जयपुर निकट वसै इक और । सांगानेर आदितैं तौर ।
सर्व सुखी ता नगरी मांहि । श्रावक तिनमें सुवसि बसाहि ॥ २७ ॥
बडे बडे चैत्यालय जहां । ब्रह्मचारि इक निवसै तहां ।
अमरचन्द्र है ताको नाम । शोभित सकल गुणनिको धाम ॥ २८ ॥
ताके ढिंग मिलि आवत पंच । कथा सुनत तजिकै परपंच ।
तिनमें अमरा भवसा जाति । गोदीका यह व्योक कहात ॥ २९ ॥
धनको गर्व अधिक तिन धियो । जिनवाणीको अविनय कियो ।
तब वाको श्रावकनि विचारि । जिनमंदिरतैं दियो निकारि ॥ ३० ॥
जब उन कीन्हों क्रोध अनंत । कही चलाऊं नूतन पंथ ।
तब उनमें अध्यात्म कितेक । मिले भये सब द्वादश एक ॥ ३१ ॥
उनको कछु इक लालच देय । अपने मतमें आने लेय ।
लालच ठानि ठानि मनमांहि । मूढ मिले कछु समझे नांहि ॥ ३२ ॥
पूजा पाठ रचै बहु जोर । कही तासेंमें नूतन ओर ।
सत्रहसौ तिहोत्तर साल । मत थाप्यो ऐसो अघजाल ॥ ३३ ॥
लोगनि मिलिकै मतो उपाय । तेरह पंथ नाम ठहराय ।

तिनमें नृप मंत्री मिलि एक। बांधी नये पंथकी टेक ॥ ३४ ॥
दे दे खिदमत पंथ बधायो। नहिं भायो ताही डरपायो।
कछु लालच कछु डरतैं साह। भयो गडरियाके परवाह ॥ ३५ ॥
आदि सेति चलि आयो धर्म। मूढ न समझे ताको मर्म।
इहि विधि फैल्यो नगरनि मांहि। उत्पति कही झूठ कछु नांहि ॥ ३६ ॥

दोहा।

मानत उस ही गूंथको अर्थ करत कछु और।
धर्म अधर्म गिनै नहीं चलत अकलिकै जोर ॥ ३७ ॥

इसप्रकार इसकी उत्पत्तिका वर्णन किया। आगे इसके श्रद्धान और आचरण कहते हैं।

छंद पद्धरी।

सिद्धि श्री सांगानेर थान। अनेक वोपरमा जोग जान।
भाईजी श्री मुकुंददास। फुनि दयाचंद्र महस्यघमास ॥ १ ॥
छाजू कला सुंदर सुएह। फुनि लेहि विहारीलाल जेहि।
तिन जोग्य सुपत्री जानि लेहु। कामातैं सब मिलि लिखत एहु ॥ २ ॥
हरिकिसनदास चिंतामणीस। देवी फुनिलाल निशा घणीस।
जगन्नाथ केन श्रीशब्द जाति। लिखी सबै साहि मिलि हुमानि ॥ ३ ॥
ये बात लिखी हम सघ वीस। सो तुमहू करियो विश्ववीस।

ताकी तफसील कहूं सुनाय। सु अब सुन लीजो चित्तलाय ॥ ४ ॥
पहले केसरकी सुनहु बात। आगे जिन चरननिको लगात।
सो हम यह मेटि दई सुचाल। तुमहु मिलि ऐसे करहु लाल ॥ ५ ॥
फुनि पूजा बैठे करत कोय। सो अब ऊभे ही करहु लोय।
चैत्यालयमें रहतो भंडार। सो हू मति राखहु अब लगार ॥ ६ ॥
प्रभुको जलौट ऊपर धराय। ढालत कलशा विधिवत बनाय।
सो विधि तजि अब इमिकरि सुजान। प्रतिमाको राखि विराजमान ॥ ७ ॥
ज्योंकी त्यों वेदी मांहि मीत। प्रभु आगे कलश ढलोत चित्त।
मनमें अजहूं यह रहत नीत। तजि वेगि दीजिये एह रीत ॥ ८ ॥
पूजा शांतिक फुनि क्षेत्रपाल। नवग्रह पूजनकी हुती सुचाल।
सो हू अब तो सब छांडि दीन्ह। यो कपन योह मख रचि कीन्ह ॥ ९ ॥
देवलमें खेलत जुआ लोय। पंखेतें लेते पवन कोय।
आरीतें मांझ धेला घलात। सोहू मब तजियो क्षिप्र भ्रात ॥ १० ॥
प्रभु माला लेते हरषि गात। देवलमें भोजक आत जात।
पुनि पनही देवल माझि मान। एती नवात त्यागो सुजान ॥ ११ ॥
जपिके अठोतर लवंग आदि। पहुंचारे मवि धरते सुसादि।
प्रभुको चढावत हैं भविक लोय। सो हू तजियो साहसी होय ॥ १२ ॥

छंद चाल।

जल प्रभु पूजनको ल्यावन। भोजकपै राछ मजावन।
ए विधि कर लेहु महाजन। आपसहीमें मिलि साजन॥ १३॥
न्हावण घरघर सूं लावें। भोजक सो नाहि सुहावे।
अब एक महाजन जावो। इक ही घर सेती ल्यावो॥ १४॥
जो होइ कुलिंगी कोई। निरमायल लेवे सोई।
तिनको नहिं मानहु भाई। यह नूतन रीत चलाई॥ १५॥
भोजक वाजे न बजावैं। श्रावक ही बजावें गावें।
रांध्यो निज नाज चढावो। थालोडी मत करवावो॥ १६॥
ताजी मन कोऊ काहीं। मति करहु दोहरे मांही।
सुदि चौदस भादों आई। वेदी चौगिरद लुगाई॥ १७॥
कूटलका फेरा लेहै। सोहू न करो भवि जो है।
तिस पूजन श्री जिनराई। करते सुन करियो भाई॥ १८॥
रथजात्रा करहु न कोई। जीवनिकी घात सु होई।
नहि सधत दया अब तातैं। यह परजी है हम यातैं॥ १९॥
सोवत हैं देवल मांही। गोली ढालत हैं लुगाई।
यह दोऊ बात न कीजो। तजिके जगमें यश लीजो॥ २०॥

घर घर प्रतिमा ले जाहीं । रोगी रवि जोगी पाहीं ।
सोहू हम तो अब त्यागी । तुमहूं तजियो बडभागी ॥ २१ ॥
जो देत आशिषा कोई । सोहू त्यागो भवि लोई ।
निरमायल द्रव्य चढ्या मो । मंत्रनि करके सु पढ्योसो ॥ २२ ॥
भोजक जे घर ले जावें । सो पुरमें विकन उपावें ।
ए विधि सब ही गिन लीजो । इनमेंते घाट न कीजो ॥ २३ ॥
फुनि और विधि है ये है । पहुंचारो भोजक लेहै ।
स्वाहाको पढ्यो जो कोई । निमार्यल विषसम होई ॥ २४ ॥
ताकों जो कोऊ खाहीं । ते नरक निगोदे जाहीं ।
तातैं यह होम करीजे । तो योग्यकाज यह कीजे ॥ २५ ॥

सोरठा ।

आई सांगानेर पत्री कामातैं लिखी ।
फागुण चौदसि हेर सत्रहसै गुणचास सुदि ॥ २६ ॥

इसप्रकार पात्रोंका वर्णन किया । इसके सिवाव पुष्प न चढाना दीपक न जलाना आदि और भी मनकल्पित बहुतसी विपरीत बातें लिखी हैं । सो मनके वेगका कुछ पमाण नहीं है । सब कहांतक लिखाजाय । इसप्रकार उत्पत्ति तथा श्रद्धान ज्ञान आचरण आदिका थोडासा स्वरूप बतलाया । विशेष नाटक संग्रहसे जान लेना चाहिये ।

उसी समय आगरेमें पं० द्यानतरायजी, पं० बनारसीदासजी, पं० रूपचंदजी, पं० चतुर्भुजजी, पं० कुमारपालजी, पं० भगवतीदासजी हुये थे । इन्होंने श्रावक धर्मकी गौणता करदी और अध्यात्मपक्ष मुख्य मान लिया । इन्होंने अपने अपने नामको प्रगट करने

केलिये अपने अपने नामके भाषा छंदोवद्ध ग्रंथ बनाये ये द्यानतविलास बनारसीविलास ब्रह्मविलास आदि ग्रंथोंको बनाकर अध्यात्मशैलीके भाई कहलाये।

इनके बाद जयपुर नगरमें एक गुमानीराम श्रावक हुये थे। उन्होंने तेरहपंथ आम्नायसे भी विपरीत बातें बनाकर अपने नामका गुमान पंथ चलाया। इन्होंने बतलाया कि जलसे वस्त्र गीलाकर प्रतिमाजीका प्रक्षाल किया जाता है सो भी नहीं करना चाहिये। इसमें भी पाप लगता है। इसके बदले सूके वस्त्रसे प्रतिमाजीपर लगी हुई धूलि आदि झाड लेनी चाहिये। सो कितने दिनों तक तो यह बात चली परंतु निभ न सकी। इसलिये फिर पीछे ये लोग थोडे जलसे प्रक्षाल करने लगे। इसके सिवाय नव स्थापना पूर्वक दूरसे पूजन करना चाहिये। पूजा पढनेवालोंको भी खडे होकर पढना चाहिये। बैठकर नहीं पढना चाहिये। मंडलकी पूजा करनी हो तो उसके ऊपर थाल रखकर उसमें द्रव्य चढाना चाहिये। मंडलके कोठेमें द्रव्य नहीं चढाना चाहिये। यदि कोई इसका कारण पूछे तो कहदेना चाहिये कि यह तो बिछोना है और केवल शोभाकेलिये है। यदि दो चार दिन तकका पाठ हो तो प्रतिदिन जितनी पूजाएं हो जांय उतना ही शांतिपाठकर विसर्जन कर देना चाहिये और द्रव्य उठा लेना चाहिये। यदि शास्त्रोंका स्वाध्याय करना हो तो जिनप्रतिमाकी पूजनके समान स्नानकर स्वाध्याय करना चाहिये। यदि इसप्रकार स्नान करना किसीसे न बने तो स्नान करनेवाले एक पुरुषको अलग रखना चाहिये वह शास्त्रजीके पत्रे उलटता रहे। जिसने स्नान नहीं किया है उसको शास्त्रजीका स्पर्श नहीं करने देना चाहिये। इसीप्रकार पूजाके द्रव्यको अग्निमें जला देना चाहिये। माली व्यास आदिको देनेमें निर्माल्यका पाप लगता है और कुगति प्राप्त होती है। वह पाप अपनेको भी लगता है। इसलिये किसीको नहीं देना चाहिये। इसप्रकार उन्होंने सबको बतलाया परंतु यह रीति भी थोडे ही दिन चली। इसके सिवाय उन्होंने बतलाया कि गंधोधक लगाकर हाथ धोना चाहिये यदि जिन प्रतिमाके चरणोंपर केशर चंदन आदि लगा हो तो वहांके दर्शन वा बंदना नहीं करनी चाहिये। तथा दूसरोंको भी दर्शन बंदना आदि न करनेका नियम दिलाना चाहिये। रात्रिमें जिन मूर्तिके सामने वा जिन मंदिरमें यत्नपूर्वक भी दीपक नहीं जलाना चाहिये। फल पुष्पोंमें नारियल बदाम आदिकी मिगी निकालकर चढाना चाहिये। अखंड फल नहीं चढाना चाहिये। केशरको पूजामें लेना ही नहीं चाहिये। केवल चंदन घिस लेना चाहिये। पुष्प चांवलोंके बनाने चाहिये चांवलोंको कसूम वा हारसिंगारके फूलोंसे रंग लेना चाहिये इत्यादि बहुतसी बातें विपरीत कल्पना की हैं। यदि इसका कोई कारण पूछता है तो केशरमें अनेक दोष बतला देते हैं। कहते हैं केशर बनानेमें रुधिरका संस्कार दिया जाता है। इससे केशर काममें लाना अयोग्य है। कोई कोई दुष्ट लोग खोटी केशर बनाते हैं

उसमें भी रुधिरका संस्कार देते हैं। इसप्रकार बतलाकर दोष देते हैं। इसप्रकार अपनी बुद्धिके बलसे दूसरोंको भ्रममें डाल देते हैं। इनके सिवाय और भी अनेक प्रकारकी कल्पनाएं अपने मनसे करते हैं। कोई अपने नामसे पंथ चलाता है। जैसे गुमानपंथीकी आम्नाय है। इसे लोग छोटी सहेलीके भाई कहते हैं। इसप्रकार परस्पर पत्रोंके लेखोंसे तथा देखादेखी वा क्रोध मान माया लोभके वशसे बहुतसी विरुद्ध बातोंका प्रचार किया है। इन्होंने अपने बनाये हुये भाषा बचनिकाके शास्त्रोंमें अपने आम्नायकी पुष्टिके वचन रखकर ऊपर लिखी बातोंका प्रचार किया है। मैनपुरीके एक वंशीधर नामके श्रावकने अपने उपदेशसे पूर्वदेश बुंदेलखंड आदि देशोंमें इसकी प्रवृत्ति की है। सो यह सब हुंडावसर्पिणीका दोष है।

प्रश्न—ऊपर जो एकांत विपरीत आदि पांच प्रकारके मिथ्यात्व बतलाये हैं वे कबतक रहेंगे ?

उत्तर—ये सब मिथ्यात्व पांचवें कालके अंततक रहेंगे। पांचवें कालके अंतमें सब नष्ट हो जायंगे। शुद्ध मूलसंघके एक साधु एक अर्जिका एक श्रावक एक श्राविका ये चार धर्मात्मा रहेंगे। ये चारों ही कल्कीके द्वारा उपसर्ग पाकर संन्यास धारण कर स्वर्गलोक जायंगे। सो ही लिखा है—

तच्चो ण कोवि भणिऊ गुरुएणहरपुंगवेहि मिच्छत्तो। पंचमकालवसाणे मित्थादंसणविणासेहिं ॥ १ ॥
एकोविय मूलगुणो वीरं गयणा मउज्जई होई। सो अप्पसुदेवित्तरं वीरोव्व जणं यव्वोई ॥ २ ॥

ऐसे वाक्य हैं। इनके सिवाय अन्यत्र भी लिखा है—

सहसाणि वरस वीसा ण वसइ पंच एव सत्त हयदरु। वे घडिय वे वलियं विहरंति वीरणि धम्मं ॥

प्रश्न—यह कथन यहां क्यों लिखा क्योंकि अन्यमतका लिखना तो ठीक है परंतु घरके एक धर्मके विरुद्ध तो नहीं लिखना चाहिये।

उत्तर—आपका कहना ठीक है। परंतु जीवोंके परिणामोंके अंश कितने ही तरहके हैं। धर्मके अनेक अंग हैं इनमेंसे किसीके परिणाम कहीं धर्मसाधन करते हैं और किसीके अन्य किसी अंगमें धर्मसाधन करते हैं। किसीके धर्मके किसी अंगमें भाव लगते हैं और किसीके किसी अंगमें। किसीका मन कथामें लगता है। किसीका प्रथमानुयोगमें, किसीका करणानुयोगमें, किसीका चरणानुयोगमें और किसीका द्रव्यानुयोगमें मन लगता है। किसीका मन आक्षेपिणीमें, किसीका विक्षेपिणीमें, किसीका संवेगिनीमें

और किसीका निर्वेदिनी कथामें लगता है। इसीप्रकार किसीका मन छहों रसोंके स्वादिष्ट भोजनोंमेंसे किसी रसके भोजनमें लगता है। किसीको कोई रस अच्छा लगता है। राग रागिनी अनेक प्रकार हैं उनमेंसे किसीको कोई राग अच्छा लगता है और किसीको कोई रागिनी अच्छी लगती है। इसीप्रकार चर्चायें अनेक प्रकारकी हैं। किसीका मन किसी चर्चासे प्रसन्न है और किसीका किसी चर्चासे प्रसन्न है। इसीलिये यहांपर यह चर्चा लिखी है कुछ राग द्वेष वा अभिमान वा ईर्ष्यासे नहीं लिखी है। यदि इससे किसीके रागद्वेष उत्पन्न हो तो हम उससे क्षमा मांग लेते हैं।

प्रश्न—यह जो कुदेवोंकी स्थापना हुई है सो इसका कारण क्या है?

जिसप्रकार कुदेवोंकी स्थापना हुई है उसका स्वरूप लिखते हैं। किसी एक समय स्वर्गलोकमें नौवें बलभद्रके जीवने विचार किया कि श्रीकृष्ण कहां है? अवधिज्ञानसे मालूम हुआ कि वह बालुकाप्रभा नामकी तीसरी पृथिवीमें है। वह बलभद्रका जीव तीसरे नरकमें पहुंचा। कृष्णके जीवको धर्मोपदेश दिया। संसारका अनित्यपना दिखलाया तथा उसके धर्मकी श्रद्धा अत्यंत निश्चल की। तदनंतर कृष्णके जीवने कहा कि संसारमें हमारी लीलाका विस्तार करो। यह सुनकर बलभद्रका जीव भरतक्षेत्रमें आया और उसने इस लोकमें कृष्णकी अनेक बाल लीलायें प्रगट कीं। तबसे इस संसारमें कृष्णकी अनेक लीलाएं प्रगट हुई हैं। ब्राह्मणोंने लोभके बशीभूत होकर वे सब लीलायें स्वीकार कर लीं और उसके उपासक बनगये जो आजतक बने हैं। ऐसा कथन लघु हरिवंशपुराण वा वृहद् हरिवंशपुराण वा और अनेक पुराणोंमें लिखा है। हरिवंशपुराणमें लिखा है—

अथ श्रीबलदेवोऽसौ ब्रह्मकल्पोऽमरोस्ति यः। बालुकाभास्थितं बंधुं सस्मार स्नेहनोदितः॥ १॥

दूसरे हरिवंशपुराणमें लिखा है कि—

एवं तस्य हृदि स्थाप्य सम्यक्त्वमणिमुज्वलम्। सुरो निवर्तितः पश्चात् भ्रातृदुःखेन दुःखितः॥ ८३॥
आगत्य भारतं क्षेत्रं प्रियं व्यरचयत्परम्। विमानं किंकिणीघंटानानानादमनोहरम्॥ ८४॥
तत्र पीतांबरं कृष्णं सश्यामं गरुडध्वजम्। लोकेभ्यो दर्शयामास वामांगे कमलावृतम्॥ ८५॥
स्वयं च कथयामास लोकेभ्यो भो जनाः शुभाः। श्रूयतां च त्रिलोकीशः उत्पत्तिप्रलयक्षमः॥ ८६॥

गोविंदो मम भ्राता लोकानां हितचिंतये । नृलोकेत्रावतारं स·········परिपूर्णवत् ॥ ८७ ॥
परोपकारनिपुणस्त्रिलोकीपुरुषोत्तमः । दैत्यानां च प्रणाशाय क्रीडारसकुतूहली ॥ ८८ ॥
कृष्णेच्छया पुरी रम्या द्वारिकायां प्रतिष्ठिताः । पुनः प्रज्वलिता तस्य लीला या स्फुटम् (?) ॥ ८९ ॥
कृतिरस्यैकसंसारे धर्मस्थापनकारिणः । दुष्टानां च्छेददक्षस्य रक्षणं कुर्वतः सताम् ॥ ९० ॥
विष्टपादिमयं सर्वं सर्वं कृष्णेन च कृतम् । नररूपेण पश्यंती एवं ज्ञानमयं विभुम् ॥ ९१ ॥
रत्नाकरोस्मै श्रीभार्यां ददौ रत्नादिसंपदम् । जगतामुपकाराय अवतारो भवेद्विभोः ॥ ९२ ॥
य एनं पूजितं श्रीदं ध्यायते हृदयेऽमलम् । स भवेत् सदृशोनेन ऐश्वर्येण विवर्द्धते ॥ ९३ ॥
कीर्तनं यैः स्वगेहस्य गीतनृत्यैः प्रकीर्त्यते । तेषां लक्ष्मीर्वशा देहे आरोग्यं च यशोमलम् ॥ ९४ ॥
विप्रा ये स्थापिताः पूर्वं प्रथमेन सुचक्रिणा । तेषां पुरः सुरोगत्वा मायया तान् व्यमोहयत् ॥ ९५ ॥

किसी एक समय बलभद्र दीक्षा लेनेके बाद तुंगीगिरि पर्वतपर घोर तपश्चरण कर रहे थे । वहांपर जरासिंधुके वंशके शत्रु इनको देखकर घोर उपसर्ग करने लगे । उस समय बलदेवके सारथी सिद्धार्थका जीव स्वर्गमें था उसने अपने अवधिज्ञानसे स्वामीका घोर उपसर्ग जाना । वह शीघ्र ही वहांपर आया और मायामयी अनेक सिंह बनाकर उन मुनिके चारों ओर कर दिये । सिंहोंको देखकर वे सब शत्रु भाग गये । तबसे ये ब्राह्मण लोग उन मुनिको मनुष्य जानकर और उनके चारों ओर सिंह जानकर नृसिंह अवतार मानकर पूजा करने लगे । उन्होंने नृसिंहकी मूर्ति स्थापन कर ली और पूजने लगे । यह कथा दोनों हरिवंशपुराणोंमें लिखी है । यथा—

तुंगीशृंगं समाश्रित्य तपस्तेपेऽति दुष्करम् । भवभ्रमणतः शांतो बलदेवो दिगम्बरः ॥ ५६ ॥
एकद्वित्रिचतुःपंचषण्मासो पोषणव्रती । शांतं चक्रे कषायाणां पोषयन्···········॥ ५७ ॥
एकदा विहरन् स्वामी ध्यानधारणहेतवे । वने वैरिजनैर्दृष्टः शुद्धाहारदिदृक्षया ॥ ५८ ॥
पूर्ववैरं स्मरंतोमी श्रुत्वा ख्यातिं तपस्विनः । संभूय ते समाजग्मुः भूभृतो भूरि सद्भयाः ॥ ५९ ॥

समंततो भ्रमित्वा ते तत्स्थं प्रहरणोद्यताः । आत्मानमिव कर्माणि वेष्टयित्वा तपस्विनम् ॥ ६० ॥
कायोत्सर्गस्थितं साधुं निर्भयं स्तंभवत् स्थिरम् । सिंहरूपेण सिद्धार्थं तं ते हंतुं प्रचक्रमे ॥ ६१ ॥
पादपीठान् मुनेस्तावत् सिंहरूपाननेकशः । भयभीताः पलायागुर्दृष्ट्वा दशदिशं पृथक् ॥ ६२ ॥
स्वस्वस्थानैर्गतैर्भूपैः भयलज्जाकुलैस्ततः । नरसिंह इति ख्यातिं चक्रे तस्य सभा स्थितः ॥ ६३ ॥
केचित् प्रहरणान्मुक्ता मुनेः शरणमागताः । प्रणामं चक्रिरे केचित् दैवतस्य धियाभयात् ॥ ६४ ॥
सिंहनादेन संत्रस्ते नारसिंहेन विश्रुतः । मूर्तिः कृता धृता मूढैः पूजिता श्रेयसे स्थिता ॥ ६५ ॥
नारसिंहसुरेशस्य प्रथिता भुवि वै तदा । तदा प्रभृति मिथ्यात्वमेकमेतद जायत ॥ ६६ ॥

इस प्रकार संसारमें नृसिंह अवतारकी कल्पना हुई है ।

किसी एक दिन मथुरामें देवकीने बलभद्रके मुखसे श्रीकृष्णके अप्रमाण पराक्रमकी महिमा सुनी तब उसे कृष्णको देखनेकी इच्छा हुई । उसने सोचा कि बलभद्रके किसी प्रपंचसे ही कृष्णसे मिल सकते हैं । यही सोचकर बछडे सहित गौके पूजनेके व्रतका प्रपंच किया । बलदेवको लेकर वह देवकी गोकुल गई और गायोंके बनमें खेलते हुए नारायणको देखा । बहानेके लिये गौकी पूजा की और फिर देवकीने कृष्णका स्पर्श किया । कृष्णका स्पर्श करते ही वह बहुत प्रसन्न हुई । अपना मनोरथ सिद्ध किया । उस समय महा मोहके उदयसे देवकीके दोनों स्तनोंसे दूधकी धारा स्वयमेव निकलने लगी । उससमय बलभद्रने सोचा कि यदि इन दोनोंका माता और पुत्रपना प्रगट हो जायगा तो दुष्ट कंस न जाने क्या अपराध करेगा । अतएव दूधका निशान मिटानेके लिये बलदेवने दूधका घडा उठाकर देवकीके ऊपर डाल दिया अर्थात् दूधसे देवकीका अभिषेक कर दिया जिससे उसका सब शरीर दूधसे सफेद होगया। तदनंतर देवकीने श्रीकृष्ण यशोदाको सौंपे और आप बलभद्रके साथ मथुरा आई । उस समयसे लेकर भेडिया धसानकी तरह इस संसारमें स्त्रियां भादों कृष्णा द्वादशीके दिन बछडे सहित गौकी पूजा करती हैं और इसको व्रत मानती हैं । यह कथा भी दोनों हरिवंशपुराणोंमें लिखी है । यथा—लघु हरिवंशमें—

एकदा बलभद्रेण वर्ण्यमानं विचेष्टितं । तस्य मानुष्यमाकर्ण्य देवकी विस्मयं ययौ ॥ ७२ ॥

कृतोपवासव्याजेन सुतदर्शनहेतवे । व्रजं ययौ गोपगोपीजनगानविराजितम् ॥ ७३ ॥
तारघंटारवै रम्यैर्गोधनै राचितं क्वचित् । नानावृक्षगणैर्दृष्ट्वा सा सती प्रभूपगता ॥ ७४ ॥
नंदगोपस्ततः सार्द्धमागत्य च यशोदया । ननाम देवकी भक्त्या पश्यन्ती गोकुले श्रियः ॥ ७५ ॥
ततो यशोदयानीय क्रीडन्तं गोधनान्तरे । शिखिपिच्छकृतापिंडं वसानं पीतवाससी ॥ ७६ ॥
सुवर्णकर्णाभरणं श्यामं जनमनःप्रियम् । मृदुपाणिपदाम्भोजलीलाकृतनमस्कृतिम् ॥ ७७ ॥
देवक्या मातुरुत्संगे तया निन्ये स्वगर्भजम् । अ'लु गोक चिंर दृष्ट्वा जननी मुमुदेतराम् ॥ ७८ ॥
तं लोललोचनं बालं मृदुकोमलविग्रहम् । स्पृशन्ती निजहस्तेन मेने स्वजन्म सार्थकम् ॥ ७९ ॥
अहो हो वंचितो वैरी मया कंसो दुराशयः । पुत्रांगस्पर्शपीयूषं अद्यैवास्वादि तत्किल ॥ ८० ॥
सा देवकी ततः प्राह वनेपि वसति तव । श्लाघ्या यशोदा या नित्यमीदृशं पुत्रमीक्षसे ॥ ८१ ॥
इन्द्रः पुत्रविहीनोऽत्र राज्यलाभोपि नोचितः । तस्मात्त्वयासि वो नित्यं त्वदादेशपरायणैः ॥ ८२ ॥
जगाद गोपी पुत्रोयं स्वामिन्यास्तव पाल्यते । अस्माभिः सेवकैर्नित्यं त्वदादेशपरायणैः ॥ ८३ ॥
अत्र यद्रुचिरं वस्तु तत्तवैवास्ति निश्चितम् । तेनायं खलु पुत्रोपि तवैवेह ममास्ति कः ॥ ८४ ॥
अत्रान्तरे प्रस्तुतोस्याः पुत्रदर्शनतः स्तनौ । शशाक संवरीतुं नो क्षरंतौ रहितान्तरौ ॥ ८५ ॥
यथोज्झितोस्ति पुत्र रे दुष्टकंसस्य साध्वसात् । अत्यन्तशुद्धमात्मीयं दर्शनं नीरजजसा ॥ ८६ ॥
प्रकाशभीरुसहसा हली क्षीरघटैश्च ताम् । अभ्यर्षिंचन् महाबुद्धः दक्षः कार्येण मुज्झति ॥ ८७ ॥
हरिप्रेक्षणतः प्राप्तसुखां तां मथुरां पुनः । आनीय प्रवेश्याथ पित्रे वार्ता तमब्रवीत् ॥ ८८ ॥
ततःप्रभृति तज्जातं गोवत्सार्चननामकम् । मिथ्यात्वं वनितालोकमुग्धचित्तैः प्रतिष्ठितम् ॥ ८९ ॥

जब कृष्णकी बहिनका जन्म हुआ था तब कंसने उसकी नाक काटली थी। बडी होनेपर किसी एक दिन उसने अपना मुंह दर्पणमें देखा। सो अपना कुरूप देखकर संसारसे उदास हो दीक्षा धारण कर ली और वह अर्जिका बन गई। किसी एकदिन वह अर्जिका विंध्याचल पर्वतके ऊपर एक बनमें रात्रिमें ध्यान धारण कर बैठी थी। उसी मार्गसे एक भीलोंका राजा अन्य बहुतसे भीलोंके साथ किसी पथिकका धन लूटनेकेलिये जा रहा था। उन्होंने वह अर्जिका देखी और समझा कि यह कोई बनदेवी है। इसकी पूजा की, मानता करो। यदि इसकी पूजा करनेसे बहुतसा धन मिलेगा तो हम बलिदान देकर तेरी पूजा करेंगे। ऐसी प्रतिज्ञाकर वे चले गये। दैवयोगसे उस दिन उनको बहुतसा धन मिल गया। तब उन चोरोंने देवीका प्रत्यक्ष चमत्कार जानकर उसकी पूजा करनेका विचार किया। इधर उन भीलोंके चले जानेपर उस अर्जिकाके पास सिंह आगया और वह उस अर्जिकाका भक्षण कर चला गया। अर्जिका समाधिमरण कर स्वर्ग सिधारी। इसके बाद वे भील वहांपर देवीकी पूजा करनेकेलिये आये। परंतु उन्हें वह बनदेवी (अर्जिका) न मिली वहांपर केवल उसकी तीन उंगलियां पड़ीं मिलीं। उन्होंने उन्हींको खड़ा कर लिया और त्रिशूल मानकर उसकी पूजा करने लगे। बनके अरणा भैंसा और बकरे आदिको मारकर उससे झरते हुए मस्तकके रुधिरसे उस त्रिशूलकी पूजा करने लगे। इसप्रकार बलिदान देकर देवीकी स्थापना की और उसका नाम विंध्यवासिनी देवी रक्खा। तबसे ही भील आदि नीच पापी लोग परंपरासे ऐसा करते चले आ रहे हैं। वह महा पापस्थान आजतक मिरजापुरके निकट विंध्याचल पर्वतपर है। वहांपर अब भी भैंसे बकरे आदि पशुओंका बध होता है। बडे बडे नामधारी पढे लिखे पंडित लोग भी वहां जाकर पूजा करते हैं। सो यह सब महा पापका कारण है। सो ही हरिवंशपुराणमें लिखा है—

प्राप्ता विंध्याटवीं मार्गवशान्नानाद्रुमांचिताम्। बहुभिल्लगणाकीर्णां भीरूणां भयदायिनीम् ॥ ६९ ॥
तत्र सा निशि निःशंका निषण्णप्रतिमास्थिता। भिल्लैरदर्शि मुष्णातुं सार्थवाहान् समागतैः ॥ ७० ॥
ज्ञात्वैतां वनदेवीं ते सप्रणामा निजे हृदि। भिल्लाश्च प्रार्थयन्तेति .... ॥ ७१ ॥
.... ॥ ७२ ॥
....अर्चयिष्याम आदरात् ॥ ७३ ॥
कृत्वेति प्रार्थनां यातास्ते भिल्ला विधियोगतः। धनवस्त्रादिसंपूर्णान् सार्थवाहान् महाध्वनि ॥ ७४ ॥

प्राप्य हत्वा च तानेव दुकूलकनकादिकम् । नीत्वा हृष्टाशया राजन् देविपार्श्वे समागताः ॥ ७५ ॥
तत्र सा संयता भिल्लैः तथैव प्रतिमा स्थिता । अदर्शि प्रणतैश्चित्ते मनोरथविधायिनी ॥ ७६ ॥
तत्कालमेव सा प्राप्य समाधिमरणं ययौ । प्रतिमाप्रभृतिः स्वर्गे विधिना नशने कृते ॥ ७७ ॥
ततो विचारमुक्तास्ते तत्रारोप्यातिदैवतम् । निपात्य विषमारण्यमहिषं तत्पुरोऽवधुः ॥ ७८ ॥
रुधिररक्तमांसस्य वलिं विचिकिरुर्मुदा । विनत्समक्षि क्राकीगं जयदेवीति वादिनः ॥ ७९ ॥
तदाप्रभृति लोकोयं देवमूढोऽविवेकवान् । महिषादीन् पशून् हत्वा पूजयेद्विंध्यवासिनीम् ॥ ८० ॥
तदा तैः शवरैः पापैः स्थापितं तदघप्रदम् । लोके विस्तारेऽगमेद्देवी विप्रपूजनमीदृशम् ॥ ८१ ॥

तदनंतर अनेक लोगोंने पुर नगर गांव वन उपवन पर्वत तीर्थ आदि स्थानोंमें चंडी मुंडी दुर्गा भवानी कात्यायनी बीजासणी शीतला भैरव क्षेत्रपाल आदि अनेक नामधारी देवी देवताओंकी स्थापना की और वे अनेक जीवोंका बधकर उनकी पूजा करने लगे। इस प्रकार मांसभक्षी भील और शूद्र जातियोंने इन कुदेवोंकी स्थापना की है। तथा कितने ही लोभी ब्राह्मण भी ऐसा ही करने लगे हैं। सो यह विपरीत मिथ्यात्व अबतक चला आता है। यह सब विपरीतता श्रीअरिष्ट नेमिनाथ तीर्थंकरके समयसे हुई है।

इसी प्रकार श्री महावीर स्वामीके तीर्थमें एक मुनि और एक ज्येष्ठा नामकी अर्जिकाने अपनी दीक्षा भंगकर परस्पर संभोग किया। उससे ज्येष्ठाके गर्भ रह गया। वह ज्येष्ठा अर्जिका राजा श्रेणिककी पटरानी चेलनाकी बहिन थी। इसीलिये चेलनाने धर्मकी हंसी मिटानेके लिये उस ज्येष्ठाको अपने घरमें लाकर रक्खा। समय पूरा होनेपर उसके पुत्र हुआ। सो अर्जिका तो छेदोपस्थापना प्रायश्चित्त लेकर तपोवनको चली गई तथा वे मुनि भी छेदोपस्थापना प्रायश्चित्त लेकर बनमें चले गये। तथा पुत्र चेलनाके यहां पलने लगा और बढने लगा। परंतु पापकर्मके उदयसे खेलता हुआ भी वह सब बालकोंसे विरुद्ध रहता था। चेलनाके पास उसके बहुतसे झगडे आने लगे। तब किसी एक दिन चेलनाने कहा कि किससे तो उत्पन्न हुआ और किसको दुःख देता है। अपनी यह बात सुनकर उस बालकने चेलनासे पूछा कि मेरे माता पिता कौन हैं। तब चेलनाने उसे पहला सब वृत्तांत सुनाया। उसे सुनकर वह बालक अपने पिता मुनिके पास गया और उसने उससे जिनदीक्षा ले ली। उस पुत्रका नाम सत्यकी था सो मुनि होनेपर भी

उसका नाम सात्यकी ही रहा। क्रम क्रमसे वह पढने लगा सो ग्यारह अंग और चौदहवें विद्यानुवाद नामके अंगतक पढ गया। उस समय अनेक विद्याएं आकर कहने लगीं कि हमें आज्ञा दीजिये। जो काम हो सो करें। तब वह सात्यकी मुनि ग्यारहवां रुद्र उन विद्याओंकी रूप संपदा देखकर तथा मुनिपनेसे शिथिल होकर कहने लगा कि जब हम स्मरण करें तब आकर हमारी आज्ञामें रहना।

किसी एक प्रसंग पाकर भगवान महावीर स्वामीने अपनी दिव्यध्वनिमें कहा कि "यह सात्यकी मुनिदीक्षासे च्युत हो जायगा, भगवानकी यह वाणी सुनकर वह सात्यकी मुनि पर्वतोंके एकांत स्थानोंमें रहने लगा। किसी एक दिन वहांपर किसी जलाशयमें कोई राजकन्या स्नान करने आई थी उससे सात्यकी रुद्रने कहा कि तू मुझसे विवाह कर ले। तब कन्याने कहा विवाहकी बात हमारे माता पिता जानें। यह सुनकर रुद्रने कहा कि अच्छा यह बात अपने माता पितासे कहना। कन्याने कहा अच्छा कहेंगे। तदनंतर कन्याने घर जाकर अपने माता पितासे सब बात कही। इधर उस रुद्रने भी जाकर वह कन्या मांगी। माता पिताने वह कन्या उस रुद्रको विवाह दी। परंतु उस रुद्रके कामसेवनसे वह कन्या मर गई। इसप्रकार कितनीही कन्यायें मरणको प्राप्त हुई। अंतमें उसने एक पर्वत राजाकी कन्या पार्वतीके साथ विवाह किया वह इसके कामसेवनसे मरी नहीं सो वह सात्यकी रुद्र अत्यंत कामी होकर तथा अत्यंत निर्लज्ज होकर उससे कामसेवन करने लगा। उस रुद्रने राजा पर्वतको भी बहुत दुःखी किया। इससे चिढकर राजा पर्वतने इसके मारनेका उपाय सोचा। परन्तु रुद्रके पास बहुतसी विद्याएं थीं इसलिये वह मार न सका। तब राजा पर्वतने अपनी कन्या पार्वतीसे पूछा कि ये विद्यायें किसी समय इससे दूर भी रहती हैं या सदा इसके पास रहती हैं। पार्वतीने यह बात रुद्रसे पूछी। रुद्रने कहा कि ये विद्याएं संभोगके समय तो दूर रहती हैं और किसी भी समय दूर नहीं रहतीं सदा पास रहती हैं। पार्वतीने यह बात जानकर राजा पर्वतसे कह दी। तदनंतर किसी एक दिन राजाने उस रुद्रको संभोग करते समय नग्न अवस्थामें ही मार डाला।

अपने स्वामीका मरना देखकर उन विद्याओंने अनेक उपद्रव करना प्रारंभ किया और वे सबको पीडा देने लगीं। तब सब लोगोंने प्रार्थना की कि हे देवियां अब शांत हो जाओ। अब क्षमा करो। तब उन सब देवियोंने कहा कि "इस राजाने जिस अवस्थामें सात्यकीको मारा है, उसी आकार की उसकी मूर्ति बनाकर स्थापना करो और फिर उसको पूजो तब शांति होगी। अर्थात् योनिमें मैथुनाकार स्तंभित लिंगकी मूर्ति बनाकर पूजो तब सुख मिलेगा अन्यथा दुःख ही पाते रहोगे। देवियोंकी यह बात सुन-

कर राजा प्रजा सबने ऐसा ही किया। उनको देखकर भेडियाधसानके समान और लोगोंने भी ऐसे ही रूपकी मूर्ति बनाकर स्थापना की और लोग उसे पूजने लगे। तबसे शिवकी स्थापना प्रारंभ होने लगी। यह सब कथन उत्तरपुराण आदि अनेक जैन-शास्त्रोंमें लिखा है। विशेष वहांसे जान लेना। यहां अत्यंत संक्षेपसे लिखा है।

रुद्र ग्यारह होते हैं सो इस कालमें भी ग्यारह हुये हैं परन्तु यह शिवकी स्थापना अंतके रुद्रसे हुई है। यह सब कालदोष है। इसी कालदोषसे कितने ही स्वार्थी ब्राह्मणोंने अपनी आजीविकाकेलिये अनेकप्रकारके स्वरूप बनाकर कितने ही निंद्य देवताओंकी स्थापना की है तथा लोगोंको ठगनेके साधन बनाकर कितनी ही विपरीत बातें फैलाई हैं सो सब प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। वे सब सम्यग्दृष्टियोंकेलिये श्रद्धान ज्ञान वा आचरण करनेके योग्य नहीं हैं। सदैव हेय हैं।

आगे थोडेसे कुशास्त्रोंकी उत्पत्ति लिखते हैं।

श्रीऋषभदेवके पुत्र महाराज भरत थे तथा भरतका पुत्र मारीच था। उसने मिथ्यात्व कर्मके उदयसे मुनिपदसे भ्रष्ट होकर सांख्य शास्त्र बनाया। उसने पृथ्वी आदि पच्चीस तत्त्वोंसे आत्मा बनता है ऐसा बतलाया। जिसप्रकार बेर जडी गुड और मधुके फूल जुदे जुदे हैं परंतु उन सबके मिलनेसे मद्य बन जाता है। पहले उन सबमें मद्य बनने की शक्ति थी वही शक्ति अब मिलनेसे प्रगट हो गई और मद्य बन गया उसीप्रकार पच्चीस तत्त्वोंमें आत्मा बननेकी शक्ति है उन सबके मिलनेसे आत्मा बन जाता है। इसप्रकार अनेकप्रकारके विपरीत कथनको कहनेवाले सांख्यमतके शास्त्र बनाये। उसीने पातंजलि मतके शास्त्र बनाये। उसमें हठयोग, पवनका साधन, और शुद्ध ध्यानादिकका निरूपण किया। तदनंतर श्रीशीतलनाथ तीर्थंकरके समयमें शालि ब्राह्मणने दश-प्रकारके कुदानोंकी स्थापना की और उनकी परिपाटी चलानेकेलिये ऐसे दान देनेका विधान करनेवाले ग्रंथ बनाये। उनमें अपना स्वार्थ सिद्ध करने और आजीविकाकी परंपरा चलानेकेलिये ब्राह्मणोंको गोदान सुवर्णदान आदि अनेकप्रकारके दान देना बतलाया। सबका फल स्वर्ग मोक्ष बतलाकर उन दानोंकी पुष्टि की। तथा इसप्रकार लोगोंको ठगनेका उपाय बनाकर उसकी परं-परा चलाई। इसप्रकार उसने जैनधर्मके अत्यन्त विरुद्ध कथन निरूपण किया और लोगोंको खूब ही भुलावा दिया।

एक धारणयुगल नामका नगर था उसमें अयोध नामका राजा राज्य करता था उसकी दत्ती नामकी रानीसे सुलसा नामकी अत्यंत रूपवती पुत्री हुई थी। राजाने उसका विवाह करनेके लिये स्वयंवर रचा था और अनेक राजा बुलाये थे। उसमें सगर आदि अनेक राजा आये थे। उनमें एक मधुपिंगल नामका राजा भी आया था। राजा मधुपिंगलने सुलसाके पास अपनी भूआ (फफी)

मेजी और कहलाया कि तू मधुपिंगलके कंठमें वरमाला डालना। उस फूफीने मधुपिंगलका बहुत यश गाया। सुलसाने उसका भारी यश सुनकर उस फूफीकी बात स्वीकार कर ली।

इधर सब राजाओंमें मुख्य राजा सगरने भी सुलसाकी रूप संपदा देखकर उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा की। तथा उसने ऊपर लिखा हुआ मधुपिंगल और सुलसाका विचार भी सुना। तब राजा सगरने अपने मंत्रियोंसे विचार किया। उस राजाके एक विश्वभूति नामका पुरोहित था। जो सामुद्रिक शास्त्रके जानकारोंमें मुख्य था। उन मंत्रियोंकी सलाहसे उसने एकांतमें बैठकर एक नवीन सामुद्रिक शास्त्र बनाया। उसमें मधुपिंगलके मांजार नेत्रोंको देखकर उसको ठगनेके लिये उसके बहुत दोष दिखलाये। तथा राजा सगरके चिन्होंके बहुत गुण बतलाये। ऐसा नवीन जाली ग्रंथ बनाकर उसे धूएंमें धूसरित कर पुराने वस्त्रमें बांधकर एक लोहेके संदूकमें रक्खा और उसे स्वयंवर भूमिके निकटकी पृथिवीमें एक गढा खोदकर संदूक समेत गाढ दिया। ऊपरसे वह गढा मिट्टीसे भरकर एकसा कर दिया। यह सब काम उसने इस प्रकार किया जो किसीको मालूम नहीं होने दिया तदनंतर जब सब राजा इकट्ठे हुए तब किसी अपरिचित पुरुषसे वह ग्रंथ मंगवाया और उस पुरोहितने सब राजाओंके सामने उस ग्रंथका व्याख्यान किया। उसमें सगरके चिन्होंका बहुत कुछ शुभ निरूपण किया और मधुपिंगलके बिल्लीकेसे नेत्रोंका वर्णन करते हुए बहुतसे दोष दिखलाये।

यह सब कथन वहां बैठे हुए सब राजाओंने सुना राजा मधुपिंगलने सुना। राजा मधुपिंगल अपने बुरे चिन्होंको सुनकर तथा अपने शरीरमें भाग्यहीन दरिद्रियोंके लक्षण जानकर उदास होकर वहांसे उठ गया। उसने सुलसाके साथ विवाह करनेकी इच्छा छोड दी और विरक्त होकर जिनदीक्षा धारण कर ली। वह प्रतिदिन घोर तप करने लगा। जिससे उसका शरीर बहुत ही कृश होगया। किसी एकदिन विहार करते करते वह एक स्थानपर पहुंचा वहांपर अनेक सामुद्रिक शास्त्रको जाननेवाले विद्वान् बैठे थे। एक सामुद्रिक शास्त्रीने इसके लक्षण देखकर कहा कि इस सामुद्रिकशास्त्रको भी धिक्कार हैं। क्योंकि देखो इसके शरीरमें कैसे पुण्याधिकारियोंके लक्षण हैं परंतु यह कैसा कष्ट सह रहा है। उस शास्त्रीकी यह बात सुनकर दूसरा शास्त्री कहने लगा कि क्या तुझे मालूम नहीं है कि सुलसाके स्वयंवरमें इस मधुपिंगलको ठगनेकेलिये एक नया सामुद्रिक शास्त्र बनाया गया था और राजा सगरने यह सब प्रपंच रचकर सुलसाके साथ विवाह किया था। इसके बिल्लीके नेत्रोंमें बहुतसे दोष निकाले थे। परंतु यह भोला है उस समय इसने कुछ समझा नहीं, बिना ही समझे वहांसे निकलकर उदास होकर दीक्षा ग्रहण करली। उन दोनों शास्त्रियोंकी बात राजा

मधुपिंगलने भी सुनी और सुनते ही क्रोधको प्राप्त हुआ। अंतमें दुःखसे मरकर असुर जातिके देवोंमें महाकाल नामका असुर हुआ। उसने अपने कुअवधिज्ञानसे राजा सगरके पहलेके सब समाचार जान लिये उसने जो ठगाई की थी सो भी सब जान ली। तथा उससे शत्रुता धारण कर वह उसके नाश करनेका उपाय सोचने लगा।

पहले क्षीरकदंब ब्राह्मणके पुत्र पर्वतका वर्णन कर चुके हैं पर्वतका नारदसे विवाद हुआ था राजा वसुको साक्षी बनाया था। राजा वसु झूठ बोलनेके कारण सिंहासन सहित पृथ्वीमें धंसकर नरक पहुंच चुका था और उस स्वक्तिमति नामके नगरसे लोगोंने उस पर्वतको निकाल दिया था वहांसे निकाल कर पर्वत ब्राह्मण देशांतरोंमें फिरता हुआ बहुत दुखी होरहा था कि इतनेमें ही दैव-योगसे उसको यह महाकाल नामका असुर मिलगया महाकालने पर्वतसे कहा कि अब तू दुःख मत कर अब मैं तेरी सहायता करूंगा। पर्वतने कहा कि "क्या करूं तू कहे सो करूं" तब महाकाल नामके असुरने कहा कि तू किसी उपायसे राजासगर और सुलसाको अग्निमें होम दे। इसके लिये चमत्कार सब मैं बतलाता रहूंगा। महाकालकी यह बात सुनकर पर्वतने होमके सब शास्त्र बनाये। उनमें अनेक प्रकारके यज्ञ करनेका विधान लिखा। पशुमेध नरमेध आदि कितने ही प्रकारके यज्ञ लिखे। उन सबका फल स्वर्ग बतलाया। अनेक प्रकारके पापोंका प्रायश्चित्त भी यज्ञ करना बतलाया। और बतलाया कि इसी यज्ञसे सब पाप दूर होजाते हैं और करने करानेवाले सब स्वर्गमें जाते हैं। यज्ञका करनेवाला आचार्य, करानेवाला यजमान और यज्ञमें जो बकरे भैंसे घोडे मनुष्य आदि होमे जाते हैं वे सब मरकर स्वर्ग जाते हैं। उसने उन शास्त्रोंमें यह भी लिखा कि "यज्ञमें वा होममें जो जीव घात होता है उससे आचार्य वा करानेवाले यजमानको उनकी हिंसाका पाप नहीं लगता। क्योंकि यज्ञमें मरे हुए सब जीव स्वर्ग जाते हैं।" मंत्रसे मरना वा मारना पाप नहीं है। इसप्रकार पापोंका निरूपण करनेवाले अनेक शास्त्र बनाये। उन सब शास्त्रोंका नाम वेद रक्खा। ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्वणवेद ऐसे अलग अलग चार वेद बनाये। इन सब शास्त्रोंको बनाकर और वह पर्वत स्वयं ब्राह्मण बनकर उस महाकालासुरकी सहायतासे संसारमें उन वेदशास्त्रोंका प्रचार करने लगा। उसने लोगोंको समझाया कि यह वेद आर्षवेद है, यह स्वयं सिद्ध है यह किसीने बनाया नहीं है। यह अपने आप प्रगट हुआ है। इसप्रकार कह कह कर वह पर्वत लोगोंको ठगने लगा। क्योंकि उसका अभिप्राय तो और ही कुछ था।

उस पर्वत और कालासुरने यह उपाय सोचा कि वह कालासुर तो पहले किसी देशमें महामारी आदि अनेक प्रकारके उपद्रव करता था जिससे सब लोग बहुत ही दुखी होते थे। तब पर्वत वेदिया ब्राह्मण बनकर उसकी शांतिके लिये लोगोंको अनेक प्रकारके

यज्ञ करनेका उपदेश देता था। जब वे लोग यज्ञ करते थे और अनेक पशुओंका होम करते थे तब वह कालासुर शांति कर देता था। उपद्रव करना बंद कर देता था। अनेक देशोंमें इस प्रकार करता हुआ वह पर्वत कालासुरके साथ राजासगरके देशमें पहुंचा। असुर ने जाकर वहां बहुतसा उपद्रव फैलाया। तब पर्वतने राजासे कहा कि यदि तू शांति करना चाहता है तो यज्ञ कर। तब राजाने यज्ञ कराया। यज्ञ हो चुकने पर राजाके यहां शांति होगई यह देखकर अनेक जीव मरनेके डरसे पर्वतके शरणमें आये तथा पर्वतके कहे अनुसार श्रद्धान करने लगे।

तदनंतर उस पर्वतने राजासगरसे बहुतसे पशु मगाकर यज्ञमें होमे। उसे पशुमेध यज्ञ बतलाया। फिर घोडे होमे उसको अश्वमेध यज्ञ बतलाया। इसीप्रकार उसने गोमेध यज्ञ तथा नरमेधयज्ञ किये। फिर उस पर्वतने राजासगरसे कहा कि हे राजन्! देख; ये पशु जो इस यज्ञमें होमे गये हैं वे सब मरकर स्वर्गलोक गये हैं सो तू देख। यह कहकर कालासुरकी मायासे स्वर्ग जाते हुए दिखलाया। उसको देख देखकर सब लोग उसकी श्रद्धा करने लगे।

तदनंतर राजासे पर्वतने कहा कि अब तू राजसूय यज्ञ कर। बहुतसे राजाओंको बुलाकर यज्ञ करना राजसूय यज्ञ कहलाता है। सगरने पर्वतके कहे अनुसार अनेक राजाओंको बुलाया। उन राजाओंमें कितने ही राजा कालासुरके (मधुपिंगलके) शत्रु थे सो वे सब अपनेको स्वर्गमें जानेकी इच्छासे उस होमकुंडमें पडकर मरगये, कालासुरने अपनी मायासे उन सबको स्वर्ग जाते हुए दिखलाया तदनतर राजा सगर भी अपनी बल्लभा रानी सुलसाके साथ यज्ञमें पडकर मरगया और मरकर अधोगतिमें पहुंचा।

इसप्रकार कालासुर अपना कार्यकर अपने स्थानको चला गया। तथा पर्वतने संसारमें वेद शास्त्रोंकी परिपाटी चलानेके लिये उसके तीन कांड बनाये। पहला कर्मकांड बनाया जिसमें यज्ञ आदि करनेका विधान किया। दूसरा उपासनाकांड बनाया जिसमें स्नान, संध्या, आचमन, तर्पण, श्राद्ध, पूजन, जप, ध्यान, स्तोत्र, पाठ, तीर्थयात्रा, दान आदिके द्वारा देवोंके आराधन करनेकी विधि बतलाई। उसने तीसरा कांड ज्ञान बनाया। जिसमें वेदांत मार्ग, अध्यात्म स्वरूप परमब्रह्म मय योगाभ्यास आदिकी विधिका निरूपण किया और बतलाया कि कर्मकांड और उपासनाकांडसे यह जीव शरीर और भोगादिकसे रहित मुक्त हो जाता है। इस प्रकार उसने अनेक प्रकारकी विधियोंका निरूपण किया और उसकी परंपरा चलाई। अंतमें मरणकर वह अधोगतिको प्राप्त हुआ। इसप्रकार नवीन सामुद्रिक शास्त्रकी तथा वेदशास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई। सो सम्यग्ज्ञानियोंके श्रद्धान ज्ञान वा आचरण करनेके योग्य नहीं है।

पांचवें श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुके एक गुरुभाई थे। जिनका नाम वराहमिहर था। वे वराहमिहर ब्राह्मण थे उन्होंने अपने

नामसे बारह हजार प्रमाण एक बराहसंहिता बनाई। उसमें बहुतसा गणित लिखा है और बहुतसी जन्मपत्रियोंका स्वरूप लिखा है। यह सब मिथ्यारूप लिखा है। इनके सिवाय अनेक लोगोंने अपनी आजीविकाके लिये अनेक पुराण तथा अनेक कथाओंके शास्त्र लिखे हैं। उनमें अनेक प्रकारके विपरीत कथन लिखे हैं। वे केवल अपने पालन पोषण करनेके लिये लिखे हैं और अपनी आजीविका बनाये रखनेके लिये उनको प्रसिद्ध किया है। इस प्रकार खोटे शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है सो सब हुंडावसर्पिणीकाल दोषसे हुई है। इसप्रकार ऊपर लिखे हुये एकांत संशय विनय अज्ञान और विपरीत मिथ्यात्वकी उत्पत्ति हुई है। इनके उत्तर भेद तीनसौ तिरेसठ हैं ये तीन सौ तिरेसठ भेद अनादिसे चले आ रहे हैं। तथा नवीन रूपसे जो इनकी उत्पत्ति होती हैं इसलिये उनको सादि कहते हैं। इन्हींका नाम अगृहीत और गृहीत है। इन दोनोंमेंसे अगृहीतसे गृहीतका फल बहुत बुरा होता है। जिसप्रकार किसी पुरुषके पीढी दर पीढीसे किसीका ऋण चला आ रहा है वह इतना दुःख नहीं देता जितना कि नवीन हालका लिया हुआ ऋण दुःख देता है। इसीप्रकार अनादि मिथ्यात्व अगृहीत है। वह अनादिकालसे इस जीवके साथ लगा हुआ है तथा फिर भी यह जीव नवीन सादि मिथ्यात्वको वा गृहीत मिथ्यात्वको धारण करता है वह इसे अत्यंत दुख देता है। ऐसा जानकर पहले कहे हुए समस्त मिथ्यात्वोंको छोडकर भगवान अरहंत देवके कहे हुए मोक्षमार्गका यथार्थ श्रद्धान करना चाहिये इसीका ज्ञान और आचरण करना चाहिये। यही इस जीवके उद्धार करनेको समर्थ है। इसके सिवाय अन्य कोई धर्म जीवका उद्धार नहीं कर सकता।

यह सामुद्रिक वेदकी उत्पत्तिका कथन बृहद्धरिवंश तथा बृहत्पद्मपुराण तथा द्वितीय बृहत्पद्मपुराणसे लेकर संक्षेपसे लिखा है। इनके सिवाय इस संसारमें और भी अनेक लोभी जीवोंने अपना द्रव्य उपार्जन करनेके लिये अनेक कुशास्त्रोंकी रचना की है। ज्योतिष्क वैद्यक मंत्र तंत्र यंत्र शृंगार युद्ध कोक आदि अनेक कुशास्त्रोंकी रचना की है। तथा अनेक देवी देवताओंकी मूर्ति बनाकर स्थापन की है उनके प्रसादको खाते हैं और अपनी आजीविका चलाते हैं यह सब उनका लोभ समझना चाहिये। वे लोग इसको धर्म बतलाते हैं सो सब मिथ्या है।

इनके सिवाय लोगोंने अनेक व्रत उपवास उत्सव आदिके दिन स्थापन कर रक्खे हैं उनसे ही अपनी आजीविका चला रहे हैं। दीपावली, यम द्वितीया, अक्षय नौमा पूर्णिमा, मकर संक्राति, कर्क संक्राति, माघकृष्णा चतुर्थी, माघशुक्ला पंचमी, होली गौरी दोलोत्सव, नवदुर्गा रावणवध दशमी (चैतसुदी दशमी) अक्षय तृतीया, पारक्षिक बंधन, गोवत्सार्चन, श्राद्ध और वर्ष दिनकी छव्वीस एकादशी आदि अनेक रूपसे धर्मकी रचना कर डाली है। इसी प्रकार मुसलमान ईसाई आदि यवन लोगोंने भी अनेक

कुशास्त्रोंकी रचनाकर अपने अपने परंपरा स्थापन करनेके लिये अनेक कुशास्त्रोंकी रचना कर डाली है। सो सब मिथ्यात्व है, ऐसा जानना।

२३०। चर्चा दोसौ तीसवीं।

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च। मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके॥

अर्थ—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, और चारों ओर फैले हुए तारे ये पांच प्रकारके ज्योतिषी देव हैं। सो ये सब ज्योतिषी देव ढाई द्वीपमें मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा दिया करते हैं।

तत्कृतः कालविभागः।

इन्हीं घूमते हुए ज्योतिषी देवोंसे कालका विभाग होता है। ऐसा सूत्रोंमें कहा है सो ये ज्योतिषी देव जो मेरुकी प्रदक्षिणा देते रहते हैं सो कुछ अंतरसे देते हैं या मेरुसे लगकर ही घूमते हैं।

समाधान—मेरु पर्वतसे ग्यारहसौ इकईस योजन हटकर साधारण तारे तथा ग्रह नक्षत्र घूमते हैं। सूर्य चंद्रमा मेरु पर्वतसे बहुत हटकर जंबूद्वीपकी परिधिके समीप जाकर घूमते हैं। उसमें भी उत्तरायण दक्षिणायन होते रहते हैं सो उत्तरायणके समय कम अंतर रहता है और दक्षिणायनके समय अधिक अंतर रहता है। ऐसा त्रिलोकसारमें लिखा है। यथा—

इगवीसेयारसयं विहाय मेरुं चरंति जोइगणा। चंदतियं वज्जित्ता सेसा हु चरंति एकपहे॥ ३४५॥

२३१। चर्चा दोसौ इकतीसवीं।

तीसरे वर्षमें एक अधिक मास (लोंदका महीना) होता है। जो संसारमें भी प्रसिद्ध है और ज्योतिषके गणितशास्त्रमें भी लिखा है। सिद्धांतशिरोमणिमें लिखा है—

द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनै षोडशमेव च। चतुर्थघटिकानां च यतितोधिकमासकः॥

अर्थ—बत्तीस महीना सोलह दिन और चार घड़ी बीत जानेपर एक अधिक मास होता है। ऐसा ज्योतिषशास्त्रोंमें लिखा है। तथा पंचांग आदिमें भी लिखा जाता है और व्यवहारमें भी ऐसा ही वर्ताव किया जाता है। सो जैनमतमें इसका वर्णन किया है या नहीं?

समाधान—लघु हरिवंशपुराण बृहद्हरिवंशपुराण उत्तरपुराण आदि ग्रंथोंमें लिखा है कि यादवलोग जब द्वारकासे निकल गये थे और फिर वापिस आये थे तब वे अधिक मासको भूल गये थे। इसीलिये द्वारिकाके भस्म होते समय सब जल गये थे, ऐसा वर्णन है। तथा त्रिलोकसारमें लिखा है कि एक महीनेके साथ एक दिन बढता है। इस हिसाबसे तीस महीनेमें तीस दिन बढ जाते हैं अर्थात् ढाई वर्षमें एक महीना बढ जाता है। अथवा पांच वर्षमें दो महीने बढ जाते हैं। यथा—

इगमासे दिणवड्ढी वस्से बारह दुवस्सगे सदले। अहिओ मासो पंचयवासप्पजगे दुमासहिया॥४१०॥

प्रश्न—हीनमास किस प्रकार होता है?

उत्तर—मुहूर्तचिंतामणिमें लिखा है कि:—

इष्टार्कसंक्रांतिविहीनयुक्तो, मासोधिमासः क्षयमासकस्तु।

अर्थात्–यदि एक अमावस्यासे लेकर दूसरी अमावस्या तक एक महीनेमें यदि दो संक्रांति पड़ जांय तो वह क्षयमास गिना जाता है। ऐसा परमतके ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है। जैनमतके शास्त्रोंमें इसका विशेष वर्णन देखनेमें नहीं आया।

प्रश्न–अधिकमासमें कार्य अकार्यकी विधि किस प्रकार करनी चाहिये?

उत्तर–जो महीना अधिक हो उसके व्रत विधान आदि दूसरे महीनेमें करने चाहिये, पहिलेमें नहीं। सो ही लिखा है—

यस्मिन् संवत्सरे स्यातां द्वौमासावधिकौ यदा। उत्तरे व्रतकार्याणि प्रथमे न कदाचन्॥

अभिप्राय यह है कि कृष्णपक्षके व्रत पहले महीनेमें कर लेने चाहिये और शुक्लपक्षके व्रत दूसरे महीनेमें करने चाहिये। (पहले महीनेका शुक्लपक्ष और दूसरे महीनेका कृष्णपक्ष अधिक मास गिना जाता है)

२३२। चर्चा दोसौ बत्तीसवीं।

तीर्थंकरोंके कल्याणकोंमें इन्द्रादिक चतुर्णिकायके देव मध्यलोकमें आते हैं। उनमें इन्द्रके हाथियोंकी सेनामें ऐरावत हाथी मुख्य बतलाया है और उसे एक लाख योजनका बतलाया है। सो वह एक लाख योजन ऊंचा है या एक लाख योजनका उसका विस्तार है।

समाधान–ऐरावत हाथीका विस्तार एक लाख योजन है। उसकी उंचाई पच्चीस हजार योजन है। सो ही आदिपुराणमें भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न होनेके समय बाईसवें पर्वके ५२ वें श्लोकमें लिखा है। यथा—

इति व्यावर्णितारोहपरिणाहचतुर्गुणम् । गजानीकेश्वरश्चक्रे महैरावतदन्तिनम् ॥

प्रश्न—भाषा मंगलमें उस हाथीके सौ मुंह बतलाये हैं। यथा—"योजन लक्ष गयंद वदन सौ निरमये"
सो क्या ठीक है—

उत्तर—किसी आर्ष ग्रंथमें तो सौ मुख बतलाये नहीं हैं केवल भाषाकारके वचन हैं तथा काष्ठसंघ आम्नायके वचन हैं। शास्त्रोंमें इस ऐरावत हाथीके बत्तीस मुख तो लिखे हैं। सो ही आदिपुराण बाईसवें पर्वमें पचासवें श्लोकमें भगवानके केवलज्ञानकी उत्पत्तिके समय लिखा है—

तमैरावणमारूढः सहस्राक्षोऽद्युतत्तराम् । पद्माकर इवोत्फुल्लपंकजो गिरिमस्तके ॥ ५२ ॥
द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य प्रत्यास्यं च रदाष्टकम् । सरः प्रतिरदं तस्मिन्नब्जिन्येका सरः प्रति ॥ ५३ ॥
द्वात्रिंशत्प्रसवास्तस्यां तावत्प्रमितपत्रकाः । तेषु पत्रेषु देवानां नर्तक्यस्तत्प्रमाः पृथक् ॥ ५४ ॥

लघु आदिपुराणमें भी बारहवें सर्गमें लिखा है—

द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य दन्ता अष्टौ मुखं प्रति । प्रतिदन्तं सरश्चेकमब्जिन्येका सरः प्रति ॥ १७ ॥

हरिवंशपुराणमें अट्ठाईसवें सर्गमें ऐसा ही लिखा है—

अनेकवर्णनोपेतं दिव्यरूपं गतोपमम् । नागदत्ताभियोग्येशो नागमैरावतं व्यधात् ॥ ५० ॥
तमैरावणमारूढः सहस्राक्षः तरां बभौ । उदयाचलमारूढो यथा भानुः स्वतेजसा ॥ ५१ ॥
द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य सदक्षाणि भवंति हि ।

सिद्धांतसार प्रदीपकके छठे अधिकारमें लिखा है—

अथेन्द्रस्यैरावतदन्तिनः किंचिद्वर्णनं करोमि । जबूंद्वीपप्रमाणगं वृत्ताकारं शंखेन्दुकुन्दधवलं नाना-भरणघंटाकिंकिणीतारिकाहेमकक्षादिभूषितं कामगं कामरूपधारिणं महोन्नतमैरावतगजेन्द्रं नागदत्ताभि-

योग्येशो वाहनामरो विकरोति। तस्य दंतिनः बहुवर्णविचित्रतानि रम्याणि द्वात्रिंशद्वदनानि संति।

श्री पार्श्वपुराणके अठारहवें सर्गमें लिखा है—

तमैरावणमारूढः सहस्राक्षो व्यभात्तराम्। उदयाचलमारूढो यथा भानुः स्वतेजसा॥ १६॥
द्वात्रिंशद्वदनान्यस्य सदन्तानि भवंति च।

इन सब प्रमाणोंसे बत्तीस मुख सिद्ध होते हैं।

प्रश्न—रूपचंद भाषा पंच मंगलको तुम काष्ठसंघका किस प्रमाणसे बतलाते हो।

उत्तर—इसी पंच मंगलमें आगे चौथे मंगलमें समवसरणका वर्णन करते समय तीन गंधकुटी बतलाई उसके ऊपर भगवानके विराजमान होनेका सिंहासन बतलाया। तदनंतर फिर उसके ऊपर एक कमल बतलाया। और फिर उसके ऊपर अंतरीक्ष (अधर) भगवान् अरहंतदेवका विराजमान बतलाया। जैसा कि उसमें लिखा है। यथा—

मध्यप्रदेश तीन मणिपीठ तहां बनी। गंधकुटी सिंहासन कमल सुहावनी॥
तीन छत्र सिर शोभित त्रिभुवन मोहियें। अंतरिक्ष कमलासन प्रभुतन सोहियें॥

इस कथनसे काष्ठ संघका सिद्ध होता है। क्योंकि यह कथन मूल संघका नहीं है। मूलसंघमें श्रीऋषभदेवके समवसरणकी रचनाका वर्णन करते समय भगवज्जिनसेनाचार्यने सिंहासनके ऊपर कमलका वर्णन नहीं किया है। केवल सिंहासन पर ही चार अंगुल ऊंचे भगवानका विराजना लिखा है। सो ही आदिपुराणके तेईसवें पर्वमें लिखा है—

मेखलायां तृतीयस्यामथैक्षिष्ट जगद्गुरुम्। वृषभं............श्रीमद्गंधकुटीस्थिते॥
तद्गर्भरत्नसंदर्भरुचिरे हरिविष्टरे। मेरुशृंग इवोत्तुंगः सुनिविष्टमहातनुः॥

अर्थात् भगवान ऋषभदेव तीसरी मेखलाकी गंधकुटी पर रक्खे हुए सिंहासन पर विराजमान थे।

प्रश्न—सिंहासन पर कमलका वर्णन कई जगह आया है। देखो—

तिह विच सिंहासन बन्यो जगसार हो, ऊपर कमल अनूप।

अंतरिक्ष जापर रहे जगसार हो, अतिशय श्री जिनभूप ॥

इसके सिवाय समवसरणके पूजनके पाठमें तथा और भी ग्रंथोंमें कमलका वर्णन लिखा है। सो इसका निषेध क्यों करना चाहिये। शास्त्रोंमें लिखा है इसलिये हम कमल बनाते है।

उत्तर—आदिपुराणके २३ पर्वमें तथा इस प्रकरणके अन्यपत्रोंमें देखनेपरभी ये श्लोक मिले नहीं इससे मालूम होता है कि ये श्लोक लघु आदिपुराणके होंगे। आदिपुराणमें लिखा है—

विष्टरं तदलंचक्रे भगवानादितीर्थकृत्। चतुर्भिरंगुलैः स्वेन महिम्नाऽस्पृष्टतत्तलः ॥ पर्व २३ श्लोक २९ ॥

अर्थात् भगवान ऋषभदेव उस सिंहासनपर अपने अंगुलोंसे चार अंगुल ऊंचे अधर विराजमान थे।

ये बचन मूलसंघके नहीं है। यदि मूलसंघके होते तो जिनसेनाचार्य कैसे भूलते। यदि कदाचित् ऐसा मान भी लिया जाय तो फिर आठ प्रातिहार्यके बदले नौ प्रातिहार्य मानने पड़ेंगे। सो होते नहीं। प्रातिहार्य आठ ही होते हैं। जैसा कि लिखा है—

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टी दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च।
भामंडलं दुंदुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥

इसप्रकार प्रतिहार्य आठ ही होते है। यदि सिंहासनके ऊपर एक कमल और मानलिया जायगा तो नौ प्रातिहार्य मानने पड़ेंगे सो है नहीं इसलिये भगवान सिंहासनपर ही विराजमान रहते हैं, कमल पर नहीं।

२३३। चर्चा दोसौ तेतीसवीं।

एक दिनके दीक्षित मुनिराजको भी सौ वर्षकी दीक्षित अर्जिका नमस्कार करे या नहीं।

समाधान—एकदिनके दीक्षित मुनिराजको सौ वर्षकी दीक्षित अर्जिका अथवा अर्जिकाओंकी गुराणी गणिनी अर्जिका भी नमस्कार करती है इसका कारण यह है कि एक दिनके दीक्षित मुनिराज महाव्रती हैं और अर्जिका महाव्रती नहीं है उसके उपचारसे महाव्रत हैं, सक्षात् नहीं है। इसलिये तुरंत दीक्षित मुनिको अधिक दिनोंकी दीक्षित अर्जिका भी आकर नमस्कार करती है। सो ही नीतिसारमें लिखा है--

१ पांडुक शिलापर जो सिंहासन है उसपर भी कमल नहीं है। अकृत्रिम चैत्यालयोंमें भी भगवान सिंहासन पर विराजमान है कमल पर नहीं।

महत्तराप्यर्यिकाभिवंदते भक्तिभाविता। अद्यदीक्षितमप्याशुव्रतिनं शान्तमानसम् ॥ १ ॥

२३४। चर्चा दोसौ चौतीसवीं।

गृहस्थ वा मिथ्यादृष्टी वा स्पृश्य शूद्र वा अस्पृश्य शूद्र जो मुनिराजको वंदना करते हैं सो मुनिराज सबको एकसी धर्मवृद्धि देते हैं अथवा और भी कुछ कहते हैं।

समाधान—यदि सम्यग्दृष्टी व्रती गृहस्थ मुनिराजको नमस्कार करें तो मुनिराज उनको धर्मवृद्धि कहते हैं। यदि उच्च वर्णका मिथ्यादृष्टि नमस्कार करता है तो उससे 'धर्मबुद्धि हो' ऐसा कहते हैं। यदि भील वा म्लेच्छ आदि शूद्रादिक नमस्कार करते हैं तो उनको 'धर्मलाभ' कहकर संतुष्ट करते हैं। अथवा 'सम्यग्दर्शनकी शुद्धि हो' ऐसा कहते हैं। यदि चांडाल आदि अस्पृश्य शूद्र नमस्कार करते हैं तो उनकेलिये 'पापक्षयोस्तु' 'तेरे पापक्षय हों' ऐसा कहते हैं। इसप्रकार मुनिराज वंदनाके बदले कहते हैं सो ही नीतिसारमें लिखा है—

धर्मवृद्धिर्गृहस्थस्य व्रतिनः शुद्धचेतसः। मिथ्यादृष्टेः सुवर्णस्य धर्मबुद्धिरुदाहृता ॥
किरातान् म्लेच्छकान् सर्वान् धर्मलाभेन तोषयेत्। सम्यग्दर्शनशुद्धस्य मातंगस्य वदेन्मुनिः ॥
पापक्षय इति स्पष्टं न तस्यास्ति परो विधिः।

धर्मरसिक शास्त्रमें भी लिखा है—

श्रावकाणां मुनीन्द्रा ये धर्मवृद्धिं ददत्यहो। अन्येषां प्राकृतानां च धर्मलाभमतःपरम् ॥

इसप्रकार शास्त्रोंकी आम्नाय है।

२३५। चर्चा दोसौ पेंतीसवीं।

श्रावक पुरुषोंको मुनियोंसे वा अर्जिकाओंसे नमोऽस्तु किसप्रकार करना चाहिये।

समाधान–मुनिराज गुरुको तो नमोस्तु करना चाहिये। ब्रह्मचारियोंको वंदना करनी चाहिये। आर्जिकाओंको भी वंदना करनी चाहिये। श्रावकोंको परस्पर इच्छामि वा इच्छाकार कहना चाहिये तथा लोकमें जुहार कहना चाहिये। अपने सज्जनोंको नमस्कार करना चाहिये तथा योग्य अयोग्य मनुष्योंको देखकर यथायोग्य उनका विनय करना चाहिये। जो विद्या तप और गुण आदिसे

श्रेष्ठ हों और अपनेसे आयुमें छोटे हों तो भी उनको बडा मानना चाहिये। यदि कोई जैनधर्मको धारण करनेवाला मनुष्य धर्मात्मा हो परंतु वह रोगी वा दुःखी हो तो मीठे वचन कहकर उसका समाधान करना चाहिये और उसे संतुष्ट करना चाहिये। जो मूर्ख अभिमानी जिनधर्मरहित कुवादी पुरुष हों उनको देखकर मौन धारण करना चाहिये। जो जैनधर्मकी प्रभावना करनेवाले हैं उनसे नम्रीभूत होकर भक्तिके साथ मस्तक नवाकर मनोहर और मिष्ट वचन कहने चाहिये। गृहस्थ श्रावकोंको इस प्रकार करनेका अधिकार है। सो ही धर्मरसिक ग्रंथमें लिखा है—

नमोस्तु गुरवे कुर्याद्वन्दना ब्रह्मचारिणे। इच्छाकारं सधर्मिभ्यो वन्दामि त्वर्यकादिषु ॥ १ ॥
श्राद्धाः परस्परं कुर्युरिच्छाकारं स्वभावतः। जुहारुरिति लोकेस्मिन् नमस्कारं स्वसज्जनाः ॥ २ ॥
योग्यायोग्यं नरं दृष्ट्वा कुर्वन्ति विनयादिकम्। विद्यातपोगुणैः श्रेष्ठा लघुश्चापि गुरुर्मतः ॥ ३ ॥
रोगिणो दुःखितान् जीवान् जैनधर्मसमाश्रितान्। संभाष्य वचनैर्मिष्टैः समाधानं समाचरेत् ॥ ४ ॥
मूर्खान् मूढांश्च गर्विष्ठान् जिनधर्मविवर्जितान्। कुवादवादिनेऽत्यर्थं त्यजेन्मौनपरायणः ॥ ५ ॥
नम्रीभूताः परं भक्त्या जैनधर्मप्रभावकाः। तेषामुद्धर्त्य मूर्द्धानं ब्रूयाद्वाचं मनोहराम् ॥ ६ ॥

नीतिशतकमें भी इसीप्रकार लिखा है—

निर्ग्रन्थानां नमोस्तु स्यादर्जिकानां च वंदना। तस्मै दानं च दातव्यं यः सन्मार्गे प्रवर्तते ॥ १ ॥
पाषंडिभ्यो ददद्दानं तन्मिथ्यात्वप्रवर्द्धकम्। श्रावकस्योच्चैरिच्छाकारोऽभिधीयते ॥ २ ॥

प्रश्न—श्रावकोंको इच्छाकार करना बतलाया सो पहले चतुर्थकालमें किसीने किसीको किया भी है?

समाधान—रत्नद्वीपमें एक अमितगति नामका विद्याधर मुनि होगया था। उसके पास सिंहग्रीव और वराहग्रीव नामके उसके पुत्र आये थे उसीसमय सेठ चारुदत्त वहां पहुंचा था। तब उन मुनिने अपने दोनों पुत्रोंसे कहा था कि यह चारुदत्त मेरा मित्र है तुम इसे इच्छाकार करो। तब उन दोनों पुत्रोंने उठकर चारुदत्तसे इच्छाकार किया। ऐसा कथन सप्तव्यसन चरित्रमें लिखा है। यथा—

तदा तु मुनिना प्रोक्तं पुत्रौ मित्रं ममैव हि। चारुदत्ताभिधानोयमिच्छाकारं कुरु द्रुतम् ॥

यही कथन पुण्यास्रवपुराणमें आया है। रामचन्द्रविरचित पुण्यास्रवमें लिखा है-

तत्पुत्रौ सिंहग्रीववराहग्रीवौ सविमानौ तं वंदितुमागतौ। वंदित्वोपवेशने क्रियमाणे सति तेनोक्तं चारुदत्तस्येच्छाकारं कुरुतमिति कृते तस्मिन्।

इसप्रकार लिखा है-

लोगोंमें जो परस्पर जुहारु करनेके लिये कहा है उसकी कथा इसप्रकार है।

जिणवरधम्मं गहियं हणेइ दुट्ठट्ठकम्माणं। रुंधइ आसवदारं जुहारु जिणवरो भणियं॥

अर्थात्—ज से जिनवर धर्मको ग्रहण करनेवाला, हकारसे दुष्ट कर्मोंको हनन करनेवाला, और रु से आस्रवरूपी द्वारको रोधन वा वंद करनेवाला जो हो उसको जुहारु कहते हैं।

दूसरी जगह भी लिखा है-

युगादिऋषभं देवं हारिणं सर्वसंकटम्। रक्षन्ति सर्वजीवानां तस्माज्जुहारुमुच्यते॥

अर्थात्—जु से युगकी आदिमें होनेवाले वृषभदेवका ग्रहण है। हा शब्दसे समस्त संकटोंसे दूर करनेवालेका ग्रहण है और र से समस्त जीवोंकी रक्षा करनेवालेका ग्रहण है। ऐसा यह जुहारु शब्द है।

२३६। चर्चा दोसौ छत्तीसवीं।

श्वेतांबरोंके साधुओंके मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे जीवन पर्यंत छहों कायकी हिंसाका त्याग होता है। वे सब मुहपट्टी न लगावें तो बोलने पर वा सिद्धांतादिकका पाठ करते समय वा धर्मोपदेश देते समय वायुकायिक जीवोंकी हिंसा हो तथा वायुकायिक जीवोंकी हिंसा होनेपर उनके अहिंसा महाव्रत नहीं पल सकता इसलिये श्वेतांबरी लोग जो मुहपट्टी रखते हैं सो दयाके लिये ही रखते हैं। ऐसा मानना चाहिये।

समाधान—मुहपर पट्टी रखना दिगम्बर जैनधर्मके विरुद्ध है। महाव्रती होकर वस्त्र रखना श्वेताम्बरियोंमें ही बतलाया है। दिगम्बर साधु तो चार अगुल वस्त्र तो क्या तिल तुषमात्र भी परिग्रह वा वस्त्र नहीं रखते। क्योंकि वस्त्र रखनेवाले अनेक प्रकारके स्वांग बनाते हैं। नीतिसारमें लिखा है—

दिगम्बरमते नैव नैव पटो दिगम्बरः । चतुरंगुलमानस्तु शस्यते वदनेष्वपि ॥

जो वस्त्र रखते हैं सो निगोदके पात्र हैं। सो ही षट्पाहुडमें लिखा है–

जहि जाइरूवसरिसा तिलतुसमत्तं सुजेह अत्थेसु । जहि लेहि अप्प बहुगं तत्तो पुण जाइ णिगोयं ॥

यदि उस मुहपट्टीको दयाके लिये कहोगे सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि जब मुनियोंके हिंसा आदिका सर्वथा त्याग है तब अपने आप होनेवाली हिंसाके स्वामी वे मुनि नहीं होते जो हिंसा मन वचन कायसे वा कृत कारित अनुमोदनासे की जाती है उसी से व्रत भंग होता है। जो हिंसा स्वतः होनी है उससे व्रत भंग नहीं होता। यदि एक मुहको वंद करनेके लिये पट्टी बांध ली तो फिर नाक आदि बाकीके नव द्वारोंको रोकनेका क्यों प्रबंध नहीं किया। उनके द्वारा जीवोंकी हिंसा क्यों होने दी। उसका भी प्रबंध करना चाहिये।

इसके सिवाय सबसे बड़ी बात यह है कि उस पट्टीपर मुहके उच्छाससे तथा मुहकी लार वा थूक आदिके संबंधसे, पसीनासे अनेक प्रकारके त्रस जीव उत्पन्न होजाते हैं तथा मरते रहते हैं सो महाव्रती ऐसी साक्षात् त्रस जीवोंकी संकल्पी हिंसा किस प्रकार कर सकता है। अर्थात् कभी नहीं। इसलिये मुहपर पट्टी बांधना मिथ्या श्रद्धान मिथ्या ज्ञान और मिथ्या आचरण है। इसीलिये दिगम्बर आम्नायमें इसका त्याग करना लिखा है।

२३७। चर्चा दोसौ सेंतीसवीं।

श्वेताम्बरी महाव्रती साधुओंको अठारह कुलोंका आहार लेना निर्दोष बतलाया है। यदि किसी दातारका कुल शूद्र हो तो इनको क्या दोष आता है?

समाधान–यह उत्तम कुल, उत्तम जाति तथा उत्तम धर्मका मार्ग नहीं है। यह तो शूद्रोंका भ्रष्टाचारमय मद्य मांस भक्षियोंका धर्म है। परंतु ये श्वेताम्बरी इसको भी ग्रहण कर लेते हैं।

ये श्वेताम्बर साधु जिन अठारह घरोंका भोजन ग्रहण कर लेते हैं उनके नाम ये हैं। जैसा कि नीतिशतकमें लिखा है—

गायकस्य तरालस्य नीचकमापेजीविनः । मालिकस्य विलिंगस्य वेश्यायाः तैलिकस्य च ॥
दोनस्य वतिकायाश्च छिंपकस्य विशेषतः । मद्यविक्रयिणो मद्यपायिसंसर्गिणश्चन ॥

क्रियते भोजनं गेहे यतिना भोगमिच्छता। एवमादिकमप्यन्यत् चिन्तनीयं स्वचेतसा ॥

जो गा बजाकर उपजीविका करें ऐसे कमला मत ढोली आदिको गायक कहते हैं। जो नाचकर वा नाटक कर पेट भरते हैं। उनको नृत्यकार कहते हैं। ये दोनों ही नीच कर्म कहलाते हैं। माली, नपुंसक, वेश्या, तेली, दीनभिखारी, खाली, कलाल, मद्य पीनेवाले आदि शब्दसे मांसभक्षी, शहत खानेवाले, हिंसक यवन म्लेच्छ भील जाट गूजर, तबोली कायस्थ काछी दरजी, नाई, कुम्हार, कुलमी, धाकड, मीना आदि शूद्रोंके घर यतियोंको आहार नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्णोंके सिवाय अन्य घरका भोजन जो मुनि ग्रहण करते हैं उनके मद्य मांस मधुके भक्षणका मिथ्यात्वका तथा हिंसादिक महापापोंका दोष आता है, अन्तराय भ्रष्टाचार निर्दयपना आदि अनेक दोष प्राप्त होते हैं तथा अनेक दोषोंके लगनेसे मुनिपदका नाश हो जाता है। मुनिपदका नाश होनेसे दीक्षाभंग हो जाती है और दीक्षाभग होनेसे नरकादिक कुगतियोंमें जाना पडता है। इसलिये मुनियोंको ऊपर लिखे शूद्रोंके घर कभी भोजन नहीं करना चाहिये जो साधु एसे शूद्रोंके घर आहार लेते हैं वे साधु नहीं हैं। क्योंकि ऊपर लिखे हुये सब शूद्रोंके ही समान हैं।

प्रश्न—मुनि ऊपर लिखे शूद्रोंके यहां तो आहार ले नहीं तथा ब्राह्मणादिकके घर भोजनकी विधि मिले नहीं तो फिर क्या करना चाहिये?

उत्तर—मुनियोंका धर्म ही अनेक परीषहोंका सहन करना है। इसलिये निर्दोष विधिके मिलनेपर ही उन्हें आहार करना चाहिये। ऊपर लिखे शूद्रोंके घर तो कभी भोजन नहीं करना चाहिये। क्योंकि अपने हाथसे चूल्हा जलाकर रसोई बना कर भोजन करलेना अच्छा है परंतु मिथ्यादृष्टि ऊपर लिखे हुये जातिवालोंके घर भोजन करना अच्छा नहीं। इसका भी कारण यह हैं कि ऊपर लिखे हुये मिथ्यादृष्टी शूद्रोंके यहां जो भोजन तैयार होता है वह समस्त पापोंके समागमसे उत्पन्न होता है। इसलिये उनके घरका भोजन नहीं करना चाहिए। यद्यपि मुनियोंको अपने हाथसे भोजन बनाना महा पापका कारण और दीक्षा भंग करनेका कारण है महाव्रती ऐसा कभी नहीं करते तो भी शूद्रोंके घरकी अपेक्षा उसे उत्तम और योग्य बतलाया है। शूद्रोंके घरका आहार इतना निंद्य और अयोग्य है। सो ही नीतिशतकमें लिखा है।

१ वर्तमान समयमें कितने ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंमें वा कितने ही कुलकलंक जैनियोंमें धरेजा चलने लगा है तथा कितने ही लोग मुसलमान

वरं कार्यं स्वहस्तेन पाको नान्यत्र दुर्दृशाम् । दुर्दृशां मंदिरे यस्मात् सर्वसावद्यसंगमः ॥

२३८ । चर्चा दोसौ अडतीसवीं ।

इस चतुर्थकालमें जो धर्मका विच्छेद हुआ था। मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका नहीं रहे थे सो कौनसे समयमें किन तीर्थंकरोंके समयमें और कितने कालतक विच्छेद रहा था ?

समाधान–इस चौथे कालमें हुण्डावसर्पिणी कालके दोषसे श्रीपुष्पदंत तीर्थंकरके समयसे लेकर श्रीशांतिनाथ तीर्थंकरके समय तक क्रमसे बढता हुआ और घटता हुआ विच्छेद रहा था। सो ही त्रिलोकसारमें लिखा है—

पल्लतुरियादि चय पल्लंतचउत्थूण पादपरक लं।
ण हि सद्धम्मो सुविधीदु सनिअंते सगंतरए॥ ८१४॥

अर्थ–श्रीपुष्पदंत और शीतलनाथके बीचमें पावपल्यका विच्छेद रहा। शीतलनाथ और श्रेयांसनाथके बीचमें आधा पल्यका विच्छेद रहा। श्रेयांसनाथ और वासुपूज्यके मध्यमें पौन पल्य तक धर्मका विच्छेद रहा। श्रीवासुपुज्य और विमलनाथके मध्यमें एक पल्यका विच्छेद रहा। श्रीविमलनाथ और अनंतनाथके मध्यमें पौन पल्यतक धर्मका विच्छेद रहा। अनंतनाथ और धर्मनाथके मध्यमें आधे पल्यतक धर्मका विच्छेद रहा। तथा धर्मनाथ और शांतिनाथके मध्यमें पाव पल्यतक धर्मका विच्छेद रहा। इसप्रकार विच्छेदका काल पावपल्यसे लेकर एक पल्यतक बढता गया और फिर घटता हुआ पावपल्य तक रहा उसका यंत्र इसप्रकार है—

वा म्लेच्छोंके साथ खाने लगे हैं परंतु सदाचारकी वा शुद्धाचारकी स्थिरता जाति और कुलकी शुद्धतापर तथा भोजनपान की शुद्धतापर ही निर्भर है। धरेजा करनेवालोंकी जाति वा कुल कभी शुद्ध नहीं हो सकता और शूद्रोंके साथ खाने पीनेवालोंका आचरण कभी शुद्ध नहीं हो सकता। धरेजासे जो सन्तान वा शरीरपिंड उत्पन्न होता है वह भी अशुद्ध ही होता है। इसलिये धरेजा करनेवालोंको, उसकी संतानको, शूद्रोंके साथ खानेवालोंको वा उनके साथ रहनेवाले उनकी संतानको मुनियोंके लिये आहार देनेका अधिकार नहीं है और न जिनपूजन आदि करनेका अधिकार है। मुनियोंको भी ऐसे घरोंका भोजन नहीं लेना चाहिये। जो लेते हैं वे मुनिपदसे भ्रष्ट हैं क्योंकि धरेजा करनेवाले भी शूद्रोंके समान हैं और यवन म्लेच्छ आदिके साथ खानेपीनेवाले भी शूद्रोंके समान हैं।

जिन तीर्थंकरोंके समयमें धर्मका विच्छेद रहा।	जितने समयतक विच्छेद रहा
पुष्पदन्त	पावपल्य
शीतलनाथ	आधापल्य
श्रेयांसनाथ	पौनपल्य
वासुपूज्य	एक पल्य
विमलनाथ	पौन पल्य
अनंतनाथ	आधा पल्य
धर्मनाथ	पावपल्य

२३९। चर्चा दोसौ उन्तालीसवीं।

तीर्थंकर भगवान गृहस्थाश्रममें जन्मदिनसे लेकर दीक्षा समय तक जो वस्त्राभरण पहनते हैं सो देवोपनीत (देवोंके यहांसे आयेहुये) पहनते हैं। सो वे वस्त्राभरण कहांसे आते हैं और उन्हें कौन लाता है ?

समाधान—सौधर्म और ईशान सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंके युगलोंमें जो मानस्तंभ हैं उसपर कावडके आकारके संकलसे लटकते हुये दो दो पिटारे हैं। उन पिटारोंमें तीर्थंकरोंके पहननेके वस्त्रामरण रहते हैं। वहांसे वे वस्त्र आभरण भगवानके पास पहुंचाये जाते हैं और वे भगवान उनको धारण करते हैं।

उसमें भी इतना विशेष है कि सौधर्म स्वर्गके मानस्तंभके पिटारेके वस्त्राभरण तो पांचों मेरुसंबंधी पांचों भरतक्षेत्रोंमें उत्पन्न हुये तीर्थंकरोंको पहुंचाये जाते हैं। ईशान स्वर्गके मानस्तंभके पिटारेके वस्त्रामरण पांचों मेरुसंबंधी ऐरावत क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुये तीर्थंकरोंको पहुंचाये जाते हैं। सनत्कुमार स्वर्गके मानस्तंभके पिटारेके वस्त्राभरण पूर्वविदेहोंमें उत्पन्न हुये तीर्थंकरोंको पहुंचाये जाते हैं। माहेन्द्र स्वर्गके मन स्तंभके पिटारेके वस्त्राभरण पश्चिम विदेहोंमें उत्पन्न हुए तीर्थंकरोंके यहां पहुंचाये जाते हैं। उन पिटारोंकी रक्षा देवियां करती हैं और वे ही उन वस्त्राभरणोंको पहुंचाती हैं। उनकी उंचाई आदिका वर्णन अन्य ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिये यहां संक्षेपसे कहा है सो ही त्रिलोकसारमें लिखा है—

चिट्ठंति तत्थ गोरुदत्तउत्थवित्थार कोसदीहजुदा। तित्थयराभरणचिदा करंडया रयणसिक्कधिया ॥५२०॥

तुरियजुदविजुदछज्जोयणाणि उवरिं अधोवि ण करंडा। सोहम्मदुगे भरहेरावदतित्थयरपडिबद्धा ॥५२१॥
साणक्कुमारजुगले पुव्ववरविदेहतित्थयरभूमा । ठविदच्चिदा सुरेहिं कोडीपरिणाहि बारसो ॥५२२॥

२४० । चर्चा दोसौ चालीसवीं ।

इस समयके जिनाश्रमी भोजनके समय वस्त्रोंको उतारकर नग्न होकर भोजनपान करते हैं सो इसका क्या अभिप्राय है ?

समाधान—षट्पाहुडमें लिखा है—

णिचेलेयाणि पत्तं उवइट्ठपरमजिणवरिंदेहिं । इक्कोवि मोक्खमग्गो सेसाय असग्गया सव्वे ॥

अर्थ—भगवान अरहंतदेवने उत्कृष्ट मोक्षमार्ग वस्त्ररहित नग्नरूप ही बतलाया है। इससे सिद्ध होता है कि मोक्षमार्ग नग्नरूप है। जो जिनाश्रमी व्रती होकर भी नग्न नहीं रह सकते वे भोजनके समय नग्न होकर भोजन करते हैं और पाणिपात्र भोजन करते हैं। यही अभिप्राय है।

२४१ । चर्चा दोसौ इकतालीसवीं ।

ज्ञान पांच हैं—मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। इनमेंसे किसी एक जीवके एक ही समयमें अधिकसे अधिक कितने ज्ञान हो सकते हैं। सब हो सकते हैं या नहीं।

समाधान—किसी एक जीवके एक ही समयमें अधिकसे अधिक चार ज्ञान तक होते हैं, पांचों ज्ञान एक साथ नहीं होते। यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान होगा। केवलज्ञानके साथ और कोई ज्ञान नहीं होता। इसका भी कारण यह है कि केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है। ज्ञानावरणका अत्यंत क्षय हो जानेपर क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं हो सकते क्योंकि क्षायोपशमिक चारों ज्ञानोंमें देशघाती कर्मोंके उदयकी अपेक्षा रहती है। केवलज्ञान समस्त ज्ञानावरण कर्मके नाश होनेसे होता है। इसीलिये वह अकेला होता है। यदि दो ज्ञान होंगे तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान ये दो ज्ञान होंगे। यदि तीन होंगे तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान अथवा मतिज्ञान

१ साधुओंकी दीक्षा लेकर भी जो नग्न नहीं रहते वे वास्तवमें साधु नहीं हैं। ऐसे लोगोंको भोजनके समय भी नग्न होना व्यर्थ है। उन्हे चाहिये कि वे सातवीं या सातवीं प्रतिमासे ऊपरकी दीक्षा लेवें जिससे उन्हें यह मायाचारी न करनी पड़े।

श्रुतज्ञान मनःपर्ययज्ञान ये तीन ज्ञान होंगे। यदि चार होंगे तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान ये चार ज्ञान होंगे सो ही मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः।

२४२। चर्चा दोसौ वियालीसवीं।

चतुर्णिकाय देवोंके मैथुन किसप्रकार होता है। किसके समान होता है। सबके समानरूपसे होता है या अलग अलग रूपसे। समाधान—मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

कायप्रवीचारा आ ऐशानात्।

अर्थात् भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क और सौधर्म तथा ऐशान स्वर्गोंके देवोंके मनुष्योंके समान शरीरसे प्रवीचार होता है। स्त्री पुरुषोंके परस्पर मैथुन सेवनको प्रवीचार कहते हैं। सो ऊपर लिखे देवोंके तो मनुष्योंके समान शरीरसे प्रवीचार होता है। तथा आगेके स्वर्गोंमें भिन्न भिन्न रूपसे प्रवीचार होता है। जैसा कि मोक्षशास्त्रमें लिखा है—

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः।

अर्थात् बाकीके स्वर्गोंमें स्पर्श रूप शब्द और मनसे प्रवीचार होता है। इसका भी अभिप्राय यह है कि सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गके देव अपनी अपनी देवांगनाओंके शरीरका स्पर्श वा आलिंगन आदि करनेमात्रसे ही संतुष्ट होजाते हैं। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ट स्वर्गके देव अपनी अपनी देवांगनाओंका रूप देखकर ही संतुष्ट होजाते हैं। शुक्र महाशुक्र सतार सहस्रार स्वर्गोंके देव अपनी अपनी देवांगनाओंके शब्द वा उनके आभूषणादिकोंके शब्द सुनकर ही संतोषको प्राप्त होजाते हैं। आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गके देव अपनी अपनी देवांगनाओंको चिंतवन करने मात्रसे संतुष्ट हो जाते हैं। जिसप्रकार देव संतुष्ट होते हैं उसी प्रकार देवियां भी अपने अपने स्वामीको देखने उनके शब्द सुनने वा उनको चिंतवन करनेमात्रसे संतुष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार सोलह स्वर्गोंका प्रवीचार बतलाया। आगे सोलह स्वर्गोंसे ऊपर प्रवीचार किसप्रकार है सो मोक्षशास्त्रमें इसप्रकार लिखा है—

परेऽप्रवीचाराः।

अर्थात् सोलह स्वर्गसे ऊपर नौ ग्रैवेयक नौ अनुदिश और पांचों पंचोत्तरोंके देव प्रवीचाररहित हैं उनके तज्जन्य वेदना नहीं होती इसलिये वे देव सबसे अधिक सुखी गिने जाते हैं ऐसा नियम है।

२४३। चर्चा दोसौ तेतालीसवीं।

यदि किसी मुनिके फोडा वा घाव हो जाय तो भक्त श्रावकजन उसको अच्छा करनेके लिये किसी शास्त्रके द्वारा उसकी चीर फाड कर सकते हैं या नहीं। चीरफाड़ करनेसे उनको अधिक वेदना होगी सो करनी चाहिये या नहीं।

समाधान—किसी फोडे वा घावको किसी शस्त्रसे चीरा देनेमें निर्दय भाव नहीं होते किंतु उसको अच्छा करनेके दयारूप परिणाम होते हैं इसलिये उसमें पापबंध नहीं है किंतु पुण्यबंध ही होता है। क्योंकि करनेवालेके दयारूप परिणाम हैं, कोमलभाव हैं, और उस घाव फोडेको अच्छा करनेका उपाय मात्र करता है। उसके हृदयमें दुःख देनेका किंचित भाव भी नहीं है। इसलिये किसी घाव वा फोडेको अच्छा करनेके लिये शस्त्रसे चीरफाड करना भी योग्य ही है। उसमें पापका बंध नहीं होता। सो ही मोक्षशास्त्रकी श्रुतसागरी टीकामें लिखा है—

न दुःखं न सुखं यद्वद्धेतुर्दृष्टश्चिकित्सिते। चिकित्सायां तु युक्तस्य स्याद्दुःखमथवा सुखम्॥

अर्थात्—चिकित्सा वा उपाय (इलाज) करनेमें सुख देने अथवा दुख देनेका अभिप्राय नहीं होता किंतु उस व्याधिको दूर करनेका अभिप्राय रहता है। फिर चिकित्सा करते समय उस रोगीको चाहे सुख हो वा दुःख हो।

प्रश्न—यदि उपाय करते हुए उसकी वेदनासे मुनिका मरण होजाय तब तो पापका बंध होगा ?

उत्तर—नहीं, तब भी पापका बंध नहीं हो सकता क्योंकि उस उपायसे उस व्याधिको दूर करनेका अभिप्राय है उनको दुख देने वा मारनेका अभिप्राय नहीं है। जहां मारने वा दुःख देनेका अभिप्राय होता है वहां हिंसा न होने पर भी पापका बंध होता है सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखा है—

हिंसाफलमपरस्य तु ददात्यहिंसा तु परिणामे। इतरस्य पुनर्हिंसा दिशत्यहिंसाफलं नान्यत्॥

अर्थात् कोई अहिंसा हिंसाका फल देती है और कोई हिंसाका फल देती है।

२४४। चर्चा दोसौ चवालीसवीं।

चार्वाकमतवाला कहता है कि आत्मा कोई पदार्थ नहीं है। यदि आत्मा होता तो दिखाई पड़ता परंतु आत्मा कोई पदार्थ है नहीं, इसलिये दिखाई भी नहीं पडता। यदि कहा जाय कि कि जन्म मरण होनेसे आत्मा मानना पडता है सो ठीक नहीं है।

क्योंकि जन्म मरण करनेपर भी आजतक आत्मा किसीको दिखाई नहीं पड़ा है इसलिये मोक्ष मानना और मोक्षका उपाय करना व्यर्थ है।

सांख्यमतवाला कहता है कि आत्मा तो है पर वह सदा मुक्त है। जो सदा मुक्त है उसके फिर मोक्षकी प्राप्ति मानना वा मुक्त होनेका उपाय करना सब व्यर्थ है। इसप्रकार लोग मानते हैं सो क्या ठीक है?

समाधान—ये ऊपर लिखे हुए दोनों ही श्रद्धान ठीक नहीं हैं। यदि आत्मा कोई पदार्थ न होता तो जातिस्मरण ज्ञानके द्वारा पहले जन्मकी पर्यायको तथा उसकी समस्त दशाको यह जीव किसप्रकार जान लेता है अथवा किस प्रकार देख लेता है। यदि आत्मा कोई पदार्थ न होता तो भूत प्रेत आदिक नीच देव अपने पूर्व जन्मकी सब बातें किसप्रकार बतला देते हैं। ये दोनों ही बातें संसारमें देखी जाती हैं और उससे लोग पूर्व जन्मका विश्वास करते हैं इसलिये चार्वाकका कहना सब व्यर्थ और भ्रमरूप है। क्योंकि यह आत्मा अनादिकालसे कर्मबंधसे बंधा हुआ चला आ रहा है। उस कर्मबंधसे ही नवीन कर्मोंका आस्रव करता है। वह आस्रव इसके क्रोधादिक कषायोंसे होता है। क्रोधादिक कषाय प्रमादसे उत्पन्न होते हैं। प्रमाद हिंसादिक महापापोंसे होता है। हिंसादिक अव्रतरूप महापाप मिथ्यात्वसे पुष्ट होते हैं और मिथ्यात्वसे यह आत्मा सदा मलिन रहता है। वह मलिन आत्मा काललब्धि पाकर एक मनुष्यभवमें सम्यग्दर्शन व्रत स्वपर विवेक और निष्कषायताके योगसे कर्मोंका नाश करता हुआ मुक्त होता है। यदि आत्मा न होता तो अहंकार वा ममत्व आदि किसको होता? इससे सिद्ध होता है कि आत्मा है इसमें किसीप्रकारका संदेह नहीं है। 'आत्मा नहीं है' यह कहना सर्वथा व्यर्थ है।

यदि तू आत्माका अभाव मानता है सो यह मानना भी आत्माके विना जड़ पदार्थके कैसे हो सकता है। यह मानना वा समझना आत्माका ही लक्षण है। क्योंकि ऐसा ज्ञान चैतन्यरूप आत्माके बिना जड़ पदार्थमें कभी नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि तू आत्माका अभाव कहनेवाला कौन है। जड है या चैतन्य है। यदि तू चैतन्य है तो आत्मा स्वतः सिद्ध होगया, और यदि तू जड़ है तो जड़को ऐसा ज्ञान हो नहीं सकता। इसलिये आत्माका अभाव कहना सरासर मिथ्या है। तथा इस प्रकार मिथ्या भाषण करनेसे आत्माका कभी कल्याण नहीं हो सकता।

सांख्य आत्माको सदा मुक्त मानता है। यदि यह आत्मा सदा मुक्त होता तो चारों गतियोंकी चौरासीलाख योनियोंमें परिभ्रमण क्यों करता? वहांके दुःख वा सुख क्यों भोगता? और ऊंच नीच अवस्था किसप्रकार धारण करता? इससे मानना पड़ता

है कि सम्यग्दर्शनके विना आत्मा सदा अशुद्ध है। सम्यग्दर्शनके होने पर इसकी शुद्धता होती है। इसमें किसीप्रकारका संदेह नहीं। आत्माको सदा शुद्ध मानना संर्वथा मिथ्या है। सो ही आत्मानुशासनमें लिखा है–

अस्त्यात्मास्तमितादिबन्धनगतस्तद्बन्धनान्यास्रवै-
स्ते क्रोधादिकृताः प्रमादजनिताः क्रोधादयस्तेऽव्रतात्।
मिथ्यात्वोपचितात् स एव समलः कालादिलब्धौ क्वचित्
सम्यक्त्वव्रतदक्षता कलुषता योगैः क्रमान्मुच्यते ॥ २४१ ॥

२४५। चर्चा दोसौ पैंतालीसवी।

मोक्षशास्त्रमें लिखा है "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्" तत्त्वोंके द्वारा निश्चय किये हुए पदार्थोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। फिर लिखा है "तन्निसर्गादधिगमाद्वा" वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है। इसप्रकार मोक्षशास्त्रमें लिखा है। सो क्या सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके कारण ये दो ही हैं या इसके उत्पन्न होनेके और भी कोई कारण हैं।

समाधान—सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके लिये ऊपर लिखे दो कारण तो हैं ही परंतु इनके सिवाय शास्त्रोंमें सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके लिये दश कारण और बतलाये हैं। आगे उन्हींको बतलाते हैं।

आज्ञा १ मार्ग २ उपदेश ३ सूत्र ४ बीज ५ संक्षेप ६ विस्तार ७ अर्थ ८ गाढ ९ परमावगाढ १०। इसप्रकार अलग अलग कारणोंसे उत्पन्न होनेसे सम्यग्दर्शनके दश भेद हो जाते हैं। जो शास्त्रोंके विना पढे ही वीतरागकी वाणी सुनकर श्रद्धान करना सो आज्ञा सम्यग्दर्शन है। १। ग्रंथोंको विस्तारपूर्वक सुने विना ही चौबीस प्रकारके परिग्रहको त्यागकर मोक्षमार्गका निर्ग्रंथ पद धारण करना मार्ग सम्यग्दर्शन है। २। त्रेसठ शलाकाके पुरुषोंके चरित्रोंको सुनकर सम्यग्दर्शन धारण करना उपदेश सम्यग्दर्शन है। ३। मुनियोंके आचरणोंको प्रतिपादन करनेवाले चरणानुयोगको सुनकर सम्यग्दर्शन धारण करना सूत्रसम्यग्दर्शन है। ४। करणानुयोगके द्वारा गणितके ज्ञानके कारण बीजोंसे पदार्थोंका श्रद्धान होना सो बीज सम्यग्दर्शन है। ५। पदार्थोंका स्वरूप संक्षेपसे जानकर श्रद्धान करना सो संक्षेप सम्यग्दर्शन है। ६। द्वादशांगको सुनकर रुचि वा श्रद्धान करना सो विस्तार सम्यग्दर्शन है। ७। जो जिनागमके वचनके विना ही किसी अर्थके निमित्तसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न होना सो अर्थसम्यग्दर्शन है। ८। अंग

वा अंगबाह्य सहित जिनागमको जानकर गाढरूप श्रद्धान होना गाढसम्यग्दर्शन है ।९। वही सम्यग्दर्शन जो अत्यन्त गाढ श्रद्धानरूप हो उसको परमावगाढ सम्यग्दर्शन कहते हैं। १० । इसप्रकार कारणभेदसे सम्यग्दर्शनके दश भेद और हो जाते हैं। तथा ऊपर लिखे हुए निसर्गज और अधिगमज ये सम्यग्दर्शनके दो भेद भी इसीमें शामिल हो जाते हैं। सो ही श्री गुणभद्राचार्य विरचित आत्मानुशासनमें लिखा है–

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्। विस्तारार्थाभ्यां भवमवगाढपरमावगाढे च ॥ १ ॥

इन दशोंका विशेष वर्णन आत्मानुशासनसे जान लेना चाहिये। यहां बहुत संक्षेपसे लिखा है–

२४६ । चर्चा दोसौ छयालीसवीं ।

धर्मध्यानके चार भेद हैं। आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, और संस्थानविचय। इनके सिवाय धर्मध्यानके और भी भेद कहे जाते है सो कौन कौन हैं ?

समाधान—इस धर्मध्यानके दश भेद बतलाये हैं उनमें ऊपर लिखे चार भेद भी शामिल हैं अर्थात् ऊपर लिखे चार भेदों सहित दश भेद हैं उनके नाम ये हैं। अपायविचय १ उपायविचय २ जीवविचय ३ अजीवविचय ४ विपाकविचय ५ वैराग्यविचय ६ भवविचय ७ संस्थानविचय ८ आज्ञाविचय ९ और हेतुविचय १० ये दश भेद हैं।

कर्मोंके नाश होनेके कौन कौन कारण हैं, किस किस उपायसे कर्म नष्ट होते हैं। इस प्रकार चितवन करना तथा कर्मबंधके कारण रागादिक भावोंसे अरुचि करना और मेरे वीतराग भावोंकी प्राप्ति कब हो इसप्रकार वीतराग भावोंका चितवन करना अपाय विचय है। १। रागद्वेषसे रहित वीतरागमय पवित्र भाव वा ज्ञान वैराग्य आदि जो जो मोक्षके कारण हैं वे मेरे कब प्राप्त होंगे। किसप्रकार प्राप्त होंगे इसप्रकार निरन्तर चितवन करना उपायविचय है। २। यह जीव द्रव्यार्थिक नयसे अनादिनिधन तथा ध्रुव रूप है और पर्यायार्थिक नयसे उत्पादव्ययरूप है, वा उपयोगरूप है इसप्रकार जीवके स्वरूपका चितवन करना सो जीवविचय है । ३ । पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये पांच द्रव्य अजीव हैं। इनके स्वरूपका चितवन करना अजीवविचय है । ४ । शुभ अशुभ कर्मोंके उदयका वा उनके सुख दुःखरूप फलोंका चितवन सो विपाकविचय है। ५। संसार शरीर इन्द्रिय भोग आदिसे उदास वा विरक्त होना, इनको दुःखका कारण चितवन करना वैराग्यविचय है। ६। चारो गतियोंमें होनेवाले दुःखोंका चितवन

करना तथा इस संसारको त्याग करनेका चिंतवन करना संसारसे भयभीत होना भवविचय है।७। लोक और अलोकके स्वरूपका चिंतवन करना संस्थानविचय है।८। सर्वज्ञदेवकी आज्ञाकी प्रमाणताका चिंतवन करना आज्ञाविचय है।९। स्याद्वादका आश्रय लेकर युक्तिके अनुसार नित्य अनित्य अस्तित्व नास्तित्व आदिका विचार करना सो हेतुविचय है।१०। इसप्रकार दश प्रकारके धर्मध्यानोंका स्वरूप है सो ही सारचतुर्विंशतिकामें लिखा है—

भ्रमतां च भवेऽनादौ स्वात्मनां वान्यदेहिनाम्। कर्मशृंखलबद्धानां कदापायो भविष्यति॥ ५॥
कर्मणां तपसा दृग्ज्ञानवृत्तादिकदंबकैः। इति यश्चिंत्यते भव्यैरपायविचयं हि तत्॥ ६॥
मनोवाक्काययोगाः स्युः केनोपायेन मे शुभाः। कर्माश्रवनिरोधो निर्जरा मुक्तिश्च जायते॥ ७॥
ध्यानेन तपसा वात्र दृग्विशुद्ध्यादिनेति यः। संकल्पः क्रियते दक्षैः ध्यानं तत्स्याद्द्वितीयकम्॥ ८॥
उपयोगमयो जीवोऽनाद्यनन्तो गुणी महान्। असंख्यातप्रदेशो निश्चयाच्च व्यवहारतः॥ ९॥
शुभाशुभविधेर्भोक्ता कर्ता कायसमोऽसुखी। अनादिकर्मबद्धो हि मोक्षगामी हि तत्क्षयात्॥ १०॥
इत्यादिचिंतनं यत्र जीवस्य क्रियते बुधैः। गुणस्थानभवाप्तिसिद्ध्यै सजीवविचयं खु तत्॥ ११॥
अजीवपंचद्रव्याणां चिंतनं यद्विधीयते। गुणपर्यायकर्माद्यैरजीवविचयं हि तत्॥ १२॥
अष्टधाकर्मणां यत्र विपाकः चिंत्यते पृथक्। सुखदुःखकरो नित्यं प्रतिक्षणसमुद्गतः॥ १३॥
अनंतभेदभिन्नो हि तत्क्षयाय मुमुक्षुभिः। तीव्रमंदस्वभावादिर्विपाकविचयो हि सः॥ १४॥
स्वदेहभोगभवादि सर्ववस्तुषु शर्मसु। विधीयते विरक्तिर्या विरागविचयोऽत्र सः॥ १५॥
चतुरशीतिलक्षेषु जीवयोनिषु देहिनाम्। अनादिभ्रमणं दुःखं पूर्णयत् कर्मणां शुभम्॥ १६॥
जन्ममृत्युजरालीनं पराधीनं विचिन्त्यते। प्रत्यहं तत्तु भवं ध्यानं भवादिविचयान्तिकम्॥ १७॥
याः समस्ता अनुप्रेक्षाः चिंत्यते हृदि संयतैः। एकचित्तेन तद् ध्यानं संस्थानविचयाह्वयम्॥ १८॥

प्रमाणीकृत्य तीर्थेशवाक्याज्ञा सरलागमे। सर्वज्ञगोचरे सूक्ष्मपदार्थादौ च निश्चयः॥ १९॥
क्रियते द्रव्ययाथात्म्यं योजनाद्भिर्महद्घनम्। तदाज्ञाविचयं ध्यानं प्रणीतं सर्वदर्शिभिः॥ २०॥
पूर्वापराविरोधेन प्रमाणनयवेदिभिः। स्याद्वादेन परीक्षानुचिन्तनं क्रियते बुधैः॥ २१॥
जिनसूत्रगुणानां च तर्कशास्त्रमतान्वितैः। मिथ्यात्वदोषवर्गाणां यद्धेतुविचयं हि तत्॥ २२॥

इसप्रकार इनका स्वरूप है। ऐसा ही कथन ज्ञानार्णव, तथा बृहद् हरिवंशपुराण आदि ग्रंथोंमें लिखा है वहांसे जान लेना चाहिये।

२४७। चर्चा दोसौ सैंतालीसवीं

धर्मध्यानके ऊपर लिखे दश भेद तो जाने परंतु पिंडस्थ पदस्थ रूपस्थ रूपातीत ये ध्यानके चार भेद और हैं सो कौनसे ध्यानके हैं।

समाधान—ये चारों ही धर्मध्यानके भेद हैं। तथा धर्मध्यानके संस्थानविचय नामके चौथे भेदमें अंतर्भूत हैं ऐसा ज्ञानार्णव की टीकामें लिखा है।

अपने शरीरका तथा लोकका चिंतवन करना पिंडस्थ ध्यान है। पंच नमस्कारमंत्र वा एक दो चार आदि अक्षरोंके मंत्रोंको वाचिक उपांशु वा मानसिकके भेदोंसे जप करना पदस्थ ध्यान है। अपनी आत्माको शरीरके समान अथवा समुद्घातके द्वारा लोकाकाशके समान चिंतवन करना अथवा छयालीस गुणोंसे सुशोभित केवली भगवानके स्वरूपके समान चिंतवन करना सो रूपस्थ ध्यान है तथा शुद्ध आत्माका स्वरूप कर्मकलंकरहित रूपादिक रहित शुद्ध ज्ञान दर्शनमय सिद्धोंके समान चिंतवन करना रूपातीत ध्यान है इसप्रकार ये सब धर्मध्यानके भेद हैं।

२४८। चर्चा दोसौ अडतालीसवीं।

ऊपर जो धर्मध्यानोंके भेद लिखे हैं वे किस किस गुणस्थानमें होते हैं।

समाधान—यह सब प्रकारका धर्म्यध्यान मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व इन तीनों दर्शनमोहनीय

की प्रकृतियोंको तथा अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इन चार प्रकृतियोंको इसप्रकार सम्यग्दर्शनको घात करनेवाली सातों प्रकृतियोंको नाश करनेवाला है। तथा मोहनीयकी शेष बची हुई इकीस प्रकृतियोंको उपशम करनेका कारण है यह धर्म्यध्यान असंयत नामके चौथे गुणस्थानसे लेकर प्रमत्तसंयत नामके छठे गुणस्थान तक तीन लेश्याओंके बलसे होता है। छठे गुणस्थानमें रहनेवाले मुनियोंके उत्कृष्ट धर्म्यध्यान होता है। चौथे गुणस्थानमें रहनेवाले अविरत सम्यग्दृष्टीके जघन्य होता है। तथा दूसरी प्रतिमासे लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा तक क्रमसे बढ़ता हुआ मध्यम होता है। सो ही सारचतुर्विंशतिकामें लिखा है—

सप्तप्रकृतिनिःशेषक्षयहेतुमिदं स्मृतम् । एकविंशतिमोहप्रकृतिनाशनकारणम् ॥ २९ ॥
चतुर्थाद्यप्रमत्तान्त गुणस्थानेषु जायते। लेश्यात्रयबलाधानं धर्म्यध्यानं सुधीमताम् ॥ ३० ॥
सर्वोत्कृष्टमिदं ध्यायेदप्रमत्तो मुनीश्वरः। सद्दृष्टिश्च जघन्यं वै मध्यमं बहुधा व्रती ॥ ३१ ॥

इसप्रकार इनका स्वरूप है।

२४९। चर्चा दोसौ उनचासवीं।

जो शुद्ध आत्मध्यानके वा शुद्धोपयोगके कारण हैं ऐसे अध्यात्मरूप जैनसिद्धांतोंके पढने वा सुननेका अधिकार गृहस्थोंको है वा नहीं।

समाधान—ग्यारहवीं प्रतिमाको धारण करनेवाले उत्कृष्ट श्रावकको भी (क्षुल्लक वा ऐलकको भी) नीचे लिखी बातोंका अधिकार नहीं है। दिनमें प्रतिमायोग धारण करना वीरचर्या धारण करना त्रिकाल योगका नियम तथा सिद्धांतके रहस्यका पठन पाठन इन सब बातोंका अधिकार देशव्रती श्रावकको नहीं है।

भावार्थ—मुनियोंके समान नग्न होकर दिनमें प्रतिमायोग धारण करना, मुनियोंके समान अकेला रहकर वीरचर्या धारण करना, नियम लेकर योग धारण करना अर्थात् मुनियोंके समान शीतकालमें नदी वा सरोवरके किनारे, वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचे

१ सातवें गुणस्थानके दो भेद हैं एक सातिशय दूसर निरतिशय। जहांसे श्रेणी चढता है, वहांसे सातिशय अप्रमत्त कहलाता है। और श्रेणी चढने से पहले निरतिशय अप्रमत्त कहलाता है। जहांसे श्रेणी चढता है वहांसे शुक्लध्यान आरंभ हो जाता है। तथा श्रेणी चढनेसे पहिले सातवें गुणस्थानमें उत्कृष्ट धर्म्यध्यान होता है।

और उष्णकालमें पर्वतके शिखरपर नियमपूर्वक योग धारण करना तथा सिद्धांत ग्रन्थोंके रहस्यका पढना पढाना सुनना सुनाना आदिका अधिकार पांचवें गुणस्थानमें रहनेवाले देशव्रती श्रावकको नहीं है। सो ही श्रीवसुनंदिसिद्धांत चक्रवर्ती विरचित श्रावकाचारमें लिखा है—

दिणपडिमवीरचरियातियालजोगं णियमेण। सिद्धांतरहस्साधयणं अहियारो णत्थि देसविरियाणं ॥

दूसरे श्रावकाचारमें लिखा है—

वीरचर्या च सूर्यप्रतिमात्रिकालयोगधारणं नियमश्च। सिद्धांतरहस्यादिष्वध्ययनं नास्ति देशविरतानां ॥

धर्मामृतश्रावकाचारमें लिखा है—

श्रावको वीरचर्याहः प्रतिमातापनादिषु। स्यान्नाधिकारी सिद्धांतरहस्याध्ययनेऽपि वा ॥

धर्मोपदेशपीयूषवर्षाकरश्रावकाचारमें भी लिखा है—

कृतकारितं परित्यज्य श्रावकाणां गृहे सुधीः। उदम्बुभिक्षया भुक्तिं चैकवारं सयुक्तितः ॥ १ ॥
त्रिकालयोगनियमो वीरचर्या च सर्वथा। सिद्धांताध्ययनं सूर्यप्रतिमा नास्ति तस्य वै ॥ २ ॥

प्रश्न—गृहस्थोंको सिद्धांत ग्रन्थोंके अध्ययन करनेका निषेध लिखा है। उसके सुनने वा बांचनेका निषेध नहीं लिखा है।

समाधान—सुनना वा बांचना अध्ययनसे जुदा नहीं है। सबका एक ही अर्थ है। कोई सामान्य है कोई विशेष है। परंतु हैं सब समान। यदि सुननेको बांचनेको अध्ययनसे जुदा माना जाय तो भी इन्द्रनंदि सिद्धांतीने नीतिसारमें लिखा है—

आर्यिकाणां गृहस्थानां शिष्याणामल्पमेधसाम्।
न वाचनीयं पुरतः सिद्धांताचारपुस्तकम् ॥

अर्थ—अर्जिकाओंके सामने, गृहस्थोंके सामने, और अल्पबुद्धिको धारण करनेवाले शैक्ष्य मुनियोंके सामने सिद्धांताचारके शास्त्र नहीं बांचने चाहिये। इसप्रकार लिखा है। इसलिये इससमय गृहस्थोंको सिद्धांत ग्रन्थोंका स्वाध्याय नहीं करना चाहिये।

प्रश्न—श्रावकोंको सिद्धांत ग्रंथोंके पठन पाठनका निषेध किया वीरचर्या प्रतिमायोग आदिका निषेध किया तो फिर श्रावकोंको करना क्या चाहिये?

समाधान—सत्पात्रोंको दान देना और श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना ये दोही धर्म श्रावकोंके मुख्य धर्म बतलाए हैं। इसका भी अभिप्राय यह है कि सम्यग्दर्शन पूर्वक अहिंसादिक पांचों अणुव्रतोको तथा गुणव्रत शिक्षाव्रतोंको धारण करनेवाले पांचवें गुणस्थानवर्ती गृहस्थोंको श्रावक कहते हैं। तथा दर्शनप्रतिमाको पालनकरनेवाले चौथे गुणस्थानोंमें रहनेवाले गृहस्थोंको अश्रावक (ईषत् श्रावक-श्रावकोंके समान) कहते हैं। श्रावक अश्रावक दोनोंका मुख्य धर्म सत्पात्रोंके लिये दान देना तथा देव शास्त्र गुरु की पूजा करना है। इन्हीं श्रावक वा अश्रावकोंकेलिये वीर्यचर्या प्रतिमायोग और सिद्धांतके पठन पाठनका निषेध किया है। इसीप्रकार ध्यान धारण करना और सिद्धांतके रहस्योंका अध्ययन करना मुनियोंका मुख्य धर्म है। पूजा और दानके विना गृहस्थोंका धर्म नहीं है और ध्यान अध्ययनके बिना मुनियोंका धर्म नहीं है। यही इसका तात्पर्य है सो ही श्रीकुंदकुंद आचार्यने लिखा है—

दाणपूआ मुक्खं सावयधम्मं असावगो तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं जइधम्मं तं विणा तहा सोवि ॥

कितने ही लोग सिद्धांतशास्त्रोंका पठन पाठन करते हैं। उनको कालशुद्धि तथा अक्षर मात्रा स्वरसंधि आदिका भी ज्ञान नहीं होता तथा योग्य अयोग्यका भी विचार नहीं होता। परंतु केवल बडे बननेकेलिये महंत बननेकेलिये उसका अध्ययन करते हैं। सो वे शास्त्रोंके वचनोंसे विरुद्ध चलते हैं। अपनी पद्धति पद और योग्यताके अनुसार चलना योग्य है। केवल झूठी प्रतिष्ठा बढानेमें कुछ सिद्धि नहीं होती।

प्रश्न—इस समयमें जो सिद्धान्त ग्रंथ उपलब्ध हैं उनके पठन पाठनका निषेध नहीं है। गृहस्थोंके न बांचने योग्य सिद्धांतग्रंथ तो और ही हैं। जो इससमय उपलब्ध नहीं हैं। वे मुनियोंके ही पढने योग्य हैं और इनसे जुदे हैं। जैसे एक अक्षरके संयोगी, दो अक्षरके संयोगी, तीन अक्षरोंके संयोगी इसीप्रकार चौसठ अक्षर तकके संयोगी अक्षरोंके जो पद हैं उनका निषेध किया है।

समाधान—ऊपर लिखे प्रश्नमें जो एक दो चार आदि चौसठ अक्षरोंके संयोगी अक्षरोंके बने हुये पदों को सिद्धांत ग्रन्थ बतलाया है सो उनका उच्चारण तो ऋद्धिधारी मुनि ही कर सकते हैं विना ऋद्धिधारी मुनियोंके अन्य साधारण मुनियोंसे भी उनका उच्चारण नहीं हो सकता। फिर गृहस्थकी तो बात ही क्या है। जो आचारांगादिक द्वादशांग के पाठी हैं वे ही उसके उच्चारण करनेमें समर्थ हैं उनके उच्चारण करनेकी शक्ति और किसीमें नहीं है। ऐसे सिद्धांत ग्रंथ तो चौथे कालमें थे (वा भद्रबाहु श्रुतकेवली तक रहे) इस समयमें पंचमकालमें उनका अभाव ही है इस समयमें जो सिद्धांत ग्रंथ मिलते हैं उन्हींका यहांपर निषेध किया है।

२५० । चर्चा दोसौ पचासवीं ।

यदि गृहस्थ सिद्धांत शास्त्रोंका अध्ययन न करे तो उसको आत्मध्यानकी सिद्धि और अनेक गुणोंकी प्राप्ति किसप्रकार हो सकती है । इसलिये यह बात कुछ समझमें नहीं आती । यदि सिद्धांत ग्रंथोंका अध्ययन न किया जायगा तो शुद्धोपयोगमय आत्मज्ञान तथा ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती । गृहस्थका धर्म शुद्ध सुवर्णके समान शुद्धोपयोग मय है । यही मोक्षका कारण है । जो स्वर्गका कारण हो वह तो बंधरूप है इसलिये वह कार्यकारी नहीं हो सकता । हम तो अध्यात्ममार्ग पर चलनेवाले हैं इसलिये हमें व्यवहार धर्म प्रिय नहीं है । हम तो आत्मज्ञानी हैं इसलिये एक शुद्धोपयोग मय चर्चा ग्रंथोंको प्रमाण मानते हैं । व्यवहार रूप पुराणादिकके वचनोंकी श्रद्धा गौणरूपसे करते हैं । सो इसमें क्या हानि है ?

समाधान—इसप्रकार कहना जैनमार्गके विरुद्ध है । क्योंकि सिद्धांतशास्त्रोंको मुख्य मानना और पुराणादिकोंको गौण मानना यथार्थ श्रद्धानसे बाहर है क्योंकि सिद्धांत ग्रंथ किसी अन्य आम्नायके अनुसार हो और पुराण ग्रंथ किसी अन्य आम्नायके अनुसार हों सो तो है ही नहीं । सिद्धांत और पुराण सब जिनागम है । भगवान अरहंतदेवकी दिव्यध्वनिके अनुसार ही गणधरादिक ऋद्धिधारी श्रुतकेवलियोंने तथा अंग पूर्वके पाठी आचार्योंकी रचना है । सो इसमें संदेह करना वा आचार्योंके वचनोंको उल्लंघन करना महादोष है सो ही पद्मनंदिपंचविंशतिकामें लिखा है ।

संप्रत्यस्ति न केवली किल कलौ त्रैलोक्यचूड़ामणिः, तद्वाचः परमासते च भरतक्षेत्रे जगद्योतिकाः ॥
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तासां समालंबनं, तत्पूजा जिनवाचपूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः ॥

अर्थात्—इस पंचमकालमें साक्षात् केवली नहीं हैं । परंतु उनकी वाणीको जाननेवाले और रत्नत्रयको धारण करनेवाले आचार्य हैं सो उनकी पूजा करनी चाहिये । आचार्य वा उनकी वाणीकी पूजा करना साक्षात् केवलीकी पूजा करना है । इसप्रकार इसका अर्थ है जब आचार्योंकी पूजा साक्षात् केवलीकी पूजा कहलाती है तब आचार्योंके वचनोंका उल्लंघन करना साक्षात् केवली भगवानकी आज्ञाका उलंघन करना है तथा केवली भगवानकी आज्ञाका उल्लंघन करना सबसे बड़ा अविनय है । ऐसे लोगोंके लिये पद्मनन्दि पंचविंशतिकामें विशेष रीतिसे लिखा है । यथा—

यः कल्पयेत् किमपि सर्वविदोपि वाचि संदिह्य तत्त्वमसमंजसमात्म्यबुद्ध्या ॥
खे पत्रिणां विचरतां सुदृशेक्षितानां संख्याप्रति प्रविदधाति स बाढमन्धः ॥

अर्थ—जो मनुष्य सर्वज्ञके वचनोंमें संदेह कर केवल अपनी बुद्धिके बलसे तत्त्वोंका स्वरूप अन्यथा कल्पना करता है अर्थात् प्राचीन आचरणोंका लोपकर नवीन नवीन कल्पना करता है वह पुरुष मानों अंधा होकर भी आकाशमें उड़ते हुये पक्षियोंके समूह की गिनती करना चाहता है। भावार्थ—वह पुरुष समस्त कार्योंको मिथ्या करता है।

प्रश्न—हमलोग केवलीके वचनोंमें संदेह नहीं करते उनमें तो हमारी गाढी श्रद्धा है।

उत्तर—यह बात ठीक नहीं है क्योंकि आचार्योंके वचनोंमें संदेह होना अपने आप सिद्ध हो जाता है। जैसा कि पहले लिखा जाचुका है।

प्रश्न—वर्तमान समयके बनाये हुये शास्त्रोंमें जो कथन है सो कहीं संदेह सहित है। इसलिये वह पूर्णरूपसे प्रमाण नहीं कहा जा सकता।

उत्तर—मालूम होता है कि आप लोगोंके पास चतुर्थकालके बने हुये ग्रंथ भी होंगे तभी इसप्रकार कह रहे हो। परंतु चतुर्थ कालके ग्रंथ दिखाई नहीं पड़ते। वर्तमानमें जो ग्रंथ हैं सो सब मूलरूप इस पंचमकालमें होनेवाले आचार्योंके बनाये हुये हैं और उनकी भाषा बचनिकायें आप लोगोंने की हैं सो आप लोगोंकी की हुई वचनिका तो प्रमाण और सत्य हैं परंतु आचार्योंके किये हुये मूल शास्त्रोंका श्रद्धान प्रमाणमें नहीं आता? णमोकार मंत्रके ध्यानको व्यवहारमयी मानकर उसमें गौणता धारण करना तथा अध्यात्मभावोंको शुद्धनयके द्वारा आत्मभावनायुक्त शुद्धोपयोग मय अवस्थाको "सोहं सोहं" इसप्रकारके जप और आत्मध्यानको मुख्य मानना, शुद्धोपयोग रूप अवस्थाको कार्यकारी मानना और बाकी सब कार्योंको व्यवहार मानकर छोड़ते जाना इसप्रकार शुद्ध निश्चयरूप अवस्था मानना और परिग्रह भी रखना सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है क्योंकि ज्ञानार्णवमें लिखा है कि गृहस्थोंके ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती। यथा

न प्रमादजयं कर्तुं धीधनैरपि पार्यते। महादुःखेन संकीर्णे गृहवासेऽतिनिंदिते॥
शक्यते न वशीकर्तुं गृहभिश्चपलं मनः। अतश्चित्तप्रशांत्यर्थं सद्भिस्त्यक्तागृहस्थितिः॥

अर्थात्—यह गृहजाल अनेक संकटोंसे भरा हुआ है तथा अत्यंत निंदनीय है। इसमें रहते हुए भव्यजीव विना आत्मशुद्धिके प्राप्त हुए प्रमादको जीत नहीं सकते। तथा जबतक प्रमाद जीते नहीं जाते तबतक शुद्धोपयोग रूप भाव नहीं हो सकते। और जब शुद्धोपयोग रूप भाव नहीं हो सकते तबतक ध्यानकी सिद्धि किस प्रकार हो सकती है। इसके सिवाय गृहस्थ लोग अपने चंचल

मनको वश नहीं कर सकते । इसलिये चित्तको शांत करनेकेलिये वश करनेकेलिये सबसे पहले गृहवास छोड देना चाहिये। गृहवासके छोड देनेसे ही ध्यानकी सिद्धि हो सकती है। सो ही लिखा है—

प्रतिक्षणं द्वन्द्वशतार्तचेतसां, नृणां दुराशाग्रहपीडितात्मनाम् ॥
नितंविनीनां लोचनचारुसंकटे, गृहाश्रमे नश्यति स्वात्मनो हितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—इस गृहस्थाश्रममें रहनेवाले लोगोंका हृदय क्षण क्षणमें होनेवाले सैकडों आर्त वा दुःखोंसे वा उपद्रवोंसे भरा हुआ रहता है तथा उनका आत्मा खोटी आशारूपी पिशाचिनीसे पीडित रहता है। इसके सिवाय वह गृहस्थ स्त्रियोंके नेत्रोंकी चंचलता रूपी संकटमें सदा पडा रहता है इसलिये ऐसे गृहस्थके आत्माका हित कभी नहीं हो सकता। और भी लिखा है—

निरन्तरार्तानलदाहदुर्गमे, कुवासनाध्वान्तविलुप्तलोचने ॥
अनेकचिन्ताज्वरजीर्णनात्मनां, नृणां गृहे नात्महितं प्रसिद्धयति ॥

अर्थ—गृहस्थमें रहनेवाले लोग आर्त रौद्र ध्यानरूपी दुर्गम अग्निसे सदा जलते रहते हैं तथा बुरी वासनारूपी महा अंधकारसे उनके नेत्र सदा बंद रहते हैं और अनेक चिंता रूपी ज्वरसे जिनका आत्मा सदा संतप्त रहता है ऐसे घरमें रहनेवाले गृहस्थोंके आत्महितकी सिद्धि किस प्रकार हो सकती है अर्थात् कभी नहीं हो सकती।

यदि किसीके घरमें अग्नि लग जाती है तो वह अपने धन आदिको लेकर वहांसे निकलनेका विचार करता है। परंतु प्रथम तो वहांसे उसका निकलना कठिन होजाता है। यद्यपि दैवके अत्यंत अनुकूल होनेपर निकलना कुछ कठिन और आश्चर्य करनेवाला नहीं है तथापि यदि चारों ओर दुर्गम अग्नि लग रही हो तथा निकलनेका कोई मार्ग न हो, निकलनेवाला अंधा हो और ज्वरसे अत्यंत पीडित हो तो वह अपना धन किस प्रकार उठा सकता है और किस प्रकार वहांसे निकल सकता है। अर्थात् ऐसा पुरुष वहांसे न तो निकल सकता है और न अपने धनकी रक्षा कर सकता है उसी प्रकार गृहस्थ भी आर्त रौद्र चिंता आदिसे अत्यंत दुखी रहता है इसलिये वह अपना हित कभी नहीं कर सकता। न शुद्ध ध्यान वा शुद्ध आत्माकी प्राप्ति कर सकता है। जो लोग अपने मनमें जबर्दस्ती मान लेते हैं वे केवल कहनेके लिये ही मान लेते हैं उनके शुद्ध ध्यान वा शुद्ध आत्माकी सिद्धि कभी नहीं होती। ऐसे गृहस्थोंके लिये आगे और भी लिखा है—

विपन्महापंकनिमग्नबुद्धयः, प्ररूढरागज्वरयंत्रपीडिताः।
परिग्रहव्यालविषाग्निमूर्च्छिताः, विवेकवीथ्यां गृहिणः स्खलंत्यमी ॥

अर्थ—इन गृहस्थोंकी बुद्धि अनेक प्रकारकी विपत्तिरूपी महा कीचडमें डूबी रहती है। वे गृहस्थ राग द्वेषरूपी ज्वरके यंत्रसे सदा पीडित रहते हैं और परिग्रहरूपी सर्पोंके विषरूपी अग्निसे सदा मूर्च्छित रहते हैं इसीलिये वे गृहस्थ विवेकरूपी गलीमें चलते हुए सदा ठोकर खाकर गिरते रहते हैं। ठीक ठीक तरहसे चल नहीं सकते। ऐसे गृहस्थोंकेलिये और भी लिखा है—

हिताहितं विमूढात्मा स्वं शश्वद्वेष्टयेत्तराम्। अनेकारम्भजैः पापैः कोशकारकृमी यथा ॥ ६ ॥

अर्थ—जिसप्रकार रेशमका कीड़ा अपने आप जाल बनाकर उसमें घिर कर मर जाता है उसीप्रकार अपने हित और अहितको नहीं जाननेवाले गृहस्थ अनेक आरंभोंसे उत्पन्न हुए पापोंसे अपने आप ही सदा घिर जाते हैं अर्थात् गृहस्थोंका आत्मा पापोंसे सदा लिप्त रहता है। भावार्थ—जिसप्रकार रेशमका कीडा अपने आप जाल बांधता है और उसमें फंसकर मर जाता है तथा जिस-प्रकार मकड़ी जाल फैलाकर उसमें अपने आप मर जाती है। उसी प्रकार यह गृहस्थोंका आत्मा अनेक प्रकारके पापरूप आरंभोंको करता हुआ कर्मबंध करता रहता है। इसलिये उसके शुद्ध ध्यानकी सिद्धि कभी नहीं हो सकती।

यैर्जन्मशतेनापि रागाद्यरिपताकिनी। विना संयमशस्त्रेण न सद्भिरपि शक्यते ॥

गृहस्थ लोग चाहे जितने बुद्धिमान् हों तथापि उनसे विना संयमरूपी शस्त्रके सैकड़ों जन्मोंमें भी राग द्वेषरूपी शत्रुओंकी सेना नहीं जीती जा सकती। भावार्थ—गृहस्थ अवस्थामें राग द्वेषादिक जीते नहीं जा सकते। तथा विना रागद्वेषोंको जीते आत्माका हित करनेवाला शुद्धोपपयोगरूप ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती।

प्रचंडपवनैः प्रायश्चलन्तेऽचलभूभृतः। तत्रांगलादिभिः स्वान्तं निसर्गतरलं न किम् ॥

अर्थ—जब कि प्रचंड पवनके द्वारा अचल पर्वत भी चलायमान हो जाते हैं तो फिर स्वभावसे ही चंचल मन स्त्रियोंके द्वारा क्यों नहीं चलायमान हो सकता अर्थात् गृहस्थोंका मन स्वभावसे ही चंचल होता है फिर उसको और चलायमान करनेकेलिये स्त्रियां कारण हो जाती हैं इसलिये गृहस्थोंका मन निश्चल होना अत्यंत कठिन है तथा जबतक मन निश्चल वा एकाग्र नहीं होता तबतक ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती।

खपुष्पमथवा शृंगं खरस्यापि प्रतीयते । न पुनः देशकालेऽपि ध्यानसिद्धिर्गृहाश्रमे ॥ ९ ॥

अर्थ—यद्यपि आकाशपुष्प होता नहीं, गधेके सींग होते नहीं तथापि यदि इन दोनोंकी कल्पना की जाय तो हो सकती है परंतु गृहस्थके किसी भी देशमें तथा किसी भी कालमें ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती। यदि कोई पुरुष जबर्दस्ती गृहस्थावस्थामें ध्यानकी सिद्धि मानना चाहिये तो उसकेलिये श्रीशुभचन्द्राचार्यने ज्ञानार्णवमें ऊपर लिखा श्लोक लिखा है। इसके सिवाय इसी अभिप्रायको लिये हुये श्रीगुणभद्राचार्यने आत्माऽनुशासनमें लिखा है। यथा—

सर्वं धर्ममयं क्वचित्क्वचिदपि प्रायेण पापात्मकं, क्वाप्येतद्द्वयवत्करोति चरितं प्रज्ञाधनानामपि ॥
तस्मादेष तदन्धरज्जुवलनं स्नानं गजस्याथवा, मत्तोन्मत्तविचेष्टितं न हितो गेहाश्रमः सर्वथा ॥ ४१ ॥

अर्थ—इस गृहस्थाश्रममें यह जीव कभी तो सामायिक प्रतिक्रमण व्रत उपवास यम नियम आदि धर्ममयी क्रिया ही करता है। कभी स्त्रीसेवन आदि पांचों पापोंका सेवन करता है। तथा कभी कभी पूजा प्रतिष्ठा तीर्थयात्रा आदि पुण्य पाप रूप मिली हुई क्रियाएं करता है। इस प्रकार यह गृहस्थाश्रम बुद्धिमान लोगोंकेलिये भी अंधेकी रस्सीके समान है अथवा हाथीके स्नानके समान है अर्थात् जिस प्रकार अंधा पुरुष रस्सी बटता जाता है और पीछेसे गाय उसे खाती जाती है अथवा हाथी स्नान करनेके बाद भी मार्गकी धूलको वा कूडे कर्कटको सूंडसे ले लेकर अपने सब शरीर पर डालकर शरीरको मैला कर लेता है उसीप्रकार यह गृहस्थाश्रम मदोन्मत्त वा पागल पुरुषोंकी चेष्टाओंके समान है। इसमें आत्माका हित कभी नहीं हो सकता। यह जीवको कल्याणकारी नहीं हो सकता। इसप्रकार जो लोग गृहस्थाश्रममें भी शुद्धोपयोग अध्यात्मभाव तथा आत्मध्यानकी सिद्धि मानते हैं उनका समाधान किया।

यदि विचार किया जाय तो शुद्धोपयोगकी सिद्धि मुनिराजके भी आठवें गुणस्थानसे लेकर बारहवे गुणस्थान तक क्रमसे बढती हुई होती है। तथा बारहवें गुणस्थानके अंतमें पूर्ण होती है। छठे गुणस्थानमें भी शुभोपयोग है। छठे सातवेंमें यथासाध्य शुद्धोपयोग है। आत्मध्यानकी प्राप्ति नहीं है। जब छठे गुणस्थानमें भी यह हाल है तो फिर जिसके चौथे गुणस्थानका भी निश्चय नहीं है और अपनेको अध्यात्मी आत्मध्यानी शुद्धोपयोगरूप मानता है उसके शुभोपयोग तो छूट जाता है और शुद्धोपयोगकी प्राप्ति नहीं होती इस प्रकार वह दोनोंसे च्युत हो जाता है। भावार्थ—ऐसा पुरुष देवपूजा आदि शुभोपयोगसे अपना भाव हटा

लेता है और शुद्धोपयोगकी प्राप्ति होती नहीं। इस प्रकार वह शुद्धोपयोग और शुभोपयोग दोनोंसे छूटकर अशुभोपयोगमें आ जाता है तथा अशुभोपयोग होनेसे उसके पाप बंध ही होता है इसलिये गृहस्थोंको शुद्धोपयोग बननेका अधिकार नहीं है। गृहस्थोंको तो अशुभोपयोगका त्याग कर देना चाहिये और शुभोपयोगरूप रहना चाहिये। यदि ऐसा न माना जायगा तो अणुव्रत, महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, श्रावककी ग्यारह प्रतिमाएं, चतुर्विध संघ, पूजा प्रतिष्ठा तीर्थयात्रा, व्रत उपवास, सत्पात्रोंको दान देना, करुणा दान, जप, तप, यम, नियम आदि शुभोपयोग मय व्यवहार धर्म सब व्यर्थ हो जायगा। तथा इन सबके व्यर्थ होनेसे फिर शास्त्रोंका स्वाध्याय किस काममें आवेगा। परंतु ये सब क्रियाएं व्यर्थ नहीं है सार्थक हैं सो ही तत्त्वज्ञानतरंगिणीमें लिखा है—

याता यान्ति च यास्यंति ये भव्याः मुक्तिसंपदम्। आलंब्य व्यवहारं ते पूर्वं पश्चाच्च निश्चयम् ॥ १६ ॥
कारणेन विना कार्यं न स्यात्तेन विना नयम्। व्यवहारं कदोत्पत्तिर्निश्चयस्य न जायते ॥ १७ ॥
जिनागमे प्रतीतिः स्याज्जिनस्याचरणेऽपि च। निश्चयं व्यवहारं तन्नयं भज यथाविधि ॥ १८ ॥
व्यवहारं विना केचिन्नष्टाः केवलनिश्चयात्। निश्चयेन विना केचित् केवलव्यवहारतः ॥ १९ ॥
द्वाभ्यां दृग्भ्यां विना न स्यात् सम्यग्द्रव्यावलोकनम्। यथा तथा नयाभ्यां चेत्युक्तं चे स्याद्वादिभिः ॥ २० ॥
निश्चयं क्वचिदालम्ब्य व्यवहारं क्वचिन्नयम्। विधिना वर्तते प्राणी जिनवाणीविभूषितः ॥ २१ ॥

अर्थ—जो भव्य जीव पहले व्यवहार धर्मका आलंबन करते हैं तदनंतर निश्चयको ग्रहण करते हैं वे ही जीव मोक्ष जाते हैं ऐसे ही जीव मोक्ष गये हैं और ऐसे ही जांयगे। यह नियम है कि विना कारणके कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। उसी प्रकार विना व्यवहार धर्मके निश्चय धर्मकी उत्पत्ति नहीं होती। इसलिये भव्य जीवोंको जिनागमका श्रद्धान और जिनाचरणका पालन करना विधिपूर्वक निश्चय और व्यवहार दोनों नयोंसे होना चाहिये। केवल एकके सेवन करनेसे कार्यकी सिद्धि नहीं होती। कहीं पर तो व्यवहारके विना केवल निश्चय नयका एकांत पक्ष लेनेसे केवल निश्चय नयका पालन करनेसे कितने ही जीव नष्ट होजाते हैं। कितने ही लोग विना निश्चयके केवल व्यवहार नयके आश्रयसे नष्ट हो जाते हैं। तथा कितने ही लोग दोनों नयोंसे तथा सम्यग्दर्शनसे रहित होकर द्रव्योंके यथार्थ स्वरूपके श्रद्धानसे वंचित रह जाते हैं। इसलिये स्याद्वादियोंने पदार्थोंका स्वरूप जिस नयसे बतलाया है

उसको उसी रूपसे ग्रहण करना चाहिये। जहां निश्चय नयसे बतलाया है वहां निश्चयसे ग्रहण करना चाहिये और जहां व्यवहारसे बतलाया है वहां व्यवहारसे ग्रहण करना चाहिये। व्यर्थका हट नहीं करना चाहिये।

प्रश्न—निश्चय धर्मको माने विना सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति किसप्रकार होगी।

उत्तर—आत्मज्ञानको धारण करनेवाले सम्यग्दृष्टी जीव इस पंचमकालमें बहुत थोडे बतलाये हैं। ऐसे सम्यग्दृष्टियोंकी संख्या दो तीन ही बतलाई है। अथवा दुर्लभतासे चार पांच होना बतलाया है। सो ही स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीकामें लिखा है—

विद्यन्ते कति नात्मबोधविमुखा संदेहिनो देहिनः प्राप्यन्ते कतिचित् कदाचित् पुनर्जिज्ञासमानाः क्वचित् ॥
आत्मज्ञाः परमप्रमोदसुखिनः प्रोन्मीलदन्तर्दृशो। द्वित्राः स्युर्बहवो यदि त्रिचतुरास्ते पंचषद् दुर्लभाः ॥

तत्त्वज्ञानतरंगिणी नामके शास्त्रमें लिखा है—

गणिकचिकित्सिकतार्किकपौराणिकवास्तुशब्दशास्त्रज्ञाः।
संगीतादिषु निपुणाः सुलभा न हि तत्त्ववेत्तारः ॥

अर्थ—ज्योतिष, वैद्यक, न्याय, पुराण, शिल्प, व्याकरण, संगीत, शृंगार मंत्र, तंत्र आदि शास्त्रोंमें निपुण विद्वान् तो इस संसारमें बहुत हैं परंतु आत्मतत्त्वको जाननेवाले विद्वान् इस संसारमें हैं ही नहीं, हैं तो बहुत दुर्लभ हैं एक दो होंगे वा दो चार होंगे अधिक नहीं है।

प्रश्न—इस समय जो हजारों लाखों जैनी जैन धर्म पालन करते हैं सो क्या विना सम्यग्दर्शनके पालन करते हैं। यदि वे विना सम्यग्दर्शनके धर्म पालन करते हैं तो उनका पालन करना व्यर्थ है। भूसीको कूटनेके समान उनका परिश्रम करना व्यर्थ है।

उत्तर—जो लोग व्यवहार धर्मको छोड़कर शुद्धोपयोग अध्यात्म भावों सहित अपनेको आत्मज्ञानी सम्यक्त्वी मानते हैं वे दोनोंसे रहित होनेपर सम्यग्दर्शन रहित हो सकते हैं परंतु जो देवपूजा आदि व्यवहाररूप जैन धर्मका श्रद्धान ज्ञान आचरण करते हैं वे सर्वज्ञप्रणीत आज्ञाके पालन करनेवाले होनेके कारण योग्य और व्यवहार सम्यग्दृष्टी हैं। उनका धर्म पालन करना अपने अपने भावोंके अनुसार सब सफल है। ऐसा समझना चाहिये।

२५१। चर्चा दोसौ इक्यावनवीं।

जिन प्रतिमाके जंगम और स्थावर ऐसे दो भेद सुने हैं सो इसका क्या अभिप्राय है ?

समाधान—यह कथन श्री कुन्दकुन्दाचार्यने अपने पाहुड ग्रंथोंमें मुनियोंके धर्म क्रिया और आचरणोंकी अपेक्षासे किया है। यह कथन सद्भूत निश्चय नयका विषय है। अनादि कालसे चले आये इस दिगम्बर आम्नायसे श्वेतांबर धर्म निकला। उसने आयतन आदि वस्तुओंका स्वरूप विपरीतरूपसे पुष्ट किया। उनको समझानेके लिये आचार्योंने उनका यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन किया है। आयतन १, चैत्यगृह २ जिनप्रतिमा ३ दर्शन ४ जिनविम्ब ५ जिनमुद्रा ६ ज्ञान ७ देव ८ तीर्थ ९ अरहंत १० शुद्ध-प्रव्रज्या ११ इन ग्यारह वस्तुओंका स्वरूप बतलाया है। उसमें जिन प्रतिमाको चेतनालक्षण सहित भी बतलाया है और उसके जंगम और स्थावर ऐसे दो भेद बतलाये हैं। सो ही बोधपाहुडमें लिखा है—

सयराजंगमदेहा दंसणणाणेण शुद्धचरणाणं। णिगंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ॥ १० ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानके द्वारा जिसके चरित्र अत्यन्त निर्मल हैं ऐसा अपना वा दूसरेका चलता हुआ जो शरीर है उसको जिनमार्गमें निर्ग्रंथ वीतरागमयी चलती प्रतिमा अथवा जंगम प्रतिमा कहते हैं।

जं चरीद सुद्ध चरणं जाणइ पिच्छेद सुद्ध सम्मत्तं। सो होइ वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा ॥ १ ॥

अर्थ—जो मुनि शुद्ध आचरणोंको धारण करते हैं। अपने शुद्ध ज्ञानके द्वारा पदार्थोंके स्वरूपको यथार्थ जानते हैं और जो सम्यग्दर्शनके द्वारा अपने आत्माको देखते हैं ऐसे शुद्ध सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र गुण जिनके विद्यमान हों ऐसी निर्ग्रन्थ संयमस्वरूपी प्रतिमा सदा वंदना करने योग्य है। अन्य श्वेताम्बर आदिके द्वारा कल्पना की हुई प्रतिमा वा श्वेतांबरोंके द्वारा कल्पना किये हुये अरहंत वा साधु वंदना करने योग्य नहीं हैं। इसप्रकार जंगम प्रतिमाका स्वरूप है।

दंसण अणंतणाणं अणंत वीरिय अणंत सुक्खाय। सासयसुक्ख अदेहा मुक्काकम्मट्ठबंधेय ॥ १२ ॥
णिरुवममचलमखोहा णिमाविया जंगमेण रूवेण। सिद्धट्ठाणम्मिया वो सर पडिमा माधुवा सिद्धा ॥

अर्थ—जो अनन्तदर्शन अनन्तज्ञान अनन्तवीर्य और अनन्तसुख इन अनन्त चतुष्टयोंसे सुशोभित हैं, जो शाश्वत अविनाशीक सुख सहित हैं, जो ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंके बंधसे रहित हैं, जो सब तरहकी उपमाओंसे रहित हैं, अचलप्रदेशी हैं, क्षोभरहित हैं,

जंगमरूपसे बनी हुई है और एकाग्र सिद्धस्थानमें ध्रुवरूप वा निश्चलरूपसे विराजमान हैं ऐसे सिद्ध परमेष्ठी स्थावर प्रतिमा हैं

ऊपर दो गाथाओंमें जंगम प्रतिमा वा चलती हुई प्रतिमाका स्वरूप बतलाया है और फिर दो गाथाओंमें स्थावर प्रतिमाका स्वरूप बतलाया है इन्हीं स्थावर और जंगम भेदसे दोप्रकारकी जिनप्रतिमाका पूजन वंदन स्तवन दर्शन आदि भक्तिके लिये उन्हींकी धातुपाषाणमयी प्रतिमा बनाकर प्रतिष्ठापूर्वक जिनालयमें विराजमान करते हैं। वह भी महापुण्यका कारण है। असद्भूत व्यवहार नयका विषय है। इनके सिवाय मेरु पर्वतपर नंदीश्वर आदि द्वीपोंमें कुलाचल गजदन्त विजयार्धपर जो अनादि अनिधन शाश्वती अरहन्त परमेष्ठीकी जिनप्रतिमा विराजमान है जहांपर इन्द्रादिक चतुर्णिकायके देव तथा ढाई द्वीपोंके विद्याधर और ऋद्धिधारी मुनि उनकी पूजा बन्दना आदि करके महा पुण्योपार्जन करते हैं सो सब धर्मानुरागकेलिये करते हैं तथा वे विद्याधरादिक उनकी वंदनासे प्राप्त हुये पुण्योपार्जनसे इन्द्रादिकके सर्वोत्तम पद पाकर क्रमसे थोडेसे उत्तम भव धारण कर मोक्षपद प्राप्त करते हैं। इसप्रकार धातु पाषाणकी बनी हुई कृत्रिम वा अकृत्रिम जिनप्रतिमाकी भक्ति करनेका फल है। इनके विशेष विशेष फलोंका स्वरूप अन्य ग्रंथोंसे जान लेना चाहिये।

प्रश्न—ऊपर जो कथन बतलाया गया है वह मूल गाथाओंमें नहीं है टीकामें लिखा है। इसलिये वह पूर्णरूपसे प्रमाण नहीं है इसलिये हम तो ऊपर लिखी हुई जंगम और स्थावर प्रतिमाकी (अरहंत सिद्धकी) वंदना करते हैं। इनके सिवाय अन्य जो धातु पाषाणकी कल्पना की हुई प्रतिमाएं हैं वे निश्चयनयसे मोक्षमार्गके स्वरूपमें कारण नहीं हैं। केवल व्यवहारसे कारण हैं सो व्यवहारसे कोई सिद्धि होती नहीं। यह धातु पाषाणमई प्रतिमा तो अल्पज्ञानियोंकेलिये असमझ लोगोंकेलिये बनाई है आत्मज्ञानियोंकेलिये नहीं है। सो ही योगीन्द्र देवकृत योगसारमें लिखा है—

तामकु तित्थयरीभमधुत्तिमतांम करे। गुरु वयसा राजामणि विदेह इदेह मुणेय ॥ ४१ ॥
तित्थह देहणवि इमि सुइ केवलि वत्त। देही देवल देउ जिण ए उजाणि णिभंतु ॥ ४२ ॥
देहा देवल देव जिणु देवल हीणी एदोइ। सामइ पडिहा इदहु सिघीभी स्वयमेइ ॥ ४३ ॥
मूढा देवलि देवणिविण विसला लिपइ चित्त। देहा देवल देव जिणु सो बुझइ समचित्त ॥ ४४ ॥
तीरथई देव जिण सव्वुवि कोइ थणेइ। देहा देवलि जो भुणइ सो वहु कोवि हवेइ ॥ ४५ ॥

इससे सिद्ध होता है कि अपने शरीररूपी मंदिरमें अपना आत्मा ही यथार्थ देव हैं। तीर्थ और मंदिरोंमें कोई देव नहीं है। जो मानते हैं सो अज्ञानी हैं अन्य मतमें भी इस प्रतिमापूजनका निषेध किया है और बतलाया है कि यह तो लौकिक रूढि है। गृहस्थोंकेलिये है परमार्थ रूप नहीं है बंधरूप है। सो ही चाणिक्यमें लिखा है—

अग्निहोत्रेषु विप्राणां हृदि देवो मनीषिणाम्। प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनाम् ॥

अर्थात्—ब्राह्मण लोग अग्निहोत्रमें देव मानते हैं, अल्पबुद्धिवाले गृहस्थ प्रतिमामें ही देव मानते हैं और आत्माको जाननेवाले सब जगह देव मानते हैं। इसीलिये प्रतिमा माननेमें हमारी अरुचि है। जिसप्रकार धातु पाषाण मिट्टी काठ आदिका बनाया हुआ हाथी घोड़ा मनुष्य को सच्चा समझकर बालक खेला करता है परंतु जब वह समझ लेता है तब उनको झूठा समझकर उनसे क्रीडा करना छोड़ देता है और अन्य कार्योंमें लग जाता है उसीप्रकार अल्प बुद्धिवालोंको धर्मसेवनकेलिये जिनप्रतिमा है। वह परमार्थ-रूप नहीं है केवल खेद उत्पन्न करनेवाली है। वह प्रतिमा अचेतन है जड है इसलिये उससे इच्छानुसार फल नहीं मिल सकता, इसके सिवाय अचेतन प्रतिमाकी पूजन करने आदिमें अनेक प्रकार से पृथ्वीकाय आदि छहों कायके जीवोंकी महा हिंसा होती है तथा हिंसासे पापकर्मका बंध होता है और पापकर्मोंके बंधसे नरकादिक दुर्गतियोंकी प्राप्ति होती है इसलिये प्रतिमापूजन करना सर्वथा अयोग्य है।

धर्म तो एक दयारूप है। दया ही सब धर्मोंमें मुख्य है सो ही लिखा है "हिंसारहिये धम्मे" अर्थात् जिसमें हिंसा नहीं है वही धर्म है फिर लिखा है—"आरंभे णत्थियदया" अर्थात्—आरंभमें दया नहीं पल सकती। और भी लिखा है "अहिंसालक्षणो धर्म" अर्थात् धर्मका लक्षण अहिंसा ही है। इन सब प्रमाणोंसे प्रतिमापूजनका श्रद्धान करना योग्य नहीं मालूम होता। यदि किसी स्त्री-का पति मरजाय और वह स्त्री उसकी धातु वा पाषाणकी मूर्ति बनाकर उसकी सदा भक्ति करती रहे तो भी उससे उसके संतान नहीं हो सकती इसीप्रकार धातु पाषाणकी प्रतिमासे भी कोई फल नहीं मिल सकता। इसप्रकार कितने ही लोग कुयुक्तियोंके द्वारा मूर्तिपूजाका खंडन करते हैं। कितने ही अध्यात्मी, समैया, श्वेताम्बर मतसे निकले लोकगच्छके ढूंढिया साधु भीष्मपंथी, अन्य मतके वेदान्ती आदि बहुतसे मतवाले अपनी बुद्धिके बलसे मूर्तिपूजामें दोष कल्पना करते हैं तथा उनकी वंदना पूजा तीर्थयात्रा दर्शन स्त्रोत्र स्तुति आदिमें अरुचि उत्पन्न करते हैं निषेध करते हैं सो सब मिथ्या है। इन सबका यहांपर परिहार करते हैं सबका उत्तर देते हैं।

सबसे पहले अध्यात्मी, शुद्धोपयोगी, आत्मज्ञानी आदि समैया मतके लिये कहते हैं। जैनधर्मके जितने सिद्धांत ग्रंथ हैं पुराण चरित्र हैं उन सबमें जिनमंदिर तथा प्रतिमाओंके अनेक भेद वर्णन किये हैं सबमें तीर्थयात्रा, दर्शन, वंदना पूजन, स्तवन, आदि अनेक प्रकार की भक्तिका वर्णन किया है। मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकाओंको भगवान अरहंत देवकी भक्ति करना महा पुण्यका कारण बतलाया है। तथा परंपरासे मोक्षका कारण बतलाया है। रत्नत्रयरूप धर्मका हेतु बतलाया है। भगवान अरहंत देवकी प्रतिमाकी भक्ति करनेसे अनेक जीवोंको मोक्षकी प्राप्ति हो रही है, हुई है और आगे होगी ऐसा अनेक शास्त्रोंमें वर्णन किया है।

इनके सिवाय मेरु पर्वतपर वा कुलाचल विजयार्ध आदि पर्वतोंपर अनादि कालसे अकृत्रिम जिन चैत्यालय और जिन प्रतिमाजी चली आ रही हैं तीनोंलोकोंमें अकृत्रिम जिन चैत्यालय विराजमान हैं जिनका वर्णन समस्त शास्त्रोंमें है। अनेक भव्य जीव उनकी सेवा पूजाकर परमानंद पद प्राप्त करते हैं तथा अनेकप्रकारके महा दुःख देनेवाले नरकादिक दुर्गतियोंका नाश करते हैं और जन्म जन्मांतरके पापोंको नष्टकर महान् आत्मधर्मको प्राप्त होते हैं। यह कथन और यह रीति अनादि कालसे परंपरासे चली आ रही है। इनका वर्णन समस्त जैन शास्त्रोंमें है। ऐसा कोई शास्त्र नहीं है जिसमें इसका निषेध हो। केवल थोडेसे समैया लोग ही ऐसा कहते हैं सो उसकी श्रद्धा ज्ञान आचरण किसप्रकार किया जाय। तुम्हारा यह कहना और उसका श्रद्धान करना सब सर्वज्ञ देवके वचनों के विरुद्ध है महा अविनयरूप है महापापरूप है। अनंत संसारको बढानेवाला है मिथ्यात्वका कारण है सम्यग्दर्शनका घातक है शुद्धोपयोग और शुभोपयोगका विरोधी है सदा अशुभोपयोगको बढानेवाला है। नरकादिक अधोगतिमें ले जानेवाला है। आत्माके गुणोंका घातक है। शुद्धज्ञान और आचरणका लोप करनेवाला है। रत्नत्रयका बाधक है मोक्ष मार्गका नाश करनेवाला है। सन्मार्गका नाश करनेवाला है। उन्मार्गको वा कुमार्गको पुष्ट करनेवाला है तथा स्वच्छंदताकी प्रवृत्ति करनेवाला है। कहांतक कहा जाय अनेक विपरीतताका कारण है। तुम्हारा इसप्रकारका (प्रतिमाजीका पूजा न करनेका) जो श्रद्धान ज्ञान वा आचरण है सो प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोग आदि समस्त द्वादशांगमय जिनागमरूप सिद्धांतके विरुद्ध है। कथा पुराण चरित्र आदिको लोप करनेवाला है समस्त शास्त्रोंकी आज्ञाको भंग करनेवाला और अविनय की प्रवृत्ति करनेवाला है।

सिद्धांत ग्रंथोंमें जो शुद्धोपयोगका कथन किया है तत्त्वोंके स्वरूपका निर्णय बतलाया है और उसमें पुण्य पदार्थको गौण बतलाया है। मोक्ष तत्त्वकी मुख्यता बतलाई है तथा मोक्षतत्त्वकी मुख्यताका वर्णन करते समय जीव तत्त्वमें आप ही को परमात्मा बतलाया है अन्य सबको व्यवहार बतलाकर सबका त्याग कराया है सो यह सब कथन एकविहारी जिनकल्पी मुनियोंके

५१२

लिये हैं यह सब उपदेश सातवें आठवें आदि ऊपरके गुणस्थानोंकी अपेक्षासे दिया गया है। सो इन ऊपरके गुणस्थानोंमें व्यवहारका त्याग होही जाता है। ये सब गुणस्थान तो शुद्ध ध्यान अवस्थाके हैं इनमें व्यवहारका क्या काम है। इसीलिये ऐसा कहा गया है।

यदि ऐसा न माना जाय और इस शुद्ध निश्चयनयसे कहे हुए कथनको चतुर्थगुणस्थानवर्ती गृहस्थोंके लिये ही मान लिया जाय तो फिर श्रावककी ग्यारह प्रतिमाएं तथा छठे गुणस्थानमें रहनेवाले मुनियोंके पालन करने योग्य अट्ठाईस मूलगुण आदि समस्त व्यवहारधर्मका लोप करना पडेगा। परन्तु इन सब व्यवहार धर्मोंका लोप हो नहीं सकता।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि समस्त व्यवहारधर्म निश्चयधर्मकी प्राप्तिका कारण है। इसलिये वह सम्यग्दर्शन पूर्वक गृहस्थ और मुनियोंको ग्रहण करने योग्य है। यदि इस व्यवहार धर्मके विना स्वच्छंद होकर आत्मज्ञानी बनना और विषय कषायोंमें तृप्त रहना है सो आत्माको ठगना है, क्योंकि अणुव्रत महाव्रत आदिका पालना, तीर्थयात्रा करना यथायोग्य दर्शन पूजन आदि करना, धर्मोपदेश देना, ध्यान, अध्ययनका सिद्ध करना, तप और स्वाध्याय करना आदि सब समस्त कर्तव्य एक चैतन्य स्वरूप शुद्ध आत्माकी प्राप्तिके लिये हैं। जिसप्रकार दर्शनविशुद्धि विनयसंपन्नता आदि सोलहकारण भावनाएं तीर्थंकर प्रकृतिके आस्रवके कारण हैं उसीप्रकार व्यवहारधर्म निश्चयधर्मका कारण है, जिसप्रकार तीर्थंकर प्रकृतिके लिये सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन करते हैं उसीप्रकार आत्मस्वरूपकी प्राप्तिकेलिये भगवान अरहन्तदेवकी प्रतिमाकी पूजा सत्पात्र दान आदि समस्त व्यवहारधर्म करना चाहिये। इसलिये पूजा, नुति, जप, ध्यान, भक्ति, विनय आदि किये जाते हैं। सो ही जैनगीतामें लिखा है—

जिनेशिनः स्नानात्स्तुतियजनजयान्मंदिरार्चाविधानात्
चतुर्थादानादध्ययनरव·········जयतो ध्यानतः संयमाच्च।
व्रताच्छीलात्तीर्थादिकगमनविधेः क्षांतिमुख्यप्रधर्मात्
क्रमाच्चिद्रूपाप्तिं भवति जगति ये वाञ्छकास्तस्य तेषाम्।
देवं श्रुतं गुरुं तीर्थं भदंतं च तदाकृतिम्।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यान हेतुत्वाद्भजने सुधीः।

अर्थ—जो जीव शुद्ध चिद्रूप शुद्ध आत्माकी प्राप्ति करना चाहते हैं उनके भगवानका अभिषेक करनेसे, भगवानकी स्तुति करनेसे, जप करनेसे, मंदिर प्रतिमा आदिकी प्रतिष्ठा पूजा आदि करनेसे, चार प्रकारका दान देनेसे, शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे, इन्द्रियोंको जीतनेसे ध्यान और संयम पालन करनेसे, व्रत तथा शीलके पालन करनेसे, तीर्थयात्रा करनेसे और उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंके पालन करनेसे अनुक्रमसे शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है। इसीप्रकार अरहंत देवकी निरग्रंथ गुरुकी द्वादशांगरूप श्रुतज्ञानकी, जिनका सहारा लेकर यह जीव पार हो ऐसे कैलाश सम्मेदशिखर, गिरनार, चंपापुर, पावापुर वा और भी निर्वाणक्षेत्र आदि तीर्थकी तथा भदंत आदि भट्टारक तीर्थंकर परमदेवकी और उनकी प्रतिमाकी जो बुद्धिमान सेवा भक्ति करते हैं उनका दर्शन पूजन नमस्कार आदिके द्वारा अनेक प्रकारकी भक्ति करते हैं, उनका ध्यान जप स्तुति करते हैं सो सब चिद्रूप सिद्धस्वरूप आत्माके ध्यानके लिये ही करते हैं। अर्थात् इन सबके करनेसे शुद्ध आत्माके ध्यानकी प्राप्ति होती है। इसप्रकार जैनगीताके तीसरे अध्यायमें लिखा है सो सब यथार्थ है।

पहले जो जिन प्रतिमाके स्थावर और जंगम ऐसे दो भेद बतलाये थे सो शास्त्रोंमें उनकी पूजा बंदना भक्ति आदि छह प्रकारसे बतलाई है। उन छहोंके नाम ये हैं—नाम १ स्थापना २ द्रव्य ३ क्षेत्र ४ काल ५ और भाव ६। भगवान अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधू आदि परमेष्ठियोंके एकसौ आठ अथवा एकहजार आठ नामोंसे पूजा बंदना करना नामपूजा है। स्थापनाके दो भेद हैं तदाकार और। अतदाकार जो तीर्थंकरोंकी तदाकार प्रतिमा बनाकर तथा उनकी प्रतिष्ठाकर जो पूजा भक्ति की जाती है वह तदाकार स्थापना पूजा है। तथा तदाकार प्रतिमाके विना अक्षत सुपारी पुष्प आदिमें अरहंत आदिकी कल्पनाकर पूजा करना सो अतदाकार स्थापना पूजा है ये सब पूजाऐं आह्वान स्थापन सन्निधिकरण पूर्वक करनी चाहिये। द्रव्य पूजाके तीन भेद हैं सचित्त

१ पूजाके पहिले जो आह्वान स्थापन सन्निधिकरण किया जाता है वह स्थापना निक्षेप नहीं है किंतु पूजाका एक एक अंग है। जिसप्रकार अपने यहां कोई बडा पुरुष आता है तो उसको सामने लेनेके लिये उठकर खडे होते हैं और कहते हैं कि आइये आइये पधारिये यहां विराजिये, आप जो हमारे यहां पधारे सो आपने बडी कृपा की। इसप्रकार उन्हें संतुष्ट कर तथा भोजनादिकसे संतुष्टकर जाते समय कुछ दूर तक जाकर शिष्ट वचनोंके साथ विदा करते हैं यह सब उनका आदर सत्कार है, यदि उसमें कुछ कमी कीजाय तो आदर सत्कारमें कमी समझी जाती है। तथा पूजा भी आदर सत्कार है। तीर्थंकर परमदेव वा पंचपरमेष्ठी सर्वोत्तम पुरुष हैं इसलिये उनका आदर सत्कार सर्वोत्तम रीतिसे किया जाता है इसीको पूजा कहते हैं। उस पूजाके ऊपर लिखे आह्वान स्थापन सन्निधिकरण पूजा और विसर्जन ये पांच अंग हैं। सो ही लिखा है—

अचित्त और मिश्र। साक्षात् तीर्थंकर केवली भगवानकी पूजा करना सचित्त द्रव्य पूजा है। उनके निर्वाण होजाने पर उनकी शरीरकी पूजा करना अचेतन द्रव्य पूजा है। तथा आचार्य उपाध्याय साधु और उनके पास रहनेवाले शास्त्रोंकी सम्मिलित (मिलीहुई) पूजा करना मिश्र द्रव्यपूजा है। तीर्थंकरों पंचकल्याणकोंके क्षेत्रोंमें जाकर उन क्षेत्रोंकी पूजा करना सो क्षेत्रपूजा है। तीर्थंकरोंके पंचकल्याणक जिस महीनेमें जिस पक्षमें जिस तिथिमें जिस नक्षत्रमें और जिस समयमें हुए हैं उस समयमें उनकी पूजा करना कालपूजा है। तथा सामायिक करना णमोकार मंत्रका जप करना पिंड़स्थ रूपस्थ रूपातीत आदिका चिंतवन करना जप व ध्यान

आह्वानं स्थापनं च सन्निधिकरणं तथा, पूजा विसर्जनं चैवमुपचारस्तु पंचधा।

अर्थात् आह्वान स्थापन सन्निधिकरण पूजा विसर्जन इसप्रकार पूजा पांचप्रकार है ऐसा अकलंक प्रतिष्ठापाठमें लिखा है।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आह्वान स्थापन आदि पूजाके आदर सत्कारके अंग हैं स्थापना निक्षेप नहीं है। इसका प्रवल कारण यह है कि स्थापना निक्षेपमें 'सोऽयम्' 'यह वही है' इसप्रकारका संकल्प किया जाता है। लिखा भी है-

साकारे वा निराकारे काष्ठादौ यन्निवेशनम्। सोयमित्यभिधानेन स्थापना सा निगद्यते॥

अर्थात् तदाकार व अतदाकार काष्ठादिकमें 'यह वही है' इस प्रकार संकल्प करना निवेश करना स्थापना निक्षेप है आह्वान स्थापनमें 'यह वही है' ऐसा संकल्प नहीं होता। इसलिये वह स्थापना निक्षेप कभी नहीं हो सक्ता।

जो लोग यह समझते हैं कि जहा प्रतिमा विराजमान हैं वहां स्थापना नहीं करनी चाहिये सो यह उनकी भारी भूल है। कोई कोई लोग तो ऐसे हैं जो आह्वान स्थापन सन्निधिकरण करते ही नहीं हैं। उनका वह पूजन करना उसीप्रकार है जो आये हुए किसी बडे आदमीके लिये आइये पधारिये यहां विराजिये आपने पधारनेकी बडी कृपा की, इत्यादि वचनोंके कहे बिना ही उसका यथेष्ट आदर सत्कार किये बिना ही उसके सामने भोजनका थाल लाकर रख देना है। जो लोग ऐसा करते हैं वे अशिष्ट कहलाते हैं और उनका वह आदर सत्कार योग्य नहीं कहलाता न उस आदरसे किसी कार्यकी सिद्धि होती है। उसीप्रकार जो पूजाके आह्वान स्थापन सन्निधिकरणके बिना ही पूजन करते हैं उनकी वह पूर्ण पूजन नहीं कहलाती किंतु पांच अंगोंमेंसे एक अंग कहलाता है। क्योंकि आह्वान स्थापनके बिना बिसर्जन भी नहीं किया जा सकता। केवल पूजा रह जाती है। तथा पूजामें आह्वान स्थापन सन्निधिकरण और विसर्जन ये विशेष अंग हैं उनके न करनेसे पूजाका विशेष फल नहीं मिलसकता। जैसे आया हुआ भद्रपुरुष 'आइये पधारिये' आदि मिष्ट वचनोंके बिना प्रसन्न नहीं होता उसीप्रकार विना आह्वान स्थापनके पूजाका यथेष्ट फल नहीं मिलता। इसलिये बिना आह्वान स्थापन सन्निधिकरणके तथा विसर्जनके कभी पूजा नहीं करनी चाहिये। पूजामें आह्वानादिकका होना अत्यन्त आवश्यक है।

करना भावपूजा है। इन सबका स्वरूप एकसौ बत्तीसवीं चर्चामें गाथा और श्लोकोंका प्रमाण देकर विस्तारके साथ लिखा है सो वहांसे विचार लेना चाहिये।

यहांपर इतना विचार और करलेना चाहिये कि ऊपर लिखे हुये छहों निक्षेप धातु वा पाषाणकी जिनप्रतिमामें ही हो सकते हैं। इसलिये इसका निषेध करना बडे अनर्थका मूल है, सम्यग्दृष्टी पुरुष इसका निषेध कभी नहीं कर सकता।

प्रतिमाके जो ऊपर स्थावर जंगम ऐसे दो भेद बतलाये हैं उनको व माननेका ही हट हो तो फिर श्रावकोंकी ग्यारह प्रतिमा भी बतलाई हैं। उन प्रतिमाओंको तो मानना ही पडेगा। प्रतिमा शब्दका अर्थ आकार चिन्ह अथवा रूपकका है। सो मुनिमें जंगम प्रतिमा है केवलीमें स्थावर प्रतिमा है और श्रावकोंमें दर्शन आदि ग्यारह प्रतिमा हैं। सो सब व्रत आचरण आदिकी अपेक्षासे है। तथा उनकी मूर्ति बनाकर पूजना सो रूपक प्रतिमा है ऐसा सिद्धांत है।

प्रश्न—यहांपर लुंकामती ढूंढिया प्रश्न करता है कि हमारे सूत्रोंमें प्रतिमा तथा मंदिरपूजाका निषेध किया है। जो लोग प्रतिमाजी की पूजा करते हैं उसमें हिंसादिक महापाप होता है सो ही श्वेताम्बरोंके यहां लिखा है।

धम्मस कारणे मूढो जो जीवं परिहिंसई। दहिऊण चंणनं तरुं करेइ अंगार वाणिज्जं ॥

अर्थ—जो जीव धर्मके लिये जीवोंकी हिंसा करते हैं वे मूर्ख हैं। वे लोग कोयला बेचनेके लिये चन्दनके वृक्ष जलाते हैं। भावार्थ—कोयला बेचनेके लिये चंदनको जलाना बडी मूर्खता है। संसारमें और अनेक वृक्ष हैं अन्य वृक्षोंका अभाव नहीं है इसलिये केवल कोयले बेचनेके लिये चंदन जलाना भारी मूर्खता है इसीप्रकार प्रतिमाकी पूजा करना और उसमें हिंसाकरना भारी भूल है इसको हम लोग (ढूंढिया) कभी नहीं मानते हैं।

उत्तर—प्रथम जिस गाथाका प्रमाण दिया है वह प्राचीन नहीं है तुम्हारी बनाई हुई नवीन है इसलिये वह प्रमाण नहीं होसकती। दूसरे यह गाथा छंदशास्त्रके विरुद्ध है। क्योंकि इसमें जितनी मात्रायें होनी चाहिये उतनी नहीं हैं कम हैं। गाथाओंमें मात्राओंकी संख्या बारह, अठारह, बारह, पंद्रह होती है। पहले चरणमें बारह दूसरेमें अठारह तीसरेमें बारह और चौथे चरणमें पंद्रह मात्राएं होती हैं। इसप्रकार सब सत्तावन मात्राएं होती हैं, सत्तावन मात्राओंकी गाथा कहलाती है सो ही भाषा छंद शास्त्रमें लिखा है—

आदं द्वादश करिए। अठारह वार फिर धरिये ॥

संख्या शेष बताई । गाथा छंदक हो भाई ॥

सो इस गाथामें सत्तावन मात्राएं नहीं हैं दूसरे चरणमें कम मात्राएं हैं इसलिये यह गाथा अप्रमाण है ।

दूसरी बात यह है कि यह गाथा प्राचीन नहीं है श्वेताम्बरोंके यहां ही यह गथा प्राचीन इस प्रकार है ।

हरिऊण परं दव्वं पूजं जो करेइ जिणवरिंदाणं । दहिऊण चंदणतरुं करेइ अंगारवाणिज्जं ॥

अर्थ—जो मनुष्य दूसरेका द्रव्य हरण कर चोरीकर उस धनसे भगवान जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह मानों कोयलेके व्यापारके लिये चंदन वृक्षको जलाता है । यह प्राचीन गाथा है सो प्रमाण है । इसलिये तुम्हारी बनाई हुई नवीन गाथा प्रमाण नहीं है ।

यदि हटकर इसी गाथाको प्रमाण मानोंगे तो देखो तुम्हारे महान सीत नामके सूत्रमें लिखा है—

देवधरमगुरुकज्जे चूरीज्जइ चक्कवट्टि सेणंपि । जोण विचूरइ साहू तहु अणंत संसारिओ होई ॥ १ ॥

संघस्स कारणंण चूरिज्जइ चक्कवट्ट सेणंपि । जउ णउ चूरीज्जइ सो अणंत संसारिओ होई ॥ २ ॥

अर्थ—यदि देव धर्म गुरुका काम आपडे तो उसके लिये चक्रवर्तीकी सेनाको भी चूर्ण कर देना चाहिये अर्थात् मार देना चाहिये । जो साधु उसमें हिंसा समझकर नहीं मारता वह अनंतसंसारी होता है ॥१॥ इसीप्रकार किसी चतुर्विधसंघके कामकेलिये भी काम पडने पर चक्रवर्तीकी सेनाको मार देना चाहिये । जो साधु उसमें पाप समझकर नहीं मारता है वह अनंतसंसारी होता है । ऐसी भगवानकी आज्ञा है । ऐसा तुम्हारे यहां लिखा है । सो यहां बताना चाहिये कि अहिंसारूप धर्मके लिये हिंसाका त्याग कहां रहा । तुम तो अपने सूत्रोंको भगवानके कहे हुए मानते हो सो झूठे हो नहीं सकते । परंतु यहां आकर सब झूठे हो जाते हैं ।

और देखो-गोशाल्याने भगवान महावीर स्वामीके ऊपर समोसरणमें तेजो लेश्या छोडी थी तथा उस समवसरणमें ही उसने भगवानके लिये गाली आदि अनेक दुर्वचन कहे थे उसको सुनकर दो साधुओंको बडा क्रोध हुआ था और उस गोशाल्याको मारनेकेलिये भी उठे थे ऐसा तुम्हारे यहां लिखा है तथा यह भी लिखा है कि उन साधुओंने धर्मके लिये ही क्रोध किया था और धर्मकेलिये ही उसे मारनेको उठे थे । सो फिर यह कौनसी अहिंसा रही । धर्मके लिये यह हिंसा कैसी ? कहां तो पूजामें हिंसा मानना और कहां मारनेसे भी हिंसा न मानना इस पक्षपातका इस झूठका कुछ ठिकाना नहीं ।

इसके एक बात यह भी है "कि जिन प्रतिमाकी पूजा नहीं करना चाहिये जो कोई जिनप्रतिमाकी पूजा करता है वह मिथ्या-दृष्टी है। जिनप्रतिमाकी पूजा करनेवाला अमुक मनुष्य अनंतसारी हुआ और नरकादिक दुर्गतियोंमें गया" इत्यादि वचन तुम्हारे किस सूत्रमें लिखे हैं। यदि कहीं लिखे हैं तो बतलाओ।

कदाचित् कोई लुंकामतका यह कहे कि हमारे किसी शास्त्रमें प्रतिमा पूजनका विधान भी तो नहीं है। इसलिये हम लोग नहीं मानते हैं। तो इसका उत्तर यह है कि श्वेतांबर सूत्रोंमें लिखा है—

जो पुज्जइ तीसंधं चिणंदरायं तहा विगयदोसं। सो तईय भवे सिज्झइ अहवा सत्तट्ठभवे णाणी ॥

अर्थ—जो भव्यजीव जल फलादिक द्रव्योंसे समस्त दोषोंसे रहित वीतराग सर्वज्ञदेवकी तीन समय पूजा करता है वह ज्ञानी पुरुष तीसरे भवमें अथवा सातवें आठवें भवमें मोक्ष प्राप्त करता है। इस प्रकार तुम्हारे ही शास्त्रोंमें पूजाका विधान है इसलिये तुम जो जिनपूजाका निषेध करते हो सो सब मिथ्या है। तुम्हारे यहां भी नाम स्थापना द्रव्य भाव ये चार निक्षेप कहे हैं सो स्थापना निक्षेप विना प्रतिमाके बन ही नहीं सकता "यह वही है" इस संकल्पको स्थापना कहते हैं और जिसमें यह संकल्प किया जाता है वही प्रतिमा कहलाती है। इसलिये तुम्हारे मतसे ही प्रतिमा पूजनका निषेध नहीं हो सकता।

इसके महान् सीतसूत्रमें लिखा है। किसी श्रावकने पूछा है कि पुण्यबंध किस प्रकार होता है तब इसके उत्तरमें कहा है कि नवीन जिन मंदिर बनवाना, उसमें जिनप्रतिमा बनवाकर प्रतिष्ठाकर स्थापन करना महापुण्यबंधका कारण है। इससे जीव बारहवें स्वर्गमें जाता है। भत्तपत्त नामके सूत्रमें लिखा है जिनमंदिर, जिनबिम्ब, जिनसूत्र, साधु-साध्वी, श्रावक श्राविका इन सात क्षेत्रोंमें धनका खर्चना तथा जिनप्रतिमाकी पूजा करना श्रावकका सबसे बड़ा धर्म है। इसके विना और कोई बड़ा धर्म नहीं है। ज्ञातृधर्म-कथा नामके सूत्रके सोलहवें अधिकारमें लिखा है कि अर्जुनकी रानी द्रोपदी नामकी सतीने सूर्याभ नामके देवके समान सत्तरभेदी श्री जिनप्रतिमाकी पूजा की। उसीसे कर्मोंको नाशकर मोक्ष गई यदि तुम्हारे यहां जिनप्रतिमाकी पूजा करना नहीं लिखा है तो यह कथन कैसे लिखा है। प्रश्नव्याकरण सूत्रमें लिखा है कि पाटलीपुत्र नगरमें जीवन स्वामी श्रीमहावीरस्वामीको स्तुति श्रावक वंदना करते हैं अर्थात् पटना नगरमें श्रीमंदिरमें जो श्री महावीर स्वामीकी प्रतिमा विराजमान हैं उनकी वंदना करते हैं। दशवैकालिक सूत्रमें चैत्यवंदनाका अधिकार करना लिखा है। इसके सिवाय एक कथा लिखी है कि एकसेन माली नित्य नवांग पूजा करता था। अर्थात् अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु दर्शन ज्ञान चारित्र और इनको पालन करनेवालोंकी नव पुष्पोंसे प्रतिदिन पूजा

करता था सो उसके फलसे वह नौ भवतक अनेकप्रकारकीसंपदाका उपभोग करता रहा और पीछे मोक्ष गया सो यह कथा तुम्हारे यहां है या नहीं ?

इसके सिवाय तुम्हारे शास्त्रोंमें तीन लोकसंबंधी जिनमंदिर और जिनप्रतिमाओंका सदा निश्चलरूपसे रहनेका विधान लिखा है। तथा लिखा है कि-ऋद्धिधारी मुनि और देव विद्याधर आदि आठवें नंदीश्वर द्वीपमें चैत्यवंदना करते हैं और उसमें "णमोत्थाणु अरिहंताणं भगवंताणं" आदि पाठ पढते हैं तथा "तित्थेवं वंदामि चइएवं वंदामि" पढते हैं अर्थात् "भगवान अरहंत देवको मैं नमस्कार करता हूं, मैं तीर्थोंको नमस्कार करता हूं और जिनप्रतिमाओंको नमस्कार करता हूं।" इस प्रकार पाठ पढनेका विधान है। इससे भी प्रतिमाकी पूजा करना सिद्ध होता है।

यहांपर चैत्यका अर्थ प्रतिमा होता है परंतु कोई कोई लोग चैत्यका अर्थ प्रतिमा न करके ज्ञान अर्थ करते हैं तथा चैत्यका ज्ञान अर्थ करके प्रतिमापूजनका निषेध करते हैं सो उनका इसप्रकार निषेध करना व्यर्थ है क्योंकि ज्ञान तो सदा अपने पास रहता है फिर उसकी वंदना करनेकेलिये नंदीश्वर द्वीपमें वा मेरु पर्वतपर जानेकी क्या आवश्यकता है। नंदीश्वर वा मेरु पर्वतपर जाकर तो प्रतिमाकी ही पूजा हो सकती है। ज्ञानकी पूजा चाहे जहां हो सकती है वह तो सदा पास रहता है। उसकी पूजा करनेकेलिये अन्य देशमें वा अन्य क्षेत्रमें जानेकी आवश्यकता नहीं है। दूसरी बात यह है कि ज्ञानकी वंदना करनेमें "णमो थुणं" इस पाठकी क्या आवश्यकता है ? परंतु यह पाठ भगवतीसूत्रमें लिखा है।

भगवान तीर्थंकरके मोक्ष जानेके अनंतर इन्द्रादिक देव आकर उनकी पूजा करते हैं तथा मुंहसे दाढ निकालकर स्वर्गमें ले जाते हैं और उसकी पूजा करते हैं। सो वह दाढ भी अचेतन है। उसकी पूजा क्यों की जाती है। उपासकाध्ययन नामके सूत्रमें श्रावकके बारह यतनोंमें जिनप्रतिमा और उसकी पूजा करनेका वर्णन है और लिखा है कि आनंद नामके श्रावकने उनकी कथा कही थी। सो यह कथन भी किसप्रकार आया ? इसके सिवाय ज्ञातृस्वरूप, आवश्यकसूत्र और समयश्रेणीसूत्र आदि कितने ही सूत्रोंमें रत्न सुवर्ण चांदी पाषाण आदिकी जिनप्रतिमा बनानेका विधान लिखा है। फिर उसका निषेध क्यों करते हो ? महावीरचरित्रमें जिनप्रतिमाके प्रतिष्ठाके अक्षर लिखे हैं। तथा कपिल नामके किसी केवलीकी प्रतिष्ठा करना लिखा है। फिर प्रतिमापूजनका निषेध कैसे करते हो ? समवाय सूत्रमें चौंतीस अतिशयोंके निर्णयमें लिखा है कि जिनप्रतिमाकी पूजा करनेके लिये जलमें उत्पन्न हुये कमल आदिक तथा स्थलमें उत्पन्न हुये बेला चमेली गुलाब आदिके फूल चढाने चाहिये। जीवाभगवतीमें लिखा है कि जिन-

प्रतिमाकी पूजा दीपक जलाकर धूप लेकर तथा जल गंधाक्षतादि आठों द्रव्योंसे करनी चाहिये। इसप्रकार सब जगह प्रतिमा पूजनका विधान है फिर प्रतिमापूजनका निषेध किसप्रकार किया जा सकता है ?

इसके सिवाय सामायिककी पाटीमें एक लोगस्सकी पाटी है उसमें पाठ पूर्ण होते समय लिखा है।

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगुत्तमा जिणा सिद्धा।

सो यहांपर महियाका अर्थ क्या है ? महियाका अर्थ पूजा करना ही तो है। फिर प्रतिमापूजनका निषेध क्यों करते हो ? आवश्यक सूत्रमें लिखा है कि भरत चक्रवर्तीने चौवीसों तीर्थंकरोंके जिनबिम्ब बनवाकर कैलाश पर्वतपर विराजमान किये। फिर भी प्रतिमापूजनका निषेध करते हो। जंबूद्वीप पण्णत्तीनामके सूत्रमें लिखा है कि पूजा करनेकेलिये पूजा करनेवालेको तो अचित्त जलसे स्नान करना चाहिये और जिनप्रतिमाका अभिषेका छनेहुये सचित्त जलसे करना चाहिये। वहांपर एक करोड कलशोंके सचित्त जलसे तीर्थंकरका अभिषेक करना लिखा है। इसके सिवाय सूर्याभदेव अभयकुमार अंबड नामका श्रावक और जंघाचारी साधुने नंदीश्वर द्वीपमें जाकर जिनप्रतिमाकी बन्दनाकी इसप्रकार अधिकारमें जिनप्रतिमाकी पूजाका वर्णन लिखा है। कहांतक कहा जाय तुम्हारे ही सूत्रोंमें प्रसंगानुसार स्थान स्थानपर जिनप्रतिमापूजनका विधान लिखा है फिर भला इसका निषेध किसप्रकार किया जा सकता है। शास्त्रोंके इतने प्रमाण मिलनेपर भी जो जिनप्रतिमाकी पूजाका निषेध करते हैं वे सूत्रबाह्य हैं। ऐसे सूत्रबाह्य मिथ्यात्वी लोग ही जिनप्रतिमापूजनमें हिंसादिक पाप बतलाकर भोले जीवोंको भुलाते हैं सो अत्यन्त अज्ञानी जीव ही इनके वचनरूपी विषसे ठगे जाकर इस अपार संसारमें परिभ्रमण करते हैं। इसप्रकार लुंकामत तथा ढूंढिया मतके सूत्रोंके अनुसार ही प्रतिमापूजनका निर्णय किया।

कुछ वेदान्ती भी मूर्तिपूजाको नहीं मानते सो आगे उनके लिये लिखते हैं। लौकिकमें चार वेद हैं, अठारह पुराण हैं उनमें जो कथन है सो क्या सब व्यर्थ है। परंतु इन सबका कथन तेरे मतसे भी व्यर्थ नहीं हो सकता। इसलिये तेरा वेदांत तेरे ही पास रहेगा, विशेषज्ञानी ऐसे वेदांतको कभी स्वीकार नहीं कर सकते। यदि मूर्तिपूजन न मानी जाय तो मंदिर, मूर्ति, तीर्थयात्रा, दान, व्रत, उपवास, श्राद्ध, पिंड, ब्राह्मणभोजन, जप, तप, यम, नियम, जागरण, भक्ति भाव, कथा, कीर्तन, उसका श्रवण आदि सब मिथ्या मानना पड़ेगा। यदि वेदांतमत एक मोक्षरूप ही है तो फिर ऊपर लिखे पुण्यकार्योंके करनेकी क्या आवश्यकता है ? परन्तु सो हो नहीं सकता क्योंकि ऊपर लिखे पुण्यकार्योंसे अनेक जीवोंका उद्धार हुआ है और अनेक जीव मुक्त हुए हैं ऐसा

भागवत आदि पुराणोंमें लिखा है उसको व्यर्थ किसप्रकार कह सकोगे ? इसलिये केवल एकांतवाद मानना वैष्णव, शैव और पौराणिक मतको दूषित करना है। इसलिये द्वैताद्वैत ब्रह्मपक्षका कहना शैव और वैष्णव दोनों मतोंका बाधक है और स्वच्छंद उन्मत्त पुरुषके समान है इसलिये प्रमाणरूप नहीं माना जासकता। सब शास्त्रोंसे मिलेहुये वचन ही प्रमाण होसकते हैं विरुद्ध वा विरोधी वचन प्रमाणरूप नहीं कहे जासकते। प्रतिमाको जड और अचेतन मानकर निष्फल मानना वेद और पुराणके सर्वथा विरुद्ध है। इसलिये सर्वथा प्रमाण नहीं है।

कदाचित् कोई यह कहे कि हमारे लघुचाणक्यमें ऐसा लिखा है—

न देवो काष्ठपाषाणे न देवो धातुमृण्मये। भावेषु विद्यते देवो तस्माद् भावो हि कारणम् ॥

और जगह भी लिखा है—

न देवो विद्यते काष्ठे पाषाणे न च मृण्मये। भावेषु विद्यते देवो तस्माद् भावो हि कारणम् ॥

अर्थ—देव न तो काठमें है न पाषाणमें है न धातुमें है न मिट्टीमें है किंतु भावोंमें देव है इसलिये भाव ही मोक्षके कारण हैं दूसरे श्लोकका भी यही अर्थ है। अभिप्राय यह है कि काष्ठ, पाषाण, धातु, मिट्टी आदिकी मूर्ति बनाकर प्रतिष्ठाकर उसकी पूजा करते हैं सो उसमें परमेश्वर वा देव नहीं है वह तो धातु पाषाणकी जड रूप है, देव तो केवल अपने भावोंमें है इसलिये केवल भाव ही कारण हैं, मूर्ति कारण नहीं हैं। इस प्रकार कोई वेदांती कहता है सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसा माननेसे अनेक दोष आते हैं और ऊपर लिखे हुए यम नियमादिक समस्त धर्मोंका लोप होजाता है। इसलिये ऊपर लिखा कथन ठीक नहीं है। क्योंकि उसी लघुचाणक्यमें आगे ऐसा लिखा है—

काष्ठपाषाणधातूनां भावं निवेदयेद् यथा। तथा भक्तिस्तथा सिद्धिः तस्य देवो प्रसीदति।

अर्थ—जो मनुष्य काठ पाषाण वा धातुकी प्रतिमामें अपने भाव जैसे लगाता है इस प्रतिमामें अमुक देव विराजमान है इस प्रकार अपने भाव लगाकर जैसी उसकी भक्ति करता है वैसी ही उसकी सिद्धि होती है। तथा उसीप्रकार वह देव उस पर प्रसन्न होता है उससे वह इच्छानुसार फल प्राप्त करता है। भावार्थ—जो पुरुष उस मूर्तिमें परमेश्वरादिक किसी देवकी स्थापना कर अच्छे भावोंसे उसकी पूजा करता है सो अपना मनचाहा फल पाता है। इस वचनसे यह भी सिद्ध होजाता है कि जो मनुष्य उस

मूर्तिको देखकर उसमें अपने परिणाम बुरे करता है। बुरे परिणामोंसे उसे पत्थर अचेतन जड आदि मानकर उसकी भक्ति वा पूजाका लोप करता है वह नरकगतिको प्राप्त करता है। सो ही लिखा है—

मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ। यादृशी भावना तस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

अर्थ—मंत्र, तीर्थ, द्विज, देव, ज्योतिषशास्त्र, औषधि और गुरुमें पुरुषोंकी जैसी भावना होती है वैसी ही उनकी सिद्धि होती है। भावार्थ—यदि मंत्रमें इनमें आस्तिकरूप श्रद्धारूप परिणाम हों तो उनकी उनसे ही सब कामोंकी सिद्धि हो जाती है। यदि उनमें विश्वासरहित नास्तिक भाव हों अश्रद्धासे सेवन करे तो उसके कार्यकी सिद्धि नहीं होती। उसका सेवन करना पूजादिक करना भी निष्फल हो जाता है क्योंकि ऐसा पुरुष उसको निष्फल व्यर्थ समझता है इसलिये उसका फल भी व्यर्थ और विपरीत होता है।

यदि प्रतिमाको अचेतन व जडरूप मानकर उससे कार्यकी सिद्धिका अभाव मानोगे तो फिर कल्पवृक्ष, चित्रावेलि, चिंतामणि रत्न, पारस पत्थर, मंत्र, यंत्र, तंत्र औषधि तथा केवल परमात्माका शब्दोंके द्वारा नाम उच्चारण करना आदि सब अचेतन और जडरूप हैं और इन सबसे कार्यकी सिद्धि होती है। इसलिये अचेतन मूर्तिसे ही समस्त कार्योंकी सिद्धिका होना अवश्य मानना पडेगा। सूत्र, सिद्धांत, वेद, पुराण, आदि सब मतोंके शास्त्र भी जड और अचेतन हैं परंतु उन सबसे ज्ञानकी सिद्धि होती है इस बातको भला कौन नहीं मान सकता? अर्थात् सबको मानना पड़ता है।

यह जो ऊपर कहा गया था कि पतिहीन स्त्री पुत्र प्राप्तिके लिये यदि पतिकी मूर्तिकी भक्ति वा सेवा करे उससे पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती उसकी वह भक्ति वा सेवा व्यर्थ है सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि अन्य किसी पतिहीन स्त्रीने अपने पतिकी मूर्ति तो बनाई नहीं वह केवल उसका ध्यान करती रही, माला लेकर उसके नामका जप करती रही तो भी तो उसके पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती। भवार्थ—यदि प्रतिमाकी पूजा करनेसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती तो केवल नामका उच्चारणकर जप करनेसे वा उसका ध्यान करनेसे तो भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। क्योंकि जैसी मूर्ति जड है वैसा शब्द भी जड है।

१ पुत्रकी उत्पत्ति पतिके वीर्यसे होती है और वीर्य शरीरका एक धातु है पतिके मरनेपर या विदेश रहनेपर उसके शरीरसे उत्पन्न हुए वीर्यका ग्रहण होता नहीं इसलिये उसकी मूर्तिसे वा जप ध्यान आदिसे पुत्रकी उत्पत्ति नहीं होती। परंतु कर्मोंका क्षय वा शुभास्रव भावोंसे होता है इसलिये मूर्तिमें यदि परमात्माके भाव हों तो उससे अवश्य कर्मक्षय होते है वा शुभास्रव होता है। जप ध्यान आदिसे भी यही बात होती है।

इसलिये मानना चाहिये कि मोक्षकी प्राप्ति कर्मोंके क्षय होनेसे ही होती है। कर्मोंके क्षय करनेके दो उपाय हैं एक सरागमार्ग और दूसरा वीतराग मार्ग। जिनप्रतिमाकी पूजा करना दान देना आदि तो सराग मार्ग है। महाव्रत धारण करना, इन्द्रिय तथा कषायोंको जीतना, ध्यान करना, तप करना, व्रत करना, उपवास करना, उपशम श्रेणीका चढ़ना, यथाख्यात चारित्रका धारण करना आदि वीतराग मार्ग हैं। इनमेंसे सरागमार्ग एक देश कर्मोंको क्षय करनेवाला है इसलिये परंपरासे मोक्षका कारण है और वीतराग मार्ग पूर्ण कर्मोंको नाश करनेवाला है इसलिये वह साक्षात् मोक्षका कारण है। इसप्रकार दोनों ही मोक्षके कारण हैं। इसलिये अपनी जैसी पदवी हो उसीके अनुसार चलना चाहिये। तथा उच्च पदवीकी भावना सदा रखनी चाहिये। भावार्थ—गृहस्थोंका धर्म देवपूजा और दान देना मुख्य है तथा मुनिधर्म धारण करनेकी आकांक्षारूप है और मुनियोंका धर्म महाव्रतादि रूप वीतराग मय है और केवलज्ञान प्राप्त करनेकी आकांक्षारूप है ऐसा अभिप्राय समझना चाहिये। इसप्रकार जिनप्रतिमापूजनका निषेध करनेवालोंका निराकरण किया।

२५२। चर्चा दोसौ बावनवीं।

कितने ही भागवती वैष्णव तथा स्मार्तिक मतके शैवलोग वा अन्य धर्मके कितने ही लोग कहते हैं कि जैनमत तो नास्तिक मत है इसलिये प्रशंसा करनेयोग्य नहीं है मलिन धर्म है। वे लोग यह भी कहते हैं कि शैव और वैष्णवोंको जिनमंदिरोंमें नहीं जाना चाहिये। जो जाते हैं उनकी बुद्धि छह महीने तक ही रहती है। अर्थात् जैन मंदिरमें जानेवाला पुरुष छह महीनेमें ही बुद्धिहीन होजाता है। इसलिये जैन मंदिरमें कभी नहीं जाना चाहिये। लिखा भी है—

अजां हत्वा सुरां पीत्वा गत्वा गणिकमंदिरम्। हस्तिना ताड्यमानोपि न गच्छेज्जैनमंदिरम्॥

अर्थ—बकरा मारना, शराब पीना और वेश्यागमन करना ये सब अयोग्याचरण हैं सो तो भले ही कर लेना चाहिये परंतु सामनेसे आते हुए हाथीके द्वारा प्राण नष्ट होनेपर भी अपने प्राण बचानेके अभिप्रायसे भी जैनमंदिरमें नहीं जाना चाहिये। भावार्थ—प्राण नष्ट होते हों तो ही जाने देना चाहिये। किंतु उसी स्थानपर कोई जैन मंदिर हो और उसमें जाकर शरण लेनेसे उसमें आनेमात्रसे प्राण बचते हों तो भी उस जैन मंदिरमें नहीं जाना चाहिये। ऐसा ब्राह्मणादिक लोग कहते हैं सो इसका क्या उत्तर है।

समाधान—इसका पहला उत्तर तो यह है कि यह वचन किसी ऋषिका नहीं है किसी मूर्खने ईर्ष्याके कारण गढ लिया है। तथा उसका प्रचार करनेके लिये शंकराचार्यका नाम रख दिया है अर्थात् उसे शंकराचार्यके वचन बतला दिये हैं सो प्रामाणिक नहीं हैं। केवल अंध परंपरासे चला आ रहा है।

यदि कदाचित् इस श्लोकको मान ही लिया जाय तो उसका वास्तविक अभिप्राय ग्रहण करना चाहिये। उसका वास्तविक अभिप्राय यह है—भेड़ बकरे आदि जीवोंको मारकर अथवा शराब पीकर अथवा वेश्याके घर जाकर कोई पुरुष जैनमंदिरके समीपसे आरहा हो और वहीं पर सामनेसे आते हुये किसी हाथीसे उसके प्राण नष्ट होते हों तो उसे अपने प्राण तो देदेने चाहिये किंतु उस महा अपवित्र अवस्थामें अपने प्राण बचानेके लिये उस पवित्र जैन मंदिरमें नहीं जाना चाहिये। क्योंकि जो पुरुष जीवोंका हिंसक है, शराब पीता है, और वेश्यागमन करता है वह महा पापी, महापातकी महा अधर्मी और महा अपवित्र है। ऐसे पुरुषको जैन-मंदिरमें पैर रखना भी योग्य नहीं है मंदिरमें जानेका उसे कोई अधिकार नहीं है। ऐसे पुरुषको तो जैनमंदिरसे बहुत दूर होकर निकलना चाहिये। वह तो अस्पृश्य शूद्रके समान है।

जैनमंदिरमें तो धर्मात्मा पुरुषोंको ही जानेका अधिकार है। हत्या करनेवाले शराबी आदि लोगोंको जैनमंदिरमें जानेका कोई अधिकार नहीं है। लोकमें बालगोपाल सब यह कहावत कहा करते हैं कि "गधीको गंगा नहीं हैं उसीप्रकार श्रीजिनमंदिर गंगा-रूप है, श्रीजिनमूर्तिका दर्शन ही उसका निर्मल जल है वह ऊपर लिखे महापापीको प्राप्त नहीं होसकता। यह उस श्लोकका अभि-प्राय है।

इस समयमें भी कितने ही लोग ब्राह्मणोंके कहनेसे जिनमंदिरमें न जानेका नियम करते हैं सो कहनेवाले और न जानेका नियम लेनेवाले दोनों ही ऊपर लिखे जीवोंके समान हिंसक और शराबियोंके समान महापापी समझना चाहिये। यही उस श्लोकका अभिप्राय है।

जो लोग यह कहते हैं कि जो कोई जैनमंदिरमें जाता है उसकी बुद्धि छह महीनेमें नष्ट हो जाती है सो जिसकी बुद्धि जन्मसे ही भ्रष्ट होगई है ऐसे ही पुरुष पागल पुरुषोंके समान उन्मत्त होकर प्रलाप करते हैं। उनकी बुद्धि जन्मसे ही भ्रष्ट है जन्मसे ही अंधे पुरुषके समान उन्हें किसीभी पदार्थका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। ऐसे लोग अपनी इच्छानुसार पदार्थोंके स्वरूपको मानते हैं किसी दूसरेकी नहीं सुनते। न मानते हैं। जो अपने मनमें आता है सो ही मानते हैं और वही करते हैं। उसीप्रकार अंधेकी लकड़ीके समान

ब्राह्मणोंका कहना है। तथा दूसरे लोग भी अंधोंके समान हैं। ऐसे ही लोगोंके लिये यहांपर एक प्रसिद्ध लौकिक उदाहरण दिखलाते हैं।

किसी राजाने किसी एकदिन सवेरे उठकर ही किसी सूमका मुंह देखा। जब भोजनका समय हुआ तब राजा भोजनके लिये बैठने ही जारहा था कि सेवकोंने आकर समाचार दिये कि "महाराज सिंह घिर गया है" तब राजा अपने क्षत्रियधर्मका स्मरण कर उसको मारनेके लिये चल दिया, उसने परोसा हुआ भोजन छोड दिया और भूखा ही चला गया। वह राजा उस दिन सब दिन बनमें रहा उसने बहुतसे उपाय किये परन्तु वह सिंह वशमें नहीं आया। उस सिंहने अनेक लोग घायल किये और संध्या होते होते वह भाग गया। तब राजा लाचार और उदास होकर भूखसे सताया हुआ ही अपने नगरमें आया। राजाने समझा कि उस सूमका मुख देखनेसे ही आज मुझे भोजन नहीं मिला है। तब वह उस सूम पर क्रोध करने लगा, उसको बुलाया और सेवकोंको आज्ञा दी कि इसको मार डालो। दूसरे दिन सवेरे ही राजा सब लोगोंके साथ बैठा था उससमय उस सूमने आकर पूछा कि महाराज! ऐसा मेरा क्या अपराध है जिससे मेरे प्राण लिये जाते हैं। तब राजाने कहा कि तेरा मुख देखनेसे आज हमें अन्न नहीं मिला है आज हमें सब दिन भूखा मरना पडा, इसीलिये तुझे मारनेकी आज्ञा दी है। राजाकी यह बात सुनकर सूमने कहा कि मेरा मुंह देखनेसे आपको एक दिन भूखा रहना पडा परन्तु शामको भोजन मिल गया। मेरे मुंह देखनेका इतना ही फल हुआ परन्तु महाराज आपका मुंह मैंने देखा था सो उसके फलसे तो मेरे प्राण ही जारहे हैं अब आप ही कहिये इन दोनोंमें किसका मुंह दुख देनेवाला और पापी है अर्थात् इससे तो राजाका ही मुख अधिक बुरा हुआ। क्योंकि उसके देखनेसे सूमके प्राण गये। इसीप्रकार वह मनुष्य है जो यह कहता है कि जिनमंदिरमें जानेसे छह महीनेमें बुद्धि नष्ट होजाती है ऐसे लोगोंको पीछेसे बुद्धि आती है। तथा कहनेवालेकी बुद्धि जन्मसे ही नष्ट भ्रष्ट समझनी चाहिये। ऐसे लोग जन्म जन्मांतर तक हीनबुद्धि रहते हैं और इसीलिये वे जिनप्रतिमाके दर्शन करनेमें दोष बतलाते हैं तथा मूर्ख लोगोंको भुलाकर रोकते हैं। इसप्रकार कहनेवाले और माननेवाले दोनों ही मूर्ख राजाके समान हैं, इसीलिये वे ऐसा मानते हैं।

और देखो इसप्रकार कहनेवाले महा मिथ्याभाषी हैं 'जिनप्रतिमाके दर्शन करनेसे महापुण्य होता है और स्वर्ग मोक्षके फलकी प्राप्ति होती है" ऐसा कथन इनके अनेक पुराण और शास्त्रोंमें लिखा है परंतु अपनी आजीविकाके नष्ट होनेके डरसे ये लोग कहते नहीं हैं। तथा अपने मतके पक्षके अभिमानसे अनेकप्रकारके द्वेषरूप अन्यथा (मिथ्या) वचन कहते हैं और झूठी निंदा करते हैं।

कदाचित् कोई यह कहे कि हमारे पुराण वा शास्त्रोंमें जिनप्रतिमाके दर्शन करना कहां लिखा है तो उसके लिये कहते हैं कि देखो शिवपुराणमें लिखा है–

कैलाशे विमले रम्ये वृषभोयं जिनेश्वरः । चकारास्ववतारो यः सर्वज्ञः सर्वगः शिवः ॥

अर्थ–कैलाश पर्वतके निर्मल शिखरपर श्रीवृषभदेव नामके जिनेश्वर भगवान अवतरित हुये हैं पधारे हैं सो वे ही सर्वज्ञ हैं वे ही ज्ञानके द्वारा सर्वव्यापी हैं और वे ही कल्याण करनेवाले शिव हैं। अर्थात् इनके सिवाय न कोई सर्वज्ञ है न कोई सर्व व्यापक है न कोई विष्णु और न कोई शिव है। सर्वज्ञ सर्वव्यापक विष्णु और शिव ये ही वृषभदेव हैं। प्रभासपुराणमें लिखा है–

महापुण्यादर्शरूपा दृश्यते द्वारिका पुरी । अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासशशिभूषणः ॥ १ ॥
रैवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले । ऋषीणामादिदेवश्च मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥ २ ॥
पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः । नेमिनाथः शिवेत्याख्यां चकारास्य च वामनः ॥ ३ ॥

अर्थ–दक्षिण देशमें एक वामन हुआ है उसने गिरनार पर्वतपर श्रीनेमिनाथ भगवानके दर्शन किये थे नेमिनाथ महापुण्यरूप और आदर्शस्वरूप द्वारिका नगरीमें जन्मे थे जहां कि चंद्रमाके समान कांतिको धारण करनेवाले नौवें नारायण कृष्णने अवतार लिया था। जिसप्रकार युगके प्रारंभमें श्रीवृषभदेव कैलाश पर्वतपर विराजमान हुये थे और अनेक ऋषियोंको मोक्षके कारण हुये थे उसीप्रकार श्रीनेमिनाथ भगवान गिरनार पर्वतपर विराजमान हुये थे। उससमय वे पद्मासनसे सुशोभित थे, श्याममूर्ति थे और दिगम्बर थे। इसप्रकार नेमिनाथके दर्शन करनेपर वामनने उनकी स्तुति की और उनका शिव ऐसा नाम रक्खा और स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि हे नेमिनाथ! तुम्हीं साक्षात शिव हो, अन्य कोई शिव नहीं है।

इसीप्रकार प्रभासपुराणमें उमाशंकरके संवादमें शिवके वचन लिखे हैं–

कलिकालमहाघोरसर्वकल्मषनाशनम् । दर्शनात्स्पर्शनाद्देवी कोटियज्ञफलप्रदः ॥
ऊर्जयंतगिरौ रम्ये माघकृष्णा चतुर्दशी । तस्यां जागरणं कृत्वा स जातो निर्मलो हरिः ॥

अर्थ–पार्वतीसे महादेव कह रहे हैं कि हे देवि! अत्यंत मनोहर ऐसे गिरनार पर्वतपर श्रीनेमिनाथजी विराजे हैं। उनके

दर्शनसे तथा उस पर्वतके स्पर्श करनेसे कलिकालके महा घोर पाप नष्ट हो जाते हैं तथा करोड़ों यज्ञोंका फल होता है। जो कोई पुरुष माघकृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिको वहां जाकर जागरण करता है वह निर्मल विष्णुपदको प्राप्त होता है। इसप्रकार श्रीनेमिनाथके दर्शन करनेका तथा गिरनारके दर्शन करनेका और वहां जाकर जागरण करनेका फल बतलाया है इसलिये शैव लोगोंको विचार करना चाहिये कि दोनोंमें कौन उत्तम है।

भर्तृहरिकाव्यमें सरागियोंमें मुख्य शिवको बतलाया है और वीतरागियोंमें मुख्य श्रीजिनेन्द्रदेवको बतलाया है। यथा—

एको रागिषु राजते प्रियतमा देहार्द्धधारी हरो, नीरागेषु जिनो विमुक्तललनासंगो न यस्मात्परः ॥
दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः। शेषः कामविडंबितो हि विषयान् भोक्तुं न भोक्तुं क्षमः ॥

रागियोंमें सबसे मुख्य महादेव है जिसने अपनी प्रियतमाको आधे शरीरमें धारण कर रक्खा है तथा वीतरागियोंमें जिनेंद्र भगवान हैं कि जिनसे बढकर स्त्री और परिग्रहका त्यागी और कोई नहीं है। कामके द्वारा विडंबना किये हुये बाकीके मूर्ख लोग जबर्दस्त कामके बाणरूपी सर्पके विषसे मूर्छित होरहे हैं जो न तो विषयोंको छोड़ सकते हैं और न भोग सकते हैं। इससे भगवान जिनेन्द्रदेवकी उत्तमता ही सिद्ध होती है।

दक्षिणमूर्ति सहस्रनाममें शिवके वचन लिखे हैं—

जिनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः।

यहांपर शिवने भी श्रीजिनेन्द्रदेवको उत्तम और क्रोध, रोग, आदि दोषोंसे रहित बतलाया है तथा जिनेंद्रदेवकी स्तुति की है।

दुर्वासाकृत महिम्नस्तोत्रमें लिखा है—

तत्र दर्शनमुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्म कर्मेश्वरी। कर्तार्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः ॥

यहांपर अन्य नामोंमें अरहंत नाम भी कहा है सो अरहंत नाम श्रीजिनेन्द्रदेवका ही है। इसप्रकार संक्षेपसे शैवमतका निराकरण समझना चाहिये।

कदाचित् कोई राजस गुणवाला वैष्णवमत माननेवाला यह कहे कि शैव धर्ममें कहा है सो तो ठीक है। परन्तु भागवत आदि पुराणोंमें तो नहीं लिखा है। तो इसका उत्तर यह है कि भागवतके पंचम स्कंधमें श्रीवृषभदेवका वर्णन किया है सो प्रसिद्ध ही है।

श्रीमद्भागवतमहापुराणकी टीकामें भी लिखा है—

नाभेः सुतः स ऋषभो मरुदेविसुनुः मुनियोगचर्याम्।
ऋषयः पदमामनन्ति स्वस्थाः समाहितधिया जयतां हिताश्च।

अर्थ—राजा नाभिराय और श्रीमरुदेवीके पुत्र श्री ऋषभदेव हुये थे जिन्होंने मुनियोंके लिए योगमार्ग दिखलाया था। इसप्रकार संसारका हित करनेवाले ऋषि लोग कहते हैं।

नगरखंडमें लिखा है—

स्पृष्ट्वा शत्रुंजयं तीर्थं नत्वा रैवतकाचलम्। स्नात्वा गजपथःकुंडे पुनर्जन्मो न विद्यते।

अर्थ—जो मनुष्य शत्रुंजय तीर्थका स्पर्श करता है। गिरनार पर्वतकी वंदना करता है और गजपंथ नामके कुण्डमें स्नान करता है उसको फिर दुबारा जन्म नहीं लेना पडता। यहां भी जैनधर्मकी उत्तमता बतलाई हैं। सो ठीक ही है।

२५३। चर्चा दो सौ तिरेपनवीं।

जैनशास्त्रोंमें सात परमस्थान बतलाये हैं सो कौन कौन हैं?

समाधान—पहला परमस्थान सज्जाति है। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यकी शुद्ध जाति और शुद्ध कुलमें जन्म लेना सज्जाति है। दूसरा परमस्थान सद्गृहस्थपना है, सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावकोंके व्रत और आचरणोंका पालन करना सद्गृहस्थपना है। तीसरा परमस्थान परिव्राजकपना है। रत्नत्रयसे सुशोभित अट्ठाईस मूलगुणोंको पालनकर मुनियोंके व्रत पालन करना परिव्राजकपना है। चौथा परमस्थान सुरेन्द्रता है। उस महाव्रतके फलसे इन्द्रपदका प्राप्त होना सुरेन्द्रता है। पांचवां परम स्थान साम्राज्य है। इंद्रका शरीर छोडकर चरम शरीर धारणकर चक्रवर्ती वा तीर्थंकरपद पाकर साम्राज्यसे विभूषित होना साम्राज्य परमस्थान है। छठा परमस्थान अरहंतपद है। उस साम्राज्यका त्यागकर दीक्षा लेकर तथा घातिया कर्मोंको नाश कर केवलज्ञान प्राप्तकर अरहंतपद प्राप्त करना छठा परम स्थान है। सातवां परमस्थान निर्वाण है अरहंतपद प्राप्त होनेके अनन्तर बाकीके अघातिया कर्मोंका नाशकर

निर्वाणपद प्राप्त करना सातवां परमस्थान है। इसप्रकार ये सात परमस्थान हैं सो जीवोंको बडे पुण्योदयसे प्राप्त होते हैं। सो ही महापुराणमें लिखा है—

सज्जातिः सद्गृहस्थत्वंपारिव्राज्यं सुरेन्द्रता। साम्राज्यं परमार्हत्वं निर्वाणं चेति सप्तधा॥

ये सातों परमस्थान हमारे भी हों ऐसी हमारी प्रार्थना है इसके सिवाय हमारी और कुछ इच्छा नहीं है। सो भी महापुराणमें दूसरी जगह लिखा है—

सज्जातिभागी भव, सद्गृहस्थत्वभागी भव, मुनीन्द्रत्वभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, साम्राज्यभागी-भव, अर्हद्भागी भव, निर्वाणभागी भव।

इसप्रकार श्रीमज्जिनसेनाचार्यने आदिपुराणके चालीसवें पर्वमें आराधनादि क्रियाओंके मंत्रोंमें लिखा है। इसप्रकार सप्त परम-स्थान बतलाये।

२५४। चर्चा दोसौ चौवनवीं।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरिआणं। णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

चत्तारि मंगलं, अरहंत मंगल, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगु-त्तमा, अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि।

इसप्रकार यह णमोकारमंत्रपूर्वक मंत्र है। सो णमोकारमंत्रमें तो अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधु इन पांचों परमेष्ठियोंका वर्णन आया है और उन पांचों परमेष्ठियोंको नमस्कार किया है परंतु चत्तारि मंगलं आदि मंत्रमें पहले तो अरहंत सिद्ध दो परमेष्ठी कहे फिर साधु परमेष्ठीको स्मरण किया और फिर केवली प्रणीत धर्मको कहा। तथा इन्हीं चारोंको मंगल लोकोत्तम

और शरणभूत बतलाया। सो यहां आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठीको क्यों छोड दिया? तीन परमेष्ठियोंको ही क्यों स्मरण किया इसका क्या कारण है?

समाधान—यह कहना ठीक है परंतु साधुके कहनेसे आचार्य और उपाध्याय भी आ जाते हैं। क्योंकि जिसप्रकार साधुओंको अट्ठाईस मूलगुण पालन करने पडते हैं उसीप्रकार आचार्य और उपाध्यायोंको भी अट्ठाईस मूलगुण पालन करने पडते हैं। इनमें विशेषता इतनी ही है कि जो साधु होकर भी दर्शन ज्ञान चरित्र तप वीर्य इन पांचों आचारोंको विशेषताके साथ स्वीकार करें पालन करें तथा औरोंसे पालन करावें और छत्तीस गुणोंको विशेषताके साथ पालन करें ऐसे साधुओंको आचार्य कहते हैं अथवा ऐसे साधुओंको आचार्य पद प्राप्त होता है। इससे सिद्ध होता है कि आचार्य भी साधु ही हैं। तथा अट्ठाईस मूलगुणोंके साथ साथ ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंको अंतर्मुहूर्तमें अर्थसहित शुद्ध पाठ करनेकी जिनमें शक्ति हो ऐसी ऋद्धि जिनको प्राप्त हो जो स्वयं पढें अन्यको पढावें ऐसे साधुओंको उपाध्याय पद प्राप्त होता है। इसलिये उपाध्याय भी साधु ही हैं। इसप्रकार गुणोंकी अधिकताकी मुख्यतासे ही साधुओंमें आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु ऐसे तीन भेद हैं। वास्तवमें देखा जाय तो तीनों ही साधु हैं। क्योंकि सभी अट्ठाईस मूलगुणोंको पालन करते हैं। अभिप्राय यह है कि आचार्य और उपाध्याय पद भी साधुओंको ही प्राप्त होता है अतएव तीनों हीके लिये साधु कह दिया है। साधु कहनेसे आचार्य उपाध्याय साधु तीनोंका ही ग्रहण कर लेना चाहिये। एक साधुका ही नहीं लिखा भी है—

महापुरुषाणां एकवचनोपि बहुवचनोस्ति।

अर्थात् महापुरुषोंके द्वारा कहा हुआ एक वचन भी बहुवचन कहलाता है। अर्थात् महापुरुषोंके द्वारा कहा हुआ साधु शब्द भी आचार्य उपाध्याय साधु तीनोंका ही वाचक समझना चाहिये। इसप्रकार ऊपर लिखे प्रश्नका समाधान है।

आगे इन मंत्रोंका अर्थ विस्तारके साथ लिखते हैं। 'चत्तारि मंगलं' अर्थात् मंगल चार हैं। 'अरहंत मंगलं' पहला मंगल अरहंत भगवान है। 'सिद्ध मंगलं' दूसरा मंगल सिद्ध परमेष्ठी है। 'साहू मंगलं' तीसरा मंगल साधु परमेष्ठी है अथवा आचार्य उपाध्याय साधु तीनों परमेष्ठी मंगलमय हैं। 'केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं'। अर्थात् चौथा मंगल केवली भगवानका कहा हुआ अहिंसामय दयामय वा उत्तम क्षमारूप धर्म ही मंगल है। इसप्रकार अरहंत सिद्ध साधु और केवलीप्रणीत धर्म ये चारों मंगलमय हैं। मंग सुखको कहते हैं तथा ल का अर्थ देना है जो मंग अर्थात् सुखको ल अर्थात् देवे उसको मंगल कहते हैं (मंगं सुखं लाति ददातीति

मंगलम्) अथवा मं शब्दका अर्थ पाप है और गल शब्दका अर्थ गलाना वा नाश करना है । जो मं अर्थात् पापको गल अर्थात् गला देवे नाश कर देवे उसको मंगल कहते हैं (मं पापं गालयति नाशयतीति मंगलम्) इस प्रकार निरुक्तिपूर्वक मंगल शब्दके दो अर्थ बनते हैं।

अन्यमती गणेश आदिको मंगलरूप कहते हैं सो ठीक नहीं है ऊपर कहे हुए अरहंत सिद्ध आदिक ही मंगलरूप समझने चाहिये।

'चत्तारि लोगुत्तमा' अर्थात् संसारमें चार ही लोग उत्तम हैं। 'अरहंत लोगुत्तमा' प्रथम तो अरहंत भगवान उत्तम हैं। 'सिद्ध लोगुत्तमा' दूसरे सिद्ध लोग उत्तम हैं। 'साहू लोगुत्तमा' आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधु रूप साधु परमेष्ठी उत्तम हैं। 'केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा' केवली भगवानका कहा हुआ अहिंसामय दयामय धर्म ही उत्तम है।

संसारमें ब्राह्मण लोग अपनेको उत्तम बतलाते हैं सो नहीं है। उनके वंशमें पहले जो ऋषि हुये हैं जिनकी संतान ये ब्राह्मण कहलाते हैं वे हीन थे शूद्र कुलके थे पशु आदिसे उत्पन्न हुए थे। ये ब्राह्मण लोग अपनेको उन्हींकी संतान बतलाते हैं जैसा कि भारतके शांतिपर्वमें लिखा है तथा पहले इसी ग्रंथमें लिख चुके हैं। इससे सिद्ध होता है कि ये ब्राह्मणादिक उत्तम नहीं है किंतु तीनों लोकोंमें अरहंत सिद्ध साधु और केवलीप्रणीत धर्म ये चारों ही उत्तम हैं।

अरहंत सिद्ध साधु और केवलीप्रणीत धर्म ये चारों ही मंगलमय है और चारोंही लोकोत्तम हैं। क्योंकि इनके सिवाय अन्य कोई भी इष्ट पदार्थ नहीं है ऐसा जानकर—

'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि' अर्थात् मैं चारोंके ही शरण प्राप्त होता हूं। 'अरहंत सरणं पव्वज्जामि' दूसरे सिद्ध परमेष्ठीके शरण जाता हूं। 'साहू सरणं पव्वज्जामि' तीसरे आचार्य उपाध्याय सर्व साधुओंके शरण जाता हूं। तथा केवलिपण्णत्तो धम्मो शरणं पव्वज्जामि' केवलीप्रणीत दयामय धर्मकी तथा उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्यरूप दशलक्षण धर्मकी शरण जाताहूं अथवा निश्चय वा व्यवहार लक्षणोंसे सुशोभित सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्मकी शरण जाता हूं। इसप्रकार अरहन्त सिद्ध साहू और केवलीप्रणीत धर्मकी शरणमें ही मैं प्राप्त होता हूं।

इस संसारमें इन्द्र, चंद्र, धरणेंद्र, चक्री, राजाधिराज, देव, दानव, भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस, पिशाच, कुलदेवी, भैरव, क्षेत्रपाल, चंडी, मुंडी, काली, शीतला, बीजासणी अऊत, पितर, सूर्य, सती, मणि, मंत्र, यंत्र, तंत्र, आदित्यादिक नवग्रह, औषधि, ब्रह्मा,

विष्णु, शिव तथा और भी कितने ही प्रकारके देवी देवताओंको शरण मानते हैं और कहते हैं कि इनसे मरण आदिका भय दूर होता है सो सब मिथ्या है। क्योंकि ये सब देवी देवता अपनेको कालसे नहीं बचा सके। जब वे कालसे अपनेको ही नहीं बचा सके तो फिर वे औरोंकी रक्षा किसप्रकार कर सकते हैं। इसलिये जन्म मरणके भयसे रहित, स्वर्गमोक्ष देनेवाले और समस्त जीवोंका कल्याण करनेवाले श्रीअरहंत सिद्ध साधु और केवलीप्रणीत धर्म ही परम पदार्थ है और ये ही शरण लेने योग्य हैं। इनके सिवाय अन्य सब देवी देवता कालके ग्रास बनचुके हैं सो ही कालज्ञानमें लिखा है—

काले देवा विनश्यन्ति काले चासुरपन्नगाः। नरेन्द्रादिसुरेंद्राश्च कालेन कवलीकृताः॥

अर्थ—इस कालमें सब देव नष्ट होचुके हैं इस कालमें ही राक्षसादिक असुर और नागकुमारादिक पन्नग नष्ट होचुके हैं। तथा नरेन्द्रादिक समस्त मनुष्य और सुरेन्द्रादिक समस्त देव सब इस कालके ग्रास बन चुके हैं। भावार्थ—इन सबको कालने खा डाला है इसीलिये कालको सर्वभक्षी कहते हैं।

इस कालसे वीतराग परमदेव अरहंत परमेष्ठी सिद्धपरमेष्ठी आचार्यादिक साधुपरमेष्ठी और केवलीप्रणीत धर्म ये चारों ही बचे हैं। इसलिये ये ही मंगलरूप हैं, ये ही लोकोत्तम है और ये ही शरण ग्रहण करने योग्य हैं।

इस प्रकार अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधुमय साधु और केवलीप्रणीत धर्म ये चारोंही हमको मंगल करनेवाले हों। ये चारों ही हमारे सब प्रकारके जालोंको (विघ्नोंको) हरण करें। तीनों लोकोंमें ये ही चार उत्तम पदार्थ हैं और भव भवमें हमें इन चारोंकी ही शरण प्राप्त हो यही हमारी प्रार्थना है।

मेरे समस्त दुःखोंका क्षय हो, समस्त आठो कर्मोंका नाश हो मुझे आत्मबोधि (आत्मज्ञान वा रत्नत्रय) की प्राप्ति हो, मुझे सद्गति प्राप्त हो समाधिमरण प्राप्त हो और जिनेन्द्रदेवके गुणरूपी संपदाकी प्राप्ति हो। यही हमारी श्रीसर्वज्ञ, वीतराग, अरहंत, परमात्मा, परमेष्ठी आदि अनेक नामोंसे सुशोभित तीनों लोकोंके स्वामी श्रीकेवली भगवानसे प्रार्थना है। सो हमारी यह प्रार्थना पूर्ण हो।

इसप्रकार यह चर्चासागर ग्रंथ समाप्त हुआ। इसमें दोसौ चौवन चर्चायें हैं उनमेंसे यह अंतकी चर्चा शिखररूप है इसलिये इसमें मंगलभूत सर्वोत्तम और शरणभूत परमेष्ठियोंका नाम उच्चारण कर अंतिम मंगल किया है।

आगे इस शास्त्रमें जो जो चर्चाएं आई हैं उनकी पूर्ण सूची लिखते हैं।

प्रश्न—सूची तो पहले लिखनी चाहिये अंतमें क्यों लिखी।

समाधान–कथा पुराण आदि प्रबंध शास्त्रोंकी सूची तो पहिले ही लिखी जाती है परम्परासे आम्नाय भी यही है। परंतु यहां पर तो प्रश्नोत्तरोंका तरंगमय शास्त्र बना है सो ज्यों ज्यों तरंग आती गई त्यों त्यों शास्त्र बनता गया पहलेसे कुछ प्रमाण निश्चित था नहीं। इसीलिये प्रमाणके विना पहले नहीं लिखी गई इसी कारण अब आगे लिखी जाती है। ऐसा समझ लेना चाहिये।

यह चर्चासागर किन किन ग्रंथोंसे लेकर बनाया है उनकी सूची शास्त्रका विस्तार होनेके भयसे नही लिखी है उन सब शास्त्रों की संख्या १९१ एकसौ इक्यानवे है। इनके सिवाय उक्तं च श्लोक है गाथा हैं। अन्यमतके श्लोक हैं इसप्रकार इस चर्चासागरमें अनेक शास्त्रोंका मत प्रगट किया है।

प्रश्न—इस शास्त्रमें अनेक ग्रंथोंका प्रमाण देकर गाथा श्लोक रखकर इस शास्त्रको क्यों बढाया और क्यों इतना परिश्रम किया केवल उनके नाम ही लिख देने थे। अधिक विस्तारसे क्या लाभ केवल नाममात्र ही लिखना था।

समाधान—इतना परिश्रम करनेपर भी आजकलके कितने ही हटग्राही जीवोंके फिर भी यथार्थ श्रद्धान नहीं होता फिर भला केवल ग्रंथोंका नाम लेदेने मात्रसे वे लोग कैसे मानते ? इसलिये स्पष्ट अर्थ दिखलानेके लिये तथा भ्रम और संदेहको दूर करनेके लिये इतना बढाकर लिखा है।

लौकिक शिक्षामें गुरु शिष्यका संवाद है उसमें एक प्रश्नोत्तर यह है। गुरूजीका प्रश्न—

लांबो बड फैल्यो नहीं, मरू मालवे जाय।
लिखिया खत झूठा पडै, कहो चेला कुण राय॥

शिष्यका उत्तर—'गुरुजी शाख नहीं' अर्थात् विना शाख शाखा वा डालियोंके बडका वृक्ष फैलता नहीं। विना शाखाके अर्थात् कातिक वा वैसाखकी फसल—धान हुए विना मारवाडके लोग प्रायः सबही गुजारा करनेके लिये मालवेमें भग जाते हैं। तथा विना शाखके विना विश्वास वा प्रमाणके लिखा हुआ खत अर्थात् पत्र भी तमस्सुख (दलील) झूठा पड जाता है इसलिये

१ इस ग्रंथमें सूची इसके आगे है परंतु सबके सुभीतेके लिये हमने विस्तारके साथ लिखकर पहले लगा दी है।

२ मालवा ऊंची जगह पर है इसलिये वहां प्रायः पानी बरसता ही है दुष्काल नहीं पडता इसीलिये लोग दुष्काल पडनेपर वहां चले जाते है।

गृहस्थ लोगोंके द्वारा बनाये हुये नवीन नवीन शास्त्र यद्यपि पहलेके आचार्योंके बनाये हुये शास्त्रोंके वचनोंके अनुसार ही हैं तथापि उनमें शाख वा प्रमाणरूप शास्त्रोंके वचन अवश्य रख देना चाहिये प्रमाणरूप शास्त्रोंके वचन रखनेसे फिर किसीके हृदयमें भी जिनवाणीमें संदेह नहीं रहता।

प्रश्न—यदि किसीके हृदयमें प्रमाणरूप शास्त्रोंके वचनोंको देखकर भी संदेह दूर न हो तो क्या करना चाहिये।

समाधान—ऐसे मनुष्योंके सामने मौन धारण करना अच्छा है। क्योंकि मूर्खोंके समझानेका संसारमें कोई उपाय नहीं है। संसारमें उनके स्वभावकी औषधि ही नहीं है। भर्तृशतकमें लिखा है—

"मूर्खस्य नास्त्यौषधम्"

अर्थात् मूर्खकी कोई औषधि नहीं है।

प्रश्न—यदि कोई समझदार पढेलिखे विद्वान लोग भी प्रमाणरूप कथनको देखकर भी श्रद्धान न करें तो फिर उनके लिये भी प्रमाणोंका लिखना व्यर्थ ही हुआ।

उत्तर—जो प्रमाणरूप वचनोंको देखकर भी श्रद्धान न करें तो फिर उनको भी मूर्ख समझना चाहिये। क्योंकि क्रोध करना हट पकड़ना, दुर्वचन कहना, अपनी कथा कहते ही जाना और दूसरोंकी मानना ही नहीं, ये पांच मूर्खोंके चिन्ह है। लिखा भी है—

मूर्खस्य पंच चिन्हानि क्रोधी दुर्वचनी तथा। हठी च दृढवादी च परोक्तं नैव मन्यते॥

इसलिये ऐसे लोगोंके सामने भी मौन धारण करना ही श्रेष्ठ है। लिखा भी है—

'दोषवादे च मौनम्' अर्थात् जहां दोषवाद हो जहां किसीको बुरा कहना पडे वहांपर भी मौन धारण करना श्रेष्ठ है। यह न्याय सब जगह लगा लेना चाहिये। मूर्ख लोगोंको उपदेश देनेमें बडे बडे दोष उत्पन्न होते हैं। लिखा भी है—

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभाषणेन च। पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनं॥

अर्थ—मूर्ख शिष्यको उपदेश देनेसे, दुष्ट स्त्रीके साथ बातचीत करनेसे और सांपको दूध पिलानेसे केवल विष ही बढ़ता है। इसलिये मूर्खोंके लिये वा दुष्ट पुरुषोंकेलिये यह ग्रंथ नहीं है। यह चर्चासागर ग्रंथ तो सम्यग्दृष्टी सज्जन संत जिनाज्ञाको प्रतिपालन करनेवाले भव्य जीवोंकेलिये है। इसके सुनने सुनानेसे पढने पढानेसे, लिखने लिखानेसे केवल धर्मामृतकी ही वृद्धि होती है तथा धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है। ऐसा यह शास्त्र सदा जय शील हो।

इसप्रकार ऊपर लिखे हुये दोसौ चौअन प्रश्नोत्तरोंसे सुशोभित यह चर्चासागर ग्रंथ पूर्वाचार्योंके किये हुए सिद्धांत पुराण चरित्र आदिके अनुसार अपनी बुद्धिसे पूर्ण किया है। धर्मात्मा भव्य पुरुषोंको स्वाध्यायके पांचों भेदोंसे इसकी प्रवृत्ति करनी चाहिये।

यदि इस ग्रन्थमें मेरी मंद बुद्धिके द्वारा कुछ विपरीत अर्थ लिख गया हो अथवा विरुद्ध श्रद्धान ज्ञान आचरण आदि लिख गया हो तो विशेष जाननेवाले सम्यग्दृष्टी साधर्मी सज्जनोंको हमपर क्षमाभाव धारण कर इसको शुद्ध कर लेना चाहिये। मेरी मंद बुद्धिपर हँसना नहीं चाहिये इसीप्रकार हटग्राही दृढवादी दुर्जन पुरुषों को भी हमपर क्षमा करनी चाहिये। यदि इस शास्त्रमें आप लोगोंको अपने श्रद्धान ज्ञान आचरणके योग्य कथन न मिले तो मूल शास्त्रोंके गाथा श्लोक आदिको मिलाकर श्रद्धान करलेना चाहिये। यदि हमने मूल शास्त्रोंके विरुद्ध लिखा हो तो उन ग्रंथोंकी टीकाओंसे तथा अन्य मूल ग्रंथोंसे शुद्धकर हमपर क्षमाभाव धारण करना चाहिये। इसप्रकार हमारी ये दो प्रार्थनाएं हैं। राग द्वेषको छोडकर श्री वीतरागके बचनोंके अनुसार कहनेवाले गणधरोंके बचनों पर तथा गणधरादिकोंके बचनोंके अनुसार कहनेवाले आचार्योंके बचनोंपर श्रद्धान ज्ञान आचरण कर अपना आत्मधर्म प्रतिपालन करना चाहिये।

यह चर्चासागर ग्रंथ हमने अनेक शास्त्रोंको देखकर लिखा है सो इसका पठनपाठन विचार आदि करना चाहिये। इसमें प्रमाद नहीं करना चाहिये। यह ग्रंथ हमने अपने और दूसरोंके उपकारके लिये लिखा है। जैनवचन अगाध हैं गणधरादिक देव भी इसका पार नहीं पाते। फिर भलारे हमा समान अत्यन्त तुच्छ बुद्धिको धारण करनेवाले इसको कैसे कह सकते हैं। इसलिये हमारी जितनी बुद्धि थी उतना ही हमने लिखा है। यह जिनवाणी अपार है इसलिये ऐसे जिनवचनोंको हम वारम्बार नमस्कार करते हैं। जो कोई मनुष्य कोई शुभकार्य करता है और अपने शुभकार्यकी सिद्धि होजानेपर भी उसके पार तक नहीं पहुंच सकता तो वह अपने कार्यकी सिद्धि होनेतक उस कार्यकी सिद्धि करलेता है। और शेषको नमस्कार कर लेता है इसीप्रकार हमने भी अपने कार्यकी सिद्धि कर शेष गुणोंसे सुशोभित अपने इष्टदेवको नमस्कार किया है। इसप्रकार यह चर्चासागर ग्रंथ समाप्त हुआ।

आगे इस शास्त्रके बनानेका कारण लिखते हैं।

श्री जिनवर श्री सिद्ध मुझ देहउ जिनगुण रिद्ध।
सूरी पाठक साधु सब देह सिद्धि फुनि ऋद्धि ॥ १ ॥

चर्चासागर शास्त्रवर कीनो सो सुनि भ्रात।
समाचार ताके कहूं संशयनाशक बात ॥ २ ॥
स्वस्तीश्री गर्गा सुदेश जांहिं, शुभ झालावाड वसै ता मांहिं।
तहां झल्लरपत्तन पुरि अनूप, तहं पृथ्वीराज शुभ जानि भूप ॥ ३ ॥
तहां शांतिनाथ फुनि पार्श्वनाथ, श्रीऋषभदेवके बिम्ब साथ।
जिन चौवीसी युत भवन तीन, शोभा लिखते ह्वै पापछीन ॥ ४ ॥
नर नारी भव्य अनेक आय, बंदें पूजें मन वचन काय।
फुनि श्रवण करैं जिनवाणि नित्त, श्रावक सुश्राविका एक चित्त ॥ ५ ॥
तहां बसै नगरमें वरण चार, तामें जैनी जन धर्मकार।
तामें बागंबर शुभदेश सार, ताकरि आए हूमड विचार ॥ ६ ॥
ज्ञातीय वागड्या ब्रउक साह, लघुशाखा गोत्र वघाणु ताह।
है बालसोमसुत गोज दास, ताको सुत वर्जितभ्रमरपास ॥ ७ ॥
शुभ सूमन[1] तामें अरुण अंत, ताने बहु शास्त्र सु देखि तंत।
फुनि प्रश्नोत्तर सूं और पास, निर्णय करि शास्त्रनिर्मे खुलास ॥ ८ ॥
निजपर निज अनुज सूनु काजे[2], मुर[3] अैरी अरुण[4] युत अंतराज।

१ सुमन शब्दका अर्थ फूल है फूलोंमें सबमें उत्तम फूल चंपाका है और अंतमें अरुण अर्थात् लाल है इस प्रकार चंपालाल नाम निकलता है।
२ छोटे भाईके पुत्रके लिये ३ मुरारी ४ लाल (३+४=मुरारीलाल)

कौमार लाल क्रम नाम छाज, समझन हित कीनो यह समाज ॥ ९ ॥
बहुसंशयनाशक गुण प्रकाश, भव्यनिको श्रद्धन रूप खास ।
हटग्राही टेकी श्रद्ध क्षीन, लखि दुर्वच वोले बुद्धि हीन ॥ १० ॥
यह स्व स्व धर्मनि करत त्याग, सहकार पलांडु पिक कुकाग ।
जिम जाणो याको ज़ाति भाव, नहिं होय गर्दभी रूप गाव ॥ ११ ॥
संवत्सर विक्रम अर्क राज्य, समयेतें दिग हरि चन्द्र छाज ।
माघमास शशि पक्ष शुद्ध, पंचम गुरुवार अनंग बुद्ध ॥ १२ ॥
तिस दिन शुभ वेला पूर्ण कीन, चर्चा सिंधू बहु कथन पीन ।
नंदो वृद्धो जयवंत होउ, यावत रवि शशि छिति वार्द्धि लोउ ॥ १३ ॥

छप्पय ।

मंगल श्री अरहंत सिद्ध मम करो सुमंगल । मंगल करो सुसाधु उक्त केवलि वृषमंगल ॥
मंगल यह चत्वारि और न विनायक मंगल । मंगलमें वरदाय श्रेष्ठ मंगलमें मंगल ॥

---

१ आम २ प्याज ३ कोयल ४ कौआ । वे लोग धर्मको इस प्रकार छोडते हैं जैसे कोयल आमको छोडती हो और कौआ प्याजको छोडता हो अर्थात् कोयल आमको छोडती नहीं यदि छोडे तो वह मूर्ख है तथा प्याजको छोडनेवाला कौआ मूर्ख है उसी प्रकार धर्मको छोडनेवाले महामूर्ख हैं । ५ गधी कभी गाय नहीं बन सकती ६ दिशाएं दश हैं ।

७ । चन्द्र एकको कहते हैं । इन सबके मिलानेमे तथा अङ्काना वामनो गतिः अर्थात् अङ्कोकी गति बाई ओर होती है इस न्यायसे १८१० है । अर्थात् विक्रम सम्वत् १८१० मे यह ग्रंथ बना । ९ वसत पचमी १० जबतक छिति अर्थात् आकाशमे सूर्य है और वार्द्धि अर्थात् समुद्रमें चन्द्रमा है ११ पहले अक्षर , सोलहवे दोहेके चारो पदोंके पहले चार अक्षरोमे ग्रंथकर्ताका नाम चंपालाल समझना चाहिये ।

यह ही चउ लोगोत्तमा यह चउ शरण सुमानिये।
अरहंत सिद्ध फुनि साधु वृष श्रीजिनकथित सु जानिये ॥ १४ ॥

सोरठा।

विघ्नव्यूह विलाय शाकिनी भूत सुसर्प सब।
विष अमृत ह्वै जाय श्रीजिन तेरे स्मरणतें ॥ १५ ॥

दोहा।

चं—द्रप्रभु चंद्राभ तनु,
पा—र्श्वप्रभु छवि नील।
ला—भ करत श्रीशिवतनौ
ल—गि ध्यावें तजि ढील ॥ १६ ॥

चउ पदके धुर वर्ण चउ क्रमकरि पंक्ति अनूप।
चर्चासागर ग्रंथको कर्ता नाम स्वरूप॥ १७ ॥

इसप्रकार पंडित-प्रवर चंपालालकृत
चर्चासागर ग्रंथ समाप्त हुआ।